M-8

दिनपत्री

015,1A2 0290
152E4·3
महाभारत / खंड ३

015,1A2
152E4·3

0290

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त
तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर
प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक........................
दिनांक..............................

3

महाभारत भाषा

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक 1042
दिनांक

वनपर्व ।

अनुवादक

श्री पं० कुंजविहारीलालजी

प्रकाशकः—

नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो)

हज़रतगंज, लखनऊ.

015,1A2
152E4·3

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
आगत क्रमांक 0270
दिनांक 26.15

Pt III

भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास

अर्थात्

महाभारत भाषा

वनपर्व।

जिसमें

युधिष्ठिर आदि पाण्डवों का वनवास, अर्जुन की स्वर्ग-यात्रा और इन्द्र से मिलाप, धृतराष्ट्र-विलाप, भीमसेन के द्वारा किर्मीर राक्षस का वध, लोपामुद्रा से अगस्त्यमुनि का विवाह, राजा भगीरथ का गंगाजी के दर्शनार्थ तप करना, गंगाजी तथा शिवजी से वर प्राप्त होना, युधिष्ठिर का मार्कण्डेयजी के मुख से रामायण की कथा का सुनना, इत्यादि कथाएँ विस्तार के साथ वर्णन की गई हैं।

हिन्दी-अनुवादक

श्रीयुत पं० मोहनलाल-सूनु

श्री० पं० कुंजविहारीलालजी शर्मा,

लखनऊ.

केसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंट द्वारा

नवलकिशोर-प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित।

पञ्चमावृत्ति] सन् १९२७ ई० [सर्वाधिकार रक्षित

विद्यालयीय पुस्तकालय
क्र० सं०....४......
दि०सं०....४......
अस्सी, वाराणसी

महाभारत वनपर्व का सूचीपत्र।

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	पांडवों का वन को जाना, उनके पीछे पुरवासियों का चलना; पाण्डवों का उनको सौगन्द देकर लौटाना और एक बड़ के पेड़ के नीचे ब्राह्मणों-सहित वास करना ...	१
२	ब्राह्मणों का पांडवों के साथ वन को जाने को तैयार होना, युधिष्ठिर का निषेध करना और फिर ब्राह्मणों का वन के जाने का आग्रह करना, युधिष्ठिर का विकल होना और शौनक का ज्ञान उपदेश करना।	४
३	धौम्य ऋषि का युधिष्ठिर को सूर्य की पूजा करने का उपदेश करना, युधिष्ठिर का सूर्य की तपस्या करना और सूर्य का युधिष्ठिर को वरदान देना और पाण्डवों का काम्यक वन में जाना।	९
४	राजा धृतराष्ट्र का विदुरजी से अपने हित की बात पूछना, विदुरजी का दुर्योधन का त्याग करने और पांडवों को राज्य देने का उपदेश करना और धृतराष्ट्र का विदुरजी को निकाल देना।	१४
५	विदुरजी का काम्यक वन में पांडवों के पास जाना और अपने आने का कारण कहकर युधिष्ठिर को उपदेश करना।	१६
६	विदुरजी के चले जाने पर धृतराष्ट्र का दुःखी होना और संजय को भेजकर फिर विदुरजी को बुलवाना।	१७
७	विदुरजी के आने से दुर्योधन को विषाद होना और कर्ण आदि का पांडवों को वन में जाकर मारने की सलाह करना और व्यासजी का निषेध करना। ...	१९
८	व्यासजी का धृतराष्ट्र को समझाकर पांडवों से मिलाप करने को कहना।	२०
९	धृतराष्ट्र और व्यासजी का आपस में पुत्र के स्नेह का सम्वाद होना।	२१
१०	पांडवों के पास से मैत्रेय ऋषि का आना और दुर्योधन को समझाकर पांडवों से मिलाप करने का उपदेश करना, दुर्योधन का न मानना और मैत्रेयजी का दुर्योधन को शाप देना।	२२
११	विदुरजी का राजा धृतराष्ट्र से भीमसेन के हाथों से किर्मीरदैत्य के मारे जाने का वृत्तान्त कहना।	२४
१२	पांडवों के दुःख का हाल सुनकर श्रीकृष्ण आदि अनेक क्षत्री और राजाओं का वन में पांडवों के पास आना, श्रीकृष्णजी का क्रोध करना, अर्जुन का श्रीकृष्णजी की स्तुति करना, द्रौपदी का श्रीकृष्णजी के सम्मुख विलाप करना और श्रीकृष्णजी का द्रौपदी को धैर्य देना।	२८
१३	पांडवों के दुःख से दुःखी होकर श्रीकृष्णजी का यह कहना कि जो हम द्वारका में होते तो जूआ न होने देते।	३५
१४	श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से अपने द्वारकापुरी में न होने का कारण कहना। ...	३६
१५	युधिष्ठिर का श्रीकृष्णजी से युद्ध की व्यवस्था पूछना और श्रीकृष्णजी का द्वारकापुरी के रक्षित होने का वृत्तान्त कहना।	३७
१६	श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से राजा शाल्व के मंत्री और शाम्ब तथा चारुदेष्ण से युद्ध होने का वृत्तान्त कहना।	३८
१७	श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से राजा शाल्व और प्रद्युम्न के युद्ध का हाल कहना तथा प्रद्युम्न का मोहित होना।	४०
१८	प्रद्युम्न का मूर्च्छित होना, सारथी का रथ को रण के बाहर ले जाना और मूर्च्छा रहित प्रद्युम्न का सारथी को शिक्षा करना।	४१
१९	प्रद्युम्न का राजा शाल्व से फिर युद्ध करना और शाल्व का मोहित होकर लौट जाना।	४२
२०	श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से राजा शाल्व पर चढ़ाई करने और युद्ध होने की व्यवस्था कहना।	४४

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२१	शाल्व का माया से युद्ध करना और भगवान् का मोहित होना।	४६
२२	श्रीकृष्णजी का शाल्व को मारकर, उसके विमान को गिराकर श्रीकृष्ण आदि सब राजाओं का पांडवों से विदा होकर अपने-अपने देश को चले जाना।	४८
२३	पांडवों का काम्यक वन से आगे चलना और सब ब्राह्मण तथा पुरवासियों का उनसे विदा होकर लौट आना।	५०
२४	पांडवों का द्वैत वन में वास करना।	५१
२५	पांडवों के पास महामुनि मार्कण्डेयजी का आना और पांडवों को शिक्षा करके उत्तर दिशा को चले जाना।	५२
२६	बक और दालभ्य ऋषियों का युधिष्ठिर का ब्राह्मणके पास रखने की शिक्षा करना।	५४
२७	द्रौपदी का युधिष्ठिर से यह पूछना कि आप इतने दुःखों के होने पर भी कौरवों पर क्रोध क्यों नहीं करते हैं।	५५
२८	द्रौपदी का राजा युधिष्ठिर से क्रोध और क्षमा के विषय में बलि और प्रह्लाद का संवाद कहना।	५७
२९	युधिष्ठिर का द्रौपदी को क्रोध छोड़ने और क्षमा करने का उपदेश करना।	५९
३०	द्रौपदी का युधिष्ठिर से ईश्वर की सामर्थ्य और मनुष्य की असमर्थता का हाल कहना	६२
३१	युधिष्ठिर का द्रौपदी को धर्म और ईश्वर में शंका न करने का उपदेश करना और समझाना।	६५
३२	द्रौपदी का युधिष्ठिर से एक ब्राह्मण से सुनी हुई नीति कह, प्रारब्ध को छोड़ने और यत्न करने के लिये प्रार्थना करना।	६८
३३	भीमसेन का युधिष्ठिर से यह कहना कि शत्रुओं को मारकर अपना राज्य ले लो।	७२
३४	युधिष्ठिर का भीमसेन से यह कहना कि तुमको अपनी वीरता पहले दिखलानी थी और यह समझाना कि श्रेष्ठ मनुष्य प्रतिज्ञा छोड़ने से मरना अच्छा जानते हैं।	७८
३५	भीमसेन का युधिष्ठिर से यह कहना कि युद्ध करना ही क्षत्रियों का धर्म है।	८०
३६	युधिष्ठिर के समझाने से भीमसेन का चुप हो जाना और व्यासजी का युधिष्ठिर के पास आना तथा देवतों से अस्त्र मिलने के लिये अर्जुन को प्रतिस्मृति विद्या देना।	८२
३७	युधिष्ठिर का अर्जुन को व्यासजी की दी हुई विद्या का उपदेश करना और अर्जुन का इन्द्रनील पर्वत पर इन्द्र से मिलना।	८५
३८	अर्जुन का हिमालय पर्वत पर उग्र तपस्या करना और महर्षियों का उसकी तपस्या का हाल शिवजी से कहना।	८८
३९	शिवजी का किरातरूप से अर्जुन के पास जाना और उनसे युद्ध करना, अंत में प्रसन्न होकर दर्शन देना।	८९
४०	शिवजी का अर्जुन को पाशुपत अस्त्रदेना, उस अस्त्र का प्रज्वलित होना और शिवजी का स्वर्ग को जाना।	९४
४१	अर्जुन के पास इन्द्र आदि लोकपालों का आना और अपने-अपने अस्त्र अर्जुन को देना।	९५
४२	अर्जुन का इन्द्र के भेजे हुये रथ में बैठकर इन्द्रपुरी को जाना और राह में सुकृती मनुष्यों के पुण्यरूपी लोकों को देखना।	९८
४३	अर्जुन का इन्द्रपुरी में पहुँचकर इन्द्र से मिलना और इन्द्रपुरी की शोभा का वर्णन।	१००
४४	अर्जुन का स्वर्ग में इन्द्र से वज्र आदि अस्त्रों का प्रयोग और चित्रसेन गन्धर्व से गाना, नाचना और बजाना सीखना।	१०१
४५	चित्रसेन गन्धर्वद्वारा इन्द्रकी आज्ञापाकर उर्वशीका अर्जुनकेपास जाना अंगीकारकरना।	१०२
४६	उर्वशी का अर्जुन के पास जाना और अर्जुन को शाप देना।	१०३
४७	लोमश ऋषि का इन्द्रपुरी में आना और अर्जुन को इन्द्रासन पर बैठा हुआ देखकर शंका करना, इन्द्र का उनका समाधान करना और युधिष्ठिर को संदेशा भेजना।	१०६
४८	व्यासजी से अर्जुन के स्वर्ग जाने का वृत्तान्त सुनकर धृतराष्ट्र का चिन्ता करना और संजय से कहना।	१०७

अध्याय	विषय	पृष्ठ
४९	पांडवों के ओर की चिंता से दुःखी होकर धृतराष्ट्र और संजय का आपस में बलाबल का निश्चय करना।	१०८
५०	अर्जुन के चले जाने के पीछे पाण्डवों के वन में बसने का वृत्तान्त।	११०
५१	पाण्डवों के भय से धृतराष्ट्र और संजय का परस्पर संवाद होना।	११०
५२	दुर्योधन से युद्ध करने के लिये भीमसेन और युधिष्ठिर का संवाद और बृहदश्व महर्षि का आगमन।	११३
५३	बृहदश्व महर्षि का युधिष्ठिर से नल और दमयन्ती की उत्पत्ति, परस्पर प्रीति और हंसों के द्वारा एक दूसरे का संदेशा पहुँचाने की कथा कहना।	११६
५४	दमयन्ती के स्वयंवर की रचना और उसमें राजा तथा देवताओं का आना।	११८
५५	इन्द्र, वरुण, अग्नि और यमराज का नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना और नल का दमयन्ती के पास जाकर देवताओं का संदेशा कहना।	११९
५६	दमयन्ती का देवताओं को पति बनाने से निषेध करना, नल को वरना और नल का देवताओं के पास आकर सब वृत्तान्त कहना।	१२०
५७	दमयन्तीका स्वयंवर में देवताओं की प्रार्थना करना और राजा नलके साथ दमयन्ती का विवाह होना।	१२२
५८	लोकपाल देवताओं का राह में कलियुग से मिलाप होना और दमयन्ती का हाल सुन कर कलियुग का क्रोध करना।	१२५
५९	राजा नल का पुष्कर से जुआ खेलना और बहुत सा धन हार जाना।	१२६
६०	राजा नल को जुए में सब धन हारते देखकर दमयन्ती का वार्ष्णेय सूत के साथ अपने पुत्र और पुत्री को कुण्डिनपुर भिजवाना।	१२७
६१	राजा नल व दमयन्ती का वन गमन, पुरवासियों से निरादर और पक्षियों द्वारा वस्त्रहरण।	१२८
६२	राजा नल और दमयन्ती का रात्रि में सो जाना और राजा नल का सोती हुई दमयन्ती का आधा वस्त्र लेकर चल देना।	१३०
६३	दमयन्ती का जगने पर महा विलाप करना, वन में नल को ढूँढ़ना, अजगर का उसको निगल जाना, व्याध का वहाँ आकर बचाना और उस पर कामासक्त होना और दमयन्ती का उसे शाप देना।	१३१
६४	दमयन्ती का महाविलाप करते हुए तपस्वियों के आश्रम में पहुँचना, तपस्वियों का धैर्य देकर अन्तर्द्धान होजाना और पथिकसमूह का मिलना।	१३४
६५	दमयन्ती का उस काफले के साथ जाना, हाथियों द्वारा उस काफले के मनुष्यों को मारा जाना और दमयन्ती का राजा चन्देरी के यहाँ पहुँचना।	१४०
६६	राजा नल का वन में किसी सर्प को अग्नि से बचाना, सर्प का नल को डसकर उसका स्वरूप बदल देना और पुनः स्वरूप-प्राप्ति के लिए एक वस्त्र और राजा ऋतुपर्ण के पास जाने का उपदेश देकर अन्तर्धान होजाना।	१४३
६७	राजा नल का अयोध्या में जाकर राजा ऋतुपर्ण के यहाँ नौकर होना और वहाँ अज्ञात रहकर दमयन्ती के विरह में एक श्लोक पढ़ा करना।	१४५
६८	राजा भीम का नल और दमयन्ती के ढूँढ़ने को सैकड़ों ब्राह्मण भेजना और सुदेवनाम ब्राह्मण का राजा चन्देरी के नगर में आकर दमयन्ती को पहिचानना।	१४६
६९	दमयन्ती का सुदेव ब्राह्मण के साथ अपने पिता के घर आना और ब्राह्मणों को नल के ढूँढ़ने को भेजना।	१४८
७०	पर्णाद ब्राह्मण का दमयन्ती के पास अयोध्यापुरी के राजा के सारथी का कहा हुआ उत्तर सुनाना तथा दमयन्ती का अपने स्वयंवर होने का संदेशा अयोध्यापुरी के राजा के पास भेजना।	१५१
७१	राजा ऋतुपर्ण का बाहुक से परीक्षा किये हुए घोड़ों को रथ में जुतवाकर बाहुकसहित अयोध्यापुरी से विदर्भदेश को चलना।	१५२

अध्याय विषय पृष्ठ

७२ राजा नल का रथ को हाँक कर आकाशमार्ग से विदर्भ देश को चलना, राह में राजा ऋतुपर्ण का नल को अश्वहृदय विद्या देना और उसके प्रभाव से कलि का निकलना तथा नल का सब दुःख दूर होना। १५४
७३ राजा ऋतुपर्ण का कुण्डिनपुर में पहुँचकर राजा भीम के यहाँ टिकना तथा दमयन्ती का नल को ढूँढ़ने का प्रयत्न करना। १५६
७४ दमयन्ती का नल का हाल जानने के लिये बाहुक के पास केशनी नाम दूती को भेजना और बाहुक तथा दूती का प्रश्नोत्तर होना। १५८
७५ दमयन्ती का अनेक प्रकार से केशनी दूती को भेजकर बाहुक की परीक्षा करना और उसको यह जानना कि यह नल ही है। १६०
७६ दमयन्ती का अपने माता-पिता की आज्ञा से बाहुक को अपने भवन में बुलाना तथा दोनों का प्रश्नोत्तर होना, बाहुक का अपना नल का स्वरूप पाना और दमयन्ती तथा नल का परस्पर मिलकर परमानन्द पाना। १६२
७७ राजा नल और दमयन्तीका राजा भीमसे मिलना और राजा ऋतुपर्णका नलसे अपना अपराध क्षमाकराकर तथा उससे अश्वहृदय विद्या लेकर अपने नगरको चलाजाना। १६५
७८ राजा नल का कुछ सेना लेकर पुष्कर के पास जाना और उससे जुए में सब राज्य तथा धन जीत कर उसे उसके देश को भेज देना। १६६
७९ नल का बहुत सी सेना भेज कर दमयन्ती को बुलवाकर आनन्दपूर्वक राज्य करना और बृहदश्व का युधिष्ठिर को समझा कर चला जाना और युधिष्ठिर का तपस्वियों से अर्जुन की तपस्या का हाल सुनना। १६८
८० द्रौपदी और पाण्डवों का अर्जुन के चले जाने का अत्यन्त शोच करना। ... १६९
८१ नारदजी का पाण्डवों के पास जाना तथा युधिष्ठिरजी के पूछने पर भीष्म और पुलस्त्य ऋषि के संवाद द्वारा तीर्थ-यात्रा तथा पृथ्वी परिक्रमा का फल वर्णन करना। १७१
८२ पुलस्त्यऋषि का भीष्मजी से तीर्थों की यात्रा का फल वर्णन करना। ... १७२
८३ पुलस्त्यजी का भीष्म से अनेक तीर्थों में स्नान करने का फल वर्णन करना ... १७९
८४ पुलस्त्यजी का भीष्मजी से तीर्थों में स्नान करने का फल वर्णन करना ... १९०
८५ नारदजी का युधिष्ठिर से अनेक तीर्थों की यात्रा करने का माहात्म्य वर्णन करके अन्तर्द्धान होजाना और युधिष्ठिर का वही माहात्म्य ऋषियों से कहना। ... १९९
८६ युधिष्ठिर का धौम्य ऋषि से अर्जुन के वियोग का वृत्तान्त कहकर अन्यत्र जाने की इच्छा से पवित्र तीर्थों का वृत्तान्त पूछना। २०६
८७ धौम्य ऋषि का युधिष्ठिर से पूर्वदिशा के तीर्थों का वृत्तान्त कहना। ... २०७
८८ धौम्य ऋषि का युधिष्ठिर से दक्षिण दिशा के तीर्थों का वृत्तान्त कहना। ... २०९
८९ धौम्य ऋषि का युधिष्ठिर से पश्चिम दिशा के तीर्थों का वृत्तान्त कहना। ... २११
९० धौम्य ऋषिका युधिष्ठिरसे उत्तर दिशाके तीर्थ और पवित्र स्थानोंका वृत्तान्तकहना। २१२
९१ लोमश ऋषि का इन्द्रलोक से युधिष्ठिर के पास आना, अर्जुन के अस्त्र सीखने का वृत्तान्त कहकर इन्द्र का संदेशा कहना। २१४
९२ युधिष्ठिर का इन्द्र की आज्ञा और अर्जुन का संदेशा सुनकर तीर्थयात्रा करने की इच्छा से ब्राह्मणादिकों को लौटा देना। २१५
९३ वनवासी ब्राह्मणों को साथ लेकर युधिष्ठिर का पूर्व दिशा को जाना। ... २१७
९४ युधिष्ठिर का लोमश ऋषि से धर्मात्माओं के दुःखी होने का कारण पूछना तथा लोमश ऋषि का समाधान करना। २१८
९५ राजा युधिष्ठिर का नैमिषादि तीर्थों की यात्रा करना और गयशिर पर्वत पर पहुँच कर राजा गय के यज्ञ करने का इतिहास सुनना। २२०
९६ युधिष्ठिर का अगस्त्यजी के आश्रम को जाना और लोमश ऋषि का वातापी दैत्य के मारे जाने की कथा कहना। २२१
९७ राजकन्या लोपामुद्रा के साथ अगस्त्यजी का विवाह होना। २२३

अध्याय	विषय	पृष्ठ
९८	अगस्त्यजी का धन मांगने के लिये राजा श्रुतुर्वाण, ब्रध्नाश्व तथा त्रसद्दस्यु के पास जाना और उनसे धन न मिलने पर उन तीनों राजाओं को साथ लेकर इल्वल दैत्य के पास जाना ।	२२४
९९	अगस्त्यजी का वातापी के मांस को खाकर पचा जाना तथा इल्वल दैत्य से धन लेकर अपने आश्रम को लौट आना और लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से वधूसरा तीर्थ का माहात्म्य कहना ।	२२६
१००	लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से इन्द्र के वज्र के निर्माण के होने की कथा कहना	२३०
१०१	इन्द्र का वृत्रासुर को मारना और दैत्यों का सब जगत् को नाश करने की सम्मति देना	२३१
१०२	कालकेय दैत्योंका तपस्वियों को भक्षण करना व देवताओं का नारायण से विनय करना	२३२
१०३	देवताओं का नारायण की स्तुति करना तथा उनकी आज्ञा से अगस्त्यजी के पास जाकर उनकी स्तुति करना ।	२३४
१०४	लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से विन्ध्याचल के बढ़ने का हेतु कहना तथा देवताओं की प्रार्थना से अगस्त्यजी का समुद्र के पास जाना ।	२३५
१०५	अगस्त्यजी का समुद्र को पीना तथा देवताओं का दैत्यों को मारना	२३६
१०६	लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से समुद्र के पूर्ण होने में, राजा सगर के सन्तति होने की कथा कहना ।	२३८
१०७	राजा सगर की अश्वमेध यज्ञ का वृत्तान्त तथा उनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रों की कथा ।	२३९
१०८	हिमालय पर्वत पर गङ्गाजी के दर्शनों की इच्छा से भगीरथ का तपस्या करना तथा उनसे वरदान पाकर शिवजी की तपस्या करना और उनसे वरदान मांगना ।	२४३
१०९	गङ्गा का स्वर्ग से गिरना, शिवजी का मस्तक पर धारण करना, भगीरथ का अपने पुरुषों के तारने को लेजाना और गङ्गाजी का समुद्र को जल से भर देना ।	२४४
११०	युधिष्ठिर की तीर्थयात्रा, कौशिकी नदी पर विश्वामित्र के आश्रम में विभाण्डकऋषि की उत्पत्ति तथा राजा लोमपाद के देश में वृष्टि न होने के कारण लोमपाद द्वारा ऋष्यशृङ्ग को लाने के लिये वेश्याओं को भेजना ।	२४५
१११	राजा लोमपाद की आज्ञा से वृद्धा वेश्या को शृङ्गऋषि के चित्तको अपने वश में करना ।	२४८
११२	ऋष्यशृङ्ग का अपने पिता से वेश्या के आने का वृत्तान्त कहना ।	२५०
११३	विभाण्डकऋषि का अपने पुत्र को समझाना तथा वेश्यापुत्री का ऋष्यशृङ्ग को राजा अङ्ग के देश में ले आना, इन्द्र का वर्षा करना और राजा का अपनी शान्ता पुत्री का विवाह ऋष्यशृङ्ग से करदेना ।	२५२
११४	युधिष्ठिर का कौशिकी आदि तीर्थों में स्नान करके महेन्द्र पर्वत को जाना ।	२५४
११५	राजा युधिष्ठिर का महेन्द्र पर्वत पर बसना और अकृतव्रण का परशुरामजी की कथा वर्णन करना ।	२५५
११६	जमदग्नि का रेणुका से विवाह होना और उससे परशुरामजी आदि पाँच पुत्रों का उत्पन्न होना, परशुरामजी का पिता की आज्ञा से अपनी माता को मार डालना तथा वरदान पाना और कार्तवीर्य का वध करना तथा उनके पुत्रों से जमदग्निजी का मारा जाना ।	२५८
११७	परशुरामजी का विलाप करना, प्रतिज्ञा करके समस्त पृथ्वी के क्षत्रियों को इक्कीस बेर मारना, महेंद्र पर्वत पर युधिष्ठिर को दर्शन देना तथा युधिष्ठिर का दक्षिण दिशा की यात्रा करना ।	२६०
११८	युधिष्ठिर का महेंद्र पर्वत से चलकर दक्षिण देश के तीर्थों की यात्रा करना तथा प्रभासतीर्थ में पांडवों से मिलने को यादवों का आना ।	२६१
११९	पांडवों के वनवास के दुःख को देखकर, यादवों का दुःखी होना तथा बलदेवजी का दुःखी होकर अत्यंत संताप करना ।	२६३
१२०	सात्यकी का अनेक प्रकार से दुर्योधन को जीतने का उपाय कहना, यादवोंका पांडवों से विदाहोना तथा पांडवों का पयोष्णी नदी पर वास करना ।	२६४

अध्याय विषय पृष्ठ

१२१ राजा युधिष्ठिर का पयोष्णी, नर्मदा नदी और वैडूर्य पर्वत की यात्रा करना तथा लोमश ऋषि का उन तीर्थों का माहात्म्य और उनमें यज्ञ होने की कथा वर्णन करना २६७

१२२ लोमशऋषि का युधिष्ठिर से च्यवन ऋषि को सुकन्या भार्या मिलनेका वृत्तांत कहना। २६८

१२३ अश्विनीकुमारों का सुकन्या से यह कहना कि तू ऋषिको छोड़कर हमको अपना पति कर ले, सुकन्या का निषेध करना पुनः अश्विनीकुमारों का च्यवनजी को युवा कर देना तथा च्यवनजी का उनसे यज्ञ में उनका अमृत पिलाने का नियम करना। २७०

१२४ च्यवनऋषि का राजा शर्याति को यज्ञ कराना, उसमें अश्विनीकुमारों को अमृत पीने को देना, इन्द्र का निषेध करना और च्यवनऋषि को मारने के लिये वज्र उठाना, च्यवनजी का इन्द्र की भुजा को स्तम्भित कर देना तथा इन्द्र को मारने के लिये कृत्या को प्रकट करना। २७२

१२५ इन्द्र का च्यवनऋषि से अपराध क्षमा कराना, च्यवनऋषि का इन्द्र के भय को दूर करना और यज्ञ समाप्त करके वन को जाना तथा लोमशऋषि का युधिष्ठिर से वहाँ के तीर्थों का माहात्म्य वर्णन करना। २७३

१२६ लोमशऋषि का युधिष्ठिर से मान्धाता का जन्म तथा यज्ञ करने का वृत्तांत कहना। २७५

१२७ लोमशऋषि का युधिष्ठिर से राजा सोमक के पुत्र उत्पन्न होने का वृत्तांत कहना। २७७

१२८ सोमकका ऋत्विज्की आज्ञासे अपने पुत्रका यज्ञमें आहुत देना, धूम्र के सूंघनेसे रानियोंके सौ पुत्र होना, राजा और ऋत्विज् का मरकर नरक भोगना तथा शुभगति पाना। २७९

१२९ राजा युधिष्ठिर का लोमशऋषि के साथ अनेक तीर्थों का माहात्म्य सुनते हुए तीर्थ-यात्रा करना। २८०

१३० युधिष्ठिर का अनेक तीर्थों की यात्रा करना, लोमशऋषि का प्रत्येक तीर्थ का नाम तथा माहात्म्य वर्णन करना। २८२

१३१ लोमशऋषि का युधिष्ठिरसे इन्द्रद्वारा राजा उशीनरके धर्म की परीक्षाका वर्णन करना। २८३

१३२ लोमशऋषि का युधिष्ठिर से अष्टावक्र के जन्म, तथा जनक के यज्ञ में जाने का वृत्तान्त कहना। २८५

१३३ अष्टावक्र का अपने मामा के साथ जनक के यज्ञ में जाना, द्वारपाल तथा राजा जनक से प्रश्नोत्तर होना। २८७

१३४ राजा जनक के यज्ञ में अष्टावक्र और बन्दी का शास्त्रार्थ द्वारा बन्दी को हराना तथा समुद्र में डुबवा देना। २९०

१३५ लोमशऋषि का अनेक तीर्थों में स्नान करने का माहात्म्य और भरद्वाज के पुत्र यवक्रीत का वरदान वर्णन करना। २९६

१३६ यवक्रीतका रैभ्य ऋषि की पुत्रवधू से भोग करना, रैभ्य ऋषि के क्रोध से उत्पन्न राक्षस एक स्त्री-पुरुष द्वारा यवक्रीत का मारा जाना। २९९

१३७ भरद्वाजऋषिका पुत्रशोकमें विलाप करना, रैभ्य ऋषिको शापदेना व अपने प्राण त्यागना ३००

१३८ राजा बृहद्द्युम्न का यज्ञ कराने के लिये रैभ्य के दोनों पुत्रों को बुलाना, रैभ्य का ज्येष्ठ पुत्र के हाथ से मारा जाना, रैभ्य के छोटे पुत्र का तपस्या करना और वरदान से भरद्वाज, यवक्रीत और रैभ्य ऋषि का जी उठना। ... ३०२

१३९ लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से अनेक पर्वतीय तीर्थों का व्याख्यान करना और युधिष्ठिर का भीमसेन को द्रौपदी की रक्षा करने की आज्ञा देना। ... ३०४

१४० युधिष्ठिर और भीमसेन का आपस में पर्वतीय तीर्थों की यात्रा करने के लिये यह सलाह करना कि कौन चलने योग्य है, कौन नहीं है और फिर गंधमादनपर्वत की यात्रा करना। ३०५

१४१ युधिष्ठिर का गंधमादनपर्वत की यात्रा करना तथा मार्ग में अर्जुन के वियोग में अनेक प्रकार की बातें कहकर दुःखी होना। ३०७

१४२ युधिष्ठिर का अनेक तीर्थों पर होते हुए गंधमादनपर्वत की यात्रा करना तथा लोमशऋषि का युधिष्ठिर से नरकासुर दैत्य के मारे जानें और विष्णु के बाराह अवतार लेकर पृथ्वी के उठाने की कथा वर्णन करना। ३०८

अध्यस्य	विषय	पृष्ठ
१४३	पाण्डवों का अनेक पर्वत, नदी आदि देखते हुए गंधमादनपर्वत के समीप पहुँचना तथा वहां आँधी और मेह का आना।	३१२
१४४	द्रौपदी का थककर अचेत होकर गिर पड़ना, युधिष्ठिर का विलाप करना, ब्राह्मणों का युधिष्ठिर को समझाना तथा भीमसेन का घटोत्कचको बुलाना।	३१३
१४५	पाण्डव और ब्राह्मणों का राक्षसों के ऊपर सवार होकर विशालबदरी नाम आश्रम में पहुँचना तथा वहाँ नरनारायणके आश्रम की झांकी करके वहांके वनमें विहार करना।	३१५
१४६	एक सुगंधित कमल के फूल का वायुसे उड़कर द्रौपदीके पास आ पड़ना, द्रौपदी का वैसाही फूल लानेके लिये भीमसेनको भेजना, भीमसेनका वन तथा पर्वतोंकी शोभा देखतेहुए फूल लेने जाना और कदलीखण्डमें पहुंचकर हनुमान्‌जीसे वार्तालाप होना।	३१७
१४७	भीमसेन तथा हनुमान्‌जी का विवाद होना, भीमसेन का हनुमान्‌जीका पराक्रम देखकर भयभीत होना और हनुमान्‌जी का भीमसेन से अपना-अपना वृत्तांत कहना।	३२२
१४८	हनुमान्‌जी का भीमसेन से सीताहरण की कथा कहना तथा उसे उस ओर न जाने का उपदेश देना।	३२४
१४९	हनुमान्‌जी का भीमसेन से चारों युगों का धर्म पृथक् पृथक् वर्णन करना।	३२५
१५०	हनुमान्‌जी का भीमसेन को अपना स्वरूप दिखाना तथा उससे ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का धर्म वर्णन करना।	३२८
१५१	हनुमान्‌जी का भीमसेन से मिलकर वरदान देना तथा उसे राह बतलाकर अंतरधान हो जाना।	३३१
१५२	भीमसेन का अनेक वन, नदी तथा सरोवरों को देखते हुए उस नदी के तट पर पहुँचना जहाँ सुगंधित कमल लगे हुए थे।	३३२
१५३	भीमसेन का कमलिनी, पुष्करिणी की शोभा देखना तथा वहाँ के रक्षकों का भीमसेन से पूछना कि तुम कौन हो और किसलिए आये हो।	३३३
१५४	भीमसेन और कमलिनी के रक्षक राक्षसों से विवाद होना, भीमसेन का कमलिनी में विहार करना और कमल तोड़ना तथा राक्षसों को मार कर भगा देना।	३३४
१५५	उल्का आदि बहुत से उत्पातों का होना, उनसे युधिष्ठिर का यह जानना कि कहीं भीमसेन से युद्ध होता है और युधिष्ठिर का समाज-सहित भीमसेन के पास जाना।	३३६
१५६	युधिष्ठिर का कुवेर के धाम को जाने का विचार करना, आकाशवाणी का होना तथा युधिष्ठिर का समाज-सहित नरनारायण के आश्रम को लौट आना।	३३८
१५७	जटासुर दैत्य का युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी को हर ले जाना और भीमसेन का उसको मारना।	३३९
१५८	युधिष्ठिर का नारायण आश्रम से वृषपर्वा ऋषि के आश्रम को जाना तथा वहाँ से गन्धमादनपर्वत की शोभा देखते हुए, आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में पहुँचना।	३४३
१५९	पाण्डवों का आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में पहुँचना और आर्ष्टिषेण का युधिष्ठिर को शिक्षा देना।	३४८
१६०	भीमसेन का पर्वत के शिखर पर जाकर कुवेर के भवन को देखना, वहाँ राक्षसों से युद्ध होना और भीमसेन का मणिमान् आदि राक्षसों को मारना।	३४९
१६१	युधिष्ठिर आदि का भीमसेन के पास जाना, वहाँ कुवेरजी का आना और अपने पाप से छूटने का वृत्तान्त युधिष्ठिर को सुनाना।	३५३
१६२	कुवेरजी का पाण्डवों को शिक्षा देकर अपने भवन को चले जाना और पाण्डवों का उसरात्रि को उसी पहाड़ की चोटी पर वास करना।	३५६
१६३	धौम्य ऋषि का युधिष्ठिर को ब्रह्मलोक आदि दिखाना।	३५९
१६४	पाण्डवों का हिमालय पर्वत पर रहना और अर्जुन का अस्त्रविद्या सीखकर इन्द्रलोक से यात्रा करना।	३६१
१६५	अर्जुन का इन्द्रलोक से गन्धमादन पर्वत पर आना और धौम्य ऋषि तथा पाण्डवों से मिलना।	३६२

अध्याय विषय पृष्ठ

१६६ इन्द्र का पाण्डवों के पास आना और उनको काम्यक वन को लौट जाने का उपदेश करके स्वर्ग को चले जाना। ३६३
१६७ अर्जुन का युधिष्ठिर से किरातरूपी महादेवजी से युद्ध होने तथा उनसे पाशुपत अस्त्र मिलने की कथा कहना। ३६४
१६८ अर्जुन का युधिष्ठिर से अपने स्वर्ग में रहने तथा निवात कवच दानवों से युद्ध करने के लिये जाने का वृत्तान्त कहना। ३६७
१६९ अर्जुन का निवात कवच दैत्यों के नगर में पहुँचना तथा उन दैत्यों से युद्ध करना। ... ३७१
१७० निवात कवच दैत्यों का अर्जुन से युद्ध करना तथा उस युद्ध में अर्जुन के हाथ से सहस्रों दैत्यों का मारा जाना। ३७२
१७१ अर्जुन का निवात कवच दानवों से युद्ध करने तथा उनको मारकर यमलोक में भेजना। ३७४
१७२ अर्जुन का सम्पूर्ण निवात कवच दैत्यों को मारकर उनकी पुर की शोभा देखना और इन्द्रपुरी को लौटना। ३७५
१७३ अर्जुन का हिरण्यपुरनाम दानवों के नगर को गिराना और दानवों को मारकर मातलिसहित इन्द्रपुरी को लौटकर चला जाना। ३७७
१७४ अर्जुन का युधिष्ठिर से अपने इन्द्रपुरी से गन्धमादनपर्वत पर आने का वृत्तांत कहना। ३८१
१७५ अर्जुन का युधिष्ठिर को स्वर्ग से लाये हुए अस्त्रों को दिखलाना और नारदजी का निषेध करना। ३८२
१७६ भीमसेन आदि चारों भाइयों का युधिष्ठिर से दुर्योधन के समीप वन को चलने के लिये कहना और युधिष्ठिर का सबसे बिदा होकर ब्राह्मणों-सहित वह से चलना। ३८३
१७७ पाण्डवों का वृषपर्वा तथा नारायण आश्रम को जाना, वहाँ से सरस्वती के तट पर आकर वास करना। ३८५
१७८ भीमसेन का वन में क्रीड़ा करने को जाना, एक अजगर का मिलना, अजगर का भीमसेन की बाँह पकड़ लेना, उससे भीमसेन का मोहित होना। ... ३८६
१७९ भीमसेन का सर्प से पूछना कि तू कौन है तथा विलाप करना, युधिष्ठिर का अनेक उत्पात देखकर भीमसेन को ढूँढ़ने जाना तथा सर्प से पकड़ा हुआ देखना। ... ३८८
१८० युधिष्ठिर और सर्प का आपस में प्रश्नोत्तर होना। ३९१
१८१ युधिष्ठिर का सर्प से अनेक प्रश्न पूछना, सर्प का दिव्य देह धारण करके स्वर्ग को चले जाना और युधिष्ठिर भीम तथा धौम्यसहित अपने आश्रम को लौट आना। ३९४
१८२ पाण्डवों का वर्षाकाल में पर्वतों पर रहना और कार्त्तिकपूर्णिमा में काम्यक वन को चलना। ३९७
१८३ पाण्डवों का काम्यक वन में पहुँचकर आये हुए श्रीकृष्णजी तथा सत्यभामा से वार्तालाप करना और मार्कण्डेय ऋषि का युधिष्ठिर के पूछने पर जीवात्मा के कर्मानुसार सुख और दुःख भोगने का वृत्तांत कहना। ३९८
१८४ मार्कण्डेयजीका पाण्डवोंसे ब्रह्मघाती हैहयदेशके एक राजाका इतिहास वर्णनकरना। ४०४
१८५ मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से राजा वैन्य के यज्ञ में अत्रिऋषि के जाने तथा धन लाने का वृत्तांत कहना। ४०५
१८६ मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से सरस्वती और तार्क्ष्य ऋषि के आपस में प्रश्नोत्तर होने का वृत्तांत कहना। ४०८
१८७ मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से वैवस्वतमनु का उपाख्यान कहना। ४११
१८८ मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से महाप्रलय का वृत्तांत कहना। ४१४
१८९ नारायण का मार्कण्डेयजी से अपनी आत्मा का स्वरूप वर्णन करना तथा मार्कण्डेयजी का वही वृत्तांत युधिष्ठिर से कहना। ४२०
१९० मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से कलियुग और कल्की अवतार वर्णन करना। ... ४२३
१९१ मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से कल्की अवतार की कथा कहके धर्म पर आरूढ़ रहने की शिक्षा करना। ४२८

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१९२	मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिरसे ब्राह्मणों का माहात्म्य वर्णन करनेमें राजा परीक्षित् के पुत्र राजा शल, दल तथा वामदेवजी का संवाद कहना।	४३०
१९३	मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से वकऋषि तथा इन्द्र का संवाद वर्णन करना।	४३६
१९४	मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिर से राजा शिवि का माहात्म्य वर्णन करना।	४३८
१९५	मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिर से दान की प्रशंसा में राजा ययाति का चरित्र वर्णन करना।	४३९
१९६	मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिर से वृषदर्भ और सेदुकनामी राजाओं की कथा तथा इन्द्र और अग्नि द्वारा राजा शिवि के धर्म की परीक्षा का वृत्तांत कहना।	४४०
१९७	मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अष्टक, प्रतर्दन, वसुमना तथा शिवि के स्वर्ग जाने का वृत्तांत कहना।	४४३
१९८	पाण्डवों का मार्कण्डेयजी से पूछना कि आपसे बड़ी आयु भी किसी की है और मार्कण्डेयजी का राजा इन्द्रद्युम्न की कथा कहना।	४४६
१९९	मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से दानधर्म वर्णन करना।	४४८
२००	मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से धौन्धुमार उपाख्यान में उत्तंकऋषि का वृत्तांत कहना।	४५६
२०१	इक्ष्वाकुवंशी राजा बृहदश्वकी वंशावली तथा धुन्धु दैत्यको मारने की आज्ञा का वर्णन	४५८
२०२	धुन्धु दैत्य के पिता मधुकैटभ दैत्यों का उत्पन्न होना तथा मारा जाना।	४५९
२०३	धुन्धु दैत्य का वरदान पाना तथा राजा कुवलाश्व के हाथ से मारा जाना।	४६१
२०४	पतिव्रता का माहात्म्य तथा माता पिता की सेवा का फल वर्णन करना।	४६३
२०५	कौशिक ब्राह्मण तथा एक पतिव्रता स्त्री का संवाद वर्णन।	४६५
२०६	कौशिक ब्राह्मण का मिथिलापुरीमें आकर धर्म व्याधके शिष्टाचार धर्मका वर्णन करना	४६७
२०७	धर्मव्याध का कौशिक से पूर्व जन्म के कर्मों की प्रबलता कहना।	४७४
२०८	धर्मव्याध का कौशिक से धर्म की सूक्ष्मगति और कर्मानुसार फल का कहना।	४७६
२०९	धर्मव्याध का कौशिक ब्राह्मण से इन्द्रियों के स्वरूप, विषय तथा विषयोंका फल कहना।	४७९
२१०	पञ्चमहाभूतों के पृथक् पृथक् गुण तथा इंद्रियों के निरोधन करने, न करने का फल।	४८१
२११	सतोगुण आदि तीनों गुणों का वृत्तांत तथा तीनों गुण रखनेवाले पुरुषों का लक्षण।	४८२
२१२	धर्मव्याध का कौशिक ब्राह्मण से प्राणादि वायु, अग्नि तथा जीवात्मा का हाल कहना।	४८३
२१३	धर्मव्याधका कौशिकको अपने घर लेजाना तथा माता-पिता की सेवाका महत्त्व बताना।	४८६
२१४	धर्मव्याध का ब्राह्मण को माता पिता की सेवा का उपदेश देना तथा अपने पूर्व जन्म की कथा कहना।	४८८
२१५	धर्मव्याध का अपना पूर्वजन्म कहना तथा ब्राह्मण का माता पिता की सेवा करना।	४९०
२१६	मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अङ्गिरा ऋषि के अग्निरूप होजाने का वृत्तान्त कहना।	४९२
२१७	मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अङ्गिरा की संतान का वृत्तान्त कहना।	४९३
२१८	मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से वृहस्पति की संतान का वृत्तान्त कहना।	४९४
२१९	मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से उक्थ अग्नि के पुत्रों का वृत्तान्त कहना।	४९५
२२०	मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अग्नियों की उत्पत्ति आदि का वृत्तान्त कहना।	४९७
२२१	अग्नि की वंशावली और उसका जल में प्रविष्ट होकर फिर प्रकट होना।	४९९
२२२	कार्त्तिकेय के जन्म की कथा और इन्द्र का एक स्त्री को केशी दैत्य से बचाना।	५०१
२२३	इन्द्र का ब्रह्माजी से देवसेना का पति पूछना, अग्नि का सप्तऋषियों की स्त्रियों पर कामासक्त होना।	५०२
२२४	स्वाहा का अग्नि के साथ विहार करना और उससे कार्त्तिकेय का जन्म होना।	५०४
२२५	स्कन्द की उत्पत्ति से उत्पातों का होना, सप्तऋषियों का अपनी स्त्रियों को त्यागना, देवताओं का स्कन्द के मारने के लिये लोकमाताओं का भेजना, उनका स्कन्द की शरण में जाना।	५०६
२२६	इन्द्र का स्कन्द से युद्ध में हारकर स्कन्द की शरण जाना, स्कन्द का इन्द्र को अभय कर देना।	५०८

अध्याय विषय पृष्ठ
२२७ स्कन्द के कुमार और कन्याओं के उत्पन्न होने और माताओं का लोक में पूज्य होने का वृत्तान्त। ५०९
२२८ स्कन्द का सेनापति होने का अभिषेक होना और देवसेना से विवाह होना। ... ५१०
२२९ मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से स्कन्दरूपी बालग्रहों का वृत्तान्त कहना। ... ५१३
२३० स्वाहा और स्कन्द का संवाद होना, स्कन्द से दानवों का युद्ध में हार जाना। ... ५१७
२३१ मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से स्कन्दजी के नाम कहना और स्कन्दजी की स्तुति करना। ५२२
२३२ पति के वश करने का प्रश्न और पति की सेवा का वृत्तान्त कहना। ५२४
२३३ द्रौपदी का सत्यभामा से पति को वश में करने का उपाय बतलाना। ५२७
२३४ द्रौपदी और सत्यभामा का परस्पर संवाद व श्रीकृष्णजी का द्वारका-गमन। ... ५२८
२३५ ब्राह्मण द्वारा पाण्डवों का वृत्तान्त सुन धृतराष्ट्र का दुःखी होना। ५२९
२३६ दुर्योधन से कर्ण, शकुनि का पाण्डवों को अपना वैभव दिखा, उनको दुःखित करने के लिये कहना। ५३२
२३७ दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन का आपस में सलाह कर द्वैतवन में जाने का बहाना सोचना। ५३३
२३८ दुर्योधन का राजा धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर बड़े वैभव और समाज के साथ द्वैतवन का जाना। ५३४
२३९ दुर्योधन का घोषग्रामों में जाकर गौओं की संख्या कर, वहां से द्वैतवन में पहुँचना। ५३६
२४० दुर्योधन का गन्धर्वों से युद्ध और रण-क्षेत्र से विरथ हो कर्ण का भागना। ... ५३७
२४१ कौरवों का गंधर्वों के बंधन में आना व सैनिकों का पाण्डवों की शरण जाना। ... ५३९
२४२ गंधर्वों से दुर्योधन को छुड़ाने के लिये भाइयों के प्रति युधिष्ठिर का आदेश। ... ५४०
२४३ भीमादिक पाण्डवों का युधिष्ठिर की आज्ञा से गंधर्वों से युद्ध करने जाना और युद्ध का प्रारम्भ होना। ५४१
२४४ पाण्डवों का गंधर्वों से युद्ध होना और गंधर्वों के राजा चित्रसेन का अर्जुन के पास आना। ५४२
२४५ चित्रसेन-पाण्डव-संवाद तथा दुर्योधन का छूटना व लज्जित होना। ... ५४४
२४६ दुर्योधन का युधिष्ठिर से विदा होकर राह में ठहरना और वहाँ आकर कर्ण का मिलना। ५४५
२४७ दुर्योधन का कर्ण से अपने पकड़े जाने तथा पाण्डवों के युद्ध करने का वृत्तांत कहना। ५४६
२४८ दुःशासन को राज्य देकर मरने पर उतारू, दुर्योधन को कर्ण का समझाना। ५४७
२४९ कर्ण का दुर्योधन को समझाना और दुर्योधन का देहत्याग करने से अपना मन न हटाना। ५५०
२५० दैत्यों का यज्ञ की कृत्या के द्वारा दुर्योधन को पाताललोक में बुलवाना। ... ५५०
२५१ दुर्योधन को समझाकर, दैत्यों का उसके स्थान पर भिजवा देना। ... ५५२
२५२ भीष्मकृत निंदा सुन, अपना पराक्रम दिखाने के लिये कर्ण का दिग्विजय प्रस्थान। ... ५५५
२५३ कर्ण का सब पृथ्वी को जीतकर, राजाओं से कर लेकर, हस्तिनापुर को आना। ५५६
२५४ दुर्योधन का वैष्णवयज्ञ करने के लिये शिल्पियों से सुवर्ण का हल बनवाना। ... ५५८
२५५ यज्ञ समाप्त होने पर सबका विदा होना और दुर्योधन का नगर में आना। ... ५५९
२५६ कर्ण का अर्जुन के बध की प्रतिज्ञा करना, उसे सुनकर युधिष्ठिर का शोच करना। ५६१
२५७ द्वैतवन के मृगों का युधिष्ठिर से वनांतर जाने की स्वप्न में प्रार्थना करना व उनको काम्यकवन में जाना। ५६२
२५८ व्यासजी का पाण्डवों को अनेक धर्मों का उपदेश तथा दान की प्रशंसा करना। ... ५६३
२५९ व्यासजी का युधिष्ठिर से मुद्गल ब्राह्मण के एक द्रोण धान के दान की कथा कहना। ५६५
२६० देवदूत से स्वर्ग के दोष-गुण सुनकर मुद्गल का स्वर्ग को न जाकर निर्वाणपद को पाना। ५६८
२६१ दुर्वासा ऋषि का शिष्यों-सहित आना व दुर्योधन का उनकी सेवा कर उनसे वरदान पाना। ५७१

अध्याय विषय पृष्ठ
२६२ दुर्वासा का पाण्डवों के पास जाना तथा श्रीकृष्णजी का पाण्डव-रक्षार्थ आना । ५७२
२६३ पाण्डवों के स्थान में आकर राजा जयद्रथ का दूत द्वारा द्रौपदी का हाल पूछना । ५७५
२६४ दूत का द्रौपदी के पास जाकर उसके पति और पिता का नाम पूछना । ... ५७६
२६५ द्रौपदी का कोटिकास्य दूत से अपने कुल का वृत्तान्त कह उन सबका निमन्त्रण करना । ५७७
२६६ जयद्रथ का द्रौपदी के पास जाकर अपनी भार्या होने के लिये प्रार्थना करना । ५७८
२६७ जयद्रथ का द्रौपदी को हर ले जाना और धौम्य पुरोहित का उसके पीछे पीछे जाना । ५७९
२६८ अहेर से लौटते हुए पाण्डवों का द्रौपदी-हरण का हाल सुन जयद्रथ से युद्ध करने जाना । ५८१
२६९ द्रौपदी का जयद्रथ से पाँचो पाण्डवों का वृत्तांत कहना और पाण्डवों का जयद्रथ की सेना को घेर लेना । ५८३
२७० पाण्डवों के युद्ध से जयद्रथ का भागना व भीमसेन का उसका पीछा करना । ५८५
२७१ भीमग्रस्त जयद्रथ का युधिष्ठिरसे निर्मुक्त होकर हरिद्वारमें जा शिव से वरदान पाना । ५८८
२७२ राजा युधिष्ठिर का मार्कण्डेयजी से अपने मन्दभाग्य के विषय में पूछना । ... ५९२
२७३ रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और सीता तथा वैश्रवण के जन्म की कथा । ... ५९३
२७४ रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, खर और शूर्पणखा की तपस्या तथा वरदान पाने की कथा । ५९४
२७५ रावणार्दित देवताओं का ब्रह्माजी की आज्ञा से रीछ और वानरों में अवतार लेना । ५९६
२७६ राम-वनवास, भरत-शोक, शूर्पणखा के कारण खर-दूषणादि वध । ... ५९७
२७७ रावणप्रेरित कञ्चनमृगरूपधारी मारीच का वध और सीता-हरण की कथा । ... ६००
२७८ रावण-मारित जटायु से सीताहरण का हाल सुन लक्ष्मण-समेत राम का दक्षिण दिशा में जाकर कबंध को मारना । ६०३
२७९ राम सुग्रीवकी मित्रता, वालिवध तथा त्रिजटाका स्वप्न सुनाकर सीताको धैर्य देना । ६०५
२८० भार्या होने की प्रार्थना करते हुए रावण का सीता के कठिन उत्तर देने से अन्तर्धान हो जाना । ६१०
२८१ सुग्रीव प्रेषित हनुमान्जीका सीताकी खबर लाकर रामचन्द्रजीसे सब वृत्तान्तकहना । ६११
२८२ वानरी सेना-सहित रामचन्द्रजी का सेतु बाँधकर पार उतरना तथा विभीषण का मिलाप । ६१५
२८३ रावण का दुर्गरचना और रामचन्द्रजी का लङ्का पर चढ़ाई कर युद्ध करना । ... ६१८
२८४ रामचन्द्र से रावण का, लक्ष्मण से इन्द्रजीत तथा वानरों से राक्षसों का परस्पर युद्ध होना । ६२०
२८५ प्रहस्त और धूम्राक्ष का बध तथा कुम्भकर्ण का युद्धार्थ संग्राम में आना । ... ६२१
२८६ कुम्भकर्ण और दूषणबन्धुवों का बध । ६२३
२८७ मेघनाद के समर में नागपाश से बँधे हुए राम, लक्ष्मण का पृथ्वी पर गिर पड़ना । ६२४
२८८ मेघनाद का बध सुनकर रावण का युद्ध करने को तैयार होना । ६२५
२८९ रामचन्द्र और रावण का युद्ध तथा रावण का मारा जाना । ६२७
२९० विभीषण को राज्य देकर श्रीरामचन्द्रजी का अयोध्या में आकर राज्य करना । ... ६२९
२९१ मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर को समझाकर उनका शोक दूर करना । ६३२
२९२ राजा अश्वपति का संतानार्थ यज्ञ, सावित्री उत्पत्ति तथा सावित्री का पति ढूँढ़ने निकलना । ६३३
२९३ सावित्री का सत्यवान् को अपना पति बरना तथा नारदजी का सत्यवान् को अल्पायु बता विवाह का निषेध करना और सावित्री का न मानना । ६३६
२९४ सावित्री का सत्यवान्के साथ विवाह होना और उसका सेवासे सबको प्रसन्न करना । ६३८
२९५ सावित्री का पति के मरने को जानकर व्रत करना और उसी अवस्था में पति के साथ वन को जाना । ६३९

अध्याय विषय पृष्ठ
२९६ सत्यवान् का शिरपीड़ावश सावित्री की गोद में सो जाना, यमराज का उसके प्राण निकालना, सावित्री का यम को प्रसन्न कर पाँच वरदान लेना। ६४१
२९७ सत्यवान् के न आने से व्याकुल हुए द्युमत्सेन को ऋषियों का समझाना फिर सत्यवान् का आ जाना और सावित्री का यमराज से वरदान पाने का हाल कहना। ६४८
२९८ राज्यप्राप्त द्युमत्सेन का वृत्तान्त सुन राजा युधिष्ठिर का शोक-रहित होकर काम्यक वन में बसना। ६५१
२९९ इन्द्र का कर्ण के कुण्डल तथा कवच भिक्षा में माँगने का विचार करना, सूर्य का उसको जानकर कर्ण को समझाना और कर्ण का कुण्डल देने का आग्रह करना। ६५२
३०० सूर्य का कर्ण से अनेक बातें कहकर यह उपदेश करना कि तू इन्द्र को कवच-कुण्डल मत देना। ६५४
३०१ कर्ण का सूर्य से कहना कि मैं इन्द्र को भिक्षा माँगने पर अपने प्राण भी दे सकता हूँ, तब सूर्य का कहना कि इन्द्र को कवच-कुण्डल दो, तो उससे शक्ति ले लेना। ... ६५५
३०२ राजा कुन्तिभोज के पास एक ब्राह्मण का आना, राजा का पृथा को उसकी सेवा में नियुक्त करना। ६५६
३०३ पृथा का ब्राह्मण की सेवा अङ्गीकार कर, अपनी सेवा से ब्राह्मणको प्रसन्न करना। ... ६५७
३०४ दुर्वासा का पृथा की सेवा से प्रसन्न होकर उसे देवताओं को बुलाने का मन्त्र देना। ६५९
३०५ कुन्ती का सूर्य को मन्त्र से बुलाना, सूर्य की सङ्गम करने की इच्छा देख, कुन्ती का निषेध करना। ६६०
३०६ सूर्य का कुन्ती से सङ्गम और कुण्डल-कवचसहित पुत्र उत्पन्न होना तथा कन्या होने का वरदान देना। ६६२
३०७ कुन्ती के पुत्र उत्पन्न होना तथा कुन्ती का उसको एक मञ्जूषा में रखकर बड़ा विलाप करके अश्वनदी में बहा देना। ६६३
३०८ धृतराष्ट्र के सूत अधिरथ का स्त्री-सहित गङ्गा-स्नान को जाना, वहाँ उनको वह मञ्जूषा मिलनी, उसमें से कर्ण को निकालकर पुत्र-भाव से पालना तथा कर्ण का बड़ा होकर अस्त्र-विद्या सीखना और महादानी होना। ६६५
३०९ कर्ण का इन्द्र को कुण्डल-कवच दे अमोघ शक्ति लेना तथा पाण्डवों का द्वैतवन को जाना। ६६६
३१० मृग के सींग में अरणी काष्ठ का उलझकर चला जाना तथा पाण्डवों का उस मृग के मारने को जाना ६६९
३११ पाण्डवों का भूख-प्यास के मारे एक पेड़ के नीचे बैठ जाना, वहां से चारों छोटे भाइयों का बारी-बारी से पानी लेने जाना तथा उनका पानी पीकर मर जाना, फिर युधिष्ठिर का वहाँ जाना। ६७०
३१२ युधिष्ठिर का विलाप करना और यक्ष से उसका प्रश्नोत्तर होना तथा पाण्डवों का सञ्जीव होना। ६७२
३१३ यक्ष का युधिष्ठिर को अपना परिचय देना, तीन वरदान दे अन्तर्धान हो जाना। ... ६८२
३१४ पाण्डवों का सब साथी ब्राह्मणों को विदा कर गुप्त वास करने के लिये विचार करना। ६८४
३१५ वनपर्व की कथा सुनने तथा कहने का माहात्म्य। ६८६

इति।

श्री मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग विद्यालयीय पुस्तकालय
क्र० सं०............
दि०सं०...............
अस्सी, वाराणसी ।

श्रीगणेशाय नमः ।

❀ महाभारत भाषा ❀

वनपर्व ।

दो० लम्बोदर गण ईश के, चरण चारु चित लाय ।
पदपङ्कज गुरुदेव के, बन्दौं नितप्रति ध्याय ॥
सो० अज अकाम अविकार, अघमर्षण जेहि कहत सब ।
बन्दि ताहि सुप्रकार, वनपर्वहि भाषा करहुँ ॥

पहिला अध्याय ।

पाण्डवों का वनको जाना उनके पीछे पुरवासियों का चलना पाण्डवों का उनको सौगन्द देकर लौटाना और एक बड़के पेड़के नीचे ब्राह्मणों सहित वास करना ।

सभापर्व में पाण्डवोंको वनवास दिये जानेका हाल सुनकर राजा जनमेजय ने पूछा कि हे वैशंपायनजी ! हमारे पुरुषा पाण्डवों ने उस दुष्ट दुर्योधन और उसके मन्त्रियों के छल से कोपित होकर और जूये में हार उनके कहेहुए खोटे वचनोंको जो बड़े वैरके उत्पन्न करनेवाले थे सुनकर वनमें चलेजाने पर क्या किया १ । २ और वहां वे इन्द्रके समान तेजस्वी होनेपर अकस्मात् ऐश्वर्य के चलेजानेके कारणसे दुःखी होकर क्योंकर रहनेलगे ३ उनके साथ कौन कौन मनुष्य गये क्या क्या उन्होंने काम किये कहां कहां बसे और क्या क्या खाते पीते रहे ४ हे महाराज ! उन्होंने बारह वर्ष वनमें क्योंकर बिताये ५ और वह द्रौपदी जो कि समग्र स्त्रियों में श्रेष्ठ, पतिव्रता, सत्यवादिनी और दुःख सहने के योग्य न थी क्योंकर उनके साथ वनमें रही मुझको यह सब कथा कृपा करके विस्तारपूर्वक सुनाइये पाण्डवोंकी कथाको सुन सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है ६ । ८ वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय ! दुर्योधन और उसके मन्त्रियों

से कोपित कियेहुए पाण्डव जूये में हारकर अपने शस्त्र लियेहुए द्रौपदी सहित हस्तिनापुरके बाहर निकलकर उत्तरदिशाकी ओर चलदिये ९।१० उनके पीछे २ इन्द्रसेन आदि पंद्रह सेवक रथों में स्त्रियोंको लियेहुए गये ११ और पुरवासी उनको वनको गया हुआ जानकर महादुःखी हुए और भीष्म विदुर द्रोणाचार्य और कृपाचार्य की निन्दा परस्पर कर २ के निर्भय होकर कहने लगे कि अब हम सबका कुटुम्ब और गृहसहित नाश होजायगा १२।१३ क्योंकि जिस देशका राज्य यह लोभी अभिमानी नीच और निर्दयी दुर्योधन जो गुरुसे द्वेषरखनेवाला और सुहृद और आचार विचार को त्यागनेवाला है शकुनी कर्ण और दुःशासन आदि अपने पापी साथियों से रक्षित होकर करना चाहता है उस देश में धर्म के नाश होनेसे हमलोगोंको सुख क्योंकर मिलसक्ता है यह कौरवोंका कुल भी नष्ट होगा इससे यह सबसे अच्छाहै कि हमलोगभी इसके राज्यको छोड़कर उन पाण्डवोंके साथ चले चलें जो दयावान्, उदार, शत्रु और इन्द्रियोंको जीतनेवाले, लज्जावान्, कीर्तिमान् और धर्मात्माहैं १४।१८ वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय! सब पुरवासी उक्तरीतिसे कहकर पाण्डवोंके पास गये और हाथ जोड़कर उनसे कहनेलगे १९ कि आपका कल्याण हो हम सब दुःखियोंको छोड़कर आपलोग कहां जाते हैं हम सबभी आपहीके साथ चलेंगे २० हमलोग यह सुनकर कि आपको निर्दयी शत्रुओं ने अधर्म से जीतलिया है महादुःखी हैं आपको हमलोगोंको छोड़ना उचित नहीं है २१ हमलोग आपसे प्रीति मानकर सदा आपकी भलाई चाहा करते हैं इससे आपसे यह चाहते हैं कि हमलोग इस दुष्ट राजा के राज्यमें बसकर नष्ट न होवें २२ क्योंकि जैसे फूलोंकी गन्ध अपने संगसे पृथ्वी जल और वस्त्रादि को गन्धित करदेती है उसी प्रकारसे मनुष्य जैसी संगतिमें बैठताहै वैसेही उसमें गुण होजाते हैं २३।२४ मूढ़ पुरुषकी संगतिसे मोह और साधुकी संगतिसे धर्म उत्पन्न होताहै २५ इससे मनुष्यको ज्ञानी, वृद्ध, तपस्वी, शमपरायण, सत्पुरुष और ऐसों का जिनकी विद्या, कर्म और बुद्धि शुद्धहैं संगति करना चाहिये ऐसोंका सत्संग शास्त्रों से भी उत्तमहै २६।२७ इससे हम सबलोग भी अग्निहोत्र आदि न करके आप ऐसे पुण्यात्माओं के साथ रहकर पुण्यही पावेंगे और पापीके पास रहनेसे पापके सिवाय कुछ और लाभ न होगा २८ नीचों के देखने छूने बात करने और पास बैठनेसे मनुष्यके सब आचार नष्ट होजाते हैं और उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं

होती है २९ किन्तु और नष्ट होजातीहै और मध्यम पुरुषोंके पास बैठने से मध्यम और उत्तम पुरुषों की संगति से उत्तम बुद्धि होजाती है ३० सो जो जो गुण धर्मात्मा विषयहीन और अच्छेलोगोंने लोकाचार और वेदकी रीतिसे कहे हैं वे सब आपमें मौजूदहैं इससे हमलोग अपने कल्याण के लिये आप ऐसे गुणवान् मनुष्योंही के साथ बसना चाहते हैं ३१ । ३२ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हम धन्यहैं जो ब्राह्मण आदि सब प्रजालोग दया और स्नेहके कारण से हम गुणहीनों को ऐसा गुणी बताते हैं ३३ अब मैं अपनी और अपने भाइयों की ओरसे आपलोगोंसे जो कुछ कहूं दया करके उसके विपरीत न कीजिये ३४ भीष्मपितामह, राजा धृतराष्ट्र, विदुरजी, हमारी माता और २ सुहृद्लोग जो हमारे शोकके कारणसे व्याकुल होरहे हैं आपलोग मेरा हित जानकर उनकी रक्षा कीजिये ३५ । ३६ तुम सबको मेरी सौगन्दहै अब लौटजाओ बड़ीदूर चले आये हो मेरीबातको न भूलना इस कामके करने से मैं तुमलोगोंकी ओर से अपना बड़ा सत्कार समझूंगा और यह जानूंगा कि तुमलोगों ने मेरे सबकाम कर दिये ३७ । ३८ वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय ! युधिष्ठिरके उक्तप्रकार से समझाने पर सब पुरवासी हा राजन् ! ऐसा कहकर महादुःखी पाण्डवों से पूछकर अनिच्छासे युधिष्ठिरके गुणों को याद करतेहुए लौट आये ३९ । ४० और पाण्डव उनके लौटनेपर रथोंमें संवार होकर प्रमाणनाम एक बड़के पेड़के समीप जो गङ्गाजीके किनारे था पहुँचे ४१ और जब थोड़ासा दिन रहगया तब उस वृक्षके नीचे गङ्गाके पवित्र जलको स्पर्श करके वास किया ४२ उसदिन रात्रिमें पाण्डवोंने दुःखके कारणसे सिवाय जलके और कुछ आहार नहीं किया उसी समय वहां स्नेहके कारणसे कुछ ब्राह्मणलोग अपनी स्त्री, भाई, बन्धु और शिष्यों सहित पाण्डवों के पास चलेआये युधिष्ठिर उनसे अत्यन्त सुशोभित होगया और उनलोगों ने सन्ध्याके आनेपर उस रमणीक स्थानपर राक्षसोंके फिरनेकी बेलामें अग्नि प्रज्वलित की और श्रुतियों का प्रमाण देदेकर अनेक संवादों से राजाको धैर्य दिया और आनन्दपूर्वक उस रातको बितायदिया ॥ ४३ । ४६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय।

ब्राह्मणों का पाण्डवों के साथ वनको जाने को तैयार होना युधिष्ठिर का निषेध करना और फिर ब्राह्मणों का वनके जानेका आग्रह करना युधिष्ठिर का विकल होना और शौनक का ज्ञान उपदेश करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय ! जब प्रातःकाल हुआ और पाण्डव वनको चलनेलगे तब वे सब ब्राह्मण जो भिक्षा भोजन करनेवाले थे पाण्डवों के आगे चलनेको खड़े होगये उनको देखकर युधिष्ठिर कहने लगा कि महाराज हमलोग इस समयमें राज्यलक्ष्मी और धनहीन हैं १ । २ हमलोग अब वनमें जाकर मांस फल और मूल भोजन करके रहा करेंगे सो वन सर्प कछुये आदि जीवोंसे भरा हुआ होनेके कारणसे बड़ा दूषितहै आपलोगोंको वहां जानेसे बड़ा क्लेश होगा सो ब्राह्मणोंके दुःखी होने से देवता भी दुःखी होते हैं मैं तो मनुष्य हूं आपका क्लेश देखकर मुझपर सहा नहीं जायगा इससे आप लौट जाइये ३ । ४ यह सुनकर ब्राह्मणलोग बोले कि जो गति आपकी होगी सोही हमारी होगी आपको हम धर्मदर्शी और स्नेह करनेवालोंको त्यागना उचित नहीं है ५ ब्राह्मणोंपर तो देवता भी कृपा करते हैं विशेष करके उन ब्राह्मणोंपर तो अवश्यही कृपा करते हैं जो अपने आचारपर चलते हैं ६ युधिष्ठिर बोला कि मैं भी ब्राह्मणोंका परमभक्त हूं परन्तु मैं अब सहायहीन हूं क्योंकि मेरे ये भाईलोग जो फल मूल और मृग मारकर लाते सब शोकके मारे महादुःखी होरहे हैं ७ । ८ और मैं उनको राज्यके जाने और सभा में द्रौपदी के वस्त्रखींचे जाने के महाक्लेश से पीड़ित होने के कारण किसी कामको करने की आज्ञा भी नहीं देसक्ताहूं ९ तब ब्राह्मण बोले कि आप हमलोगों के खाने पीने की ओर से चिन्ता न कीजिये हमलोग आप भीख लाकर आपके साथ रहेंगे १० और आपके कल्याण की चिन्ता में रहकर आपको सुन्दर २ कथा सुनाया करेंगे ११ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि आप सच कहते हैं मैं भी ब्राह्मणों का सत्संग चाहताहूं परन्तु मैं अपनी निर्धनता को देखकर अपनेको धिकार देताहूं १२ भला यह क्योंकर होसक्ता है कि मेरे स्नेहके कारणसे आप इतना क्लेश सहें और मेरे पास रहकर अपने आप भोजन लाकर खावें आप इस क्लेशको सहने के योग्य नहीं हैं और न मुझसे आपका क्लेश देखा जायगा हाय इन धृतराष्ट्र के पापीपुत्रों को धिक्कार है १३ वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय ! युधिष्ठिर उक्तरीति से कहकर वहीं बैठगया और शोक में

व्याकुल होगया उस समय शौनक नाम ब्राह्मण जो ब्रह्मज्ञानी योग और सांख्य शास्त्रों का ज्ञाता था युधिष्ठिरसे कहने लगा कि १४ । १५ संसार में मनुष्य को अनेक दुःख और भय प्राप्त होते हैं परन्तु उनके कारणसे दुःख उन्हींको होता है जो मूढ़ होते हैं १६ तुमसे बुद्धिमान् को ऐसे कामोंको जो कल्याण ज्ञान और मोक्ष के विरुद्ध हैं और जिनमें बहुतसे दोष हैं करना उचित नहीं है १७ क्योंकि तुमको संयम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आदि आठों अङ्गों सहित ब्रह्मज्ञान है जो अज्ञानको दूर करनेवाला स्मृतियों के अनुसार सिद्ध है १८ सो तुम सरीखे मनुष्यों को धननाश आदि बड़े २ दुःख और अपने स्वजनों की आपत्ति को देखकर शारीरिक और मानसी व्यथा से दुःखी न होना चाहिये १९ पहिले समय में राजा जनक ने मन को स्थिर करने अर्थात् डामाडोल न होने देने के निमित्त जो गीता कही थी वह हम तुम्हारे सामने कहते हैं २० इस जगत् में सब मनुष्यों को दो प्रकार के दुःख होते हैं मानसी और दैहिक इनमें से देहसम्बन्धी दुःखके होने के चार कारण हैं १ व्याधि २ इष्टवियोग ३ श्रम और ४ दुष्टतासंयोग । २१ । २२ सो ये चारों और मानसी दुःखभी औषधी आदि के सेवन और चिन्ता न करने से जाते रहते हैं २३ जो विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्य होते हैं वे अपने मनको रोककर मानसी दुःखको मनोहर कथाओं के सुनने और देहके दुःखोंको अच्छे भोग भोगने से दूर कर देते हैं २४ बहुधा शरीर में कष्ट मानसी दुःख होनेसेही होताहै जैसे जलके भरे हुए घड़ेमें गरम लोहे का गोला डालदेने से सब जल खलबला जाताहै २५ इससे मनुष्यको चाहिये कि ज्ञानरूपी जलसे मानसी दुःखरूपी अग्निको ठंढा करके अपने शरीरके कष्टको शान्त करे २६ इसके सिवाय स्नेहभी मानसी दुःखहोनेका कारणहै और भय, शोक, हर्ष और क्लेश भी स्नेहही से होते हैं २७ । २८ विषय में स्नेह रखने से भाव और अनुराग प्रकट होते हैं ये दोनोंही अकल्याणकारी हैं परन्तु इनमें से भाव का होजाना बड़ाभारी दोष है क्योंकि वह धर्म और अर्थ को इस प्रकार से नाश कर देता है जैसे वृक्षके कोटर में से लगीहुई अग्नि उस वृक्ष को जड़ पेड़ से जलाकर भस्म कर देती है २९ । ३० विषयकेही न मिलने से सब कोई त्यागी स्वरूप होते हैं परंतु त्यागी वही है जो विषय को पाकर वैर और विग्रह को छोड़ सब विषयोंमें अपने मनको न फँसावे ३१ इस कारणसे धन और मित्र पाकर मनुष्य

को उसमें स्नेह करना उचित नहीं है और जो स्नेह उत्पन्न भी हो तो उसे ज्ञान से दूर करदें ३२ जो मनुष्य ज्ञानी, शास्त्री और आत्माको वश में रखने वाले होते हैं उनके चित्तमें स्नेह इस प्रकारसे नहीं घुसता है जैसे कमलके पत्तोंमें पानी नहीं जाता है ३३ जो मनुष्य विषयोंमें लिप्त होताहै उसे अनेक कामना घेर लेती हैं उन कामनाओं से वह मिलने और न मिलनेवाली वस्तुओं की इच्छा करने लगताहै और उस इच्छासे तृष्णा बढ़ती चलीजाती है ३४ सो वह तृष्णाही उद्वेग, पाप और अधर्मकी जड़ और प्राणों का कालरूपी रोग है दुष्ट मनुष्य उस तृष्णाको नहीं छोड़सक्ते हैं और जो बुढ़ापे और मृत्युके वशमें होरहे हैं वे उस तृष्णाको कम नहीं करसक्ते हैं ३५।३६ हे युधिष्ठिर! मनुष्यको तृष्णाके छोड़नेहीसे सुख होता है और जो नहीं छोड़ते हैं उनको वह तृष्णा जिसका आदि अन्त नहीं है इस प्रकारसे नाश कर देती है जैसे लोहेका गोला अग्निसे नाश होजाताहै ३७ और जैसे ईंधनमें आग लगनेसे सब ईंधन जलकर भस्म होजाताहै उसी प्रकार से मनरूपी ईंधनमें लोभरूपी अग्निके लगनेसे शरीरका नाश होजाताहै ३८ धनी मनुष्योंको राजा, जल, अग्नि, चोर और स्वजनोंसे उसी प्रकारका भय रहताहै जैसे सब मनुष्यों को मृत्युका भय होताहै ३९ और ये लोग उनको इसप्रकारसे निर्धन कर देते हैं जैसे मांसको आकाश में पक्षी पृथ्वीपर कुत्ते और गीदड़ और जलमें मछलियां नहीं छोड़ती हैं ४० सो यह अर्थ किसका अनर्थ नहीं करताहै इसके इकट्ठे करनेवाले का कल्याण कभी नहीं होताहै ४१ क्योंकि इसके आने से लोभ और मोहकी वृद्धि होती है और मनुष्य सदैव कार्पण्य अर्थात् कृपणतासे उचित धनको खर्च करके धनकी रक्षा करनेकी इच्छासे दूसरेका बुरा चेतना, अपनेको बड़ा मानना और भय और शङ्कासे चित्तका डामाडोल रहना आदि अनेक धन होने के दुःखोंसे दुःखी रहता है ४२ ज्ञानीलोग कहते हैं कि धनके उत्पत्ति रक्षा और नाश होनेमें देहधारियों को बड़ा दुःख होताहै क्योंकि प्रथम तो धन दुःखही से इकट्ठा होताहै फिर इस धनके कारण से मनुष्य एक दूसरेको मारडालताहै और जिनको दुःखके दूर करनेके लिये मनुष्य पालता है वेही धनके लोभसे उसके वैरी होजाते हैं ४३।४४ इससे धनके नाश होने पर अज्ञानीलोग चिन्तामें डूबे रहते हैं और पण्डितलोग संतोष करते हैं ४५ इस संसारमें तृष्णा किसीकी नहीं मिटती है बढ़तीही चलीजाती है इससे पण्डितलोग संतोषहीको अच्छा

कहते हैं ४६ और यौवन, रूप, जीविका, रत्नोंका संचय, ऐश्वर्य और मित्रों के साथ रहना आदि सुखों को अनित्य जानकर उनके होनेकी इच्छा नहीं करते हैं ४७ इससे मनुष्यको उचित है कि धनको जोड़ना छोड़ दे और उसके नाश होनेके दुःख को सहकर संतोष करे क्योंकि कोई धनका रखनेवाला उपद्रवों से खाली नहीं है मनुष्य उसी धनको श्रेष्ठ जानते हैं जो दैवइच्छासे मिलजावे ४८ जो मनुष्य धर्मके करने की इच्छा से धन चाहे उसको ऐसी इच्छा न करनाही अच्छा है क्योंकि कीचसे दूर रहना कीच में फँसकर फिर कीचको धोनेसे अच्छा है ४९ इससे हे युधिष्ठिर ! तुमको धनकी इच्छा करना उचित नहीं है जो तुम धर्म करना चाहतेहो तो धनकी इच्छाको छोड़दो ५० यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज ! मैं धन कुछ लोभ और विषयोंके लिये नहीं चाहताहूं मेरी इच्छा केवल ब्राह्मणोंको पालन करने की है ५१ भला मुझसा मनुष्य गृहस्थ होकर अपने साथियोंके खाने पीनेकी चिन्ता क्योंकर न करे ५२ क्योंकि गृहस्थ में सब मनुष्यों का विभाग होता है और इसीकारण से गृहस्थ को यती और ब्रह्मचारियों को भिक्षा देना उचित है ५३ जो सत्पुरुष होतेहैं उनके घरों में ऐसा कभी नहीं होता है कि अपने घरपर आयेहुए अतिथिको आसन स्थान और जल न दियाजवे और उससे झूठ बोले ५४ गृहस्थ को उचित है कि दुःखीको सोनेको खाट थकेहुएको बैठनेको आसन प्यासेको पानी और भूखेको भोजन देवे ५५ और आयेहुए अतिथिकी ओर मनसे अच्छीतरह देखे और मीठी बोली बोलकर उसे आसनपर बैठावे ५६ और उठकर सन्मान सहित उसका यथायोग्य पूजन करे क्योंकि अग्निहोत्री, रथकेबैल, अतिथि, स्वजाति, भाई बन्धु, पुत्र, स्त्री और भृत्यआदि यथायोग्य आदर सत्कार न पाने पर मनुष्यको जलादेते हैं ५७ मनुष्यको उचितहै कि भोजन केवल अपनेही निमित्त न बनावे और पशुओं को वृथा न मारकर जबतक उनका मांस विधिपूर्वक देवता आदिको अर्पण न करले न खावे ५८ और काग और श्वानआदिके निमित्त बनेहुए भोजन मेंसे भाग निकालकर पृथ्वीपर डाले यह कर्म वैश्वदेव नाम से विख्यातहै और सन्ध्या और सवेरे दोनों समय किया जाता है मनुष्यको चाहिये कि विघसाशी अर्थात् भोजन के पीछे थोड़ा शेषअन्न छोड़नेवाला और अमृतभक्षी अर्थात् यज्ञमें शेष बचेहुए अन्नको खानेवाला होकर रहे और आयेहुए अतिथिको नेत्र से देखे मनसे विचारे सत्य कहे उसके पीछे चले और सन्मुख बैठे इसका नाम

पंचदाक्षिण यज्ञ है ५९ । ६१ जो मनुष्य ऐसे थके हुए पथिक को जिसको पहिले कभी न देखा हो भोजन देता है उसको महापुण्य मिलता है ६२ मेरी समझ में जो गृहस्थ मनुष्य उक्त रीतिपर बर्ताव करता है उसका धर्म श्रेष्ठ गिना जाता है अब आपकी समझ में जैसा आता हो वह भी कहिये ६३ यह सुनकर शौनकजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! बड़े आश्चर्य और कष्ट की बात है कि इस जगत् की चाल सब विपरीत है देखो जिस कर्म से साधुकी अप्रसन्नता होती है असाधु उसीसे प्रसन्न होता है ६४ अज्ञानी मनुष्य इन्द्रिय और पेटके कारणसे वैश्वदेव कर्म बहुत करता है परन्तु मोह राग और ऐश्वर्य की इच्छा में फँसा रहकर इन्द्रियों के विषयों में लिप्त रहता है ६५ और वह इन्द्रियां ज्ञानी को भी इस प्रकार से इधर उधर डामाडोल करे रहती हैं जैसे जिस रथके घोड़े दुष्ट और चंचल होते हैं उसके सारथी को घोड़े विपरीत मार्ग में लेजाते हैं ६६ हे युधिष्ठिर ! जब इन्द्रियां विषय की चाहना करती हैं तब उस चाहना से मन में विषय भोगने की इच्छा होजाती है उस इच्छा से फिर उस विषयके मिलने का उपाय मनुष्य करनेलगता है और फिर उन विषयों में प्रवृत्त होकर लिप्त होजाताहै ६७ । ६८ इसके पीछे मनुष्य विषयरूपी कामदेव के बाणों से वेधित होकर इस प्रकार से लोभ में पड़जाताहै जैसे दीपककी ज्योतिमें पतंग उजेले के लोभसे आकर गिरपड़ता है ६९ अन्त में यह होता है कि वह मनुष्य फिर केवल अच्छा खाने पीने और अच्छा विहार करने के उद्यम में रहकर मोह के सुखमें पड़ा हुआ आत्मा को नहीं पहिचान सक्ता है ७० और अविद्या अर्थात् अज्ञान के कारण से ब्रह्मा से लेकर तृणआदि तक पृथ्वी आकाश और जल की अनेक २ योनियों में जन्म लेलेकर चक्रके समान घूमा करताहै ७१ । ७२ हे युधिष्ठिर ! हमने यह अज्ञानियों की गति बताई है अब हम तुमसे उन ज्ञानियों की भी गति कहते हैं जो नित्य मोक्ष चाहा करते हैं और जिनकी प्रीति भी मोक्ष धर्ममेंही रहती है ७३ देखो वेद का यह वाक्य है कि जो कर्म करो सो निष्काम होकर करो इसी कारण से मनुष्यको चाहिये कि जो काम करें उसके करने का अभिमान कभी न करे ७४ धर्मकी राहें आठ हैं यज्ञ करना १ वेद पढ़ना २ दान करना ३ तप करना ४ सत्य बोलना ५ क्षमा करना ६ इन्द्रियोंको जीतना ७ और लोभ न करना ८ । ७५ इनमें से पहिले चार कर्म पितृलोक और पिछले चार देवलोक के देनेवाले हैं मनुष्य को उचितहै कि इन कर्मोंको अभिमानसे न करें

इन आठों धर्म के मार्गों पर वही मनुष्य चलते हैं जिनकी आत्मा शुद्ध होती है ७६।७७ और जो मनुष्य इस संसारको जीतना चाहते हैं वे यह कर्म करते हैं हर कामको संकल्प करके करना, इन्द्रियों को रोकना, विधिपूर्वक व्रत करना, हिंसाको त्यागना, गुरुकी सेवा करना, अच्छीतरह से आहार करना, वेद पढ़ना, कियेहुए कर्मों के फलको त्यागना और चित्तको चलायमान न होने देना, देखो देवताओंको भी राग और द्वेषके छोड़नेही से ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है ७८। ७९ और ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, आठ वसु और अश्विनीकुमार आदि देवता भी योगरूपी ऐश्वर्य के होनेहीसे सब प्रजाको धारण कररहे हैं ८० हे युधिष्ठिर! इसी प्रकार से तुमको भी समता धारण करके तपस्या करके अपने कामकी सिद्धि करना उचित है ८१ सो तुम अपने कर्मों से पितृलोक को तो जीतही चुके हो अब तपस्या करके ब्राह्मणों के पालन के लिये सिद्धि प्राप्त करो ८२ देखो सिद्धलोग जो चाहते हैं वही तपस्या करके लेलेते हैं उसी प्रकार से तुम भी तपस्या करके अपने मनोरथ को सिद्ध करो ॥ ८३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय।

धौम्यऋषि का युधिष्ठिर को सूर्य की पूजा करने का उपदेश करना युधिष्ठिर का सूर्य की तपस्या करना और सूर्य का युधिष्ठिर को वरदान देना और पाण्डवोंका काम्यक वन में जाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजन्, जनमेजय! राजा युधिष्ठिर शौनक ऋषिके उक्त उपदेशको सुनकर अपने धौम्यपुरोहितके पास आया और सब भाइयों के सामने कहने लगा १ कि महाराज ये वेदपारग सब ब्राह्मण मेरे साथ वनको चलने कहते हैं परंतु मैं अत्यन्त दुःखी होनेके कारण से इन ब्राह्मणों का पालन नहीं कर सक्ताहूं और न इनको छोड़ही सक्ताहूं क्योंकि मेरे पास इनको दानदेने के लिये कुछ नहीं है इससे अब आप बताइये कि मैं क्या करूं २।३ वैशंपायन जी बोले हे राजन्, जनमेजय! यह सुनकर धौम्यऋषिने एक मुहूर्त्तभर तो ध्यान किया उपरान्त धर्मकी मतिको याद करके राजासे कहनेलगे कि ४ पहिले समय में जब प्राणी भूंखके मारे अत्यन्त दुःखी हुए थे तबसे सूर्य देवता सब प्रजापर पिता की सदृश कृपा करके उत्तरकी ओर चले जाते हैं और अपनी किरणों से सब जलको सोखकर फिर दक्षिणकी ओर आकर अपनी किरणों से पृथ्वी में उष्णता प्रवेश करते हैं ५।६ उस उष्णतासे सूर्यके तेजरूपी मेघ प्रकट होते हैं और चन्द्रमा

उन मेघों को वर्षाकर ओषधी उत्पन्न करते हैं ७ उन ओषधियों के अंकुर जमनेपर सूर्य उनमें षट्रस उत्पन्न करदेते हैं और उनही में यह प्राणियों का आधार अन्न उत्पन्न होजाताहै इससे सम्पूर्ण अन्न सूर्यरूपहै सूर्यही सबका पिता अर्थात् पालन करताहै इससे हे युधिष्ठिर! तुम सूर्यही की शरण लो ८। ९ महात्मा राजालोगोंका यही धर्म है तप करके और अपनी आत्मा को शुद्ध करके प्रजा का पालन करते हैं १० देखो राजा भीम, कार्तवीर्य, वैन्य और नहुष आदि ने तपस्याही कर २ के अपनी प्रजाके दुःखोंको दूर कियाथा ११ वैसेही हे युधिष्ठिर! तुमभी शुद्धात्मा होकर धर्म करो और ब्राह्मणों का पालन करो १२ इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय बोले कि हे वैशंपायनजी! उन ब्राह्मणों के लिये राजा युधिष्ठिर ने सूर्य का आराधन किस प्रकारसे किया १३ वैशंपायनजी बोले कि हे राजन्, जनमेजय! मैं सब कथा कहता हूं तुम पवित्र और सावधान होकर सुनो १४ धौम्यऋषि ने युधिष्ठिर को सूर्य के एकसौ आठ नामका स्तोत्र दिया था वह यह है ॥ १५ ॥

अथ स्तोत्रम् ।

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः। गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः १६ पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्। सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च १७ इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वै वरुणो यमः १८ वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसांपतिः। धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः १९ कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमलाश्रयः। कला काष्ठा मुहूर्ताश्च क्षपायामस्तथा क्षणः २० संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः २१ कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा २२ भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः २३ अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्वधातुनिषेचितः २४ मनःसुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारणः। धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेःसुतः २५ द्वादशात्माऽरविन्दाक्षः पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् २६ देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः २७ एतद्वै कीर्त्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः। नामाष्टशतकं चेदं प्रोक्तमेतत्स्वयंभुवा २८ सुरगणपितृयक्षसेवितं ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम्। वरकनकहुताशनप्रभं प्रणिपतितोस्मि हिताय भास्करम् २९ सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत्सपुत्रदारान्धनरत्नसंचयान्। लभेत जातिस्मरतां नरः सदा धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् ३० इमं स्तवं देववरस्य यो नरः प्रकीर्त्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः। विमुच्यते शोकदवाग्निसागराल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान् ॥ ३१ ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय! धौम्यऋषि से उक्त स्तोत्र को सुन-

कर राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणोंका पालन करनेके लिये सावधानी से आत्माको शुद्ध और व्रतमें दृढ़ता करके विधिपूर्वक पुष्प और बलिआदि से सूर्यकी पूजा की उपरान्त गङ्गाजी के जल में भीतर जाकर सूर्य के सम्मुख खड़ा होगया और योगकी रीतिसे आचमन प्राणायाम करके जितेन्द्रिय और वायुभक्षी होकर सूर्य की तपस्या करनेलगा ३२ । ३४ पहिले तो उसने उक्त स्तोत्र का जप किया उपरान्त सूर्य की स्तुति करनेलगा ३५ हे सूर्यदेव ! तुम जगत्की आत्मा और नेत्र हो सब जगत् आपही से उत्पन्न है आप सबजीवों के कर्मों के जानने वाले हैं ३६ आपही सब ज्ञानी योगी और मोक्ष चाहनेवालों की गति और परायण हैं और ऐसे द्वार हैं जिसके बन्द करने को कोई कुंजी नहीं है ३७ इन सब लोकों को आपही धारण, प्रकाशित पवित्र और पालन करते हैं ३८ हे महाराज ! वेदपाठी ब्राह्मण और ऋषिलोग आपका पूजन समय पर अपनी अपनी शाखा के मन्त्रों से किया करतेहैं ३९ जो आपसे वर पाने की चाहना करते हैं वे जिधर २ आकाश में आपका रथ जाता है उधरही उधर फिर २ कर आपके पीछे रहतेहैं आपकाही पूजन करके सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, गुह्यक, पन्नग, तेंवीसदेवता; विमानवासी देवगण, इन्द्र और महाइन्द्र ने सिद्धि पाई हैं ४० । ४१ विद्याधरलोग मन्दारपर्वत के फूलोंसे आपकी पूजा करके अपने मनोरथको पातेहैं ४२ और गुह्यक और सातों पितृगण जो दिव्य और मानुष हैं आपहीको पूज २ कर प्रधानता पाते हैं ४३ और आठ वसु, उनचास वायु, मरुद्गण, एकादश रुद्र, साध्यगण और वालखिल्यआदि सिद्ध लोग आपही का पूजन करने से सबसे श्रेष्ठ होगये हैं ४४ ब्रह्मलोक सहित सातोंलोकों में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो आपकी पूजनीय ज्योतिसे अलग होवे ४५ यद्यपि और भी प्राणी पराक्रमी और बड़े हैं परन्तु आपके तेजके समान किसीका प्रकाश नहीं है ४६ सब ज्योति अपही में है आप सब ज्योतियों के स्वामी हैं और आपही में सत्य सत्त्व और संपूर्ण सात्त्विकीभाव है ४७ आपहीके तेजसे विश्वकर्मा ने सुदर्शननामी चक्र बनाया था जिससे शार्ङ्गधनुषधारी विष्णु भगवान् ने देवताओं के शत्रुओंका नाश किया ४८ आप गर्मीकी ऋतु में सब प्राणियोंके तेज और सब ओषधियों के रसको अपनी किरणों से खींचते हैं और फिर वर्षाऋतुमें छोड़देते हैं ४९ इसऋतुमें आपकी कोई किरणें संसारको तपाती हैं कोई भस्म करती हैं और कोई बादल होकर बर्षती हैं गर्जती हैं और प्रकाशं

करती हैं ५० जिससमय शीतपड़ताहै और वायु ठंढी चलती है उससमय अग्नि और कंबल आदि वस्त्रोंसे प्राणीको इतना सुख नहीं मिलताहै जितना आपकी किरणोंसे होताहै ५१ आप अपनी किरणोंसे इस संपूर्ण पृथ्वीको जिसमें सात द्वीप और छह आवान्तरद्वीप हैं प्रकाशित करते हैं और तीनोंलोकोंका हित करनेके लिये प्रवृत्त रहते हैं ५२ जो आप उदय न होवें तो यह संपूर्णलोक अन्धेकी समान होजावे और कोई बुद्धिमान् मनुष्य धर्म अर्थ और काममें प्रवृत्त न होनेपावे ५३ आपहीकी कृपासे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यलोग गर्भाधान आदि संस्कार पशु बन्ध इष्टि मन्त्र यज्ञ तप और अनेक कर्म करते हैं ५४ कालको जाननेवाले मनुष्य आपहीको ब्रह्मा के उस दिनका जिसका प्रमाण सहस्रयुगका है आदि और अन्त बताते हैं ५५ आप चौदह मनु, मनु के पुत्र, जगत् मनुष्य, ईश्वर और सब मन्वन्तरों के ईश्वरहैं ५६ जब प्रलयकाल आता है तब अपहीकी संवर्तक नाम क्रोधाग्नि तीनों लोकोंको भस्म करडालती है ५७ और आपहीकी किरणोंसे नाना प्रकारके बादल उत्पन्न होकर बिजली सहित संपूर्ण पृथ्वीके चारों प्रकारके जीवोंको जलसे पूर्ण करदेते हैं ५८ आपने अपने बारहरूप बनाकर बारह नाम पाये हैं और अपनी किरणोंसे आप सब पृथ्वीको सुखा देते हैं ५९ आप इन्द्र हैं रुद्र हैं विष्णु हैं प्रजापति हैं अग्नि हैं मन हैं सूक्ष्म हैं प्रभु हैं सनातन ब्रह्म हैं ६० हंस अर्थात् विश्वके हर्त्ता हैं सविता अर्थात् उत्पन्न करनेवाले हैं भानु हैं किरणोंकी माला रखनेवाले हैं वृषाकपि अर्थात् हर वा हरि हैं विवस्वान् हैं मिहिर हैं पूषा हैं मित्र हैं धर्म हैं सहस्रकिरणोंके स्वामी हैं आदित्य हैं तपन हैं मार्तंड हैं अर्क हैं रवि हैं सूर्य हैं शरणयोग्य हैं दिनकर हैं ६१ । ६२ दिवाकर हैं सात घोड़े रखनेवाले हैं धामकेशी अर्थात् ज्योतिमय किरण रखनेवाले हैं विरोचन हैं शीघ्रगामी हैं अन्धकारनाशक हैं और हरे रंगके घोड़े रखनेवाले हैं ६३ जो मनुष्य अहंकारको छोड़कर षष्ठी या सप्तमीको आपका पूजन भक्तिपूर्वक करता है वह लक्ष्मी पाता है ६४ और जो आपके अनन्यभक्त होकर आपको दंडवत् करते हैं उनको कोई आपत्ति नहीं व्यापती है और उनको मानसी और शारीरिक रोगभी नहीं होते हैं ६५ और जो मनुष्य आपमें यह भाव मानते हैं कि सूर्यही सर्वव्यापी हैं वह रोग और पापरहित होकर सुखपूर्वक चिरंजीवी होकर रहते हैं ६६ सो हे महाराज! हे अन्नके स्वामी! आप मुझ कामना रखनेवाले

को अन्न दीजिये मैं श्रद्धासे अतिथियोंको भोजन कराना चाहताहूं ६७ मैं आपके माठर अरुण और दंड आदि सेवकोंको जो आपकी चरणसेवा किया करते हैं दंडवत् करताहूं ६८ और क्षुधा मैत्री आदि प्राणियोंकी माताओंको नमस्कार करता हूं मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ६९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! सूर्यदेव युधिष्ठिरकी उक्त स्तुतिको सुनकर प्रसन्न हुए और अग्निके समान ज्वालायमान अपने शरीर से दर्शन देकर कहनेलगे ७० कि हे युधिष्ठिर ! तेरे सब मनोरथ पूरे होंगे मैं तुझको बारहवर्षतक अन्न दूंगा ७१ ले यह तांबेकी पिठर अर्थात् परोसनेका पात्र ले इससे द्रौपदी घरमें बनायेहुए फल, मूल, मांस और शाकआदि जिस पदार्थको जबतक परोसा करेगी तबतक वह पदार्थ नहीं घटेगा ७२।७३ और अबसे लेकर चौदहवेंवर्ष में तुझको फिर राज्य मिलेगा वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! सूर्यदेव उक्तरीति से कहकर वहीं अन्तर्द्धान होगये ७४ इस स्तुतिको जो कोई दूसरा मनुष्य भक्तिपूर्वक मनको रोंककर पाठ करेगा सूर्यदेवता उसकी दुर्लभ मनोकामनाको भी पूरा करेंगे ७५ और जो मनुष्य इसको नित्य पढ़ेगा या सुनेगा उसके सब मनोरथ पूरे होंगे पुत्र चाहनेवालेको पुत्र धनार्थीको धन विद्यार्थीको विद्या इसके नित्य पढ़ने और सुननेसे मिलती है चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री ७६ और स्त्री पुरुष में से जो कोई इस स्तोत्र का पाठ दोनों संध्याओं में करेगा वह आपत्ति से छूटजावेगा और जो बन्धन अर्थात् क़ैदमें पड़गया होगा तो क़ैदसे भी छूट जायगा ७७ यह स्तोत्र पूर्वसमयमें ब्रह्माजी ने इन्द्रको दिया था इन्द्रने नारदजीको दिया नारदजीने धौम्यऋषिको दिया और धौम्यऋषिने राजा युधिष्ठिरको दिया कि जिससे उसके मनकी कामना पूरी हुई ७८ इसका पाठकरनेवाला संग्राममें नहीं हारताहै और धनधान्यसे युक्त रहकर सब पापोंसे छूटकर सूर्यलोक में जाताहै ७९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे राजा युधिष्ठिर सूर्यदेवसे वर पाकर जलके बाहर निकल आया और धौम्यऋषि के चरणों को छूकर और भाइयोंको प्यार करके द्रौपदीसे मिला और चारोंप्रकारका थोड़ा २ अन्न द्रौपदीसे तैयार कराया वह चारों प्रकारके अन्न अक्षय होजाते थे उसीमें से युधिष्ठिर पहिले ब्राह्मणों को भोजन कराता फिर छोटे भाइयों को खिलाकर विघस अर्थात् बचेहुए अन्नको आप खाता था और युधिष्ठिरके भोजन करलेनेपर द्रौपदी भोजन करती थी ८० । ८२ जब द्रौपदी भोजन करलेती तब

सब अन्न निबट जाता था सो हे राजा, जनमेजय! युधिष्ठिरने उक्त प्रकार से सूर्यसे वर पाकर ब्राह्मणोंके मनोरथ पूरे किये पाण्डव हरबातमें पुरोहितको आगे करलेते थे और जब २ कोई तिथि नक्षत्र या पर्व आन पड़ता था तब २ विधि और मन्त्र प्रमाण से यज्ञके योग्य वस्तुवें आजाती थीं ८४। ८५ इसके पीछे पाण्डव धौम्यऋषिसे स्वस्त्ययन सुनतेहुए ब्राह्मणोंसहित गङ्गातट से काम्यक वनको चलेगये॥ ८६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चौथा अध्याय।

राजा धृतराष्ट्रका विदुरजीसे अपने हितकी बात पूछना विदुरजीका दुर्योधनका त्याग करने और पाण्डवोंको राज्य देनेका उपदेश करना और धृतराष्ट्रका विदुरजीको निकाल देना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय! पाण्डवों के वनको चलेजानेपर सुखपूर्वक बैठेहुए राजा धृतराष्ट्रने दुःखी होकर विदुरजी से जो बड़े बुद्धिमान् थे कहा कि १ तुम्हारी बुद्धि शुक्रके समानहै और तुम सूक्ष्मधर्मको भी अच्छी तरह जानतेहो सब कौरवकुलके मनुष्योंको तुम एकसा समझतेहो इससे मैं तुम से अपने और पाण्डवोंके हितकी बात पूछताहूं २ कि इस समयमें हमको क्या करना उचित है जिससे सब पुरवासी हमसे प्रीति करनेलगें और हमारी जड़ को न काटें तुम सब अच्छे कामों को जानते हो ३ यह सुनकर विदुरजी बोले कि अर्थ, धर्म, काम और राज्य इन सबका मूल धर्म है इससे आपको अपने और पाण्डु के पुत्रोंकी रक्षा धर्मपूर्वक करना चाहिये ४ उस धर्म को शकुनि आदि पापात्माओंने सभामें अधर्मरूप कर दिया जो सत्यप्रतिज्ञ युधिष्ठिरको बुलाकर छल से जुये में जीतलिया ५ मेरी समझ में युधिष्ठिरके इस अपमान को शान्त करने के लिये यह उपाय आता है कि आप सब जीते हुए धन को पाण्डवों को देदीजिये क्योंकि दूसरे के धनका लोभ न करके अपने धनसे संतुष्ट रहना बड़ा धर्म है ६।७ ऐसा करने से आपको केवल धर्मही होगा आपका यश न मिटेगा और स्वजातियों में फूट न होगी पाण्डव इस बात से प्रसन्न होजायँगे और शकुनिका अपमान होगा यह काम सबसे श्रेष्ठ है इसके करने से आपके सब पुत्र बचे रहेंगे नहीं तो सब कौरवकुलका नाश हो जायगा ८। ९ भीमसेन और अर्जुन के क्रोध करने पर क्षत्रियों की सेना नहीं बचसक्ती है भला जिनके योद्धा अर्जुनसा अस्त्र जाननेवाला जिसका धनुष

गाण्डीवसा और जिनके साथ भीमसेनसा पराक्रमी होवे उनको कौनसा पदार्थ दुर्लभ है मैंने तो आपसे पहिलेही दुर्योधन के उत्पन्न होने के समय कह दिया था कि आपका हित यही है कि आप अपने इस कुलके अहितकारी पुत्र को त्याग दीजिये परंतु आपने उस हितको नहीं माना और अबभी जो न मानोगे तो पीछे दुःखी होकर पछिताओगे १०।१२ आप अपने पुत्रसे कहिये कि पाण्डवों से प्रीति करके उनके साथ राज्य करे ऐसा करने से आपको दुःख न होगा और जो वह आपकी बात को न माने तो उसको ग्रहण अर्थात् क़ैद करदीजिये १३ और युधिष्ठिर को राज्य दीजिये वह युधिष्ठिर विमुक्तराग है वही पृथ्वी को अच्छी तरह धर्म से शासन करेगा १४ ऐसा करने से सब राजालोग बनियोंकी तरह हमारी सेवाकरेंगे और दुर्योधन शकुनी और कर्ण युधिष्ठिर की आज्ञा का पालन करेंगे १५ आपका पुत्र दुश्शासन सभामें भीमसेन और द्रौपदी से हाथ जोड़कर अपना अपराध क्षमा करावे और आप युधिष्ठिर के दुःख को मीठी बातों से शान्त करके राजतिलक दे दीजिये १६ ऐसा करने से आप कृतकृत्य होजायँगे जो कुछ आपने हितकी बात पूछी वह मैंने कह सुनाई अब जो कुछ आप और पूछें वह कहूं १७ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला हे विदुरजी! तुमने हमारे और पाण्डवों के विषय में उक्त सलाह दीहै इसमें केवल पाण्डवों काही हितहै हमारे पुत्रों का हित नहीं है इससे हम इस बात को अङ्गीकार नहीं कर सक्ते हैं १८ अब जो कुछ तुमने पाण्डवों के हितकी बात कही है उससे मुझे निश्चय होगया कि तुम मेरे हितकारी नहीं हो भला मैं पाण्डवों के अर्थ अपने बेटेको क्योंकर छोड़ सक्ताहूं १९ हां यों तो पाण्डवभी मेरे पुत्र हैं परंतु दुर्योधन मेरी देहसे उत्पन्नहै ऐसी अवस्थामें दूसरेके लिये अपने पुत्रको कौन त्यागसक्ता है २० तुम सदैव कुटिल वचन कहतेहो इससे अब तुम हमारे यहां से जहां चाहो तहां चलेजाओ क्योंकि जो स्त्री कुटिल होती है वह बहुत समझाने परभी अपने पतिको छोड़देती है २१ वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय ! धृतराष्ट्र उक्त प्रकार से कहकर उठखड़े हुए और महलके भीतर चलेगये और विदुरजी वहांसे उठकर यह कहतेहुए कि यह बात ऐसे नहीं है पाण्डवों के पास जानेको चल दिये॥ २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पांचवां अध्याय।

विदुरजीका काम्यकवन में पाण्डवों के पास जाना और अपने आनेका कारण कहकर युधिष्ठिर को उपदेश करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय ! पाण्डव वनमें वास करने के लिये गङ्गातटसे चलकर सब साथियों सहित कुरुक्षेत्र में पहुँचे १ और यमुना, सरस्वती और दृषद्वती नदियों पर वास करतेहुए एक वनसे दूसरे वनको मँझाते हुए पश्चिमकी ओर चलेगये २ और सरस्वती नदी के किनारे पर मरु और जाङ्गल नामी देशों में जहां की पृथ्वी ऊंची नीची नहीं है काम्यकवन में जो मुनिलोगों का बड़ा प्रिय था पहुँचे ३ और मुनिलोगों के साथ रहनेलगे उस वनमें बहुतसे मृग पक्षी थे ४ उसी वनमें विदुरजी जो पाण्डवों को देखनेकी सदैव लालसा रखते थे अकेले रथ में सवार होकर पहुँचे ५ और उन्होंने राजा युधिष्ठिरको चारों भाई द्रौपदी और ब्राह्मणों सहित एकान्त में बैठेहुए देखा ६ युधिष्ठिर उनको रथ पर शीघ्र आतेहुए देखकर भीमसेन से कहने लगे कि देखिये अब विदुरजी हमसे आकर क्या कहते हैं ७ कहीं उस दुष्ट शकुनिने तो हमें हमारे अस्त्र और हम सबको जूये में जीतनेकी इच्छासे तो नहीं बुलाया है ८ क्या कीजिये अब हमें फिर चलनाही पड़ा क्योंकि मैं बुलायेजाने पर रुक नहीं सक्ताहूं जो अबकी दांव में गाण्डीव धनुष जातारहा तो फिर हमको राज्य मिलना कठिन होगा ९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इतनेही में विदुरजी पाण्डवों के निकट आनपहुँचे पाण्डवों ने उनको बड़े आदर सत्कार से लिया और विदुरजी भी सबसे यथायोग्य मिले १० इसके पीछे जब विदुरजी विश्राम करचुके तब युधिष्ठिर ने उनसे आने का कारण पूछा विदुरजी उस धृतराष्ट्रका आचार सुनाने लगे ११ कि राजा धृतराष्ट्रने मुझे हितोपदेश से रक्षाकरनेवाला जानकर मुझसे यह पूछा कि अब इस अवस्था में क्या ऐसाकाम कियाजावे जिससे हमारे और पाण्डुके पुत्रों का कल्याण होवे १२ यह सुनकर मैंने जो बात कल्याणकारी पथ्य और कौरवों के योग्य थी कह दी परन्तु वह मेरा कहना धृतराष्ट्रको अच्छा नहीं जानपड़ा और हितकारी होने पर भी मेरा उपदेश उनको इस प्रकारसे नहीं रुचा जैसे रोगीको पथ्यका अन्न अच्छा नहीं लगताहै १३।१४ और मैं जानताहूं कि जैसे वेदपाठी के घरमें रहनेपर भी जो स्त्री न सुधरे वह किसी अन्य प्रकारसे नहीं सुधर सक्ती है इसी प्रकार से धृतराष्ट्र भी किसी उपाय से कल्याण से युक्त नहीं

होसक्ता है उसको मेरी बात इसप्रकार से अच्छी नहीं लगी जैसे कुमारी स्त्रीको साठिवर्षका पति अच्छा नहीं लगताहै १५ मैं निश्चय जानताहूं कि अब कौरवोंका नाश होगा क्योंकि धृतराष्ट्र अपने कल्याणकी बात नहीं विचारताहै और उसके हृदय में हितकी बात इस प्रकारसे नहीं ठहरती है जैसे कमलके पत्तोंपर जल नहीं ठहरताहै १६ मेरी बात को सुनकर धृतराष्ट्र ने क्रोध करके मुझसे कहा कि जहां तेरी इच्छा हो वहां चलाजा मैं इस पृथ्वी और नगरका पालन करने के लिये तुझको नहीं चाहताहूं १७ सो हे युधिष्ठिर! मैं धृतराष्ट्रसे त्यागेजाने के कारण से तुमको शिक्षा करने के लिये आयाहूं तुमको चाहिये कि जो मैंने तुम्हें सभामें उपदेश दिया था और अब जो कुछ कहूं उसके अनुसार चलो १८ जो मनुष्य शत्रु के क्लेशसे दुःखी होने पर क्षमापूर्वक रहकर समयको देखा करता है वह इस प्रकारसे बढ़कर जैसे थोड़ी भी अग्नि सुलग २ कर सब भस्म कर देती है धीरे २ बढ़कर अकेला संपूर्ण पृथ्वीका राज्य करताहै १९ जिस मनुष्यका धन सहायकों से अलग नहीं रहता है उसके सहायक उसके दुःखके भी भागी रहते हैं और सहायकों के इकट्ठा करने का वही उपाय है जो सहायक मिलने पर पृथ्वीके मिलने का उपाय किया जाता है २० और अनर्थ को छोड़कर जो सदा सत्य बोलताहै उसीका कल्याण होताहै और राजा वही बढ़ताहै जो अपने सहायकोंके साथ बैठकर एकसा भोजन करताहै और सहायकों के सामने अपनी बड़ाई नहीं मारताहै २१ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि जैसा आप कहते हैं मैं वैसाही आलस्य छोड़कर करूंगा और जो कुछ और आप देशकाल के अनुसार उपदेश करें वह भी मैं अवश्य करूंगा ॥ २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठवाँ अध्याय।

विदुरजी के चलेजानेपर राजा धृतराष्ट्र का दुःखी होना और संजय को भेजकर फिर विदुरजी को बुलवाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! विदुरजी के पाण्डवों के पास चलेजाने पर उस ज्ञानी राजा धृतराष्ट्रको बड़ा दुःख हुआ १ और वह विदुरजी के प्रभाव और संधि और विग्रहआदि नीतिकी निपुणता पाण्डवोंका भविष्यकाल में उदय जानकर महादुःखी होकर सभाके द्वारपर निकल आया और यह समझकर कि मैंने विदुरजी के साथ वृथा द्वेष कियाहै मूर्च्छित होकर सब

राजाओंके सामने पृथ्वीपर गिरपड़ा २। ३ और संज्ञा होनेपर अपने पास बैठे हुये संजय से कहने लगा ४ कि मैं अपने भाई विदुरको जो साक्षात् दूसरे धर्मराजकी समानहै याद कर२के महादुःखीहूं मेरा हृदय फटासाजाताहै ५ उसको जल्दी से लाओ यह कहकर धृतराष्ट्र विलाप करनेलगा और पछतावा कर २ के अपने द्वेषको याद करके भाईके स्नेह की फांसी में बँधा हुआ संजय से फिर यह कहनेलगा ६।७ कि हे संजय ! तू जाकर मेरे भाई विदुरको ढूंढ़ मुझ पापी ने क्रोधमें उसे निकाल दियाहै देख वह जीताहै या नहीं ८ मेरे विदुर भाईने जो बड़ाबुद्धिमान् और ज्ञानी है मेरा किसी समय में थोड़ासाभी अप्रिय नहीं किया ९ हाय मैंने उसका बड़ाभारी अपमान कियाहै हे संजय ! तू जाकर उसे ढूंढ़ला नहीं तो मैं अपने प्राणोंको छोड़ दूंगा १० यह सुनकर संजय वहां से धृतराष्ट्र को प्रणाम करके बहुत अच्छा कहकर काम्यक वनको चलदिया ११ और थोड़ेही काल में वहां पहुँचकर उसने युधिष्ठिरको देखा जो मृगचर्म ओढ़ेहुए विदुरजी और सहस्रों ब्राह्मणों सहित इसप्रकारसे भाइयों से रक्षित बैठा हुआ था मानो देवताओंसे रक्षित इन्द्र बैठाहै १२।१३ संजयने युधिष्ठिरको प्रणाम किया और भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव ने उसका आदर सत्कार किया १४ इसके पीछे संजय युधिष्ठिर के कुशल पूछने पर अपने आनेका कारण कहकर विदुरजीसे कहने लगा कि राजा धृतराष्ट्र आपको याद कररहे हैं आप शीघ्र जाकर उनको देखिये और उनको जीवदान दीजिये १५।१६ धृतराष्ट्र की आज्ञा से आपको जाना उचितहै इससे आप शीघ्र पाण्डवों से पूछकर चलिये १७ वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय ! विदुरजी संजय की उक्तबातको सुनकर युधिष्ठिरकी अनुमतिसे फिर हस्तिनापुरको लौट आये १८ राजा धृतराष्ट्र उनके आने पर कहनेलगा कि यह मेरे प्रारब्ध की बातहै जो तुम मुझको नहीं भूले और मुझसे फिर आनमिले १९ तुम्हारे शोकमें मुझको रात्रिभर निद्रा नहीं आई जागते २ मेरे शरीर का रंग पलटगयाहै २० यह कहकर धृतराष्ट्रने विदुरजीको अपनी गोद में बैठा लिया और माथा सूंघकर कहनेलगा कि जो कुछ मैंने तुमसे कहाहै उसको क्षमा करो २१ यह सुनकर विदुरजी बोले कि महाराज ! मैं सदाही क्षमायुक्त रहताहूं आप तो मेरे परमगुरुहैं मैं आपके दर्शनों की इच्छासे शीघ्र चला आयाहूं २२ हे महाराज ! धर्मात्मालोग सदा दुःखी मनुष्यों का पक्ष लेते हैं इसमें कुछ संदेह करने की बात नहीं है २३ निस्संदेह

मेरे लिये जैसे आपके पुत्रहैं वैसेही पाण्डवभीहैं परंतु पाण्डव दुःखीहैं इससे मेरा मन उनकी ओर विशेषहै २४ वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय ! इसके पीछे वह दोनों भाई परस्पर मिलकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय ।

विदुरजीके आनेसे दुर्योधन को विषाद होना और कर्ण आदि का पाण्डवों को वन में जाकर मारने का सलाह करना और व्यासजीका निषेध करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा, जनमेजय ! राजा दुर्योधन विदुरजीके आने और धृतराष्ट्रसे आदर सत्कार पानेका हाल सुनकर महादुःखी हुआ १ और अज्ञानके कारणसे मोह करके शकुनि, कर्ण और दुश्शासन को बुलवाकर कहनेलगा २ कि आज विदुरजी जो बुद्धिमान् और धृतराष्ट्र के मन्त्री हैं फिर लौट आये हैं विदुरजी पाण्डवों के सुहृद् हैं और सदैव उनके हितमें प्रीति रखते हैं सो जब तक विदुरजी धृतराष्ट्र की बुद्धिको फेरकर पाण्डवोंको बुलवानेका उपदेश न करने पावें तबतक कोई ऐसी सलाह करो जिससे मेरा हित होवे ३ । ४ जो पाण्डवों को फिर मैं यहां आया हुआ देखूंगा तो शोक में अन्न जल छोड़कर विष खालूंगा या ग्रीवामें फाँसी लगाकर मरजाऊंगा अथवा आगमें जलमरूंगा या अपना गला अपने हाथ से काटडालूंगा मैं अपने शत्रुओं को बढ़ा हुआ फिर नहीं देखना चाहता हूं ५।६ यह सुनकर शकुनी बोला कि हे राजा ! तुम बालकोंकीसी बात क्यों कहते हो पाण्डव वनको प्रतिज्ञा करके गये हैं तुम्हारे पिताके कहने से भी नहीं लौटेंगे क्योंकि वे सत्यमें स्थितहैं ७ । ८ और जो कदाचित् वे अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर चलेभी आवेंगे तोभी कुछ चिन्ताकी बात नहीं है हम फिर उनको जूयेमें जीतलेंगे और तुम्हारा हित करने के लिये पाण्डवों के दोषोंको देखकर अपने दृढ़ मन्त्रको छिपाकर धृतराष्ट्रकी आज्ञापूर्वक मध्यस्थ होजायँगे ९।१० यह सुनकर दुश्शासन बोला कि हे मामाजी ! आप बड़े ज्ञानी हैं आपने ठीक२ कहाहै मुझे आपकी बुद्धि सदैव रुचती है ११ इसकेपीछे कर्ण कहनेलगा कि हम सबकी एकही सलाहहै और सब तेरी मनोकामनाको चाहते हैं १२ पाण्डव समयको बिताये विना कभी नहीं आवेंगे और जो आवेंगे भी तो उनको हम सब फिर जूये में जीतलेंगे।१३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! कर्णकी बातको सुनकर दुर्योधनने अप्रसन्नता से

अपना मुख फेरलिया १४ यह देखकर कर्ण दुर्योधनके मनकी बातको पहिचान गया और क्रोधसे नेत्र फाड़कर शकुनी और दुश्शासनसे कहनेलगा कि हम सब दुर्योधन का हित किंकरोंकी समान किया चाहते हैं परंतु क्या करें धृतराष्ट्र के रोकनेके कारण से कुछ नहीं करसक्ते हैं १५।१७ मेरी समझमें हम सब शस्त्र लिये हुये रथों पर चढ़ २ कर वनको चलें और पाण्डवों को मार डालें उनके मरने पर ये सब धृतराष्ट्रके पुत्र और हम सब बेखटके होजायँगे १८।१६ क्योंकि जबतक पाण्डव दुःखी और मित्रहीन हैं तबतक उनको जय करलेना बड़ी बात नहीं है २० यह सुनकर वे सबके सब कर्णकी प्रशंसा करने लगे और बहुत अच्छा कहकर क्रोध कर करके अलग अलग रथोंमें चढ़ चढ़ पाण्डवोंको मारने के लिये नगरके बाहर निकले २१।२२ उसीसमय इसबातको व्यासजी अपनी दिव्य-दृष्टिसे जानकर वहां आपहुँचे और उन सबको निषेध करके उस अन्धे राजा धृतराष्ट्र के पास गये और कहने लगे ॥ २३ ।२४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय ।

व्यासजीका धृतराष्ट्रको समझाकर पाण्डवोंसे मिलाप करनेको कहना ।

व्यासजी बोले हे राजा धृतराष्ट्र! मेरी बातको सुनकर समझो मैं तुमसे सब कौरवोंकी हितकारी बात कहताहूं १ यह काम हमारा प्रिय नहीं हुआ जो दुर्योधनने अपने पापी साथियों सहित पाण्डवोंको छलसे जीतकर वनवास दे दिया २ अब तेरहवर्ष बीतनेपर पाण्डव लौटकर क्लेशोंको याद कर २ के सब कौरवों का नाश करेंगे ३ भला यह क्या बात है जो तेरा पापी मन्दबुद्धि और क्रोधी पुत्र राज्यके लिये अब पाण्डवोंको मारना चाहताहै ४ तुमको चाहिये कि तुम अपने इस मूढ़ पुत्रको शान्त करके रोको नहीं तो पाण्डवोंको वन में मारनेकी इच्छासे अपने प्राण खो बैठेगा ५ भीष्म विदुर और हम जैसे हैं उसी प्रकारसे द्रोणाचार्य कृपाचार्य और तुमभी साधुहो ६ भाई बन्धुओंके साथ विरोध करना निन्दित अधर्मरूप और अयशका करनेवालाहै तुमको वह करना उचित नहीं है ७ जो पाण्डवों के साथ तुम ऐसी बुद्धि करोगे तो बड़ी अनीति होगी ८ जो यह तुम्हारा मन्दबुद्धि पुत्र भी पाण्डवों के साथ अकेला वनमें जावे तो अच्छाहै ९ और जो तुम्हारे पुत्रकी प्रीति पाण्डवोंसे होजावे तो तुम अभी सिद्धकार्य होजाओ १० हां हमने सुना है कि जिस मनुष्यका

जैसा स्वभाव जन्मके समय होताहै वह प्राणान्त होने तक नहीं जासक्ताहै ११ सो भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर और तुम समझकर जैसा उचित जानो वैसा कर लो जिसमें तुम्हारा प्रयोजन पहिलेहीसे नष्ट न होजावे ॥ १२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय।

धृतराष्ट्र और व्यासजीका आपस में पुत्र के स्नेहका संवाद होना।

व्यासजीकी उक्तबातको सुनकर धृतराष्ट्र कहनेलगा कि महाराज! जो यह जूये के कारण से विरोध खड़ा होगयाहै मैं भी उसको नहीं चाहता हूं मैंने यह जूआ केवल दैवहीकी प्रेरणासे कराया था १ क्योंकि भीष्म, विदुर, द्रोणाचार्य और गान्धारीभी जूआ होना नहीं चाहते थे २ हे महाराज! मैं सब दोषों को जानताहूं परन्तु क्या करूं पुत्रके स्नेहसे मैं अपने अज्ञानी दुर्योधन पुत्रको त्याग नहीं सक्ताहूं ३ यह सुनकर व्यासजी बोले हे धृतराष्ट्र! तुम सच कहतेहो पुत्रसे अधिक संसारमें दूसरा पदार्थ नहीं है परन्तु जिस पुत्रके कारण से शोक उत्पन्न होवे उस पुत्रको हम शत्रु के समान जानते हैं ४ अब हम तुमसे कामधेनु और इन्द्रका आख्यान कहतेहैं जिसमें इन्द्रने कामधेनुको रोतेहुए देखकर और २ कारणोंसे यह समझलिया कि पुत्रसे अधिक कुछ नहीं है ५।६ एकसमय ऐसा हुआ कि स्वर्गमें गौओंकी माता कामधेनु रोरही थीं उसी समय वहां इन्द्रभी आगया और उसे रोतेहुए देखकर कहनेलगा कि तू क्यों रोती है देवता मनुष्य और नागोंमें सबतरहसे क्षेम कुशलहै मैं जानताहूं कि तेरे रोनेका कोई बड़ा भारी कारण होगा ७।८ यह सुनकर कामधेनु बोली कि हे देवेन्द्र! मैं पुत्र के शोचमें रोरही हूं देखो यह नीच किसान मेरे दुर्बल पुत्रको जो अपने बलके अनुसार हलको खींचरहाहै पैना से माररहाहै और पीड़ा देरहाहै मुझसे यह दुःख देखा नहीं जाता है ९।११ और मेरा दूसरा पुत्र जिसके सूखकर हड्डियां रहगई हैं कितनेभारी बोझेको लिये जाताहै वह उस बोझेको उठा नहीं सक्ताहै परंतु उसके बेर २ पैना माराजाताहै कि जिसके कारणसे वह महादुःखी है सो मैं यह देखकर दयाके कारणसे आंसू डाल २ कर रोरही हूं १२।१४ यह सुनकर इन्द्र बोला कि तेरे तो सहस्रों पुत्र हैं किस किसपर कहां तक कृपा करेगी यहां तो केवल तेरे एकही दो पुत्र पीड़ा पारहे हैं १५ यह सुनकर कामधेनु बोली कि हां मेरेसहस्रोंपुत्र हैं परंतु जो पुत्र दुःखी है उसपर विशेष कृपाहै १६ व्यासजी

बोले हे धृतराष्ट्र! कामधेनुकी बातको सुनकर इन्द्रने निश्चय किया कि प्राणी को पुत्र प्राणों से भी अधिक प्यारा होताहै १७ और उसके दुःख को दूर करने के लिये इन्द्रने अकस्मात् बड़ा जल वर्षाया १८ सो हे राजा धृतराष्ट्र! जैसा कामधेनुने कहा था उसी प्रकारसे यद्यपि कई पुत्र मनुष्यके हों परंतु जो दीन और दुःखी होताहै उसपर विशेष प्रीति होती है १९ मेरा पुत्र जैसा पाण्डु था वैसाही तू और विदुर है मुझको सबसे एकसी प्रीति है परंतु तेरे एक ऊपर सौ पुत्रहैं कि वह बहुत दिनों तक विद्यमान रहेंगे और पाण्डु के केवल पांचही पुत्रहैं और वे पांच भी अत्यन्त दुःखी हैं २० । २१ सो मुझको इस विचारसे बड़ा दुःख होरहाहै कि पाण्डु के पुत्र क्योंकर जीवें और क्योंकर उनकी वृद्धि होय २२ सो हे धृतराष्ट्र! जो तुम कौरवोंको जिलाना चाहतेहो तो अपने पुत्र और पाण्डवोंका मिलाप करादो ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशवाँ अध्याय।

पाण्डवोंके पाससे मैत्रेय ऋषिका आना और दुर्योधनको समझाकर पाण्डवों से मिलाप करने का उपदेश करना दुर्योधन का न मानना और मैत्रेयजी का दुर्योधन को शाप देना।

धृतराष्ट्र बोला कि हे महामुने! आप सत्य कहतेहैं मैंभी ऐसाही जानताहूं और ये सब राजालोग और भीष्म विदुर और द्रोणाचार्य भी कौरवोंका उदय समान चाहते हैं परंतु जो आपका मेरे ऊपर अनुग्रह है और कौरवों पर दयाहै तो आप मेरे दुष्टचित्त पुत्रको शिक्षा कीजिये १।३ यह सुनकर व्यासजी बोले कि आज मैत्रेय ऋषि पाण्डवों के पास होते हुए मुझसे मिलने को आनेवालेहैं ४ वह तेरे पुत्रको न्यायके अनुसार कुलकी शान्तिके लिये शिक्षा करेंगे ५ सो तुमको जो कुछ वह कहें शङ्कारहित करना उचितहै और जो तुम अवश्य करनेके योग्य कामको न करोगे तो मैत्रेयजी तुम्हारे पुत्रको शाप देंगे ६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! व्यासजी उक्त प्रकारसे कहकर चलेगये और मैत्रेयऋषि वहां आये राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रसहित उनको बड़े आदर सत्कारसे लिया और विधिवत् अर्घ आदिसे उनकी पूजा करके विश्रान्त करनेपर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र कहने लगा ७ । ८ कि महाराज! आप कुरुजांगल देशसे प्रसन्नतापूर्वक आये हैं कुछ आपने दुःख तो नहीं पाया और पांचों पाण्डव कुशल हैं ९ और अपने प्रणको पूरा करना

चाहते हैं या नहीं कहीं कुरुवंशियोंकी भ्रातृसम्बन्धी प्रीतितो नाश नहीं होगी १० यह सुनकर मैत्रेयजी बोले कि मैं तीर्थयात्रा करता हुआ अकस्मात् काम्यक वनमें जा निकला था और वहां मैंने धर्मराज युधिष्ठिरको देखा ११ उस वनमें उस महात्मा युधिष्ठिरको देखनेकी इच्छासे मुनिलोग यूथके यूथ आये थे १२ मैंने वहां पर तुम्हारे पुत्रके जूआंरूपी अनर्थ और अनीति और बड़े भयका हाल सुना था १३ वह सुनकर मैं तुम्हारी प्रीति और स्नेह के कारणसे कौरवों के देखनेको यहां चलाआया हूं १४ सो मुझको बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हारे और भीष्मके जीतेजी तुम्हारे पुत्रोंमें क्योंकर विरोध हुआ १५ तुमको दण्ड देने और अनुग्रह करनेका सब अधिकार था फिर क्या कारण है जो तुमने ऐसी अनीति होनेदी १६ तुम्हारी सभामें चोरोंकीसी जो २ बातें हुईं वह तुमसे तपस्वियोंकी सभा में शोभा नहीं देती हैं १७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! मैत्रेयजी राजा धृतराष्ट्र से उक्त रीति से कहकर दुर्योधनकी ओर मुड़ बैठे और उस क्रोधीसे कहनेलगे १८ कि हे महाबाहो! हे महाभाग, दुर्योधन! मैं तेरे हितकी बात कहता हूं उसको सुन और समझ १९ तुझको पाण्डवोंसे विरोध करना उचित नहीं है भाई ऐसा काम करो जिसमें तुम पाण्डव कौरव और सब संसार प्रसन्न हों २० भाई पाण्डव बड़े शूरवीर बड़े पराक्रमी बड़े योद्धा दश २ सहस्र हाथियोंके समान बड़े बली वज्ररूपी देहधारी और बड़े दृढ़ हैं २१ इसके सिवाय वे सब सत्यव्रती सब मनुष्योंका मान रखने वाले और राक्षसोंके मारनेवाले हैं २२ देखो उन्होंने हिडम्ब और बक नामी राक्षसोंको मारा था और अब किर्मीर नाम राक्षसको जो इधरसे जानेके समय पहाड़की समान उनकी राह रोककर खड़ा होगया था भीमसेनने पशु मारने की समान इसप्रकारसे मारडाला मानो व्याघ्रने किसी मृगको माराहै भला जिन पाण्डवोंके हाथसे दशसहस्र हाथीका बल रखनेवाला धनुषधारी जरासंध जिसके सम्बन्धी वासुदेवसे और साले राजा पृषतके पौत्रसे थे मारागया २३।२६ उनके सम्मुख युद्ध करनेको ऐसा मनुष्य जायगा जो बुढ़ापा और कालका मारा हुआ होगा इससे हे दुर्योधन! तुझको पाण्डवों से मिलापही करना ठीकहै २७ अब तू क्रोधको छोड़दे और मेरा कहना मान २८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! दुर्योधन मैत्रेयजी की उक्तबात को सुनकर हाथ से अपनी जांघ ठोकने लगा और मन्द हँसकर पैरकी उँगलियों से पृथ्वी पर

रेखा खींचनेलगा और कुछ नीचेको शिर झुकाकर चुप होकर बैठगया यह अपमान देखकर मैत्रेयजी क्रोधित होगये और शाप देनेकी इच्छासे लाल लाल नेत्र कियेहुए ईश्वरकी प्रेरणा से आचमन कर शाप देने लगे २९। ३२ कि हे दुर्योधन! जो तू मेरा अपमान करके मेरे कहनेको नहीं मानताहै इस कारण से इस अभिमान का फल तुझको शीघ्रही मिलेगा ३३ तेरे इस द्रोहके कारण से बड़ाभारी युद्ध होगा और उस युद्धमें भीमसेन तेरी जङ्घाको गदा मारकर तोड़डालेगा ३४ यह सुनकर धृतराष्ट्रने मैत्रेयजीको प्रसन्न किया और कहा कि महाराज! ऐसा कीजिये जिससे यह बात न होवे ३५ यह सुनकर मैत्रेयजीने कहा कि जो तेरा पुत्र पाण्डवों से मिलाप करलेगा तो यह शाप नहीं लगेगा नहीं तो जैसा हमने कहाहै वैसाही होगा ३६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे राजा धृतराष्ट्रने भीमसेनके बलको याद करके मैत्रेयजी से पूछा कि महाराज भीमसेनने किर्मीरदैत्यको क्योंकर मारा था ३७ यह सुन कर मैत्रेयजी बोले कि अब मैं तुमसे कुछ नहीं कहूंगा तुम्हारा पुत्र हमारी बात को सुनना नहीं चाहताहै मेरे पीछे विदुरजी तुमको यह वृत्तान्त सुनावेंगे ३८ यह कहकर मैत्रेयजी तो चलेगये और दुर्योधन किर्मीरदैत्य का वध सुनकर व्याकुल होकर बाहरको चलागया ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय।

विदुरजीका राजा धृतराष्ट्रसे भीमसेनके हाथोंसे किर्मीरदैत्यके मारेजानेका वृत्तान्त कहना।

धृतराष्ट्र बोले हे विदुर! मैं किर्मीरदैत्य के मारे जानेका हाल सुना चाहता हूं भीमसेनका उस दैत्यसे क्योंकर समागम हुआ १ विदुर बोले कि बहुत अच्छा आपसे भीमसेनके इस अमानुष कर्मको कहताहूं मैंने इस संवाद को कईबेर सुनाहै २ जूयेमें हारकर यहांसे चलेजानेपर पाण्डव तीनरात और तीनदिनमें काम्यकवन में पहुँचे ३ उस बनको मनुष्यके खानेवाले राक्षस के डरसे गोपोंने त्याग करदिया था पाण्डव उस वनमें आधीरातके समय पर पहुँचे और ज्योंही उस वनमें घुसे त्योंही एक भयानक राक्षस जिसके नेत्र जलरहे थे हाथमें उल्मुक लिये हुए पाण्डवोंकी राह रोककर अकस्मात् आखड़ा हुआ ४। ६ और अपनी बाहोंको लम्बी और मुखको भयानक करके राह रोकेहुए खड़ारहा ७

उसकी आठों डाढ़ें लाल २ नेत्र और शिरके बाल सूर्य और बिजलीकी सदृश चमकरहेथे ८ उस राक्षसने अपनी राक्षसी माया की और बड़े शब्दसे चिल्लाकर सजल बादलके समान गर्जनेलगा ९ उसकी गर्जनासे सब वनवासी पक्षी डर गये और जलचारी जीव भयभीत होकर अपनी अपनी बोलीमें आर्त्त शब्द करने लगे १० उस समय मृग, हाथी, भैंसा और रीछ आदि जीवोंके इधरसे उधर और उधरसे इधर भागने के कारणसे वह वन ऐसा दीखने लगा मानों वन चलताहै ११ और उस वनके लाल २ पत्ते रखनेवाले वृक्ष जो दूर २ परभी थे उस राक्षसकी जाँघोंके चलनेकी हवासे उखड़ २ कर दूसरे वृक्षोंपर जाजा पड़े १२ उसी समय उस वनमें वायु बड़े वेगसे बहनेलगी कि जिसके कारणसे आकाश धूलिसे ढकगया और अन्धकार होगया १३ वह दैत्य फिर पाण्डवों को देखकर उस वनके द्वारपर मैनाक पर्वतकी समान खड़ा होगया पाण्डव उसे नहीं जानतेथे और द्रौपदी पहिले कभी किसी दैत्यको न देखनेके कारणसे भयभीत होगई और उसने अपनी दोनों आंखें बन्द करलीं १४ । १६ उससमय वह द्रौपदी जिसके बाल बिखरेहुये थे उन पांचों पाण्डवोंके बीचमें इस प्रकारसे व्याकुल होगई मानों पांच पहाड़ों के बीचमें होकर नदी व्याकुलता से बहरहीहै १७ पाण्डवोंने द्रौपदीको मोहित देखकर इस प्रकारसे पकड़लिया जैसे विषयोंमें लगी हुई इन्द्रियां रतिको पकड़लेवें १८ उससमय धौम्यऋषिने राक्षसोंको नाश करनेवाले मन्त्रोंसे उस राक्षसकी सब माया पाण्डवोंके देखते २ दूरकरदी और वह राक्षस मायाके नष्ट होने पर नेत्र फाड़ेहुए कालकी समान दीखनेलगा युधिष्ठिर उसे देखकर बोला १९ । २१ कि आप कौनहैं और किसके पुत्रहैं हम आपका क्या काम करें यह सुनकर वह दैत्य बोला २२ कि मैं किर्मीरनामी दैत्य बकासुरका भाईहूं और इस काम्यकवनमें निर्भय रहताहूं २३ और आये हुए मनुष्योंको युद्धमें जीतकर भक्षण किया करताहूं तुम बताओ कौनहो तुम सबको अब मैं जीत कर भक्षण करूंगा २४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिर उस दुरात्मा दैत्य की बातको सुनकर उसे अपना गोत्र और नाम बतानेलगा २५ कि मैं युधिष्ठिर धर्मराज हूं और ये चारों भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव नामी मेरे भाई हैं और हम सब राजा पाण्डुके पुत्रहैं तैंनेभी हमारा नाम सुना होगा २६ हम सब राज्यहीन होकर इस तेरे वनमें वास करनेको आये हैं २७ यह सुनकर वह राक्षस बोला कि देवताओं की कृपा और मेरे भाग्य से आज

मुझे इच्छा के अनुसार भोजन मिला है २८ मैं भीमसेनको मारनेकी इच्छासे शस्त्र लिये हुए बहुत दिनोंसे उसे ढूंढ़ता फिरताहूं परन्तु मुझे यह कहीं नहीं मिला आज दैवयोगसे मिलाहै इसीने मेरे प्यारे भाई बकको वेत्रकीय वनमें कपटरूप ब्राह्मणके वेषसे विद्याबलके द्वारा माराथा २९ । ३१ इसी भीमसेनने पहिले मेरे हिडम्बनामी मित्रको माराथा और उसकी बहिन हरली थी ३२ आहा आज यह वही भीमसेन मेरे इस गहन वनमें आधीरातको मेरे यहां होतेहुए आयाहै ३३ अब मैं इससे अपना पुराना वैर लेकर इसके लोहू से बकदैत्यको तृप्त करूंगा ३४ और इस राक्षसोंके कांटेको उखाड़कर अपने भाई और मित्रसे अऋण होकर स्वस्थचित्त होकर बैठूंगा ३५ हे युधिष्ठिर! पहिले यह भीमसेन बकके हाथ से बच गयाथा अब मैं इसे मारकर तेरे सामने भक्षण करूंगा ३६ और इस प्रकार से इसको पचाऊंगा जैसे अगस्त्यजीने बड़े दैत्यको पचायाथा ३७ यह सुनकर धर्मात्मा, सत्यसंध युधिष्ठिरने क्रोधित होकर उस दैत्य को घुड़का और कहा कि अरे मूढ़! तू ऐसा नहीं करसक्ताहै ३८ उसी समय भीमसेनने एक बड़ा लम्बा पेड़ उखाड़ लिया और उसके पत्ते नोचडाले ३९ और अर्जुनने गांडीवधनुष हाथमें लेकर एकपलभरमें चलाने के योग्य करलिया ४० उस समय भीमसेनने अर्जुन को रोकदिया और उस मेघकी समान गर्जतेहुए राक्षसके सम्मुख जाकर कहनेलगा कि ठहर ठहर ४१ और क्रोधसे दांत पीसकर और कमरको बांधकर हाथ मलताहुआ दौड़ा और यमराज के दण्डके समान अपने उस वृक्षरूपी शस्त्रको उस राक्षसके शिरपर इस प्रकारसे मारा मानों इन्द्र ने वज्र माराहै उसके लगनेसे वह राक्षस संभ्रांत सा होगया ४२ । ४४ और उसने अपनी जलती हुई उल्मुक अर्थात् मशालको फेंककर भीमसेन के मारा भीमसेनने उस मशाल को बायें पावँ से दाबकर फिर राक्षसही की ओर फेंकदी उस समय उस दैत्यने भी अकस्मात् एक वृक्ष उखाड़ लिया ४५ । ४६ और क्रोधित होकर यमराजकी समान भीमसेनपर दौड़ा उन दोनोंमें युद्ध इस प्रकारसे होने लगा जैसे पहिले समयमें तारानाम स्त्रीके पीछे बालि और सुग्रीवनामी दोनों भाइयोंका युद्ध हुआथा उन दोनोंके वृक्षोंसे युद्ध करनेके कारणसे उस पृथ्वीके सब वृक्ष नाश होगये और दोनोंके शिरोंपर लग २ कर टुकड़े२ होगये ४७ । ४८ और जैसे दो मतवाले हाथियोंके चलनेसे कमलोंके वनके वन नाश होजाते हैं इसी प्रकारसे उन दोनों नरोत्तम भीमसेन और राक्षसोत्तम किर्मीर के युद्धसे उस वनके

वृक्ष मूंज के समान जर्जरीभूत होगये और बहुत से वृक्षों के बकले उतर २ कर गिरपड़े एक मुहूर्त तक तो उन दोनों का युद्ध वृक्षों से हुआ उपरांत राक्षसने एक शिला उठाकर भीमसेनके मारी परन्तु भीमसेन अचल खड़ारहा ४९ । ५१ और वह राक्षस उसके ऊपर इस प्रकारसे दौड़ा मानों राहु सूर्यपर दौड़ताहै ५२ और एक दूसरेसे चिपटकर दो बड़े बैलों के समान लड़नेलगे ५३ उनका यह युद्ध दो व्याघ्रों की समान बड़ा भयानक हुआ और भीमसेन जिसके हृदय में द्रौपदी को सभा में लाने और दुर्योधन के दुःख देने का क्रोध भराहुआ था प्रबल होगया ५४।५५ और उसने उस राक्षसको अपनी भुजाओं से दाबकर इसप्रकार से पकड़लिया जैसे एकहाथी दूसरे मतवालेहाथीको पकड़लेवे ५६ फिर उसराक्षसनेभी भीमसेनको पकड़लिया परन्तु भीमसेनने उसे बलसे हटादिया ५७ उन दोनोंकी भुजाओंके प्रहारका शब्द ऐसा होताथा जैसे वेणुका वन जलते में चटकताहै ५८ इसके पीछे भीमसेनने उस राक्षसको हटाकर और कमर पकड़कर इसप्रकार से दे मारा जैसे वायु वृक्षको उखाड़कर पटकदे ५९ उस समय उस दुर्बल दैत्यने कुछ चलायमान होकर उस बली भीमसेनको भी थोड़ा हटाया ६० परंतु भीमसेनने उसे थकाहुआ जानकर अपनी भुजाओं से इस प्रकारसे दबालिया जैसे पशुको रस्सी से बांधकर दबालेते हैं ६१ और उस चिल्लाते पुकारते फड़फड़ाते को देरतक घुमाया किया उपरांत उसे विषादयुक्त जानकर पशुकी भांति मारने लगा ६२ । ६३ और उसकी कमर को घोंटूसे दबाकर गला मसक दिया ६४ और उसकी देहीको पकड़कर पृथ्वी पर कढ़ेलने लगा और क्रोधित होकर बोला ६५ कि अरे पापी ! तू बक और हिडम्ब को विनाही पूछे यमलोक को चला ६६ इसके पीछे भीमसेनने उसे निर्जीव जानकर छोड़ दिया ६७ और सब पाण्डव प्रसन्न होकर भीमसेनकी प्रशंसा करतेहुए द्रौपदी को आगे करके द्वैत वनको चल दिये ६८ इतनी कथा सुनाकर विदुरजी बोले कि हे राजा धृतराष्ट्र ! भीमसेनने युधिष्ठिरकी आज्ञासे उक्तप्रकारसे किर्भीर दैत्यको माराथा ६९ पाण्डव उस वनको निष्कंटक करके उसी वनमें वास करने लगे ७० और सब भाइयों ने द्रौपदी को धैर्य देकर भीमसेनकी प्रशंसा की ७१ जब मैं पाण्डवों के पास गयाथा तब राहमें मैंने भी उस दैत्यको मराहुआ पड़ा देखाथा ७२ । ७३ और वहां पर जो ब्राह्मणलोग इकट्ठे हुए थे उन्हीं के मुखसे मैंने यह भीमसेन के युद्धका हाल सुनाथा ७४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा

धृतराष्ट्र भीमसेन के हाथों से किर्मीर दैत्यका वध सुनकर दुःखी हुआ और चिन्ता करके श्वास लेने लगा ॥ ७५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय।

पाण्डवों के दुःखका हाल सुनकर श्रीकृष्ण आदि अनेक क्षत्रिय और राजाओं का वनमें पाण्डवों के पास आना श्रीकृष्णजीका क्रोध करना अर्जुनका श्रीकृष्णजी की स्तुति करना द्रौपदी को श्रीकृष्णजी के सम्मुख विलाप करना और उनका द्रौपदी को धैर्य देना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पाण्डवों के वनवास और क्लेशका हाल सुनकर भोज, वृष्णि और अंधकवंशी क्षत्रिय, राजा द्रुपदके पुत्र, चंदेरीका राजा धृष्टकेतु और बड़े पराक्रमी पांचों भाई कैकेय उस महावन में पाण्डवों के पास आये और क्रोध करके धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी निन्दा करतेहुए पूछने लगे कि जो कुछ तुम कहो सो हम लोग करें १। २ और श्रीकृष्णजीको आगे करके युधिष्ठिर को घेरकर बैठगये उस समय श्रीकृष्णने व्याकुल होकर युधिष्ठिर से कहा कि ४ दुर्योधन, कर्ण, शकुनी और दुश्शासन इन चारोंका लोहू पृथ्वी पीवेगी हम सबलोग मिलकर उन चारों और उनके साथियों को युद्ध में जीत कर मारेंगे और युधिष्ठिरका अभिषेक करेंगे छलियों को मारना सनातनधर्म है ५। ६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस समय श्रीकृष्णजी को पाण्डवोंके दुःख के कारणसे क्रोधित देखकर अर्जुन श्रीकृष्णजी के क्रोधका शान्त करने के लिये उनके पूर्वजन्मों में किये हुए कर्मों का कीर्तन करने लगा ७। ६ ये श्रीकृष्ण अप्रमेय, सत्यरूप, बड़े तेजस्वी प्रजापति के स्वामी, विष्णु, लोकनाथ और ज्ञानरूप थे १० अर्जुन कहने लगा कि हे श्रीकृष्णजी! पहिले समयमें आप मुनिरूप से गन्धमादन पर्वत पर दशसहस्र वर्षतक इसप्रकार से विचरा किये कि जहां संध्या होजाती थी वहीं आप अपना घर समझते थे ११ फिर आप पुष्करजी में ग्यारह सहस्र वर्षतक केवल जल पीकर रहे १२ इसके पीछे आपने एक पांव से खड़े होकर बदरिकाश्रम में सौ वर्षतक ऊपर को हाथ किये हुए केवल वायुभक्षी रहकर तपस्या की १३ फिर आपने सरस्वती नदी के किनारे बारह वर्ष के यज्ञ में अपनी देही को लटकाकर और निर्मांस करके उत्तरीय वस्त्र त्याग कर तपस्या की १४ उपरांत आपने प्रभास नाम

तीर्थ में नियमपूर्वक एक पाँव से खड़े रहकर सहस्र वर्षतक तपस्या की १५ व्यासजी से हमने आपकी यह प्रशंसा सुनी है कि आपही लोक की प्रवृत्ति के कारण हैं सबके आप अन्तरात्मा और आदि अन्त हैं आप तपनिधान और सनातन यज्ञ हैं १६ । १७ आपनेही पृथ्वी के नरक नामी पुत्र को मारा और मणि और कुण्डल लेकर यज्ञ के घोड़े को छुड़ाया और युद्ध में सब दैत्य और दानवों का नाश किया आप तीनों लोक में सबसे श्रेष्ठ और सब लोकों की जय करनेवाले हैं १८ । १९ आपने अब सब ईश्वरत्व इन्द्र को देकर पृथ्वीपर जन्म लिया है २० तुमहीं नारायण हो, तुमहीं हर हो, तुमहीं ब्रह्मा हो, तुमहीं चन्द्रमा हो, तुमहीं सूर्य हो, तुमहीं धर्म हो, तुमहीं धाता हो, तुमहीं यम हो, तुमहीं अग्नि हो, २१ तुमहीं वायु हो, तुमहीं कुबेर हो, तुमहीं रुद्र हो, तुमहीं काल हो, तुमहीं आकाश हो, तुमहीं पृथ्वी हो, तुमहीं दिशा हो, तुमहीं चरअचर के गुरु हो और तुमहीं स्रष्टा अर्थात् दक्षप्रजापति आदि सृष्टि के करनेवाले हो २२ तुमहीं ने चैत्ररथ वन के यज्ञों में ब्रह्म की पूजा की २३ और उन प्रत्येक यज्ञों में एक एक कोटि सुवर्ण तुम ने खर्च किया २४ तुमहीं अदिति के यहां जन्म लेकर विष्णु नाम से इन्द्र के छोटे भाई विख्यात हुए २५ तुमहीं ने वामनस्वरूप धरकर स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी को अपने तेज से तीन पग में अन्तर्गत करलिया २६ तुमहीं ने स्वर्ग और आकाश को प्राप्त करके सूर्यलोक में सूर्यमण्डल को अपने तेज से सुशोभित किया २७ तुमहीं ने सहस्रों अवतार लेकर सैकड़ों दैत्यों को जो अधर्मी थे नाश किया २८ तुमहीं ने तांत की बनी हुई पाशों को काटकर निसुंद और नरक नाम दैत्यों को मारा और प्राग्ज्योतिषनाम नगर की राह निष्कण्टक करदी २९ तुमहीं ने जारूथी नाम नगरी में आहृत, किरात, शिशुपाल, जरासन्ध, शैब्य और शतधन्वा आदिकों को विजय किया था ३० और अपने श्रेष्ठ रथ में जो सूर्य की समान प्रकाशित और मेघ के समान धड़धड़ाता था बैठकर युद्ध में शत्रुओं को जीतकर रुक्मिणी सी पटरानी पाई ३१ इन्द्रद्युम्न का वध तुमहीं ने किया था और कसेरुमान नाम यवन को मारकर शाल्व का वध किया जो आकाश में चलनेवाला था और उसके भौमनाम नगरको गिरा दिया ३२ तुमहीं ने इरावती नगरी में राजा भोज को जो कार्त्तवीर्य के समान युद्ध करनेवाला था मारडाला था ३३ गोपति और तालकेतु को भी तुमने ही मारा था तुमने उस द्वारकापुरी को जो भोगवती पुण्यस्थान और ऋषिकपर्वत के समीप बसती है अपनी आत्माके

स्वरूप में मिला लिया है और वह समुद्र में ही लोप होजायगी। तुम क्रोधी, झूठे, निर्दयी और कुटिल नहीं हो ३४। ३५ ऋषिलोग अपने हृदय में अपने तेज से दीप्त और विराजमान तुमको ध्यान करके अभय रहते हैं ३६ तुमहीं युग के अन्त में विना निमित्त सब जीवों को अपनी आत्मामें लय करके जगत्स्वरूप होजाते हो ३७ और युग के आदि में तुम्हारी ही नाभि में उत्पन्न हुए कमल से ब्रह्माजी जो सब जगत् के कर्ता और सब जड़ और चैतन्य के गुरु हैं प्रकट होते हैं ३८ और ब्रह्माजी के मारने को जब मधु और कैटभ नामी बड़े पराक्रमी दैत्य उत्पन्न हुए थे तब तुम्हारे ही ललाट से त्रिनेत्रधारी शिवजी हाथ में शूल लिये हुए प्रकट हुए इस प्रकार से ये दोनों अर्थात् ब्रह्मा और शिवजी भी तुम्हारे ही शरीर से उत्पन्न हुए हैं ३९। ४० ये दोनों देवेश तुम्हारे आज्ञाकारी हैं हमसे नारदजी ने यह सब हाल कहा है तुमहींने पहिले समय में चैत्ररथ वन में महासत्र यज्ञ किया था जिसमें बड़ी दक्षिणा बाँटी है ऐसा यज्ञ देवता और मनुष्यों में कोई नहीं करसक्ता है ४१। ४२ बाल्यावस्था में भी तुमने बलदेवजी को सहायक करके बड़े बड़े काम किये थे तुम कैलासभवन में भी ब्राह्मणों के साथ रहते हो ४३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन उक्तप्रकार से श्रीकृष्णजी की स्तुति करके चुपका हो रहा उससमय श्रीकृष्णजी कहने लगे ४४ कि हे अर्जुन! जो तू है सोही मैं हूं और जो मैं हूं सो तू है, जो मेरे हैं सो तेरे भी हैं, तुझसे जो द्वेष करते हैं वे मुझसे पहिले करते हैं और जो तुझसे प्रीति करता है वह मुझसे भी करताहै ४५ तू नरहै और मैं नारायण हूं, हम और तू दोनों नारायण और नररूप से इस संसार में काल के अनुसार प्रकट हुए हैं ४६ न तू हमसे दूसराहै न हम तुझसे दूसरे हैं, हमारे और तेरे बीचमें कोई किसी प्रकार का भेद नहीं है ४७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! श्रीकृष्णजीकी बातको सुन कर वह द्रौपदी जो क्रोध में भरी हुई अपने वीर भाइयों के बीच में बैठी हुई थी शरण जाने की इच्छा से श्रीकृष्णजी के पास जो शरण के योग्य थे गई और कहने लगी ४८। ४९ कि मैंने असित और देवलऋषियों से सुना है कि आप प्रजापति, प्रथम पुरुष और जगत्कर्ता हैं ५० परशुरामजीने आपको विष्णु अर्थात् सर्वव्यापी, यज्ञ, यज्ञ का करनेवाला और पूजन योग्य कहा है ५१ और कश्यपजी आपको क्षमा, सत्य और सत्यसे उत्पन्न यज्ञ कहते हैं ५२ मैंने नारदजी से यह सुना है कि आप आकाश आदि पांचों तत्त्वोंके उत्पन्न करनेवाले और सबप्राणी, साध्यगण,

देवता और एकादश रुद्रोंके भी ईश्वर हैं ५३ आप ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र आदि देवताओं को उत्पन्न करके इस प्रकार से उनके साथ क्रीड़ा करते हैं जैसे लड़का खिलौनों से खेलताहै ५४ आप सनातन हैं शिर अपका आकाश, पृथ्वी आपके चरण और सम्पूर्ण लोक आपका जठर है ५५ जो ऋषि विद्यावान्, तपस्वी, शुद्धचित्त और आत्मदर्शी हैं उनके निकट आपही सत्य हैं ५६ आप पुण्यकर्म करनेवाले, युद्धमें न रुकनेवाले, सब धर्मयुक्त, राजऋषियों की गति, प्रभु, व्यापक और भूतात्मा हैं ५७ और सब लोकपाल, लोक, नक्षत्र, दशों दिशा, आकाश, चन्द्रमा और सूर्य सब आपही के अन्तर्गत हैं ५८ और सब देवताओं का अमर होना, मनुष्यों का मरना और सब लोकों का कार्य होना आपही की इच्छा के अनुसार है ५९ आप मनुष्य और दिव्य सब जीवों के ईशहैं मैं नम्रतापूर्वक आपसे अपना दुःख कहती हूं आप उसको सुनिये ६० हे श्री कृष्णजी ! आपकी सखी पाण्डवोंकी भार्या और धृष्टद्युम्न की बहिन होनेपर मेरी यह गति हुई कि धृतराष्ट्र का पुत्र मुझ रजस्वला, रुधिर भरी हुई और एक वस्त्र धारण कियेहुई को कौरवों की सभामें जहां सब राज लोग बैठे हुए थे खींचकर लेगया और धृतराष्ट्र के और पुत्रों ने वहां मेरी हँसी की ६१।६२ और पाण्डव, पांचाल और वृष्णिवंशियों के जीतेजी उन्होंने मुझे दासी करके रखना चाहा ६४ धृतराष्ट्र और भीष्म की मैं धर्म के अनुसार पुत्रवधू हूं सो मुझे बलसे दासी करलिया ६५ अब मैं इन पराक्रमी पाण्डवों की भी निन्दा करती हूं कि ये सबके सब मुझसी धर्मवान् अपनी पत्नी का क्लेश देखते रहे ६६ अर्जुन के इस गाण्डीव धनुष और भीमसेन के बलको धिक्कारहै जो ये नीच मनुष्यों से सताई हुई मुझको देखा किये ६७ जो कोई थोड़ासा भी पराक्रम रखता है वहभी अपनी स्त्री की रक्षा करता है यह धर्म सनातन है और सत्पुरुषोंने सदैवसे ऐसाही किया है ६८ क्योंकि स्त्री के रक्षित रहनेपर संतानकी रक्षा होती है और संतान के रहने से अपनी आत्माकी रक्षा होती है ६९ स्त्री पति की जाया कहलाती है क्योंकि पति स्त्री के पुत्ररूप से जन्म लेता है और स्त्री को भी पति की रक्षा करना इस विचार से उचित है कि मेरा पति मेरे उदरमें पुत्ररूप से जन्म लेगा ७० पाण्डवों ने शरणागतका त्याग कभी नहीं किया परंतु इन्होंने मेरी रक्षा शरण आनेपर भी नहीं की ७१ देखो मेरे ये पांचों तेजस्वी पुत्र इन पांचों पतियों से उत्पन्न हैं इनके कारण से तो मेरी रक्षा करना पाण्डवों को अवश्य उचित था ७२ यह प्रतिविन्ध्य

युधिष्ठिरसे, यह सुतसोम भीमसेनसे, यह श्रुतकीर्ति अर्जुनसे, यह शतानीक नकुल से और यह श्रुतिकर्मा सहदेवसे उत्पन्नहै। हे श्रीकृष्णजी ! मेरे ये पांचोंपुत्र प्रद्युम्न की समान महारथी हैं ७३। ७४ धनुर्विद्या में इन पांचों का अभ्यास श्रेष्ठहै और शत्रु इनको नहीं जीतसक्ता है परन्तु न जाने ये सबके सब इन धृतराष्ट्र के दुर्बल पुत्रोंकी अनीति को क्यों सहा किये ७५ हाय उन धृतराष्ट्र के पुत्रोंने अधर्म से सब राज्य लेकर सबको दासकर लिया और मुझ रजस्वला एक वस्त्र पहिरे हुई को सभा में खींच लेगये ७६ जिस गाण्डीव धनुषको अर्जुन, भीमसेन और आप के सिवाय और कोई नहीं चढ़ासक्ता है वह धनुष अब कहां गया ७७ हे कृष्णजी ! जो यह दुर्योधन एक क्षणभर भी जीता रहा तो भी भीमसेन के पराक्रम और अर्जुन के पौरुषको धिक्कार है ७८ इसी दुष्ट ने इन पाण्डवों को बालापन में जब ये विद्याही पढ़ते थे मातासहित देश से बाहर निकालदिया था ७९ और इसीने भोजन में कालकूट विष मिलवाकर भीमसेन को खवाया था ८० परन्तु आयुर्बल विशेष होने के कारणसे वह विष अन्नके साथ पचगया ८१ इसकेसिवाय उस दुष्टने विश्वासपूर्वक सोते हुए भीमसेन को बँधवाकर प्रमाणकोटि में गङ्गाजी में डलवा दिया और आप लौटकर चला आया ८२ जब भीमसेन जगे तब उन बन्धनों को तोड़कर चले आये ८३ भीमसेन को इसने काले सांपों से भी कटवाया परंतु भीमसेन मरे नहीं ८४ जब भीमसेन की मूर्च्छा जगी तब भीमसेन ने उन सांपों को मारडाला और उस दुष्टके प्यारे सारथी को उलटे हाथ के थप्पड़ से मारा ८५ इन सब बातों के सिवाय उस दुष्टने इन बालक पाण्डवों को मातासहित वारणावत नगर में जलाना चाहा था भला कौन ऐसा होगा जो ऐसा काम करेगा ८६ उस स्थानपर मेरी आर्या अर्थात् सासने अग्नि से डरकर रोकर पाण्डवोंसे कहा ८७ कि हाय मेरी यह आग क्योंकर बुझै अब मैं इन बालक पाण्डवों सहित अनाथ की तरह जल मरूंगी ८८ उस समय भीमसेन ने जिसका पराक्रम वायु की समान है अपने भाई और माँको धैर्य दिया और कहा कि डरो मत मैं तुम सबको लेकर गरुड़ की समान उछलकर इस अग्नि के बाहर ले चलूंगा ८९। ९० और फिर बाईं गोद में अपनी माँ को दाहिनी में युधिष्ठिर को दोनों कन्धों पर नकुल और सहदेव को और पीठपर अर्जुन को चढ़ा लिया और अकस्मात् उछलकर बाहर निकल आया और सबको अग्नि से बचा लिया ९१। ९२ रात्रि के समय वहां से मातासहित सब भाई आगे चल दिये और हिडम्ब राक्षस के

रहने के वन में पहुंचे ९३ वहां पर थकावट के कारण से ये चारों भाई मातासहित सोगये उससमय इनके पास हिडम्बानामराक्षसी आई और भीमसेन के स्वरूप को देखकर कामासक्त होगई फिर उस अबला और कल्याणी राक्षसी ने अपनी गोद में भीमसेन के गोड़ रख लिये और अपने कोमल हाथों से दाबने लगी ९४ । ९६ उससमय इन पराक्रमी और बुद्धिमान् भीमसेन ने उस राक्षसी से पूछा कि तू क्या चाहती है तब उस राक्षसीने भीमसेन से कहा ९७। ९८ कि चलो यहां से जल्दी कहीं को भाग चलें क्योंकि यहां मेरा बड़ा पराक्रमी भाई तुम सबके मारने को आवेगा ९९ भीमसेन उसकी बात को सुनकर अभिमान सहित कहने लगा कि मैं तेरे भाई से नहीं डरता हूं जो वह यहां आवेगा तो मैं उसको मारूंगा १०० इसके पीछे वह भयानक राक्षस उन दोनों की बातों को सुनकर गर्जता हुआ वहां चला आया १ और अपनी बहिन से कहने लगा कि अरी हिडम्बा ! तू किससे बात कर रही है इसे जल्दी यहां लेआ हम दोनों इसको भक्षण करेंगे २ तब उस अनिन्दिता और मनस्विनी राक्षसी ने स्नेह और दया के कारण से भाई को कुछ उत्तर नहीं दिया ३ इसपर वह नरभक्षी राक्षस घोर शब्द करता हुआ आपही दौड़कर भीमसेन के सन्मुख चला आया ४ और क्रोध करके जल्दी से भीमसेन का हाथ अपने हाथ से पकड़ लिया ५ और भीमसेन के वज्र के समान एक मूका मारा ६ भीमसेन उसको न सहके और क्रोधित होकर ७ उससे युद्ध करने लगे उन दोनों का आपस में ऐसा युद्ध हुआ जैसा पहले इन्द्र और वृत्रासुर का हुआ था ८ भीमसेन ने बहुत देरतक तो उस राक्षस के साथ क्रीड़ा की उपरान्त जब वह निर्बल हुआ तब उसे मार डाला ९ और हिडम्बा को आगे करके अपने भाई और मातासहित वहां से चल दिये। उसी हिडम्बा से घटोत्कच उत्पन्न हुआ १० फिर मातासहित सब पाण्डवों ने एकचक्रापुरी नाम नगर की राहली राह में व्यासजी महाराज उनको मिले उन्होंने पाण्डवों को सलाह दी और पाण्डव उनके साथ साथ एकचक्रापुरी नाम नगर में आ पहुँचे ११ । १२ वहां भी एक बकनामी नरभक्षी राक्षस हिडम्ब के समान पराक्रमी था भीमसेन ने उसको भी मारडाला और वहां से चलकर सब भाई और मातासहित द्रुपद के नगर में पहुँचे १३ । १४ और वहां रहकर अर्जुन ने मुझे पाया जैसे हे श्रीकृष्ण ! आपने भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी पाई थी १५ अर्जुन ने स्वयंवर में वह काम किया जो दूसरे से होना कठिन था और श्रेष्ठ युद्ध करके मुझे जीतकर ले आये १६ सो हे श्रीकृष्णजी !

मैं ऐसी होनेपर भी अब महादुःखी और क्लेशित होकर विना सास के यहां रही हूं और धौम्यऋषि मेरे आगे चलते हैं १७ हाय मैं नहीं जानती हूं कि ऐसे पराक्रमी पाण्डव उन हीनपराक्रम शत्रुओं के दिये हुए मेरे क्लेश को क्यों सह रहे हैं १८ उन पापी और दुर्बल शत्रुओं के दिये हुए दुःख मेरे हृदय से बहुत दिनों तक कभी दूर न होंगे १९ इसमें संदेह नहीं है कि मैं दिव्यविधि से उत्पन्न होकर बड़े कुल की बेटी हूं, पति मेरे पाण्डव से हैं और महात्मा पाण्डु की मैं पुत्रवधू हूं २० सो हे श्रीकृष्णजी ! ऐसी होनेपर भी इन पाण्डवों के देखते हुए मेरे बाल पकड़े गये २१ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! द्रौपदी उक्तरीति से कहकर अपने कमलरूपी कोमल हाथों से मुख को ढककर रोने लगी २२ और उसके आंसू उसके स्तनोंपर जो दृढ़ पुष्ट, सुडौल और शुभ लक्षणों से युक्त थे गिरने लगे २३ उस समय द्रौपदी क्रोधित होकर गद्गदवाणी से आंखों को बारम्बार पोंछती हुई कहने लगी २४ कि हे मधुसूदनजी ! न मेरे पति हैं, न पुत्र हैं, न भाई हैं, न बान्धव हैं, न पिता है, न आप हैं २५ जो नीच आदमियों से मुझे सताई हुई देखकर सब के सब मेरे दुःख को सह रहे हो कर्ण का हँसना मेरे हृदय में खटक रहा है उसकी हँसी का दुःख दूर नहीं होता है २६ सो हे श्रीकृष्णजी ! आपको चार कारणों से मेरी रक्षा करनी उचित है । १ सम्बन्ध २ गौरव ३ आपकी भक्ति और ४ आपकी ईश्वरता २७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर श्रीकृष्णजी उन सब वीरों के बीच में द्रौपदी से कहने लगे कि हे द्रौपदि ! जिन पर तू कोपित हो रही है उन सबकी स्त्रियां भी इसी प्रकार से रोवेंगी और अर्जुन के बाणों से मरे हुए और रुधिर में भरे हुए पृथ्वीपर पड़े हुए अपने अपने भर्त्ताओं को देख देख कर विलाप करेंगी और मैं भी जो कुछ पाण्डवों की कामना होगी सोही करूंगा तू शोच मत कर २८ । २९ मैं तुझसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि तू राजाओं की रानी होकर रहेगी । चाहे आकाश गिरपड़े, हिमालय पहाड़ विशीर्ण होजाय, पृथ्वी फटजाय और समुद्र सूख जाय परंतु मेरा वाक्य निष्फल नहीं होगा । यह सुनकर द्रौपदी तिरछी दृष्टि से अर्जुन की ओर देखने लगी अर्जुन उसकी बात और श्रीकृष्णजी के उत्तर को सुनकर द्रौपदी से कहने लगा ३० । ३२ कि हे रक्तनेत्रे ! हे वरवर्णिनि ! तू रोवे मत श्रीकृष्णजी ने जो कहा है उससे अन्यथा कभी न होगा ३३ तब धृष्टद्युम्न कहने लगा कि मैं द्रोणाचार्य को मारूंगा, शिखण्डी भीष्म को मारेगा, भीमसेन दुर्योधन को मारेंगे

और अर्जुन कर्ण को वध करेंगे ३४ अरी भैना! हम श्रीकृष्ण और बलदेवजी को आश्रय करके इन्द्र को भी जीत सक्ते हैं धृतराष्ट्र के पुत्र तो किनमें हैं ३५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह कहकर वे सब वीर श्रीकृष्णजी के सम्मुख जा बैठे उससमय श्रीकृष्णजी यह कहने लगे ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय ।

पाण्डवों के दुःख से दुःखी श्रीकृष्णजी का यह कहना कि
हम द्वारका में होते तो जूआ न होने देते ।

श्रीकृष्णजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! जो मैं पहिले से द्वारका में होता तो तुमको यह कष्ट कभी न होने पाता। मैं कौरव, धृतराष्ट्र और राजा दुर्योधन से विना बुलाया हुआ भी जुए का हाल सुनकर अवश्य चला आता और भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, बाह्लीक और राजा धृतराष्ट्र को बुलाकर बहुत से दोष उन्हें दिखाकर जुआ न होने देता और तुम्हारे हित के लिये उनसे यह कहता कि जुये को बन्द करो और उन सबको जुए के दोषों को प्रत्यक्ष करके दिखा देता १ । ४ मैं उनको इस प्रकार से समझाता कि पहिले समय में राजा वीरसेन का नल नामी पुत्र भी जुआ खेलने के कारण से राज्य से भ्रष्ट होगया था इससे जुआ खेलने में निस्संदेह नाश होता है ५ और ठीक ठीक ऐसी बातें कहता जिससे जुआ कभी न होने पाता ६ स्त्री, जुआ, मद्यपान और अहेर खेलना ये चारों बातें काम से उत्पन्न होती हैं और इन चारों ही के कारण से मनुष्य लक्ष्मी से भ्रष्ट होजाता है ७ शास्त्री पण्डितों का यही मत है कि इन चारों ही बातों को न करें परंतु जुआ खेलने में तो विशेष ही ध्यान करना उचित है ८ क्योंकि यह जुआ ऐसा है कि एकही दिन में सब द्रव्य इसमें नष्ट हो जाता है और मनुष्य को दुःख प्राप्त होता है इसमें सिवाय खोटी बातें कहने सुनने के और कुछ लाभ नहीं है ९ सो मैं धृतराष्ट्र के पास जाकर ये सब दोष कहकर होनेवाली बुराइयों को बतलाता १० जो वह मेरा कहा मान लेता तो कुरुवंश का कल्याण होता ११ और जो न मानता तो मैं बल से उसको निग्रह अर्थात् गिरफ्तार कर लेता १२ और जो जो सभासद् वहां जुए में सम्मति देनेवाले होते जो नाम को तो हितू कहलाते हैं और यथार्थ में अहितकारी हैं उन सबको मार डालता १३ परंतु क्या करूं मैं यहां न था मेरे होते हुए तुमको यह दुःख कभी न होने पाता १४ मैंने

तो तुम्हारे इस दुःखका हाल युयुधान सात्यकि से द्वारका आने पर सुना था १५ सो सुनते ही महादुःखी होकर तुमको देखने को यहां चला आया १६ तुमको इस दुःख में डूबा हुआ देखकर मुझको भी महा कष्ट है ॥ १७ ॥

इतिश्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवां अध्याय।

श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से अपने द्वारकापुरी में न होने का कारण कहना।

श्रीकृष्णजी की बात को सुनकर राजा युधिष्ठिर बोले कि, महाराज! आप कहां प्रदेश को गये थे जो आप द्वारका में न थे और प्रदेश को किस प्रयोजन से गये थे १ यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि मैं राजा शाल्व के सौभनामी नगर के नाश करने को गया था कारण नाश करने का यह था २ कि जो मैंने तुम्हारे राजसूय यज्ञ में राजा शिशुपाल को मारा था उसके मारने को राजा शाल्व न सहसका ३। ४ वह उसके मरने को सुनते ही जब मैं यहां ही था मेरे पीछे द्वारका पर चढ़ आया ५ और विमान पर चढ़कर दयाहीनों की भांति वृष्णिवंश के कुमारों से युद्ध करने लगा ६ उस दुष्ट ने बहुतसे बालक युद्ध में मारडाले और नगर के निकटके उद्यान तोड़ डाले ७ और यह सब करके कहने लगा कि वह नीच और मन्दबुद्धि वसुदेव का पुत्र कहां है ८ आज मैं उसके घमंड को तोडूंगा तुमलोग सत्य सत्य बताओ वह कहां गया है जहां वह गया है वहीं मैं भी जाऊंगा ९ उस कंस और केशी के मारनेवाले कृष्ण को विना मारे नहीं लौटूंगा मैं अपने हथियारों को सत्य से छूकर कहता हूं १० हे युधिष्ठिर! वह शाल्व उक्त रीति से कहकर मेरे साथ युद्ध करने की इच्छा से कहां है कहां है कहता हुआ इधर उधर दौड़ने लगा ११ और कहने लगा कि अब मैं शिशुपाल के मारने के कारण से उस पापी, नीच और विश्वासघाती कृष्ण को यमलोक में पहुंचाऊंगा १२ इसी के हाथ से मेरा भाई शिशुपाल मारा गया आज मैं इसको मारकर पृथ्वी पर गिराऊंगा १३ इसने मेरे बालक और वीर भाई को ऐसी अवस्था में मारा है कि जब वह युद्ध के लिये तय्यार न था आज इस जनार्दन को विना मारे नहीं छोड़ता हूं १४ हे युधिष्ठिर! वह शाल्व इस प्रकार से बहुतसी बातें कहता हुआ और मेरी निन्दा करता हुआ सौभनाम विमान में बैठकर इच्छा के अनुसार आकाशमार्गी हुआ १५ जब मैं तुम्हारे यज्ञ से लौटकर द्वारका पहुँचा तब मैंने सब हाल सुना १६ मुझे उसकी बातें सुनकर बड़ा क्रोध हुआ और मैंने उसे

मारने की इच्छा १७ इस कारण से कि उस पापी ने मेरी निन्दा की और आनर्त्तदेशों में बहुत आदमी मार डाले कि जिसके कारण से उसे बड़ा घमण्ड होगया १८ यह विचार कर मैं उसको वध करने के लिये चल दिया और मैंने उसे समुद्र के एक टापू में देखा १९ उसे देखते ही मैंने पाञ्चजन्य शंख बजाया और उसे युद्ध के लिये बुलाया २० इसके पीछे एक मुहूर्त भर तो मुझसे और दानवों से युद्ध हुआ वे सब मेरे हाथसे मारे गये २१ सो हे युधिष्ठिर! मेरे द्वारका में न होने का यह उक्त कारण था। वहांसे लौटते ही मैंने जुए का हाल सुना उसको सुनते ही महादुःखी होकर मैं हस्तिनापुर को चला आया॥ २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

पन्द्रहवां अध्याय।

युधिष्ठिर का श्रीकृष्णजी से युद्ध की व्यवस्था पूछना और श्रीकृष्णजी का द्वारकापुरी के रक्षित होने का वृत्तान्त कहना।

श्रीकृष्णजी की उक्त बात को सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हे वासुदेवजी! आप बड़े बुद्धिमान् हैं मुझे शाल्वके वध का पूरा पूरा वृत्तान्त सुनाइये आपकी बातों से मेरा चित्त तृप्त नहीं होता है १ यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि हे युधिष्ठिर! राजा शाल्व मेरे हाथ से शिशुपाल का वध सुनकर द्वारकापर चढ़ आया २ और पुरी को चारों ओरसे घेरकर आप आकाश में विमानपर बैठा हुआ विमान को व्यूहित करके ३ युद्ध करने लगा उससमय पुरी में चारों ओर से शस्त्र गिरने लगे ४ द्वारकापुरी में उस समय चारों ओर पताका लगे हुए बुर्ज और यन्त्र बने हुए थे और उनमें सुरंग खोदने और गुप्तमार्ग बनानेवाले मनुष्य मौजूद थे ५ सड़कों पर लोहे के मुखवाली कीलें लगी हुई थीं और नगर के द्वार और अटारियां अन्न से भरी हुई थीं और मोर्चोंपर प्राणों को उल्का के समान हरनेवाले आग्नेय गोले और मन्त्र युक्त शक्तियां रक्खी हुई थीं ६ मिट्टी और चर्म के पात्र, भेरी, ढोल, मृदङ्ग, तोमर, अंकुश, शतघ्नी, लांगल वस्त्र, भुशुण्डी, पत्थर के गोले, फरसा, लोहे की ढाल, गंधकआदि अग्नि लगानेवाली वस्तु, गोले और गोले चलाने के यन्त्र सब उस पुरी में मौजूद थे ७। ८ और गद, साम्ब और उद्धव आदि अनेक रथी युद्ध करनेवाले भी मौजूद थे ९ हे युधिष्ठिर! द्वारकापुरी विख्यात, और शत्रु को हटाने में समर्थ थी और उसमें अपने ही कुल के बड़े बड़े शूरवीर जिनका पराक्रम युद्ध में देखा गया है रहते थे १० रक्षक उस पुरी को चारों ओर से गुल्मों

सहित रक्षा कर रहे थे उस समय प्रमाद की रक्षा करनेवाले उग्रसेन और उद्धव आदि ने नगर में सबसे कह दिया कि अब कोई मद्यपान न करे क्योंकि राजा शाल्व प्रमत्त अर्थात् मतवाले पर अवश्य घात करेगा इस प्रकार से हे युधिष्ठिर! सब वृष्णि और अन्धकवंशी क्षत्री लोग सावधान होगये और उग्रसेन आदि ने आनर्त्त देशी, नट, नाचनेवाले और गानेवालोंको बाहर बसा दिया ११।१४ और नदियों के पुल तोड़ डाले और नावें रोंककर खाई में कीलें लगवा दीं १५ इसी प्रकार से उग्रसेन ने कुयें, बावली और तालाबों में भी कीलें लगवाकर चारों ओर से एक एक कोसके बीचमें पृथ्वी विषम अर्थात् लोहे के कांटोंसे युक्त कर दी १६ इस प्रकारसे हे युधिष्ठिर! वह नगर स्वाभाविक विषम, दुर्ग, अच्छी तरह रक्षित और इन्द्रके भुवनकी समान आयुधोंसे युक्त था १७।१८ उस नगर में शाल्वके आनेके पीछे विना छापे कोई आदमी बाहर जाने अथवा नगर के भीतर आने नहीं पाता था १९ और नगरकी गली गली और प्रत्येक चौराहों पर हाथी और घोड़ों सहित वह सेना खड़ी कर दी थी २० जो मासिक मुद्रा और भोजनपानेके कारणसे कृतकृत्य हो रही थीं उस सेना में कोई ऐसा न था जो रुपया और अशर्फ़ीके सिवाय और कुछ मासिकपाता हो और न किसी का मासिक चढ़ा हुआ था उस सेनामें कोई मनुष्य अनुग्रहसे नियत किया हुआ न था सब ऐसेही मनुष्य थे जिनका पराक्रम देख लिया गया था २१। २२ सो हे युधिष्ठिर! वह द्वारकापुरी इस प्रकारसे व्यूहित और राजा उग्रसेनसे रक्षित थी ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से राजा शाल्व के मन्त्री और साम्ब तथा चारुदेष्ण से युद्ध होने का वृत्तान्त कहना ॥

श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर! राजा शाल्व बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना लेकर उक्त प्रकारसे रक्षा की हुई द्वारकापुरी पर चढ़ आया और उसकी सेना श्मशान भूमि, देवालय, वल्मीक और चैत्य वृक्षोंको छोड़कर समान पृथ्वीपर जहाँ अनेक कुयें और तालाबथे ठहरी १।३ जहाँ पर राजा शाल्वका डेरा खड़ा हुआ था वहां सेना इस प्रकार से विभागपूर्वक नियत कर दी गई थी कि वहां छिपकर पहुँचनेको कोई मार्ग नहीं रहा था ४ और वह सेना भी संपूर्ण आयुध, शस्त्र, रथ, हाथी, शूरवीर, ध्वजा, कवच और धनुषोंसे युक्त होनेके कारणसे बड़ी भयानक

और सब लक्षणों से लक्षित थी ५ । ६ राजा शाल्व उक्त स्थान पर सेना के बसने का स्थान नियत करके गरुड़ की समान सब सेना सहित द्वारका के समीप आया ७ उसको आते हुए देखकर चारुदेष्ण साम्ब और प्रद्युम्नआदि बड़े महारथी वृष्णिवंशी कुमार रथों में सवार होकर कवच और विचित्र आभरण धारण किये हुए और ध्वजा लगाए हुए बाहर निकल आये और राजा शाल्व के श्रेष्ठ श्रेष्ठ योद्धाओं से युद्ध करने लगे ८ । १० उस समय साम्ब प्रसन्न होकर राजा शाल्व के मन्त्री क्षेमवृद्धि नाम सेनापति से युद्ध करने लगा ११ साम्ब ने उस मन्त्री पर ऐसी बाणों की वर्षा की जैसी इन्द्र जल की वर्षा करते हैं परन्तु वह मन्त्री उस बाणों की वर्षा को हिमालय की समान अचलरहकर सह गया १२ । १३ इसके पीछे उस मन्त्री ने भी साम्ब के ऊपर माया से रचे हुए बाणजाल छोड़े १४ साम्ब ने उस बाणजाल को माया ही से दूर कर दिया और क्षेमवृद्धि के ऊपर सहस्र बाणों की वर्षा की १५ उन बाणों से वह मन्त्री बेधित और पीड़ित होकर शीघ्र चलनेवाले घोड़ों के रथमें बैठकर भाग गया १६ उसके भागने पर वेगवान् दैत्य नाम दूसरा सेनापति साम्ब से युद्ध करने को आया १७ और साम्ब उसके वेग को सहकर उस राक्षस से लड़ने को उसके सम्मुख खड़ा होगया १८ और वेगवान् गदा को घुमाकर उस दैत्य के मारा १९ उसके लगने से वह दैत्य इस प्रकार से गिरपड़ा जैसे वायु से पुरानी अथवा थोड़ी जड़ रखनेवाला वृक्ष गिर पड़े २० इसके पीछे वह मेरा पुत्र साम्ब शाल्व की सेना में घुस गया और युद्ध करने लगा २१ इसी अवसर में विविन्ध्य नाम दानव जो बड़ा धनुर्धारी और महारथी विख्यात था चारुदेष्ण से युद्ध करने लगा २२ उन दोनों से आपस में ऐसा युद्ध हुआ जैसा पहले इन्द्र और वृत्रासुर में हुआ था २३ उन दोनों ने परस्पर सिंहों की समान गर्ज गर्ज करके एक दूसरे पर बाणों की वर्षा की २४ फिर उस रुक्मिणी के पुत्र चारुदेष्ण ने शत्रु को मारनेवाले बाण को जो अग्नि और सूर्य की समान जलानेवाला था महा अस्त्र से अभिमन्त्रित किया और धनुष पर चढ़ा कर २५ विविन्ध्य को बुलाकर मार दिया उसके लगते ही वह प्राण रहित होकर गिर पड़ा २६ राजा शाल्व उसको मरा हुआ और सेना को डरी हुई देख कर विमान में बैठा हुआ सम्मुख आया २७ उसको विमान में बैठा हुआ देखकर द्वारका की सेना व्याकुल हो गई २८ उस समय प्रद्युम्न सेना को व्याकुल देखकर कहने लगा कि तुम सब यहां ठहरो देखो हम अभी युद्ध करके इसको निवृत्त

करते हैं २९। ३० और अपने धनुषसे सर्प की तुल्य लोहेके बाणों को मार मारकर इस सेना को नाश किये देते हैं ३१ तुम लोग भय छोड़कर मेरी बात पर विश्वास करो मेरे सम्मुख आने पर यह राजा बच नहीं सक्ता है ३२ सो हे युधिष्ठिर! प्रद्युम्न के इस प्रकार से कहने पर वह सेना ठहर गई और आनन्द के साथ युद्ध करने लगी ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से राजा शाल्व और प्रद्युम्न के युद्ध का हाल कहना तथा प्रद्युम्न का मोहित होना।

श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर! वह रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न यादवी सेना को उक्त रीति से समझाकर सुनहरी रथ में सवार हुआ और मृत्यु के समान मुख फाड़े हुए मगर के चिह्न की ध्वजा को ऊँचा करके आकाश को उछलनेवाले रथ के घोड़ों को हँकवाकर शत्रुओं के सम्मुख चला गया १। २ उस तर्कस खड्ग और गोधांगुलि अर्थात् चमड़े के दस्ताने धारण करनेवाले शूरवीर ने जिसके हाथ में कँपता हुआ धनुष बिजली के समान दीख पड़ता था धिकार देदेकर और धनुषको टंकार टंकार कर सौभ के रहनेवाले सब दैत्यों को मोहित कर दिया ३। ४ उस समय प्रद्युम्न के बाण लेने, चढ़ाने, मारने और धनुष खींचने में किसी को अन्तर नहीं जान पड़ता था ५ न उसके मुख का रङ्ग बदला, न अङ्ग चलायमान हुए उसके इस अद्भुत और श्रेष्ठ पराक्रम को लोक में सबने सुना है ६ उसके रथपर सुनहरी लाठी में लगी हुई मुख फाड़े हुए मगर के चिह्न की ध्वजा लगी हुई थी कि जिसको देखकर राजा शाल्व की सेना भयभीत होगई ७ इसके पीछे प्रद्युम्न रथ दौड़ाकर युद्ध करने के लिये राजा शाल्व के सम्मुख चला गया ८ वह राजा प्रद्युम्न के सम्मुख आनेको न सह सका ९ और क्रोधरूपी मद से मतवाला होकर विमान से उतरकर प्रद्युम्न से युद्ध करने लगा १० उन दोनों के युद्ध को सब लोग इस प्रकार से देखने लगे जैसे पहले इन्द्र और बलिके युद्धको देखने के लिये लोग इकट्ठे हुए थे ११ शाल्व का मायारूपी सुनहरी रथ ध्वजा, पताका धनुष और तर्कस से युक्त था १२ शाल्व उस रथपर चढ़कर बाण मारने लगा १३ प्रद्युम्न ने भी उसके ऊपर मोहित करनेवाली बाणों की वर्षा की १४ शाल्व मेरे उस पुत्रकी बाणवृष्टि को न सहकर अग्निरूपी बाण प्रद्युम्न पर छोड़ने

लगा १५ प्रद्युम्न ने उन सब बाणों को काटकर गिरा दिया परंतु फिर शाल्व ने तीव्र बाण छोड़े १६ प्रद्युम्न उन बाणों से बिध गया और उसने मर्म काटनेवाला बाण राजा शाल्व के मारा १७ वह बाण शाल्व के कवच अर्थात् बख्तर को काटकर हृदय में घुस गया और शाल्व उससे मोहित होकर गिरपड़ा १८ उसको अचेत और गिरा हुआ जानकर सब दानवेन्द्र पृथ्वी को फाड़ते हुए भागने लगे १९ और सेना में हाहाकार मच गया २० थोड़ी देर में वह शूरवीर शाल्व उठ खड़ा हुआ और अकस्मात् उसने प्रद्युम्न के बाण मारे २१ उन बाणों से प्रद्युम्न बिध गया और उसके कण्ठ के मूलपर बड़ी पीड़ा होने लगी २२ शाल्व प्रद्युम्न को इस प्रकार से घायल करके सिंह के समान गर्जने लगा २३ फिर दुस्सह तीव्र बाण उसके मारे २४ कि जिनसे बिधने के कारण से प्रद्युम्न उस युद्ध में मोहित होकर चेष्टारहित होगया ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय ।

प्रद्युम्न का मूर्च्छित होना, सारथी का रथ को रण के बाहर ले जाना और मूर्च्छा रहित प्रद्युम्न का सारथी को शिक्षा करना ।

श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर ! प्रद्युम्न के मोहित होने पर सब यादव महादुःखी होगये और सेना में हाहाकार मच गया शत्रु उनको इस प्रकार से देखकर प्रसन्न हुए १ । २ उससमय दारुकि का पुत्र जो सिखाया हुआ प्रद्युम्न का सारथी था प्रद्युम्न को मोहित देखकर रथ हांककर दूर लेगया ३ वह रथ थोड़ीही दूर गया होगा कि प्रद्युम्न की मूर्च्छा जग गई और वह हाथ में धनुष लेकर सारथी से कहने लगा ४ कि अरे सारथी ! तैंने क्या निश्चय किया है जो रथ को युद्ध से विमुख लिये जाता है क्या तुझको वृष्णिकुल के शूरवीरों का धर्म नहीं मालूम है ५ तुझे राजा शाल्व को देखकर मोह तो नहीं होगया है या लड़ाई को देखकर डर गया है हमसे सत्य सत्य कह ६ यह सुनकर वह सारथी बोला कि हे केशवनन्दन ! मुझको न मोह हुआ है न मैं डरा हूं परंतु इस राजा शाल्व के युद्ध को मैं आपके ऊपर बड़ा भार समझता हूं ७ यह पापी शाल्व बड़ा बलवान् है इससे मैं रथ को धीरे धीरे दूर लिये जाता हूं शूरवीर के मोहित होने पर सारथी को शूरवीर की रक्षा करना उचित है ८ मुझे आपकी और आपको मेरी सदा रक्षा करना चाहिये इस कारण से मैं आपको रक्षा योग्य जानकर

रथ को दूर लिये जाता हूं ९ दूसरा कारण यह है कि आप अकेले हैं और यह दानव बहुत से हैं इससे मैं इस युद्ध में बराबरी नहीं देखता हूं १० यह सुनकर मकरध्वज प्रद्युम्न ने कहा कि रथ को फिर लौटा लेचल ११ फिर ऐसा किसी अवस्था में मत कीजियो मेरे जीवते तुझे रण से हटना उचित नहीं है १२ जो मनुष्य रण से भागे अथवा गिरे हुए को, ऐसा कहते हुए को कि आपही का हूं, स्त्री को, बालक को, विरथ को, टूटे शस्त्र रखनेवाले को और वृद्ध को मारता है वह वृष्णिकुल में उत्पन्न हुआ नहीं है १३। १४ सो हे दारुकि के बेटे! तू तो सूतकुल में उत्पन्न है सारथी की शिक्षा और वृष्णिकुल के धर्म को अच्छी तरह जानता है १५ तुझको युद्ध से हटना उचित न था मुझको रण से हटा हुआ और पीठ पर बाण खाता हुआ जानकर दुर्धर्ष श्रीकृष्ण बलदेवजी जो नीलाम्बर पहिरे हुए हैं सात्यकी जिसका बड़ा धनुष है साम्ब, चारुदेष्ण, गद, सारण, अक्रूर और वृष्णिकुल की स्त्रियां क्या कहेंगी मुझसे शूरवीर और प्रतिष्ठावान् से सब कोई यही कहेगा कि देखो यह डरा हुआ प्रद्युम्न युद्ध छोड़कर आता है इससे ऐसा करना चाहिए जिससे कोई ऐसा मुझसे नहीं कहै १६।२२ मेरी या मुझसे शूरवीर की हँसी होना भी मृत्यु से अधिक है इससे हे सारथी! फिर ऐसा कभी न करिये २३ श्रीकृष्णजी मुझ पर भार छोड़ कर युधिष्ठिर के यज्ञ में गये हैं मैं ऐसी बात क्यों कर सहसकता हूं २४ कृतवर्मा युद्ध करने के लिये जाता था मैंने उसे यह कहकर लौटा दिया कि मैं मारकर राजा शाल्व को हटाये देता हूं २५ वह शूरवीर मुझको इस योग्य समझकर लौट गया अब मैं उससे मिलकर क्या कहूंगा २६ और जब दुराधर्ष, साम्ब, शङ्क, गद, श्रीकृष्ण, सात्यकी, बलदेवजी और और अन्धक तथा वृष्णिवंशीलोग मुझसे आ आकर मिलेंगे तब उनसे मैं क्या कहूंगा २७। २८ सो मैं रणको छोड़कर तुझसे हटाया हुआ पीठ की ओरसे बाण खाकर किसी प्रकार से जीता नहीं रहसकता हूं २९ इससे हे सारथी! जल्दी से फिर लौट चल आगे फिर कभी आपत्ति पड़ने पर भी ऐसा न कीजियो ३० क्योंकि रणसे हटकर और पीठपर बाण खाकर मैं अपना जीना अधिक नहीं जानताहूं ३१ तैंने कभी मुझको रण छोड़कर कायरोंकी भांति भागते हुए देखा है ३२ तुझको मेरे युद्धार्थी होने पर कभी रण छोड़ना उचित नहीं है इससे अब शीघ्र रणभूमि पर चलाचल॥ ३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय ।

प्रद्युम्न का शाल्व से फिर युद्ध करना और शाल्व का मोहित होकर लौट जाना ।

श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर ! वह सारथी उस बली प्रद्युम्न की बात को सुनकर मधुरवाणी से कहने लगा १ कि आप सत्य कहते हैं मैं वृष्णिवंशियों के युद्ध को जानता हूं और युद्ध में रथके घोड़ों को हांकने में मुझे भय नहीं लगता है २ परन्तु मैं रथको युद्धसे इसकारण से हांक लाया हूं कि आप शाल्व के बाणों से दुःखी और मूर्च्छित होगये थे ऐसे समय में सारथी का यह धर्म है कि रथी की रक्षा करे ३ । ४ अब ईश्वर की कृपा से आप सचेत होगये हैं मैं रथको रणभूमि में फिर लिये चलता हूं आप मेरे घोड़े हांकने की शिक्षा को देखिये ५ मैं दारुक का पुत्र हूं और मैंने शिक्षा भी अच्छी तरह पाई है देखिये मैं आपके रथ को शाल्व की सेना में घुसाये लिये जाता हूं ६ श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर ! वह सारथी उक्त प्रकार से कहकर घोड़ों की बागडोर को पकड़कर शीघ्र रथ हांककर चल दिया और सदृश और विसदृश आदि दाहिने बायें मण्डल करता हुआ सेना में प्रविष्ट हुआ ७ । ८ उसके रथके घोड़े बागडोरों को उठाने और चाबुक के मारने से इसप्रकार से उछलते हुए चलने लगे मानों घोड़े आकाश मार्ग होकर जारहे हैं ९ उनके पैर पृथ्वी में पड़ते हुए नहीं जान पड़ते थे इसप्रकार से वह सारथी थोड़े ही यत्न से शाल्वकी सेना को दाहिनी ओर करता हुआ रथको शाल्व के सम्मुख लेपहुँचा उसको देखकर सबको आश्चर्यसा होगया और राजा शाल्व अपनी सेना का दाहिनी ओर हट जाना देखकर सह न सका और उस सारथी को तीन बाण मारकर व्याकुल कर दिया १० । १२ परन्तु उस सारथी ने उन बाणों को कुछ न गिना और रथ को बढ़ाये हुये ही लिये गया १३ तब राजा शाल्वने फिर बहुत से बाण प्रद्युम्न के मारे १४ प्रद्युम्न ने उससमय अपने हाथ की लाघवता दिखाई और शाल्व के मारे हुए बाणों को काटकर गिरा दिया १५ उनको कटा हुआ देखकर शाल्व ने फिर आसुरीमाया करके अनेक बाण मारे १६ प्रद्युम्न ने ब्रह्मास्त्र से उन सब बाणों को बीच में ही काटकर गिरा दिया और अपने बाण शाल्व के मारे १७ उन बाणों ने शाल्व के फेंके हुए दैतेय अस्त्र को गिरा दिया और शाल्व के मुख को घायल कर दिया शाल्व उन बाणों के लगनेसे मोहित होकर गिर पड़ा १८ प्रद्युम्न ने उस नीच को गिरा हुआ देखकर शत्रुको नाश करनेवाला एक बाण धनुष पर चढ़ाया १९ उस अग्नि के समान

प्रकाशमान बाण को चढ़ा हुआ देखकर आकाशी देवगण हाहाकार करने लगे २० उस समय इन्द्र और कुबेर आदि देवताओं ने नारदजी और वायु देवता को भेजा २१ उन दोनों ने प्रद्युम्न के पास आकर कहा कि देवताओं ने कहा है कि राजा शाल्व की मृत्यु तुम्हारे हाथ से किसी प्रकार नहीं है २२ तुम इस चढ़ाये हुए बाण को उतार लो क्योंकि इस बाण से ऐसा कोई नहीं है जो जीता बचे २३ इसकी मृत्यु ईश्वर ने श्रीकृष्णचन्द्र के हाथ से कल्पना की है तुम्हारे हाथसे यह अवध्य है यह बात कदापि मिथ्या नहीं होसकती है २४ यह सुनकर प्रद्युम्न ने प्रसन्न होकर वह बाण धनुष पर से उतार कर तर्कस में रख लिया २५ हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे वह राजा शाल्व प्रद्युम्न के बाणों से पीड़ित होकर मूर्च्छा जगने पर सेनासहित लौटकर चला गया और द्वारका को छोड़कर विमान में बैठकर आकाशमार्गी हुआ ॥ २६ । २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से राजा शाल्व पर चढ़ाई करने
और युद्ध होने ही व्यवस्था कहना।

श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे द्वारका से शाल्व के चले जाने पर मैं तुम्हारे राजसूय यज्ञ से लौटकर द्वारका को आया १ और पुरी को प्रकाशहीन और वषट्कार और वेदपाठरहित और स्त्रियों को श्रेष्ठ भूषणरहित और उपवनों को सूनसान देखकर मैंने शङ्कासहित कृतवर्मा से पूछा २।३ कि इस वृष्णिकुल की नरनारियों के व्याकुल होनेका क्या कारण है मैं सब बात विस्तारपूर्वक यथार्थता से सुनना चाहता हूं ४ यह सुनकर कृतवर्मा ने मुझसे राजा शाल्वकी चढ़ाई और लौट जाने का हाल विस्तारपूर्वक कहा ५ उसको सुनकर मैंने शाल्व को नाश करने की इच्छा की ६ और पुर के लोगों समेत राजा उग्रसेन और वसुदेवजी को धैर्य देकर वृष्णिकुल के शूरवीरों को प्रसन्न करने की इच्छा से कहा कि तुम सबलोग नगर में सावधानी से रहना मैं राजा शाल्वको मारने जाता हूं उसे विना मारे द्वारका लौटकर नहीं आऊंगा ७। ९ पहिले शाल्व को मारूंगा और फिर उसके सौभनाम नगर का नाश करूंगा तुमलोग शत्रु को डरानेवाली दुन्दुभी बजाओ १० हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार के धैर्य देनेपर सबलोग प्रसन्न होगये और मुझसे कहने लगे कि आप जाइये और शत्रुओं को मारिये ११ यह सुनकर मैंने सब

से आशीर्वाद पाकर और ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन सुनकर शिवजी को प्रणाम किया और शैव्य और सुग्रीवनाम घोड़ों से जुते हुए रथपर बैठकर पाञ्चजन्य शंख बजाता हुआ बहुतसी चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये हुए चल दिया १२।१४ और अनेक देश, पहाड़, वृक्ष, नदी और तालाबों को नांघता हुआ मार्तिकावत देशमें पहुँचा वहां मैंने सुना कि शाल्व समुद्र के तट पर गया है मैं भी उसके पीछे पीछे चल दिया १५।१६ उस समय शाल्व विमान में बैठा हुआ समुद्र की कुक्षि में पहुँच कर समुद्र की नाभि अर्थात् बीच में गुप्त होगया था १७ जब उस दुरात्मा ने मुझे देखा तब वह मन्द मन्द मुसुकराकर मुझे बेर बेर बुलाने लगा १८ मैंने मर्म अङ्गोंको बेधनेवाले अनेक बाण अपने शार्ङ्ग धनुष से छोड़े परंतु उसके विमान तक मेरा कोई बाण न पहुँचा तब तो मुझे बड़ा क्रोध हुआ १६ उससमय उस दुर्धर्ष शाल्व ने भी मेरे ऊपर बाणों की वर्षा की २० और मेरी सेना के सारथी रथी मनुष्य और घोड़ों को बाणों से ढकदिया परंतु हम सब उन बाणों को कुछ न गिनकर लड़ते रहे २१ इसके पीछे शाल्व के साथियों ने मेरे लाखों बाण जिनकी गांठें झुकी हुई थीं मारे २२ और उन मर्मभेदी बाणों से मेरे घोड़े रथ और सारथी ढक गये २३ उन बाणों से ढक जाने के कारण से मेरा दारुक सारथी रथ के घोड़े सेना के मनुष्य और मैं एक दूसरे को देख नहीं सक्के थे २४ तब मैंने भी दिव्यमंत्रों से मंत्रित कर करके लाखों बाण मारे २५ परंतु मेरी सेना को लड़ने के लिये कोई नहीं मिला क्योंकि राजा शाल्व विमान में बैठकर एक कोस ऊँचा आकाश में चढ़ गया था २६ उस समय मेरी सेना के लोगों ने ताली बजाकर बड़े शब्द से सिंहनाद कर करके मुझे प्रसन्न किया २७ मेरे मारे हुये बाण उन दैत्यों की देह में शलभ नाम पक्षी की तरह घुस गये २८ उनसे वे दैत्य मर मरकर समुद्र में गिरने लगे तब तो शाल्व के विमान में बड़ा हलहला शब्द हुआ और दैत्यलोग हाथ और कन्धा आदि अङ्गों के कटजाने के कारण से भैरव शब्द करते हुए गिरने लगे २६।३० समुद्र में गिरनेपर समुद्रवासी जलचर जीव उनको खा लेते थे इसके पीछे मैंने पाञ्चजन्य शंखको जो गाय के दूध, कुन्दनाम फूल, चन्द्रमा, कमल और चांदी की सी प्रभा रखनेवाला था पूर्णशब्द से बजाया राजा शाल्व उसको सुनकर और दैत्यों को गिरता हुआ देखकर माया से युद्ध करने लगा उस समय मेरे ऊपर गदा, हल, प्रास, शूल, शक्ति, फरसा, खड्ग, कौमरी, वज्र, पाश, दण्ड, दिव्य अस्त्रों के तुल्य बाण, पट्टिश और भुशुण्डी आदि शस्त्रों की निरन्तर

वर्षा होने लगी ३१। ३४ मैंने भी तब माया ही से इन सब अस्त्रों की वर्षा को दूर कर दिया तब वह शाल्व पहाड़ों के शिखर ले लेकर मुझसे युद्ध करने लगा ३५ उस समय कभी अंधेरा और कभी चांदना होजाता था कभी जाड़ा और कभी गर्मी लगने लगती थी ३६ इसके पीछे उस शाल्व ने अङ्गारे, धूलि और शस्त्रों की वर्षा की मैंने इन सब उपद्रवों को माया ही से शान्त कर दिया और समय के अनुसार सब ओरसे बाण मारे ३७। ३८ तदनन्तर आकाश ऐसा दीखने लगा मानो इनमें सौ सूर्य, सौ चन्द्रमा और सहस्र अयुत तारे निकल रहे हैं ३९ उस समय किसी को न दिन जान पड़ता था, न रात और मैं भी मोहयुक्त होगया तब मैंने प्रज्ञाअस्त्र का प्रयोग किया उससे वह सब माया इसप्रकार से दूर होगई जैसे वायु से रुई उड़जाती है सो हे युधिष्ठिर! वह युद्ध उक्त रीति पर ऐसा हुआ था कि देखनेवालों के रोम खड़े होजाते थे॥ ४०। ४१॥

इति श्रीभाषमहाभारते वनपर्वणि विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय।

शाल्व का माया से युद्ध करना और भगवान् का मोहित होना।

श्रीकृष्णजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! राजा शाल्व मुझसे उक्त प्रकार से युद्ध करता हुआ फिर आकाश में चला गया १ और मुझे जीतने की इच्छा से मेरे ऊपर शतघ्नी, गदा, दीप्तशूल, मुसल और तलवार फेंकने लगा २ मैंने तीक्ष्णबाणों से उन गिरते हुए शस्त्रों को रोंक दिया और शाल्व को मारने की इच्छा से मैं भी आकाश में चला गया और मैंने अपने बाणों से उसके फेंके हुए शस्त्रोंको दो दो और तीन तीन टुकड़े करडाले उससमय आकाश में शब्द होने लगा ३ तब शाल्व ने झुकी हुई नोकवाले एक लाख बाण मारकर मुझको, रथ तथा घोड़े और दारुक सारथी को ढक दिया ४ दारुक उससमय व्याकुल होकर कहने लगा कि इस समय मेरा धर्म यहां स्थित होने का है इससे मैं शाल्व के बाणों से बिधा हुआ ठहरा हुआ हूं परंतु मेरी सामर्थ्य ठहरने की नहीं है क्योंकि मेरे सब अङ्ग व्याकुल हो रहे हैं ५ उस सारथी के दीनवचनों को सुनकर मैंने उसके बाणों से बिंधे हुए अङ्ग को देखा ६ तो उसकी छाती, मस्तक, शरीर और दोनों भुजाओं में कोई अङ्ग ऐसा नहीं पाया जो बाणों से बिधा हुआ न था ७ और उसके शरीर में से लोहू इस प्रकार से बहता था जैसे वर्षाऋतु में गेरू के पहाड़ से लाल लाल पानी बहता है ८ यह देखकर मैंने उस सारथी को धैर्य दिया ९ इसी अवसर में किसी

द्वारकावासी मनुष्य ने रथ को रोककर सुहृदता से अपने को उग्रसेन का सेवक बताकर गद्गद होकर कहा १० । ११ कि हे कृष्णचन्द्र! तुमको राजा उग्रसेन ने बुलवा भेजा है तुम तो यहां युद्ध कररहे हो वहां द्वारका में राजा शाल्व ने जाकर तुम्हारे पिता वसुदेवजी को मार डाला है १२ । १३ इससे तुम यहां युद्ध करना छोड़कर द्वारका की रक्षा करो द्वारका की रक्षा करना भी तुम्हारा परम कार्य है १४ यह सुनकर मैं विचार करने लगा कि क्या करूं और क्या न करूं, परन्तु मेरे मनमें कोई बात निश्चय नहीं हुई १५ और मैंने अपने मन में सात्यकी, बलदेवजी और प्रद्युम्न की निन्दा की क्योंकि मैं उन लोगों को रक्षा के लिये द्वारका में छोड़कर सौभ नगर को गिराने आया था १६ । १७ फिर मैंने विचार किया कि बलदेवजी, चारुदेष्ण, सात्यकी, प्रद्युम्न और साम्बआदि वीरों के जीतेजी वसुदेवजी क्योंकर मारेगये क्योंकि इन लोगों के जीतेजी इन्द्र भी वसुदेवजी को नहीं मारसकता है परन्तु वसुदेवजी के मारे जाने का हाल तो प्रत्यक्ष ही सत्य है क्योंकि द्वारकावासी मनुष्य ही आया है इससे मेरी समझ में बलदेवजी आदि भी सब मारे गये इस प्रकार से सबके मारे जाने का अनुमान करके मैं व्याकुल होकर विह्वल होगया परन्तु उस अवस्था में भी मैं शाल्व से युद्ध करता रहा इतने ही में मैंने शाल्व के विमान से गिरते हुए वसुदेवजी को देखा यह देखकर मेरे चित्त में बड़ा मोह प्रवेश होगया १८ । २२ उस समय गिरते हुए मेरे पिता का स्वरूप ऐसा देख पड़ता था;मानो राजा ययाति क्षीणपुण्य होनेपर आकाश से गिराया गया है २३ पगड़ी उनकी कहीं से कहीं को जाती थी और बाल बिखरे हुए थे उनको देखकर मेरे हाथ से शार्ङ्ग धनुष गिर पड़ा और मैं मोह में आकर रथकी पटलीपर बैठ गया २४ । २५ मुझे इस प्रकारसे बैठा हुआ देखकर मेरी सब सेना अचेत होकर हाहाकार करने लगी २६ और मैं अपने पिता को दोनों हाथ और पाँव पसारे हुए आकाश से गिरते और राह में दैत्यों को उन्हें शूल और पट्टिश से मारते हुए देखकर काँपने लगा २७ । २८ थोड़ी देर में जब मेरा चित्त ठिकाने हुआ तब मैंने वहां अपने वृद्ध पिता और शाल्व और शाल्व के विमान में से किसीको न देखा २९ तब तो मुझको निश्चय हुआ कि यह सब माया है और यह जानकर मैंने अपने सैकड़ों बाण चारों ओर फैला दिये ॥ ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का शाल्व को मारकर और उसके विमान को गिराकर लौटकर द्वारका आना और श्रीकृष्ण आदि सब राजाओं का पाण्डवों से बिदा होकर अपने अपने देश को चले जाना।

श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे मैं शार्ङ्गधनुष को हाथ में ले बाण मार मारकर विमानसे दैत्यों के शिरों को गिराने लगा १ फिर मैंने बड़े तीक्ष्णबाण जो सर्परूप और नोकीले थे शाल्व को वध करने के लिये मारे २ परंतु शाल्व माया से अन्तर्धान होगया और दिखाई नहीं दिया यह देखकर मुझको आश्चर्य हुआ ३ इतने ही में दैत्यों ने आकाश में बड़े ऊँचे स्वर से शब्द किया उस शब्द को दूर करने के लिये मैंने शब्दवेधी अस्त्र छोड़ा, उस अस्त्र से शब्द होना बन्द हो गया ४।५ और सब शब्द करनेवाले दैत्य मारे गये थोड़ी देर में फिर सब दिशाओं में शब्द होने लगा तब फिर मैंने उन शब्द करनेवालों को भी बाणों से मारकर गिरा दिया ६।८ इसके पीछे वह सौभ नाम विमान प्राग्ज्योतिष नगरकी ओर जाता हुआ मुझको दीखा उसे देखकर मेरे नेत्र मोहित से होगये ९ इतने में दैत्यों ने आकाश से अकस्मात् शिलाओं की भयानक वर्षा की और घोड़े, रथ, सारथी और मैं सब उन पत्थरों से ऐसे ढक गये कि किसीको न देख सके यह देखकर वृष्णिवंशी सब सेना के वीर भयभीत होकर इधर उधर भाग गये और मेरे अदृश्य होजाने के कारण से स्वर्ग आकाश और पृथ्वी में हाहाकार मच गया १०।१४ और मेरे हितूलोग दुःखी होकर व्याकुलता से रोने और पुकारने लगे १५ शत्रु यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए तब मैंने इन्द्रके प्यारे वज्र को जो सब पाषाणों का तोड़नेवाला है छोड़कर सब पत्थरों को नाश कर दिया १६। १७ परंतु मेरे रथ के घोड़े पहाड़ों के बोझसे पीड़ित होकर मन्दबल होगये और काँपने लगे १८ उस समय मेरे सब भाई बन्धु बादलों को फाड़कर उदय हुए सूर्यकी समान मुझे देखकर प्रसन्न हुए १९ और मेरे सारथी ने समय के अनुसार घोड़ों को काँपते और निर्बल देखकर मुझसे कहा कि २० हे श्रीकृष्णजी! अब आप इस शाल्व को देखिये और इसके वध का अच्छी तरह उपाय कीजिये इसको बहुत देर जीता न रखिये युद्ध में मृदुता और शाल्व की मित्रता को छोड़ दीजिये, शत्रुको सब प्रकार से मारना ही उचित है, बली मनुष्य को निर्बल शत्रु का भी अपमान न करना चाहिये, इस समय तक मैं और आप दोनों काल से बचे हुए हैं, इस दुष्ट को शीघ्र मारिये, यह मृदु युद्ध से नहीं मारा जायगा आपका मित्र तो है ही नहीं आप

इसको कर्कश युद्ध करके जल्दी क्यों नहीं मारते हैं २१ । २५ देखिये इस दुष्टने आपसे युद्ध किया और द्वारका को मर्दन किया था उस सारथी की उक्त बात को सुनकर मैंने अपने मन में कहा कि यह ठीक कहता है तब मैंने राजा शाल्व के मारने और सौभनाम विमान को गिराने का विचार किया २६ । २७ इसके पीछे मैंने सारथी से कहा कि थोड़ी देर ठहर फिर अपने प्यारे आग्नेय अस्त्र को जो दिव्य, अभेद्य, पराक्रमी, किसी शस्त्र से न टूटनेवाला, प्रभाववान्, तीक्ष्ण अर्थात् पैना, निर्मल, काल और यम के समान यक्ष, राक्षस, दानव और विपरीत आचार देखनेवाले राजाओं का नाश करनेवाला था मन्त्रित करके धनुष पर चढ़ाया और यह आज्ञा देकर कि सौभ विमान और इसमें जो जो मेरे शत्रु हैं सब को मार, यह कहकर अपने पराक्रम के अनुसार खींचकर क्रोधित होकर छोड़ दिया २८ । ३२ उस समय उस सुदर्शन का स्वरूप ऐसा दीखता था मानों प्रलयकाल का सूर्य है ३३ उस अस्त्र ने उस सौभ विमान को बीच में से इसप्रकार से चीरडाला जैसे आरा ऊंची लकड़ी को चीरडालाता है ३४ और वह विमान फिर इस प्रकार से गिरपड़ा मानो शिवजी के बाण से त्रिपुर दैत्य गिरा है ३५ जब सौभ विमान गिरपड़ा तब चक्र फिर मेरे हाथ में आगया और मैंने जल्दी से यह कहकर छोड़ दिया कि मैं शाल्व को मारने के लिये छोड़ता हूं ३६ हाथसे निकलते ही उस सुदर्शनचक्र ने अपने तेज से प्रज्वलित हो राजा शाल्व को जो बड़ी गदा घुमा रहा था बीच में से दो करडाला ३७ उसके मरनेपर सब दानव मेरे बाणों से पीड़ित होकर दिशाओं को भाग गये ३८ और मैंने अपना रथ सौभ विमान के पास लेजाकर शंख बजाया जिसको सुनकर मेरे सुहृद् प्रसन्न हुए ३९ इसके पीछे स्त्रियां उस सौभ विमान को जिसकी अटारियां गिरपड़ी थीं जलता हुआ देखकर भागीं ४० हे युधिष्ठिर ! इसप्रकार से मैं राजा शाल्व को मारकर और उसके सौभ विमान को गिराकर द्वारका को लौट आया मुझे देखकर मेरे सब हितूलोग प्रसन्न हुए यही कारण था कि मैं हस्तिनापुर में न आसका मेरे आनेपर या तो दुर्योधन जीता न बचता या जुआ ही नहीं होने पाता परंतु अब मैं क्या करूं टूटा हुआ पुल नदी के वेग को धारण नहीं करसक्ता है ४१ । ४२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे श्रीकृष्णजी पाण्डवों को पूजकर और युधिष्ठिर को धैर्य देकर सूर्य के तेज के समान चमकते हुए उस रथ में जिसमें शैब्य और सुग्रीव नामी घोड़े जुते हुएथे बैठ गये और दूसरे सुनहले

रथ में सुभद्रा और अभिमन्यु को सवार कराकर पाण्डवों से बिदा होकर द्वारका को चल दिये चलते समय श्रीकृष्णजी ने युधिष्ठिर को प्रणाम किया और युधिष्ठिर और भीमसेन ने प्यार से श्रीकृष्णजी के मस्तक को सूंघा अर्जुन, नकुल और सहदेव ने उनकी बन्दना की, द्रौपदी ने आंसुओं से उनका पूजन किया और धौम्यऋषि ने सन्मानसहित आशीर्वाद दिया ४४ । ४८ श्रीकृष्णजी के चले जानेपर धृष्टद्युम्न भी द्रौपदी के पुत्रों को लेकर अपने देश को पाण्डवों से बिदा होकर चला आया ४६ और चन्देरीदेश का राजा धृष्टकेतु अपनी बहिन समेत तथा कैकेयदेश के कुमार भी युधिष्ठिर को पूछ पूछ कर अपने अपने देश को चले गये ५०।५१ और जो ब्राह्मण वैश्य आदि स्वदेशी वहां आये हुए थे वे बारम्बार बिदा करनेपर भी नहीं गये ५२ उस काम्यकवन में उन सबका बड़ा अद्भुत समाज रहा ५३ इसके पीछे समय के आनेपर युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों का सत्कार करके रथों को जोतने की आज्ञा दी ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय ।

पाण्डवों का काम्यकवन से आगे चलना और सब ब्राह्मण और पुरवासियों का उन से बिदा होकर लौट आना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! श्रीकृष्णजी के चले जानेपर द्रौपदी और पुरोहित सहित सब उत्तम रथोंपर सवार हुए और ब्राह्मणों को सुवर्ण, वस्त्र और गोदान करके आगे को चले १ । २ चलने के पहिले ही उन्हों ने बीस आत्त नामी शस्त्र, धनुष, दीप्त बाण, शायक और मौर्वी यन्त्र यथा बन्दूक आदि दूतों के हाथ द्वारका को भेजदिये थे ३ और सुभद्रा के वस्त्रभूषण लेकर धात्रीनाम दासी को रथ में बैठाकर इन्द्रसेन के साथ पीछे से द्वारका को भेज दिया ४ इसके अनन्तर सब पुरवासियों ने आकर युधिष्ठिर की परिक्रमा की और ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिये ५ युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को दण्डवत् की और कुरु जांगल देशवासी मनुष्यों को देखकर खड़ा हो रहा और सब से ऐसी प्रीतिभाव से मिला जैसे पिता पुत्र से मिलता है और वे लोग भी युधिष्ठिर को पिता के भाव से देखने लगे ६।७ उसीसमय महाजनलोग खोटे राज्य में बसने की शंका से म्लानचित्त और आँसू भरे हुए युधिष्ठिर के समीप चले आये और उसे घेर कर कहने लगे हाय नाथ! हाय धर्मराज! ८ तुम सब कुरुवंशियों में श्रेष्ठ और सबके स्वामी हो हम सब पुत्रतुल्य पुरवासी और देशवासियों को छोड़कर कहां जाते हो ९ इन

015,1A2 152B4.3

दयाहीन और पापी दुर्योधन, शकुनि और कर्ण को धिक्कार है जो ये दुष्ट आप ऐसे धर्मात्माओं का अनर्थ चाहते हैं हे धर्मराज, युधिष्ठिर! तुमने महादेवजी के नगर की समान इन्द्रप्रस्थ नाम नगर बसाया है और उसमें मयदानव ने देवताओं की सभा के समान सभा बनाई है आप उनको छोड़कर कहां जाते हैं १०। १२ यह सुनकर धर्म, काम और अर्थ का जाननेवाला अर्जुन बोला कि राजा युधिष्ठिर वन में बारहवर्ष काटकर लौटेंगे और शत्रुओं के यश को हरेंगे १३ आपलोगों में जो जो मुख्य ब्राह्मण और तपस्वी हैं उन सबसे हमारी प्रार्थना है कि आपलोग हमारी ओरसे ऐसी प्रार्थना ईश्वर से कीजिये जिसमें हमारा मनोरथ सिद्ध होय १४ यह सुनकर उन सब ब्राह्मण और सब वर्णों के मनुष्यों ने उस धर्मधारी राजा युधिष्ठिर की प्रसन्नतापूर्वक स्तुति और परिक्रमा की १५ और सबके सब पाण्डव और द्रौपदी से पूछ और उनसे सत्कार पा पाकर अपने अपने देश को मलीन मन हो होकर चले गये ॥ १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिविंशोऽध्यायः॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय।

पाण्डवों का द्वैतवन में वास करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उन सब लोगों के चले जानेपर युधिष्ठिर ने अपने सबभाइयों से कहा १ कि हमको अब बारह वर्ष निर्जन वन में बिताने हैं इससे कोई वन में स्थान ऐसा बिचारो जहां मृग और पक्षी बहुत से होवें २ और वह वन फूला फला हुआ पुण्यात्मा मनुष्यों से युक्तहोवे जिससे ये वर्ष सुखपूर्वक कट जावें ३ यह सुनकर अर्जुन ने कहा कि आप बड़े बड़े ऋषि और वृद्ध मनुष्यों का सत्संग उठाये हुए हैं इस मनुष्यलोक में ऐसा कुछ पदार्थ नहीं है जिसको आप न जानते हों ४। ५ आपने व्यास आदि ब्राह्मण और नारदजी की उपासना की है जो जितेन्द्रिय और सब लोकों के घूमनेवाले हैं और देवता, गन्धर्व और अप्सराओं के लोकों से लेकर ब्रह्मलोक तक जाते हैं ६। ७ इसके सिवाय आप ब्राह्मणों के अनुभाव अर्थात् करने और न करने के योग्य कामको और प्रभाव अर्थात् निग्रह और अनुग्रह शक्ति को भी जानते हैं ८ और मोक्ष और उसका साधन भी आपसे छिपा हुआ नहीं है आप जहां बास करना चाहें वहीं हमलोग भी रहेंगे ९ हमारी समझ में तो यह द्वैतवन का सरोवर जल से भरा हुआ और बड़ा रमणीक है और यहां पुष्प, फल और पक्षी भी बहुतसे हैं

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक 0270
दिनांक

जो आपकी इच्छा हो तो बारहवर्ष यहीं व्यतीत किये जायँ अथवा आप जो और कोई स्थान उत्तम जानते हों सो कहिये १० । ११ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हे अर्जुन! मेरी भी इच्छा द्वैतवन के रमणीक सरोवर पर ही रहने की है वहीं को हम चलेंगे १२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे पाण्डव बहुत से ब्राह्मणों सहित द्वैतवन के सरोवर पर चले गये १३ और उनके पास सैकड़ों अग्निहोत्री, वेदपाठी, भिक्षुक, वनवासी ब्राह्मण और सिद्ध, महात्मा और तीक्ष्णव्रतधारी ब्राह्मण आये १४ । १५ पाण्डवों ने उन ब्राह्मणों सहित उस वनमें प्रवेश किया और उस वनकी शोभा को देखने लगे जो ताल, तमाल, आम्र, महुवा, नीपक, देवसर्ज, अर्जुन, कर्णिकार आदि वृक्षों और अनेक प्रकार के फल फूलों से शोभित था १६ । १७ वृक्षोंपर मोर, चकोर, बर्हिण और कोकिला आदि पक्षियों के समूह मनोहरवाणी बोल रहे थे १८ और जहां तहां बड़े बड़े हाथी और हथिनियों के झुण्ड के झुण्ड विचर रहे थे १९ उसी वन में पाण्डवों ने सरस्वती नदी के किनारे बहुत से ऐसे तपस्वियों के निवास जो पवित्र अन्तःकरण, चीर और जटाधारी, धर्मात्मा सिद्धलोग और ऋषियों के समूहके समूह देखे २० युधिष्ठिर उस वन की शोभा को देखकर रथ से उतर पड़े और अपने भाई और सब साथियों सहित इसप्रकार से उस वन में घुसे मानो इन्द्र स्वर्ग में घुसते हैं २१ उनके दर्शनोंकी इच्छा से चारण और सिद्ध लोगों के समूहके समूह चले आये और वनवासियोंने भी उनको चारों ओर से घेरलिया २२ युधिष्ठिरनेतब हाथ जोड़कर सब सिद्धों को दण्डवत् की और उनसे देवताओं के समान सत्कार पाकर सब ब्राह्मणों सहित प्रवेश किया २३ इसके पीछे युधिष्ठिर एक कदम्बके पेड़ की जड़पर जिसमें फूल लग रहे थे बैठ गये २४ और भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और सब साथी भी सब सवारियों में से उतर उतर कर उनके पास जा बैठे २५ उनसे वह वृक्ष जिसकी डालियां झुकरही थीं इसप्रकार से सुशोभित होगया जैसे हाथियों से बड़ा पहाड़ शोभायमान होजाता है ॥ २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पच्चीसवाँ अध्याय।

पाण्डवों के पास महामुनि मार्कण्डेयजी का आना और पाण्डवों को शिक्षा करके उत्तर दिशा को चले जाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पाण्डव उस वन में कष्टरूपी वन-

वास करने के लिये पहुँचकर सरस्वती नदी के उस आनन्दरूपी शालवृक्षोंके वन में विहार करने लगे १ युधिष्ठिर वहां बस कर वहां के रहनेवाले यति, मुनि और मुख्य मुख्य ब्राह्मणों को सुन्दर फल, मूल और जल से भोजन कराता था २ और उसका तेजस्वी पुरोहित धौम्यऋषि पिता की तरह उसको श्राद्ध और यज्ञादिक कर्म कराता था ३ पाण्डवों के उसी आश्रममें मार्कण्डेय नाम पुराण ऋषि जो बड़े तेजस्वी देवता और ऋषियों से पूजित थे आये, पराक्रमी युधिष्ठिर ने उनकी यथायोग्य पूजा की ४।५ उस समय महात्मा मार्कण्डेय पाण्डवों की ओर देखकर और मन में श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार करके उन सब तपस्वियों के बीच में बैठकर मुसकराये ६ युधिष्ठिर यह देखकर विमन होकर कहने लगा कि महाराज ! ये तपस्वीलोग संकोच किये हुए बैठे हैं इन सबके सम्मुख मुझे देखकर आपके हँसने का क्या कारण है ७ मार्कण्डेयजी बोले कि; हे युधिष्ठिर ! न मैं हँसता हूं न मुसकराता हूं और न अतिहर्ष होनेसे मुझे कुछ घमण्ड होता है परन्तु तेरी आपत्ति को देखकर मुझको दशरथ के पुत्र सत्यव्रत रामचन्द्र की याद आ गई ८ मैंने पहले समय में ऋष्यमूक पर्वत पर उन रामचन्द्र को अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित पिता की आज्ञा से वनवास करते हुए देखा था ९ सहस्राक्ष इन्द्र उन्हीं रामचन्द्र का दूसरा स्वरूप है और रामचन्द्र यमराज के नेता, नमुचिदैत्य के मारनेवाले, निष्पाप, इन्द्र की समान प्रभाव रखनेवाले और युद्ध में अजेय थे उन्होंने भी अपने पिता की आज्ञा का पालन करना अपना धर्म समझकर सब भोगों को छोड़कर वनवास किया था सो समर्थ को अधर्म करना उचित नहीं है १०।११ देखो नाभाग, भागीरथ और काशी करूषदेश के अलर्क आदि राजाओं ने समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का विजय किया और सत्य से सब लोक अपने वश में कर लिये इससे अधर्म करना किसी अवस्था में ठीक नहीं है १२।१३ जो मर्यादा ईश्वर ने वेद के वचनों में दिखाई है सन्तलोग उसके विपरीत कभी नहीं करते हैं देखो सप्तऋषि लोग उसी मर्यादा पर चलकर स्वर्गमें अपना प्रकाश कर रहे हैं इससे मनुष्य को समर्थ होनेपर अधर्म करना उचित नहीं है १४ इनके सिवाय हे युधिष्ठिर ! दिग्गजों को देखो जो महापराक्रमी और पहाड़ की चोटी के समान दांत रखते हैं वे भी ईश्वर की बांधी हुई मर्यादा को नहीं छोड़ते हैं इससे सामर्थ्यवान् को अधर्म करना उचित नहीं है १५ इस संसार में ईश्वर ने जितने जीवधारी उत्पन्न किये हैं सब जन्म ले लेकर अपने जन्म के अनुसार कर्म करते हैं

इस कारण से समर्थ को धर्म ही करना चाहिये १६ तुम्हारा सत्य और धर्म जैसा चाहिये वैसा ही है और यश और तेज भी सबसे अधिक सूर्य और अग्नि की समान है १७ सो तुम इस कष्टरूपी वनवास को पूरा करके अपने तेज से फिर कौरवों से अपनी लक्ष्मी को लोगे १८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! मार्कण्डेयजी उक्त प्रकार से कहकर और पाण्डव और धौम्यऋषि से पूछकर उत्तर दिशा को चले गये ॥ १९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय ।

बक और दालभ्य ऋषियों का युधिष्ठिर को ब्राह्मण के पास रखने की शिक्षा करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह द्वैतवन पाण्डवों के बसने के कारण से ब्राह्मणों से भर गया और हर समय वेदपाठ होने से वहां का तालाब ब्रह्मलोक की तुल्य होगया १ । २ जो कोई वहां ब्राह्मणों के शब्द और यजुः और सामवेद की ऋचाओं के पाठ को सुनता था उसको वह सब बड़ा प्यारा जान पड़ता था ३ पाण्डवों के धनुष की टंकार और ब्राह्मणों की वेदध्वनि सुनकर सबका चित्त प्रसन्न होता था इस प्रकार से वह पाण्डवों का क्षत्रियकुल ब्राह्मणकुल से सुशोभित होगया ४ एक दिन संध्या करने के समय में बक और दालभ्य नाम ऋषियों ने युधिष्ठिर से कहा ५ कि देखो भार्गव, आंगिरस, वाशिष्ठ, काश्यप, आगस्त्य और आत्रेय आदि गोत्रों के श्रेष्ठ ब्राह्मण तुम से रक्षित होकर अग्नि को जलाकर होम आदिक कैसे कैसे उत्तम उत्तम कर्म कर रहे हैं ६ । ८ अब हम तुम पांचों भाइयों से एक शिक्षा करते हैं उसको सुनो ९ ब्रह्मकुल क्षत्रियकुल से और क्षत्रियकुल ब्रह्मकुल से मिलकर बड़े प्रबल होजाते हैं और शत्रु को इस प्रकार से जला सक्ते हैं जैसे अग्नि और वायु एक दूसरे की सहायता से वन को जला देते हैं जो राजा ब्राह्मणहीन होता है उसके दोनों लोक नष्ट होजाते हैं और मोह छोड़कर ब्राह्मण का रखनेवाला राजा निश्चय शत्रुओं को जीतता है १० । ११ देखो प्रजापालन और कल्याणरूप धर्म के करनेवाले राजा बलि ने ऐश्वर्य के मिलने के लिये सिवाय ब्राह्मण के दूसरा उपाय नहीं पाया १२ क्योंकि ब्राह्मणों से मिलाप करने के कारण से उसकी लक्ष्मी अक्षय और मनोकामना पूर्ण हुई थी फिर पृथ्वी पाकर जब उसने ब्राह्मणों के साथ दुष्टता की तब उसका सब ऐश्वर्य नष्ट होगया १३ यह पृथ्वी जिसकी खाई समुद्र है ब्राह्मणहीन राजा को कभी नहीं चाहती है और जिस राजा को ब्राह्मण शिक्षा

करता है उससे सदैव झुकी हुई रहती है १४ ब्राह्मणहीन राजा का बल इस प्रकार से नष्ट होजाता है जैसे लड़ाई में हाथी के सवार का बल हाथीवान के विना कुछ नहीं चलता है १५ ब्राह्मण में अनुपम मति और क्षत्रिय में प्रबल पराक्रम होते हैं जब ये दोनों मिलजाते हैं तब सब लोग प्रसन्न होते हैं और ब्राह्मण का बल पाकर क्षत्रिय शत्रुओं को इस प्रकार से नाश करडालता है जैसे वायु की सहायता से अग्नि सूखे हुए वन को भस्म करदेता है १६ । १७ मेधावी अर्थात् शास्त्र को याद रखनेवाले राजा को अलब्ध वस्तु के लाभ और लब्ध वस्तु की वृद्धि के लिये ब्राह्मणों से वृद्धि लेना उचित है १८ इससे राजा को उक्त कार्य और यथायोग्य उपाय की सिद्धि के लिये ऐसा ब्राह्मण अपने पास रखना चाहिये जो पण्डित और बहुत शास्त्र और वेदों का जाननेवाला हो १९ हे युधिष्ठिर! तेरी वृत्ति ब्राह्मणों के साथ परम उत्तम है इससे तेरा यश सब लोकों में प्रकाश कर रहा है २० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! बक और दाल्भ्य ऋषियों की उक्त शिक्षा को सुनकर सब ब्राह्मणों ने उनकी प्रशंसा की और व्यास, नारद, परशुराम, पृथुश्रवा, इन्द्रद्युम्न, भालुकि, कृतचेता, सहस्रपाद, कर्णश्रवा, मुञ्ज, लवणाश्व, काश्यप, हारीत, स्थूलकर्ण, अग्निवेश्य, शौनक, कृतवाक्, सुवाक्, बृहदश्व, विभावसु, ऊर्ध्वरेता, वृषामित्र, सुहोत्र, होत्रवाहन आदि ऋषि और ब्राह्मणों ने प्रसन्न मन होकर युधिष्ठिर की इस प्रकार से पूजा की मानो ऋषि लोग इन्द्र की पूजा करते हैं ॥ २१ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय ।

द्रौपदी का युधिष्ठिर से यह पूछना कि आप इतने दुःखों के होनेपर भी कौरवों पर क्रोध क्यों नहीं करते हैं ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे पाण्डवों ने द्रौपदी सहित दुःख और शोक में मग्न होने के कारण से सायंकाल के समय अनेक कथायें कहीं १ पीछे वह पतिव्रता और दर्शनीय द्रौपदी युधिष्ठिर से कहनेलगी २ कि महाराज! उस पापी, दयाहीन, दुरात्मा और दुर्मति दुर्योधन को आपकी ओर का किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं है क्योंकि उस दुष्ट को आपको मृगचर्म ओढ़कर वन को जाते हुए देखकर दुःख नहीं हुआ ३ । ४ उस पापी का हृदय भी लोहे का है क्योंकि उसने आप ऐसे धर्मात्मा को रूखी बातें सुनाईं ५ और न देने के

योग्य दुःख देकर भी अपने मित्रवर्गों के साथ आनन्द करता रहा ६ मैंने देखा कि हम सबके वनवास को चलनेपर सब कौरवों की आंखों में से आंशू गिरते थे परंतु इन चारों पापी अर्थात् दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुश्शासन सब की आंखें पसीजीं भी नहीं ७।८ आप दुःख के योग्य नहीं हैं किंतु सर्वथा सुख भोगने ही के योग्य हैं मैं आपके पहले और अबके शयन अर्थात् सो जानेकी वस्तु को देखकर अत्यन्त दुःखी होती हूं १० कहां तो वह रत्नजटित हाथीदांत का आसन; कहां यह कुश का बिछौना; कहां वह सभा जिसमें राजालोग आपको घेरे बैठे रहते थे, कहां यह जङ्गल; भला मेरे मनका दुःख क्योंकर शान्त होवे ११।१२ यह वही आपका शरीर है जिसपर चन्दन लगा हुआ और सुन्दर रेशमी वस्त्र पड़ा हुआ रहता था अब उसी शरीर पर आप भस्म लगाये हुए चीर धारण किये हुए हैं यह देख देखकर मेरे मन में मोह होता चला आता है १३।१४ देखिये आपके घर में नानाप्रकार के बनाये हुए भोग सोने के बर्त्तनों से ब्राह्मण, संन्यासी, गृहस्थी और ब्रह्मचारियों को बँटते थे और बर्त्तन भी रत्न जड़े हुए सहस्रों वर्त्तमान थे और ब्राह्मणों की भी सब मनोकामना पूरी की जाती थीं १५।१७ अब मैं उनमें से एक बातको भी न देखकर परम दुःखी होरही हूं इसके सिवाय मैं आपके इन सब भाइयों को जिनको कुण्डलधारी जवान जवान रसोइये अच्छे अच्छे पदार्थ बना बना कर भोजन कराते थे उनको वन के फल मूल आदि पदार्थ खा खाकर जीता हुआ देखती हूं १८।१९ वे इस दुःख के योग्य नहीं हैं मैं इनको देख देखकर परम दुःखी होरही हूं आपको इन भीमसेन को अपने हाथ से सब काम करते और सुन्दर वस्त्रों के बदले मृगचर्म ओढ़ते हुए देखकर क्रोध क्यों नहीं आता है, भीमसेन सुख के योग्य हैं और यद्यपि दुःखी और वनवासी हैं परंतु केवल आपकी प्रतिज्ञा के ही बन्धन से बँधे होने के कारण से चुप हैं नहीं तो इनका उत्साह सब कौरवों को मारने का है और इनके सिवाय ये अर्जुन भी यद्यपि दोही भुजा रखते हैं परंतु सहस्राबाहु की समान पराक्रमी हैं २०।२४ और शीघ्रबाण छोड़ने और लगाने का अभ्यास रखने के कारण से यमराज और काल के समान हैं इनके ही शस्त्र के प्रताप से सब राजा आपके आज्ञाकारी हुए थे २५ और आपके यज्ञ में आकर ब्राह्मणों के समीप स्थित हुए थे सो इन पुरुषोत्तम अर्जुन को जिनकी पूजा देवता और दानव भी करते हैं इस अवस्था में देखकर आप कौरवों पर क्रोध क्यों नहीं करते हैं २६ मैं तो सुख के योग्य और

दुःखके अयोग्य अर्जुन को वनवास करते और आपको क्रोध न करते हुए देख देखकर परम दुःखी होती हूं २७ जिस अकेले अर्जुन ने सब देवता और मनुष्यों को युद्ध में पराजय किया जिसने राजाओं से युद्ध कर करके धन लिया और जो पांच सौ बाण एकही वेग में मारसक्ता है उस अर्जुन को वनवासी देखकर आपको क्रोध किस कारण से नहीं आता है २८ । ३० देखिये यह ढाल और तलवार रखनेवाला नकुल और यह दर्शनीय सहदेव दोनों दुःख के अयोग्य वनवास कर रहे हैं इन्हें भी देखकर आपको क्रोध नहीं आता है ३१ । ३२ फिर इनके सिवाय आप मुझ द्रुपद की पुत्री पाण्डवों की वधू और धृष्टद्युम्न की बहिन को भी वन में दुःखी देख रहे हैं परंतु आप क्षमारूप ही धारण कररहे हैं आपको क्रोध लेशमात्र भी नहीं है क्योंकि मुझको और अपने भाइयों को दुःखी देखकर भी आपके मन को पीड़ा नहीं होती है ३४ । ३६ संसार में इस बात को विना तर्कणा के सब कोई कहता है कि क्षत्रिय विना क्रोध के नहीं होता है परंतु आपको मैं क्षत्रिय होनेपर विपरीत देखती हूं ३७ जो क्षत्रिय समयपर अपना पराक्रम नहीं दिखलाता है वह संसार में आदर नहीं पाता ३८ आपको शत्रुपर क्षमा करना किसी अवस्था में उचित नहीं है किंतु शत्रुओं को क्रोध करके मारनाही चाहिये ३९ हां क्षत्रिय को क्षमा के समय पर क्षमा भी करना उचित है उससमय पर जो क्षमा नहीं करता है लोग उसको नहीं चाहते हैं और उसका परलोक भी नाश होजाता है ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय ।

द्रौपदी का राजा युधिष्ठिर से क्रोध और क्षमा के विषय में बलि और प्रह्लाद का संवाद कहना ।

द्रौपदी युधिष्ठिर से कहने लगी कि उक्त विषय में एक पुराना इतिहास भी है जिसमें विरोचन के पुत्र बलि और प्रह्लाद का संवाद है १ एक समय राजा बलि ने अपने दादा प्रह्लाद से जो दैत्यों का इन्द्र, ज्ञानी और धर्मों का रहस्य जाननेवाला था पूछा २ कि महाराज! क्षमा और क्रोध इन दोनों में से कौनसा कल्याण करनेवाला है आप कृपा करके ठीक ठीक कहिये मैं आपकी शिक्षा के अनुसार करूंगा ३ । ४ यह सुनकर प्रह्लाद कहने लगे कि क्रोध और क्षमा समय समय पर दोनों अच्छे हैं परंतु दोनों में से निरन्तर किसी का रहना अच्छा नहीं है ५ । ६ पण्डितलोग सदा क्षमा रहना अच्छा इस कारण से नहीं कहते हैं कि क्षमा से बहुत

से दोष उत्पन्न होजाते हैं क्षमावान् से शत्रु डरते नहीं हैं और नौकरलोग भी उसका आदर नहीं करते हैं ७। ८ और उसकी आज्ञा को न मानकर उसके धन को लेना विचारते हैं और यह इच्छा करते हैं कि इसकी सवारी, वस्त्र, अलंकार, शयन, आसन, अन्नपान और सब पदार्थों को हमी लेलें ९। १० क्षमावान् मनुष्य के अन्न आदि पदार्थों की रक्षा के लिये नियुक्त मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहें सो ले लेते हैं और स्वामी की आज्ञा पाने पर भी देने के योग्य वस्तु को किसी को नहीं देते हैं ११ और अपने स्वामी को किसी अवस्था में स्वामी नहीं जानते हैं सो हे बले ! यह अवज्ञा इस संसार में मरण से भी अधिक निन्दित गिनी जाती है १२ इसके सिवाय दासपुत्र, नौकर और उदासीन मनुष्य क्षमावान् मनुष्य से कटुक वचन भी कहलेते हैं और उसका तिरस्कार करके उसकी स्त्रियों को लेने की भी इच्छा करते हैं और उसकी स्त्रियां भी अपनी इच्छा के अनुसार बर्त्ताव करती हैं १३। १४ जब स्त्रियों को अपनी प्रसन्नतापूर्वक काम करने में थोड़ासा भी दण्ड न दियाजावे तब उन स्त्रियों में अनेक दोष उत्पन्न होजाते हैं और फिर अपकार करने लगती हैं १५ इनके सिवाय और भी बहुत से दोष क्षमावानों में होजाते हैं १६ जो मनुष्य रजोगुणी होकर क्रोध के कारण से योग्य और अयोग्य दण्ड करता है उसका मित्रों से विरोध और सुजनों से द्वेष होजाता है १७। १८ और वह अपमान करने से धनहानि, धिक्कार, अनादर, संताप, द्वेष और मोह से दुःखी होकर अपने बहुत से शत्रु उत्पन्न कर लेता है १९ क्रोध के कारण से अनेक प्रकार के दण्ड देनेवाला मनुष्य ऐश्वर्य, प्राण और स्वजनों से शीघ्र ही भ्रष्ट होजाता है २० और जो मनुष्य उपकारी और अनुपकारी दोनों से क्रोध के साथ बर्त्ताव रखता है उससे सबलोग इसप्रकार से डरते हैं जैसे घर में रहनेवाले सर्प से मनुष्य भयभीत रहते हैं २१ और जिस मनुष्य से सबलोग अप्रसन्न रहते हैं उसको ऐश्वर्य कहां से मिलसक्ता है क्योंकि वे लोग उसके छिद्र को देखा करते हैं २२ इससे मनुष्य को चाहिये कि अत्यन्त क्रोधी अथवा अत्यन्त मृदुस्वभाव न रक्खे जब जैसा देखे तब तैसा करे २३ इस लोक और परलोक में सुख उसी को मिलता है जो समय के अनुसार क्रोध और क्षमा करता है २४ अब मैं तुमसे यह बात विस्तारपूर्वक कहता हूं कि किस किस समय पर मनुष्य को क्षमा करना चाहिये। तुमको भी उसके विपरीत करना उचित नहीं है २५ जिस मनुष्य ने पहले कोई उपकार किया हो और

पीछे उससे अपराध बनपड़े तो उस उपकार के बदले उसके अपराध को क्षमा करे २६ दूसरे अज्ञानियों के किये हुए अपराध को भी क्षमा करे परंतु मनुष्य अज्ञानी हरएक अवस्था में नहीं रहता इससे जो मनुष्य ज्ञान की अवस्था में अपराध करे और अपने को अज्ञानी बतावे तो ऐसे पुरुष को थोड़ेसे भी अपराध पर दण्ड देवे २७। २८ हां एक अपराध तो सब जीवों का ही क्षमा के योग्य है परंतु दूसरी बेर थोड़ासा भी अपराध करना दण्डयोग्य है २९ और जो कोई मनुष्य विना जाने कोई अपराध करे तो उसका अपराध अच्छीतरह परीक्षा अर्थात् तहकीकात करने पर क्षमा करना चाहिये ३० मनुष्य को दारुण और अदारुण दोनों प्रकार के पुरुषों को साम से ही मारना उचित है क्योंकि साम बड़ा पदार्थ है और साम से कुछ भी असाध्य नहीं है ३१ इसके सिवाय देश और काल भी अच्छी तरह विचारना चाहिये विना देश, काल और अपना बल अबल बिचारे कोई काम न करे ३२ इन बातों से पृथक् उस अपराधी का अपराध भी क्षमा योग्य है जिसको दण्ड देने में संसार का भय होवे सो ये उक्त स्थान तो क्षमा के हैं इनसे अलग जितनी बातें हैं उनमें क्रोध करना अवश्य है ३३ सो हे महाराज, युधिष्ठिर ! इन धृतराष्ट्र के पुत्रों ने निरन्तर आपका अपकार किया है मेरी समझ में यह समय आपके क्रोध करने का है ३४ क्योंकि उक्त स्थानों में से कोई स्थान अब कौरवों पर क्षमा करने का नहीं रहा है ऐसे समय में आपको क्रोध त्यागना उचित नहीं है ३५ जो मनुष्य मृदुस्वभाववाले होते हैं उनकी आज्ञा कोई नहीं मानता है और जिनका स्वभाव तीक्ष्ण अर्थात् तेज होता है उनसे सब डरते हैं इन दोनों स्वभावों के करने के समय और कुसमय को जो जानता है वही पृथ्वी का स्वामी है ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उनतीसवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का द्रौपदी को क्रोध छोड़ने और क्षमा करने का उपदेश करना।

द्रौपदी की उक्त बात को सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हे महाप्राज्ञे ! मनुष्यों को मारने और बुद्धि करनेवाला क्रोध ही है और क्रोध ही ऐश्वर्य और अनैश्वर्य दोनों की जड़ है १ क्रोध रोंकनेवाले मनुष्य को ऐश्वर्य मिलता है और नित्य क्रोध करनेवालेका नाश होजाता है २ इस संसारमें क्रोधही प्रजा का नाश करने वाला है सो मुझसा मनुष्य ऐसे संसार के नाश करनेवाले क्रोध को क्योंकर

धारण करे ३ क्रोध के कारण से मनुष्य पाप करता है, बड़ोंको मारने लगता है और खोटी ४ बातें कहकर अच्छे मनुष्यों का अपमान करता है यह नहीं समझता है कि यह बात कहने के योग्य है या नहीं क्रोधी के लिये कोई बात न करने या न कहने के योग्य नहीं है वह चाहे अवध्यों को मारडाले और वध्यों को पूजे और क्रोध के कारणसे अपने को यमलोक में पहुँचावे ५। ६ सो जो मनुष्य क्रोध के इन दोषों को जानते हैं और अपना कल्याण चाहते हैं वे क्रोध कभी नहीं करते हैं ७ पण्डितलोग भी क्रोध न करने की शिक्षा करते हैं फिर भला मुझसा पुरुष क्योंकर क्रोध करे हे द्रौपदि! मैं क्रोध में उक्त दोष समझता हूं इसीसे अपने क्रोध को नहीं बढ़ाता हूं ८ जो मनुष्य क्रोधी पर क्रोध नहीं करता है वह अपने और दूसरों को बड़े भयसे बचाता है और दोनों के दोषको दूर करदेता है ९ मूढ़ और असमर्थलोग बलवानों पर क्रोध करके अपने प्राण गँवाते हैं १० ऐसी अवस्थामें मरने से उसका परलोक नष्ट होजाताहै इससे असमर्थ को क्रोध रोकना ही अच्छा कहा है ११ इसी प्रकार से जो मनुष्य विद्वान् और समर्थ होकर क्लेश पाने पर भी क्लेश देनेवाले पर क्रोध नहीं करता है और उसको नहीं मारता है उसको परलोक में बड़ा आनन्द मिलता है १२ इसी कारण से बलवान् निर्बल विशेष जाननेवाले सबको ही आपत्तिकाल में क्षमा ही करना उचित है १३ साधुलोग भी क्रोध को जीतना अच्छा कहते हैं और सत्पुरुषों की तो सदा ही यही बुद्धि रहती है जो साधु क्षमावान् होता है उसकी जय रहती है १४ जैसे झूठ बोलने से सत्य कहना और दुःख देने से दया करना श्रेष्ठ गिना जाताहै उसी प्रकारसे साधुओं ने क्रोध करना भी वर्जित किया है कि जिसमें बहुत से दोष हैं १५ सो हे द्रौपदि! मुझसा मनुष्य जिसको दीर्घदर्शी पण्डितलोग तेजस्वी कहते हैं ऐसे दोषयुक्त क्रोध को यदि दुर्योधन मारे भी तो भी क्योंकर करे १६ जो मनुष्य अपने क्रोध को ज्ञान से रोकता है उसको क्रोध कभी नहीं आताहै १७ विद्वान् लोग ऐसेही मनुष्य को तेजस्वी कहते हैं इसके सिवाय क्रोधी अपने काम को जैसा चाहिये वैसा नहीं देख सक्ता है १८ इससे मनुष्य को क्रोध करना उचित नहीं है किन्तु क्रोध को जीतना चाहिये १९ तेजस्वी मनुष्य के गुण ये हैं सब कामों में चातुर्यता, अपने शत्रु के बिगाड़ करने की चिन्ता करना, शत्रु के अविभव की शक्ति और जो काम करना सो जल्दी करना। क्रोधी मनुष्य इन गुणों को सहजमें नहीं पासक्ता है २० जो मनुष्य क्रोध को छोड़देता है वह समर्थ

के अनुसार तेजस्वी होजाता है परन्तु क्रोधी में तेज का होना असंभव है २१ मूर्खलोग तो निश्चय क्रोध ही को तेज मानते हैं परन्तु मनुष्यलोक में यह क्रोध केवल नाशकारक ही है २२ इससे अच्छा कर्म करनेवाले मनुष्य को क्रोध त्यागना ही उचित है क्योंकि क्रोधी मनुष्य से तो वह मनुष्य भी अच्छा निश्चय किया गया है जिसने अपना धर्म छोड़ दिया हो २३ फिर मुझसा मनुष्य उस क्षमा को कैसे छोड़ देवे जिसको निर्बुद्धि और अज्ञानी मनुष्यों ने त्याग कर रक्खा है २४ इस संसार में जो पृथ्वीके समान क्षमावान् पुरुष न होवें तो मनुष्य मिलकर कभी न रहने पावें क्योंकि क्रोध केवल लड़ाई का घर है २५ क्रोध के कारण से एक क्रोधी दूसरे को क्रोध करादे और बड़े बूढ़े से ताड़ना किया हुआ मनुष्य अपने बड़े को भी ताड़ना करे तो इसमें सिवाय जीवों के नाश होने और अधर्म के फैलने के और कोई लाभ नहीं होसक्ता २६ क्योंकि जब सब को क्रोध ही करना उचित होगा तब कोई काहे को किसी की बात सुनेगा जो कोई किसी को कुछ कहेगा अथवा मारेगा या ताड़ना करेगा तो वह भी उसके साथ उसी प्रकार से बर्त्तेगा ऐसा होने से पिता पुत्र को और पुत्र पिता को और पति स्त्री को और स्त्री पति को आपस में क्रोध के करने से मारेंगे २७। २८ सो हे द्रौपदि ! जो सब कोई क्रोधही केवशमें होते तो मनुष्य काहेको जन्म लेता क्योंकि मनुष्य के जन्म होने का कारण केवल प्रीति है २९ इससे क्रोध केवल नाश और अनैश्वर्य का करनेवाला है ३० संसार में प्राणियों के जन्म और ऐश्वर्य के कारण केवल वे ही मनुष्य हैं जो पृथ्वी की समान क्षमावान् हैं ३१ इससे हे शोभने ! मनुष्य को सब आपत्तियों में क्षमा ही करना उचित है जो मनुष्य बलवान्, प्रभाववान्, विद्वान् और उत्तम हैं उनको कोई वाक्यरूपी बाण अथवा हस्त आदि से मारे और वह क्रोध को जीतने के कारण से क्रोध न करे तो उसके लोक सदैव बने रहते हैं ३२।३३ और जो अल्प विज्ञानी और क्रोधी होता है उसके दोनों लोक नष्ट होजाते हैं ३४ हे द्रौपदि ! अब हम तुमसे क्षमाके विषय में कश्यपजी की कही हुई गीता कहते हैं ३५ क्षमा, धर्म, यज्ञ, वेद शास्त्ररूपी है इसको जो जानता है वह अवश्य क्षमा करता है ३६ और ब्रह्म, सत्य, भूत, भावी, तप और शौच भी क्षमा ही है और क्षमाही जगत् का आधार है ३७ क्षमावान् पुरुषों को वे लोक मिलते हैं जो यज्ञ के करनेवालों को भी नहीं मिलते और तेजस्वियों का तेज और तपस्वियों का ब्रह्म भी क्षमा ही को जानो तपस्वी और वेद जाननेवालों

को जो लोक मिलते हैं क्षमावान् मनुष्यों को उनसे भी ऊंचे लोक मिलते हैं ३८ यजुष अर्थात् त्रेताग्नि साध्यकर्म करनेवाले और कर्मकाण्डी अर्थात् वापी कूप आदि बनानेवाले मनुष्यों को और ही लोक मिलते हैं परन्तु क्षमावान् को वे लोक मिलते हैं जो ब्रह्मलोक में भी परम पुनीत माने जाते हैं ३६ तेजस्वियों का तेज, तपस्वियों का ब्रह्म, सत्य बोलनेवालों का सत्य और यज्ञ और शम सब क्षमा ही है ४० सो हे द्रौपदि! मुझसा मनुष्य उस क्षमा को जिसके धारणसे ब्रह्मज्ञान, सत्य बोलने और यज्ञ करने का फल और सुन्दरलोक मिलते हैं क्योंकर छोड़ देवे ४१ ज्ञानवान् को सदैव ही क्षमा करना उचित है क्योंकि मनुष्य ब्रह्मज्ञानी उसी समय होता है जब सब बातों को क्षमा करता है ४२ इस लोक में सन्मान और परलोक में सुन्दर गति क्षमावानों को मिलती है ४३ क्रोध को क्षमा से रोकनेवाले मनुष्यों को सत्यलोक में भोगने के पदार्थ मिलते हैं ४४ यह क्षमावानों के विषय की गीता कश्यपजी ने कही है हे द्रौपदि! तूभी इसको सुनकर अपने मनमें संतोष कर और क्रोध छोड़ दे ४५ भीष्मपितामह, श्रीकृष्णजी, द्रोणाचार्य, विदुर, कृपाचार्य, संजय, सोमदत्त, युयुत्सु और हमारे पितामह व्यासजी क्षमा को ही अच्छा बतावेंगे ४६ । ४८ सो राजा धृतराष्ट्र इन सबलोगों से प्रेरित होने पर अवश्य हमारा राज्य देदेगा नहीं तो लोभ से नष्ट होजायगा ४६ अब यह समय भरतवंशियों के नाश होने के लिये आया है मैं इसकाल को पहिले ही से जानता था ५० दुर्योधन को क्षमा न होने का कारण यह है कि वह राज्य करने योग्य नहीं है और मुझमें जो क्षमा है उसका कारण यह है कि मैं राज्य के योग्य हूं ५१ क्षमा और दया सनातनधर्म और ज्ञानियों का चलन है मैं उस धर्म को यथावत् करूंगा ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

तीसवाँ अध्याय ।

द्रौपदीका युधिष्ठिर से ईश्वर की सामर्थ्य और मनुष्य की असमर्थता का हाल कहना ।

राजा युधिष्ठिर के उक्त उपदेश को सुनकर द्रौपदी कहने लगी कि मैं उस धाता और विधाता को नमस्कार करती हूं जिन्होंने आपके हृदय में यह मोह उत्पन्न कर दिया है कि आपकी बुद्धि उस बाप दादे के करने योग्य चलन में भी विपरीत होगई है १ विधाता मनुष्य को सुख और दुःख पूर्वकर्म के अनुसार भोगने को देता है वह कर्म नित्य है उनसे मोक्ष का चाहना व्यर्थ है २ सो पूर्व

जन्म के कर्मों से बँधा हुआ मनुष्य धर्म, दया, क्षमा, सीधापन और लोकापवाद से भय करने से लक्ष्मी कभी नहीं पाता है ३ इसके दृष्टान्त में तुम अपनेही को देखो कि कैसा दुस्सह दुःख मिला है जिसको तुम और तुम्हारे भाई भोगने योग्य नहीं हो ४ तुमने अपने राज्य और इस राज्य चले जाने के समयों में कभी धर्म से अधिक प्यारा किसी को नहीं समझा किन्तु धर्म को प्राणों से भी अधिक जानते रहे ५ और ब्राह्मण, गुरु और देवता सब इस बात को जानते हैं कि आपने अपना राज्य और प्राण दोनों धर्म के ही निमित्त कर रक्खे हैं ६ सो मैं जानती हूं कि आप चाहें इन अपने चारों भाई और मुझको छोड़ देंगे परंतु धर्म को न छोड़ेंगे ७ मैंने अच्छे मनुष्यों से सुना है कि धर्म की रक्षा करनेवाले राजाकी रक्षा, रक्षा किया हुआ धर्म ही करता है परंतु मेरी समझ में वह धर्म आप की रक्षा नहीं करता है ८ हे नरव्याघ्र ! आपकी बुद्धि धर्म के पीछे अनन्य होकर इस प्रकार से चलती है जैसे छाया मनुष्य के पीछे ९ और अच्छे मनुष्यों का अपमान तो दूर है आपने कभी अपने बराबर और हीनपुरुषों का भी अपमान नहीं किया और न संपूर्ण पृथ्वी जीतनेपर भी किसीप्रकार का घमंड किया १० हे कुन्तीनन्दन ! इन बातों के सिवाय आप ब्राह्मण, देवता और पितरों का पूजन स्वाहा स्वधा सहित अच्छीतरह से करते रहे ११ हे पार्थ ! ब्राह्मण, यती, मोक्षाश्रयी और गृहस्थी सबकी मनोकामना पूरी की १२ कि वे लोग नित्य सोने के पात्रों में भोजन करते थे और मैं उनकी सेवा की परिचारिका अर्थात् मुन्तज़िम थी फिर आपने वानप्रस्थों को सुनहले पात्र दिये और अपने घर में कोई ऐसी वस्तु न रक्खी जो ब्राह्मणों के देनेयोग्य न हो १३ हे राजन् ! आप शान्ति के अर्थ नित्य वैश्वदेविक श्राद्ध किया करते थे और ब्राह्मण अतिथियों को देकर जो बच रहता था उसे खाते थे १४ और आपके घर में इष्ट, पशुबन्ध, काम्य, नैमित्तिक, पाकयज्ञ और यज्ञकर्म नित्य हुआ करते थे १५ इसके सिवाय आपने अपने उक्त धर्मोंको इस चोरों के बसनेवाले निर्जन वन में भी बसने पर नहीं छोड़ा है १६ और अश्वमेध, राजसूय, पुण्डरीक और गोसव आदि यज्ञ भी जिनमें बड़ी दक्षिणा खर्च होती है किये हैं १७ परंतु आपने यह बुद्धि के विपरीत काम किया कि पांशों से जुआ खेलकर राज्य, धन, आयुध, भाई और मुझको हार दिया १८ आप तो सीधे, सच्चे, दयावान् और लज्जावान् हैं ऐसी बुद्धि आपके हृदय में क्योंकर आई १९ मैं आपके दुःख और इस आपत्ति को देखकर पीड़ित और

मोहित होती हूं २० सच है मुझे एक पुरानी कथा याद आई जिससे यह बात ज्ञात होती है कि सब भोगने के पदार्थ ईश्वर के आधीन हैं २१ और इसमें भी कुछ संदेह नहीं है कि इस जीव को पूर्वकर्म के अनुसार सबका स्वामी ईश्वर ही सुख, दुःख और प्रिय, अप्रिय का देनेवाला है २२ ईश्वर की ही प्रेरणा से सब प्रजा इस प्रकार से अपने अङ्गों को हिलाती डुलाती हैं जैसे काठ की पुतली सूत्रधार के नचाने से जैसे सूत्रधार चाहे तैसेही नाचती है २३ हे भरतवंशिन्! वही ईश्वर आकाश की समान सब जीवों में व्यापक रहकर जीव के शुभ और अशुभ कर्मों का साक्षी रहता है २४ और ईश्वर के वश में इस प्रकार से रहता है जैसे डोर से बांधा हुआ पक्षी मनुष्य के वश में रहता है और यह जीव अपनी आत्मा का भी स्वामी नहीं है किन्तु ईश्वर के आधीन इस प्रकार से है जैसे डोर में पिरोई हुई मणि अथवा डोर से नथा हुआ बैल। मनुष्य कदापि स्वाधीन नहीं है कालरूपी ईश्वर के वश में रहता उसी ईश्वर का वह स्वरूप है और अन्त में उसी में लय होजाता है सो यह जीव अपने सुख और दुःख को न जानकर असमर्थ होने के कारण से अपने कर्म के अनुसार ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग अथवा नरक में इस प्रकार से पड़ता है जैसे नदी के किनारे का वृक्ष नदी में गिरकर जिधर जल जाता है उधर ही बहा हुआ चला जाता है २५। २७ और संसारी सब जीव ईश्वर के वश में इस प्रकार से रहते हैं जैसे तृण के आगे के भाग वायु के वश में रहते हैं अर्थात् सब तृणों के ऊपर का भाग उसी ओर झुका हुआ रहता है जिस ओर की वायु चलती है २८।२६ ईश्वर ही प्राणी को कर्म के अनुसार सुधर्म और अधर्म में युक्त करता है और सर्वव्यापी है परंतु किसी को दिखाई नहीं देता है ३० और यह क्षेत्रसंज्ञिक देह भी ईश्वर का हेतुमात्र है जिससे वह समर्थ ईश्वर शुभ और अशुभ कर्म कराता है ३१ उस ईश्वर की माया बड़ी प्रबल है जिससे मोहित करके वह एक प्राणी को दूसरे से मरवा डालता है ३२ जिस संसार को तत्त्वदर्शी ज्ञानीलोग मिथ्या और स्वप्न की समान जानते हैं उसीको अज्ञानी मनुष्य माया के वश होकर सत्य समझते हैं ३३ ईश्वर जिन जिन बातों को सच्ची दिखा दिखा कर रचता और मिटाताहै मनुष्य उन्हीं बातों को और का और समझ लेते हैं ३४ सो ईश्वर षट्गुणों का स्वामी अपने आप प्रकट होनेवाला और ब्रह्माजी को भी उत्पन्न करनेवाला है वही अपनी माया के वश में करके एक प्राणी को दूसरे के हाथ से इस प्रकार से नाश करवा देता है जैसे काठ से काठ

लोहे से लोहा और पत्थर से पत्थर कटजाता है ३५। ३६ और संयोग और वियोग अर्थात् मिलाप और बिछोह कराके वही भगवान् अपनी इच्छा के अनुसार प्राणियों से इस प्रकार से क्रीड़ा करता है जैसे लड़का खिलौनेसे खेलता है ३७ वह ईश्वर प्राणी को माता पिता की तरह सुख नहीं देता है किन्तु शत्रु की समान क्रोध करता है ३८ क्योंकि वह शीलवान्, लज्जावान् और अच्छे लोगों को जीविका से दुःखी और चिन्ता से विकल रखता है और नीचों को सुख देता है ३९ मैंने ईश्वर की यह निन्दा इस कारण से की है कि वह यह कैसी विपरीत बात देख रहा है कि आपसे पुरुषों को तो यह आपत्ति और दुर्योधन से नीच को ऐसी ऋद्धि दे रक्खी है ४० मैं नहीं जानती हूं कि दुर्योधन से क्रूर, लोभी और अधर्मी को जो शास्त्र की मर्यादा को छोड़कर चलता है लक्ष्मी देने से ईश्वर को क्या नफ़ा होगा अर्थात् वह कौन से ऐसे यज्ञ आदि कर्म करेगा जिससे ईश्वर की तृप्ति होगी ४१ किये हुए कर्म को भोग करनेवाला ही भोगता है इससे निश्चय ईश्वर ही पाप में लिप्त होता है क्योंकि वही उत्प्रेरक है परन्तु वह ईश्वर तो समर्थ है वह उस कर्म के फल को नहीं भोगता है और मनुष्य दुर्बल और सामर्थ्यरहित है इसीसे मनुष्य को भोगना पड़ता है यही मुझे मनुष्यों की दुर्बलता के कारण से बड़ी चिन्ता है॥ ४२। ४३॥

इति श्रीभाषामहाभारते बनपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का द्रौपदी को धर्म और ईश्वर में शङ्का न करने का उपदेश करना और समझाना।

द्रौपदी की उक्त बातों को सुनकर युधिष्ठिर ने कहा कि हे द्रौपदि! हमने तेरे अनन्त और शोभायमान वचन सुने परंतु जो कुछ तैंने कहा हैं सब नास्तिक्य अर्थात् वेद के विरुद्ध हैं १ हे राजपुत्रि! मैं जो कर्म करता हूं उसका कुछ फल नहीं चाहता हूं मनुष्य पर तीन ऋण[1] होते हैं देव १ पितृ २ और ऋषि ३ उनका देना मनुष्य को अवश्य है इससे मैं उन ऋणों को देता हूं और यज्ञ इसलिये करता हूं कि क्षत्री का यज्ञ करना धर्म है २ हे द्रौपदि! गृहस्थी का जो धर्म है वह भी करना ही उचित है इससे वह भी यथाशक्ति करता हूं चाहे उसका कुछ फल मिले अथवा न मिले ३ हे सुश्रोणि! मैं धर्म को कुछ फल मिलने के लिये

---

[1] "जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवाञ्जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः" (इति श्रुतेः)।

नहीं करता हूं किंतु मैंने शास्त्रों के अनुसार सत्पुरुषों के चलने को विचारकर धर्म करने का स्वभाव ही अपना करलिया है हे कृष्णे ! धर्मात्मालोग धर्म के वाणिज्य को नीच और हीन जानते हैं ४। ५ क्योंकि जो कोई धर्म को दुहना अर्थात् फल मिलना चाहता है उसको धर्म का मुख्य फल नहीं मिलता है और जो मनुष्य अपनी पापबुद्धि से कर्म करके नास्तिकता के कारण से धर्म में शङ्का करता है उसको भी धर्म का फल नहीं मिलता है सो हे द्रौपदि ! तू भी बहुत वाद बढ़ाकर धर्म में शङ्का मत करे धर्म में शङ्का करनेवाले मनुष्य का जन्म तिर्यग्योनि अर्थात् पशु पक्षी आदि में होता है और उसको अजर और अमरलोक इसप्रकार से नहीं मिलते हैं जैसे शूद्र को वेद का अधिकार नहीं होता है ६। ८ और जो मनुष्य वेद पढ़कर अपने धर्मपर चलता है और कुलीन होता है उसको राजऋषियों का धर्म करनेवाले मनुष्य वृद्धों में गिनते हैं ९ धर्म में शङ्का करनेवाला पापी मन्दबुद्धि और शास्त्रविरोधी मनुष्य चोर और शूद्रों की समान है १० देखो तुमने मार्कण्डेयजी महाराज को जो बड़े तपस्वी हैं अपनी आँखों ही से देखा है उनके चिरंजीवी होने का कारण केवल धर्म ही है ११ और धर्मही के कारण से व्यास, वशिष्ठ, मैत्रेय, नारद, लोमश, शुक आदिक ऋषि श्रेष्ठबुद्धि गिने जाते हैं १२ तुमने इन ऋषियों को जो दिव्ययोगों से युक्त, शाप देने और अनुग्रह करने की सामर्थ्य रखनेवाले देवताओं से भी बड़े हैं अपनी आँखों से देखा है १३ ये सबके सब देवताओं की तुल्य और उक्त बुद्धि रखनेवाले हैं और सदैव धर्म ही करने का उपदेश करते हैं १४ इससे हे द्रौपदि ! तू अपने मूढ़ मन से ईश्वर और धर्म की निन्दा मत कर और न धर्म में शङ्का कर १५ अज्ञानी मनुष्य तत्त्व का निश्चय करनेवाले पुरुषों को अपने निकट उन्मत्त जानता है और धर्म में शङ्का करनेवाला किसीके कहे हुए प्रमाण को नहीं मानता है १६ अज्ञानी मनुष्य धर्म का अपमान करके अपने मन के विचार को ही ठीक जानता है और यह समझता है कि आत्मा ही लोक का साक्षी है और वह इन्द्रियों की प्रीति से बँधा हुआ है ऐसा समझने से मोह के वश में रहकर धर्म के मार्ग से दूर रहता है १७ धर्म में शङ्का करनेवाले मनुष्य के पाप को दूर करनेवाला कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है और उस पापी को अर्थ की चिन्ता करनेपर भी धर्म के करने से मिलनेवाले लोक नहीं मिलते हैं १८ जो मनुष्य काम और लोभ के वशीभूत होकर प्रमाण को नहीं मानता है और शास्त्र और वेदों के अर्थ

की निन्दा करता है वह नरक में पड़ता है १९ और जो शङ्का को छोड़कर धर्म ही को श्रेष्ठ समझता और करता है वह ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है २० और जो पुरुष शास्त्र की मर्यादा को छोड़कर काम करता है और आर्षप्रमाण को न मानकर धर्मपर नहीं चलता है उसका कल्याण बहुत दिनों में भी नहीं होता है २१ हे द्रौपदि ! मैं तुझसे निश्चय कहता हूं कि जो मनुष्य आर्षप्रमाण को न मानकर बुरे कर्म करते हैं उनके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं २२ इससे तू इस सनातन धर्म में शङ्का मत करे जिसको सर्वज्ञ और सर्वदर्शी ऋषिलोग कहते हैं और हम सब और बड़े बड़े श्रेष्ठ मनुष्य करते हैं २३ केवल धर्म ही स्वर्ग को लेजानेवाली नौका है और इसी नौका में बैठकर संसाररूपी समुद्र के पार जानेवाला व्योपारी जासकता है २४ जो यह धर्म जिसको धर्मात्मालोग करते हैं निष्फल होवे तो यह सब जगत् अन्धकाररूपी भ्रम में डूब जावे २५ और किसी को निर्वाणपद न मिले और कोई विद्या भी न पढ़े सबकी जीविका पशुकी सी होजावे और किसी का कोई मनोरथ पूरा न होवे २६ और जो तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वेदपाठ, दान और क्षमा किसी के करने से कोई फल न होवे २७ तो कोई मनुष्य धर्म न करे और उनके पीछे जो संतान होवे वह भी धर्म छोड़ दे इसप्रकार से धर्मका लोप ही होजावे २८ भला ऋषि, देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस और समर्थ लोग किस कारण से धर्म करते हैं २९ उनका केवल यही विचार है कि ईश्वर सब कल्याणरूपी कर्मों के करने के फल का देनेवाला है उनका किया हुआ जो धर्म है वही सनातन धर्म है ३० सो यह धर्म कदापि निष्फल नहीं है और अधर्म में निश्चय कोई फल नहीं है इसके सिवाय इस लोक में विद्या और तप का फल प्रत्यक्ष दीखता है ३१ तू अपने और अपने भाई धृष्टद्युम्न के जन्मही को देख कि तप के प्रभाव से किस प्रकार से तुम दोनों का जन्म हुआ है ३२ तेरे लिये तो इतनाही दिखाना बहुत है क्योंकि बुद्धिमान् की तृप्ति थोड़े ही से होजाती है और उसको फल भी मिलता है ३३ हां जो मूर्ख और बुद्धिहीन हैं उनका समाधान तो बहुत से भी नहीं होता है ऐसे मनुष्यों को धर्म का कुछ फल नहीं मिलता है न परलोक में उनका कल्याण होता है ३४ वेदोक्त कर्म और पापों के फल का उदय और उत्पत्ति वा नाश होना यह देवताओं का रचा हुआ है इसके भेदको कोई नहीं जानता है ३५ प्रजा मोह के वश में निर्वाण पद से रहित होकर जन्म लेती और मरती रहती है ३६ सो इन देवताओं से रक्षा किये हुए विषयों को जिनको

माया बड़ी गूढ़ है सिवाय उन ब्राह्मणों के जो इच्छारहित व्रत करके भोजन करते और तप से पापों को भस्म करके ध्यान में मग्न रहते हैं और कोई नहीं जानसक्ता है ३७ इससे फल न मिलने के कारण से धर्म और देवता में शङ्का करना उचित नहीं है मनुष्य को चाहिये कि बड़े यत्नसे यज्ञकरे और दान देवे ३८ हे द्रौपदि ! इस लोक में किये हुए कर्मों का ही फल मिलता है ब्रह्माजी ने इस सनातन धर्म को अपने पुत्रों से कहा था और कश्यपजी इस धर्मको अच्छीतरह जानते हैं ३९ इसको जान कर तू अपने संदेह को छोड़ दे और यह समझकर कि सब मौजूद है अपने हृदय से नास्तिक भाव को निकाल दे ४० हे द्रौपदि ! तू सब प्राणियों के धारण करनेवाले ईश्वर की भी निन्दा मत करे किंतु उस ईश्वर को नमस्कार कर ईश्वर करे तेरी ऐसी बुद्धि न रहे ४१ हे द्रौपदि ! जिस ईश्वरकी कृपा से उसका भक्त मरकर अमर होजाता है उस उत्तम देवताका अपमान करना तुझे उचित नहीं है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय ।

द्रौपदी का युधिष्ठिर से एक ब्राह्मण से सुनी हुई नीति कहकर प्रारब्ध को छोड़ने और यत्न करने के लिये प्रार्थना करना ।

युधिष्ठिर के उक्त उपदेश को सुनकर द्रौपदी बोली कि हे पार्थ ! मैं धर्म का अपमान और निन्दा किसी अवस्था में नहीं करती हूं ईश्वर का अपमान जो प्रजा का स्वामी है भला मैं क्योंकर करूंगी १ हे भारत ! मैंने ये सब बातें दुःखी होने के कारण से कही थीं और फिर उन्हीं बातों को कहती हूं आप सावधान होकर मुझसे सुनिये २ इसलोक में ज्ञानीको कर्म करना अवश्य उचितहै क्योंकि पहाड़ आदि स्थावर जीवों के सिवाय और कोई ऐसा नहीं है जो विना कर्म के जीता हो ३ देखो बछड़ा उत्पन्न होते ही गाय के थन पीने लगता है उसकी यह और दूसरी आजीविका पूर्वकर्म के अनुसार होती है ४ इसीप्रकार सब चलनेवाले जीवों का हाल है परंतु उन चरजीवों में केवल मनुष्य विशेष कर्म करके इसलोक और परलोक में आजीविका मिलने की इच्छा करता है ५ सब जीव संसार में पूर्वकर्म के संस्कार के अनुसार जन्म लेते हैं और प्रत्यक्ष में अपने किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं ६ और जैसे बगला जल के निकट रहकर पूर्वजन्म के संस्कार के अनुसार जलजीवों को मारकर अपनी आजीविका करताहै उसी प्रकार

से क्या धाता और क्या विधाता सबों को पूर्वकर्मों का फल भोगना पड़ता है ७ सो विना कर्म किये हुए किसी जीवको आजीविका नहीं मिलसक्ती है इससे मनुष्य को चाहिये कि कर्म करे और कर्म को कभी न छोड़े ८ इससे हे महाराज! आपको कर्म करना चाहिये कर्म करने में ग्लानि करना उचित नहीं है कर्म को यथावत् करने और जाननेवाला सहस्रों में कोई बिरला ही होता है और नहीं भी होता है ९ मनुष्य को अपने वित्त की वृद्धि और रक्षा करने का उपाय सदैव करना उचित है क्योंकि वृद्धि न करने से खाते खाते हिमालय की समान वित्त भी क्षय होजाता है १० जो मनुष्य पृथ्वीपर कर्म करना छोड़ दे तो सब प्रजा नाश होजावें और जो कर्म के करने का कुछ फल न होय तो वृद्धि कभी न होय ११ हां यह बात निस्संदेह है कि कर्म निष्फल भी होजाता है परंतु फिर भी सब मनुष्यों को मैं कर्म ही करते देखती हूं किसी अवस्था में मैं उनको और वृत्तिपर चलते नहीं पाती हूं १२ जो मनुष्य प्रारब्ध को बड़ा जानकर कर्म नहीं करते हैं और जो हठवादी होते हैं वे दोनों शठ हैं श्रेष्ठ मनुष्य वही है जो कर्म करने में सदैव अपनी बुद्धि रखता है १३ प्रारब्ध पर रहनेवाले मनुष्य का नाश निश्चय इस प्रकार से हो जाता है जैसे कच्चे घड़े में जल भरने से घड़ा टूट जाता है १४ और इसी प्रकारसे कर्म के करने की सामर्थ्य रखनेवाला मनुष्य जो हठ और दुर्बुद्धि से कर्म नहीं करता है वह भी अनाथ और दुर्बल की तरह रहकर बहुत दिन नहीं जीता है १५ इसलोक में दैवयोग से जो अकस्मात् द्रव्य मिल जाता है तो उसको लोग हठ से कहते हैं कि यह विना यत्न किये हुए मिला है १६ परंतु दैवाधीन मिलने के कारण से उस धन को दैवदत्त समझना चाहिये १७ और पौरुष वही है जो अपने यत्न से किये हुए कर्मों के द्वारा धन उपार्जन किया जावे १८ और जो मनुष्य स्वभाव की प्रवृत्ति से विना कारण धन पाजाताहै उसको स्वभावात्मक फल कहना चाहिये अर्थात् यह समझना चाहिये कि यह पूर्वकर्म के अनुग्रह का फलहै १९ इस प्रकार से मनुष्य को जो कुछ धन हठ से, प्रारब्ध से, स्वभाव से अथवा कर्म से मिले उस सबको पूर्वकर्मों का फल ही समझना चाहिये २० ईश्वर भी पूर्वजन्मों में किये हुए कर्मों के फल को विभागपूर्वक सब मनुष्यों को अनेक कारण रच कर देता है २१ सो यह बात निश्चय है कि मनुष्य शुभ और अशुभ जो कुछ कर्म करता है वह सब ईश्वर का रचा हुआ पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों के फल का उदय है २२ इस शरीर

का किसी काम के करने में प्रवृत्त होजाना केवल ईश्वर का कारण है वही जैसे इस शरीर को प्रेरणा करता है उसी प्रकार से यह शरीर अवश्य करने लगता है २३ सब कर्मोंमें मनुष्य को लगानेवाला महेश्वर है वही उन जीवों से भी कर्म कराता है जो अवश हैं अर्थात् वश में नहीं हैं २४ जीव पहले अपनी बुद्धि से कार्य को निश्चय करके कर्म के द्वारा अपने मनोरथ को पाता है इसमें कारण मिलने का पुरुष होता है २५ हे नरनायक ! कर्मों की संख्या नहीं हो सक्ती है परंतु नगर और स्थानों के बनाने में पौरुष ही कारण गिना जाता है २६ देखो तिल से तेल निकालना, गौ का दूध दुहना और लकड़ी से आग करना कुछ बड़ी बात नहीं है परंतु बुद्धिमान् को अपनी बुद्धि से उनके निकालने और करने का उपाय जानना उचित है २७ उपाय जाननेपर मनुष्य उन कामों को कर लेता है और फिर उनसे अपनी जीविका भी निकाल लेता है २८ किसी किये हुए काम को यह जानना कि इस काम को किसी चतुर मनुष्य ने किया है या मूर्ख ने और इसका प्रारम्भ अच्छे प्रकार से हुआ है या नहीं यह बात विशेष फल भेद से ही जानी जाती है २९ जो द्रव्यके उपार्जन का कारण पौरुष न होवे तो काहे को कोई किसी का गुरु और चेला होवे और यज्ञ आदि के करने और बावड़ी आदि के बनवाने का फल काहे को होवे ३० संसार में कर्म की सिद्धि करनेवाले की प्रशंसा और असिद्धि करनेवाले की निन्दा की जाती है जो कर्म करना बन्द होजावे तो कौन किसको कैसा कहेगा ३१ सो यह कर्म संसार में तीन प्रकार से कहाजाता है कोई तो कर्म को हठ से, कोई प्रारब्ध से और कोई यत्न से सिद्ध होना कहते हैं ३२ और बहुतों का यह मत है कि प्रारब्ध और हठ दोनों अदृश्य पदार्थ हैं ३३ हां इनसे अर्थों की उत्पत्ति तो दीखती है परंतु बहुत से काम तो ऐसे हैं जो केवल प्रारब्धाधीनहैं, बहुतसे हठसे पूरे होजाते हैं और बहुत से विना यत्नके सिद्ध नहीं होते ३४ और दूसरी हँसी की यह बात है कि बहुत से तत्त्व के जानने वाले चतुर मनुष्यों की यह प्रतिज्ञा है कि चौथा अर्थात् पूर्व कर्म है ही नहीं ३५ और जो ईश्वर प्राणियों को अच्छे और बुरे कर्मों के फल का देने वाला न होवे तो कोई मनुष्य संसार में दुःखी न होवे ३६ क्योंकि जो पूर्वकर्म का संस्कार न होवे तो मनुष्य जिस जिस कर्म के करने का उपाय करे वही वही काम सिद्ध होजाय ३७ जो मनुष्य अपने काम को सिद्ध करने के लिये कहे हुए तीनों प्रकार के यत्नों को नहीं देखते हैं और जो बिगड़े हुए काम के बिगड़ने के कारण को

नहीं विचारते हैं वे इस शरीर की सदृश जड़ हैं ३८ मनुजी का वाक्य है कि मनुष्य को कर्म अवश्य करना चाहिये यत्न न करनेवाले पुरुष को सदैव दुःख होता है ३९ सो हे महाराज! इस लोक में कर्म ही करने से बड़े बड़े काम पूरे होते हैं आलसी उसके फल को कभी नहीं पासक्ता है ४० जो कर्म करने से कार्य सिद्ध न हो तो मनुष्य को उस पिछले पाप का प्रायश्चित्त करदेना चाहिये जो पुण्य के फलको रोक रहा हो। यह कर्म ऐसा पदार्थ है कि इसके करने से मनुष्य देवता, पितर और ऋषियों के ऋण से भी छूट जाता है ४१ आलसी और सोनेवाले मनुष्य दरिद्री होजाते हैं और चतुर मनुष्य सदैव फलपाकर ऐश्वर्य भोगते हैं ४२ संशय करनेवाले मनुष्यों का काम पूरा नहीं होता है और जिनको संशय नहीं है उनके सब काम सिद्ध हो जाते हैं सो इस संसार में संशयरहित धैर्यवान् और कर्म में प्रीति रखनेवाला मनुष्य कोई बिरला ही होता है ४३ हम सब यह अनर्थ भोग रहे हैं जो आप कर्म करनेपर आरूढ़ होजावें तो इस अनर्थ का मूल निस्संदेह कटजावे ४४ और जो आपके ऐसा करने पर काम सिद्ध न होवे तो आपका और आपके भाई भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव का अभिमान तो दूर होजायगा ४५ क्योंकि किसी काम के पूरे न होने के पहले कर्मफल का हाल जाना नहीं जासक्ता यत्न करने पर हमारे और आपके कर्मों की सफलता निश्चय होजायगी ४६ देखिये किसान पृथ्वी को हल से जोत कर बीज बो देता है और फिर और कुछ नहीं करता है वह खेती वर्षाके आधीन रहती है और जो वर्षा न होवे तो फिर किसान को कोई दोष नहीं देसक्ता क्योंकि वह कहसक्ता है कि जो मनुष्य का उपाय था और जो सबने किया सो मैं भी करचुका हूं ४७। ४८ इसीप्रकार से जो हमारा काम यत्न करने पर पूरा न होवेगा तो फिर अपना कुछ दोष न होने से अपनी निन्दा भी कोई न करेगा ४९ सो हे महाराज! आपको यह जानकर कि कर्म करने से कोई काम सिद्ध नहीं होता है सब काम ईश्वर ही के आधीन हैं अपना चित्त यत्न करने से नहीं हटाना चाहिये क्योंकि हर काम में प्रारब्ध और यत्न दोनों ही कारण हुआ करते हैं ५० इससे चाहे काम हो या न हो उपाय करना ही अवश्य है उपाय के सिद्ध होने में बहुत से कारण हुआ करते हैं ५१ मनुष्य में गुण न होने से यत्न का फल कभी न्यून और कभी नहीं भी होता है परन्तु यत्न करने से तो फल और गुण का नाम भी नहीं दीखता है ५२ जो धैर्यवान् मनुष्य होते हैं वे अपनी बुद्धि से

बल के अनुसार देश और काल विचारकर मङ्गलपूर्वक अपने कल्याण के होने का उपाय करते हैं ५३ वह देश और काल का विचार अप्रमत्त मनुष्य ही कर सकते हैं और उस स्थान पर उनका उपदेशरूप मुख्य कर्मकर्त्ता पराक्रम होता है जो बड़े बड़े कामों के करने में श्रेष्ठ गिना जाता है ५४ बुद्धिमान् को चाहिये कि जिस कल्याण के काम के होने के लिये बहुत से गुणों की चाहना हो और वह सब गुण अपने पास न होवें तो फिर पराक्रम से उस कार्य की सिद्धि न चाहे किंतु साम अर्थात् सुलह करके अपना काम कर ले ५५ और शत्रु का व्यसन वनवासादिक में, समुद्र और पर्वतों में भी हो तो भी उसका छिद्र ढूंढ़ लेवे क्योंकि शत्रुके छिद्र को ढूंढ़नेवाला मनुष्य मन्त्री आदि से अनृणी होजाता है ५६ । ५७ इस से मनुष्य को अपनी आत्मा का अपमान करना कदापि उचित नहीं है ऐसा करनेवाले मनुष्य को ऐश्वर्य शोभा नहीं देता है ५८ सो हे युधिष्ठिर, महाराज! उक्तरीति से फल सिद्धि स्वाभाविक है उसके लिये काल और अवस्था के अनुसार यत्नका ठीक ठीक विचारना ही फलसिद्धिकी जड़है ५९ मैंने यह सिद्धान्त एक बड़े पण्डित ब्राह्मण से सुना था जिसने मेरे भाइयों को बृहस्पतिजी की कही हुई नीति सिखाई थी मेरे पिता ने उस ब्राह्मण को अपने घर में टिकाया था एक दिन मैं भी अपने पिता की गोद में किसी काम के लिये आबैठी थी उसीसमय उस ब्राह्मण ने यह उक्त सिद्धान्त सुनाया था ॥ ६० । ६२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

तेंतीसवाँ अध्याय।

भीमसेन का युधिष्ठिर से यह कहना कि शत्रुओं को मारकर अपना राज्य लेलो।

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! द्रौपदी की बातको सुनकर भीमसेन जो क्रोधी और असहनशील अर्थात् किसी की बात को सहनेवाला न था श्वास लेता हुआ युधिष्ठिर के पास जाकर कहने लगा कि १ आपको राजा के धर्म के मार्ग पर जो सत्पुरुषों के योग्य हैं चलना चाहिये हमलोगों के इस तपोवन में धर्म, अर्थ और काम से रहित होकर बसने से क्या प्रयोजन निकलता है २ हमारे राज्य को दुर्योधन ने कुछ धर्म और सीधेपन से नहीं लिया है किन्तु कपटरूपी पांसों से हरलिया है ३ और कुछ शूरता भी नहीं की है यह राज्य हमारा इस प्रकार से दुर्योधन ने लेलिया है जैसे बचे कुचे मांस का खानेवाला दुर्बल गीदड़ बलवान् सिंह के मांस को छल से लेकर खालेवे ४ हे अर्जुन! यह तुम क्या कर

रहे हो जो इस प्रतिज्ञा के पूरा करने के लेशमात्र धर्म से अपने को बांधकर राज्य मिलने के उपाय को छोड़कर जो सब धर्म और कामों के उत्पन्न होनेका स्थान है दुःख उठा रहे हो ५ हे युधिष्ठिर! आपके प्रमाद के कारण से हमारा राज्य जिसको इन्द्र भी नहीं ले सकता था हमारे देखते और इस गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन से रक्षित होनेपर हर लिया गया ६ आपके ही कारण से हमारा सब ऐश्वर्य इसप्रकार से हर लिया गया है जैसे कोई ऐसे मनुष्य की गाय इत्यादि पदार्थों को छीनकर ले जावे जिसके हाथ और पांव काम के न रहे हों ७ क्या आपको यह बात अच्छी जान पड़ती है हम सब धर्म और काम में विश्वास रखकर आपके आज्ञाकारी हैं ८ और हम लोगों ने अपने मन और बुद्धि को योगियोंकी भांति वश में कर लिया है कि जिसके कारण से हमारे मित्रवर्ग दुःखी और शत्रु प्रसन्न हो रहे हैं जो ऐसा न होता तो हमलोग आपकी शिक्षा को मानकर धृतराष्ट्र के पुत्रों को अबतक जीता क्यों छोड़ देते कि जिससे वे पापी हमको दुःख दे रहे हैं ९।१० और आप इस मृगचर्या अर्थात् वनवास के दुःख को उठा रहे हैं यह वृत्ति बलवानों की नहीं है किन्तु दुर्बल जीवों की है ११ इस वृत्ति को मैं और अर्जुन अच्छा नहीं जानते हैं और श्रीकृष्ण, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और सञ्जय भी बुरा कहते हैं १२ आप दिनरात व्रत कर कर के दुर्बल होगये हैं और धर्म धर्म ही कहा करते हैं ऐसा विराग करने से संसार में मनुष्य क्लीब गिना जाता है १३ इस अफल और अर्थनाशक अर्थात् लक्ष्मी का नाश करनेवाले विराग को वही लोग अच्छा जानते हैं जो असमर्थ हैं १४ आप तो सब प्रकार से सब बातों को अच्छी तरह देखनेवाले और समर्थ हैं आप हम लोगों के अच्छे बल को जानकर क्यों दयावान् होकर अनर्थ को नहीं पहिचानते हैं १५ हाय बड़े दुःख की बात है कि ये धृतराष्ट्र के पुत्र हम समर्थों को क्षमा करने के कारण से असमर्थ जान रहे हैं इससे तो मरना ही अच्छा है १६ क्योंकि धर्मपूर्वक बिना मुख मोड़े लड़नेपर जो हम मारे भी जावेंगे तो देह छोड़ने पर हमको अच्छे लोक मिलेंगे १७ और जो हमलोग उन सबको मार डालेंगे तो संपूर्ण पृथ्वी का राज्य भोगेंगे इससे दोनों बातों में हमारा सब प्रकार से कल्याणही है १८ सो हम सबको यह बात करना अवश्य योग्य ही है क्योंकि हम सब धर्म करने, कीर्त्ति चाहने और वैर का बदला लेने की इच्छा रखते हैं १९ जो हम लोग अपने काम के लिये युद्ध करेंगे तो हमारी कृत्य और लक्षण के प्रकार होनेपर राज्य के हरने के कारण से

सब कोई हमारी बड़ाई ही करेगा निन्दा कोई नहीं करेगा २० जिस धर्म के करने से अपने को अथवा मित्रों को दुःख हो वह धर्म नहीं है किन्तु व्यसन है ऐसा धर्म नीचधर्म कहलाता है २१ जो मनुष्य नित्य धर्म में अपना मन रखता है और धर्म के कारण से अपने को दुर्बल करदेता है अन्त में उसका धर्म और लक्ष्मी दोनों इस प्रकार से जाते रहते हैं जैसे मरने पर मनुष्य के दुःख और सुख दोनों समाप्त होजाते हैं २२ और जिस मनुष्य का धर्म,धर्म के लिये क्लेशभागी होता है वह मनुष्य पण्डित नहीं है और न वह धर्म के अर्थ को समझता है जैसे अन्धा आदमी सूर्य की प्रभा को नहीं जान सकता है २३ और जिस मनुष्य का धन आदि ऐश्वर्य अपने ही अर्थ हो अर्थात् उसके धन आदि से किसी को किसी प्रकार का लाभ न हो तो वह भी पण्डित नहीं है किंतु ऐसा है जैसा वन में गौओं को रखनेवाला गोपाल २४ और जो मनुष्य अर्थार्थी हैं अर्थात् सिवाय अपने मतलब के दूसरी बात नहीं जानते हैं वे ब्रह्महत्यारे की भांति संसार में निन्दित किये जाते हैं और सब जीव उनको मारडालते हैं २५ और जो मनुष्य कामी होता है और सिवाय काम और धर्म आदि किसी बात को नहीं चाहता है उसके मित्रवर्ग नष्ट होजाते हैं और अन्त में धर्म और अर्थ से रहित होने के कारण से वह कामी इस प्रकार से मरजाता है जैसे जल के सूखने पर मछलियां मर जाती हैं २६ । २७ इस कारण से पण्डितलोग धर्म और अर्थ के विषय में आनाकानी नहीं करते हैं ये दोनों धर्म और अर्थ इस प्रकारसे काम के उत्पन्न करनेवाले हैं जैसे अरणी काष्ठ अग्नि का उत्पन्न करनेवाला है २८ धन आदि धर्म का मूल है और धर्म अर्थ का मूल है सो ये दोनों एक दूसरे के कारण इस प्रकार से हैं जैसे बादल और समुद्र अर्थात् जैसे बादल समुद्रसे जल लाते हैं और पृथ्वीपर वर्षा करते हैं और वह जल फिर बहकर समुद्र में चला जाता है २९ द्रव्य और अर्थ के लाभ और स्पर्श में जो आनन्द होता है उस आनन्द का स्वरूप दिखाई नहीं देता है ३० जो मनुष्य केवल धन आदि की ही इच्छा रखता है वह धर्म को बढ़ाता है और कामार्थी धन तो चाहता है परंतु धन मिलने पर फिर सिवाय काम के और दूसरी बात नहीं चाहता ३१ और जैसे काठ के जलने पर भस्म तो होजाती है परंतु उस भस्म से और कोई काम नहीं होसकता है इसी प्रकार से कामी मनुष्य पण्डित हो तो भी कामी होने से धर्म और अर्थ उपार्जन नहीं करसकता है ३२ इसी

प्रकार से जीवों की विशेष हिंसा करना भी अधर्म है जैसा कि चिड़ीमार सब प्रकार के पक्षियों को मारता है ३३ इस संसार में काम और लोभ के कारण से धर्म के स्वरूप को न देखनेवाला मनुष्य इसलोक और परलोक दोनों में जीवों का वध्य होता है अर्थात् उसको सब जीव मारडालते हैं ३४ हे राजन्! यह बात आप अच्छीतरह से जानते हैं कि कोई अर्थ विना द्रव्य के नहीं मिल सकताहै और यह भी आपको विदित है कि अर्थकी प्रकृति और विकृति अर्थात् त्याग भोगादि रूप किस प्रकार से होते हैं ३५ सो ये अर्थ और काम दोनों बुढ़ापे के आने और मरनेपर नाश होजाते हैं हमको जान पड़ता है कि यही अनर्थ हम लोगों में भी वर्तमान होगा ३६ पांचों इन्द्रियां, मन और हृदय इनकी जो विषय के आधीन आपस की प्रीति है उसीका नाम काम है और वही उत्तम कर्मों का फल है इससे मेरी समझ में आदमी को अर्थ, धर्म और काम तीनों को अलग अलग देखकर समय के अनुसार सबको करना चाहिये यह करना उचित नहीं है कि केवल धर्म ही में मन रक्खे अथवा अर्थ के सिवाय और काम न करे या नित्य काम ही में मन लगाये रक्खे ३७ । ३९ शास्त्र की रीति तो यह है कि दिनके पहिले भाग में धर्म करे और दिन के बीच में धन के उपार्जन का उद्योग करे और दिन के व्यतीत होने पर कामकलोल करे ४० और उसी शास्त्र में येही तीनों कर्म आयु के विजय में इस प्रकार से लिखे हैं कि आयु के पूर्वभाग अर्थात् युवावस्था में कामकलोल करे और मध्य अवस्था अर्थात् बिचली उमर में द्रव्य के उपार्जन का उद्योग करे और पिछली अवस्था में धर्म करे ४१ इससे काल के जाननेवाले मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम का संग्रह, विधिपूर्वक कालका विभाग करके, समय के अनुसार करना चाहिये ४२ सो जो आपका यह विचार हो कि मोक्ष परम कल्याण की देनेवाली है जैसा कि सुखार्थी लोग कहते हैं तो जल्दी मोक्ष मिलने का उपाय कीजिये और जो यह निश्चय हो कि बुद्धि, बल और उपाय से राज्य लेना चाहिये तो राज्य के मिलने का उपाय कीजिये क्योंकि निष्काम रोगी की भांति बैठे बैठे जीना दुःखदायी जान पड़ता है ४३ । ४४ आप निस्संदेह धर्म को जानते हैं और सदैव से आपने धर्म ही किया है परंतु इस जानने पर भी आपके सुहृद्लोग यह बात कहते हैं ४५ कि दान, यज्ञ, सत्पुरुषों का पूजन, वेदधारण और सीधापन ये उत्तम धर्म हैं और इसलोक और परलोक दोनों के लिये अच्छे हैं ४६ सो ये

धर्म ऐसे मनुष्य से नहीं होसकते हैं जो द्रव्यहीन हैं चाहे उस मनुष्य में और सम्पूर्ण गुण होवें ४७ धर्म ही इस संसार का मूल है और धर्म से बढ़कर दूसरा पदार्थ नहीं है परन्तु वह धर्म बहुत धन के बिना नहीं होसकता है ४८ और धन धर्म की बुद्धि रखनेवाले मनुष्य को भिक्षा मांगने और कादरता करने से नहीं मिलसकता है ४९ सो आपको ब्राह्मणों की भांति भिक्षा मांगना उचित नहीं है आपको चाहिये कि पराक्रमही से धन के उपार्जन का यत्न कीजिये ५० क्षत्रियों का धर्म भिक्षा मांगना अथवा वैश्य और शूद्रों की जीविका करना नहीं है किंतु क्षत्रिय का धर्म केवल पराक्रम ही है ५१ सो आप अपने धर्मपर आरूढ़ हूजिये और मेरे और अर्जुन के बल से दुर्योधन को मित्रवर्गों सहित मारने का उपाय कीजिये ५२ विद्वान् और बुद्धिमान् लोग उदारता अर्थात् महत्त्व को ही क्षत्रिय का धर्म कहते हैं इससे आप उदारता को ग्रहण कीजिये और दूसरी ओर अपने चित्त को डामाडोल न कीजिये ५३ हे राजेन्द्र! आप तो सब सनातन धर्मों को जानते हैं भला यह तो समझिये कि आपका जन्म क्रूरकर्मी क्षत्रिय कुल में हुआ है जिससे मनुष्य भयभीत रहते हैं ५४ आपके प्रजा के पालने के क्षत्रिय धर्म की कोई निन्दा नहीं करता है किंतु वह आपका सनातन धर्म विख्यात है ५५ सो जो आप अपने उस धर्म को न करेंगे तो आपकी हँसी होगी क्योंकि धर्महीन मनुष्य की कोई प्रशंसा नहीं करता है ५६ सो आप शिथिलता को छोड़कर अपना हृदय क्षत्रियों कासा कर लीजिये और पराक्रम से इस पृथ्वी के धुरे को धारण कर लीजिये ५७ आजतक केवल धर्म के करनेवाले राजा ने पृथ्वी नहीं जीती और न ऐश्वर्य और लक्ष्मी इकट्ठी की ५८ बहुधा चतुर मनुष्य लोभी और नीच मनुष्यों को जिह्वा के प्रिय पदार्थ देकर छल से राज्य इस प्रकार से ले लेते हैं जैसे व्याध वन के पशुओं को मारकर आजीविका करनेवाला अपनी जीविका निकालता है ५९ हे नरेन्द्र! देखिये देवताओं ने अपने बड़े भाई असुरों को छल से ही जीता था ६० इससे आपको भी अपने शत्रुओं को छल करके ही मारना उचित है ६१ अर्जुन के समान योद्धा और मेरे समान गदाधारी न कोई है और न होगा जो मनुष्य बलवान् होते हैं वे अपने बलसे ही युद्ध करते हैं उनको कुछ सेना जोड़ने और शत्रु के पक्षवालों से मिलाप करने की आवश्यकता नहीं रहती इससे आपको भी बल से युद्ध करना उचित है ६२।६३

मनुष्य के ऐश्वर्य का कारण केवल पराक्रम ही है इससे विपरीत होना निष्फल है और वह इस प्रकार से अच्छा नहीं मालूम होता है जैसे हिमऋतु में वृक्ष की छाया प्रिय नहीं होती ६४ जो मनुष्य कल्याणकारी बहुतसा धन चाहे उसे धन देना भी बीज बोने के समान इस प्रयोजन से उचित है कि जैसे बीज बोनेवाले को उस बीज के बहुत से फल मिलते हैं उसी प्रकार से धन देनेवाले को भी बहुत धन वहां मिलताहै—जहां बीज बोनेसे बीज उत्पन्न न होवे और जहां धन देने से कुछ लाभ न होवे वहां बीज बोना व्यर्थ है अर्थात् वहां अपनी प्रतिज्ञा का पूरा करना वृथाही है ६५।६६ इसीप्रकार करने से मनुष्य छोटे धर्म से बड़ा धर्म करने लगता है और ऐसाही मनुष्य निश्चय ज्ञानी कहलाता है ६७ बुद्धिमान् लोग अपने शत्रु के मित्रों में और आपस में भेद करा देते हैं और जब शत्रु मित्रहीन रहजाता है तब उसे अपने वश में करलेते हैं ६८ बलवान् मनुष्य बलही से युद्ध करता है और प्रजा को अपने वश में करलेता है उसको निग्रह और सान्त्वन आह्वान आदि उपायों से कुछ प्रयोजन नहीं ६९ पराक्रमी शत्रु को बहुत से दुर्बल मनुष्य बटुरकर मार लेते हैं जैसे मुहार के तोड़नेवाले के प्राण भौंरे हरलेते हैं। हे महाराज ! जैसे सूर्य किरणों से सब जगत् के जीवों को पालता और हरता है उसी प्रकार से आप भी सूर्य के समान होकर पृथ्वी को हरण और भरण अर्थात् विजय और पालन कीजिये ७०।७१ हे राजन् ! हमने सुना है कि पृथ्वी को विधिपूर्वक पालन करना भी पुराना तप है जिसको हमारे पूर्वज लोग आगे से करते चले आये हैं ७२ और क्षत्रिय को तो तप करने से ऐसे उत्तमलोक नहीं मिलते हैं जैसे लोक युद्ध में सम्मुख मरने और विजय करने से मिलते हैं ७३ और आपकी इस व्यथा को देखकर सबलोक का यही निश्चय है कि अब सूर्य की प्रभा और चन्द्रमा की शोभा नष्ट होजायगी और ब्राह्मण व अन्यलोग सब कथायें कह कहकर आपकी सत्यप्रतिज्ञा और दुर्योधन आदि के अधर्म की निन्दा करते हैं ७४।७६ आपने अन्न, कृपणंता, भय, काम और धन के कारण से कभी झूठी बात नहीं कही ७७ जो राजा पृथ्वी को जीतनेवाला कभी कुछ पाप भी करडालता है तो फिर वह उस पाप को बड़े बड़े यज्ञ करके जिनमें बहुतसी दक्षिणा उठती हैं नष्ट करडालता है और ब्राह्मणों को सहस्रों ग्राम और गौवें देने से उसके पाप इस प्रकार से छुटजाते हैं जैसे चन्द्रमा के उदय से

अन्धकार दूर होजाता है इसके सिवाय पुरवासी, देशवासी, बालक और बूढ़ा ऐसा कोई नहीं है जो आपकी बड़ाई न करता हो ७८ । ८० दुर्योधन के पास राज्य का होना इस प्रकार से निष्फल है जैसे कुत्ते के चर्म के पात्र में रक्खा हुआ दूध अथवा जैसे शूद्र के पास वेद का होना, चोरों का सत्यवादी होना और स्त्री का बलवान् होना है ८१ यह बात सब संसार में फैल रही है और स्त्रियां और बालक नित्य इस बात को कह लिया करते हैं ८२ देखिये यह बड़े दुःख की बात है कि सब राज्य आपके ही कारण से नष्ट होगया और आपके ही साथ इस अवस्था को पहुँचकर हम सबलोग भी नष्ट हुए ८३ सो आप अपने अस्त्र जाननेवाले सब भाइयों सहित ब्राह्मणों से आशीर्वाद लेकर सुन्दर युद्ध की सामग्री से सजे हुए रथों में बैठकर हस्तिनापुर को चले चलिये ८४ । ८५ और मरुद्गणों सहित इन्द्र के समान अपने पराक्रम से युद्ध करके और शत्रुओं को मारकर दुर्योधन से लक्ष्मी जीत लीजिये ८६ ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो विषधर सर्पों के सदृश गांडीव धनुषसे छोड़ेहुए बाणोंको जिनमें गृध्रपक्षी के पर लगे हुए हैं सहसके ८७ और कोई वीर अथवा घोड़ा और हाथी भी ऐसा नहीं है जो युद्ध में मेरे क्रोध करनेपर मेरी गदा के प्रहार को सहसके ८८ इसके सिवाय श्रीकृष्ण, सञ्जय और कैकेयों की सहायता पानेपर भी जो हमको राज्य मिलने में संदेह रहे तो बड़े आश्चर्यकी बातहै ८९ हे राजन्! यह भी बड़ा अचम्भा है जो आप ऐसी बलवान् सेना के होनेपर भी हाथ में रक्खेहुए राज्य को लेने का यत्न नहीं करते हैं ॥ ९० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिर का भीमसेन से यह कहकर कि तुमको अपनी वीरता पहले दिखानी थी, यह समझाना कि श्रेष्ठ मनुष्य प्रतिज्ञा छोड़ने से मरना अच्छा जानते हैं ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन की उक्त बात को सुनकर वह सत्यव्रती और धैर्यधारी राजा युधिष्ठिर उसी समय कहने लगा कि हे भीमसेन! वचनरूपी भालों से तेरा मुझे मारकर घायल करना ठीक है, मैं तेरी इस बात को बुरा नहीं कहता हूं क्योंकि मेरा प्रारब्ध ही प्रतिकूल होरहा है निस्संदेह तुमलोगों को मेरी ही अनीति से यह दुःख प्राप्त हुआ है १ । २ मैं दुर्योधन से देश और राज्य छीनने की इच्छा से जुआ खेला था परंतु मुझसे दुर्योधन की ओरसे बड़ा जुवारी पर्वतनिवासी शकुनी खेला और उसने अपनी माया

से मुझ छलहीन को जीत लिया इससे मुझको यह दुःख उठाना पड़ा ३ । ४ वह शकुनी सम और विषम पांसे फेंकता था और हरसमय उसकी इच्छा के अनुसार दांव पड़ता था मैंने इस बात को देखा परंतु अपने मन को वश में करके क्रोध नहीं किया क्योंकि क्रोध से मनुष्य का धैर्य जाता रहता है सो ५ हे भीमसेन ! पराक्रम और उद्योग करनेवाला मनुष्य इसप्रकार से अपने मन को वश में नहीं करसकता है मैं तेरी बातकी तो निंदा नहीं करता हूं पर यह कहता हूं कि यह बात ऐसे ही होनहार थी ६ कि जिसके बल से उस धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने राज्य की इच्छा से हमलोगों को दुःख में डाला और अपना दास कर लिया कि जिससे छुटाने को द्रौपदी हमलोगों की शरण हुई ७ परंतु इस बात को तो तू भी जानता है और अर्जुन को भी मालूम है कि जब दूसरी बेर जुआ खेलने को हम सब सभा में आये थे तब दुर्योधन ने सब भरतवंशियों के समीप मुझसे एकही दांव बदा था ८ और उस दांव का प्रण यह था कि हारनेवाला बारह वर्ष तक इच्छानुसार भाइयों सहित बनवास करे और तेरहवें वर्ष में इसप्रकार से गुप्त रहे कि कोई मनुष्य उसको यह न जानने पावे कि यह फलाना है और जो यह बात प्रकट होजावे तो फिर वह बारह वर्षतक वनवास करे सो दुर्योधन ने यह प्रण कहकर सभा में सब भरतवंशियों के सामने यह कहा था कि जो हम हार जायँगे तो हम भी ऐसा ही करेंगे और जो तुम हार जाओ तो तुमको भी ऐसा ही करना पड़ेगा और जब तेरह वर्ष उक्त प्रकारसे व्यतीत कर आवोगे तब फिर पांच नदीवाले देश का राज्य तुमको मिल जायगा इस प्रतिज्ञा को समझ कर जुआ खेलो ९ । १२ सो मैंने इस प्रण को अङ्गीकार करके फिर जुआ खेला और उसमें हम सब हारने के कारण से वनवास भेजे गये कि जिसको पूरा करने को वन वन घूमते फिरते हैं १३ दुर्योधन ने इस पर भी शान्ति न चाही फिर क्रोध के वश से उसने कौरवों को और उन मनुष्यों को जो उसके वशीभूत होगये थे अधिकारों पर नियुक्त किया १४ सो हे भीमसेन ! अच्छे पुरुषों में ऐसा कौन होगा जो राज्य के लिये अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ दे मेरी समझ में तो श्रेष्ठ मनुष्यों को प्रतिज्ञा छोड़कर राज्य का शासन करने से मरना अच्छा है १५ जो तुझको वीरों का कर्म करना था तो उसी समय किया होता जिस समय तैंने अपनी परिघ के समान भुजाओं को स्पर्श करके मेरे हाथों को जलाना चाहा था और

अर्जुनने तुझे रोका था १६ तू तो इस पराक्रम को पहिले ही से जानता था फिर इस प्रतिज्ञा करने के पहिले ही तैंने यह बात क्यों नहीं कही अब इस काल-रूपी प्रतिज्ञा को अङ्गीकार करने पर मुझसे अत्यन्त क्या कहना है १७ इसके सिवाय यह दुःख मुझको और भी विष पीने के समान कष्ट देरहा है कि द्रौपदी के दुःख को देखकर तू अपने स्वभाव के विपरीत सब बातों को सहा किया १८ सो हे भीमसेन! हे शूरवीर! अब जो प्रतिज्ञा कुरुवों के बीच में की गई है उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये अब तू आनेवाले सुख के समय की इसप्रकार से आशा कर जैसे बीज बोनेवाला फलों के लगने के समय की बाट निहारा करता है १९ ठगा हुआ मनुष्य जब पहिले ही से शत्रु के समूह को बेटे पोतों सहित काटडाले तभी उसको पराक्रम से गुण की प्राप्ति होती है और तभी वह जीवलोक में जीवता है २० लक्ष्मी भी उसे तभी मिलती है शत्रु भी उससे दबे रहते हैं और थोड़े ही काल में उसके पास मित्रलोग इस प्रकार से रहने लगते हैं जैसे इन्द्र के पास देवता रहते हैं २१ मेरी सत्यप्रतिज्ञा तो यहहै कि मैं देवताओं के भाव और जीवन से भी अधिक धर्म को समझता हूं और मेरी समझ में राज्य, पुत्र, यश और धन,ये सब सत्य के सोलहवें भागकी बराबर भी नहीं हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय ।

भीमसेन का युधिष्ठिर से यह कहना कि युद्ध करना ही क्षत्रियों का धर्म है ।

युधिष्ठिर की उक्त बात को सुनकर भीमसेन बोला कि आपने तो काल के निबन्ध से प्रतिज्ञा की है जो काल लोक का नाश करनेवाला, बाण के समान शीघ्रगामी, अप्रमेय और नित्य चलनेवाला है १ आपको ऐसा क्योंकर करना चाहिये क्योंकि आप तो काल के वशीभूत, निस्सार और मरने के धर्म के आधीन हैं २ जब मनुष्य की आयु इतना समय व्यतीत होनेपर भी घटजाती है जितना अञ्जन का एक कण सुई के छिद्र में होकर निकल जावे फिर वह मनुष्य इतने समय पर क्या होने की आशा करसक्ता है ३ ऐसी प्रतिज्ञा तो उसको करना चाहिये जिसकी आयु अनन्त हो अथवा जो अपनी आयु के प्रमाण को जानता हो ४ अब हम जो कुछ आशा करें वह तेरहवर्ष के इधर नहीं हो सकती इस अवसर में कदाचित् हमारा प्राण ही न रहे क्योंकि देहधारियों की देह का नाश होना निश्चय है इससे आपको मरने से पहिले ही राज्य के मिलने

का यत्न करना चाहिये ५ । ६ जो राजा पृथ्वी के पालन में असमर्थ और शूरता आदि से हीन होने के कारण से संसार में कीर्त्ति नहीं पाता है वह अपने शत्रुओं को वश में नहीं करसक्ता है और शत्रु से वैर न लेनेवाला मनुष्य अल्पपराक्रमी और अल्प उद्यमी कहलाता है, मेरी समझ में उस अभागे का जन्म होना निष्फल है ७ । ८ आपकी दोनों भुजा सुवर्ण को देनेवाली हैं और कीर्त्ति आपकी राजा पृथु की सी है आपको चाहिये कि संग्राम में अपने शत्रुओं को जीतकर अपनी भुजा के बल से उत्पन्न किये हुए धन से आनन्द भोगिये मेरे हृदय में क्रोध के कारण से ऐसा संताप होरहा है कि उसकी जलन अग्नि से भी अधिक है और मुझको इसीकारण से दिन रात नींद नहीं आती है और मैं तो मैं, यह धनुर्धारी अर्जुन और भी अधिक इस प्रकार से दुःखी है जैसे सिंह अपने स्थानपर दुःखी हो और यही ऐसा है जो अपने शरीर की ताप को हाथी के समान सहरहा है क्योंकि यह अकेला संसार के सब धनुर्धारियों को जीत सकता है ९ । १३ और ये दोनों नकुल और सहदेव और हमारी वृद्ध माता आपकाही हित चाहकर गूंगे और जड़ के समान होरहे हैं १४ और सब बान्धव और सृञ्जय भी आपही का प्रिय चाहते हैं, एक मैं और द्रौपदी दोनों दुःखी हैं १५ सो मेरा कहना भी सबको प्यारा जानपड़ता है क्योंकि सबही दुःखी हैं और सबही युद्ध की प्रशंसा करनेवाले हैं १६ हे राजन्! भला इससे बढ़कर और कौनसी आपत्ति होगी कि हमारे राज्य को अल्पपराक्रमी नीचलोग छीनकर भोग रहे हैं १७ आप ये सब क्लेश अपने शील और दया के स्वभाव के कारण से भोग रहे हैं परंतु कोई दूसरा मनुष्य इस बात की बड़ाई नहीं करता है १८ हे राजन्! आप तो दयालु ब्राह्मण का स्वरूप हैं आपने न जाने क्षत्रियकुल में कैसे जन्म पाया है क्योंकि बहुधा क्षत्रियों में क्रूरस्वभाववाले मनुष्यही उत्पन्न होते हैं और आपने मनुजी के कहे हुए राजधर्म को भी सुना है फिर न जाने आप इन धृतराष्ट्र के पुत्रों की कृत्य को जो क्रूर, छली, अहितकारी, शम गुण से रहित और दुरात्मा हैं अजगर की समान चेष्टा रहित होकर सह रहे हो और जो काम करने का है उसको नहीं करते हो १९।२२ हम सब बुद्धिमान्, बली, शास्त्र जाननेवाले और कुलीन हैं हमारा छिपकर रहना असम्भव है क्या आप एक मुट्ठीभर तिनकों से हिमालय पहाड़ को ढकना चाहते हैं आप संसार में विख्यात हैं आपका गुप्त रहना इस प्रकार से

असम्भव है जैसे अनूपदेश में फूले फले शाल के वृक्ष का छिपना सूर्य से असम्भव है २३। २५ और आपके सिवाय यह श्वेत हाथी की तुल्य अर्जुन और ये दोनों सिंह के सदृश नकुल और सहदेव और यह कृष्णा द्रौपदी जो विख्यात और शूरवीर पुत्रों को उत्पन्न करनेवाली है क्योंकर छिपकर रहेंगे और जैसे मेरुपर्वत कहीं नहीं छिप सक्ता है उसीप्रकार से मेरा भी गुप्त होकर रहना असम्भव है मुझे तो सब प्रजालोग बालकतक जानते हैं इसके पृथक् जिन जिन राजा और राजपुत्रों को हमने देशों से निकाल दिया था अब इस अवसर में वे सब दुर्योधन के आज्ञाकारी होकर रहेंगे और जहां कहीं हम जावेंगे वहीं वे दूतों को पहिले से लगाकर हमारी टोह लगा लेंगे और हमको प्रकट कर देंगे कि जिससे बड़ा अनर्थ और भय हमको होगा २६। ३१ अब हमको वन में रहते हुए तेरह महीने होगये हैं सो आप इन तेरह महीनों को तेरह वर्ष ही समझिये क्योंकि महीना वर्ष का प्रतिनिधि अर्थात् तदनुरूप है इस बात को बुद्धिमानों ने कहा है और वेद में भी लिखा है कि सोमयज्ञ के अभाव में पूतिकों को करे सो जैसे सोमयज्ञ के अभाव में पूतिक होसक्ते हैं उसी प्रकार से वर्ष के अभाव में महीना भी होसक्ता है ३२। ३३ इसके सिवाय सत्य छोड़ने का प्रायश्चित्त यह लिखा है कि अच्छा बोझा लेचलनेवाले बैल को पेट भर भोजन देदे सो जो आपको सत्य छोड़ने का विचार हो तो यह प्रायश्चित्त कर दीजियेगा ३४ इस से आप अब सिवाय शत्रुओं को मारने के और किसीबात का निश्चय न कीजिये और क्षत्रियों का धर्म भी युद्ध के सिवाय दूसरा नहीं है ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर के समझाने से भीमसेन का चुप होजाना और व्यासजी का युधिष्ठिर के पास आना तथा देवताओं से अस्त्र मिलने के लिये अर्जुन को प्रतिस्मृति विद्या देना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर भीमसेन की बात को सुनकर दो घड़ी तक श्वास ले लेकर यह विचार करता रहा कि मैंने राजनीति और वर्णाश्रमों के अनेक धर्म सुने हैं और वर्त्तमान और भविष्यकाल के अनुसार विचार भी मैं करसक्ता हूं परंतु मैं मेरु पहाड़ की तुल्य धर्म की गति को जो बड़ी कठिनता से मनुष्य जानता है जान बूझकर क्योंकर धर्म की मर्यादा को बल से उल्लंघन करूं यह विचार करने योग्य काम का निश्चय करके भीमसेन से आतुरता

के साथ कहने लगा १।४ कि हे भीमसेन! तैंने जो कुछ कहा है सब सच है परन्तु अब मैं जो कुछ तुझ से कहूं उसको तू मान ५ जो काम साहस के साथ किया जाता है वह निस्संदेह अधर्म है और उसके करने से दुःख होता है ६ और अच्छी सलाह के साथ जो सुकृत काम किया जावे वह जो ईश्वर की इच्छा हो तो अवश्य सिद्ध होता है ७ तू जो अपने बल के गर्व और चपलता के कारण से यह कहता है कि यह काम करने ही के योग्य है तो उसका उत्तर सुन ८ कि भूरिश्रवा, शल, जलसंध, भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और दुर्योधन आदि सब धृतराष्ट्र के हत्यारे पुत्र सब अस्त्र जाननेवाले हैं इनके सिवाय जिन जिन राजाओं को हम लोगों ने दुःखी किया था वे सब अब दुर्योधन से मिल गये हैं और उससे प्रीति रखते हैं ९।११ वे हमारे हित में अब काहेको रहेंगे किन्तु और उलटा हमसे युद्ध करने का यत्न करेंगे क्योंकि उनके पास सेना और कोष अर्थात् ख़ज़ाना दोनों मौजूद हैं १२ और कौरवों की सेना के सब अधिकारी और सिपाही लोग और धृतराष्ट्र के पुत्र और मन्त्री सब दुर्योधन से सत्कृत होकर समय समय पर मासिक और भोगादिक पाते हैं मेरी समझ में वे सब भी दुर्योधन की ओर से लड़कर अपने प्राण देने पर तैयार होंगे १३।१४ यद्यपि भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य का स्नेह हमसे और धृतराष्ट्र के पुत्रों से एकसा ही है तथापि वे लोग भी दुर्योधन से ग्राम और धन के पाने के कारण से युद्ध में अपने प्राण दुर्योधन के निमित्त देने को तैयार होंगे १५।१६ ये तीनों सब दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले और धर्मात्मा हैं और मेरी समझ में उनको युद्ध में देवता भी नहीं जीत सकते हैं १७ इनके सिवाय क्षमारहित, क्रोधी और महारथी कर्ण के पास जो अभेद्य कवच है उसमें कोई हथियार नहीं घुस सकता है १८ सो जब तक ये सब पुरुषोत्तम न जीते जावें तबतक तू सहायरहित होकर दुर्योधन को नहीं मार सकता है १९ बाण छोड़ने में कर्ण की हस्तलाघवता को शोच शोचकर मुझे निद्रा नहीं आती है २० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन युधिष्ठिर की बात को सुनकर म्लानचित्त और शङ्कित होकर चुप हो रहा २१ इसी अवसर में वहां सत्यवती के पुत्र व्यासजी महाराज आ पहुँचे २२ और पाण्डवों से पूजित और सत्कृत होकर युधिष्ठिर से कहने लगे २३ कि मैं तेरे मनोरथ को बुद्धि से जानकर शीघ्रता से तेरे पास आया हूं २४ तू चिन्ता मत करे तुझको जो भीष्म, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, दुर्योधन और दुःशासन की ओर से भय है मैं

उसको वेद में देखे हुए कर्म से नाश कर दूंगा २५।२६ तुम उस कर्म को धैर्य धरकर सुनो और उसे करके सिद्धि पाने पर अपने मनके दुःख त्याग दो २७ वैशंपायन जी बोले हे राजा जनमेजय! यह कहकर व्यासजी युधिष्ठिर को एकान्त में लेगये और कहने लगे २८ कि अब तेरे कल्याण होने का समय निकट आगया है उस समय में धनुर्धारी अर्जुन युद्ध में सब शत्रुओं को पराजय करेगा २९ अब मैं तुझको अपनी कही हुई सिद्धिरूप प्रतिस्मृति नाम विद्या तुझे शरणागत जानकर देता हूं तू उसे ले ३० इस विद्या का साधन करके अर्जुन, इन्द्र और रुद्र के पास जाकर अनेक अस्त्र पावेगा और अपने तप और पराक्रम के कारण से वरुण और धर्मराज आदि देवताओं को देखेगा ३१।३२ यह अर्जुन तेजस्वी और अच्युत ऋषि है और नारायण की सहायता करनेवाला, सनातन, अजेय और पुराना देवता है ३३ यह इन्द्र, महादेवजी और लोकपालों से अस्त्र पाकर बड़ा भारी काम करेगा ३४ अब तुम इस वन को छोड़कर किसी दूर वन में चले जाओ जो तुम्हारे रहने के योग्य हो ३५ क्योंकि एक जगह पर बहुत दिनों तक रहना अच्छा नहीं होता है तपस्वियों को उससे व्याकुलता होती है ३६ तुम्हारा रहना मृग, ओषधियों के क्षय का कारण होगा क्योंकि तुम वेद और वेदाङ्गों के जानने के कारण से बहुत से ब्राह्मणों का पालन करते हो ३७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! व्यासजी महाराज जो योगी, लोकतत्त्व के जाननेवाले और छः ऐश्वर्य से युक्त थे उस शरणागत युधिष्ठिर को वह उत्तम विद्या बताकर और युधिष्ठिर से पूछकर वहीं अन्तर्धान होगये ३८। ३९ और युधिष्ठिर ने सावधानी से समय समय पर अभ्यास करके उस विद्या को धारण कर लिया ४० और व्यासजी के कहने के अनुसार प्रसन्नतापूर्वक उस द्वैत वन को छोड़कर सरस्वती के तटपर काम्यक वन में जा बसा ४१ और वे तपस्वी और वेदपाठी ब्राह्मण भी इसप्रकार से उसके पीछे पीछे उसी स्थानपर चले गये मानो ऋषिलोग इन्द्र के पीछे जाते हैं ४२ और युधिष्ठिर उस काम्यक वन में अमात्य और सब सामग्री सहित बसने लगा ४३ थोड़े दिनों तक पाण्डवों ने वेद सुनते हुए उस वन में वास किया और मृगों को अहेर में मार मार कर विधिपूर्वक पितर, देवता और ब्राह्मणों को तृप्त किया॥ ४४। ४५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का अर्जुन को व्यासजी की दी हुई विद्या का उपदेश करना और अर्जुन का इन्द्रनील पर्वत पर इन्द्र से मिलना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! थोड़े दिनों के पीछे एक दिन युधिष्ठिर व्यासजी के उपदेश को याद करके अर्जुन को हाथ में हाथ पकड़े हुए एकान्त में ले गया और एक मुहूर्तभर वनवास के दुःख को विचारकर मुसुकरा कर उससे कहने लगा १। २ कि हे अर्जुन! भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा ये पांचों धनुर्वेद के चारों चरणों को अर्थात् लेना १ चढ़ाना २ छोड़ना ३ और लौटाना ४ अच्छीतरह से जानते हैं और सबको देवता और मनुष्यों के दिव्य अस्त्रप्रयोग, यत्न और चिकित्सा के साथ मालूम हैं ४।५ और भोजन आदि सब प्रकार का सन्मान पाने के कारण वे सब दुर्योधन पर प्रीति रखते हैं और दुर्योधन भी उनके साथ गुरुओं का सा बर्ताव रखता है ६ इनके सिवाय दुर्योधन सब योद्धाओं से भी बड़ी प्रीति रखता है और वे लोग आचार्य से सन्मान पाकर प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं ७ इससे हमको जान पड़ता है कि वे लोग समय के आनेपर अपनी सामर्थ्य भर उठा नहीं रक्खेंगे और यह सब पृथ्वी, नगर, गांव, वन और सागरसहित दुर्योधन के वश में है ही सो इस अवस्था में हम तुमको अपना अत्यन्त प्यारा जानकर कहते हैं कि हमारा सब भार तुम्हारे ही ऊपर रक्खा हुआ है ८। ९ सो तुमको इस समय वह काम करना चाहिये जो अब करने का है व्यासजी ने हमको एक रहस्यविद्या बतलाई है १० उस विद्या का अच्छीतरह प्रयोग करने से सब जगत् प्रकाशित होसकता है सो तुम उस विद्या को लेकर सावधानी से उसका प्रयोग करके देवताओं को प्रसन्न करो और अपना मन उग्र तपस्या में लगाओ ११। १२ अब तुम धनुष, कवच और खड्ग धारण करके साधुओं का व्रत लेकर मुनि के स्वरूप से सीधे उत्तर दिशा को चलेजाओ और मार्ग में किसीसे जाने का हाल मत कहो १३ वृत्रासुर के डर के मारे सब देवताओं ने अपने दिव्य अस्त्र इन्द्र को देदिये थे १४ सो अब वे सब अस्त्र केवल इन्द्र ही के पास हैं इससे तुम इन्द्र ही को प्रसन्न करो वही तुम को सब अस्त्र देगा १५ और अभी हमसे दीक्षा लेकर चले जाओ यह कहकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को वह मन्त्र बता दिया १६ अर्जुन इस प्रकार से अपने बड़े भाई से दीक्षा पाकर उसकी आज्ञा के अनुसार इन्द्र के दर्शनों की इच्छा से गाण्डीव

धनुष, दो अक्षय तर्कस और कवच धारणकर और अग्निहोत्र करके ब्राह्मणों को दान देकर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराता हुआ और धृतराष्ट्र के पुत्रों के वध के लिये श्वास लेता और ऊपर को देखता हुआ चल दिया १७।२० उस समय अर्जुन को देखकर सिद्ध, ब्राह्मण और गुप्त प्राणियों ने कहा कि हे कुन्ती के पुत्र ! तू अपने मन में जिस जिस बात की इच्छा करेगा वही वही बात तेरी पूरी होगी और ब्राह्मणों ने जय का आशीर्वाद देकर कहा कि हे अर्जुन ! तू साधन कर तेरी विजय अचल होगी उसी अवसर में द्रौपदी सबका मन पाकर अर्जुनसे जिसकी जांघ शालवृक्ष की शाखा के समान थी कहने लगी २१।२३ कि तुम्हारे उत्पन्न होनेपर जो कुछ कुन्ती ने चाहा था वह सब पूरा होवे और जैसी तुमने इच्छा की है वैसा साहसी इस क्षत्रियकुल में तुम्हारी सदृशता को पानेवाला कोई न होवे २४ । २५ मैं ब्राह्मणों को जिनकी जीविका भिक्षा से है सदैव नमस्कार करती हूं, तुम्हारे अलग होने का दुःख मुझको उस महादुःख से भी भारी जान पड़ता है जो दुःख मुझको उस पापी दुर्योधन की सभा में हँसकर गौ ऐसा कहने और दुर्वचन बोलने से हुआ था, तुम्हारे ये सब भाई तुम्हारे वीर कर्मों की कथा को बारम्बार कह कह कर आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते रहें, बहुत दिनों तक तुम्हारे प्रदेश में बसने से हमारा भोग, धन और जीवन रहना कठिन दिखाई देता है क्योंकि हम सबके सुख, दुःख, जीवन, मरण, राज्य और ऐश्वर्य तुम्हारे ही आश्रय हैं, अब मैं तुमको आज्ञा देतीहूँ, तुम जाओ तुम्हारा कल्याण होगा २६ । ३१ तुमको बलवान् के साथ विरुद्ध करना उचित नहीं है किन्तु विजय मिलने के लिये शीघ्र जाना चाहिये मैं तुम्हारी कुशल और कल्याण के लिये धाता और विधाता को नमस्कार करती हूं ३२ मार्ग में ह्री, श्री, कीर्ति, दिति, पुष्टि, उमा, लक्ष्मी और सरस्वती आदि देवियां तुम्हारी रक्षा करें ३३ तुम बड़ों को माननेवाले और बड़े भाई के आज्ञाकारी हो इससे मैं मरुद्गण, रुद्र, वसु, बारह सूर्य, विश्वेदेवा और साध्यगणों का ध्यान इस निमित्त से करती हूं कि ये सब तुमको पृथ्वी और आकाश में चलनेवाले सब शत्रु जीवों से रक्षा करें और किसीप्रकार से तुम्हारा विघ्न न होने दें ३४।३६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! द्रौपदी उक्तप्रकार से आशीर्वाद देकर चुप होरही और अर्जुन वहां से धनुष लिये हुए अपने भाई और धौम्य पुरोहित की परिक्रमा करके इन्द्र के देखने की इच्छा से चल दिया उसके मार्ग में से सब प्राणी हट गये

और वह हिमालय पहाड़ पर पहुँचा जहां पर बड़े बड़े तपस्वी ऋषि और देवतालोग रहते थे और जो बड़ा दिव्य और पुण्यरूपी पर्वत है ३७। ३९ अर्जुन उस पर्वत पर वायु के वेग के समान चलकर एक ही दिन में पहुँचा था ४० और वहां से आलस्यरहित चलकर गन्धमादन पर्वत पर पहुँचा और बड़े बड़े दुर्गस्थानों को नाँघता हुआ इन्द्रनीलनाम पर्वत पर पहुँचा और वहां आकाश वाणी हुई कि ठहरजा ४१। ४२ अर्जुन उस वाणी को सुनकर चारों ओर देखने लगा थोड़ी देर में देखता क्या है कि एक वृक्ष की जड़पर एक तपस्वी बैठा हुआ है ४३ जटा जिसकी बढ़ी हुई हैं, आंखें लाल लाल होरही हैं, शरीर लटरहा है और ब्राह्मणों के तेज से उसका सब अङ्ग दीप्यमान होरहा है वह तपस्वी अर्जुन को देखकर बोला ४४ कि अरे धनुष, बाण और तलवार का रखनेवाला और क्षत्री धर्मपर चलनेवाला तू कौन है ४५ यह स्थान शस्त्र से कोई काम करने का नहीं है किंतु यह स्थान केवल उन ब्राह्मणों का है जो शान्त, क्रोध और हर्ष को जीतने वाले और तपस्वी हैं ४६ यहां इस धनुष के रखने का कोई काम नहीं है क्योंकि यहां संग्राम नहीं होता है तू तो अब परमगति स्थानपर आ पहुँचा है अब तू इस धनुष को फेंक दे ४७ तेरे समान पराक्रमी और तेजस्वी कोई नहीं है यद्यपि उस ब्राह्मण ने ये उक्त बातें अर्जुन से हँसकर कहीं परन्तु अर्जुन अपने धैर्य से नहीं डगमगाया ४८ तब उस ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर हँसकर कहा कि तेरा कल्याण हो हे शत्रु के मारनेवाले! मुझसे वर मांग मैं इन्द्र हूँ ४९ उस समय उस शूरवीर अर्जुन ने दोनों हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा ५० कि मैं यहां आपके दर्शनों के निमित्त ही आया था हे भगवन्! मैं आपसे संपूर्ण अस्त्रविद्या सीखना चाहता हूँ ५१ तब इन्द्र ने प्रसन्न होकर हँसकर कहा कि तुझको यहां पहुँचकर अस्त्रविद्या से क्या काम है ५२ तुम तो परमगति के स्थान पर आ पहुँचे हो जो कुछ तुमको भोगने की इच्छा हो वह हमसे मांगो। यह सुनकर अर्जुन ने उत्तर दिया ५३ कि हे देवेन्द्र! मुझे लोभ और काम के कारण से देवताओं के भोग, ऐश्वर्य नहीं चाहिये क्योंकि जो मैं भाइयों को वन में छोड़ कर यहां आकर वैर का बदला विना लिये हुए ऐसा करूंगा तो मेरी यह अकीर्ति सदैव को बनी रहेगी ५४। ५५ यह सुनकर उस वृत्रासुर के मारनेवाले और सब लोकों के पूज्य इन्द्र ने कहा कि हे अर्जुन! जब तुमको श्रीशिवजी महाराज के जो प्राणियों के ईश्वर, त्रिशूलधारी और तीन नेत्र रखनेवाले हैं दर्शन

होजायँगे तब मैं तुमको सब दिव्य अस्त्र दूंगा ५६ । ५७ सो तुमको उस परमेष्ठी देवता के दर्शनों का उपाय करना चाहिये उनके दर्शन होनेपर तुम सिद्ध होकर स्वर्ग में जा सकोगे ५८ यह कहकर इन्द्र तो वहीं अन्तर्धान होगये और अर्जुन उसी स्थान पर ठहर गया ॥ ५९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय ।

अर्जुन का हिमालयपर्वत पर उग्रतपस्या करना और महर्षियों का उसकी तपस्या का हाल शिवजी से कहना ।

उक्त वृत्तांत को सुनकर राजा जनमेजय पूछने लगा कि हे वैशंपायनजी ! मैं अर्जुन के अस्त्र पाने की कथा को विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं १ यह भी कहियेगा कि वह पुरुषोत्तम अर्जुन उस निर्जन वन में निर्भय होकर क्योंकर रहा और उसने क्या ऐसा काम किया जिससे उसपर शिवजी और इन्द्र प्रसन्न हुए २ । ३ हे द्विजवर्य ! आप भूत और भविष्य सब वृत्तान्तों को अच्छी तरह जानते हैं । मैं भी आपकी कृपा से उक्त वृत्तान्त को सुना चाहता हूं ४ मैंने सुना है उस अपराजित अर्जुन से और शिवजी से बड़ा अद्भुत, रोमहर्षण और अनुपम युद्ध हुआ था जिसको सुनकर नाश होने के भय, हर्ष और विस्मय से पाण्डवों के हृदय भी कंपित होगये थे इसके सिवाय और जो कुछ कर्म अर्जुन ने वहां किये वह सब भी सुनाइयेगा । मैं जानता हूं कि उस शूरवीर का कोई काम साधारण और निन्दित न होगा ५ । ८ यह सुनकर वैशंपायनजी बोले कि अच्छा हे राजा जनमेजय ! मैं तुमको उस महात्मा अर्जुन की अद्भुत कथा सुनाता हूं ९ कि जिस प्रकार उसका समागम श्रीदेवदेवेश शिवजी के साथ हुआ १० वह पराक्रमी अर्जुन युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर शिवजी और इन्द्र के दर्शनों की इच्छा से दिव्य धनुष और सुनहरी मूठ की तलवार को लिये हुए स्थिर मन होकर उत्तर दिशा को चल दिया और हिमालय पर्वत के एक शिखर अर्थात् चोटी पर पहुँचा ११ । १३ और शीघ्रता के कारण से मन में तप करने का निश्चय करके एक ऐसे वन में पहुँचा जो कटीले वृक्षों से भरा हुआ १४ उस वन में नानाप्रकार के पुष्प और फल लगे हुए थे और सुंदर पक्षी, मृग और सिद्ध लोग उसमें रहते थे १५ उस वन में मनुष्यों का जाना निषेध था, जब अर्जुन वहां पहुँचा तब स्वर्ग में शंख और पटह बजने लगे १६ पृथ्वी पर फूलों की वर्षा हुई और चारों ओर से बादल उमड़ आये १७ अर्जुन उस वन के दुर्गस्थानों को नांघ

कर हिमालय पहाड़ की पृष्ठ पर पहुँचा और वहां टिक गया १८ उस स्थान पर वृक्ष फूले हुए थे और पक्षी मधुर मधुर वाणी बोल रहे थे और बड़ी बड़ी चक्कर खाती हुई नदियां बह रही थीं १९ जिनके तटपर हंस और कारण्डवपक्षी ऊंचे स्वर से बोल रहे थे और सारस, पुंस्कोकिला, क्रौंच और मोर मधुर मधुर ध्वनि सुनारहे थे २० अर्जुन उस मनोहर वन और शीतल पवित्र जलवाली नदियों को देखकर प्रसन्न हुआ २१ और उसी मनोरम स्थान पर मृगचर्म, तृणमय वस्त्र और दण्ड को धारण करके उग्र तपस्या करने लगा। जो सूखे हुए पत्ते पृथ्वीपर गिर पड़ते थे उन्हीं को वह खाता था २२।२३ पहिले महीने में उसने तीसरे दिन खाने का नियम किया, दूसरे में छठे दिन भोजन करता था, तीसरे महीने में पन्द्रह दिन-के पीछे आहार पाता था और चौथे महीने में उसने केवल वायुभक्षी रहकर ऊंचे को बांह उठाये हुए विना सहारे पांव के अंगूठों के बल से खड़े होकर तपस्या की २४।२६ उसकी जटा सदा जल में स्नान करने से बिजली और कमल के सदृश चमकती हुई दीख पड़ती थीं २७ इसके पीछे सब महर्षिलोग अर्जुन की तपस्या का हाल कहने के लिये पिनाकधारी शिवजी के पास गये २८ और प्रणाम करके बोले कि महाराज! हिमालय की पृष्ठ पर अर्जुन दिशाओं को भस्म करनेवाली उग्र तपस्या कर रहा है हम नहीं जानते हैं ऐसी तपस्या करने से उसका क्या प्रयोजन है २९।३० उसकी तपस्या से हम सब लोग तप्त होगये हैं आप जो उसको निवारण करें तो बहुत श्रेष्ठ है। यह सुनकर प्राणियों के ईश्वर महादेवजी ने उन शुद्ध अन्तःकरण मुनियों से कहा ३१ कि तुम लोग प्रसन्न होकर अब शीघ्र अपने अपने आश्रमों को चले जाओ, अर्जुन से तुम लोग किसी प्रकार का भय मत करो ३२ मैं उसके मनोरथ को जानता हूँ उसको स्वर्ग, ऐश्वर्य और आयु की इच्छा नहीं है ३३ अब मैं उसके मनोरथ को पूरा करूंगा ३४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह सब ऋषिलोग महादेवजी के वचनों को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने आश्रमों को चले आये ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८ ॥

उनतालीसवाँ अध्याय।

शिवजी का किरातरूप से अर्जुन के पास जाना और उनसे युद्ध करना, अन्त में प्रसन्न होकर दर्शन देना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब वे सब महात्मा तपस्वी

चले गये तब शिवजी महाराज ने जो षट्ऐश्वर्य के स्वामी और पापों के दूर करनेवाले हैं सुनहले वृक्ष के समान किरात का स्वरूप धारण किया, उनके शरीर की कान्ति मेरु पर्वत के समान झलकती थी १।२ उस देह को धारण करके शिवजी धनुष और सर्पों के समान बाणों को लिये हुए अग्नि के तुल्य वेग से चल दिये ३ और पार्वती सहित जिनके पीछे पीछे बहुत से अनेक वेषधारी पार्षद थे सहस्रों स्त्रियों को साथ लिये हुए उस वन में आ पहुँचे जिसमें अर्जुन तपस्या कर रहा था शिवजी के आने से वह वन अत्यन्त सुशोभित होगया ४।५ चारों ओर से पक्षियों की चहचहाहट और झरनों का अर्राटा बन्द होगया और वह वन सूनसान सा दीखने लगा ६ जब शिवजी अर्जुन के पास पहुँचे तब उन्होंने मूकनामी दैत्य को जो वाराह का स्वरूप धरकर अर्जुन को मारने आया था देखा। अर्जुन उस दैत्य को देखकर धनुष को चढ़ाकर टंकारने लगा और सर्प के समान बाणों को हाथ में लेकर कहने लगा कि अरे दुष्ट! तू मुझ निरपराधी के मारने को आया है इससे मैं पहिलेही तुझे मारकर यमलोक में पहुँचाये देता हूँ ७।१० किरातरूपधारी शिवजी यह देखकर बोले कि इसको तू मत मार मैं इसको मारूंगा क्योंकि पहले इसका लक्ष्य अर्थात् निशाना मैंने बांधा है परन्तु अर्जुन ने उस बात पर ध्यान नहीं दिया और उस वाराहरूपी दैत्य के बाण मारा उसी समय किरातरूपी तेजस्वी शिवजी ने भी अग्नि के समान एक बाण उस दैत्य के मारा ११।१३ उन दोनों के सर्पों के तुल्य बाण उस राक्षस के पर्वत के तुल्य दृढ़ और बड़े शरीर में इस प्रकार से एक साथ ही जाकर लगे जैसे चुपचाप पहाड़ पर बिजली और वज्र एक ही साथ पड़ें और वह दैत्य उन बाणों से भिदकर अपना राक्षसी स्वरूप प्रकट करके मर गया १४।१६ इसके पीछे अर्जुन उन स्त्रियों सहित सुवर्ण की सी प्रभा रखनेवाले किरातरूपधारी शिवजी को देखकर हँसता हुआ प्रसन्नतापूर्वक बोला कि आप कौन हैं जो इस शून्यवन में स्त्रियों को साथ लिये हुए फिर रहे हैं १७।१८ ऐसे वन में क्या आप को डर नहीं लगता है और आपने इस वाराह को जिसपर पहले मैंने लक्ष्य अर्थात् निशाना बांधा था क्यों मारा है अब मैं आपको मारूंगा आप मेरे हाथ से जीते न बचेंगे १९।२० क्योंकि यह जो आपने किया है सो मृगया अर्थात अहेर करने का धर्म नहीं है इसके विपरीत करने के कारण से मुझे आपको अवश्य मारना पड़ा २१ यह सुनकर किरातवेषी शिवजी हँसकर मधुरवाणी से

कहने लगे २२ कि हे वीर ! मुझको इस वन में देखकर तू डरे मत, यह सब पृथ्वी हमारी ही है और हम वनवासियों के योग्य है २३ हम तो इस वन में बसते ही हैं तूने तो इस वन में वास करना किसी कारण से अंगीकार किया होगा २४ तू कह कि इस शून्य वन में कैसे रहेगा क्योंकि तू सुकुमार और सुख के योग्य है २५ यह सुनकर अर्जुन बोला कि मैं गाण्डीव धनुष और अग्नि के तुल्य बाणों के आश्रय से इस वन में कार्त्तिकेय के समान बसता हूं २६ यह मृगरूपी राक्षस भी जो मेरे मारने को आया था मेरे ही हाथ से मारा गया है २७यह सुनकर किरातरूपी शिवजी बोले कि नहीं यह राक्षस मेरे बाण से मरकर यमलोक को गया है और मेरा ही बाण पहिले लगा था २८ इस पर निशाना भी पहिले मैंने ही बांधा था तू अपने बज्र के घमण्ड से अपने दोष को दूसरे पर डालता है इससे तू मुझसे जीता अब न बचेगा २९ । ३० सो तू स्थिर होकर अपनी रक्षाकर और बाण मार, मैं भी तेरे वज्र के समान बाण मारता हूं ३१ यह सुनकर अर्जुन को क्रोध आ गया उसने किरातरूपी शिवजी के बाण मारे ३२ शिवजी ने प्रसन्न होकर उसके छोड़े हुए बाणों को पकड़ लिया और कहा कि अरे निर्बुद्धि, अरे निर्बुद्धि ! इन मर्म छेदनेवाले बाणों को और मार और मार ३३ । ३४ तब अर्जुन ने अकस्मात् बाणों की झड़ी लगा दी और उन दोनों ने तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को घायल कर दिया ३५ इसके पीछे फिर अर्जुन ने बाण वर्षाये और शिवजी ने उन बाणों को प्रसन्न होकर पकड़ लिया और अक्षत अर्थात् बेज़ख्म शरीर रहकर दो घड़ीतक पहाड़ के समान अचल खड़े रहे ३६ । ३७ अर्जुन अपनी बाणवर्षा को व्यर्थ देखकर चकित होगया और आश्चर्य से साधु साधु कहकर विचार करने लगा कि यह कोमल अंग रखनेवाला और हिमालय पर्वतपर रहनेवाला किरात गाण्डीव धनुष के बाणों को सुखपूर्वक सहरहा है ३८ । ३९ कहीं यह शिव अथवा यक्ष या और कोई देवता न होवे ? इस पर्वत पर देवताओं का आना जाना तो रहताही है ४० मेरे मारे हुए सहस्रों बाणों को सिवाय शिवजी के दूसरे की सामर्थ्य सहने की नहीं है ४१ सो जो यह किरात शिवजी के सिवाय और कोई यक्ष या देवता है तो अभी मैं इसको तीक्ष्णबाणों से मारकर यमलोक में भेजे देता हूं ४२ यह विचारकर अर्जुन ने सैकड़ों प्रकार से अनेक मर्मस्थानों को छेदनेवाले बाण मारे परंतु उन लोकों के नाथ शिवजी महाराज ने उन सब बाणों को इस प्रकार से ग्रहण कर लिया जैसे पहाड़ पत्थरों की वर्षा

को ग्रहण कर ले ४३।४४ इस प्रकार से अर्जुन के पास एक क्षण में ही एक भी बाण न रहा और वह बाणों की क्षय देखकर भयभीत हो गया ४५ उस समय उसने अग्निदेव को याद किया जिन्होंने खाण्डववन को जलाने के समय अर्जुन को दो अक्षय तर्कस अर्थात् ऐसे तर्कस जिनमें बाण कभी न घटें दिये थे ४६ और विचार करने लगा कि यह पुरुष कौन है जो बाणों को निगलता चला जाता है मेरे सब बाण निबट गये अब मैं धनुष से क्या छोड़ूं ४७ अब तो इसको धनुष की नोक से मारकर यमलोक पहुँचाना चाहिये यह विचार कर अर्जुन ने एक हाथ में धनुष और दूसरे में उसकी ज्या अर्थात् डोरी पकड़ली और उसके बीचमें किरातरूपी शिवजी को खींचकर धकामुक्की करने लगा। थोड़ी देर तो अर्जुन ने अच्छा युद्ध उस खाली धनुष से भी किया उपरान्त किरातरूपी शिवजी ने वह धनुष अर्जुन से छीन लिया ४८।५० तब अर्जुन ने हाथ में तलवार लेली और युद्ध में मारे जाने की इच्छा से शीघ्रतापूर्वक शिवजी के सम्मुख चला गया और अपनी भुजा के पूरे बल से शिवजी के मस्तक पर मारा ५१।५२ यद्यपि वह खड्ग ऐसा था कि पर्वतपर भी मारने से उसकी धार नहीं जाती थी परन्तु शिवजी के मस्तक पर लगते ही वह टुकड़े टुकड़े होगया तब अर्जुन वृक्ष और शिला हाथ में ले लेकर युद्ध करने लगा ५३ शिवजी ने अपने शरीर में वह वृक्ष और शिला भी छिपा लिये तब अर्जुन क्रोधित होकर शिवजी के वज्र के समान घूँसे लगाने लगा ५४।५५ उस समय किरातरूपी शिवजी ने भी वज्र के समान घूंसे मार कर अर्जुन को पीड़ित किया और उन दोनों के एक दूसरे के घूंसा मारने से चटक पटाक का शब्द होने लगा ५६।५७ दो घड़ी तक ऐसा ही युद्ध इस प्रकार से हुआ किया जैसे इन्द्र और वृत्रासुर का हुआ था और उस युद्ध के देखने से रोम खड़े होजाते थे ५८ इसके पीछे अर्जुन ने किरातरूपी शिवजी को अपनी छातीसे रेला दिया और शिवजी ने भी वैसाही किया ५९ उन दोनों की भुजा से भुजा और छाती से छाती लगने और घिसने से धुआं लिये हुए अग्नि प्रकट होगई ६० तब शिवजी ने क्रोधित होकर अर्जुन के सब अङ्गों को तोड़डाला और उसे बल से दबा लिया उसके कारण से अर्जुन पिण्डीरूप होगया और चेष्टा रहित अर्थात् बेहोश होकर निर्जीव के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा ६१।६२ दो घड़ी तक तो अर्जुन उसी प्रकार से पड़ा रहा उपरान्त उठकर महादुःखी होकर उसने शिवजी महाराज की शरण ली और

मिट्टी का लिंग बनाकर फूलमाला से उस लिंग की पूजा की जब पूजन करचुका तब देखता क्या है कि वही माला जो उसने लिंगपर चढ़ाई थी किरातरूपी शिवजी के गले में पड़ी हुई है । अर्जुन यह देखकर स्वस्थचित्त होगया और किरातरूपी शिवजी के चरणोंपर गिरपड़ा शिवजी यह देखकर प्रसन्न हुए और मेघ के समान गंभीरवाणी से आश्चर्ययुक्त अर्जुन से कहने लगे ६४ । ६७ कि हे अर्जुन ! मैं तेरे इस अमानुष कर्म को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ तेरे समान धैर्यवान् और शूरवीर कोई क्षत्रिय नहीं है ६८ मेरा और तेरा तेज और पराक्रम बराबर है अब तू मुझको अपने ऊपर प्रसन्न जान ६९ मैं तुझको दिव्यज्ञान देता हूं, तू पूर्वजन्म का ऋषि है, तू रण में सब शत्रु और देवताओं को भी जीतेगा ७० अब मैं प्रसन्नता के कारण तुझे वह अस्त्र देता हूं जिसको रोकनेवाला कोई अस्त्र नहीं है, तूही उस अस्त्र को धारण करने के योग्य है ७१ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे शिवजी महाराज ने अर्जुन को पार्वती सहित अपने स्वरूप के दर्शन दिये ७२ अर्जुन ने उस स्वरूप को देखतेही दोनों घोंटुओं से बैठकर शिर से शिवजी को दण्डवत्की और स्तुति करने लगा ७३ हे कपर्दिन्, हे देवेश, हे भगनेत्र, हे देवदेव, महादेव हे नीलकण्ठ, हे जटाधारी, हे त्र्यम्बक ! आपही सबके कारण हैं, देवताओं की गति और विश्व के रचनेवाले आपही हैं ७४ । ७५ देवता, मनुष्य और असुरों में से तीनों लोकों में आपको कोई नहीं जीत सकता है, मैं विष्णुरूपी शिवजी और शिवरूपी विष्णु को नमस्कार करता हूं ७६ आप दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करनेवाले और सर्व, वर्षक, शूलपाणि, पिनाकरक्षक, सूर्यरूप, किरातरूप, विधाता, भगवान् और सबके ईश्वर हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ७७ । ७८ आपही गणेश हैं, आपही जगत् के शम्भु हैं, आपही लोक के कारणों के कारण हैं, आप प्रधान पुरुष से भी परे और सूक्ष्मतर हैं ७९ आप मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिये, मैं केवल आपही के दर्शनों की इच्छा से इस पर्वतपर आकर बसा था जो आपका परमप्रिय और तपस्वियों के रहने का स्थान है । हे त्रिभुवननाथ ! मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये हे महादेवजी, महाराज ! मैं आपकी शरण हूं मेरे साहस के साथ अज्ञान से किये हुए इस अपराध को क्षमा कीजिये ८० । ८२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! शिवजी महाराज अर्जुन की स्तुति सुनकर प्रसन्न हुए और हँसकर अर्जुन की बांह पकड़कर कहने लगे कि मैंने तेरे

अपराध को क्षमा किया ८३ और फिर अर्जुन से मिलकर बोले ॥ ८४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ अध्याय।

शिवजी का अर्जुन को पाशुपत अस्त्र देना, उस अस्त्र का प्रज्वलित होना और शिवजी का स्वर्ग को जाना।

शिवजी बोले हे अर्जुन ! तुम पूर्वजन्म में नारायण के साथ रहनेवाले नर थे और तुमने बदरिकाश्रम में कई अयुत वर्षतक बड़ी भारी तपस्या की थी १ तुममें और विष्णु में परम तेज है और तुम दोनों पुरुषोत्तमों के तेज से यह जगत् स्थित हो रहा है २ तुमने और श्रीकृष्ण ने इन्द्र के अभिषेक में बड़ा भारी धनुष लेकर जिसका शब्द बादल की गरज के सदृश था दानवों को मारा था ३ वह गाण्डीवनामी धनुष यही था जिसको तुम्हारे हाथ से लेकर मैंने अपनी माया से ग्रस लिया है ४ वह धनुष और अपने दोनों अक्षय तर्कसों को अब तुम लो तुम्हारा शरीर भी रोगरहित होजायगा ५ हे अर्जुन ! तुम्हारा पराक्रम सच्चा है, मैं तुमपर अब प्रसन्न हूं, जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगलो ६ तुम्हारे समान मनुष्यों में कोई मनुष्य नहीं है और जो क्षत्रीलोग स्वर्ग में वास करते हैं उनमें भी तुमहीं श्रेष्ठ हो ७ यह सुनकर अर्जुन बोले कि हे शिवजी, महाराज ! जो आप प्रसन्नता से मुझको वर देना चाहते हैं तो मुझको वह पाशुपत नाम घोर अस्त्र दीजिये जो बड़ा बलवान् और भयानक है और ब्रह्मशिर नाम से विख्यात होकर महाप्रलय में सब जगत का नाश कर देता है ८। ९ क्योंकि मैं आपकी कृपा से युद्ध में कर्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को जीतना चाहता हूं १० और मेरी यह भी इच्छा है कि उस अस्त्र के प्रताप से मैं संग्राम में दानव, राक्षस, भूत, पिशाच, गन्धर्व और सर्पों को भी जय कर सकूं ११ मैंने सुना है कि उस अस्त्र में से मन्त्रित करनेपर सहस्रों शूल, गदा और विषधर सर्पों के तुल्य बाण प्रकट होते हैं १२ उसी अस्त्र से मैं भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और कटुवचन बोलनेवाले कर्ण से युद्ध करना चाहता हूं १३ सो हे भगवन् ! यह पहला वरदान मैं आपसे मांगकर कृतकृत्य और समर्थ होना चाहता हूं १४ यह सुनकर शिवजी बोले कि अच्छा मैं तुमको पाशुपत अस्त्र देता हूं तुम इस अस्त्र के धारण, मोक्ष और निवर्तन करने की सामर्थ्य रखते हो १५ इस अस्त्र को इन्द्र, यमराज, यक्षों का राजा कुबेर, वरुण और वायु भी

नहीं जानते हैं मनुष्यों को तो परम दुर्लभ है १६ परंतु तुमको यह अस्त्र विना विचारे किसी मनुष्य पर छोड़ना उचित नहीं है क्योंकि थोड़े तेजस्वी पुरुष पर छोड़ने से यह अस्त्र सब जगत् को नाश करदेगा १७ यह अस्त्र मन, नेत्र, वचन और धनुष चारों से छोड़ा जासकता है और त्रिलोकी में कोई ऐसा नहीं है जो इस अस्त्र से न मरसके १८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन शिवजी की उक्त बात को सुनकर शीघ्र पवित्र और सावधान होकर शिवजी महाराज के समीप चला गया और कहने लगा कि महाराज! वह अस्त्र मुझको पढ़ाइये १९ तब शिवजी ने अर्जुन को वह अस्त्र रहस्य और निवर्तनसहित पढ़ा दिया २० उसके पढ़ने पर वह अस्त्र उसी प्रकार से अर्जुन के पास स्थित होगया जैसे शिवजी के पास रहता था और अर्जुन ने उस अस्त्र को ले लिया २१ उस समय पृथ्वी, पर्वत, वन, वृक्ष, समुद्र, ग्राम और नगर कांपने लगे और सहस्रों शंख, दुन्दुभी और भेरियों के बजने का शब्द सुनाई देने लगा और उत्पात बारम्बार गिरने लगे २२।२३ वह शिवजी का अस्त्र उसी समय प्रज्वलित होगया और सब देवता और दानवों ने उस अस्त्र को अर्जुन के समीप स्थित देखा २४ और अर्जुन के शरीर में जो कुछ अशुभ था वह सब शिवजी के अङ्ग को स्पर्श करने से दूर होगया २५ इसके पीछे शिवजी ने अर्जुन को स्वर्ग में जाने की आज्ञा दी और अर्जुन शिवजी को हाथ जोड़े हुए प्रणाम करके देखने लगा २६ उस समय शिवजी ने अर्जुन को वह श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष दे दिया और आप पार्वती सहित अर्जुन के देखते देखते उस रमणीक पर्वत को छोड़कर जिसके सुन्दर वन और श्वेत कन्दराओं में बड़े बड़े तपस्वी रहते थे स्वर्ग को चले गये॥ २७। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय।

अर्जुन के पास इन्द्र आदि लोकपालों का आना और अपने अपने अस्त्र अर्जुन को देना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! शिवजी के इसप्रकार से अन्तर्द्धान होने पर ऐसा प्रतीत हुआ मानो सूर्य अस्त हुआ है अर्जुन आश्चर्य करके यह कहने लगा कि मैं धन्य हूं जो आज मैंने श्रीत्र्यम्बक महादेवजी के दर्शन किये और उनके अङ्ग को स्पर्श किया आज मेरे सब प्रयोजन सिद्ध होगये और मैं युद्ध में

सर्वोपरि हूं और सब शत्रुओं को जीत सकता हूं १।४ जिस समय अर्जुन यह विचार कर रहा था उसी समय उस स्थानपर वरुण देवता जिनकी प्रभा वैडूर्यमणि की सी थी सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए जलजीवों सहित आ पहुँचे ५ और उनके साथ बड़े बड़े नाग, नद, छोटी छोटी नदियां, दैत्य, साध्य और देवता भी थे ६ वह धन के ईश्वर कुबेर देवता जिनकी प्रभा सुवर्ण के समान और दर्शन बड़े अद्भुत थे यक्षों को साथ लिये हुए विमान में बैठकर आकाश को प्रकाशित करते हुए अर्जुन को देखने आये ७।८ थोड़ी देर पीछे सूर्य के पुत्र यमराज जो लोकों के नाश करनेवाले हैं हाथमें दण्ड लिये विमान में बैठे हुए पितर, गुह्यक, गन्धर्व और पन्नगोंसहित तीनों लोकों को प्रकाशित करते हुए इस प्रकार से आपहुँचे जैसे प्रलयकालपर सूर्य उदय होता है ९।११ ये तीनों देवता वहां आकर उस पहाड़ के चित्र विचित्र शिखरों पर खड़े होकर उस तपस्यायुक्त अर्जुन को देखने लगे १२ दो घड़ी के पीछे इन्द्र देवता भी ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए इन्द्राणी और सब देवताओं सहित वहां आये १३ उस समय इन्द्र के ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ ऐसा सुशोभित दीखता था मानो श्वेत बादलों में चन्द्रमा छिपा हुआ है १४ वह सूर्य के समान तेजस्वी इन्द्र वहां आकर गन्धर्व और तपस्वी ऋषियों से स्तूयमान होता हुआ उस पहाड़ की एक चोटीपर स्थित होगया १५ इसके पीछे यमराज जो बड़े बुद्धिमान् और धर्मज्ञ थे और दक्षिण दिशाकी ओर खड़े थे बड़ी गंभीरवाणी से कहने लगे हे अर्जुन! हे अर्जुन ! तू हम सब आये हुए लोकपालों को देख हम तुझ को दिव्य दृष्टि देते हैं तू हम लोगों को देखने के योग्य है १६।१७ तू नरनामी महापराक्रमी और तेजस्वी पूर्वजन्म का ऋषि है, तैंने यह नरदेह ब्रह्माजी की आज्ञा से पाई है १८ तू युद्ध में भीष्म को जो वसुओं के अंश से उत्पन्न हैं और बड़े पराक्रमी और धर्मात्मा हैं जीतेगा १९ और तेरे हाथ से द्रोणाचार्य से रक्षित हुए भी बड़े बड़े पराक्रमी क्षत्री और सब पराक्रमी दानव जिन्होंने नररूप पृथ्वीपर धारण किया है और निवातकवच दैत्य और हमारे पिता सूर्य देवता के अङ्गसे उत्पन्न कर्ण भी मारे जायँगे और युद्ध में तेरे हाथ से मर मरकर अपनी गति को पहुँचेंगे और संसार में तेरी बड़ाई अक्षय बनी रहेगी तैंने संग्राम में साक्षात् शिवजी को प्रसन्न किया है २०।२४ सो तू विष्णु के साथ रहकर पृथ्वी का भार उतार। अब हम तुझको अपना दण्डनाम अस्त्र देते हैं जिसको रोकने-

वाला दूसरा अस्त्र नहीं है। यह अस्त्र तेरे बड़े काममें आवेगा २५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे अर्जुन ने वह अस्त्र मन्त्र, क्रिया और मोक्ष वा निवर्त्तन की विधि सहित लेलिया २६ इसके पीछे पश्चिम दिशा की ओर से जलजीवों के स्वामी वरुण देवता बोले २७ हे अर्जुन! तू क्षत्रियों में मुख्य और क्षत्रीधर्म पर आरूढ़ है मुझको देख, मैं जलका स्वामी वरुण हूं २८ और मेरे हाथसेइन वारुणपाशों को जो छुट नहीं सक्ते हैं रहस्य और निवर्त्तन सहित ले। मैंने इन पाशों से तारकामय संग्राम में सहस्रों दैत्य बांध लिये थे तू मेरी कृपा से इन पाशों को धारण कर इनमें बांधने पर मृत्यु भी नहीं छुटसक्ती है २९।३१ जब तू इन पाशों को लेकर संग्राम में जायगा तब यह पृथ्वी क्षत्रियों से रहित होजायगी ३२ जब यमराज और वरुण देवता अपने अपने अस्त्र दे चुके तब कुबेर देवता अर्जुन से बोले ३३ कि हे वीर, पाण्डव! मैं तुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ तू पूर्वजन्म का सनातन देवता है और सब पूर्वकल्पों में हम सब देवताओं के साथ रहा किया है ३४। ३५ अब मैं तुझे अपना प्रस्वापन नामी अन्तर्द्धान अस्त्र जो बल, तेज और कान्ति का बढ़ानेवाला और शत्रुओं को मारनेवाला है देता हूं इसको तू जल्दी मुझसे ले ले। इसके प्रतापसे तू दुर्योधन की सेना को दग्ध करेगा और उन शत्रुओं को भी जीत सकेगा जिनका जीतना दुर्लभ है ३६। ३८ शिवजीने जब त्रिपुर दैत्य को मारा था तब यह अस्त्र छोड़ा गया था इसने बड़े बड़े दैत्यों को भस्म कर दिया। मैं तुझको योग्य जानकर यह अस्त्र देता हूं ३९। ४० यह सुनकर अर्जुन ने कुबेर देवता से वह दिव्य अस्त्र विधिपूर्वक लेलिया ४१ इसके पीछे मेघ और दुन्दुभी कीसी गम्भीर वाणी से देवराज इन्द्र अर्जुन से कहने लगे ४२ कि हे कुन्ती के पुत्र! तू पूर्वजन्म का ईशान है तुझको बड़ी सिद्धि मिलगई और तेरी गति देवताओं कीसी होगई ४३ अब तुझको देवताओं का बड़ा काम करना पड़ेगा, मातलि सारथी रथ लेकर पृथ्वी पर आवेगा तू उस रथ में बैठकर स्वर्ग में चला आइयो, तैयार रह, मैं तुझको स्वर्ग में ही सब अस्त्र दूंगा ४४। ४५ अर्जुन उन सब लोकपालों को पर्वत पर देखकर चकित होगया ४६ और उन सबकी यथायोग्य पूजा जल, फल और वाणी से की ४७ इसके पीछे वे सब देवता अर्जुन का प्रतिमान करके अपनी अपनी इच्छा के अनुसार विमानों में बैठे हुए चले गय ४८ और अर्जुन उन अस्त्रों को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने को कृतार्थ और पूर्ण मनोरथ जानने लगा॥४९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय।

अर्जुन का इन्द्र के भेजे हुए रथ में बैठकर इन्द्रपुरी को जाना और राह में सुकृती मनुष्यों के पुण्यरूपी लोकों को देखना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! लोकपालों के चले जाने पर अर्जुन इन्द्र के रथ के आने की बाट देखने लगा थोड़ी देर में वह प्रभावान् अर्थात् चमकता हुआ रथ आकाश के अन्धेरे को दूर करता हुआ, दिशाओं को अपने शब्द से झन्नाता हुआ और बादलों को फाड़ता हुआ मातलि सारथी सहित आ पहुँचा १।३ उस रथ में भयानक तलवार, शक्ति, गदा, प्रास, अस्त्र, बिजली, वज्र, चक्रयुक्त भाण्डगोलक अर्थात् वे आयुध जिनसे पत्थर और गोले चलाये जावें, वायुस्फोट अर्थात् वे अस्त्र जिनके वेग से वायु उत्पन्न होजावे, मेघों के शब्द, बड़े बड़े भयानक सर्प जिनके मुखसे अग्नि निकलती थी और बड़े बड़े दृढ़ पत्थर जिनकी शिखरें बादल के समान श्वेत थीं रक्खे हुए थे ४।६ उस रथ में दशहज़ार हरी जाति के वह घोड़े जुतरहे थे जो उस मायामय रथ को ले चलते थे ७ और एक सुवर्ण की लाठी भी उसमें जड़रही थी कि जिसमें महानीले कमल की सदृश श्यामरंग की वैजयन्ती नाम ध्वजा लगी हुई थी ८ उस रथ में अर्जुन सारथी को बैठा हुआ देखकर जिसकी प्रभा तपाये हुए सुवर्ण के सदृश थी विचारने लगा कि यह कोई देवता है ९ उसी समय मातलि नाम वह सारथी रथ से उतरकर अर्जुन के पास आया और नम्रता के साथ कहने लगा १० कि हे इन्द्र के पुत्र अर्जुन ! आपको इन्द्र देखना चाहते हैं आप शीघ्र इस रथपर सवार हूजिये ११ मुझसे चलते समय आपके पिता इन्द्रने यह कहा था कि देवताओं के घरों को देखाने के लिये तुम अर्जुन को यहां लिवालाओ १२ सो देवेन्द्र आपके दर्शनों की इच्छा से देवता, ऋषि, गन्धर्व और अप्सराओंसहित आपकी बाट देख रहे हैं आप मेरे साथ वहां चलिये और अस्त्र सीखकर फिर चले आइयेगा १३।१४ यह सुनकर अर्जुन बोला कि इस रथ की सवारी सैकड़ों राजसूय और अश्वमेधयज्ञ करनेवालों को और बड़े दानी राजा, देवता और दानवों को भी दुर्लभ है इस रथको तपस्यारहित मनुष्य देख भी नहीं सक्ता है छूना और सवार होना तो दरकिनार है १५।१७ अब इस रथपर पहले तुम बैठकर घोड़ोंको स्थिर करो फिर मैं भी इसपर इसप्रकार से सवार होऊंगा जैसे सुकृती मनुष्य सत्पथपर चलता है १८ वैशंपायनजी

बोले हे राजा जनमेजय! वह इन्द्र का मातलि सारथी अर्जुन की बात सुनकर रथपर जा चढ़ा और बागडोरों को ईंचकर घोड़ों को स्थिर किया १९ और अर्जुन ने गङ्गाजी में स्नान करके मन्त्र का जप किया और तर्पण आदि से निश्चिन्त होकर उस गिरिराज पर्वत से कहने लगा २०। २१ कि हे पर्वत! तुम उन मुनियों के रहने के आश्रम हो जो पुण्यात्मा और सुकर्मी हैं और स्वर्ग जाने की इच्छा रखते हैं २२ तुम्हारी ही कृपा से ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यों ने स्वर्ग में सदा से वास पाया है और आजतक निर्विघ्न देवताओं के साथ घूमते हैं २३ तुम मुनियों के आश्रम और तीर्थ के तुल्य हो, मैंने तुम्हारे ऊपर अब तक सुखपूर्वक वास किया, अब मैं तुमसे पूछकर जाना चाहता हूं २४ मैंने यहां बसकर तुम्हारी तीर्थरूपी चोटियां, घाटियां, नदियां और झरने देखे और सुन्दर सुन्दर फल खाये और झरनों का अमृतरूपी जल पिया और जैसे बालक पिता की गोद में बड़े सुख से बसता है इसी प्रकार से मैंने तुम्हारी गोद में जो अप्सराओं से संकीर्ण और वेदवाणी से घोषित होरही है, रहकर बड़ी उत्तम सुखपूर्वक क्रीड़ा करी २५। २८ इसप्रकार अर्जुन शैलराज से प्रार्थना करके सूर्य के समान उस दिव्यरथपर सवार होगया और वह रथ ऊपर को उस मार्ग से चलने लगा जिसको धर्म करनेवालों ने भी कभी नहीं देखा था २९। ३१ राह में अर्जुन ने बहुत से अद्भुत विमान देखे कि जहां सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का प्रकाश नहीं है किन्तु वे सुकृती मनुष्य अपने सुकृत मिलेहुए तेज से प्रकाश कररहे हैं वेही विमान इस लोक में दूर होने के कारणसे दीपक के समान दिखाई देते हैं और तारागण कहलाते हैं। अर्जुन उन सब प्रकाशमान और अपने तेज से अपने अपने स्थान पर चमकते हुए तारागण और सैकड़ों ऋषि, सिद्ध और ऐसे मनुष्यों को जिन्होंने अपने तप से अथवा युद्ध में सम्मुख मारे जाने के कारण से स्वर्ग जीत लिया था देखता हुआ और गन्धर्व, गुह्यक और अप्सराओं के गणों को जिनका तेज सूर्य की प्रभा के सदृश था और ऐसे लोकों को जो स्वयं प्रकाशित थे निरखता हुआ ऊपर को चला गया और आश्चर्य करनेलगा ३२। ३७ उस समय अर्जुन ने मातलि से पूछा कि ये सब क्या हैं तब मातलि ने कहा कि ये सब सुकृती मनुष्य अपने अपने स्थानों पर भोग भोग रहे हैं ये ही तुमको पृथ्वीपर से तारारूप दिखाई देते हैं। इसके पीछे जब अर्जुन इन्द्रपुरी के द्वारपर पहुँचा तब उसने ऐरावत हाथी देखा जो कैलास पहाड़ के समान ऊंचा और

चार दांत रखता था । इसप्रकार से अर्जुन राजा मान्धाता की तरह राजाओं के मार्ग को नांघता हुआ इन्द्रपुरी के भीतर गया और वहां की शोभा देखने लगा ॥ ३८ । ४२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

तेंतालीसवाँ अध्याय ।

अर्जुन का इन्द्रपुरी में पहुँचकर इन्द्र से मिलना और इन्द्रपुरी की शोभा का वर्णन ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! वह इन्द्रपुरी सिद्धलोग और चारणों से सेवित और सुगन्धित पुष्प और मनोहर वृक्षों से शोभित थी अर्जुन उसको देखता हुआ नन्दन वन के समीप पहुँचा जहां शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलरही थी और ऐसे ऐसे दिव्य फले फूले वृक्ष लग रहे थे मानो बोलना चाहते हैं और जहां तहां अप्सराओं के झुण्ड के झुण्ड विहार कर रहे थे १ । ३ वह लोक पुण्यात्माओं का है और उसे वे मनुष्य कभी नहीं देखसक्के हैं जिन्होंने न तपस्या की है, न अग्निहोत्र किये हैं अथवा जो युद्ध में विमुख होगये हैं और मद्यपी, मांसाहारी, यज्ञ की क्रिया को बिगाड़नेवाले, दुरात्मा, नीच और यज्ञ, व्रत, दान न करनेवालों को तो उस लोक का दर्शन भी मिलना दुर्लभ है ४।६ अर्जुन उस वन की शोभा देखता और अप्सराओं के मनोहर गीतों को सुनता हुआ इन्द्रभवन के निकट जा पहुँचा ७ वहां उसने हजारों और लाखों विमान देखे जो इच्छा के अनुसार चलनेवाले और पृथ्वी के चारों ओर घूमनेवाले थे ८ उस समय देवता, गन्धर्ब, सिद्ध और ऋषियों ने अर्जुन की पूजा की तब वह सुगन्धित पुष्पों से महकती हुई वायु को सूंघता हुआ गन्धर्ब और अप्सराओं से स्तूयमान हो उस सुखीथी नाम नक्षत्रमार्ग में पहुँचा जहां अनेक शंख और दुन्दुभी बजरहे थे । अर्जुन ने वहां पहुँचकर साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण, दोनों अश्विनीकुमार, बारह सूर्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, ब्रह्मऋषि, राजा दिलीप आदि बहुत से राजऋषि और तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू नाम गन्धर्बों को देख सब से यथायोग्य मिलकर अपने पिता इन्द्र को देखा । अर्जुन इन्द्र को देखकर रथ से उतर पड़ा और अपना शिर झुकाकर दण्डवत् की । उस समय इन्द्र के ऊपर सुनहरी दण्डी का चमर ढुररहा था और व्यजन अर्थात् पंखे से वायु होरही थी कि जिसमें बड़ी सुन्दर महक निकलती थी और विश्वावसुआदि गन्धर्ब और ऋग्वेदी, सामवेदी और यजुर्वेदी ब्राह्मण हाथ जोड़े हुए स्तुति कर

रहे थे इन्द्र ने अर्जुन को दण्डवत् करते हुए देखकर दोनों हाथ पकड़ कर उठा लिया ६ । १६ और इन्द्रासनपर अपने पास बिठा लिया और उसके मस्तक को सूंघकर अपनी गोद में बैठा लिया २० । २१ इसके पीछे अर्जुन इन्द्र की आज्ञा से दूसरे इन्द्र की समान उस इन्द्रासन पर बैठ गया २२ उस समय इन्द्र ने अर्जुन के मुखपर प्यार से हाथ फेरा और सोने के खंभों के समान उसकी दोनों भुजाओं को अपने वज्र रखनेवाले हाथ से बार बार झाड़ा और मन्द मन्द मुसुकराकर प्रेम से अपने पुत्रको देख देख कर तृप्त नहीं हुआ २३ । २६ वे दोनों पिता पुत्र एक आसन पर बैठे हुए ऐसे सुशोभित दीखते थे मानों चतुर्दशी के दिन सूर्य और चन्द्रमा दोनों आकाश में उदय हुए हैं २७ उससमय उस स्थानपर तुम्बुरुआदि गन्धर्व जो गीत और सामवेद की ऋचाओं के गाने में बड़े चतुर थे गाने लगे और घृताची, मेनका, रम्भा, पूर्वचित्ती, स्वयंप्रभा, उर्वशी, मित्रकेशी, दण्डगौरी, वरूथिनी, गोपाली, सहजन्या, कुम्भयोनि, प्रजागरा, चित्रसेना, चित्रलेखा, सहा, मधुरस्वरा और सिद्धों के चित्त को प्रसन्न करनेवाली वे अप्सरा नाचने लगीं जिनकी क्षीण कटि अर्थात् पतली कमर, पीन और उन्नत पयोधर और चपल नेत्र थे उन अप्सराओं ने अपने नाचने गाने के हाव, भाव, कटाक्ष और मधुरता से सबके चित्त प्रसन्न कर दिये ॥ २८ । ३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चवालीसवाँ अध्याय ।

अर्जुन का स्वर्ग में इन्द्र से वज्र आदि अस्त्रों का प्रयोग और चित्रसेन गन्धर्व से गाना, नाचना और बजाना सीखना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे इन्द्र का मत पाकर देवता तथा गन्धर्वों ने पाद्य, अर्घ और आचमन देकर अर्जुन की पूजा की और उसको इन्द्र के भवन में टिकाया १ । २ और वह वहां अपने पिता के भवन में सुखपूर्वक रहकर महाअस्त्र सीखने लगा ३ तदनन्तर उसने सब अस्त्र सीख कर वज्र अस्त्र जिसका स्पर्श कोई नहीं सहसक्ता है और अशनि अस्त्र जो मेघ और मयूर के शब्द को उत्पन्न करनेवाला है सीखे ४ अर्जुन ने ये सब अस्त्र पांच वर्ष इन्द्र की आज्ञा से स्वर्ग में रहकर सीखे उपरान्त जब अस्त्र सीख चुका तब उसको अपने भाइयों की याद आई ५ अस्त्र सीखने पर इन्द्रने अर्जुन से कहा कि तुम चित्रसेन गन्धर्व से गाना और नाचना सीखलो और देवताओं

का बनाया हुआ बाजा जो नरलोक में नहीं है उसे भी सीख लो इससे तुम्हारा कल्याण होगा ६। ७ तब इन्द्र ने अर्जुन की मित्रता चित्रसेन से करा दी और वह उसके साथ रात दिन रहने लगा ८ चित्रसेन ने उसे गाने, नाचने और बजाने का उपदेश किया और समय समय पर वह उसको सीखने लगा परंतु दुश्शासन और शकुनी के मारने की आतुरता और जुए से उत्पन्न दुःख के कारण से उसका चित्त शान्त नहीं रहता था ६। १० थोड़े काल में अर्जुन गाने, नाचने और बजाने में निपुण होगया और अपने भाई और कुन्ती माता को याद कर करके म्लानचित्त रहने लगा ॥ ११ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय।

चित्रसेन गन्धर्व द्वारा इन्द्र की आज्ञा पाकर उर्वसी का अर्जुन के पास जाना अङ्गीकार करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे इन्द्रने एकसमय एकान्त में चित्रसेन गन्धर्व को बुलाकर कहा कि हमने अर्जुन की आंख उर्वशी अप्सरा से लगी हुई देखी थी सो जिसप्रकार से मैंने उसको अस्त्रविद्या में विचक्षण करदिया है उसीप्रकार से तुम उसके पास उर्वशी को भेजकर उसको स्त्रियों के साथ रमण करने में निपुण कर दो १। २ यह आज्ञा सुनकर चित्रसेन "तथास्तु" कहकर उर्वशी के पास गया और उससे आदर सत्कार पाकर उसके समीप बैठ गया और मुसुकराकर कहने लगा ४। ५ किमुझको तेरे पास स्वर्ग के स्वामी इन्द्र ने एक बात कहने को भेजा है तू जानती है यह अर्जुन अपने शारीरिक गुण, शोभा, शील, रूप, व्रत और इन्द्रियों को जीतने के कारण से देवता और मनुष्यों में विख्यात है और पराक्रमी, स्फूर्त्तिमान्, विद्यावान्, ऐश्वर्ययुक्त, तेजस्वी, शूरवीर, क्षमावान्, पापहीन, चारोंवेदों का जाननेवाला जिसका इतिहास पांचवां वेद है, आलस्य रहित, सुन्दर कुलमें माता पिता से उत्पन्न, युवा, ब्रह्मचारी, आठों गुणों का रखनेवाला, गुरु की शुश्रूषा करनेवाला और बुद्धिमान् है और इन्द्र की समान अकेला रक्षा करनेवाला है इन गुणों के सिवाय वह प्रजा के पालने में अपनी बड़ाई न करनेवाला, सत्कार करनेवाला, प्रियवादी, सूक्ष्मपदार्थ को स्थूल की समान देखनेवाला, ६। १० अपने सुहृदों को नानाप्रकार के अन्नपान आदि देनेवाला, सच्चा, स्वरूपवान्, अहंकार न करनेवाला, अपने भक्तोंपर दया करनेवाला, स्थिरप्रतिज्ञ और चाहने योग्य है और अपने गुणों से इन्द्र और वरुण के समान

है ११ । १२ तू उस अर्जुन को अच्छी तरह जानती है सो तू इन्द्र की आज्ञा से ऐसा कर जिसमें वह तेरी शरण और चरणों को पाकर स्वर्गमें आनेका फल पावे १३ यह सुनकर उर्वशी प्रसन्न होकर मुसुकराती हुई चित्रसेन से कहने लगी १४ कि हे चित्रसेन ! जो गुण अर्जुन के तैंने मुझसे कहे हैं उनको मैं पहिले ही से सुनकर अर्जुन को अपने मन से वर देचुकी हूं १५ अब उसके गुण तेरी नम्रता और इन्द्र की आज्ञा से मेरा चित्त अर्जुनपर और भी मोहित होगया इससे तू जा, मैं उसके पास सुखपूर्वक जाऊंगी ॥ १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय ।

उर्वशी का अर्जुन के पास जाना और अर्जुन को शाप देना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! गन्धर्व को बिदा करने के पीछे उर्शवशी ने अर्जुन से प्रीति करने की इच्छासे स्नान किया और अपने मनमानते सुन्दर वस्त्र और गहने पहिरकर अपना शृङ्गार फूलों की माला और सुगन्धित गन्धों से किया उपरान्त सुन्दर शय्यापर बैठकर सायंकालतक बड़ी प्रसन्नता से अर्जुन के स्वरूप का ध्यान करती रही और अपने चित्तमें उस ध्यान से उठी हुई कामाग्नि से व्याकुल होकर मनसे अर्जुन के साथ रमण करती रही १ । ४ जब सायंकाल होगया और चन्द्रमा उदय हुआ तब वह अजुर्नलके भवन को चली ५ उस समय वह अप्सरा कमलों की माला पहिरे हुई थी बाल उसके लम्बे लम्बे नरम और घुँघुआरे और वेणी हाथी के सूंड़ के सदृश थी और उसकी भृकुटी के कटाक्ष, नेत्रों की चञ्चलता, वचन की माधुर्यता, देहकी कान्ति,शरीर की सौम्यता और चन्द्रमारूपी मुखसे ऐसा जान पड़ता था मानों चन्द्रमा को बुलाती है और दोनों सुन्दर स्तनों के हिलने के कारण से वह संक्षोभित होकर पद पद पर झुक झुक कर चलती थी, त्रिबली और क्षीण कटि अर्थात् पतली कमर उसकी अत्यन्त सुशोभित मालूम होती थी और दोनों नितम्ब अर्थात् चूतड़ ऊंचे स्थूल और चोड़े थे और मदनसदन बड़ा ही शुभ्र था, दोनों निर्दोष जांघें पतले वस्त्र के होने से दिव्य ऋषियों के मन को भी मोहित करती थीं और दोनों गुल्फ गूढ़, तलुए लाल लाल उँगलियां लम्बी लम्बी और पाव कछुए की पीठ के समान ऊंचे ऊंचे थे। वह अप्सरा थोड़ा मद्यपान किये हुए कामदेव के मद से भरी हुई होने के कारण से दर्शन करने के योग्य होगई और ऊपर का वस्त्र पतला होने के कारण से वह

स्वर्ग में भी दर्शनीयरूप रखनेवाली अप्सरा आकाशमार्ग से सिद्ध, चारण
और गन्धर्वों सहित जाती हुई ऐसी दीखती थी मानो पूर्णमासी का चन्द्रमा
पतले बादल से ढका हुआ है ६ । १५ इस प्रकार से वह मन और पवन के
समान चलनेवाली अप्सरा एक क्षण में अर्जुन के भवन पर आपहुँची १६
द्वारपालकों ने उसके आने का वृत्तान्त अर्जुन को कह सुनाया १७ रात्रिका
समय होने से वह मन में शङ्का करके उसके समीप चला गया और लज्जित हो
नमस्कार कर बड़ों के समान उसका आदर सत्कार करके १८ । १९ कहने
लगा कि हे श्रेष्ठ अप्सरा! मुझे क्या आज्ञा है, मैं तेरा दास हूं, जो कुछ कहो
सो करूं २० यह सुनकर वह अप्सरा अचेतसी होगई और कहने लगी कि
मैं यहां चित्रसेन गन्धर्व के कहने से आई हूं उसने जो कुछ कहा है वह यह
है २१ । २२ कि जब तुम इन्द्र की सभा में आये थे तब तुम्हारे आने के
कारण से बड़ा मनोहर उत्सव हुआ था उस उत्सव में जिसमें सब रुद्र, द्वादश
सूर्य, आठों वसु, दोनों अश्विनीकुमार, महाऋषि, राजऋषि, सिद्ध, चारण, यक्ष
और महोरग जो सबके सब अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य के समान तेजस्वी हैं अ-
पने अपने योग्य स्थानोंपर बैठे हुए थे, गन्धर्वों ने वीणा बजाकर गाया था
और सब मुख्य मुख्य अप्सरा नाची थीं उस समय तुम केवल मुझको ही
टकटकी लगाकर देखते रहे २३ । २८ सो जब तुम्हारे पिता की आज्ञा पाके
सब देवता और अप्सरा अपने अपने स्थानों पर चली आईं तब फिर से चित्रसेन
मेरे पास इन्द्र का भेजा हुआ आया और कहने लगा २९ । ३१ कि मुझे
इन्द्र ने तेरे पास भेजा है और कहा है कि तू इस अर्जुन को मन से चाहना
कर, यह इन्द्र की तुल्य शूरवीर और गुणवान् हैं सो मुझको इन्द्रकी आज्ञा, मेरा
कहना और अपना प्रिय अवश्य करना चाहिये ३२ । ३३ सो हे अर्जुन!
मैं तुम्हारे पास इन्द्र और उक्त गन्धर्व की आज्ञा से तुम्हारी सेवा करने आई हूं
तुम्हारे गुणों ने मेरे मनको खींचकर कामासक्त कर दिया और मेरी यह इच्छा
बहुत दिन पहले से भी थी ३४ । ३५ अर्जुन देवलोक में उस अप्सरा की उक्त
बात सुनकर लज्जित होगया और अपने कानों में उँगली डालकर कहने लगा ३६
कि जो कुछ तैंने कहा है वह सुनने के योग्य नहीं है मैं निश्चय तुझको
अपने गुरु की स्त्री के समान समझता हूं ३७ और तू मेरी माता उसी प्रकारसे
है जैसे इन्द्राणी और कुन्ती है, तुमको इसमें किसी प्रकार का विचार करना

उचित नहीं है ३८ और जो मैंने तेरी ओर नाच में टकटकी लगाकर देखा था उसका कारण यह है कि मैं यह जान कर देखता रहा कि यह हमारे पौरववंश की माता है ३९ । ४० इससे तुझको मेरी ओर से और किसी प्रकार का ध्यान करना उचित नहीं है तू तो मेरी गुरु से गुरुतर है और मेरे वंशको चलानेवाली है ४१ यह सुनकर उर्वशी बोली हम सब वारवनिता हैं तुमको मुझे गुरु के स्थान पर समझना उचित नहीं है ४२ देखो पुरुवंश के बहुत से पुत्र और नाती तपस्या करकरके यहां आये हैं और वे सब हमारे साथ रमण करते हैं उनको किसीप्रकार का दोष नहीं लगताहै इससे तुमभी प्रसन्नहोकर मुझ कामासक्त और पीड्यमान भक्त को प्यार करो और चाहो ४३।४४ यह सुनकर अर्जुन बोला कि हे अप्सरा ! मैं तुझसे सत्य सत्य कहताहूं देवता और दिशाभी मेरे सत्यवचन को सुनें जैसे कुन्ती, माद्री और शची मेरी माता हैं उसीप्रकार से तू भी मेरी गुरु है, अब तू जा, मैं तेरे चरण छूता हूं, मेरी ओर से तू माता की समान पूज्य और तेरी ओर से मैं पुत्रकी समान रक्षणीय हूं ४५।४७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर उर्वशी क्रोधित होगई और उसने टेढ़ी भौंहें करके अर्जुन को शाप दिया ४८ कि हे अर्जुन ! तैंने मुझ कामासक्त को तेरे पिता की आज्ञा से अपने आप तेरे घर आने पर प्रसन्न नहीं किया इससे तेरा मान दूर होकर तू स्त्रियों के बीच में नाचता फिरेगा और षण्ढ की तुल्य हिजड़े के नाम से प्रसिद्ध होगा ४९ । ५० उर्वशी श्वास लेती और बर्बराती हुई उक्त शाप देकर अपने घर को चली गई ५१ और अर्जुन ने चित्रसेन के पास जाकर वह सब वृत्तान्त शाप देने का जैसा था कह सुनाया ५२ । ५३ इसके पीछे चित्रसेन ने वह सब हाल जाकर इन्द्र से कहा तब इन्द्र ने अर्जुन को एकान्त में बुलाया और कहा कि हे पुत्र ! तुझसा पुत्र होने से अब कुन्ती पुत्रवती हुई ५४ । ५५ आज मैंने जाना कि तैंने अपने धैर्य से ऋषियों को भी जीत लिया और जो उर्वशी ने तुझको शाप दिया है उसकी तू चिन्ता मत करे यह शाप भी आगे तेरे बड़े काम आवेगा क्योंकि तुझको तेरहवीं वर्ष में गुप्तवास करना है सो जब वह समय आवे तब तू एक वर्ष हिजड़े के स्वरूप में रहियो तेरहवीं वर्ष बीतनेपर फिर तू ज्योंका त्यों पुरुष होजावेगा ५६ । ५९ यह सुनकर अर्जुन प्रसन्न होगया और फिर शाप की कुछ चिन्ता नहीं की ६० और स्वर्ग में चित्रसेन गन्धर्व के साथ रमण करता रहा ६१ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पाण्डव अर्जुन के इस वृत्तान्त को सुननेवाले मनुष्य की इच्छा पापयुक्त

कामना से दूर रहती है ६२ और राजालोग इस पवित्र इतिहास को सुनकर राग, द्वेष, मद और भेद को छोड़कर स्वर्ग पाते हैं और वहाँ आनन्दपूर्वक रमण करते हैं ॥ ६३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय ।

लोमश ऋषि का इन्द्रपुरी में आना और अर्जुन को इन्द्रासन पर बैठा हुआ देखकर शङ्का करना, इन्द्र का उनका समाधान करना और युधिष्ठिर को संदेशा भेजना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! किसीसमय लोमशऋषि घूमते हुए इन्द्र को देखने की इच्छा से इन्द्रपुरी में आये १ और इन्द्र से मिलकर इन्द्र के दिये हुए आसनपर बैठगये उससमय वह अर्जुन को इन्द्रासन पर इन्द्र के बराबर बैठा हुआ देखकर विचार करने लगे कि यह क्षत्री इन्द्रासन पर क्योंकर बैठा है, इसने क्या ऐसी तपस्या अथवा पुण्य किये जो ऐसा देवस्थान इसको मिला है २ । ५ उनके मन की वृत्ति को जानकर हँसते हुए इन्द्र कहने लगे कि हे ब्रह्मऋषे ! मैं तुम्हारे मन के संकल्प को जान गया हूं तुम इस अर्जुन को केवल मनुष्य ही मत समझो किन्तु यह मेरा पुत्र है और कुन्तीसे उत्पन्न हुआ है और यहाँ किसी कारण से अस्त्रविद्या सीखने आया है ६ । ८ बड़े आश्चर्य की बात है आप ऐसे ब्रह्मऋषि इस पुराने ऋषि को नहीं जानते हैं और इसके यहां बैठने में शङ्का करते हैं जो नर और नारायण नाम से पुराने ऋषि विख्यात हैं उन्हीं दोनों ने पृथ्वी का भार दूर करने के लिये श्रीकृष्ण और अर्जुन के नाम से अवतार लिया है ६ । १० इन दोनों नर और नारायण का रहने का स्थान बदरिकाश्रम है जहां से गङ्गाजी निकली हैं और जिसे देवता और महात्मा ऋषि नहीं देखसक्ते हैं ११ । १३ इन दोनों तेजस्वियों ने मेरी प्रेरणा से पृथ्वी पर अवतार लिया है और दोनों मिलकर पृथ्वी का भार उतारेंगे १४ और जो निवातकवचनामी दैत्य पाताल लोक में रहते हैं और वरदान पाने के कारण से बड़े बली और भयंकर हैं और देवताओं को कुछ न गिनकर मारने को उद्यत रहते हैं और देवता उनसे युद्ध नहीं कर सक्ते १५ । १७ उनको यह अर्जुन मारकर फिर नरलोक को जायगा । यद्यपि मधुदैत्य को मारनेवाले विष्णु भगवान् जिन्होंने पृथ्वीपर अवतार लिया है और जो कपिल ऋषिके रूप हैं, जिन्होंने राजा सगर के पुत्रों को रसातल खोदने पर दृष्टिमात्र से ही भस्म कर दिया था वे इन निवातकवचनामी दैत्यों को पक्षपातियों

सहित देखकर ही भस्म करसक्ते हैं परंतु ऐसे छोटे से काम के लिये मैं उनसे कहना योग्य नहीं समझता हूं क्योंकि जो उनको यह बात जताई जावे तो वे अपने तेज के समूह से जगत् को भस्म कर डालेंगे इससे यह अर्जुन ही उनको मारडालने को समर्थ है। इस अर्जुन और श्रीकृष्ण के मिलकर युद्ध करने से हमारा बड़ा काम निकलेगा १८। २२ अब आप मेरी आज्ञा से पृथ्वीपर काम्यक वन में युधिष्ठिर के पास जाइये और उससे हमारा यह संदेशा कह दीजियेगा कि तुम अर्जुन की ओर से किसी बात की चिन्ता मत करो वह अस्त्र सीखकर शीघ्र ही पृथ्वीपर आवेगा २३। २५ जो मनुष्य अस्त्र सीखा हुआ और पराक्रमी नहीं है वह भीष्म और द्रोणाचार्य को वश में नहीं करसक्ता है सो अर्जुन अब सब अस्त्र सीखकर नाचने, गाने और बजाने में भी निपुण हो गया है २६। २७ इससे तुमभी अपने छोटे भाइयों को साथ लेकर तीर्थयात्रा करो तीर्थों में स्नान करने से तुम्हारे पाप सब दूर होजायँगे और कल्मष धुल जायगा फिर तुम आनन्दपूर्वक राज्य भोगोगे २८।२९ सो आप युधिष्ठिर को ये सब बातें समझा दीजियेगा और अपने तपोबल से पर्वतों के ऊँचे नीचे स्थानों और दुर्ग देशों में उसकी राक्षस आदिकों से रक्षा कीजियेगा ३०।३१ जब इन्द्र उक्तप्रकारसे कहचुका तब अर्जुन बोला कि महाराज! आप युधिष्ठिर की रक्षा अवश्य कीजियेगा जिससे वह आपसे रक्षित होकर तीर्थयात्रा करसके और दान देवे ३२। ३३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! लोमशऋषि उक्त बात को सुनकर बहुत अच्छा कहकर पृथ्वीपर आये और काम्यकवन में पहुँचकर युधिष्ठि के पास पहुँचे जो अपने भाई और तपस्वियों के बीच में बैठा हुआ था ॥ ३४। ३५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय।

व्यासजी से अर्जुन के स्वर्ग जाने का वृत्तान्त सुनकर धृतराष्ट्रका चिन्ता करना और संजय से कहना।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय बोला कि हे महाराज! अर्जुन का यह काम बड़ा अद्भुत है जब यह वृत्तान्त धृतराष्ट्र ने सुना तब उसने क्या कहा १ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! धृतराष्ट्र अर्जुन के स्वर्गजाने का वृत्तान्त व्यासजी से सुनकर संजय से कहने लगा २ कि मैंने अर्जुन का सब वृत्तान्त सुना है, तुमको भी मालूम है या नहीं ३ मैं जानता हूं कि मेरा यह दुर्बुद्धि, मन्द आत्मा और पापी पुत्र अब सब पृथ्वी का नाश करेगा क्योंकि जिस महात्मा

की बात स्वतन्त्रता में भी कभी झूठ नहीं होती और जिसकी ओर अर्जुन सरीखा योद्धा है वह तीनों लोकों को भी जीत सक्ता है ४।५ मृत्यु की भी यह सामर्थ्य नहीं है जो अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों के सम्मुख ठहर सके ६ सो उन पाण्डवों से अब मेरे पुत्रों का युद्ध खड़ा होगया, मैं जानता हूं कि मेरे पुत्र दुरात्मा और काल के बश में हैं ७ किसी रथी को मैं ऐसा नहीं देखता हूं जो अर्जुन के सम्मुख युद्ध करसके हां भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण इस योग्य हैं परन्तु मुझको उनके द्वारा भी जय होना दुर्लभ दीखता है क्योंकि कर्ण दयालु और प्रमादी है और द्रोणाचार्य वृद्ध हैं ये अर्जुन से युद्ध नहीं करसक्ते अर्जुन क्रोधी, बलवान्, उद्यमी और दृढ़विक्रम है ८। १० हमको अपनी हार तुमुल युद्ध करने में भी दिखाई देती है क्योंकि सब पाण्डव शूरवीर, अस्त्र जाननेवाले और यशस्वी हैं ११ और ईश्वरत्व चाहते हैं सो जबतक ये सब अथवा अर्जुन नहीं मरेगा तबतक शान्ति नहीं होगी १२ और मैं अर्जुन के क्रोध को भी किसी प्रकार से शान्त नहीं करसक्ता हूं क्योंकि उसको मारने अथवा जीतनेवाला कोई नहीं है देखो अर्जुन ने खाण्डव वन को जलाकर अग्निदेव को प्रसन्न किया और सब पृथ्वी के राजाओं को जीतकर राजसूय यज्ञ रचा उसका पराक्रम इन्द्र के समान है १३। १४ चाहे इन्द्र के वज्र से पर्वत शेष बच रहे परन्तु अर्जुन के बाण ऐसे हैं कि उनसे कदापि कोई नहीं बच सक्ता है १५ मेरे पुत्र उसके बाणों से इसप्रकार से तापित हैं जैसे सूर्य की किरणों से सब जगत् तप्त हो रहा है १६ मुझे ऐसा दीखता है कि भरतवंशियों की सेना अर्जुन के रथ के चलने के शब्द से भयभीत और तितर बितर होरही है १७ और अर्जुन तर्कस से बाण निकाल निकाल कर मृत्यु के समान रण में खड़ा होकर माररहा है और उसको कोई नहीं जीतसक्ता ॥ १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

उंचासवाँ अध्याय ।

पाण्डवों के ओर की चिन्ता से दुःखी होकर धृतराष्ट्र और संजय का आपस में बलाबल का निश्चय करना ।

धृतराष्ट्र की उक्त बातों को सुनकर संजय बोला कि महाराज ! आप सत्य कहते हैं इसमें मिथ्या नहीं १ वे तेजस्वी पाण्डव उस यशस्विनी धर्मपत्नी द्रौपदी को सभा में लाने के कारण से क्रोध में भरे हुए हैं २ और कर्ण और दुःशासन के कहे हुए दुर्वचनों से महाक्रोधित हो रहे हैं ३ हे महाराज! मैंने यह सुना है कि

अर्जुन ने धनुषसे युद्ध करके महादेवजी को प्रसन्न किया है ४ और महादेवजी ने उसे जानने के लिये किरातरूप धरकर उससे युद्ध किया है ५ और यहभी सुना है कि अर्जुन अस्त्र मिलने के लिये तपस्या करने को गया था वहां उसको लोकपालों ने अपने दर्शन दिये सो सिवाय अर्जुन के इन साक्षात् ईश्वरों का दर्शन इस संसार में दूसरा कौन करसक्ता है ६ । ७ और जो अर्जुन अष्टमूर्तिधारी महेश्वर से युद्ध में नहीं मरा उसको दूसरा कौन मनुष्य मारसक्ता है ८ यह रोम को खड़ा करने वाला तुमुल युद्ध द्रौपदी को खींचनेवाले और पाण्डवों को क्रोधित करनेवाले मनुष्यों ने खड़ा किया है ९ आप जानते हैं कि जिस समय दुर्योधन ने अपनी जांघें द्रौपदी को दिखाई थीं उस समय भीमसेन ने जिसके होठ क्रोध से फड़क रहे थे यह कहा था कि तेरहवर्ष बीतने पर मैं तेरी दोनों जांघों को युद्ध में गदा से तोडूंगा १० । ११ सो महाराज सब पाण्डव बड़े तेजस्वी, अस्त्रज्ञाता, श्रेष्ठ युद्धकर्ता और देवताओं से भी अजेय हैं मेरी समझ में वे लोग अपनी स्त्री के दुःख के कारण से क्रोधित होकर निश्चय आपके पुत्रों को नाश करेंगे १२ । १३ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि हां ठीक है कर्ण के दुर्वचन कहने से इतना वैर नहीं हुआ है, इस वैर का मूल केवल द्रौपदी को सभा में लाना है १४ अब मेरे मन्दबुद्धि पुत्र देखें क्या करते हैं उनका बड़ा भाई बड़ों की शिक्षा को नहीं मानता है और मुझको अन्धा, अज्ञानी और अचेतन जानकर मेरी बात को नहीं सुनता है १५ । १६ और कर्ण, शकुनि आदि उसके मन्दभाग्य मन्त्री उस निर्बुद्धि के अवगुणों को और बढ़ाते रहते हैं १७ जो अर्जुन साधारणमात्र से मेरे पुत्रों के बाण मारे तो भी मेरे पुत्र नहीं बचसक्ते और क्रोध से मारे हुए बाणों से भला कैसे बच सकेंगे १८ जो अर्जुन अपने बाणों को मन्त्रित करके गाण्डीव धनुष पर चढ़ाकर पूर्ण बल से खींचकर छोड़े तो एकबार वे बाण देवताओं को भी नाश करदें १९ इसके सिवाय जिसका मन्त्री, रक्षक और सुहृद् तीनों लोकों का स्वामी कृष्ण सा होवे वह क्या नहीं जीतसक्ता है २० अर्जुन की यही एक बात आश्चर्य की है कि उसने भुजाओं के बल से महादेवजी के साथ युद्ध किया २१ और उसने और श्रीकृष्ण ने जो पहिले अग्नि की सहायता खाण्डव वन में की थी वह तो सब जानते ही हैं २२ सो मैं निश्चय जानता हूं कि श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन के क्रोध करने पर मेरे पुत्र अपने मन्त्री और शकुनि आदि सहित जीते नहीं बच सक्ते ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पचासवाँ अध्याय ।

अर्जुन के चले जाने के पीछे पाण्डवों के वन में बसने का वृत्तान्त ।

इतनी कथा सुनकर जनमेजय बोला कि महाराज ! धृतराष्ट्र का यह शोच करना निरर्थक था जो ऐसा ही था तो क्यों उसने पाण्डवों को वनवास दिया और अपने मन्दबुद्धि राजपुत्र दुर्योधन का कहना माना जिसने पाण्डवों को क्रोधित किया १ । २ अब आप यह सुनाइये कि पाण्डव वन में क्या पदार्थ खाकर रहते थे । वन की उत्पन्न चीज़ें खाते थे अथवा खेती में उत्पन्न हुआ अन्न आदि भोजन करते थे ३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पाण्डव वन में वनफल और बाणों से मारे हुए मृगों का मांस खाकर रहते थे और पहले ब्राह्मणों को दे देते थे तब आप भोजन करते थे ४ उनके साथमें इसी कारण से संन्यासी और गृहस्थी ब्राह्मण रहा करते थे ५ और युधिष्ठिर दशमोक्ष के जानने वाले सहस्रों स्नातक ब्राह्मणों का पालन करता था ६ और उनको रुरु, कृष्ण और नाना प्रकार के भक्ष्य मृगों को मार मारकर निवेदन करता था ७ युधिष्ठिर के साथ में जितने मनुष्य थे उनमें से कोई रोगी, दुर्वर्ण, दुर्बल और लटा हुआ न था ८ और वह अपने प्यारे भाइयों को पुत्र और जातिवालों को सगे भाई के समान पालता था ९ और द्रौपदी माँ की समान जब सब ब्राह्मण और अपने पांचों पतियों को भोजन करालेती थी तब आप खाती थी १० युधिष्ठिर पूर्व दिशा में, भीमसेन दक्षिण दिशा में और नकुल तथा सहदेव पश्चिम और उत्तर दिशाओं में नित्य जाकर मृग मारकर लाते थे ११ इसी प्रकार से उन अर्जुन के विना चारों पाण्डवों के वेदपाठ, जप और होम करते हुए उस काम्यक वन में पांच वर्ष व्यतीत हुए ॥ १२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ अध्याय ।

पाण्डवों के भय से धृतराष्ट्र और संजय का परस्पर संवाद होना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों के ऐसे अद्भुत चरित्र को जिसको मनुष्य नहीं करसकता है सुनकर शोक और चिन्ता से दुःखी हुआ और गहरी गर्मश्वास को भरता हुआ संजय को बुलाकर कहनेलगा कि हे संजय ! जुए की अनीति और पाण्डवों की शूरता, धैर्य और आपस में परस्पर प्रीति के होने को मैं दिन रात शोचा करता हूं उस शोच में मेरा चित्त एक क्षणभर

भी चैन से नहीं रहता है १ । ४ जिस समय दोनों भाई नकुल और सहदेव जो सिंहकी तुल्य पराक्रमी, अश्विनीकुमारों के समान दुःसह, देवपुत्र, महाभाग, देवराज से तेजस्वी, दृढ़ आयुध, शीघ्र बाण चलानेवाले और क्रोधी हैं भीमसेन और अर्जुन को आगे करके युद्ध करेंगे तब मेरी सेना मरने से कुछ शेष नहीं बचेगी क्योंकि इन दोनों देवपुत्रों के साथ युद्ध करने को उनका प्रतिरथी कोई नहीं है ५ । ८ और वृष्णिवंशी शूरवीर जो बड़े बानैत और क्रोधी हैं और पाञ्चाली अर्थात् पञ्जाबीलोग द्रौपदी के उस क्लेश को काहे को सहेंगे ९ निश्चय वासुदेवजी से रक्षा पाकर समर में पाण्डव मेरे पुत्रों की सेना को भस्म करदेंगे १० दुर्योधन आदि हमारी ओर का कोई आदमी वृष्णिवंशियों के वेग को नहीं सहसक्ता है ११ और उनके बीचमें जब महापराक्रमी और बड़ा बानैत भीमसेन शूरवीरों को मारनेवाली अपनी गदा को लेकर विचरेगा तब उसकी गदा के वेग और गाण्डीव धनुष के वज्रसदृश शब्द को कोई राजा न सह सकेगा १२।१३ हे संजय ! उस समय मुझको अपने सुहृदों के स्मरण योग्य वाक्य जिनको मैंने पहले अङ्गीकार नहीं किया था याद आवेंगे १४ यह सुनकर संजय बोला कि हे महाराज ! आपने यह बड़ी अयोग्य बात की जो अपने पुत्र को समर्थ होने पर भी मोह के कारण से निवारण नहीं किया १५ देखिये अविनाशी, मधुसूदन श्रीकृष्णजी पाण्डवों को जुए में पराजित सुनकर शीघ्र ही काम्यकवन में आये थे उन्होंने पाण्डवों को धैर्य दिया था १६ और धृष्टद्युम्न, विराट, धृष्टकेतु और कैकेय आदि राजाओं ने पाण्डवों को हारा हुआ देखकर जो जो बातें कही थीं सब दूतों के द्वारा मुझको मालूम हो गईं और मैंने वे सब बातें आपको भी सुनाई थीं १७ । १८ अर्जुन ने श्रीकृष्णजी को रणभूमि में अपना सारथी बनाने के लिये कहा था श्रीकृष्णजी ने वह बात अङ्गीकार की १९ और पाण्डवों की दशा को देखकर क्रोधित होकर युधिष्ठिर से कहने लगे २० कि जो तुमलोगों का धन आदि, जो दूसरे राजाओं को मिलना दुर्लभ है मैंने उस राजसूय यज्ञ में देखा था जिसमें तुम्हारे शस्त्र के प्रताप के भय से वङ्ग, अङ्ग, पौण्ड्र, औण्ड्र, चोल, द्राविड़, अन्ध्रक, सागर, अनूप, प्रान्त, सिंहल, बर्बर, म्लेच्छ, लङ्का, पल्हव, दरद, किरात, यवन, शक, हारहूण, चीन, तुषार, सैन्धव, जागुड़, रामठ, मुण्ड, तङ्गण, कैकेय, मालव, काश्मीर, पश्चिम और सागर के समीपवर्ती उन देशों के राजा जहां स्त्रियों का राज्य है और अन्य राजा लोग इकट्ठे

हुए थे और मैंने देखे थे, जिन नीच आदमियों की शिक्षा माननेवालों ने हरण किया है मैं उनको मारकर उस सब धन को अभी जाकर हरलेताहूं २१। २७ मैं बलदेवजी, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, अक्रूर, गद, साम्ब, प्रद्युम्न, आहुक, शिशुपाल का पुत्र और धृष्टद्युम्न को साथ लेजाकर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, शकुनि आदि लोगों को जो हमारे सम्मुख आवेंगे मारकर सब लक्ष्मी लेलूंगा और फिर तुम भाइयों सहित हस्तिनापुर में वास करके दुर्योधन की लक्ष्मी पाकर राज्य करना यह सुनकर युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न आदि के सम्मुख श्रीकृष्णजी से कहा २८। ३१ कि हे महाराज जनार्दनजी ! मुझको आपका सत्यवाक्य अङ्गीकार है ३२ परन्तु आप मुझको सच्चा करने के लिये मेरे शत्रुओं को साथियों सहित तेरहवर्ष के उपरान्त मारियेगा ३३ क्योंकि मैंने इस वनवास की प्रतिज्ञा राजाओं के बीच में की है यह सुनकर धृष्टद्युम्न आदि सभा के बैठनेवालोंने वह बात मानली और समय के अनुकूल मीठी मीठी बातें कहकर श्रीकृष्णजी के क्रोध को शान्त किया ३४। ३५ उपरान्त सब जने द्रौपदी से कहने लगे कि हे देवि ! तेरे क्रोध से दुर्योधन मारा जायगा ३६ हे वरवर्णिनि ! तू शोच मत कर हम लोग सच्ची प्रतिज्ञा करते हैं और जिन्होंनें तुझे सभा में देखकर तेरी हँसी की और तुझे खींचकर क्लेश दिया है उनके रुधिर को पृथ्वी पीवेगी, उनके मांस को भेड़िया और पक्षी खावेंगे और उनके कटे हुए शिरों को गृध्र और गीदड़ ईंचे ईंचे फिरेंगे ३७।४० हे महाराज! उन शूरवीरों ने जिनमें वीरता के सब चिह्न मौजूद थे या जिनकी अखण्डित ध्वजायें थीं इस प्रकार से बहुतसी बातें कहीं ४१ सो वे सब महारथी तेरहवर्ष बीतने पर युधिष्ठिर के बुलाये हुए श्रीकृष्णजी को आगे करके युद्ध के लिये आवेंगे ४२ और उनके साथ बलदेवजी, अर्जुन, प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि, भीमसेन, नकुल, सहदेव, कैकेय, द्रुपद के पुत्र और राजा विराट भी होंगे ४३ भला ऐसा कौनसा जीने की इच्छा रखनेवाला होगा जो इन अजेय और क्रोधी सिंहरूपी वीरों का सामना करेगा ४४ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि जुआ होने के समय विदुरजी ने मुझसे कहाथा कि हे नरेन्द्र ! जो तुम पाण्डवों को जीतोगे तो निश्चय कर कौरवों का बड़ा भयानक नाश हो जायगा सो मुझको दीखता है कि समय के आने पर पाण्डवों से अवश्य युद्ध होगा और जैसा कुछ विदुरजी ने मुझसे कहा था सब सत्य होगा ॥ ४५ । ४६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

बावनवाँ अध्याय ।

दुर्योधन से युद्ध करने के लिये भीमसेन और युधिष्ठिर का संवाद और बृहदश्व महर्षि का आगमन ।

इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय बोला कि महाराज! अस्त्रों के लिये महात्मा अर्जुन के स्वर्ग में चले जाने पर युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने क्या किया १ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन के स्वर्ग जाने पर पाण्डव काम्यकवन में रहने लगे २ किसी समय वे चारों भाई द्रौपदी सहित किसी एकान्त स्थान हरी घास पर बैठकर अर्जुन के वियोग के दुःख से गद्गद होकर और राज्य के भ्रष्ट होने से दुःखी होकर महाशोच करने लगे उस समय महाभुजशाली भीमसेन युधिष्ठिर से कहने लगा ३।५ कि महाराज! अर्जुन जिसके आधीन सब पाण्डवों के प्राण रहते हैं आपकी आज्ञा से गया है ६ जो कदापि वह किसी प्रकार से नष्ट हो जायगा तो पुत्रों सहित हम सब, पाञ्चाली, सात्यकी और वासुदेवजी अवश्य मर जायँगे ७ हाय इससे और क्या अधिक दुःख होगा जो वह धर्मात्मा अर्जुन आपकी आज्ञा से बहुत से क्लेश उठा रहा है ८ हम सब उस अर्जुन के ही बल भरोसे पर युद्ध में सब शत्रुओं को विजय किये हुए और सब पृथ्वी को प्राप्त की हुई मान रहे हैं ९ और मैंने उस धनुर्धारी के ही प्रभाव के कारण से सभा में धृतराष्ट्र और सुबल के पुत्रों को मारकर यमलोक में नहीं पहुँचाया १० हम लोग भुजाबल रखने और वासुदेवजी से रक्षित होने पर अपने क्रोध को सह रहे हैं आप ही इस क्रोध की जड़ हैं ११ निस्संदेह हमलोग श्रीकृष्णजी को साथ लेकर कर्ण आदि सब शत्रुओं को मारकर अपनी भुजाके बलसे पृथ्वी को जीतकर राज्यशासन करसकते हैं १२ परंतु क्या करें बलहीन तो हम नहीं हैं केवल आपके जुएके दोष में हम सब डूब रहे हैं और दुर्योधन आदि हमारे शत्रुगण सामन्तों से दिया हुआ धन पाकर बलवान् होगये हैं १३ सो हे महाराज! आप क्षत्रिय धर्म को विचारिये वनवास करना क्षत्रियों का धर्म नहीं है १४ बुद्धिमान् लोग क्षत्रियों का श्रेष्ठ धर्म राज्य करना ही कहते हैं, आप तो क्षत्रियों के सब धर्मों को जानते हैं आप उस धर्मके विपरीत न कीजिये १५ और ऐसी आज्ञा दीजिये जिसमें हम सब अर्जुन और श्रीकृष्णजी को बुलाकर बारहवर्ष बीतने के पहले ही वन से लौट चलें और धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारें १६ हे महामते! मैं अपने केवल वेग से ही व्यूहित सेना, धृतराष्ट्र और सुबल के पुत्रों को मार-

कर यमलोक में पहुँचा सकता हूं १७ दुर्योधन और कर्ण आदि जो कोई मेरे सम्मुख आवेगा सबको मार डालूंगा उनके मरने पर आप बलवान् होजायँगे और ऐसा होने पर कोई दोष भी नहीं रहेगा १८ । १९ क्योंकि फिर हम लोग नाना प्रकार के यज्ञ करके अपने पापों को भस्म कर देंगे और स्वर्गवास करेंगे २० सो जो आप हमारे राजा होकर धर्मपरायण और बालक के समान वृथा हठी और चिरकारी न होवें तो निश्चय जैसा मैं कहता हूं वैसा ही होवे छली को छल से मारने में कोई दोष नहीं है २१ इसलोक में धर्मज्ञ लोग एक दिन रात को एक वर्ष के समान कहते हैं अर्थात् जो पाप वर्ष दिन के प्रायश्चित्त से दूर होता है वही पाप दूसरा प्रायश्चित्त करने से एक दिन रात में ही दूर होजाता है जैसे वेद का प्रमाण है कि एक कृच्छ्र व्रत करने से वर्ष दिन के प्रायश्चित्त दूर होजाते हैं २२ । २३ सो जो आप वेद के प्रमाण को मानते हैं तो तेरह वर्ष का पूरा होना एक वर्ष के ही व्यतीत होने पर समझ लीजिये २४ क्योंकि इतने बहुत काल में दुर्योधन को साथियों सहित मारने के लिये कुछ आश्चर्य नहीं है फिर सब पृथ्वी के एकाग्र होजाने से जय होना दुर्लभ होजायगा २५।२६ इसके सिवाय आपके इस जुए के कारणसे हम सबको अज्ञात भी रहनाहै २७ सो मैं ऐसा कोई देश नहीं देखता हूं जहां दुर्योधन हम सबको दूतों के द्वारा न जान ले। वह दुष्ट हमारा पता लगाकर फिर हम सबको वनवास भेजेगा २८।२९ और जो कदाचित् हमलोग ऐसे स्थानमें रहें भी जहां वह दुष्ट हमारा पता न पासके तोभी यह डर है कि उस अज्ञातचर्या के बीतनेपर फिर वह आपको जुआ खेलने को बुलावे ऐसा पहले भी होचुका है आप बुलाने पर फिर जुए में सब लक्ष्मी हार दीजियेगा क्योंकि वह दुष्ट पासा फेंकना बहुत अच्छा जानता है और हम सबको फिर वनवास करना पड़ेगा ३०।३२ सो जो आपको हम सबलोगों को मरण पर्यन्त दीन रखना है तो सब वेदके धर्मों का विचार कीजिये ३३ छलीको तो छलसे ही मारना उचितहै आप मुझको आज्ञा दीजिये मैं अपनी शक्ति के अनुसार आपकी आज्ञा पाकर वहां जाकर इस प्रकारसे दुर्योधन को मारूंगा जैसे वायु से उड़ीहुई चिनगारी तृणके ढेरको भस्म करदेती है ३४।३५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर ने उक्त बातें सुनकर भीमसेन के माथे को प्यार से सूंघा और कहा ३६ कि हे महाबाहो ! इसमें संदेह नहीं है कि तू तेरहवर्ष बीतनेपर गाण्डीव धनुर्धारीको साथ लेकर दुर्योधन को

मारेगा ३७ अभी हमारा वनवासका काल पूरा नहीं हुआ है विना काल के पूरा हुए मैं पूरा होना क्योंकर मान लूं क्योंकि मैं झूठा नहीं हूं और न झूठ अपने पास रखता हूं ३८ कुछ काल और ठहर फिर उस छली पापी दुर्योधनको साथियों सहित मारियो ३९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसी अवसर में बृहदश्व महर्षि भी युधिष्ठिर के समीप आपहुँचे ४० उनको देखकर युधिष्ठिरने उठकर उन महर्षि को शास्त्र के अनुसार मधुपर्क देकर पूजा की और उनको बैठाकर आप भी सम्मुख बैठ गया और दीनता से कहने लगा ४१ । ४२ कि हे महाराज ! छली, पापी और ज्वारी मनुष्यों ने जुआ खेलना न जाननेवाले मुझको बुलाकर जुए में छलसे मेरा सब राज्य और धन हर लिया है और प्राणोंसे भी अधिक प्यारी मेरी भार्या को सभा में बुलवाया और फिर दुबारा मुझसे जुआ खेलकर मुझे भाइयोंसहित मृगचर्म देकर यह महादारुण वनवासदियाहै४३।४५ मैं यहां बड़ा दुःखी होकर बस रहा हूं और जुआ खेलने के कारण से बड़ीबड़ी कठोर बातें सुनता हूं ४६ और अपने सुहृदों के कहे हुए इच्छानुसार वचनों को याद कर करके नित्य चिन्ता में डूबा रहता हूं ४७ और अर्जुनके न होनेके कारण से जिसके आश्रय हम सबके प्राण हैं मैं निर्जीव के समान रहता हूं ४८ रात्रि को मुझे निद्रा नहीं आती, आप कृपा करके बतलाइये कि वह दयालु और मीठा बोलनेवाला अर्जुन कब लौटकर आवेगा ४९ इस पृथ्वी पर मुझसा अभागी राजा आपने और भी कोई देखा या सुना है, मेरी जानमें तो मुझसा दुःखी कोई मनुष्य न होगा ५० यह सुनकर बृहदश्व बोले कि हे युधिष्ठिर ! जो तुम अपने को अधिक अल्पभाग्य जानकर हमसे पूछते हो कि आपने भी मुझसा कोई अल्पभागी देखा है तो मैं तुमसे एक राजा की कथा कहताहूं जिसने तुमसे भी अधिक दुःख उठाया था ५१ । ५२ वैशंपायनजी बोले कि उस समय युधिष्ठिर बोला कि बहुत अच्छा महाराज ! मैं भी अपने समान दुःखी राजा की व्यवस्था सुनना चाहता हूं ५३ यह सुनकर बृहदश्व बोले कि तुम भाइयों सहित मन लगा कर इस कथा को सुनो । निषाददेश में वीरसेन नाम एक राजा था उसके नल नाम एक बड़ा पण्डित और धर्मात्मा पुत्र था ५४ । ५५ हमने सुना है कि पुष्कर ने छल से उस नल नाम राजा को जय किया था और उसने बहुत दुःखी होकर अपनी भार्यासहित वनवास किया था ५६ उसके साथ में कोई भाई, बन्धु अथवा दास, दासी या रथ आदि न थे अकेला ही था ५७ तुम्हारे साथ तो देवताओं के

तुल्य तुम्हारे भाई और ब्रह्मरूपी ब्राह्मण हैं तुमको इतना शोच करना उचित नहीं है ५८ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज ! मैं महात्मा नलका चरित्र विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं आप उसे कहने योग्य हैं ॥ ५९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ अध्याय।

बृहदश्व महर्षि का युधिष्ठिर से नल और दमयन्ती की उत्पत्ति, परस्पर प्रीति और हंसों के द्वारा एक दूसरे का संदेशा पहुँचाने की कथा कहना।

बृहदश्व बोले कि हे युधिष्ठिर ! राजा वीरसेन का पुत्र एक नलनामी बड़ा बलवान्, गुणवान् और रूपवान् होकर घोड़ों की विद्या का जाननेवाला राजाथा १ सब राजा उसकी आज्ञा में रहते थे और वह उनके ऊपर इन्द्र के समान शासन करता था, तेज उस राजाका सबसे अधिक सूर्यके समान था २ और बड़ा ब्रह्मण्य, वेदपाठी, शूरवीर, सत्यवादी, अक्षौहिणी का स्वामी, जुए में प्रीति रखनेवाला होकर निषधदेशका अधिपतिथा ३ श्रेष्ठस्त्रियां उसे चाहा करती थीं और वह उदारता, जितेन्द्रियता और रक्षा करना आदि गुणों से सम्पन्न बड़ा धनुर्धारी और स्वायम्भुव मनुजी के तुल्य था ४ इसी प्रकार से विदर्भदेश में भीमनामी बड़ा पराक्रमी और गुणवान् एक राजा था। इस राजा के कोई संतान न थी और वह संतान चाहता था ५ हे भरतवंशिन् ! उसने संतान होने के लिये बहुतसे यत्न किये एक समय उसी राजा के पास दमन नाम एक ब्रह्मऋषि आये ६ राजाने अपनी रानी सहित उस महातेजस्वी ब्रह्मऋषि का बड़ा आदर सत्कार किया और उनको प्रसन्न किया ७ तब उस ब्रह्मऋषि ने राजा को दमयन्ती नाम एक कन्या और दम, दान्त और दमन नाम तीन बड़े गुणी, पराक्रमी पुत्र होने का वरदान दिया ८।९ वह पतली कमरवाली दमयन्ती कन्या अपने स्वरूप, तेज, यश, शोभा और सौभाग्य के कारण से इस लोक में विख्यात होगई १० जब वह कन्या युवती हुई तब उसकी सेवाके लिये सौ दासी नियत कर दी गईं और उसकी सेवा इन्द्राणी के समान होने लगी ११ वह कन्या सब गहने और वस्त्र पहिरे हुए उन सखियों के मध्य में ऐसी सुशोभित दीखती थी मानो वर्षा के बादलों में बिजली चमकती है १२ उसका स्वरूप लक्ष्मी के समान था, आंखें बड़ी बड़ी थीं और उसकी उपमा देवता और यक्षों की स्त्रियों में भी न थी १३ और न किसी लोक में वैसा स्वरूप किसी का देखा या सुना था, उस सुन्दरी के दर्शन से देवताओं के भी

चित्त प्रसन्न होजाते थे १४ और राजा नल का भी स्वरूप असदृश और कामदेव की सी मूर्त्ति के समान था १५ लोगबाग नल की प्रशंसा दमयन्ती के सम्मुख और दमयन्ती की प्रशंसा नल के सम्मुख आ आकर बारम्बार किया करते थे १६ इस कारण से एक दूसरे को विना देखे, उन दोनों के हृदय में परस्पर प्रीति उत्पन्न होगई और उन दोनों के हृदय में सोता हुआ काम जगकर प्रतिदिन बढ़ने लगा १७ नल उस कामदेव के वेग को धारण न कर सका और अन्तःपुर अर्थात् महलों के समीप वन में अकेला रहने लगा १८ एक समय नल ने उस वन में कुछ हंस देखे जिनके पर सुनहले थे। नल ने उनमें से एक पक्षी को पकड़ लिया १९ उस समय वह पक्षी कहने लगा कि हे राजन्! मुझे मत मार मैं तेरा प्रिय काम करूंगा अर्थात् दमयन्ती के पास जाकर तेरा हाल कहूंगा जिससे वह तेरे सिवाय दूसरे मनुष्य को न चाहेगी २०। २१ यह सुनकर नल ने उस हंसको छोड़ दिया और वे सब हंस उड़कर विदर्भ देश की ओर चल दिये २२ और विदर्भ नगरी में पहुँचकर दमयन्ती के पास पृथ्वी पर उतरे। वह उन अद्भुत पक्षियों को देखकर प्रसन्न हुई और जल्दी से उन्हें पकड़ने को पास चली गई २३। २४ यह देखकर वे हंस प्रमदावन में इधर उधर उड़ उड़कर फैल गये और उन प्रत्येक के पीछे एक एक स्त्री पकड़ने को दौड़ी २५ जिस हंसको पकड़ने दमयन्ती दौड़ी थी वह अपनी बोली आदमी कीसी करके कहने लगा २६ कि हे दमयन्ति! निषधदेश में एक नलनामी राजा है, स्वरूप उसका अश्विनीकुमारों के सदृश सुन्दर है और उसकी मूर्ति कामदेव की सी है सो जो तू उस नलनाम राजा से अपना विवाह करले तो तेरा यह जन्म और सुन्दर स्वरूप भी सफल होजायगा क्योंकि हमने पहिले देवता, गन्धर्व, मनुष्य, उरग और राक्षसों में किसीका स्वरूप उसके स्वरूप के अनुकूल नहीं देखाहै उसी प्रकार से तू भी सब स्त्रियों में रत्नरूप है २७। ३० विवाह और युद्ध दोनों बराबरवालों ही में शोभा देते हैं। यह सुनकर दमयन्ती बोली तुम जाकर यही बात नल से भी कहो। यह सुनकर वे सब हंस वहां से उड़कर राजा नल के पास आये और उससे सब व्यवस्था कह सुनाई॥ ३१। ३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

चौवनवाँ अध्याय।

दमयन्ती के स्वयंवर की रचना और उसमें राजा और देवताओं का आना।

बृहदश्व बोले हे भरतवंशी युधिष्ठिर! दमयन्ती नल का हाल हंसों से सुनकर व्याकुल होगई और श्वास ले लेकर चिन्ता करने लगी, वर्ण उसका विवर्ण और मुख मलीन तथा तनु क्षीण होगया १।२ देह पीली पड़गई, कामाग्नि उसके मन को दाह करने लगी, दिन और रात नींदका आना उसे स्वप्न होगया और खाना, पीना, उठना, बैठना और अच्छी सेजपर सोना कुछ अच्छा न लगने लगा, दिन रात हाय हाय कर रोती थी ३।४ उसकी सखियां उसका यह हाल देखकर उसे उसके पिता राजा भीम के पास ले गईं वह उसकी दशा देखकर विचारने लगा कि इसके विवर्ण होने का क्या कारण है? थोड़े काल में राजा ने विचार किया कि यह पुत्री अब युवती हो गई इसका स्वयंवर करना उचित है ५।८ ऐसा विचार कर उसने देश देश के राजाओं को दमयन्ती के स्वयंवर का न्योता भेज दिया, यह खबर पाकर सब राजालोग सुन्दर सुन्दर वस्त्र और गहने पहिर पहिर कर दर्शनीय सेना अपने साथ ले लेकर हाथी, घोड़े और रथों के शब्द से पृथ्वी को शब्दायमान करते हुए राजा भीम के नगर में आ पहुँचे ९।११ राजा भीम ने उन सब राजाओं की यथायोग्य पूजा की और वे सब आदरपूर्वक वहां बसने लगे १२ इसी अवसर में नारद और पर्वत ऋषि जो देवऋषियों में उत्तम महात्मा, महाज्ञानी और महाव्रती थे मनुष्य और इन्द्रलोकों में घूमते हुए इन्द्र के भवन में पहुँचे १३।१४ इन्द्र ने उन दोनों देवऋषियों की पूजा की और उनसे सब जगह की क्षेम कुशल पूछी तब नारदजी ने कहा कि हम दोनों की कुशल सर्वत्र है और सब राजालोग भी प्रसन्न हैं १५।१६ यह सुनकर इन्द्र ने फिर नारदजी से पूछा कि जो धर्मात्मा राजालोग युद्ध में विना मुखमोड़े जीने की आशा छोड़कर लड़ाई में शस्त्र से मरकर इस अक्षय और सब कामनाओं के पूर्ण करनेवाले लोक में आये हैं मैं उन सबको यहां नहीं देखता हूं आप बताइये कि वे राजालोग कहां हैं १७।१८ यह सुनकर नारदजी बोले कि राजालोगों के न दीखने का कारण यह है कि राजा विदर्भ की दमयन्ती नाम पुत्री का स्वयंवर होनेवाला है वह कन्या परम सुन्दरी है और अपने स्वरूप के सदृश दूसरी स्त्री नहीं रखती है सब राजा और राजपुत्र वहीं को गये हैं और

जारहे हैं २०।२२ सब राजाओं के चित्त उस रत्नरूपी कन्यापर मोहित होरहे हैं इसी अवसर में इन्द्र के पास लोकपाल और अग्निदेव भी आगये थे वे सब नारदजी की बातको सुनकर प्रसन्नता से कहने लगे कि हमलोग भी वहां चलेंगे २३।२५ इसके पीछे वे सब देवता अपने अपने वाहनों पर चढ़कर उसी मार्ग से विदर्भदेश को चल दिये जिस मार्ग से और राजालोग जारहे थे २६ इसी अवसर में राजा नल भी जो दमयन्ती का अनुव्रत था राजाओं के समागम का हाल सुनकर उस देश को चल दिया राह में देवताओं ने उसके सुन्दर स्वरूप को जो कामदेव की सी छवि रखता था देखा २७।२८ उसे देखकर और उसके सूर्यके तुल्य तेजको जानकर सब देवता दमयन्तीकी ओरसे निराश होगये २९ और अपने विमानों को आकाश में खड़ा करके नल से कहने लगे कि हे राजा नल! तू सत्यव्रती है हमारा दूत बनकर तू हमारी सहायता कर ॥ ३०।३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पचपनवाँ अध्याय ।

इन्द्र, वरुण, अग्नि और यमराज का नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना और नल का दमयन्ती के पास जाकर देवताओं का संदेशा कहना ।

बृहदश्व बोले कि हे युधिष्ठिर ! राजा नल ने उन देवताओं से दूत बनने की प्रतिज्ञा की और पास जाकर हाथ जोड़कर पूछने लगा कि आप सब कौन हैं, कौन मुझको अपना दूत बनाना चाहता है और मुझसे आपका कौनसा काम है ? जैसा उचित हो कहिये १ । २ यह सुनकर इन्द्र बोला कि हम सब देवता हैं; मैं तो इन्द्र हूं, यह अग्नि है, वह वरुण है और वह यमराज है हम सब देवता दमयन्ती को बरने की इच्छा से आये हैं सो तुम दूत बनकर दमयन्ती के पास जाओ और हम चारों के आने का हाल उनसे सुनाकर यह कह दो कि हम चारों में से तू जिसे चाहे अपना पति बना ले ३ । ६ यह सुनकर नल हाथ जोड़कर इन्द्र से कहने लगा कि महाराज ! मेरे और आपके आने का प्रयोजन एकही है इससे मुझे न भेजिये क्योंकि जो मनुष्य जिस स्त्री को आप बरना चाहता है वह उस स्त्री से यह क्योंकर कहसकता है कि तू फलाने को बर इससे आप मुझपर क्षमा कीजिये ७।८ यह सुनकर देवता बोले कि तुम पहिले प्रतिज्ञा करचुके हो कि हम करेंगे फिर अब करने से क्यों इन्कार करते हो; जाओ हमारे दूत बनकर हमारा संदेशा दमयन्ती से कहआओ देर मत करो ९ यह सुनकर नल बोला कि बहुत अच्छा मैं जाऊंगा परंतु मैं राजमन्दिर के भीतर क्योंकर जाने पाऊंगा क्योंकि वह राजमन्दिर

अच्छीतरह से रक्षित है १० यह सुनकर इन्द्र बोला कि तू चलाजा तुझे भीतर जानेसे कोई नहीं रोकेगा यह सुनकर नल बहुत अच्छा कहकर चल दिया और दमयन्ती के घरके भीतर पहुँचा ११ वहां वह उस दमयन्तीको जो परम सुन्दरी, शोभायमान, अत्यन्त कोमलाङ्गी, सूक्ष्मकटि, सुन्दर नेत्र रखनेवाली और अपने तेज से चन्द्रमा की प्रभा को मलीन करनेवाली थी, सखियों के बीच में बैठी हुई देखकर उसका हृदय कामाग्निसे दीप्त होगया परंतु उसने अपना वचन सत्य करनेकी इच्छासे उसे प्रकट न होने दिया १२।१४ बाद दमयन्ती की सखियां नल के स्वरूप को देखकर अपने अपने आसनों पर से उठ खड़ी हुईं और चकित होगईं १५ और प्रसन्नतापूर्वक आश्चर्य से मनही मनमें उसकी प्रशंसा तो करती रहीं पर बोली एक के भी मुखसे न निकली १६ सब मन में यही कहती थीं कि इस महात्मा का रूप, कान्ति और धैर्य अद्भुत है यह तो कोई देवता, यक्ष अथवा गन्धर्व जान पड़ता है १७ परंतु नल के तेज से ऐसी कुछ सहमसी गई थीं कि उनके मुख से कोई भी बात न निकली १८ इसके पीछे दमयन्ती ने अचंभेमें आकर मन्द मन्द मुसकराकर उस मुसकराते हुए नल से पूछा १९ कि तुमको देखकर मेरा हृदय कामरूपी बाणों से विदीर्ण होगया है तुम सत्य कहो कि कौन हो, कहां से आये हो, क्या काम है और इस मेरे रक्षित महल के भीतर विना रोक टोक कैसे घुसने पाये हो? २०।२१ यह सुनकर वह बोला कि मैं यहां आया हुआ देवताओं का दूत हूं, नल मेरा नाम है २२ तुझको इन्द्र, अग्नि, वरुण और यमराज चाहते हैं इनमें से जिसको तू चाहे एक को अपना पति बनाले २३ यह उन्हीं देवताओं का प्रभाव है जो मैं बिनादीखे और बिना रोकटोक यहां चला आयाहूं २४ देवताओं ने मुझे इसी कार्य के लिये तेरे पास भेजा है अब तेरा जैसा विचार हो वैसा कर॥२५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ अध्याय।

दमयन्ती का देवताओं को पति बनाने से निषेध करना और नल को बरना और नल का देवताओं के पास आकर सब वृत्तान्त कहना।

बृहदश्व बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! दमयन्ती ने श्रद्धा से उन देवताओं को नमस्कार किया और हँसकर नल से बोली हे राजन्! तू मुझको अङ्गीकार कर तेरी मैं क्या सेवा करूं १ मैं अपने शरीर और सब धन को तेरे अर्पण करती हूं, तू विश्वासपूर्वक मुझसे विवाह कर ले २ जबसे मैंने हंसों से तेरा हाल सुना है तब

से ही मैं तेरे विरह में व्याकुल हूं और तेरे ही मिलने को मैंने ये सब राजा इकट्ठे किये हैं ३ जो तू मुझको अङ्गीकार न करके और कुछ कहेगा तो मैं तेरे कारण से विष खाकर या आगी में जलकर अथवा फांसी लगाकर मर जाऊंगी ४ यह सुनकर नल बोला कि हे दमयन्ती! तू लोकपालों को छोड़कर मनुष्य को पति क्यों किया चाहती है ५ मैं तो उन ईश्वर और लोकोंके रचनेवाले देवताओं के पैरों की रज के तुल्य नहीं हूं तुझको उन्हीं देवताओं में अपना मन लगाना चाहिए ६ क्योंकि जो मनुष्य देवताओं का अप्रिय करता है उसकी मृत्यु होती है इससे तू मेरी रक्षा कर और उन देवताओं को बर ७ और सुन्दर मलहीन वस्त्र, दिव्य चित्रविचित्र माला और अच्छे अच्छे गहने धारण कर देवताओं को पाकर भोगों को भोग ८ भला ऐसी कौन होगी जो अग्नि से देवता को अपना पति न करना चाहे जो इस पृथ्वी के सम्पूर्ण पदार्थों को भक्षण करते हैं ९ और जिस यमराज के दण्ड के भय से सब जीव धर्म ही करते हैं उसको कौन स्त्री न चाहेगी १० और वह कौन सी स्त्री संसार में होगी जो दैत्यों को मारनेवाले देवताओं के राजा इन्द्र की भार्या न होना चाहे ११ हे दमयन्ती! तू मेरे इस सुहृद वचन को मानकर लोकपालों को अङ्गीकार कर और अपने मन में किसी बात की शङ्का मत करे १२ दमयन्ती यह सुनकर शोक से व्याकुल होगई और नेत्रों से आंसुओं की धार छोड़ती हुई बोली १३ कि मैं सब देवताओं को नमस्कार करके केवल तुझही को अपना पति चाहती हूं तू मेरे इस वचन को सत्य जान १४ यह सुनकर नल उस कँपती हुई और हाथ जोड़े हुए दमयन्ती से कहने लगा कि हे कल्याणि! हे भद्रे! मैं इससमय दूतभाव में प्राप्त हूं मुझको वही कृत्य करना उचित है जिससे दूत का धर्म बना रहे १५ विशेषकर मैं देवताओं से प्रतिज्ञा करके आया हूं इस अवस्था में पराये काम के करने को यहां आकर मैं अपना स्वार्थ क्योंकर कर सकता हूं १६ इससे हे सुन्दरि! ऐसा काम कर जिससे यह धर्म बना रहे क्योंकि धर्म के रहने से मेरा भी स्वार्थ होगा १७ यह सुनकर दमयन्ती व्याकुलता से रोती हुई गद्गद होकर नल से कहने लगी १८ कि मेरी समझ में यह उपाय ठीक जान पड़ता है इसमें तुझको भी किसी प्रकार का दोष न लगेगा १९ कि तू भी देवताओं के साथ स्वयंवर में चला आ, मैं उन सब देवताओं के सम्मुख तेरे ही गले में जयमाल डाल दूंगी ऐसा करने से फिर तुझको दोष नहीं लगेगा २०। २१ यह सुनकर राजा नल दमयन्ती के पास से चला आया और वहां पहुँचा जहां वे सब देवता इकट्ठे

थे २२ उसको देखकर वे सब लोकपाल देवता पूछने लगे कि हे राजन्! कहो तुम्हें दमयन्ती मिली या नहीं और जो मिली तो उसने हम लोगों के विषय में क्या उत्तर दिया २३। २४ यह सुनकर राजानल बोला कि मैं आपकी आज्ञा के अनुसार दमयन्ती के भवन में जिसकी कक्षा अर्थात् भवन में घुसने का द्वार बड़ा भारी था और बहुत से वृद्ध मनुष्य हाथों में लकड़ियां लिये हुए पहरा दे रहे थे विना रोकटोक घुसा हुआ चला गया, आपके प्रभाव से मुझे सिवाय उस राजपुत्री के और किसीने नहीं देखा २५। २६ जब मैं दमयन्ती के पास पहुँचा तब मैंने उसकी सखियां देखीं और उन सबोंने मुझको भी देखा, मुझे देखकर वे सब आश्चर्य करने लगीं २७ मैंने दमयन्ती से आपका सँदेशा कह सुनाया वह उसको सुनकर कहने लगी कि मैं तो तुमको ही अपना पति बरती हूं मैंने कहा कि मैं देवताओं का दूत हूं तब वह बोली कि तुम सब देवताओं के साथ साथ स्वयंवर में आओ मैं तुमको सबके सम्मुख बरूँगी ऐसा करने से तुमको दोष नहीं लगेगा सो हे स्वर्गवासी देवताओ! इतना वृत्तान्त हुआ था जो इससे कुछ अधिक बात हुई होगी तो आपसे छिपी नहीं रहेगी ॥ २८। ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय।

दमयन्ती का स्वयंवर में देवताओं की प्रार्थना करना और राजा नल के साथ विवाह होना।

बृहदश्व बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! इसके पीछे जब स्वयंवर के होने का नियतकाल और शुभ मुहूर्त्त आया तब राजा भीम ने सब राजाओं को स्वयंवर सभा में बुलवाया। वे सब राजालोग काम से पीड़ित और दमयन्ती पर मोहित होनेके कारण से सुन्दर गन्धमाला और मणियों के कुण्डल धारण किये हुए उस रंगभूमि में जिसमें सोने के खम्भे लगे हुए थे तथा बन्दनवार बँधे थे आये और नाना प्रकारके आसनों पर बैठ गये १। ४ तब वह सभा उनसे ऐसी सुशोभित होगई मानो नागों की भोगवती पुरी है ५ उससमय उन राजाओं की भुजा पुष्ट, मनोहर और परिघके तुल्य और दृष्टि पांच शिर रखनेवाले सर्प के समान उस सभा में घूमती थी और उनके केश, नाक, आंख, भौंह और मुख ऐसे सुशोभित दीखते थे मानों आकाश में नक्षत्र निकल रहे हैं ६। ७ इसके पीछे सुवदनी दमयन्ती अपनी प्रभा से राजाओं के चित्त को हरती और उनको अपनेपर मोहित करती हुई सभा में आपहुँची ८ उसकी सुन्दरता को देखकर उन महात्मा राजाओं की टकटकी

उसपर लग गई ९ जब उन राजाओंके नाम का कीर्तन होना प्रारम्भ हुआ तब दमयन्ती ने एक स्थानपर पांच पुरुष ऐसे बैठे हुए देखे जिनका स्वरूप एकसा था १० दमयन्ती उन पांचोंमें यह न पहिंचान सकी कि इनमें राजा नल कौन सा है ११ जिसको देखती थी उसीको राजा नल जानती थी यह देखकर वह विचार करने लगी १२ कि मैं देवताओं से भिन्न राजा नल को क्योंकर पहिचानूं इस विचारमें वह महादुःखी होगई और विचारने लगी कि इन पांचों में मैं उन देवताओं के चिह्नों को जो मैंने वृद्धलोगों से सुने हैं किसी में नहीं देखती हूं जिससे यह जान सकूं कि ये देवता हैं और यह राजा नल है जब बहुत विचार करनेपर कोई उपाय न दीखा तब उसने देवताओंकी शरण ली और हाथ जोड़कर मनसा, वाचा, कर्मसे उनको नमस्कार करके कांपती हुई मन में देवताओंसे विनय करने लगी कि हे देवताओ ! जिस प्रकार मैंने अपने सच्चे मन से हंसों की बात सुनकर राजा नल को अपना पति बरा है और अबतक किसी दूसरे मनुष्यको पति करना नहीं चाहती हूं उसी प्रकार से तुम मुझको राजा नल को बतलाओ । हे देवताओ ! मैंने यह सत्यसंकल्प और व्रत राजा नल के ही पाने को किया है आपलोग भी अपनी ओरसे मुझे नल ही को पति दीजिये और अपने स्वरूप को यथावत् करके ऐसा कीजिये जिससे मैं उस पवित्र राजा नल को जान सकूं दमयन्ती के इस करुणाविलाप १३ । २२ को सुनकर और उसके सच्चे अनुराग और नल के मन की शुद्धता और भक्ति को देखकर देवताओं ने अपना स्वरूप यथावत् कर लिया जैसी कि दमयन्ती ने देवताओं से प्रार्थना की थी उससमय दमयन्ती देखती क्या है कि उन पांचों पुरुषोंमेंसे जो देवता हैं उनके मस्तकपर पसीना नहीं है, आंखें स्तब्ध अर्थात् पलक नहीं मारते हैं, सुन्दर माला पहिरे हुए हैं, शरीरपर रज का नाम नहीं है और सभा में बैठे हुए पृथ्वी को स्पर्श नहीं कर रहे हैं और जो राजा नल है वह अपने शरीर की छाया रखता है, माला उसकी मैली है, पसीना मस्तकपर आ रहा है, जहां तहां रज पड़ी हुई है, और पृथ्वीपर बैठा हुआ है। ये चिह्न देखकर दमयन्ती एकक्षण भरमें राजा नलको देवताओंसे भिन्न जान गई और उसने उसको अपना पति संकल्प करके लज्जासहित उसका वस्त्र पकड़ लिया और उसके गले में सुन्दर माला पहिरा दी २३ । २८ यह देखकर राजा लोग हाहाकार और देवताओं समेत महर्षिलोग भला भला कहने लगे २९ उस समय नल अपने मन से प्रसन्न होकर दमयन्ती से कहने लगा कि हे कल्याणि !

तैंने मुझ मनुष्य को देवताओं के विराजमान रहनेपर अपना पति किया है इससे मैं भी सदैव तेरे कहे के अनुसार चलूंगा और जबतक मेरे शरीरमें प्राण रहेंगे तबतक तुझसे प्रीति रक्खूंगा यह सुनकर दमयन्ती ने भी हाथ जोड़कर मीठी मीठी बातोंसे नल को प्रसन्न किया ३०।३३ इसके उपरान्त वे दोनों उन अग्नि आदि लोकपाल देवताओं के शरण गये और उन देवताओं ने प्रसन्न होकर नल को आठ वरदान दिये ३४। ३५ उनमें से इन्द्रने दो वरदान दिये, एक यज्ञ में देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन और दूसरा उत्तम और शुभगति का मिलना ३६ और अग्निदेव ने भी दोही वर दिये, पहिला यह कि जहां तू मुझको स्मरण करेगा वहीं मैं प्रकट होजाऊंगा और दूसरा यह कि मरनेपर तुझको मेरे समान प्रभाव रखनेवाले लोक मिलेंगे ३७ और यमराज ने यह दो वर उसको दिये, प्रथम अन्नरस अर्थात् जो अन्न तू बनावेगा वही परम स्वादिष्ठ बनेगा और द्वितीय धर्म में परम स्थिति अर्थात् तेरी बुद्धि सदा धर्म में रहेगी और वरुण देवता ने भी दो ही वर दिये, एक तो माला दी कि जो सदा नई बनी रहे और दूसरा यह वर दिया कि तू जहां जल चाहेगा वहीं जल प्रकट होजायेगा ३८ इस प्रकारसे वे चारों लोकपाल नलको दो दो वरदान देकर अपने अपने लोकों को चले गये और जो जो राजालोग उस स्वयंवरमें आये थे वे सब प्रसन्नतापूर्वक अचम्भासा करते हुए अपनी अपनी राजधानियों को चले गये ३९। ४० उनके चले जानेपर राजा भीम ने विधिपूर्वक नलके साथ दमयन्ती का विवाह कर दिया ४१ और नल वहां इच्छापूर्वक कुछ दिन रहकर भीमसे आज्ञा लेकर अपने नगरको चला आया ४२ और उस स्त्रीरत्न दमयन्ती के साथ इस प्रकारसे आनन्दपूर्वक रमण करने लगा जैसे इन्द्र इन्द्राणी के साथ करता है ४३ और अपने सूर्यतुल्य प्रभाव से धर्म के अनुसार राज्यशासन करने लगा उसकी नीति से सब प्रजा प्रसन्न थी ४४ कुछ काल में उसने अश्वमेध आदि बहुत से बड़े बड़े यज्ञ जिनमें बहुत दक्षिणा खर्च होती है किये इसके पीछे नल ने दमयन्ती के साथ अनेक रमणीक वन और उपवनों में विहार किया और उसके इन्द्रसेन नाम एक पुत्र और इन्द्रसेना नाम एक कन्या उत्पन्न हुई ४५। ४६ हे युधिष्ठिर! उस नल ने इस प्रकार से उत्तम उत्तम विहार और यज्ञ किये और अपने राज्य की पृथ्वी की रक्षा की ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवाँ अध्याय ।

लोकपाल देवताओं का राह में कलियुग से मिलाप होना और दमयन्ती का हाल सुनकर कलियुग का क्रोध करना ।

बृहदश्व बोले कि हे राजा युधिष्ठिर ! जिस समय महाबलशाली लोकपाल देवता दमयन्तीके स्वयंवर होनेपर अपने अपने लोकोंको जा रहेथे उससमय इन्होंने दूसरी ओर से कलियुग समेत द्वापरयुग को आते हुए देखा १ उसको देखकर सर्वकर्मसमर्थ, बलवृत्रघाती इन्द्र पूछने लगा कि हे कलियुग ! तू अपने सारथी द्वापर को लिये हुए कहां जा रहा है २ कलियुग बोला कि मेरा मन दमयन्ती पर मोहित होरहा है मैं उसे बरने के लिये उसके स्वयंवर में जाता हूं ३ यह सुनकर इन्द्रने हँसकर कहा कि वह स्वयंवर तो समाप्त होगया और दमयन्तीने हमारे समीप राजा नलको अपना पति बर लिया ४ यह सुनकर कलियुग क्रोधित होगया और देवताओंको सुनाकर कहने लगा ५ कि जो उस दमयन्तीने ऐसा किया है कि देवताओं के सम्मुख मनुष्य को अपना पति बनाया है तो उसको अब न्याय के अनुसार दण्ड देना उचित है ६ यह सुनकर देवता बोले कि दमयन्ती ने हमारी आज्ञा के अनुसार नलको बरा है ७ऐसी कौनसी स्त्री होगी जो नल को अपना पति न बनाना चाहे क्योंकि राजा नल सब गुणोंसे युक्त, व्रती, वेद के धर्मोंको जाननेवाला और चारों वेदों का पढ़नेवाला है उसके घर में धर्म और यज्ञ होने के कारणसे वेद तृप्त रहते हैं ८ । ९ और वह आप भी अहिंसक, सत्यवादी और दृढ़व्रती है और धृति, ज्ञान, तप, शौच, दम अर्थात् इन्द्रियों का रोकना और शम अर्थात् मन का रोकना आदि गुण उसमें मौजूद हैं कि जिनमें विघ्न करने से भी बाधा नहीं लगसकती है १० ऐसे धर्मात्मा राजा को जो कोई शाप देने की इच्छा करेगा वह मूढ़ अपने आपको शाप देगा और अपने हाथ से अपने आपको मारेगा ११ और अपनी मूर्खता से बड़े घोर नरक में पड़ेगा यह कहकर वे देवता स्वर्ग को चले गये १२ और कलियुग द्वापर से कहने लगा कि मैं अपना क्रोध दूर नहीं किया चाहता हूं मैं अब जाकर नल के शरीर में प्रवेश कर उसको राज्य से ऐसा भ्रष्ट करूंगा कि वह दमयन्ती के साथ आनन्द न कर सकेगा तू भी पाशों में प्रवेश होकर सहायता करियो ॥ १३ । १४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ अध्याय।

राजा नल का पुष्कर से जुआ खेलना और बहुतसा धन हार जाना।

बृहदश्व बोले कि हे युधिष्ठिर! कलियुग द्वापर से उक्त प्रकार से कहकर राजा नल के यहां गया १ और नल के शरीर में प्रवेश करने का अन्तर अर्थात् मौका देखने लगा जब बारह वर्ष बीत गये तब एक दिन राजा नल ने लघुशङ्का करके आचमन तो कर लिया परंतु पाँव विना धोये संध्या करने को बैठ गया उस समय कलियुग ने यह अन्तर पाकर राजा के शरीर में प्रवेश किया २। ३ और अपना दूसरा रूप बनाकर पुष्कर के पास जाकर कहने लगा कि चल राजा नल से जुआ खेल ४ मेरे साथ होने से तू जुए में जीतेगा राज्य और नल को जीतकर तू निषधदेश का राज्य करेगा ५ यह सुनकर पुष्कर राजा नल के पास गया और कलियुग भी पाशे बनकर पुष्कर के साथ हो लिया ६ जब नल के समीप पहुँचा तब उससे कहने लगा कि आओ इन पाशों से जुआ खेलें ७ यह सुनकर महामनस्वी राजा नल उसके बुलाने को न सहसका और कलियुग से आविष्ट होने के कारण से उससे जुआ खेलने लगा और बहुतसा सुवर्ण, रथ आदि वाहन और वस्त्र हार गया ८। ९ उसका कोई सुहृद उसको जुआ खेलने से बन्द न कर सका जब यह खबर पुरजनों को पहुँची तब वे लोग मन्त्रियों को साथ लेकर राजा को देखने और जुआ खेलने से बन्द करने को आये १०। ११ उनको आया हुआ देखकर सूत ने दमयन्ती से आकर कहा कि हे देवि! पुरवासी और मन्त्री लोग मिलने के लिये द्वार पर आये हैं इनकी खबर तुम राजा नल से कर दो ये लोग राजा के इस जुए के व्यसन को बन्द करने और धर्म, अर्थ के दिखलाने की इच्छा से आये हैं १२। १३ यह सुनकर दमयन्ती महाशोकाकुल होकर राजा नल के पास गई और आंखों में आंसू भरकर कहने लगी १४ कि महाराज! सब पुरवासी मन्त्रियों सहित आपकी प्रीति के कारण से आपके दर्शनों के लिये आये हैं और द्वार पर खड़े हैं १५ आप उनसे मिलिये दमयन्ती ने इस प्रकार से रो रोकर कई बार कहा परंतु कलियुग से आविष्टचित्त होने के कारण से नल ने उसे कुछ उत्तर नहीं दिया तब वे सब पुरवासी और मंत्री दुःखी और लज्जित होकर यह कहते हुए अपने अपने घर चले गये कि अब यह राजा नष्ट होगा १६। १७ हे युधिष्ठिर! इस प्रकार से नल और पुष्कर का जुआ कई महीनों तक हुआ और नल हारता चला गया॥ १८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि ऊनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

साठवाँ अध्याय ।

राजा नल को जुए में सब धन हारने देखकर दमयन्ती का वार्ष्णेय सूत के साथ अपने पुत्र और पुत्री को कुण्डिनपुर भिजवाना ।

बृहदश्व बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! जब उस सावधान भीमनन्दिनी दमयन्ती ने उस यशस्वी राजा नल को मूढ़चित्त होकर उन्मत्त के समान जुआ खेलते और सब धन हारते हुए देखा तब उसने भय और शोक से दुःखी होकर उस जुआ खेलने के पाप को शङ्का करके राजा का हित करने के लिये बृहत्सेना नाम धाय को जो बड़ी हितकारिणी, चतुर और मीठा बोलनेवाली थी बुलाया और कहा कि तू जाकर मन्त्रियों को यह कहकर बुला ला कि तुमको राजा ने हारे हुए और न हारे हुए धन को जानने के लिये बुलाया है १।५ यह सुनकर वह मन्त्रियों के पास गई और उनको बुला लाई उस समय दमयन्ती ने फिर राजा नल से जाकर कहा कि महाराज! पुरवासी अब दूसरी बेर फिर आये हैं आप उनको बुला लीजिये परंतु राजा ने कुछ न सुना यह देखकर दमयन्ती लज्जित होकर फिर अपने भवन में चली आई ६।८ और नल के पाशों को विपरीत गिरते और सब धन हारते देखकर बृहत्सेना धाय को फिर बुलाकर कहा कि हे धात्रि! अब तू जाकर वार्ष्णेयनामी सारथी को बुलाला उससे बड़ा भारी काम है यह सुनकर उस धाय ने नौकरों के द्वारा नल की आज्ञा कहकर वार्ष्णेय को बुलवा दिया उससे उस अनिन्दित और देशकाल की जाननेवाली दमयन्ती ने मीठी बोली में समय के अनुसार कहा ९।१२ कि हे वार्ष्णेय! तू जानता है कि तुझ पर राजा कितना प्यार करता है अब इस उलटे समय में तुझको राजा की सहायता करना चाहिये इस समय राजा का यह हाल है कि ज्यों ज्यों हारता जाता है त्यों त्यों उसकी प्रीति जुए में बढ़ती जाती है राजा के पाशे सदैव उलटे पड़ते हैं और पुष्कर मुँह माँगा दावँ पाता जाता है १३।१५ और राजा इस जुए में ऐसा मोहित होगया है कि न मेरी बात सुनता है न किसी दूसरे सुहृद की परंतु मैं जानती हूं कि यह दोष महात्मा नल का नहीं है इसमें और ही कारण है सो हे सारथी! इस अवस्था में मेरे मन का भाव शुद्ध नहीं है कदाचित् ऐसा न हो कि नल नाश को प्राप्त हो जाय इससे मैं तेरी शरण लेती हूं तू मेरी आज्ञा को मान और जो कहूं सो कर १६।१८ तू अभी जाकर रथ में नल के प्यारे और मन के वेग के समान चलनेवाले घोड़ों को जोतकर यहां ले आ और इन दोनों लड़कों को अर्थात् एकपुत्र और

एक पुत्री को रथ में बैठाकर कुण्डिनपुर को चला जा और वहां इनको रथ घोड़ों समेत मेरे पिता को सौंपकर जहां तेरी इच्छा हो चला जाइयो अथवा वहीं रहियो १९।२० वार्ष्णेय ने यह सुनकर सब वृत्तान्त राजा नल के मुख्य मन्त्रियों से कहा उन्होंने भी आज्ञा जाने की दी तब वह सारथी उस रथ में उन लड़कों को बैठाकर विदर्भदेश की ओर चल दिया २१। २२ और वहां पहुंचकर दोनों लड़कों और रथ घोड़ों को राजा भीम के पास छोड़कर भीम की आज्ञा पाकर राजा नल की ओर से महादुःखी हो जीविका ढूंढ़ता हुआ अयोध्या में पहुँचा और वहां राजा ऋतुपर्ण के यहां सारथियों में नौकर होगया ॥ २३। २५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इकसठवाँ अध्याय।

राजा नल और दमयन्ती का वनगमन, पुरवासियों से निरादर और पक्षियों द्वारा वस्त्रहरण।

बृहदश्व बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! वार्ष्णेय के चले जाने पर राजा नल पुष्कर से सब राज्य और धन हार गया उस समय पुष्कर हँसता हुआ कहने लगा कि अब और जो कुछ धन तुम्हारे पास विना हारा हो उसे लगाकर जुआ खेलो और तो मैं सब जीत चुका हूं केवल एक यह दमयन्ती आपकी रानी बची है जो आपको अच्छा लगे तो इसे भी लगाकर एक दाँव खेल डालिये १।३ यह सुनकर नल का हृदय क्रोध के मारे फटसा गया परंतु वह कुछ बोला नहीं ४ और सब वस्त्र और गहने उतार एक वस्त्र पहिन, सब राज्य और लक्ष्मी को छोड़कर वहां से चल दिया ५। ६ उसके पीछे पीछे दमयन्ती भी एक वस्त्र पहिनकर चलदी और उन दोनों ने नगर के बाहर आकर तीन दिन और रात्रि वास किया ७ हे युधिष्ठिर! उसके चले जाने पर पुष्कर ने नगर में यह प्रसिद्ध कराया कि जो कोई मनुष्य नल के पास जायगा या उसका आदर करेगा वह मेरे हाथ से मारा जायगा इस भय से यद्यपि नल सबसे आदर किये जाने के योग्य था परंतु किसी ने उससे बात तक नहीं की और उसने तीन दिन तक केवल जल पीकर निर्वाह किया ८।१० तीन दिन पीछे राजा नल भूख से व्याकुल होकर फल और मूल बीनता हुआ चल दिया और दमयन्ती भी उसके पीछे पीछे होली ११ आगे जाकर राजा नल ने कुछ सुनहले पर रखनेवाले पक्षी देखे भूख के मारे उसने यह विचार किया कि आज इन्हीं को मारकर खाऊंगा इस विचार से उसने अपना डुपट्टा डालकर उन पक्षियों को ढँक दिया और वे पक्षी उस वस्त्र को लिये हुए आकाशमार्गी हुए १२। १४

उन पक्षियों ने नलको दीन होकर नीचे को मुख किये हुए बैठा देखकर आकाश में से कहा १५ कि अरे दुर्बुद्धि ! हम पाशे हैं तेरे वस्त्र को हरनेके लिये आये थे क्योंकि हमारी प्रसन्नता तेरे वस्त्र सहित जाने में न थी १६ यह सुनकर और अपने को नंगा देखकर राजा नल ने दमयन्ती से कहा १७ कि हे अनिन्दिते ! देख जिनके कोप से मैं सब राज्य और धन हारकर भूख के मारे ऐसा दुःखी हूं कि केवल प्राणही निकलने बाकी रह गये हैं और जिनके कारण से पुरवासियों ने मेरा आदर नहीं किया उन्हींने अब पक्षी बनकर मेरे वस्त्र को हर लिया १८।१९ अब मैं महाविपत्ति में पड़ गया हूं तू यह हितकारी बात सुन २० देख वे जो बहुत से मार्ग दिखाई देते हैं ये अवन्ति और ऋक्षवन्त पहाड़ों पर होते हुए दक्षिण की ओर चले गये हैं और यह जो बड़ा पहाड़ दिखाई देता है इसका नाम विन्ध्य है और इसके समीप पयोष्णी नदी है जो समुद्र में मिलती है यहां पर बहुतसे महाऋषियों के आश्रम हैं और फल, फूल और मूल भी बहुत मिलते हैं यहां से दो राहें जाती हैं यह तो विदर्भ देश को गई है और यह कोसल को जाती है इसके आगे दक्षिण को चलकर दक्षिणापथ देश है २१।२३ हे युधिष्ठिर ! राजा नल ने जब ये उक्त बातें दमयन्ती से वारंवार कहीं तब दमयन्ती दुःखी होकर दीनता से बोली २४।२५ कि महाराज ! आपके इस वारंवार कहने को शोच शोचकर मेरा हृदय विदीर्ण होकर मेरे सब अङ्ग अचल से हुए जाते हैं २६ मैं आपको भूखा, नंगा, राज्यहीन और थका हुआ इस निर्जन वन में छोड़कर कैसे चली जाऊं २७ मैं आपके साथ रहकर इस महावन में आपके श्रम और शोच को दूर करूंगी २८ वैद्यों का भी मत यही है कि सब दुःखों में स्त्री के समान कोई औषध नहीं है इसको आप सत्य जानिये २९ यह सुनकर राजा नल बोला कि तू सत्य कहती है दुःखी मनुष्य की औषध और मित्र स्त्री के समान कोई नहीं है ३० मेरी इच्छा तुझे छोड़ने की कदापि नहीं है विशेष क्या कहूं ? मैं चाहे अपने शरीर को त्याग दूं परंतु तुझको कदापि न त्यागूंगा ३१ यह सुनकर दमयन्ती बोली अच्छा जो आप मुझे त्यागना नहीं चाहते हैं तो विदर्भदेश की राह मुझे क्यों वारंवार दिखाते हैं ३२ हे महाराज ! मैं आपकी शरण हूं कलियुग से आविष्ट चित्त के कारण से आप मुझे न त्यागिये ३३ आपका निरन्तर राह बताना मेरे शोक को बढ़ाता जाता है ३४ जो आपकी यह इच्छा हो कि मैं अपने स्वजातियों के पास चली जाऊं तो हम तुम दोनों

ही चलें मेरा पिता राजा विदर्भ आपकी पूजा करेगा और हम तुम दोनों सुखपूर्वक वास करेंगे ॥ ३५ । ३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

बासठवाँ अध्याय ।

राजा नल और दमयन्ती का रात्रि में सो जाना और राजा नल का सोती हुई दमयन्ती का आधा वस्त्र लेकर चल देना ।

दमयन्ती की उक्त बात को सुनकर राजा नल बोला कि इसमें कुछ संदेह नहीं है तेरे पिता का राज्य भी मेरा ही है परंतु मैं वहां इस अवस्था में नहीं जा सकता हूं १ क्योंकि जिस स्थानपर मैं बड़े ऐश्वर्य के साथ गयाथा और तुझको प्रसन्न किया था वहां अब मैं इस दरिद्ररूप से क्योंकर जाऊं और तेरे शोच को बढ़ाऊं २ बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर ! राजा नल ने इस प्रकार से वारंवार कहकर दमयन्ती के चित्त को शान्त किया और दोनों प्राणी एक वस्त्र ओढ़े हुए जहां तहां भूंखे प्यासे फिरते हुए एक धर्मशाला में पहुँचे ३ । ४ राजा नल दमयन्ती सहित उस शाला में बैठ गया और विना किसी बिछौने के पृथ्वी पर धूलि से भरा हुआ सो गया और दमयन्ती भी दुःख से थकने के कारण से अकस्मात् निद्रा के वश हो गई ५ । ७ जब दमयन्ती सोगई तब राजा नल शोक के कारण से जाग पड़ा और राज्य के जाने और सुहृदों के आदर न करने और वन में वस्त्र के हरे जाने आदि क्लेशों को यादकर करके चिन्ता करने लगा ८ । ९ कि अब मुझको क्या करना उचित है, क्या करूं, क्या न करूं, मेरा मरना भला है या इस अपनी स्त्री को त्याग दूं तो अच्छा है १० यह मेरी स्त्री मेरी प्रीति के कारण से इतना दुःख उठा रही है जो मैं इसे छोड़कर चला जाऊं तो यह अपने किसी स्वजन के यहां चली जायगी ११ मेरे साथ रहने में इसको अवश्य दुःख होगा और जो मैं इसे त्याग दूं तो क्या आश्चर्य है कि कहीं इसको सुख मिले १२ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार से वारंवार विचार कर राजा नल ने यह निश्चय किया कि दमयन्ती को त्यागना ही अच्छा है १३ क्योंकि यह पतिव्रता और मेरी भक्ता है इसको मार्ग में कोई संकट भी न दे सकेगा १४ ऐसा विचारकर कलियुग के प्रभाव से राजा का शोच दमयन्ती की ओर से जाता रहा और अब उसके त्याग करने का उपाय शोचने लगा और अपने को वस्त्रहीन और दमयन्ती के

पास भी एक ही वस्त्र देखकर दमयन्तीके वस्त्रमें से आधा वस्त्र काटनेका विचार किया १५। १६ और यह शोचने लगा कि उसके वस्त्र को क्योंकर काटूं कहीं वह जाग न पड़े इस विचार से नल उस धर्मशाला में इधर उधर घूमने लगा थोड़ी देर में उसने उस धर्मशाला में एक स्थान पर नङ्गी तलवार धरी हुई देखी राजा ने उसको ले लिया और उससे दमयन्ती के आधे वस्त्र को काटकर आप पहिन लिया और उसे अचेत सोती हुई छोड़कर वहां से चल दिया १७। १६ थोड़ी दूर जाकर फिर धर्मशाला में लौटकर चला आया और दमयन्ती को देखकर रोने लगा २० और कहने लगा कि हाय इस मेरी स्त्री को पहिले सूर्य और वायु ने भी कभी नहीं देखा था अब यह अनाथ की भांति पृथ्वी पर पड़ी हुई सोरही है २१ हाय जब यह जगेगी और अपना आधा कटा हुआ वस्त्र देखेगी तब इसकी क्या गति होगी २२ और मेरे विना इस घोर वन में कि जिसमें मृग और व्याघ्र रहते हैं कैसे बिचरेगी २३ हे महाभागे ! तू धर्म में स्थित है बारहों सूर्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार और मरुद्गण तेरी रक्षा करें २४ राजा नल इस प्रकार से उस सोती हुई अपनी प्यारी स्त्री से कहकर कलियुग से ज्ञान नष्ट किये जाने के कारण से चल दिया २५ थोड़ी दूर जाकर फिर लौट आया और फिर चल दिया इसप्रकार से उसका चित्त दो प्रकार का हो गया प्रीति तो उसे खींचकर लौटा लाती थी और कलियुग उसे फिर ले जाता था वह इन दोनों की आकर्षणशक्ति से कई बार लौट लौट आया और फिर चला चलागया अन्तमें कलियुग का आकर्षण प्रबल हो गया और वह रोता हुआ नष्टबुद्धि होकर अनेक प्रकार के विचार करता हुआ उस वन में अपनी स्त्री को सोती हुई अकेली छोड़कर दूर निकल गया ॥ २६ । २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

तिरसठवाँ अध्याय।

दमयन्ती का जगने पर महाविलाप करना, वन में नल को ढूंढना, अजगर का उसको निगल जाना, व्याध का वहां आकर उसे बचाना और उसपर कामासक्त होना और दमयन्ती का उसे शाप देना।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर ! जब राजा नल चला गया तब दमयन्ती उस निर्जन वन में भयभीत होकर जाग पड़ी १ और नल को वहां न पाकर

शोक, दुःख और भय से क्लेशित होकर बड़े ऊंचे स्वर से पुकारकर कहने लगी २ हे नाथ ! हे महाराज ! हे स्वामिन् ! मुझको क्यों छोड़ गये ? हाय मैं तो मर गई, नष्ट होगई और इस विजन वन में भयभीत हो रही हूं ३ संसार में तुम तो धर्मात्मा और सत्यवादी विख्यात हो मुझसे सत्यप्रतिज्ञा करके मुझे सोती हुई इस निर्जन वन में छोड़कर क्यों चले गये ४ आपका अपकार शत्रु की ओर से हुआ था, मैंने तो आपका कोई अपकार नहीं किया फिर मुझ चतुर अनुव्रता स्त्री को छोड़कर कैसे चले गये ५ हे महाराज ! आपको अपने वे वचन सत्य करने योग्य थे जो आपने मुझसे लोकपाल देवताओं के समीप पहिले कहे थे ६ हाय आपके न होने पर मैं यहां जीती हुई बैठी हूं, क्या करूं, विना समय आये प्राण नहीं निकलते ७ हे महाराज ! जो आपने मेरे साथ हँसी की हो तो बस कीजिये इतना ही परिहास बहुत है अब मुझे अपने दर्शन दीजिये मैं भयभीत होरही हूं ८ मैं आपको देख रही हूं, वहां आप छिपे हुए हैं, वहां आप खड़े हुए हैं, आप अपने शरीर को झाड़ियों या पत्तों में छिपाकर मुझसे क्यों नहीं बोलते हैं ९ बड़े दुःख और निर्दयीपन की बात है जो आप मुझे इस अवस्था में विलाप करती हुई देखकर मेरे पास आकर मुझे धैर्य नहीं देते १० हाय मुझे अपना और दूसरी किसी और बात का शोच नहीं है केवल यह शोच है कि तुम मेरे विना अकेले कैसे रहोगे ११ जब दिन भर के भूंखे, प्यासे और थके हुए किसी वृक्ष की जड़ पर संध्या समय मुझे विना देखे पड़ रहोगे तब तुम्हारी क्या गति होगी १२ इसप्रकार वह दमयन्ती विलाप करके शोक में अत्यन्त पीड़ित होकर इधर उधर दौड़ने लगी १३ कभी विह्वल होकर गिर पड़ती, कभी डरकर खड़ी हो जाती, कभी छिप जाती, कभी चिल्लाती और कभी डीक मारकर रोती थी १४ इसके पीछे उस पतिव्रता ने दुःखी होकर और रोकर शाप दिया कि जिसके शाप से मेरा पति नल दुःख उठा रहा है उसको हमारे दुःख से भी अधिक दुःख होवे १५। १६ और जिस पापी ने निष्कपट नल को इस अवस्था को पहुँचाया है वह नल से भी अधिक दुःख पावे और उसको जीविका भी दुःख से मिले १७ इसके पीछे दमयन्ती मतवाले के समान फिर विलाप करती हुई उस वन में अपने पति को ढूंढ़ने लगी और हा राजन् ! हा राजन् ! पुकार पुकारकर इधर उधर दौड़ने लगी १८। १९ दैवयोग से वह कुररी के समान रोती, पुकारती, विलाप करती और

शोचती हुई अकस्मात् एक बड़े अजगर के समीप जा निकली और उस अजगर ने उसे पकड़ लिया जो कि बड़े डील डौलवाला होकर भूंखा बैठा था २०।२१ परंतु दमयन्ती ने सर्प के निगलने और महादुःख होने पर भी अपनी ओर की इतनी चिन्ता नहीं की जितनी चिन्ता उसने नल की की २२ वह रोकर कहने लगी हे नाथ ! कहां गये यहां इस निर्जन वन में आकर मुझ अनाथ और सर्प से ग्रसी हुई की रक्षा क्यों नहीं करते हो २३ हे महाराज ! जब तुम मन, बुद्धि और धन फिर प्राप्त करोगे तब मुझे याद करके कैसे जीवोगे, आप मुझको वन में छोड़कर चल दिये, मेरे विना आपकी थकावट, भूंख, प्यास और दुःख कौन दूर करेगा २४।२५ जिस समय दमयन्ती उक्त प्रकार से रो रोकर चिल्ला रही थी उसी समय कोई व्याध उस गहन वन में घूमता हुआ वहां आ निकला और दमयन्ती के रोने के शब्द को सुनकर शीघ्रता से उसके समीप चला आया २६ उसे सर्प से ग्रसी हुई देखकर उसने पैनी धार का शस्त्र वेग से निकाल लिया और उस सर्प के मुँह को चीरकर दमयन्ती को निकाला और उसे पानी से धोकर कुछ फलादि खिलाकर और धैर्य देकर पूछने लगा २७।२८ कि हे मृगशावकनयनि ! तुम कौन हो, कहां की हो, क्यों वन में आई हो और यह कष्ट क्यों पाया है ३० यह सुनकर दमयन्ती ने सब वृत्तान्त आदि से कह सुनाया ३१ वह व्याध उस आधा वस्त्र पहिने हुए दमयन्ती को देखकर जिसके पयोधर और श्रोणि पुष्ट, अङ्ग कोमल और निर्दोष मुख चन्द्रमा के समान, भौंहें कुटिल, आँखें शोभायमान और वाणी मधुर थी कामासक्त हो गया ३२।३३ और काम के वश में होकर बड़ी मृदुता के साथ चिकनी चिकनी बातें बना बनाकर उसके चित्त को शान्त करने लगा ३४ दमयन्ती उसके भाव को तुरन्त जान गई और पातिव्रत धर्म से महाक्रोधित होकर अग्नि के समान प्रज्वलित हो गई ३५ उस समय उस पापी नीच और आतुर व्याध ने विचारा कि मैं इसके साथ बरजोरी करूं और दमयन्ती ने उसे बहुत प्रकार से समझाया परंतु जब वह नहीं माना तब क्रोधित होकर दमयन्ती ने उसे यह शाप दिया ३६।३७ कि जो मैंने नल के सिवाय दूसरे पुरुष को मन से भी स्मरण न किया हो तो यह नीच व्याध निर्जीव होकर पतित हो जावे ३८ यह शाप देते ही वह व्याध इस प्रकार से प्राणरहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा जैसे कि अग्नि से जला हुआ वृक्ष गिर पड़ता है ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चौंसठवाँ अध्याय।

दमयन्ती का महाविलाप करते हुए तपस्वियों के आश्रम में पहुँचना, तपस्वियों का धैर्य देकर अन्तर्धान होजाना और पथिक समूह का मिलना।

बृहदश्व बोले हे युधिष्ठिर ! उस व्याध को मारकर वह कमललोचना दमयन्ती उस वन में अकेली धैर्य धारणकर नल को ढूंढ़ती हुई बिचरने लगी, वह वन बड़ा भीषण और सूनसान था और झिल्लीनाम के कीड़ों की सनसनाहट और अनेक प्रकार की चिड़ियों की चहचहाहट से शब्दायमान हो रहा था सिंह, हाथी, हिरन, व्याघ्र, भैंसा, रीछ और अनेक प्रकार के पखेरू उस वन में इच्छा के अनुसार विचर रहे थे और वहां म्लेच्छ और चोर रहा करते थे और शाल, वेणु, धव, पीपल, तेंदू, इंगुद, किंशुक, अर्जुन, अरिष्ट, स्यन्दन, शाल्मल, जामुन, आम्र, लोध, खैर, सालवेत्र, पद्मक, आँवला, प्लक्ष, कदम्ब, उदुम्बर, बेर, बेल, सेंहुड़, बरगद, प्रियाल, ताड़, खजूर, हड़ और बहेड़ा आदि अनेकप्रकार के वृक्ष चारों ओर से उगे हुए थे दमयन्तीने उस वन में नानाप्रकारवाले अनेक पर्वत, भयावनी गुफा, नदी, सरोवर, बावली, पल्वल, तड़ाग, पहाड़ों की चोटियाँ और झरने देखे परंतु नल का कहीं पता न लगा और बहुत से स्थानों पर अनेक प्रकार के पक्षी, मृग, भयानकरूप पिशाच, उरग, राक्षस, भैंसे, वाराह, रीछ और सांपों के झुण्ड के झुण्ड देखे परंतु वह अपने पति के वियोग में ऐसी दुखिया थी कि सब कठिन स्थान और मार्गों में चली गई किसी का उसको भय नहीं लगा १।११ हे राजन् ! महादुखिया तथा स्वामी के शोक से शोकित होकर विदर्भनन्दिनी दमयन्ती जब ढूंढ़ते ढूंढ़ते हार गई और कहीं कुछ पता नहीं लगा तब एक शिलातल पर बैठकर विलाप करने लगी १२ हे निषधदेश के स्वामी ! मुझे इस निर्जनवन में छोड़कर कहां चले गये १३ हाय तुमने अश्वमेध आदि बड़ी बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करके मेरे साथ झूंठा बर्त्ताव कैसे किया १४ तुम तो नरोत्तम, तेजस्वी और राजाओं में श्रेष्ठ हो तुमको वह बात स्मरण करनी चाहिये जो तुमने मुझसे पहिले कही थी १५ और हंसों ने जो कुछ आपसे और मुझसे कहा था उसे भी आपको विचारना उचित है १६ हे महाराज ! एक सत्य बोलना चारों वेद और वेदों के अङ्गों तथा उपाङ्गों के पढ़ने की बराबर है इस कारण से आपको यह बात सत्य करनी चाहिये जो आपने पहिले मुझसे कही थी १७।१८ हाय वीर ! हाय नल ! इस घोर बन में मुझसे [illegible] क्यों नहीं बोलते

हो मैं तुम्हारे वियोग में नष्ट हुई १९ देखो महाराज ! यह भूखा शार्दूल अपने भयानक मुख को खोले हुए मुझे खाना चाहता है जल्दी से यहां आकर मेरी रक्षा कीजिये २० आप मुझसे सदैव यह कहा करते थे कि तेरे सिवाय मेरी कोई स्त्री प्यारी नहीं है अब अपनी उस बात को सत्य कीजिये २१ तुम मेरे मन के प्यारे हो क्यों मुझसी स्त्री को उत्तर नहीं देते हो २२ हे श्रेष्ठ नल ! हे अरिकर्षण ! हे पृथुलोचन ! मुझ दीन, दुःखी, दुर्बली, विवर्ण, मलिन, आधा वस्त्र पहिने हुए, अकेली, अनाथ, विलाप करती, रोती और विना कोई साथी रखनेवाली को क्यों नहीं मानते हो २३ । २४ और मुझसी सती के वारंवार बुलाने पर इस महावन में क्यों नहीं बोलते हो २५ हे नरोत्तम ! हे कुलशील ! मुझे तुम इस पर्वत में दिखाई नहीं देते हो २६ हाय मैं इस घोर वन में जिसमें सिंह और व्याघ्र रहते हैं किससे पूछूं कि आप कहां सो रहे हैं या बैठे हैं या खड़े हैं २७ हाय मैं दुखिया कहां जाऊं, क्या करूं, किससे तुम्हारा पता पूछूं २८ कि तुमने नल को इस वन में जाते हुए कहीं देखा है हाय कोई ऐसा नहीं है जिससे पूछूं २९ हाय कोई मुझको ऐसी मधुरवाणी आनकर सुनावेगा कि अरी दमयन्ती ! देख जिस शत्रु के मारनेवाले कञ्जलोचन नल को तू ढूंढ़ रही है वह यह है अब मैं इस वन के राजा शार्दूल के पास जाती हूं जो चार दाढ़ें और बड़ी पूंछ उठाये हुए मेरे सामने चला आता है मैं इससे अशङ्कित होकर कहूंगी कि आप मृगों के राजा और इस वन के प्रभु हैं और मैं दमयन्ती नाम विदर्भराज की पुत्री और वैरिविघातक निषधाधिप राजा नल की रानी हूं ३० । ३२ जो आपने कहीं नल को देखा हो तो मुझ अकेली, दुःखी, शोकाकुल और पति के ढूंढ़नेवाली को धैर्य दीजिये ३४ हे मृगेश ! जो आप मुझको नल का पता नहीं बतावें तो मुझको खा लीजिये जिससे मेरा यह दुःख दूर हो जाय ३५ हाय यह शार्दूल भी मेरे विलाप को सुनकर मुझे धैर्य नहीं देता है अब मैं इस नदी के पास जाकर पूछूं जिसका जल स्वादिष्ठ है और समुद्र में मिलती है ३६ अथवा इस पर्वत से नल का पता पूछूं जो प्रकाशमान ऊंचे और मनोरम शिखरों का रखनेवाला, नाना प्रकार की धातु और पत्थरों से जड़ा हुआ वन की ध्वजा के समान ऊंचा सिंह, शार्दूल, हाथी, वाराह, रीछ और मृगों से युक्त, बहुत प्रकार के पक्षियों से शोभित, सुन्दर फल फूल रखनेवाले किंशुक, अशोक, बकुल, पुंनाग, कर्णिकार, धव और प्लक्ष वृक्षों से भूषित और जलपक्षी युक्त नदियों से व्याप्त हो

रहा है ३७।४१ हे भगवन्! हे पर्वतों में श्रेष्ठ! हे दिव्यदर्शन! हे शरण्य! हे कल्याणपर्वत! मैं तुमको नमस्कार करती हूं ४२ और प्रणाम करती हूं मैं राजा की पुत्री, राजा की पुत्रवधू और राजा ही की भार्या हूं, नाम मेरा दमयन्ती है ४३ मेरे पिता का नाम राजा भीम है, वह विदर्भ देशों का स्वामी, महारथी, चारों वर्णों का रक्षक, राजाओं में श्रेष्ठ, राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का करनेवाला ब्रह्म, ब्राह्मण, अग्नि और परमात्मा का भक्त, साधुस्वभाव, सत्यवादी, दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला, शीलवान्, पराक्रमी, लक्ष्मीवान्, धर्मज्ञ, पवित्र, शत्रुओं को जीतनेवाला और प्रभु है। हे भगवन्! आपके समीप टिकी हुई मुझको उसी राजा की राजपुत्री जानो ४४।४७ और मेरे श्वशुर का नाम वीरसेन है जो निषधदेश का स्वामी और नरोत्तम है ४८ उसके पुत्र का नाम राजा नल है जो मेरा पति है और वीर, श्रीमान्, सत्यपराक्रमी, पिता के राज्य और धन का शासन करनेवाला, शत्रु का मारनेवाला, ब्रह्मण्य, वेद जाननेवाला, बोलने में चतुर, पवित्रकर्म, यज्ञ में अमृत पीनेवाला, सदैव आगी का रखनेवाला, यज्ञ करनेवाला, दानी, योद्धा और प्रजा का पालन करनेवाला है ४९।५१ हे पर्वत! मैं तुम्हारे पास लक्ष्मीरहित और पतिहीन दुःखी होकर अपने भर्त्ता को ढूंढ़ने आई हूं हे महाराज! आपकी तो बड़ी बड़ी ऊंची चोटियां हैं मानों आकाश को छू रही हैं जो आपने राजा नल को देखा हो तो मुझे बता दीजिये ५२।५३ वह मेरा पति गजेन्द्र के तुल्य चलताहै और बुद्धिमान्, दीर्घबाहु, क्रोधी, पराक्रमी, यशस्वी और निषधदेश का स्वामी है आपने कहीं उसे देखा है? जो देखा हो तो मुझ अकेली, विलाप करती, विह्वल, दुःखी और अपनी बेटी के तुल्य को धैर्य क्यों नहीं देते? हाय राजा नल, हे वीर! हे धर्मज्ञ! हे सत्यप्रतिज्ञ! जो तुम इस वन में होवो तो मुझको शीघ्र अपने दर्शन दो हाय मैं तुम्हारी स्निग्ध, गम्भीर, बादल के तुल्य शब्द करनेवाली और अमृतरूपिणी शुभवाणी कब सुनूंगी? कब तुम मुझसे आकर यह कहोगे कि हे विदर्भ की पुत्री! तू अदीन और मेरे शोक के दूर करनेवाली है हे धर्मात्मा, राजा नल! अब जल्दी आकर मुझ डरी हुई को धैर्य दीजिये ५४।५९ इसके पीछे दमयन्ती उक्तप्रकार से विलाप करतीहुई उत्तर दिशाको चलीगई ६० और तीन दिन के पीछे एक बड़े तपस्वियों के वन में पहुँची उस वन में दिव्य कानन थे और वशिष्ठ, भृगु और अत्रि आदि बड़े बड़े ऋषियों के समान जितेन्द्रिय,

निराहार रहनेवाले, दमपरायण, जलवायुभक्षी, पत्ते खानेवाले, वल्कलवस्त्र और मृगचर्मधारी मुनि लोग रहते थे । दमयन्ती ने वहां पहुँचकर उन तपस्वियों के रहने के आश्रम देखे ६१ । ६४ जो मृगगणों तथा शाखामृगों से युक्त और तपस्वियों के समूह से सुशोभित थे उनको देखकर दमयन्ती को धैर्य हुआ ६५ जो कि सुभ्रू, सुकेशी, सुश्रेणी, सुकुचोंवाली, सुन्दर दांतों से युक्त मुखवाली, तेजस्विनी तथा सुजघनोंवाली होकर सुन्दर काली और चौड़ी आँखोंवाली थी ६६ वह नल की प्यारी तपस्विनी, बड़भागिनी दमयन्ती एक आश्रम में पहुँची वहां उसने उन तपस्वियों को दण्डवत् की और विनय करके नम्रता से उनके सम्मुख खड़ी होगई तपस्वियों ने उसे देखकर कहा कि तेरा आना शुभ हो और उसका यथायोग्य सत्कार करके उसे बैठने की आज्ञा दी ६७ । ६९ उपरान्त उन तपस्वियों ने उससे कहा कि हम लोग अब तेरा क्या काम करें तब वह बोली कि आप लोग यहां तप करते हैं और षडैश्वर्य के स्वामी हैं और मृग-पक्षियों में अग्निसम्बन्धी कर्म और धर्म का आचरण करते रहते हैं कहिये आप लोग कुशलपूर्वक हैं तपस्वी बोले कि हे यशस्विनि ! हमारी सब जगह कुशल है ७० । ७१ अब तू शोच मत करे और यह बतला कि तू कौन है और क्या चाहती है, तेरे श्रेष्ठरूप और परमकान्ति को देखकर हम लोगों को आश्चर्य होता है, क्या तू इस वन या पहाड़ अथवा नदी की देवी है जैसी कुछ तेरी व्यवस्था हो सच्ची सच्ची कह ७२ । ७३ यह सुनकर दमयन्ती बोली कि हे ऋषियो ! मैं पहाड़, वन और नदी की देवी नहीं हूं, मैं मानुषी हूं, मेरा सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनिये । मैं राजा भीम की बेटी हूं जो विदर्भदेश का स्वामी और पृथ्वी का पालन करनेवाला है और निषध देश का राजा नल मेरा पति है जो बड़ा बुद्धिमान्, यशस्वी, विद्वान्, संग्राम में जय करनेवाला, देवताओं के पूजन में तत्पर, द्विजों पर कृपा रखनेवाला ७४ । ७८ निषधवंश का पालक, बड़ा तेजस्वी, पराक्रमी, सत्यवादी, धर्मज्ञ, बड़ा ज्ञानी, सत्यप्रतिज्ञ, शत्रु को मारनेवाला, ब्रह्मण्य, ईश्वर का उपासक, श्रीमान्, राजाओं में श्रेष्ठ, इन्द्र के समान तेजस्वी, विशालाक्ष, पूरे चन्द्रमा के समान मुख रखनेवाला, बड़े बड़े यज्ञों का करनेवाला, वेद और वेदाङ्ग का जाननेवाला, सूर्य और चन्द्रमा की सी प्रभा रखनेवाला और युद्ध में शत्रुओं को जीतनेवाला है ७९ । ८२ वह मेरा पति किसी छली, नीच और मलिन मन, ज्वारी और कुटिल मनुष्य से जुए में सब राज्य

और धन हारकर चला गया है । मैं दमयन्ती नाम उसकी स्त्री हूं, उसीके वियोग में उसके दर्शनों की इच्छा से दुःखी होकर पहाड़, नदी, सरोवर, वन और दूसरे स्थानों में उसे ढूंढ़ती हुई यहां आ पहुँची हूं कदाचित् वह मेरा स्वामी इस तपोवन में न होवे, उसीके कारण से मैं इस वन में आई हूं जिसमें शार्दूल रहा करते हैं ८३ । ८८ जो कुछ दिनों में वह राजा नल मुझको नहीं मिलेगा तो इस देह को त्यागकर मैं स्वर्गवास करूंगी क्योंकि उसके विना मेरा जीना व्यर्थ है और उसके विरह में क्योंकर जीऊंगी ८९ । ९० वे तपस्वी दमयन्ती को उक्त प्रकार से विलाप करती हुई देखकर कहने लगे ९१ कि हे कल्याणि! हम लोगों को अपने तप के बल से ऐसा दिखाई देता है कि तुझको नल मिलेगा और तू आगे आनेवाले दिनों में सुख पावेगी और अपने पति को पाकर फिर पहले के अनुसार सुख भोगेगी और राज्य करेगी ९२ । ९५ यह कहकर वे तपस्वी अपने आश्रम और अग्निहोत्र सहित वहीं अन्तर्धान होगये ९६ उस समय वह सुन्दर अङ्गोंवाली वीरसेन राजा की पुत्रवधू दमयन्ती यह देखकर चकित होगई ९७ और कहने लगी कि मैंने यह स्वप्न देखा है, यह क्या है ? वे सब तपस्वी, आश्रम, रमणीक नदी और वे फले फूले मनोहर वृक्ष कहां गये ९८ । ९९ बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर ! दमयन्ती कुछ देरतक तो यह ध्यान करती रही, उपरान्त अपने पति के शोक में फिर दीन और विवर्ण हो गई १०० और विलाप करती हुई दूसरे स्थान पर पहुँची वहां उसने एक अशोक का वृक्ष देखा जो फूले होने और पक्षियों के चहचहाने के कारण से बड़ा रमणीक मालूम होता था दमयन्ती उस वृक्ष के पास चली गई १०१ । १०२ और कहने लगी हे अशोक ! तू बहुत प्यारा दीखता है और इस वन में फल और फूलों से अलंकृत होने से गिरिराज के समान प्रकाश कर रहा है, मैं तेरे पास आई हूं, तू मेरे शोक को दूर कर और जो तैंने भय और बाधा से हीन नल को देखा हो तो मुझे बता दे १०३ । १०४ वह मेरा प्यारा पति निषधदेश का स्वामी आधा वस्त्र पहिरे हुए, कोमल अङ्ग और व्यसन से पीड़ित है तेरा नाम अशोक है इससे तू अपने नाम को सत्यकर और ऐसा कर जिससे मैं तेरे पास से शोकरहित होकर जाऊं १०५ । १०७ यह कहकर भीमनन्दिनी, वराङ्गना, दमयन्ती आगे को चलदी और एक बड़े कठिन स्थान में पहुँची १०८ और वहां उसने बहुत से वृक्ष, नदी, पर्वत, मृग और पक्षी

देखे १०९ और पर्वत की कन्दराओं को देखती हुई एक नदी के किनारे पहुँची वह नदी बड़ी चौड़ी, क्रौंच, कुरर, चकवा और चकवी से शोभित और कछुये, ग्राह और झषनाम जलजीवों से पूर्ण थी उस समय उस नदी पर एक बड़ा पथिकसमूह अर्थात् काफला जिसके साथ बहुत से हाथी, घोड़े और रथ थे उतर रहा था ११०।११३ दमयन्ती उस काफले को देखकर जल्दी से वहां पहुँची और मनुष्यों के भीतर घुस गई ११४ उसके उन्मत्त और शोक से दुःखी स्वरूप धूलि से भरे हुए बाल कृश और विवर्ण अङ्ग को देखकर बहुत से मनुष्य डरकर भागने लगे, बहुत से चिन्ता करने लगे और बहुत से पुकारने लगे ११५।११६ कई मनुष्यों ने उसे देखकर हँसी की, कइयों ने निन्दा की और कितनों ही ने दया की और पूछा ११७ कि हे कल्याणि ! तू कौन है, किसकी बेटी है और इस वन में क्या ढूंढ़ रही है तुझे देखकर हम सबको बड़ी पीड़ा हो रही है तू सत्य सत्य कह कि तू मानुषी है या इस वन, पहाड़ और दिशा की देवी है अथवा यक्षी या राक्षसी है हम तेरी शरण हैं, तू हमारा कल्याण कर और हमारी रक्षा कर ११८।१२० और ऐसा कर जिससे हमारा यह काफला क्षेमकुशल से यहां से जावे १२१ यह सुनकर दमयन्ती उस काफले के स्वामी और बालक, वृद्ध और जवान मनुष्यों से जो उसके सम्मुख खड़े थे कहने लगी १२२।१२३ कि मैं राजपुत्री, राजा की पुत्रवधू और राजा ही की भार्या हूं और मानुषी हूं अपने पति के दर्शनों की लालसा से यहां फिर रही हूं १२४ मेरा बाप विदर्भ देश का राजा है और पति मेरा नलनामी निषध का स्वामी है सो मैं उसी अपने पति को ढूंढ़ रही हूं जो तुमने उसे देखा हो तो बतलाओ १२५।१२६ यह सुनकर उस काफले का स्वामी शुचि नाम दमयन्ती से बोला कि हे कल्याणि ! मेरी बात सुन, मैं सार्थवाहक अर्थात् इस काफले का स्वामी हूं, मैंने इस निर्जन वन में सिवाय हाथी, भैंसा, रीछ, शार्दूल और मृगों के कोई नलनामी मनुष्य नहीं पायाहै मनुष्यों में तो हमने तुझे ही अब देखाहै। यक्षों का राजा मणिभद्र हमपर प्रसन्न हो १२७।१३० यह सुनकर वह दमयन्ती बोली कि यह तुम्हारा काफला कहां को जायगा १३१ यह सुनकर सार्थवाहक बोला कि हे राजपुत्रि ! यह काफला लाभ के लिये सत्यदर्शी सुबाहु नाम राजा चंदेरी के देश में जायगा ॥ १३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पैंसठवां अध्याय ।

दमयन्ती का उस काफले के साथ जाना, हाथियों द्वारा उस काफले के मनुष्यों को मारा जाना और दमयन्ती का राजा चन्देरी के यहां पहुँचना ।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर ! वह अनिन्दित अङ्गोंवाली दमयन्ती सार्थवाहक की बात सुनकर पति के देखने की लालसा से काफले के साथ साथ होलई १ थोड़े दिनों में वह काफला महाभयानक वन में सर्वतोभद्र नामक एक तालाब के किनारे पहुँचा जिसमें सौगन्धिक कमल फूल रहे थे उस काफले के व्यापारीलोग उस स्थान पर बैल घोड़ों को घास, जलाने को ईंधन, पीने को सुन्दर स्वादिष्ठ जल, खाने को मीठे मीठे फल और आराम करने को सघन ठंढी छाया देखकर सार्थवाहक से कहने लगे कि अब सायंकाल भी आपहुँचा है आज इसी स्थान पर वास कीजिये यह सुनकर सार्थवाहक ने वहां ठहरने की आज्ञा देदी और वह काफला वहां ठहर गया २।५ जब आधी रात हुई और सब काफले के मनुष्य हारे थके सोगये तब उस तालाब में पानी पीने के लिये एक वन के हाथियों का झुण्ड आया उस झुण्ड में बहुत से हाथी मतवाले थे जब वे हाथी तालाब के निकट पहुँचे तब उन्होंने वहां काफले के मनुष्य और उन मनुष्यों में कई हाथी देखे । वे वन के हाथी उन ग्राम के हाथियों को मारने को बड़े वेग से दौड़े उनमें लड़ने, भिड़ने, दौड़ने और गिरने का ऐसा शब्द हुआ मानो पहाड़ की चोटियां पृथ्वी पर गिरती हैं उनके गिरने से उस वन के मार्ग रुक गये और उस सरोवर के सोते भी बन्द होगये उन हाथियों के दौड़ने से काफले के बहुत से मनुष्य हाथियों के पाँव से दब दबकर मर गये और अकस्मात् निद्रा से उठकर इधर उधर दौड़ने लगे उन हाथियोंने बहुत से मनुष्यों को सूंड़ से पकड़ पकड़कर मारडाला, बहुतों को दांतों से दबा दिया और बहुतों का पैर से दाबकर नष्ट किया इस प्रकार से जब वे लोग मारे गये तब जो उनमें बच रहे थे वे चिल्लाते, पुकारते, टकराते और गिरते पड़ते जहां तहां भागने लगे बहुत से वृक्षों पर चढ़गये और भय से गिर गिर पड़े ६।१४ इस प्रकार से उस काफले के बहुत से मनुष्य ऊंट और घोड़े हाथियों ने मारडाले और ऐसा शब्द उन सबके चिल्लाने पुकारने का हुआ कि उसको सुनकर त्रिलोकी को भय उत्पन्न होजाय इसके पीछे कुछ मनुष्य बोले भाइयो ! दौड़ो और रक्षा करो १५।१६ यह रत्नों की राशि फैली हुई है दूसरों ने कहा अरे भाई ! यह धन

सामान्य है क्यों दौड़कर प्राण खोते हो इस प्रकारसे वे लोग दूसरेसे कहते हुए भयभीत होकर भागगये जब इस प्रकार से मनुष्य की क्षय हाथियों से होने लगी तब वह कज्जलोचना बाला दमयन्ती भयभीत होकर उठ बैठी और मनुष्यों की उस क्षय को देखकर जिसको उसने पहले कभी नहीं देखा था भय के मारे मुख को बन्द करके श्वास लेने लगी और विह्वल होगई इसके पीछे जब हाथी चले गये तब जो मनुष्य काफ़ले के बच रहे थे आपस में कहने लगे कि इस आपत्ति के पड़ने का क्या कारण है? कोई बोला कि हम लोगों ने महायशस्वी मणिभद्र की पूजा नहीं की थी, दूसरे ने कहा कि हमने यक्षों के राजा कुबेर को नहीं मनाया था, तीसरा बोला भाई! हमने पहले विघ्नकर्त्ता की पूजा नहीं की, किसीने कहा कि शकुन तो हमको अच्छे हुए थे क्या शकुनों का फल अब विपरीत होने लगा या और कोई बात है? उनमें फिर किसीने जिसके सम्बन्धी मारे गये थे और धन नष्ट होगया था कहा कि यह जो उन्मत्त स्त्री विकृताकार हमारे काफ़ले में आई है इसीने यह माया रची है निश्चय वह स्त्री मानुषी नहीं है वह कोई भयंकर राक्षसी या यक्षिणी अथवा पिशाचिनी है उसीके कारण से यह उपाधि उठी थी १७।२७ जो उसको हम लोग अब देख पावें तो उस नाशकर्त्ता को अवश्य ढेले, लकड़ी और मुक्कों से मारडालें दमयन्ती उन लोगों की यह बात सुनकर भयभीत और लज्जित होकर वन की ओर भागी और अपने पाप को शोच शोच कर विलाप करने लगी २८।३० हाय मेरे ऊपर ईश्वर का बड़ा कोप है मेरी कुशल किसी प्रकार से नहीं दीखती है, हाय मैंने ऐसा क्या किया है जिसके कारण से यह दुःख प्राप्त हुआ है, मैंने आजतक मन, वाणी और शरीर से भी किसीका कुछ नहीं बिगाड़ा निश्चय इस दुःख का कारण मेरे पूर्व जन्मों के कर्मों का फल है ३१।३२ कि जिसके कारण से मेरे ऊपर ऐसे ऐसे दुःख पड़े पति के राज्य का जाना, स्वजन से हारना, पति का वियोग होना, पुत्रों से अलग रहना, नाथ से अनाथ होजाना और इस दुःखदायी वन में वास करना जिसमें बड़े बड़े सर्प रहते हैं इसके पीछे जब प्रातःकाल हुआ तब काफ़ले के बचे हुए मनुष्य उस स्थान से निकलकर अपने अपने भाई, बाप और पुत्र और मित्रों के मरने का शोच करने लगे ३३।३६ और वहां दमयन्ती भी यह शोच करने लगी कि हाय मुझ से क्या अपराध बना है जिसके कारण से इस निर्जन वन में काफ़ले का मिलना हुआ वह भी मेरे

भाग्य से हाथियों से मारा गया निस्संदेह मुझको अभी बहुत दिनों तक ऐसा ही दुःख रहेगा ३७।३८ मैंने जो बड़ों से सुना था कि विना समय के कोई नहीं मरता है सो सच है देखो मुझ दुखिया को हाथियों ने भी नहीं मारा ३९ मेरी समझ में विना ईश्वर की इच्छा के कुछ नहीं होता है और जो कहो कि यह मेरे पापों का फल है तो मैंने कोई पाप शरीर या मन अथवा वाणी से बाल अवस्था में भी नहीं किया है मैं जानती हूँ मैंने अपने स्वयंवर में लोकपाल देवताओं को छोड़कर नल को बरा था यह मेरा वियोग उन्हीं की कुदृष्टि से हुआ है ४०।४२ इस प्रकार से वह पतिव्रता वराङ्गना दमयन्ती विलाप करके उस काफले के वेदपाठी ब्राह्मणों के साथ जो मरने से बच रहे थे चन्द्रकला के समान होली ४३।४४ और थोड़े दिनों में संध्या के समय सत्यदर्शी सुबाहुनामी राजा चन्देरी के नगर में पहुँची ४५ और आधा वस्त्र पहिरे हुए नगर के भीतर गई। उसके दीन कृश और उन्मत्त से रूप और बिखरे हुए बालों को देखकर नगरवासियों के बालक और स्त्रियां कुतूहल से उसके पीछे पीछे हो लिये और वह उन सबसे घिरी हुई राजमन्दिर के निकट पहुँची ४६।४८ उस समय राजमाता महल के ऊपर खड़ी हुई थी वह दमयन्ती को इस प्रकार से देखकर धात्रीसे बोली कि तू जाकर इस सुन्दरीबाला को यहां लिवा ला, यह दुःखी और शरण चाहनेवाली मालूम होती है, मनुष्य इसको क्लेश दे रहे हैं, इसका सुन्दर स्वरूप मेरे घर को प्रकाश कर रहा है ४९।५० और वेष उन्मत्त स्वरूप लक्ष्मी का सा और नेत्र सुन्दर हैं यह सुनकर धात्री वहां गई और उसको महल के ऊपर लिवालाई राजमाता उसे देखकर आश्चर्य से पूछने लगी कि सुन्दरी ! तू कौन है और किसकी बेटी है इतना दुःख पाने पर भी तेरा स्वरूप ऐसा सुन्दर है कि बिजली के समान प्रकाश कर रहा है और यद्यपि तू गहने और वस्त्र से हीन है तथापि तेरा रूप मानुषी नहीं मालूम होता है और विना हाय किये मनुष्यों से तुझे उद्वेग नहीं होता है यह सुनकर दमयन्ती बोली ५१।५४ कि मैं पतिव्रता मानुषी हूं, जाति मेरी राजसेवक है और मैं फल मूल खाकर रहती हूँ और जहां संध्या हो जाती है वहीं ठहर जाती हूँ, मेरा पति असंख्य गुणों का रखनेवाला और मुझको चाहनेवाला है और मैं भी छाया के समान उसकी भक्त हूँ, दैवइच्छा से मेरे पतिने जुआ खेला था उसमें वह हारकर अकेला एक वस्त्र पहिरकर वन को चल दिया, मैं भी उसे धैर्य देती हुई उसके पीछे पीछे हो लई वन में पहुँचने पर उस दुःखी और म्लानचित्त मेरे पति ने वह एक वस्त्र भी त्याग दिया और नंगा होकर उन्मत्त के

समान फिरने लगा, मैं उसके साथ साथ रहकर कई राततक नहीं सोई ५५ । ६० इसके कई दिन पीछे जब मैं एक दिन सो गई तब वह मेरा पति मेरे आधे वस्त्र को काटकर और उसे आप लेकर मुझे सोती हुई छोड़कर चल दिया तब से मैं उसे देखती फिरती हूँ और दिन रात मेरा हृदय उसके विरह में जला करता है परंतु मैं उस अपने प्यारे देवता के तुल्य प्यारे प्राणों के ईश्वर को कहीं नहीं देखती हूँ । यह सुनकर राजमाता आप बहुत दुःखी हुई और उस विलाप करती, दुःखी और गद्गद वाणी से बोलती हुई दमयन्ती को धैर्य देकर कहने लगी ६१ । ६४ कि हे कल्याणि ! अब तू मेरे पास रह तुझपर मेरी बड़ी प्रीति है, मैं अपने आदमियों से तेरे पति को ढुँढ़वाऊंगी ६५ और वह भी इधर उधर घूमता हुआ यहां आजायगा। निस्संदेह यहां रहने से तेरा पति तुझको मिलेगा ६६ यह सुनकर दमयन्ती राजमाता से बोली कि हे वीरमातः ! मैं तुम्हारे पास इस नियम से रह सकती हूं ६७ कि न मैं जूंठा खाऊंगी, न पैर धोऊंगी और किसी पुरुष से किसी अवस्था में बात न करूंगी ६८ और जो कोई मनुष्य मेरे पातिव्रत धर्म को दूर करना चाहे उसे तुम दण्ड दो और वह तुम्हारा वध्य होवे ६९ हां मैं अपने पति को ढूँढ़ने की इच्छा से ब्राह्मणों को तो अवश्य देखा करूंगी सो जो ये नियम तुमको अङ्गीकार हों तो निस्संदेह मैं तुम्हारे पास रहूँगी ७० और इसके विपरीत जहां बात होगी वहां मैं कदापि नहीं रह सकती । यह सुनकर राजमाता प्रसन्न होकर कहने लगी ७१ कि हे दमयन्ति ! मैं तेरे इस व्रतको समझकर तेरी ये सब बातें अङ्गीकार करूंगी, तू यहां रह । इसके पीछे राजमाता ने अपनी सुनन्दानाम पुत्री को बुलाकर कहा कि यह देवी का सा स्वरूप रखनेवाली सैरंध्री तेरी उमर के बराबर की है तू इसको अपनी सखी करके इसके साथ आनन्द कर ७२ । ७४ यह सुनकर सुनन्दा दमयन्ती को सखियों सहित अपने गृह को लिवा लेगई और दमयन्ती वहां दुःखरहित होकर आनन्दपूर्वक इच्छा के अनुसार सब पदार्थों को पाकर रहने लगी ॥ ७५ । ७६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

छाछठवाँ अध्याय ।

राजा नल का बन में किसी सर्प को अग्निसे बचाना, सर्प का नल को डसकर उसका स्वरूप बदल देना और पुनः स्वरूप प्राप्ति के लिये एक वस्त्र और राजा ऋतुपर्ण के पास जाने का उपदेश देकर अन्तर्धान हो जाना ।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर ! राजा नल दमयन्ती को छोड़कर एक गहन वन में पहुँचा जहां दावानल लग रहा था १ वहां उसने किसी प्राणी को वारंवार

ऊँचे स्वर से यह पुकारते हुए सुना कि हे राजा नल ! दौड़ और मुझे बचा बचा यह सुनकर नल ने कहा कि डरे मत मैं आन पहुँचा हूँ और यह कहकर वह उस जलती हुई अग्नि में घुस गया। वहां पहुँचकर देखता क्या है कि एक सर्प कुण्डली बांधे हुए बैठा हुआ है ३ नल को देखकर वह सर्प नम्रता से कहने लगा कि मैं कर्कोटक नाम सर्प हूँ ४ मुझे किसी अपराध के बनने के कारण से महातपस्वी ब्रह्मऋषि नारदजी ने यह शाप दिया था कि तू जड़ के समान पड़ा रह जब राजा नल तुझको यहां से ले जायगा तब तू शाप से छूटेगा ५। ६ सो उस शाप के कारण से मैं एक पगभर भी नहीं चल सकता हूँ आप मेरी रक्षा कीजिये मैं आपको कल्याण का उपदेश करूंगा ७ और तुमसे सखाभाव मानकर रहूंगा, मेरे समान दूसरा कोई सर्प नहीं है, मैं अपने शरीर को हलका किये लेता हूँ तुम मुझको यहां से उठाले चलो ८ यह कहकर वह सर्प अंगूठे की बराबर हो गया और नल उसे उठाकर वहां ले आया जहां अग्नि न थी ९ जब नल ने उसे छोड़ना चाहा तब वह कहने लगा कि हे राजा नल ! अब तू अपने पग गिनता हुआ चला चल मैं तेरा परम कल्याण करूंगा १०। ११ यह सुनकर नल पग गिनता हुआ चला, दशवें पग पर उस सर्प ने राजा को काट खाया, उसके काटने से राजा नल का वह स्वरूप तुरन्त अन्तर्धान हो गया तब वह अपने विकृत स्वरूप को देखकर चकितसा होकर खड़ा होरहा और उस नाग को अपना स्वरूप धारण किये हुए देखा १२। १३ इसके पीछे वह कर्कोटक राजा नल को धैर्य देकर कहने लगा कि मैंने तेरे स्वरूप को इस कारण से अन्तर्धान कर दिया है जिससे तुझे कोई मनुष्य जान न सके १४ और जिसके कारण से तुमने इतना दुःख उठाया है वह दुष्ट जब तक तेरे शरीर में से नहीं निकलेगा तब तक मेरे विष से महादुःखी होकर वास करेगा १५। १६ मैंने यह तुम्हारी रक्षा इस कारण से की है और उस पापी पर इसलिये क्रोध किया है कि उसने तुम निष्पाप और दुःख के अयोग्य को निरपराध ठगा है १७ मेरी कृपा से तुमको ब्रह्मज्ञानी, शत्रु और दन्ती जीवों से भी भय नहीं रहेगा विष भी तुम्हारी देह में पीड़ा न दे सकेगा और संग्राम में तुम्हारी जीत रहेगी १८। १९ हे राजन् ! अयोध्यापुरी में ऋतुपर्णनाम एक इक्ष्वाकुवंशी राजा है वह अक्षहृदय की विद्या में बड़ा पण्डित है तुम उस राजा के पास यह कहते हुए चले जाओ कि मैं बाहुकनामी सूत हूं वह राजा तुमको अश्वहृदयविद्या के बदले में अक्षहृदयविद्या देगा सो जब तुम्हारी उस राजा से

मित्रता हो जायगी और वह विद्या तुम उससे ले लोगे तब तुम्हारा कल्याण होगा २० । २२ अब तुम शोच करना छोड़ दो मैं तुमसे सत्य सत्य कहता हूं तुमको तुम्हारा राज्य, पुत्र और स्त्री फिर मिलेंगे २३ और हे नृप! जब तुम अपना निजस्वरूप चाहो तब तुम मुझको स्मरणकरना और यह दिव्यवस्त्र जो मैं तुमको देता हूं उसे ओढ़ लेना ऐसा करने से तुम अपने स्वरूपको फिर पाओगे । यह कहकर और वह वस्त्र देकर वह नागराज वहीं अन्तर्धान होगया ॥ २४।२६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडधिकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सरसठवाँ अध्याय ।

राजा नल का अयोध्या में जाकर राजा ऋतुपर्ण के यहां नौकर होना और वहां अज्ञात रहकर दमयन्ती के विरह में एक श्लोक पढ़ा करना ।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर ! राजा नल उस नाग के अन्तर्धान होने पर अयोध्या नगरी की ओर चल दिया और दशवें दिन वहाँ जा पहुँचा १ और राजा ऋतुपर्ण के समीप जाकर कहने लगा कि हे राजेन्द्र ! मैं बाहुकनाम घोड़ों का चलानेवाला हूं मेरे समान इस काम में पृथ्वी पर कोई नहीं है इसके सिवाय कष्ट और बुद्धिमानी के सब कामों में मैं उत्तम सलाह दे सकता हूं और अन्न का संस्कार भी और लोगों से अच्छा कर सकता हूं और शिल्पविद्या आदि जो जो और कठिन काम हैं उनके करने का भी प्रबन्ध कर सकता हूं हे राजन्! आप मुझको नौकर रख लीजिये २ । ४ यह सुनकर राजा ऋतुपर्ण बोला कि अच्छा बाहुक! तेरा कल्याण हो तू हमारे यहां रह हमने तेरा मासिक दशसहस्र सुवर्ण किया । हम चाहते हैं कि हमारे घोड़े जल्दी चला करें सो तू ऐसा ही यत्न कर और वार्ष्णेय और जीवलनामी जो दोनों सारथी हैं वह तेरे आधीन रहेंगे तू उन दोनों के साथ प्रीतिपूर्वक रह ५ । ७ बृहदश्व बोले कि हे युधिष्ठिर! यह सुनकर राजा नल उन दोनों सूतों के साथ वहां बसने लगा ८ और रात्रि के समय दमयन्ती के विरह में व्याकुल रहकर नित्य यह पद पढ़ा करता ९ ॥

दोहा ।

क्षुधा पिपासा आर्त्त कहँ, करत होयगो शैन । तामन्दहिं को सुमिर करि, आश्रित काके ऐन ॥ १० ॥

जीवलनामी सूत इस प्रकार से नित्य सुनकर एक दिन कहने लगा कि हे बाहुक ! तुम रात्रि को नित्य किसकी याद किया करते हो मैं भी सुना चाहता हूं ११ वह किसकी स्त्री है और तुम उसका इतना शोच क्यों करते हो ? यह सुनकर राजा नल बोला कि वह स्त्री एक मन्दबुद्धि और झूठे मनुष्य की थी;

उस मनुष्य ने उस स्त्री को किसी कारण से त्याग दिया अब वह मनुष्य दुःखी, विरही, दिनरात शोक में डूबा हुआ, विना नींद लिये घूमा करता है और रात्रि में एक श्लोक पढ़ा करता है और सब पृथ्वी पर घूमकर कहीं दुःखी होकर बस रहा है और उस स्त्री की याद किया करता है वह स्त्री उस मनुष्य के साथ बड़े कष्ट में भी वन को गई थी ऐसी स्त्री को त्यागकर वह मन्दभाग्य जी रहा है इससे कठिन और क्या होगा कि उस मन्दबुद्धि मनुष्य ने उस स्त्री को ऐसे वन में अकेला छोड़ दिया जहां बहुत से सिंह और व्याघ्र रहा करते हैं। अब उस भूंखी, प्यासी और राह न जाननेवाली का जीना कठिन है यह कहकर नल चुप होरहा और दिनरात दमयन्ती को याद करता हुआ विना किसी के जाने वहां रहने लगा ॥ १२ । १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अरसठवाँ अध्याय ।

राजा भीम का नल और दमयन्ती के ढूंढ़ने को जहां तहां सैकड़ों ब्राह्मण भेजना और सुदेवनाम ब्राह्मण का राजा चन्देरी के नगर में आकर दमयन्ती को पहिंचानना ।

बृहदश्व बोले हे युधिष्ठिर! राजा भीम राजानलके राज्यहरण और स्त्री सहित वनको जाने और दासता को प्राप्तहुए का हाल सुनकर नलको देखनेकी इच्छा से सब ब्राह्मणों को बुलाकर तथा बहुतसा धन देकर कहने लगा कि आपलोग चारों ओर जाकर नल और दमयन्ती को ढूंढ़िये जो कोई उन दोनों का अथवा एक का भी पता लगाकर लावेगा उसको मैं एकसहस्र गाय दूंगा और जो उनको यहां लिवालावेगा उसँको नगर की बराबर बड़े बड़े गांव और खेत आदि दूंगा। यह सुनकर वे सब ब्राह्मण प्रसन्न होकर चारों दिशाओंको चल दिये और प्रदेशों में नल और दमयन्ती को ढूंढ़ने लगे परंतु किसीने कुछ पता उन दोनों का न पाया १।६ उनमें से एक सुदेवनाम ब्राह्मण उन दोनों को ढूंढ़ता हुआ राजा चंदेरी के रमणीय नगरमें पहुँचा, उससमय राजा चंदेरी के घरमें पुण्याहवाचन होरहा था सुदेव भी वहां चला गया और वहां उसने सुनन्दा के साथ दमयन्ती को देखा जो पति के विरह में लट रही थी उसके बड़े बड़े नेत्र, सूर्य की सी प्रभा, सुन्दरस्वरूप और मलिन वेश में इस प्रकार से चमकती हुई देखकर जैसे धुएँ में जलती हुई अग्नि दिखाई देती है उसने अनेक कारणों से यह निश्चय किया कि यह राजा भीम ही की पुत्री है ७।६ उससमय सुदेव अपने मन में

कहने लगा कि स्वरूप तो इसका वैसा ही दीखता है जैसा मैंने पहिले देखा था आहा इस लक्ष्मीरूप को देखकर आज मैं कृतार्थ हुआ १० यह राजा भीम ही की पुत्री है, देखो इसका मुख पूर्णचन्द्रमा के तुल्य है, श्यामा है अर्थात् सदा सोलह वर्ष की सी दीखती है, पयोधर इसके सुन्दर और गोल हैं, अँधेरे घर में यह उजेला करनेवाली है, देवी का सा स्वरूप है ११ नेत्र इसके कमल के सदृश बड़े बड़े हैं, साक्षात् कामदेव की स्त्री रति का सा स्वरूप रखती है और चन्द्रमा की चांदनी के समान सब की प्यारी है १२ दैव के दोष से इसका मैला कुचैला स्वरूप ऐसा दीखता है मानो विदर्भदेशरूपी तालाब का यह कीच में भरा हुआ कमल है १३ और मानो पूर्णमासी के चन्द्रमा को राहु ने ग्रस लिया है, अपने पति के विरह में यह व्याकुल, दीन, सूखी सी और ऐसी हो रही है जैसे किसी तालाब के कमलों के पत्ते और कमल टूट गये हों और हाथियोंने अपनी सूंड़ से उन कमलों की नली को दबा दिया हो १४।१५ अङ्ग इसका कोमल और सुडौल है, यह तो रत्नजटित घर में रहने के योग्य है यद्यपि इससमय यह ऐसी होरही है मानो उखाड़ा हुआ कमल सूर्य के तेज से सूख गया है १६ सब प्रकार से यह गुणवती, उदार और स्वरूपवती है और यद्यपि शृंगार से हीन है परंतु शृङ्गार के योग्य है और नीली घटा में छिपे हुए नवीन चन्द्रमा के समान है १७ आज मैं इस परमदीन बन्धुजन से हीन और भोग रहित केवल अपने पति के दर्शनों की इच्छा से देह रखनेवाली को देखकर कृतार्थ हुआ १८ स्त्री का परमभूषण भर्त्ता है, चाहे और भूषण हो या न हो इससे यह यद्यपि स्वरूपवती है परंतु भर्त्ता के न होने से शोभा नहीं पाती है १९ हाय! नल ने बड़ा कठिन काम किया जो ऐसी स्त्री को त्याग करने में जीता रहा और शोक नहीं किया २० इस कमलनयनी और काले केश रखनेवाली को दुःखी देखकर मेरा भी मन दुःखी होता है २१ इसका दुःख पति के मिलने ही पर दूर होगा और उस समय इसका दुःख ऐसे जाता रहेगा जैसे रोहिणी का दुःख चन्द्रमा के समागम से जाता रहता है २२ और राजा नल भी इसको फिर पाकर इसप्रकार से प्रसन्न होगा और इससे प्रीति करेगा जैसे गयेहुए राज्य को पाकर राजा प्रसन्न होता है २३ राजा नल अपने कुल, शील, स्वभाव और अवस्था से दमयन्ती के योग्य है और दमयन्ती भी उसके योग्य

---

१ शीते चैवोष्मला नित्यं ग्रीष्मे चातावशीतला। मध्यक्षीणस्तु यस्यास्तु सा श्यामेत्यभिधीयते॥१॥

है २४ अब मुझको उस पराक्रमी नल की इस स्त्री को धैर्य देना उचित है २५ इसने पहिले कभी ऐसा दुःख नहीं देखाहै और दुःखसे ध्यान में तत्पर होरही है चलो अब मैं इस चन्द्रमुखी को धैर्य दूं २६ बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह सुदेव ब्राह्मण उक्त प्रकार से अनेक प्रकार के कारण और लक्षणों को विचारकर दमयन्ती के पास चला गया और कहने लगा २७ कि हे दमयन्ति! मैं तेरे भाई का परममित्र सुदेव नाम ब्राह्मण हूं, राजा भीम की आज्ञा से तुझे ढूंढ़ने को आया हूं २८ हे राज्ञि! तेरे मां, बाप और भाई कुशली हैं और वहां टिके हुए पुत्र, पुत्री भी सकुशल हैं २९ परंतु तेरे कारण से सब निर्जीव की तुल्य होरहे हैं और तुझे ढूंढ़ने को सैकड़ों ब्राह्मण पृथ्वी पर जहां तहां गये हुए हैं ३० बृहदश्व बोले कि हे युधिष्ठिर! यह सुनकर दमयन्ती ने सुदेव को पहिंचाना और उससे क्रमपूर्वक अपने सुहृदों का हाल पूछने लगी ३१ और उसे अपने भाई का मित्र जानकर और अकस्मात् देखकर शोक से रोने लगी ३२ सुनन्दा उसको इस प्रकार से रोती और एकान्त में ब्राह्मण से बात चीत करती देखकर शोकाकुल होकर अपनी मां के पास गई और कहने लगी अरी मां! देख तो यह सैरन्ध्री एक ब्राह्मण से मिलकर क्यों रोरही है ३३।३४ यह सुनकर राजा चंदेरीकी माता महल से निकलकर उस स्थानपर आई जहां दमयन्ती उस ब्राह्मणके समीप स्थित थी ३५ और सुदेवको बुलाकर पूछनेलगी कि यह बाला किसकी स्त्री और किसकी पुत्री है ३६ और अपने पति और जातिवालों से किस कारण से अलग हुई, तुमने इसे कैसे पहिंचाना मैं यह सब सुना चाहती हूं। हे ब्राह्मण! मुझसे विस्तारपूर्वक कह ३७।३८ यह सुनकर सुदेव ने अच्छी तरह बैठकर दमयन्ती का सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया॥ ३९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ अध्याय।

दमयन्ती का सुदेव ब्राह्मण के साथ अपने पिता के घर आना और ब्राह्मणोंको नलके ढूंढ़नेको भेजना।

सुदेव ब्राह्मण बोला हे राजमातः! यह कल्याणी विदर्भदेश के धर्मात्मा, महाप्रकाशवान् राजा भीम की पुत्री है, नाम इसका दमयन्ती है १ और राजा वीरसेन के नलनामी यशस्वी, बुद्धिमान् पुत्र की भार्या है जो निषधदेश का अधिपति है २ वह नल अपने भाई से जुए में सब राज्य और धन हारकर दमयन्ती सहित विना किसी के जाने वन को चला गया था उसके और इस दमयन्ती

के ढूंढ़ने को हम सैकड़ों ब्राह्मण देश देश में फिर रहे हैं सो यह आज मुझको तेरे पुत्र के इस स्थान पर मिली है ३ । ४ इसके स्वरूप के सदृश किसी मानुषी स्त्री का स्वरूप नहीं है और इसकी दोनों भौंहों के बीच में एक लाल मस्सा शरीर के साथ उत्पन्न होने वाला है वह यद्यपि मल से ढका हुआ है परंतु मैंने उसको उसकी कमलकी सी प्रभा देखकर इस प्रकार से देख लिया जैसे बादल से ढका हुआ चन्द्रमा जान लिया जाता है ५ । ६ यह मस्सा ईश्वर का रचा हुआ चिह्न ऐश्वर्य का करने वाला है और मल के कारण से इसकी प्रभा इस प्रकार से मलिन हो रही है जैसे कृष्णपक्ष की परेवा को चन्द्रमा की कला मलिन रहती है ७ इसका सुन्दर स्वरूप मैल के चढ़ने पर भी मलिन नहीं होता है और प्रत्यक्ष सुवर्ण की समान चमका करता है ८ सो इस मस्से और इस सुन्दर स्वरूप से मैंने इसको इस प्रकार से पहिचान लिया जैसे राख में दबी हुई अग्नि गरमाई से जानली जाती है ९ सुदेव की उक्त बातों को सुनकर सुनन्दा ने उस मैल को पानी मँगाकर धुलवा डाला जिससे वह 'मस्सा' ढका हुआ था और मैल के दूर होने पर वह इस प्रकार से प्रकाश करने लगा मानों निर्मल आकाश में चन्द्रमा उदय हुआ है १० । ११ उसको देखकर राजमाता और सुनन्दा दमयन्ती से मिलकर रोने लगीं और एक मुहूर्त के पीछे राजमाता रोकर धीरे से कहने लगी कि तू मेरी बहिन की बेटी है, मैंने भी तुझको इस मस्से से पहिंचाना १२ । १३ हम और तेरी मां ये दोनों बहिन राजा दशार्ण की बेटी हैं १४ तेरी मां राजा भीम को ब्याही गई थी और मेरा विवाह राजा वीरबाहु से हुआ था मैंने तुझे बालकपन में अपने बाप के घर में देखा था १५ हे बेटी ! जैसा वहां तेरे बाप का घर है वैसा ही तेरे लिये यह मेरा घर है और जैसा ऐश्वर्य मेरा है वैसाही तेरा है १६ यह सुनकर दमयन्ती प्रसन्न होकर बोली कि अरी मौसी ! जब मैं तेरे घर में विना जानी हुई रहती थी तब भी मैं बड़े सुख से तेरी रक्षा में रही और अब तो मेरा रहना निस्संदेह बड़े सुख के साथ होगा परंतु मैं बहुत दिनों से परदेश में रह रही हूँ इससे अब तू मुझे जाने की आज्ञा दे १७ । १८ मेरे पुत्र और पुत्री अभी बालक हैं न जाने वे विना माता पिता के शोकार्त होकर वहां कैसे रहते होंगे २० सो जो तू मुझपर थोड़ा सा भी लाड़ करना चाहे तो यही लाड़ कर कि मुझे विदर्भदेश को जाने की आज्ञा देदे २१ यह सुनकर राजमाता प्रसन्न हुई और उसने दमयन्ती को डोले में बैठाकर खाने पीने के प्रबन्ध के साथ अपने

पुत्र की अनुमति से बहुत सी सेना रक्षा के लिये साथ देकर बिदा किया २२।२३ और वह थोड़े ही दिनों में विदर्भदेश में आ पहुंची। उसके सब भाई बंधुओं ने प्रसन्न होकर उसका आदर किया २४ और उस यशस्विनी देवी दमयन्ती ने भी अपने सब भाई, पुत्र, पुत्री, माता, पिता और सब सखियों को कुशलपूर्वक देखकर देवता और ब्राह्मणों की उत्तम विधिसे पूजा की २५। २६ राजा भीम ने प्रसन्न होकर सुदेव ब्राह्मण को सहस्र गऊ, ग्राम और बहुत सा धन दिया २७ इसके पीछे एक दिन वास करने पर दमयन्ती अपनी माता से कहने लगी २८ कि अरी मां! मैं तेरे से सत्य कहती हूँ जो तू मेरा जीना चाहे तो उस नरवीर राजा नल के ढूंढ़ने का यत्न कर २९ यह सुनकर उसकी मां ने कुछ उत्तर नहीं दिया और दुःखी होकर रोने लगी ३० उसको रोती हुई देखकर सब रनिवास स्त्रियों के रोने पर करुणा से पूर्ण हो गया ३१ इसके पीछे रानी ने राजा भीम से कहा कि तुम्हारी बेटी अपने पति के शोक में महाव्याकुल है उसने लज्जा छोड़कर आप मुझसे कहा कि तू नल के ढुंढ़वाने का यत्न कर ३२। ३३ यह सुनकर राजा भीम ने अपने यशवर्ती ब्राह्मणों को बुलाकर कहा कि आप लोग जहां तहां जाकर राजा नल को ढूंढ़िये ३४ यह सुनकर वे ब्राह्मण राजा की आज्ञा से दमयन्ती के पास आये और उससे कहने लगे कि हम लोग राजा की आज्ञा से नल को ढूंढ़ने जाते हैं ३५ दमयन्ती बोली कि तुमलोग जहां जहां जावो तहां तहां सत्पुरुषों के बीच में जाकर इन दोहों को पढ़ना ॥ ३६ ॥

दोहा।

सोवत वन में हमहिं तजि, वस्त्र हमारो काटि। हे प्रिय पीतम हे छली, कहां गये करि घाटि॥
प्रिया आपनी प्रीतिरत, छोड़ेव जहँ जेहि हाल। ताहि अवस्था में अहहि, वाट लखत सब काल॥
अर्धवस्त्र धारण किये, शोकाकुल वह नारि। संतत रोवति रहति है, दहति हृदय मनमारि॥
जिमि दावानल वायुवश, वनहि दहति बलवन्त। तिमि विरहानल तासु अब, करन चहत है अन्त॥

सोरठा।

यह बिचारि नलभूप, कृपा रावरी अब करहु। जेहि न परहि दुखकूप, तथा ताहि उत्तर कहहु॥
पति को उचित न आन, पत्नी को रक्षण भरण। ये गुण किमि बिलगान, तुमसे धर्मी नृपति के॥
हौ तुम विदित कुलीन, दयावान ज्ञानी गुणी। भयो जु कृपा विहीन, मम कुभाग्य नहिं आनकछु॥
जानि आपनो कर्म, दया करहु हे नाथ अब। है यह संततधर्म तुमहीं से हमहूं सुन्यो ३७।४३॥

इसको सुनकर जो कोई मनुष्य तुमको कुछ भी उत्तर देवे उसको तुम निस्संदेह नल जानना और उसके रहने के स्थान और अवस्था को पूछकर जो कुछ वह उत्तर देवे उसे मुझसे आकर कहना और इस प्रकार से उससे सब बातें

पूछ लेना कि वह तुमको किसी प्रकार से न जानने पावे और जब तुम लौटो तब यह भी देखते आना कि वह धनवान् है अथवा निर्धन है और समर्थ है या असमर्थ है ४४ । ४७ यह सुनकर ब्राह्मण लोग नल को ढूंढ़ने के लिये सब दिशाओं की ओर चल दिये और अनेक नगर, ग्राम, देश, घोष और आश्रमों में जा जाकर दमयन्ती के शिक्षा किये हुए उक्त दोहों को सुनाने लगे परंतु उन लोगों ने नल का कहीं पता नहीं पाया ॥ ४८ । ५० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सत्तरवाँ अध्याय ।

पर्णाद ब्राह्मण का दमयन्ती के पास अयोध्यापुरी के राजा के सारथी का कहा हुआ उत्तर सुनाना और दमयन्ती का अपने स्वयंवर होने का संदेशा अयोध्यापुरी के राजा के पास भेजना ।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर ! बहुत दिनों के पीछे एक पर्णादनामी ब्राह्मण नगर में लौटकर दमयन्ती के पास आया और यह वचन कहने लगा कि हे दमयन्ति ! मैं राजानल को ढूंढ़ता हुआ अयोध्यानगरी में जाकर राजा ऋतुपर्ण के यहां पहुँचा १ । २ वहां मैंने राजसभा में तेरे शिक्षा किये हुए वाक्य सुनाये परंतु उनको सुनकर राजा ऋतुपर्ण अथवा उसके सभासदों में से किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया ३ । ४ तब मैं वहां से चल दिया पीछे से उस राजा के बाहुकनामी कुरूप सूत ने जो घोड़ों के शीघ्र चलाने में अत्यन्त निपुण और भोजन बनाने में स्वादिष्ठपाकी था आकर मुझसे कुशल पूछी और बहुतसी श्वास लेकर और वारंवार रोकर यह उत्तर कहा ॥ ५ । ७ ॥

सो० जेतिय परम कुलीन, भावीवश लहि विषमता । रक्षहिं आपुहि दीन, ते स्वर्गहि जीतहिं अवशि ॥
पति सों पाय वियोग, कोप न ते कबहूं करहिं । राखहिं प्राणनियोग, पहिरि चरितरूपी कवच ॥
अस विचारि सो नारि, जाहि तजो विषमस्थपति । पति को मूढ़ विचारि, क्रोध न तापै कछु करहि ॥
प्राण हरणहित कीन, जाको पट पक्षिन हरण । रोष न करिबो लीन, तो पति पैहै सुन्दरी ॥
भ्रष्टराज्य धनहीन, व्यथा व्यग्र अति शोचवश । क्षुधित दुखी अरु दीन, व्यसनाप्लुत हो तोरपति ॥
असगति तासु विचारि, हे वरभामिनि क्रोध तजि । है तू प्रियपतिनारि, सत्कृत अथवा असत्कृत ८ । १२

हे दमयन्ति ! मैं उस मनुष्य के उक्त उत्तर को सुनकर यहां चला आया हूं अब तू राजा से कहकर जो चाहे सो कर १३ यह सुनकर दमयन्ती की आंखें प्रेम के आंसुओं से डबडबा आईं और वह अपनी माता के पास एकान्त में जाकर कहने लगी १४ कि हे मातः ! मैं सुदेव ब्राह्मण को अयोध्यापुरी में नल को लाने के लिये शीघ्र भेजना चाहती हूं वह वहां जाकर जैसे मुझे लाया था

नल को भी ले आवेगा परंतु जो तू मेरा प्रिय चाहती है तो जो कुछ मैं सुदेव को तेरे समीप शिक्षा करूं उसको राजा भीम अर्थात् मेरा पिता न जानने पावे यह कहकर दमयन्ती ने पर्णाद ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर बिदा किया और कहा कि हे द्विजोत्तम ! तुमने मेरा ऐसा काम किया है जो दूसरा नहीं करसक्ता हैं जब मुझको राजानल मिल जायगा तब मैं तुमको और बहुत सा धन दूंगी। उससमय वह सफल मनोरथवाला महामनस्वी ब्राह्मण धन लेकर आशीर्वाद देता हुआ घर को चला गया। पीछे से हे युधिष्ठिर ! दमयन्ती ने दुःखी होकर सुदेव ब्राह्मण को बुलाया और अपनी मांके सम्मुख उससे कहा १५।२२ कि हे सुदेव! तुम यहांसे बहुत शीघ्र अयोध्यानगरीको चलेजावो और वहांके राजा ऋतुपर्ण से यह कहना कि राजा भीमकी दमयन्ती नाम पुत्री फिर अपना स्वयंवर किया चाहती है क्योंकि नलका कुछ पता नहीं है, न जाने जीता है या मरगया, उसके स्वयंवर में बहुत से राजा और राजकुमार जा रहे हैं परंतु वह तुमको पति बरना चाहती है। हे शत्रुदमन ! जो तुमसे होसके तो कल सूर्योदय तक वहां पहुँच जावो क्योंकि वह सूर्योदय पर किसीको अपना पति बरेगी २३।२६ यह सुनकर सुदेव ब्राह्मण वहां से चल दिया और अयोध्यापुरी में शीघ्र पहुँचकर वहां के राजा ऋतुपर्ण से सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इकहत्तरवाँ अध्याय ।

राजा ऋतुपर्ण का बाहुक से परीक्षा किये हुए घोड़ों को रथ में जुतवाकर बाहुक सहित अयोध्यापुरी से विदर्भदेश को चलना ।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर ! राजा ऋतुपर्ण सुदेव ब्राह्मण की बात को सुनकर मधुरवाणी के साथ बाहुक से कहने लगा कि हे हयतत्त्व के ज्ञाता ! जो तुझसे होसके तो मैं एक ही दिन में विदर्भदेश में दमयन्ती के स्वयंवर में पहुँचना चाहताहूं १।२ यह सुनकर बाहुक अर्थात् नलका मन दुःख से विदीर्ण होगया और वह विचारनेलगा आश्चर्य है जो दमयन्ती दुःख से मोहित होकर ऐसी बात कहे अथवा करे। मेरी जान में दमयन्ती ने यह बड़ाभारी उपाय मेरे बुलानेके लिये कियाहै ३।४ हाय ! बड़े दुःखकी बात है जो मुझसे नीच, कृपण और पापबुद्धि मनुष्य ने उस तपस्विनी विदर्भराज की पुत्री का जो अब पति बरना चाहती है निरादर किया ५ हां संसार में स्त्रियों का स्वभाव चल विचल होताही रहता है

और मेरा भी बड़ाभारी दोष है ऐसी अवस्था में जो वह प्रीति न होने के कारण से ऐसा करे भी तो भी आश्चर्य नहीं ६ परंतु वह सती है और विशेषकर संतान रखती है, वह मेरे शोक में संविग्नचित्त रहकर ऐसा कभी न करेगी ७ जो कुछ इसमें सत्य और असत्य है वह वहांही जानेपर निश्चय होगा इससे अब मुझको अपने मनोरथ को जानने के लिये इस राजा ऋतुपर्ण की कामना पूरी करनी चाहिये ८ यह मन से विचारकर और दुःखी होकर बाहुक ने हाथ जोड़कर राजा ऋतुपर्ण से कहा ९ कि महाराज ! मैं आपकी इच्छा के अनुसार एकही दिन में विदर्भदेश में आपको पहुँचादूंगा १० इसके पीछे बाहुक ने राजा ऋतुपर्ण की आज्ञा से घुड़शाला में जाकर घोड़ों की परीक्षा की ११ और सब घोड़ों को वारंवार देखकर उन घोड़ों को जाकर देखने लगा जो लटे हुए थे परंतु समर्थ, शीघ्रगामी, कुलीन, शतपदी आदि लक्षणों से हीन और शान्ति, शक्ति और कान्तियुक्त थे, ये घोड़े सिन्धुदेशके थे, नाक इनकी बड़ी और वेग वायु का सा था और दशों भौंरियों से शुद्ध थे यह देखकर राजा कुछ क्रोध सा करके बाहुक से बोला १२ । १४ कि तुमको हमें धोखा देना उचित नहीं है ये अल्प पराक्रमी घोड़े मुझे क्योंकर ले चलेंगे और ऐसे कठिन मार्ग को क्योंकर उल्लंघन करेंगे १५ यह सुनकर बाहुक बोला कि इन घोड़ों के माथे पर एक भौंरी, मूर्ध्निपर दो, दोनों बगलों में दो दो और दो भौंरी छाती और एक पीठ पर हैं ये घोड़े निस्संदेह आपको विदर्भदेश में एकही दिनमें पहुँचावेंगे परंतु हे राजन् ! जो आपको विश्वास न हो तो जिन दूसरे घोड़ों को आप कहें उनको रथ में जोतूं १६ । १७ यह सुनकर ऋतुपर्ण बोला कि हे बाहुक ! हयतत्त्व के ज्ञाता तो तुमही हो जो घोड़े तुम्हारी समझ में समर्थ हों उनको ही रथ में जोतो १८ यह सुनकर बाहुक ने उन वायु के समान वेग रखनेवाले चारों घोड़ों को रथ में जोता और ऋतुपर्ण उस रथ पर आतुरता के साथ सवार हो गया उसके सवार होते हीं वे घोड़े घोटुओं के बल गिर पड़े १९ । २० तब बाहुक ने शीघ्रता से उन घोड़ों के पास जाकर उनको पुचकारा और वार्ष्णेय सारथी को हटाकर घोड़ों की बागडोर आप हाथ में लेली और घोड़ों को बड़े वेग के साथ हांका, विधि के अनुसार हांकने पर वे घोड़े पृथ्वी छोड़कर रथ को लिये हुए आकाशमार्गी हुये और वायु के तुल्य शीघ्र चलने लगे यह देखकर अयोध्या के श्रीमान् राजा ऋतुपर्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ २१ । २४ और वार्ष्णेय सारथी

भी उस रथ के शब्द को सुनकर विचारने लगा कि यह बाहुक तो बड़ा गुणवान् और हयतत्त्व का ज्ञाता है क्या यह इन्द्र का सारथी मातलि है, जो यह बाहुक परपुरंजय राजा नल हो तो भी कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि यह बड़ा शालिहोत्री दीखता है और जो नल नहीं है तो यह उसी विद्या का जाननेवाला है जिसको नल जानता है क्योंकि मुझको बाहुक के हयतत्त्व का ज्ञान राजा नल के समान ही मालूम होता है २५। २६ बाहुक की अवस्था तो नल ही के सदृश है परंतु स्वरूप इसका वैसा नहीं है इससे मैं यह प्रमाण नहीं कर सकता हूँ कि यह नल ही है, हां नल के समान विद्यावान् है परंतु जो यह नल भी हो तो भी क्या आश्चर्य है, दैवविधि और शास्त्रवेत्ता महात्मा लोग पृथ्वीपर गुप्तही विचरा करतेहैं, अवस्था और गुण तो नलसे मिलतेहुए हैं केवल स्वरूप नहीं मिलता है मेरी समझ में यह बाहुक कुवेषधारी नल है ३०।३२ बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! इस प्रकार से उस नल के सारथी वार्ष्णेय ने बहुतसी बातें विचार कर बड़ी चिन्ता की ३४ और राजा ऋतुपर्ण बाहुक के हयतत्त्व के ज्ञान को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी एकाग्रता, उत्साह, यत्न और घोड़ों के पकड़ने की विधि को जानकर परम हर्षित हुआ॥ ३५।३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

बहत्तरवाँ अध्याय।

राजा नल का रथ को आकाशमार्ग में हांककर विदर्भदेश को चलना, राह में राजा ऋतुपर्ण का उसे अक्षहृदयविद्या देना और उसके प्रभाव से कलिका नल के शरीर से बाहर निकलना और नल का सब दुःख दूर होना।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! थोड़े ही काल में वह राजा नल नदी, पर्वत, वन और सरोवरों को पक्षी की भांति नांघता हुआ दूर निकल गया राह में परपुरंजय राजा ऋतुपर्ण का उत्तरीयवस्त्र रथ से नीचे गिरपड़ा उस समय जल्दी मचानेवाले महामनस्वी राजा ऋतुपर्ण ने नल से कहा कि हे बाहुक! थोड़ी देर को रथ थांभ दो, मेरा उत्तरीय वस्त्र गिर पड़ा है यह वार्ष्णेय उसे दौड़कर उठा लावे १। ४ यह सुनकर नल ने कहा कि महाराज! वह वस्त्र यहां से एक योजनपर रह गया अब नहीं आसकता है ५ इसके पीछे राह में राजा ऋतुपर्ण एक बहेड़े के वृक्ष को देखकर नल से कहने लगा कि हे बाहुक! संख्या करने में मेरे भी बल को देखो किमैं कितनी जल्दी गिन सकताहूं सब मनुष्य सब बातों के ज्ञाता नहीं होते हैं और कोई सर्वज्ञ भी नहीं है और यह भी नहीं है कि एक

ही मनुष्य में ज्ञान की परिनिष्ठा हो ६।८ इस वृक्ष के नीचे एकसौ एक पत्ते और एकसौ दो फल पड़े हुए हैं और इसकी दोनों शाखाओं में पांच करोड़ पत्ते और दो सहस्र पंचानबे फल हैं ६।११ यह सुनकर नल ने रथ ठहरा दिया और राजा से कहने लगा कि जबतक मैं आप इस वृक्ष के पत्ते और फलों को गिन न लूं तबतक कुछ विश्वास नहीं कर सकता इससे मैं आपके सामने इस वृक्ष के पत्तों को तोड़कर गिनता हूं और फलों की भी संख्या करता हूं हे वार्ष्णेय! तू थोड़ी देर तक इन घोड़ों की बागडोर थांभे रह १२।१५ यह सुनकर राजा बोला कि हे बाहुक! यह समय विलम्ब करने का नहीं है तब बाहुक ने कहा कि महाराज! एक मुहूर्त ठहरिये मैं इसके पत्ते और फलों को गिनलूं और जो आपको जल्दी है तो यह सीधी राह विदर्भदेश को गई है आप वार्ष्णेय से रथ हँकवाकर चले जाइये १६।१७ यह सुनकर ऋतुपर्ण बोला कि हे बाहुक! तेरे समान रथ का चलानेवाला पृथ्वी पर कोई नहीं है, तू अश्वविद्या में बड़ा निपुण है, तेरेही कारण से मैं विदर्भदेश में पहुँचना चाहता हूं, मैं तेरी शरण हूं, तुझे मेरी यात्रा में विघ्न करना उचित नहीं है। हे बाहुक! जो तू मुझे विदर्भपुरी में ऐसे समयपर पहुँचा देगा कि सूर्य वहां पहुँचकर निकलें तो मैं तुझको जो कुछ तू चाहेगा सो दूंगा १८।२० यह सुनकर बाहुक बोला कि मैं इस वृक्ष के पत्ते और फलों को गिनकर विदर्भदेश को चलूंगा आप मेरे कहने के अनुसार ठहरिये २१ यह सुनकर राजा विमन होकर बोला कि अच्छा भाई! तू इस शाखा के पत्ते और फलों को गिनकर अपना मन प्रसन्न कर यह सुनकर नल रथ से उतर पड़ा और उस वृक्ष की शाखा के पत्तों को नोचकर गिनने लगा जब गिन चुका तब उसने बड़ा आश्चर्य किया और राजा के पास आकर कहने लगा कि जितने पत्ते और फल आपने बतलाये थे उतने ही हैं २२।२४ हे राजन्! आपकी यह विद्या बड़ी अद्भुत है तुम्हारा बल मैंने देख लिया अब मैं भी उस विद्या का नाम जानने में आतुर होता हुआ सुना चाहता हूं जिसके बल से तुम यह बतला सकते हो २५ राजा ऋतुपर्ण नल से बोला कि मैं अक्षहृदय का ज्ञाता और संख्या करने में बड़ा चतुर हूं २६ यह सुनकर बाहुक ने कहा कि हे महाराज! मुझको आप यह विद्या दीजिये और इसके बदले में मुझसे भी अश्वहृदय लीजिये २७ राजा ऋतुपर्ण यह सुनकर अपने कार्य की गौरवता और अश्वविद्या के लोभ के कारण से बोला कि ऐसाही होगा २८ हे बाहुक!

लो तुमको हम अक्षहृदयविद्या विधिपूर्वक बतलाते हैं और अश्वहृदयविद्या को अपने पास हमारी धरोहर रक्खो २९ यह कहकर राजा ने नल को वह विद्या बतला दी उसके जानते ही नल के शरीर में से कर्कोटक के विष की अग्नि को उगलता हुआ कलि और उसकी शापाग्नि जिसके कारण से नल इतने दिनों से मूढ़ होरहा था बाहर निकल आया ३०।३१ विष की अग्नि के शान्त होनेपर कलि ने अपना स्वरूप धारण किया उसको देखकर राजा नल ने क्रोधित होकर शाप देना चाहा ३२ परंतु नल शाप नहीं देने पाया था कि कलि ने भय से कंपित होकर दोनों हाथ जोड़कर नल से विनय की कि आप अपने क्रोध को शान्त कीजिये मैं आपको बड़ी कीर्ति दूंगा ३३ सिवाय इसके जब आप इन्द्रसेन की माता को त्यागकर चले आये थे तब उसने मुझको क्रोधित होकर शाप दिया था मैं उसी से महादुःखी होरहा हूं ३४ हे राजेन्द्र! तुम्हारे शरीर में भी बसता हुआ मैं नागराज के विष से दिन रात्रि जलता रहा हूं ३५ अब मैं तुम्हारी शरण हूं जो तुम मुझ भयभीत और शरणागत को शाप न दोगे तो जो मनुष्य तुम्हारा संसार में कीर्तन करेंगे उनको मेरी बाधा कदापि न होगी। यह सुनकर राजा नल ने अपना क्रोध शान्त किया ३६।३७ और वह भयभीत कलि शीघ्रता से उस बहेड़े के वृक्ष में घुस गया कलि और नल के उक्त वार्त्तालाप को और किसीने नहीं जाना ३८ कलि के निकल जानेपर राजा नल का सब ज्वर जाता रहा और वह प्रसन्न होकर उस तेजस्वी रथ पर सवार होगया और घोड़ों को हांककर वहांसे चलदिया ३९।४० तबसे बहेड़े का पेड़ कलि से संसर्ग होने के कारण से अधम माना जाताहै। राजा नल से हांके जानेपर वे घोड़े पक्षियों की भांति उछलते हुए चलने लगे और नल उनको विदर्भदेश की ओर मोड़कर ले चला ४१।४२ जब बहुत दूर पर निकल गया तब कलि उस वृक्ष में से निकलकर अपने घर को चलागया और राजा नल भी सब दुःखों से छूटकर प्रसन्न होगया केवल अपने रूप ही से भिन्न रहा॥ ४३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय।

राजा ऋतुपर्ण का कुण्डिनपुर में पहुँचना और राजा भीम के यहां टिकना
और दमयन्ती का नल को ढूंढने का प्रयत्न करना।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! सायंकाल के समय सत्यपराक्रमी राजा ऋतुपर्ण कुण्डिनपुर के समीप जा पहुँचा और लोगबागों ने उसके आने का

समाचार राजा भीम से कह सुनाया उसने राजा ऋतुपर्ण को लाने की आज्ञा दी और उसकी आज्ञा पाकर राजा ऋतुपर्ण का रथ दिशा और विदिशाओं को अपने शब्द से नादित करता हुआ नगर के भीतर आया १।२ नल के घोड़े उस रथ के शब्द को सुनकर इस प्रकार से हींसने लगे जैसे पहिले नल के पास होनेपर हींसते थे ३ और दमयन्ती को वह शब्द ऐसा सुनपड़ा मानो वर्षाऋतु के बादल गरज रहे हैं ४ उस बड़े भारी नाद को सुनकर दमयन्ती चकित होगई और उसने और घोड़ों ने उस रथ के शब्द को ऐसा समझा जैसे पहिले जब नल घोड़ों को रथ में जोड़कर हांकता था तब होता था ५ उस शब्द को सुनकर मोर, घोड़े और हाथी ऊंचेस्वरसे अपनी अपनी बोली बोलने लगे ६।७ तब दमयन्ती कहने लगी कि इस रथ का शब्द पृथ्वी को पूर्ण और मेरे चित्त को प्रसन्न करता है इसमें नल अवश्य है ८ और जो वह चन्द्रमा का सा मुख और असंख्य गुण रखनेवाला शूरवीर राजा नल इसमें नहीं हुआ तो मैं अवश्य अपने प्राणों को छोड़ दूंगी ९ नल की भुजाओं का स्पर्श बड़ा सुखदायी है जो उन भुजाओं के बीच में मेरा यह शरीर न प्रवेश होगा तो यह शरीर न रहेगा १० जो अब भी मेघसम नादवाला राजा नल नहीं मिला तो मैं अपने आपको अग्नि में जला दूंगी ११ और इसमें भी संदेह नहीं है कि जो वह सिंहविक्रान्त और मतवाले हाथी का सा पराक्रम रखनेवाला राजाओं में प्रधान राजा नल मेरे पास नहीं आवेगा तो मैं निस्सन्देह मरजाऊंगी १२ मैंने कभी अपने पति के साथ झूंठ नहीं बोला है, न कभी उसका कुछ अपकार किया है और स्वतन्त्र रहनेपर भी कभी उसकी आज्ञा के विपरीत नहीं किया है १३ और मेरा पति भी बलवान्, क्षमावान्, शूरमा और दाता है और सत्पुरुषों के मार्गपर चलनेवाला ऐसा है कि स्त्रियों के बीच में क्लीब के समान रहता है अर्थात् परस्त्री की ओर कभी दृष्टि नहीं करता है १४ उस अपने प्यारे पति के गुणों को याद कर कर के मेरा हृदय दिनरात विदीर्ण हुआ करता है १५ बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! इसप्रकार से दमयन्ती विलाप करती हुई महल के ऊपर चढ़गई और बीच की कक्षा में से नल को देखने लगी और राजा ऋतुपर्ण को रथ में बाहुक और वार्ष्णेय सारथियों समेत देखा १६।१७ इसके पीछे राजा ऋतुपर्ण रथसे उतरकर भीमपराक्रमी राजा भीम के पास चला गया और बाहुक और वार्ष्णेयने रथ से उतर कर घोड़ों को छोरा और रथ को एक ओर खड़ाकर

दिया १८।१६ राजा भीम ने राजा ऋतुपर्ण को बड़े आदर सत्कार से लिया और वह उस रमणीय कुण्डिनपुर में सुखपूर्वक वास पाने पर चकित होकर इधर उधर देखने लगा परंतु उसने स्वयंवर होने की कुछ बातचीत नहीं सुनी उस समय राजा भीम ने उससे पूछा कि आपका आना कैसे हुआ है २० । २२ यह सुन कर उस सत्य पराक्रमवान् बुद्धिमान् राजा ऋतुपर्ण ने यह विचार कर कि यहां न कोई राजपुत्र आया है, न ब्राह्मण आये हैं और स्वयंवर की कुछ बातचीत भी कहीं सुनने में नहीं आती है, यह नहीं कहा कि मैं आपकी पुत्री के लिये आया हूं किन्तु विचारकर यह उत्तर दिया कि मैं केवल आपसे मिलने और आपको नमस्कार करने आया हूं २३ । २५ यह सुनकर राजा भीम चकित हो गया और विचारने लगा कि यह सौ योजन से भी अधिक दूरपर अनेक राजाओं के देशों को नांघता हुआ यहां आया है इसके आने का कारण ऐसा तुच्छ न होगा जैसा यह कहता है कोई बड़ा ही कारण होगा मैं इस कारण को इससे फिर किसी समय पूछूंगा यह विचार कर उसने राजा ऋतुपर्ण को बिदा नहीं किया किंतु वारंवार यह कहा कि आप थके हुए हैं विश्राम कीजिये यह सुनकर राजा ऋतुपर्ण राजा भीम के बताये हुए स्थान में सेवकों सहित प्रसन्न होकर जा उतरा और वार्ष्णेय और राजा ऋतुपर्ण के चले जानेपर बाहुक रथको लेकर रथशाला में चला गया और उसने घोड़ों को छोरकर बाँध दिया और शास्त्र की रीतिसे उनकी सब उपचर्या की २६।३१ उपरान्त रथपर बैठ गया उस समय दमयन्ती राजा ऋतुपर्ण, वार्ष्णेय और बाहुक को देखकर विचारनेलगी कि इनके आनेपर किसके रथ का शब्द हुआ था ३२।३३ ऐसा शब्द तो नल के ही रथ का था परंतु उसको तो मैं यहां नहीं देखती हूं, क्या यह विद्या वार्ष्णेय ने भी सीखली है ३४ जो ऐसा रथके चलनेका शब्द हुआ अथवा यह नहीं तो क्या यह राजा ऋतुपर्ण भी राजा नल के समान है जो इसके रथ का शब्द वैसाही हुआ जैसा नल के रथ का शब्द होता था इस प्रकार से दमयन्ती ने अनेकप्रकार की बातें विचारकर नल को ढूंढ़ने के लिये अपनी दूती भेजी ॥ ३५ । ३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय।

दमयन्ती का नल का हाल जानने के लिये बाहुक के पास केशिनीनाम दूती को भेजना और बाहुक व उस दूती का प्रश्नोत्तर होना।

दमयन्ती ने केशिनीनाम दूती को बुलाकर कहा कि हे केशिनि! देख यह जो

कुरूप छोटी छोटी बाहें रखनेवाला मनुष्य रथके निकट बैठा हुआ है इसके पास तू जा और सावधानी से मृदुवचन कहकर उससे कुशल पूछ और पर्णाद ब्राह्मण ने जो कुछ कहा था उसको उससे कहकर उसका उत्तर पूछकर मेरे पास चली आ इसमें मुझको बड़ा संदेह होरहा है मेरी समझ में यह राजा नल है तू जल्दी जाकर सब बातें पूछि आ जिससे मेरे मनकी तृप्ति और हृदय की परमसुखता होवे १।४ यह सुनकर सावधान हुई केशिनी बाहुक के पास गई और कल्याणी दमयन्ती भी खड़ी महल के ऊपर से देखती रही उससमय केशिनी ने बाहुक के पास जाकर पूछा कि हे नरेन्द्र ! आपका यहा आना शुभ हो, मैं आपकी कुशल पूछने आई हूं, दमयन्ती आपसे पूछती है कि आप कब चले थे और यहां किस प्रयोजन से आये हैं उसे तुम यथोचित कहो ५।७ यह सुनकर बाहुक बोला कि मैं राजा कोशल का सारथी हूं उस महात्मा राजा कोशल ने किसी ब्राह्मण के मुख से सुना था कि कल के दिन दमयन्ती का दूसरा स्वयंवर होगा, यह सुनकर वह राजा वायुके समान वेगवाले सौ योजन चलनेवाले मुख्य घोड़ों को रथ में जुतवाकर यहां आया है और मैं उसके साथ आया हूं ८।९ यह सुनकर केशिनी बोली कि तुम्हारे साथ यह तीसरा मनुष्य कौन है और किसका पुत्रहै और तुम किसके पुत्र हो ? और यह काम तुमने कहां सीखा है १० बाहुक बोला कि तीसरा मनुष्य वार्ष्णेय नाम महायशस्वी नल का सारथी है, नल के निकल जानेपर उसने राजा ऋतुपर्ण के यहां वेतन प्राप्त किया है अर्थात् नौकरी करली है ११ और मैं अश्वविद्या में पंडित हूं, राजा ने मुझे भी सारथ्य करने और भोजन बनाने के लिये नियत किया है १२ केशिनी बोली कि हे बाहुक ! वार्ष्णेय जानता है कि राजा नल कहां को चला गया है तुमसे कभी उसने इस बात की चर्चा की होगी १३ बाहुक बोला कि वार्ष्णेय राजा नल के पुत्र और पुत्री को यहां छोड़कर चला गया था वह राजा नल का हाल कुछ नहीं जानता है और न कोई और मनुष्य है जो नल को जानता हो, नल नष्ट रूप होकर गुप्त विचरता है १४।१५ नल की स्त्री आपही नल के हाल को जानती है और नल अपने चिह्नों को कभी नहीं बतलाता है १६ केशिनी बोली कि पहले जो ब्राह्मण इन नारीवचनों को वारंवार कहता हुआ अयोध्यापुरी को गया था ॥ १७ ॥

सो० अर्धवस्त्र करि शेश, वन में सोवत हमाहिं ताजि। कितव गये क्यहि देश, हम तव भार्या प्रीतिरत १८
यथा कह्यो तुम वीर, तथा लखतिहौं बाट तव। दहहुँ हृदयगत धीर, अर्धवस्त्र धारण किये १९
निशिदिन रोवत जान, हे पार्थिव अब करुकृपा। हौं मैं दुखी महान, मोहिं उचित उत्तर कहहु २०

हे महामते! तुमने उनको सुनकर जो उत्तर दिया था उसीको फिर कहिये दमयन्ती उस प्रिय उत्तर को फिर सुना चाहती है २१। २२ बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! यह सुनकर बाहुक का हृदय दुःख के कारणसे भीतर से भर आया और आंखों में आंसू भर आये २३ परंतु जलते हुए उस राजा ने मन के वेग को रोका और उसकी वाणी गद्गद होगई। वह कहने लगा कि मैंने यह उत्तर कहा था कि जो स्त्रियां कुलीन होती हैं वे आपत्तिकाल के पड़नेपर अपने आप अपनी रक्षा करती हैं और ऐसी वर स्त्रियां निश्चय स्वर्ग को अपने वश में करलेती हैं और अपने पतिपर क्रोध कभी नहीं करती हैं किंतु अपने पति के चरित्ररूपी कवच को पहिनकर अपने प्राणों को धारण करती हैं २४। २६ यद्यपि उस स्त्री को उसके मूढ़ और दुःखी पति ने आपत्तिकाल में त्याग दिया है परंतु उस स्त्री को यह समझकर कि पक्षियों ने मेरे पति के प्राण लेने की इच्छा से उसका वस्त्र हर लिया था और मेरा पति मन से दुःखी दह्यमान है भ्रष्टराज्य, धनहीन, व्यसन में डूबा हुआ और भूंखा प्यासा था, अपने पतिपर श्यामा स्त्री को क्रोध न करना चाहिये क्योंकि वह स्त्री अपने पति की औरसे सत्कृत अथवा असत्कृत कैसीही है परंतु अपने पति की प्यारी है २७। २९ बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! बाहुक इसप्रकार से कहकर अपने दुःख के वेग को न रोकसका और रोरो कर आंसू बहाने लगा ३० यह देखकर केशिनी दमयन्ती के पास चली गई और उससे सब वृत्तान्त कहकर बाहुक के दुःखी होने और रोने का सब हाल कह सुनाया॥ ३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय।

दमयन्ती का अनेक प्रकार से केशिनी दूती को भेजकर बाहुक की परीक्षा करना और उसको यह जानना कि यह नलही है।

बृहदश्व बोले, हे राजा युधिष्ठिर! उस अत्यन्त शोकाकुल दमयन्ती ने उक्त बातें सुनकर बाहुक को जाना कि यह राजा नल है और यह शङ्का करके उसने केशिनी दूती से कहा कि तू फिर बाहुक के पास जा और उसके पास रहकर उसके चरित्रों को देखती रह, उससे तू बोलियो मत और जो कुछ वह करे उसे देखती रहियो जो वह तुझसे अग्नि अथवा जल मांगे तो तू हठ करके उसे कभी न दीजो इस प्रकार से तू उसके पास रहकर उसकी सब बातों को देखियो और जो कुछ तुझे उसकी दैवी अथवा मानुषी बातें जानपड़ें उनको मुझसे आकर कहियो। यह सुनकर वह केशिनी बाहुक के समीप चली गई १। ६ और उसके पास रह

कर उसके सब चरित्र और दैवी और मानुषी कारणों को देखकर फिर दमयन्ती के पास चली आई और कहने लगी कि ७ हे दमयन्ति! इस मनुष्य का आचार तो बड़ा ही पवित्र है, मैंने तो ऐसा मनुष्य कभी न देखा है, न सुना है ८ उसमें एक तो मैंने यह बात देखी कि जब वह किसी छोटे द्वार में होकर निकलता है तब झुकता नहीं है वह द्वार आपही बड़ा होजाता है फिर राजा भीम ने राजा ऋतुपर्ण के भोजनों के लिये अनेक प्रकार के मांस भेजे और रीते घड़े भी भेज दिये थे उस मनुष्य ने उन मांसों को धोनेके लिये घड़े रख दिये और उनकी ओर निगाह भर के देखा देखते ही वे घड़े जल से भर गये तब उस मनुष्य ने जल से मांस धोये और उनको चूल्हे पर चढ़ा दिया ९।१२ इसके पीछे उसने एक मुट्ठी भर तृण अपने हाथ में लेलिये और उनको सूर्य की ओर दिखाया दिखाते ही वे तिनके अकस्मात् जलने लगे मैं ये बातें देखकर चकित होगई इनके सिवाय और भी बड़े आश्चर्य की बातें मैंने यह देखीं कि वह अग्नि को हाथ से पकड़ लेता है और उससे जलता नहीं है और जल की धारा जिधर वह चाहता है उधर ही गिरने लगती है और सबसे बड़े अचंभे की बात मैंने यह देखी कि उसने फूलों को लेकर हाथों से मल डाला परंतु वे फूल न मैले हुए और न उनकी गंध दूर हुई किंतु प्रफुल्लित ही बने रहे मैं इन सब आश्चर्य की बातों को देखकर जल्दी से तेरे पास चली आई १३। १७ बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! दमयन्ती ने बाहुक के उक्त कर्मों को सुनकर जान लिया कि यह नल है परंतु स्वरूप की ओर से उसके नल न होने की शङ्का करके उसने रोकर मधुरवाणी से फिर केशिनी से कहा १८। १९ कि हे भाविनि! तू अब जाकर बाहुक के बनाये हुए मांस में से थोड़ासा गरम गरम मांस लेआ २० यह सुनकर केशिनी शीघ्र वहां चली गई और बाहुक के देखते हुए थोड़ासा मांस उठाकर ले आई दमयन्ती ने नलके हाथ का बनाया हुआ मांस बहुत बार खाया था इस कारण से वह उसके स्वाद को जानती थी उस मांस को खातेही उसने जान लिया कि बाहुक निश्चय नल ही है यह जानकर वह अकस्मात् पुकार उठी कि हे भरतवंशिन्! और विकल होगई उपरान्त उसने अपना मुख धोडाला २१। २३ अपने पुत्र और पुत्री को केशिनी के साथ करके बाहुकके पास भेजे वह उन देवस्वरूप अपने पुत्र और पुत्रीको देखकर उनके पास चला आया और उनसे मिलकर बड़े प्यार से उन दोनों को अपनी गोद में बैठा

लिया और दुःखी होकर ऊंचे स्वर से रोने लगा २५।२६ और फिर अकस्मात् उनको छोड़कर केशिनी से कहने लगा कि इन दोनों बालकों का स्वरूप मेरे पुत्र और पुत्री का सा है इससे मैं इनको देखकर रोने लगा, मैं एक परदेशी अतिथि हूं, तू अब यहां से चली जा तेरे वारंवार मेरे पास आने से मनुष्य तेरी ओर से कामदोष की शङ्का करने लगेंगे ॥ २७ । २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय।

दमयन्ती का अपने माता और पिता की आज्ञा से बाहुक को अपने भवन में बुलाना
वहां उन दोनों का प्रश्नोत्तर होना, बाहुक का अपना नल का स्वरूप पाना
और दमयन्ती तथा नल का परस्पर मिलकर परमानन्द पाना।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! केशिनी पवित्र कीर्तिशाली, बुद्धिमान् बाहुक की बात सुनकर दमयन्ती के पास चली आई और उससे बाहुक का सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब दमयन्ती उस विकार को सुनकर महादुःखी हो केशिनी से बोली कि तू मेरी माता के पास जाकर यह कह दे कि मैंने बाहुक की अनेक प्रकार से परीक्षा कर ली है मेरी समझ में वह निस्सन्देह नल है परंतु मुझे केवल एक शङ्का उसके भिन्नरूप होनेकी है सो उस शङ्का को मैं आप मिटाना चाहती हूं सो या तो तुम बाहुक को मेरे पास भेज दो या मुझको आज्ञा दो कि मैं आप जाकर उसकी परीक्षा करूं और मेरे पिता से यह हाल कहकर विदित अथवा अविदित होकर जाने की मुझे आज्ञा दो केशिनी ने यह सुनकर दमयन्ती की माता से सब वृत्तान्त कह सुनाया वह अपनी बेटी के अभिप्राय को जानकर राजा भीमके पास गई और उससे सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा भीम ने उसको सुनकर बाहुक को दमयन्ती के भवन में ले जाने की आज्ञा दे दी और केशिनी दमयन्ती के माता पिता की आज्ञा से बाहुक को दमयन्ती के भवन में लिवा लेगई १।६ बाहुक दमयन्ती को अकस्मात् देखकर शोक और दुःखसे रोने लगा ७ और दमयन्ती भी उसकी गति को देखकर महाशोकाकुल होगई और कषाय वस्त्र धारण किये हुए मलिन शरीर और जटा रखाये हुए वह दमयन्ती बाहुक के पास आकर कहने लगी ८। ९ कि हे बाहुक! तुमने कभी ऐसा भी धर्मात्मा मनुष्य देखा है जो अपनी स्त्री को वन में सोती हुई छोड़कर चला गया हो १० सिवाय राजा नल के और कौन ऐसा पुरुष होगा जो अपनी प्यारी, निष्पाप और थकी हुई स्त्री को निर्जन वन में अकेली छोड़कर चला जावे ११ तुम जानते हो कि

मैंने उस राजा का अपनी अज्ञानता से क्या अपराध किया था जो वह मुझको वन में सोती हुई छोड़कर चला गया १२ मैंने देवताओं को छोड़कर उस राजा के साथ अपना विवाह किया था, मैं नहीं जानती हूं कि मुझ अनुव्रता, पुत्रवती और सब प्रकार से प्रीति रखनेवाली को उसने क्यों त्याग दिया १३ उस राजा ने अग्नि और देवताओं के सामने मेरा हाथ पकड़ कर यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुझसे सदैव प्रीति रक्खूंगा, वह प्रतिज्ञा उस राजा की कैसे भंग होगई ? १४ यह कहकर दमयन्ती शोक और दुःख से रोने लगी, बाहुक उसकी ऐसी पीड़ा और लाल लाल नेत्रों से आंसू गिरते हुए देखकर उससे कहने लगा १५ । १६ कि हे दमयन्ति ! न मैंने राज्य को अपने आप नष्ट किया था, न तुझको त्यागा था, इन दोनों बातों का कारण कलि था, तैंने उसको वन के बीच में महादुःखी और दिन रात मेरे शोक में पीड़ित होकर शाप दिया उस शाप से वह अग्नि में जलते हुए के समान जलता हुआ मेरे शरीर में रहा किया अन्त में मैंने उसको अपने निश्चय और तप से जीत लिया अब हम दोनों को फिर ऐश्वर्यवान् होना चाहिये १७ । २० जब कलियुग मुझको छोड़कर चला गया तब मैं यहां तेरे ही कारण से चला आया हूं नहीं तो मुझे यहां आने से क्या प्रयोजन था २१ भला ऐसी कौनसी स्त्री होगी जो अपने अनुव्रत प्रीति करनेवाले पति को त्यागकर दूसरा पति करना चाहे जैसा तू करना चाहती है । पृथ्वीपर चारों ओर दूत यह कहते फिरते हैं कि भीम की पुत्री अपनी इच्छा के अनुसार अपने समान दूसरे भर्त्ता को बरेगी यही सुनकर राजा ऋतुपर्ण भी यहां आया है २२ । २४ यह सुनकर दमयन्ती कम्पित और भयभीत होकर हाथ जोड़कर बोली कि हे कल्याणरूप ! आपको इस बात में दोषयुक्त मेरी ओर से शङ्का न करनी चाहिये, मैंने पहिले आपको देवताओं को छोड़कर बरा था २५ । २६ मैंने आपके ढूंढ़ने के लिये ब्राह्मणलोग भेजे थे और वे लोग मेरे कहे हुए वाक्यों को जहां तहां सुनाते फिरे, उनमें से एक पर्णाद नाम ब्राह्मण जो अयोध्या को गया था तुम्हारे कहे हुए उत्तर को लेकर मेरे पास आया, मैंने उस उत्तर से आपका वहां होना निश्चय करके आपके बुलाने के लिये यह उपाय निकाला था क्योंकि सिवाय आपके दूसरा मनुष्य घोड़ों के द्वारा एक दिन में सौ योजन नहीं जा सकता है २७ । ३० मैं आपका अनादर मन से भी कभी नहीं करती हूं और अपने सत्य से आपके चरणों

को छूकर शपथ करती हूं कि जो मैंने अपने मन में पाप विचारा होवे तो यह वायुदेवता जो सब जीवों का साक्षी है मेरे प्राणों को हरे ३१ । ३२ और सूर्यदेवता जो कि लोक में सदा घूमा करते हैं मुझे प्राणरहित करें ३३ और चन्द्रमा जो साक्षी के समान सब जीवों के अन्तर्यामी हैं मुझे पञ्चत्व को प्राप्त करें ३४ हे तीनों उक्त देवताओ ! तुम त्रिलोकी के धारण करनेवाले हो सत्य सत्य कहो अथवा मेरे प्राणों को शरीर से अलग करो ३५ दमयन्ती के इस प्रकार से कहने पर वायुदेवता ने आकाशमण्डल से कहा कि हे नल ! मैं तुझसे सत्य कहता हूं दमयन्ती ने पाप नहीं किया है इसने अपने समुद्र समान शील स्वभाव की रक्षा किया है हम इसके साक्षी और रक्षक तीन वर्ष से हैं ३६ । ३७ इसने केवल तेरे बुलाने के लिये यह उपाय विचारा था क्योंकि सिवाय तेरे और कोई मनुष्य सौयोजन एक दिन में नहीं आ जा सकता है ३८ इससे हे नल ! तू दमयन्ती के योग्य है और दमयन्ती तेरे योग्य है, तू किसी बात में शङ्का मत करे, अपनी स्त्री से प्रीतिपूर्वक मिल ३९ जब वायुदेवता उक्तप्रकार से कह चुके तब उन दोनों के ऊपर आकाश से फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओं ने दुन्दुभी बजाई और आनन्दरूपी पवन चलने लगी ४० यह देखकर नल को आश्चर्य हुआ और उसने शङ्का छोड़कर दमयन्ती को अपने पास बुलाया ४१ और कर्कोटक नाग के दिये हुए वस्त्र को ओढ़कर उस नाग का स्मरण किया स्मरण करते ही नल का स्वरूप पहिले के समान होगया ४२ तब वराङ्गना दमयन्ती उस स्वरूप को देख कर उसके समीप चली और उसे आलिङ्गन करके डींग मारकर रोने लगी ४३ राजा नल ने भी दमयन्ती को पहिले के समान आलिङ्गन किया और अपने पुत्र और पुत्री को भी हृदय से लगाकर प्यार किया ४४ इसके पीछे उस स्वरूपवान् और बड़े बड़े नेत्र रखनेवाली दमयन्ती ने नल के मुख को अपनी छातीपर रखकर गद्गद होकर श्वास लिया और नल भी उस मलिन अङ्गवाली दमयन्ती को हृदय से लगाकर शोक से भरा हुआ देरतक खड़ा रहा ४५ । ४६ इसके उपरान्त उन दोनों का सब वृत्तान्त दमयन्ती की माता ने राजा भीम से कह सुनाया ४७ उसको सुनकर राजा भीम बोला कि आज उन दोनों को सुखपूर्वक बसने दो प्रभातकाल जब वे स्नान आदि कर्म कर चुकें तब मैं आकर उनको देखूंगा ४८ रात्रि के आने पर उन दोनों ने प्रसन्न होकर सुखपूर्वक राजा भीम के घर में वास

किया और रात्रिभर एक दूसरे से मिल मिलकर अपना अपना पिछला हाल कहा ४९। ५० इस प्रकार से नल चौथे वर्ष अपनी स्त्री से मिलकर और सब कामनाओं को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ ५१ और दमयन्ती भी अपने पति को पाकर ऐसी वृद्धियुक्त हुई जैसे जलके पड़ने से खेती बढ़ती है ५२ उसका सब ज्वर और शोक दूर होगया और प्रसन्नता से अपने मनोरथ को पाकर ऐसी सुशोभित होगई जैसे चन्द्रमा के उदय होनेसे रात्रि सुशोभित होजाती है ॥५३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय।

राजा नल और दमयन्ती का राजा भीम से मिलना और राजा ऋतुपर्ण का नल से अपना अपराध क्षमा कराकर और उससे अश्वहृदयविद्या लेकर अपने नगर को चला जाना।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! प्रातःकाल होनेपर नल और दमयन्ती ने स्नान किये और सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहिन कर राजा भीम के पास गये। नल ने वहां जाकर अपने श्वशुर को प्रणाम किया और दमयन्ती ने अपने पिताकी वन्दना की १। २ राजा भीम ने नल को पुत्र के समान मानकर बड़े आनन्द से अपने हृदय से लगा लिया और उसकी और पतिव्रता दमयन्ती की यथायोग्य पूजा की इसके पीछे नल ने उस पूजा को अङ्गीकार करके ३। ४ अपना सब पूर्ववृत्तान्त राजा भीम से कह सुनाया और नगर के लोगों ने इस प्रकार से नल के आने के हाल को सुनकर बड़ी प्रसन्नता से आनन्द का शब्द किया और नगर को ध्वजा और पताकाओं से सुशोभित किया, सबने अपने अपने द्वारोंपर फूलों की बन्दनवारें बांध दीं और जितने राजमार्ग थे सबपर छिड़काव करा दिया गया और जितने देवमन्दिर थे सबमें देवताओं की पूजा की गई। ऋतुपर्ण भी यह हाल सुनकर कि कपटरूपी बाहुक राजा नल था यहां आकर दमयन्ती से युक्त हुआ है, बहुत प्रसन्न हुआ और नल को बुलाकर क्षमा चाहने के लिये ५। ९ अनेक कारण दिखाकर नल से कहने लगा कि आप प्रारब्ध से अपनी स्त्री दमयन्ती से फिर मिले हैं १०।११ और यद्यपि आप मेरे घर अज्ञात होकर रहे थे परंतु मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया है और जो जान अथवा अनजान में मुझसे कोई अपराध बन भी पड़ा हो तो आप उसको क्षमा कीजियेगा १२। १३ यह सुनकर नल बोला कि हे राजन्! तुमने मेरा कोई थोड़ासा भी अपराध नहीं किया है और जो आप अपराध करते भी तो भी मैं कोप नहीं करता, मुझे क्षमा ही करना उचित

है १४ तुम मेरे पहिले मित्र और सम्बन्धी हो तुमको मुझसे अपनी प्रीति रखनी चाहिये, मैं तुम्हारे घर में सुखपूर्वक रहा हूं और मेरी सब कामना पूरी हुई हैं, अपने घर में मैं ऐसे सुख से नहीं रहा था जैसा कि तुम्हारे घर में मैंने सुख पाया है अब जो तुमने मुझको अक्षहृदय का ज्ञान दिया है उसके बदले में मैं भी आपको अपनी विद्या दिया चाहता हूं यह कहकर नल ने राजा ऋतुपर्ण को अश्वहृदयविद्या दी तदनन्तर वह वेदोक्त रीति से उस विद्या को लेकर और अक्षहृदयविद्या नल को देकर रथ हांकने को दूसरा सारथी लेके अपने नगर को चला गया १५ । २० और नल ने उसके चले जाने पर थोड़े दिनोंतक कुण्डिनपुर में वास किया ॥ २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अठहत्तरवाँ अध्याय।

राजा नल का कुछ फ़ौज लेकर पुष्कर के पास जाना और उससे जुए में सब राज्य और धन जीतकर उसके प्राण छोड़कर उसे उसके देश को भेज देना।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह महामनस्वी महिपाल वीरसेन का पुत्र राजा नल एक महीना कुण्डिनपुर में बसा उपरान्त राजा भीम से बिदा होकर एक रथ, सोलह हाथी, पचास घोड़े और छः सौ प्यादे लेकर वहां से चल दिया और क्रोध करके बड़ी शीघ्रतापूर्वक पृथ्वी को वेग से कँपाता हुआ अपने नगर में पहुँचा और पुष्कर से मिलकर बोला कि मैंने बहुतसा धन इकट्ठा किया है आवो हम तुम फिर जुआ खेलें। दमयन्ती आदि जो कुछ मेरे पास धन है उस सबको मैं दाँव पर लगाता हूँ तू भी राज्य को दाँवपर लगा दे १ । ५ और दूसरा दाँव हमारे तेरे प्राणों का होगा। सनातन धर्म यही है कि जिसका राज्य या धन जो कोई जुए में जीत ले वह फिर दूसरी बेर भी हारे हुए से जुआ खेले ६ । ७ सो या तो तू हमसे फिर जुआ खेल नहीं तो युद्ध कर, हम और तू दोनों रथ में बैठकर युद्ध करें ८ बड़ों की यही आज्ञा है कि जिस प्रकार से बने इस वंशभोज्य राज्य को पाने का उपाय करें ९ सो हे पुष्कर! आज इन दोनों बातों में से जौन सी तू चाहे उसे अङ्गीकार कर, चाहे अक्ष लेकर सभा में जुआ खेल, चाहे हाथ में धनुष लेकर युद्ध कर १० यह सुनकर पुष्कर अपनी जीत निश्चय जानकर हँस कर नल से बोला ११ कि हे नल! तुमने मेरे भाग्य से इतना धन जुआ खेलने को इकट्ठा किया है और यह भी मेरा ही भाग्य है जो दमयन्ती के अब सब

पाप क्षीण होगये, मेरे ही प्रारब्ध से तुम स्त्रीसहित जी रहे हो, निश्चय आज मैं सब धन सहित तुझको जीतूंगा और उस जीत के धन से अलंकृत होकर दमयन्ती मेरे समीप इस प्रकार से शोभा पावेगी जैसे इन्द्र के पास अप्सरा बैठी हुई शोभा देती हैं। मैं तुमको नित्य ही याद किया करता था, क्योंकि दूसरे मनुष्यों से जुआ खेलने को मेरा मन नहीं चाहता था अब मैं स्त्रियों में श्रेष्ठ इस दमयन्ती को जीतकर कृतकृत्य होऊंगा यह मेरे हृदय से एक क्षण भर भी दूर नहीं होती है ये अनुचित बातें सुनकर नल को क्रोध का आवेश आ गया १२। १६ और उसने पुष्कर का शिर तलवार से काटना चाहा, परंतु फिर उसने क्रोध को रोक लिया और मन्द मन्द मुसकरा के क्रोध से लाल लाल आंखें किये हुए बोला कि तू क्या बक रहा है दाँव लगा कर जुआ खेल हारने पर फिर इस प्रकार से नहीं बकेगा। इसके पीछे उन दोनों का जुआ हुआ और पुष्कर एक ही दाँव में सब राज्य, धन और प्राण नल से हार गया १७।१६ तब नल उसे जीतकर कहने लगा कि अरे नीच! अब यह सब राज्य और धन कण्टकरहित मेरा है तू इस योग्य भी नहीं है जो दमयन्ती की ओर आंख से भी देख सके, अब तू परिवार सहित उसका दास होगया २०। २१ अरे मूढ़! जो तैंने मुझको पहिले जीता था वह तेरा काम न था किन्तु कलि ने यह किया था तू उसको जानता नहीं है २२ इसी कारण से मैं वह काम तेरा किया हुआ न मानकर तेरे प्राणों को छोड़े देता हूं और तेरा राज्य और धन भी तुझे देताहूं, तू मेरा सहोदर भाई है, ईश्वर करे आयु तेरी सौ वर्ष की हो, मैं तुझसे प्रीति पहिले की भाँति ही मानूंगा २३। २५ राजा नलने इस प्रकार से पुष्कर को धैर्य देकर और वारंवार मिलकर उसे अपने नगर को जाने की आज्ञा दी २६ इसके पीछे नल के धैर्य देने पर पुष्कर ने हाथ जोड़कर नल को नमस्कार किया और कहने लगा २७ कि हे राजन्! जो आपने मेरा प्राण और धन छोड़ा है उसके बदले में ईश्वर करे तुम्हारी कीर्ति संसार में अक्षय बनी रहे और तुम सुखपूर्वक लाख वर्षतक जीवो २८ इसके उपरान्त नल से सत्कार पाकर पुष्कर एक मास तक वहां रहा, उपरान्त प्रसन्नतापूर्वक अपने भाई, बन्धु, सेना और सेवकों सहित सूर्य के समान प्रकाश करता हुआ अपने नगर को चला गया २६। ३० और राजा नल ने अपने नगर में प्रवेश किया और सब पुरवासियों को धैर्य दिया। इसके पीछे सब पुरवासी और देशवासी

मनुष्य मन्त्रियों सहित प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर नल से कहने लगे कि महाराज ! आज हमलोग देश और नगर के सब भयों से निश्चिन्त हुए और जैसे देवता स्वर्ग में इन्द्र की उपासना करते हैं उसीप्रकार हम सब भी आपकी सेवा करने को उपस्थित हैं ॥ ३१ । ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

उन्नासीवाँ अध्याय।

नल का बहुतसी सेना भेजकर दमयन्ती को बुलवाकर आनन्दपूर्वक राज्य करना और बृहदश्व का युधिष्ठिरको समझाकर चलाजाना और युधिष्ठिरका तपस्वियोंसे अर्जुनकी तपस्याका हाल सुनना।

बृहदश्व बोले हे राजा युधिष्ठिर ! जब नगर में सब प्रकार से शान्ति होगई प्रसन्नता छा गई और अनेक उत्सव होने लगे तब राजा नल ने बहुतसी सेना भेजकर दमयन्ती को बुलवाया तब परवीरहन्ता, अमेयात्मा, भीमपराक्रमी राजा भीम ने उसे सत्कारसाहित बिदा कर दिया और वह पुत्रसहित वहां आगई उसके आने पर राजा नल प्रसन्नतापूर्वक इसप्रकार से रहने लगा जैसे नन्दनवन में देवताओं का राजा रहता है १ । ३ इसके उपरान्त महायशस्वी राजा नल के प्रताप का उदय हुआ और वह राज्यशासन नीतिपूर्वक करने से इस जम्बूद्वीप में अत्यन्त सुशोभित होगया । उस राजा नल ने बहुत से यज्ञ विधिपूर्वक किये जिनमें बड़ी दक्षिणा खर्च हुई । इसी प्रकार से हे युधिष्ठिर ! थोड़े ही दिनों में तुम्हारा भी उदय होगा ४ । ५ देखो उस पर पुरञ्जय राजा नल ने जुआ खेलने के कारण से स्त्रीसहित कैसा दुःख उठाया और अकेला ही दुःख में फिरा किया और उस दुःख के अन्त होने पर उसके ऐश्वर्य का फिर उदय हुआ ६ । ७ तुम तो इस वन में धर्म को चिन्तन करते हुए अपने भाई और स्त्री सहित रमते हो और वेद और वेद के अङ्गों के जाननेवाले ब्राह्मण सदा तुम्हारे पास रहते हैं तुमको इसमें रोना झींकना क्या है ८ । ९ यह कर्कोटक सर्प, नल, दमयन्ती और राजऋषि राजा ऋतुपर्ण की कथा कालि को नाश करनेवाली है १० इसको सुनकर तुम ऐसे मनुष्य को दूसरों का समाधान करना उचित है ११ संसार में पुरुषार्थ किसी का स्थिर नहीं रहता है, वैभव सदा चलायमान है इससे तुमको वैभव के उदय में हर्ष और नाश में शोक करना न चाहिये १२ अब तुम पूर्व इतिहास को सुनही चुके हो इससे शोच करना छोड़ दो और धैर्य रक्खो और इस महादुःख में विषाद मत करो १३ जो मनुष्य सत्त्व को प्रधान

मानते हैं वे दैव के विपरीत होने और पुरुषार्थ के निष्फल होने पर खेद नहीं करते हैं १४ इस नल के बड़े भारी चरित्र को जो मनुष्य कहेंगे अथवा सुनेंगे वे दरिद्री कभी न होंगे १५ यह इतिहास पुराना और उत्तम होकर सनातन है इसके सुननेवालों के मनोरथ सिद्ध होंगे और वह संसार में धन्य गिने जावेंगे १६ इसके सिवाय इस कथा का सुननेवाला पुत्र, पौत्र और पशुओं से युक्त होगा, मनुष्यों में श्रेष्ठता पावेगा, शरीर उसका आरोग्य रहेगा और सब कोई निस्संदेह उससे प्रीति करेगा १७ जो तुम पाशों से डरकर यह चिन्ता करते हो कि वह फिर तुमको जुआ खेलने को न बुलावे तो तुम उस बात की चिन्ता मत करो, मैं सम्पूर्ण अक्षहृदयविद्या को जानता हूं वह विद्या मैं तुमको प्रसन्न होकर देता हूं १८ । १९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिर यह सुनकर मन में प्रसन्न होता हुआ बृहदश्व ऋषि से बोला कि महाराज ! मैं अक्षहृदयविद्या को तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूं २० यह सुनकर महातपस्वी बृहदश्व ने महात्मा युधिष्ठिर को अक्षहृदयविद्या देदी और अश्वहृदयविद्या भी बताकर स्नान आदि करने को चले गये २१ उनके चले जाने पर युधिष्ठिर ने तीर्थ, पर्वत और वन से आये हुए तपस्वी ब्राह्मणों से यह सुना कि महाभुजशाली अर्जुन वायुभक्षी रहकर बड़ा उग्रतप कररहा है ऐसी कठिन तपस्या करनेवाला अबतक कोई नहीं देखा गया २२ । २४ वह अकेला ही मुनिरूप से धर्मस्वरूप होकर तपस्या करता है युधिष्ठिर अपने उस अत्यन्त प्यारे भाई को महावन में ऐसा तप करते हुए सुनकर शोच करने लगा और हृदय में दह्यमान होकर अनेक ज्ञानी ब्राह्मणों से पूछने लगा ॥ २५ । २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अस्सीवाँ अध्याय ।

द्रौपदी और सब पाण्डवों का अर्जुन के चले जाने का अत्यन्त शोच करना ।

इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय बोले हे भगवन्, वैशंपायनजी ! जब हमारे दादा अर्जुन जोकि महाधनुर्धारी होकर शत्रुसेना के विजय करनेवाले थे वह काम्यकवन से चले गये तब उन पाण्डवों ने उनके विना क्या किया मेरी समझ में हमारे दादा अर्जुन ही उन सब पाण्डवों की गति इस प्रकार से थे जैसे देवताओं की गति विष्णु भगवान् हैं । पराक्रम उनका इन्द्र के समान था और युद्ध में कभी विमुख नहीं होते थे । जब वे चले गये

तब हमारे दूसरे पितामह जो बड़े वीर थे क्या करते रहे १। ३ वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! अर्जुन के चले जाने पर वे सब पाण्डव दुःख और शोक में मग्न होगये ४ और इस प्रकार से अप्रसन्न होगये जैसे कि विना सूत का हार अथवा पर कटे पक्षी उदास होते हैं ५ और वह वनभी अक्लिष्टकर्मा अर्जुन के न होने से ऐसा उदास मालूम होने लगा जैसे चैत्ररथ वन कुबेर से रहित होजावे ६ हे जनमेजय! वे पाण्डव जोकि पुरुषों में व्याघ्र होकर अरिंदम थे वे विना अर्जुन के उदासीन से उसी काम्यकवन में रहने लगे ७ और ब्राह्मणों के लिये अपने शुद्ध बाणों से यज्ञयोग्य पशुओं को मारकर नित्य लाते थे और वन के मूल और फलों को लाकर ब्राह्मणों को निवेदन किया करते थे ८। ९ अर्जुन के जाने से सभी पाण्डव अप्रसन्न मन होकर उस वन में रहते थे परंतु द्रौपदी विशेषकर उसकी याद करती थी और उद्विग्न मन होकर युधिष्ठिर से यह वचन कहा करती थी १०। ११ कि हे महाराज! उस द्विभुज अर्जुन के विना जो सहस्रबाहु के समान है मुझको यह वन अच्छा नहीं लगता है १२ यह पृथ्वी मुझको सब जगह शून्य सी दीखती है और यह वन भी यद्यपि फूला फला हुआ सोहता है परंतु उस अर्जुन के विना जिसका वर्ण नीले बादल के समान, चाल मतवाले हाथी की सी, आंखें कमल के सदृश और धनुष का शब्द वज्र के तुल्य है रमणीक और अच्छा नहीं मालूम होता है १३। १५ दिन रात मुझको उसके स्मरण में चैन नहीं पड़ती है यह सुनकर भीमसेन द्रौपदी से कहने लगा १६ कि हे द्रौपदी! तैंने यह बात बड़ी प्रसन्नता की कही मैं इसको सुनकर इस प्रकार से तृप्त होगया मानो अमृत पिया है १७ सच है जिसकी दोनों भुजा लम्बी, समान, पुष्ट, परिघशस्त्र के तुल्य, धनुष की ज्या के चिह्नों से अङ्कित, गोलाकार, तलवार और धनुष को धारण करनेवाली और पांच शिर रखनेवाले सर्पों के समान हैं उस अर्जुन के विना यह वन ऐसा है जैसे सूर्यरहित आकाश १८। १९ जिस महाभुजशाली अर्जुन के आश्रय होकर सब पाञ्चाल और कौरवलोग देवताओं की सेना से भी नहीं डरते हैं और हमलोग उसकी भुजाबल के आश्रय से शत्रुओं को युद्ध में हारा हुआ और पृथ्वी जीती हुई मानते हैं हे द्रौपदी! उस बीर फाल्गुन के विना मेरे चित्त को धैर्य नहीं होता है जिधर देखता हूं उधर अँधेरा ही दीखता है २०। २२ इसके पीछे आंखों में आंसू भरकर और गद्गद होकर पाण्डुनन्दन नकुल कहने

लगा २३ कि जिस अर्जुन के रणकर्म की प्रशंसा देवता भी करते हैं वह योद्धाओं में सबसे श्रेष्ठ है उसने उत्तर दिशा में जाकर बड़े बड़े गन्धर्वों को रण में जीता और उनसे तीतर के तुल्य चिह्न रखनेवाले और वायु के समान शीघ्रगामी सैकड़ों घोड़े लाकर अपने बड़े भाई को राजसूय महायज्ञ में दिये थे उस तेजस्वी, देव समान, भयंकर धनुर्धारी भीम के छोटे भाई अर्जुन के विना मुझे काम्यकवन में रहना अच्छा नहीं लगता है २४।२६ इसके उपरान्त सहदेव ने कहा कि वह अर्जुन युद्ध में बहुत सा धन और बहुतसी कन्या जीतकर राजसूय महायज्ञ में लाया था और वासुदेवजी की संमति से सब यादवों को अकेला युद्ध में जीत कर सुभद्रा को लाया, उस जयशाली अर्जुन के आसन को खाली देखकर मेरा भी चित्त स्वस्थ नहीं रहता है और विना उसके यह वन भी रमणीक नहीं लगता है, यहां से तो औरही स्थानपर बसना ठीक है ॥२७।३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इक्यासीवाँ अध्याय।

नारदजी का पाण्डवों के पास जाना तथा युधिष्ठिरजी के पूछने पर भीष्म और पुलस्त्यऋषि के संवाद द्वारा तीर्थयात्रा और पृथ्वी परिक्रमा का फल वर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर द्रौपदी समेत भाइयों की बातें सुनकर अर्जुन के न होने के कारण से आपभी मन में उदासीन होगया १ उसी समय वहां परम तेजस्वी महात्मा और ब्राह्मणों की शोभा से देदीप्यमान अग्नि के समान तेजधारी नारदजी आ पहुँचे। उन्हें सामने आये हुए देखकर राजा युधिष्ठिर भाइयों सहित उठकर खड़ा होगया और बड़े आदरसे उन्हें बैठाकर उन महात्मा का विधिपूर्वक पूजन किया २।३ उस समय युधिष्ठिर अपने भाइयों के बीच में बैठा हुआ ऐसा शोभायमान दीखता था मानो देवताओं सहित इन्द्र बैठा है और द्रौपदी ने उन अपने पतियों को इस प्रकार धर्म से त्याग नहीं किया जैसे सावित्री वेदों को और सूर्य की प्रभा मेरुपर्वत को त्याग नहीं करती है ४।५ हे निष्पाप! नारदजी पाण्डवों की पूजा को ग्रहण करके युधिष्ठिर को धैर्य देने लगे और बोले कि हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ, युधिष्ठिर! तेरा क्या प्रयोजन है और मैं तुझको क्या दूं ६।७ यह सुनकर धर्मनन्दन युधिष्ठिर ने भाइयों सहित नारदजी को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उन देवसंमानित महर्षि नारदजी से कहा कि हे महाभाग! आप सब लोकों में पूजित हैं आपके प्रसन्न

ही होने से मैं समझता हूं कि मेरे सब काम सिद्ध होगये ८ । ९ परंतु जो आप मुझ पर और मेरे भाइयों पर अनुग्रह करना चाहते हैं तो हे मुनिनायक! मेरा यह संदेह विधिपूर्वक दूर कीजिये १० मैं आपके मुख से यह बात संपूर्णता के साथ सुना चाहता हूं कि तीर्थयात्रा करते हुए पृथ्वी की परिक्रमा करने से क्या फल मिलता है उसको आप कहें ११ यह सुनकर नारदजी बोले कि हे राजन्! पुलस्त्यजी ने यही कथा भीष्मजी से कही थी, मैं भी उसको तुम्हें सुनाता हूं तुम मन लगाकर सुनो १२ पहले समय में एक समय धर्मधारियों में श्रेष्ठ होकर भीष्मजी ने पितृसम्बन्धी व्रत धारण करके मुनिलोगों के साथ गङ्गातट पर कुछ काल वास किया था १३ और हरिद्वार में रहकर जहां देवऋषि, देवता और गन्धर्व वास करते हैं उस परम प्रतापवान् ने अनेक वेदोक्त कर्मों को करके पितर, देवता और ऋषियों को तृप्त किया था १४ । १५ कुछ काल के पीछे एक दिन महायशस्वी भीष्मजी जप कर रहे थे कि उन्होंने वहां ऋषियों में उत्तम, बड़े तेजस्वी, तपस्वी और ब्रह्मरूपी लक्ष्मी से प्रकाशमान पुलस्त्यजी महाराज को आते हुए देखा । भीष्मजी उन्हें देखकर आश्चर्यकरके बहुत प्रसन्न हुए १६ । १७ और वेदोक्तरीति से उनकी पूजा कर शिर से अर्घ्य देकर कहने लगे कि हे महाराज! मैं आपका दास भीष्म हूं, आपका आज दर्शन पाकर मैं सब पापों से छूट गया १८ । २० यह कहकर भीष्मजी हाथ जोड़े हुए चुपचाप उनके सम्मुख बैठ गये और मुनि पुलस्त्यजी उस कुरुकुल में श्रेष्ठ भीष्म के धर्म और नियम के साथ वेद पाठ करने को देखकर प्रसन्न हुए ॥ २१ । २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

बयासीवाँ अध्याय ।

पुलस्त्यऋषि का भीष्मजी से तीर्थों की यात्रा का फल वर्णन करना ।

पुलस्त्यजी बोले हे भीष्म! मैं तेरे इसव्रत, धर्म, नम्रता, सत्य और बाह्येन्द्रियों के जय करने से बहुत प्रसन्न हूं १ इन्हीं धर्मों के करने के कारण से जो पितृभक्ति से सम्बन्ध रखते हैं तू उसीसे मुझको देख रहा है और मेरी भी तुझपर प्रीति है २ मेरा दर्शन कभी निष्फल नहीं होता है इससे तू कह क्या चाहता है? जो तू इच्छा करेगा वही मैं तुझको दूंगा ३ यह सुनकर भीष्मजी बोले कि हे महाराज! आपका मुझपर प्रसन्न होना और दर्शन देना ही सब कुछ है, मैं अपने सब कामों को केवल आपके दर्शनों ही से सिद्ध हुए मानता हूं ४ परंतु जो आप

को मुझपर और भी अनुग्रह करना है तो कृपा करके मुझे यह निश्चय करके सुनाइये कि पृथ्वी की परिक्रमा करने से मनुष्य को क्या फल मिलता है, मुझे तीर्थों के विषय में कुछ धर्मसंशय होरहा है आप उसको दूर कीजिये आप देवताओं के तुल्य और ब्रह्मऋषि हैं ५। ७ यह सुनकर पुलस्त्यजी बोले कि हे पुत्र! मैं तुझसे इन ऋषियों की परायण तीर्थयात्रा का माहात्म्य वर्णन करता हूं तू मन लगाकर सुन ८ तीर्थयात्रा का फल उन मनुष्यों को मिलता है जो अपने हाथ, पाँव और मन को वश में रखते हैं और विद्यावान्, कीर्त्तिमान्, तपस्वी, संतोषी, प्रतिग्रह न लेनेवाले, अहंकाररहित, दम्भहीन, उपक्रमविहीन, थोड़ा सा आहार करनेवाले, जितेन्द्रिय, पापरहित, क्रोधरहित, सत्यवादी, शीलवान्, व्रत क करने में दृढ़ और सब जीवों पर दया करनेवाले हैं ९। १२ इस लोक में ऋषियों ने अनेक प्रकार के यज्ञ वर्णन किये हैं और उनके फल भी इसलोक और परलोक में मिलना ठीक ठीक कहा है, परंतु दरिद्रीलोग उन यज्ञों को नहीं कर सकते हैं क्योंकि उनकी सामग्री बड़ी लम्बी चौड़ी है १३। १४ निर्धन, सहायताहीन और अकेला मनुष्य उस सामग्री को इकट्ठी नहीं करसकता है। हां राजालोग और द्रव्यपात्र मनुष्य उन यज्ञों को करसकते हैं १५ सो मैं अब उस विधि को तुमसे वर्णन करताहूं जिसको दरिद्रीलोग भी करसकते हैं और फल जिसका यज्ञों के ही तुल्य है १६ वह विधि तीर्थयात्रा ही है, यह तीर्थयात्रा ऋषियों का परमगुप्त धर्म है और यज्ञों से विशेष फल रखती है १७ जो मनुष्य तीन दिन उपवास करके तीर्थों में नहीं जाता है और सुवर्ण की गऊ नहीं देता है वह दरिद्री होता है १८ मनुष्य को बड़ी दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि बड़े बड़े यज्ञों के करने से वह फल नहीं मिलता है जो तीर्थयात्रा करने से मिलता है १९ इस मनुष्यलोक में देवदेव का रचा हुआ तीनों लोकों में विख्यात पुष्करनामी तीर्थ है उस तीर्थ में भाग्यवान् मनुष्य को जाना उचित है २० हे कुरुनन्दन! संसार में सब तीर्थों की संख्या दशकोटि सहस्र है, परंतु पुष्कर में ये सब तीर्थ तीनों संध्याओं में जाया करते हैं २१ और बारहों सूर्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, अप्सरा और गन्धर्व सदैव उस तीर्थ के निकट बने रहते हैं २२ और देवता, योगी, ब्रह्मऋषि और दैत्यलोग तपस्या किया करते हैं उसीसे बड़े पुण्यवान् होते हैं २३ जो मनुष्य पुष्कर जाने की कामना मन से भी करता है वह सब पापों से छूटकर स्वर्ग की पीठपर पूजित होता है २४ उस तीर्थ में कमला-

सन ब्रह्माजी प्रसन्नतापूर्वक नित्य रहा करते हैं २५ और पहिले समय में देवताओं ने ऋषियों सहित वहां तप करके बड़ी सिद्धि पाई थी २६ जो मनुष्य पितर और देवताओं के पूजन में प्रीति रखनेवाला होकर उस तीर्थ में स्नान करता है उसको अश्वमेध यज्ञ से दशगुणा फल मिलता है २७ उस पुष्कर के वन में रहकर जो मनुष्य एक ब्राह्मण को भी भोजन कराता है वह इस लोक और परलोक दोनों में आनन्द करता है २८ परंतु वह मनुष्य श्रद्धावान् और दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला हो और ऐसा मनुष्य जिन फल, मूल और शाकों से आप अपना निर्वाह करता हो वही ब्राह्मण को भी भोजन करावे २९ ज्ञानी मनुष्य को इतना ही करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। उस तीर्थ में स्नान करनेवालों को फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि कोई योनि नहीं मिलती है किन्तु विशेषकर उन मनुष्यों को ब्रह्मलोक में अक्षयलोक मिलते हैं जो उस तीर्थ में कार्त्तिकी पौर्णमासी को जाकर स्नान करते हैं और जो मनुष्य प्रातःकाल और सायंकाल अपने दोनों हाथों को जोड़कर पुष्कर का स्मरण करता है उसका सब तीर्थों में स्नान होजाता है और जो नर अथवा नारी जन्मभर पाप करते हैं उनके सब पाप पुष्कर में स्नान करने से दूर होजाते हैं, यह पुष्कर तीर्थ सब तीर्थों का आदि उसी प्रकार से समझो जैसे सब देवताओं के आदि विष्णु भगवान् हैं। इस तीर्थ में पवित्रता और सावधानी से बारहवर्ष वास करनेवाले मनुष्य को सब यज्ञों के करने का फल मिलता है और वह ब्रह्मलोक को जाता है और कार्त्तिक की पौर्णमासी को केवल वहां वास करनेवाले मनुष्य के सदृश वह मनुष्य नहीं हो सकता है जो सौ वर्षतक अग्निहोत्र की उपासना करता है ३०। ३७ ये पुष्कर और तीनों सुन्दर शिखर और तीनों सोते आदि सिद्ध हैं, इनका कारण कोई नहीं जानता है ३८ पुष्कर में जाना, तप करना, दान देना और वास करना दुष्कर अर्थात् कठिन है ३९ यात्री को चाहिये कि सावधानी से थोड़ा भोजन करके पुष्कर में बारह रात्रि वास करे और फिर जम्बूमार्ग में जाकर पांच रात्रि रहे। वह मार्ग देवता, ऋषि और पितरों से सेवित है वहां रहने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है, सब कामना पूरी होजाती हैं और उसका शरीर पवित्र होकर उसे सिद्धि प्राप्त होकर दुर्गति नहीं होती है ४०। ४२ वहां से फिर तन्दुलिकाश्रम को जाना चाहिये वहां जाने से

मनुष्य को ब्रह्मलोक मिलता है और दुर्गति नहीं होती है ४३ तन्दुलिका से अगस्त्यजी के सरोवर पर जाय और देवता और पितरों का पूजन करके फलाहार खाकर कुमारों के समान होकर तीन रात्रि रहे ऐसा करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है, वहां से फिर कण्व के आश्रम को जाय जो लोकपूजित और लक्ष्मीसेवित स्थान है ४४। ४५ हे भरतर्षभ! यह वन धर्मरूपी आद्य है इस वन में प्रवेश करते ही मनुष्य के सब पाप दूर होजाते हैं ४६ इस स्थान में जो मनुष्य सावधानी से नियत भोजन और देव, पितरों की पूजा करता है वह सब मनोरथ पाकर यज्ञ करनेवालों के फल को भोगता है ४७ वहां से परिक्रमा करके ययातिपतन तीर्थ में जावे वहां जाने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ४८ ययातिपतन से महाकाल तीर्थ को जाय और नियत भोजन करके सावधानी से रहे वहां जाने से कोटि तीर्थों में स्नान करने और अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ४६ वहां से फिर धर्मज्ञाता मनुष्य भद्रवट नामी शिवजी के तीर्थ की यात्रा करे जो तीनों लोकों में विख्यात है ५० इस तीर्थ में शिवजी को ध्यान करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है और अन्तकाल में मनुष्य महादेवजी की कृपा से उनका गण होजाता है ५१ शत्रुहीन और लक्ष्मीयुक्त मनुष्य भद्रवट से नर्मदा नदी पर जावे जो तीनों लोकों में विख्यात है और वहां जाकर देवता और पितरों का तर्पण करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है वहां से फिर दक्षिणसिन्धु को जाय और ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर रहे ५२। ५३ वहां इस प्रकार से जानेवाले मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल और अन्तकाल में चढ़ने को विमान मिलता है। दक्षिणसिन्धु से चलकर चर्मरवती नदी में स्नान करे और रन्तिदेव का पूजन करे जिसके करने से अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है ५४ वहां से चलकर अर्बुद पर्वतपर जाय जो हिमालय पहाड़ का पुत्र है और जहां पहले पृथ्वी में एक विवर हो गया था और उस जगह तीनों लोक में विख्यात वसिष्ठजी का आश्रम है उस आश्रम में एक रात बसने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ५५। ५६ वहां से आगे जाकर पिङ्गतीर्थ में स्नान करे और जितेन्द्रिय होकर ब्रह्मचर्य से रहे ऐसा करने से सौ कपिला गौओं के दान करने का फल मिलता है ५७ पिङ्गतीर्थ से प्रभासनाम उत्तम तीर्थ में जाकर वास करे जहां देवमुखरूप, ज्वलनरूप,

वायुसारथी अग्निदेवता सदा रहा करते हैं जो मनुष्य उस तीर्थ में पवित्र मन के साथ स्नान करता है उसको तीन रात्रि में अग्निहोत्र करने का फल मिलता है वहां से चलकर उस स्थान को जाना चाहिये जहां सरस्वती नदी और समुद्र का संगम हुआ है ५८। ६० वहां जाने से मनुष्य को निश्चय सहस्र गोदान करने का फल मिलता है और वह मनुष्य प्रकाशमान होकर स्वर्गलोक पाता है ६१ वहां से चलकर वरुण के तीर्थ में देवता और पितरों को तृप्त करने और तीन रात्रि वास करने से मनुष्य की प्रभा चन्द्रमा की सी हो जाती है और उसको अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है उस तीर्थ के आगे फिर वरदान तीर्थ है जहां दुर्वासाऋषि ने विष्णु को वरदान दिया था, उस तीर्थ में जाकर स्नान करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ६२। ६४ वहां से चलकर फिर द्वारका को जाकर पिण्डारक तीर्थ में स्नान करे उससे बहुतसा सुवर्ण प्राप्त होता है ६५ हे युधिष्ठिर ! उस तीर्थ में अब भी यह आश्चर्य है कि पद्म के चिह्न के मुद्रा और त्रिशूल का चिह्न रखनेवाले पद्म दीखते हैं, निश्चय वहां महादेवजी की समीपता है ६६। ६७ वहां से चलकर जब सागर और सिन्धु के संगम पर पहुंचे तब नियम से वरुण के तीर्थ में स्नान करे ६८ और देवता और पितरों को तृप्त करे ऐसा करने से मनुष्य तेजस्वी होता है और अन्तसमय में वरुणलोक पाता है ६९ फिर आगे शंकुकर्णेश्वर महादेवजी का पूजन करे जिससे दश अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ७० वहां से परिक्रमा करता हुआ दमीनाम तीर्थ में जाय जो तीनों लोकों में विख्यात होकर सब पापों का दूर करनेवाला है इस तीर्थ में ब्रह्मादिक सब देवता शिवजी महाराज की उपासना किया करते हैं इसमें स्नान, पान करने और देवताओं सहित शिवजी की पूजा करने से मनुष्य के जन्मभर के पाप दूर होजाते हैं ७१। ७३ और अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है इस तीर्थ में दमीनाम शिवजी की देवताओं ने स्तुति की थी और यहीं पर सर्वव्यापी विष्णु भगवान् ने दैत्य और दानवों को मारकर स्नान किया था ७४। ७५ इसके पीछे वसुधारातीर्थ में पहुँचे, जहां जाने ही से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ७६ इस तीर्थ में जो मनुष्य सावधान तथा जितेन्द्रिय होकर देवता और पितरों का तर्पण करता है उसको विष्णुलोक मिलता है ७७ इसी स्थान पर वसुओं का बड़ा पवित्र सरोवर है उसमें स्नान और पान करने से वसुदेवता

प्रसन्न होते हैं ७८ और वहीं सिन्धूत्तमनाम एक बड़ा उत्तम तीर्थ भी है उसमें स्नान करने से मनुष्य को बहुत सा सुवर्ण मिलता है ७९ इसके उपरान्त मनुष्य शीलता और पवित्रता से भद्रतुङ्गनाम तीर्थ में जाकर स्नान करे वहां जाने से मनुष्य को ब्रह्मलोक और परम गति प्राप्त होती है ८० और उसीके निकट इन्द्र की कुमारिकाओं का तीर्थ है जहां सिद्धलोग रहते हैं वहां स्नान करने से मनुष्य को शीघ्र ही स्वर्गलोक प्राप्त होता है ८१ फिर इसतीर्थ के पास ही रेणुका तीर्थ है वहां भी सिद्धलोग रहते हैं उस तीर्थ में जो ब्राह्मण स्नान करता है उसकी कान्ति चन्द्रमा की सी होजाती है ८२ इसके आगे पञ्चनद नाम तीर्थ है जो सावधान और नियत भोजन करनेवाला मनुष्य उस तीर्थ की यात्रा करता है उसको पञ्चयज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ८३ वहां से फिर भीमा-देवी के उत्तम स्थान की यात्रा करे जहां पर एक योनिकुण्ड है जिसमें स्नान करने से तप्तकुण्डल पाकर मनुष्य देवी का पुत्र होता है और उसको एक लाख गोदान करने का फल प्राप्त होता है ८४। ८५ वहां से श्रीकुण्ड में जाकर स्नान करे जो तीनों लोक में विख्यात है इस तीर्थ में ब्रह्माजी की पूजा करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ८६ इसके आगे विमल नामी तीर्थ है जिसमें अबतक सुनहली और रुपहली मछलियां दीखती हैं। इस तीर्थ में जाकर स्नान करने से मनुष्य को इन्द्रलोक मिलता है और सब पाप से छूटकर परमगति पाता है ८७। ८८ हे भरतवंशिन्! वहां से वितस्ता तीर्थ में जाकर देवताओं और पितरों का तर्पण करे ऐसा करने से मनुष्य को वाजपेययज्ञ करने का फल मिलता है ८९ इसके आगे काश्मीरदेश में तक्षकनाग का सर्वपापनाशक वितस्तनामक स्थान है वहां स्नान करने से मनुष्य को वाजपेययज्ञ करने का फल मिलता है और विशुद्धात्मा होकर उस मनुष्य को परमगति मिलती है ९०। ९१ इसके उपरान्त मनुष्य को बड़वातीर्थ की यात्रा करनी चाहिए जो तीनों लोकों में विख्यात है और वहां उसको संध्यासमय स्नान करके यथाविधि अग्नि में खीर का होम करना चाहिए। बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि इस तीर्थ में पितरों को दिया हुआ दान क्षय नहीं होता है ९२। ९३ एक समय इस स्थान पर ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, गुह्यक, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर, मनुष्य, राक्षस, दैत्य, रुद्र और ब्रह्माजी ने विष्णु भगवान् को प्रसन्न करने के लिये सहस्र वर्ष की दीक्षा लेकर चरु अर्थात्

हविष्यान्न अर्पण किया था और ऋग्वेद के मन्त्रों से सातबार स्तुति की थी विष्णु भगवान् ने प्रसन्न होकर उन सबको अठगुणा वैभव दिया था और जिस जिस की जो जो मनोवाञ्छा थी सबको देकर इस प्रकार से अन्तर्धान होगये थे जैसे बादलों में बिजली चमककर गुप्त होजाती है इसीकारण से यह तीर्थ सप्तचरु नाम से विख्यात होगया यहां पर अग्नि में हवन करना एक लाख गोदान, सौ राजसूय और सहस्र अश्वमेध यज्ञ करने से भी उत्तम है ९४। ९९ इस तीर्थ के आगे रुद्रपदनामी तीर्थ है वहां जाकर शिवजी की पूजा करने से अश्वमेधयज्ञ करने का फल मिलता है १०० वहां से चलकर मणिमन्तनाम तीर्थ में एकरात्रि वास करे ऐसा करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है १०१ इसके आगे देविका नाम तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है ऐसा सुना जाता है कि ब्राह्मण इसी स्थानपर उत्पन्न हुए थे। इस तीर्थ में एक तीनों लोकों में प्रकट शिवजी का स्थान भी है वहां स्नान करने और शिवजी की पूजा करने से और यथाशक्ति हविष्यान्न निवेदन करने से मनुष्य के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं और वृद्धियुक्त होकर यज्ञ करने का फल पाता है १०२। १०४ इसी तीर्थ में कामाख्य नाम शिवजी का तीर्थ भी है जहां देवता रहते हैं उसमें स्नान करने से मनुष्य को शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है १०५ इस तीर्थ में जो यजन,याजन, ब्रह्मबालुक और पुष्पाम्भ नामी तीर्थ हैं उनमें स्नान अवश्य करे और मरने का शोच न करे १०६ यह देविकानामी पुण्यतीर्थ आधा योजन चौड़ा और पांच योजन लम्बा है और इसमें देवऋषि रहा करते हैं १०७ इस तीर्थ से चलकर दीर्घसत्र तीर्थ में पहुँचे जहां पर ब्रह्मादिक देवता, सिद्ध और महर्षिलोग दीक्षित होकर दीर्घसत्र यज्ञ करते हैं वहां जाते ही मनुष्य को राजसूय और अश्वमेधयज्ञ करने का फल मिलता है १०८। ११० वहां से मनुष्य को विनशनतीर्थ की यात्रा करनी चाहिये जहां पर सरस्वती नदी मेरुपर्वत की पृष्ठ पर होती हुई गुप्त बहती है १११ और चमसोद्भेद, शिवोद्भेद और नागोद्भेद नामी तीर्थों में आकर दीखती है इन तीर्थों में से पहले में स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का और दूसरे में सहस्र गोदान का फल मिलता है और तीसरे में स्नान करने से नागलोक प्राप्त होता है ११२। ११३ यहां से फिर शशियानतीर्थ की यात्रा करे जहां शशिरूप से ढके हुए पुष्कर रहते हैं और प्रतिवर्ष की कार्तिकी पौर्णमासी को दीखते हैं

इस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को सहस्रगोदान करने का फल मिलता है और उसकी कान्ति चन्द्रमा के तुल्य होजाती है ११४ । ११६ इसके आगे कुमारकोटितीर्थ है देवता और पितरों में प्रीति रखनेवाले मनुष्य इस तीर्थ में जाकर स्नान करें ११७ ऐसा करने से मनुष्य को दशसहस्र गोदान करने का फल मिलता है और वह मनुष्य अपने कुल का उद्धार करता है इस तीर्थ से चलकर रुद्रकोटि तीर्थ की यात्रा करे ११८ जहां पहिले समय में शिवजी के दर्शनों की इच्छा से महाहर्षित होकर एक कोटि मुनि इकट्ठे हुए थे और अपने अपने स्थानों से यह कहते हुए चले थे कि पहिले मैं ही जाकर शिवजी का दर्शन करूंगा ११९।१२० योगीश्वर शिवजी ने उस समय उन शुद्ध अन्तःकरण मुनियों के क्रोध को शान्त करने के लिये योग से अपने एक कोटि रूप प्रकटकिये और एक एक रूप से सब ऋषियों के सम्मुख जा खड़े हुए उनको देखकर सब ऋषियों ने यह जाना कि पहिले शिवजी के मुझे ही दर्शन हुए हैं १२१ । १२२ हे राजेन्द्र! महादेवजी ने उन शुद्धान्तःकरणवाले मुनियों की परम भक्ति से प्रसन्न होकर उनको यह वरदान दिया कि अबसे तुम सबों के धर्म की वृद्धि होगी इस रुद्रकोटिनाम तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है और वह मनुष्य अपने कुल का उद्धार करता है इस तीर्थ से फिर सरस्वती के संगमतीर्थ की यात्रा करे जो तीनों लोकों में विख्यात है और बड़ा पुण्यद स्थान है इस तीर्थ को ब्रह्मादिक देवता और बड़े बड़े तपस्वी ऋषिगण चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को जाया करते हैं वहां स्नान करने और केशव का आराधन करने से मनुष्य को बहुत सा सुवर्ण मिलता है और वह सब पापों से छूटकर ब्रह्मलोक पाता है १२३ । १२७ वहीं अवसाननाम तीर्थ है जहां ऋषियों ने अपने यज्ञ समाप्त किये थे उस तीर्थ की यात्रा करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ॥ १२८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

तिरासीवाँ अध्याय ।

पुलस्त्यजी का भीष्म से अनेक तीर्थों में स्नान करने का फल वर्णन करना ।

पुलस्त्य ऋषि बोले हे भीष्म! अवसान तीर्थसे चलकर मनुष्य को कुरुक्षेत्र नाम तीर्थ की यात्रा करना उचित है जिसके दर्शनमात्र से प्राणी के सब पाप दूर होजाते हैं १ जो कोई मनुष्य यह भी कहता है कि मैं कुरुक्षेत्र को जाऊंगा

अथवा वहां रहूंगा तो इतना ही कहने से उसके पाप दूर होजाते हैं २ वहां का ऐसा प्रभाव है कि जिस पापी मनुष्य पर वहां की धूल भी उड़कर जापड़े तो भी उस पापी को परमगति प्राप्त होजाती है ३ इस कुरुक्षेत्र के उत्तर में दृषद्वती और दक्षिण में सरस्वती नाम नदियां बहती हैं इनके मध्य में जो रहनेवाले मनुष्य हैं वे स्वर्ग में बसते हैं ४ सरस्वती के तटपर मनुष्य को एक महीना वास करना चाहिये वहांपर ब्रह्मादिक देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष और पन्नग आते हैं वहां बसने से मनुष्यको ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ५।६ हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य कुरुक्षेत्र को मन से भी स्मरण करता है उसके भी सब पाप दूर होजाते हैं और वह ब्रह्मलोक पाता है ७ और जो मनुष्य श्रद्धा से संयुक्त होकर कुरुक्षेत्र में जाता है उसको राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के करने का फल मिलता है ८ वहीं मंक्रुकनाम बड़ा पराक्रमी द्वारपालक यक्ष है उसको नमस्कार करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है ९ वहां से सततनाम विष्णुभगवान् के स्थान की यात्रा करे जहां विष्णु भगवान् रहा करते हैं वहां की यात्रा करने और वहां स्नान करने और त्रिलोकोत्पादक हरिजीके नमस्कार करने से मनुष्य को अश्वमेधयज्ञ करने का फल मिलता है और वह विष्णुलोक को जाता है १०।११ इस तीर्थ के पीछे पारिप्लव नामी तीर्थको जाय जो तीनों लोकों में विख्यात है वहां की यात्रा करने से मनुष्य को अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञ के करने का फल मिलता है १२ वहां से पृथिवीतीर्थ को जाने से सहस्रगोदान करने का फल मिलता है फिर शालूकिनी तीर्थ में जाकर दशाश्वमेध में स्नान करने से दश अश्वमेधयज्ञ करने का फल मिलता है वहां से फिर सर्वदेवीनाम नागों के उत्तम तीर्थ की यात्रा करे १३।१४ जहां जाने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है और अन्तसमय में उसको नागलोक प्राप्त होता है इसी तीर्थ के निकट तरंतुकनाम द्वारपाल है वहां जाने और एक रात्रि बसने से सहस्रगोदान करने का फल मिलता है उसके आगे फिर नियताशन होकर पञ्चनदनाम तीर्थ की यात्रा करे १५।१६ और कोटितीर्थ में स्नान करे ऐसा करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है और वहीं अश्विनीकुमारों का तीर्थ है जिसमें स्नान करने से मनुष्य सुन्दर स्वरूपवान् होजाता है १७ वहां से फिर उत्तम वाराह तीर्थ की यात्रा करे जहां पहिले समय में विष्णुभगवान् ने वाराहरूपधारण किया था १८

वहां स्नान करने से मनुष्यको अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है वहां से आगे जयन्ती नाम सोमतीर्थ में जाय १६ जहां स्नान करने से मनुष्यको राजसूय यज्ञ करने का फल मिलता है और वहीं एक हंसतीर्थ भी है वहां स्नान करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है २० इस तीर्थ के पीछे यात्री को कृतशौच तीर्थ में जाना चाहिये जहां जाने से मनुष्य को पुण्डरीकयज्ञ के करने का फल मिलता है और उसका शरीर पवित्र होजाता है २१ वहां से मुञ्जवटनाम तीर्थ में महात्मा शिवजी के स्थान पर जाय जहां एक रात्रि बसने से मनुष्य को गाणपत्यपद प्राप्त होता है २२ वहीं यक्षणीनाम लोकों में विख्यात तीर्थ है उसमें स्नान करने से मनुष्य की सब मनोकामनायें पूरी होती हैं २३ तीर्थसेवी मनुष्य सावधान होकर यहां से प्रदक्षिणा करता हुआ कुरुक्षेत्र के द्वारपर जावे जहां महात्मा परशुरामजी के लाये हुए पुष्कर की तुल्य तीर्थ हैं वहां स्नान करने और देवता और पितरों का तर्पण करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाकर कृतकृत्य होजाता है वहां से चलकर फिर परशुरामजी के कुण्डों की यात्रा करे २४। २६ हे राजेन्द्र! परशुरामजी ने जिनका तेज बड़ा दीप्त था क्षत्रियों को मारकर रुधिर से पञ्चकुण्ड भरे थे और उन कुण्डों में स्नान करके पितरों का तर्पण किया था परशुरामजी के पितर उस तर्पण से प्रसन्नहोकर आकाश में प्रकट होगये और कहनेलगे हे राम! हे हेराम! हेभार्गव! हम तेरी पितृभक्ति और शूरवीरता से प्रसन्न हुए अब तू हम से वर मांग यह सुनकर परशुरामजी हाथ जोड़कर पितरों से बोले कि जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझपर अनुग्रह किया चाहते हैं तो मैं चाहता हूं कि आप मुझपर प्रसन्न रहें मेरे तपकी वृद्धि होय और मैं क्षत्रियों के कुल को क्रोध के कारण से नाश करने के पाप से छुट जाऊं और मेरे ये पांचों कुण्ड तीर्थरूप पृथ्वीपर विख्यात होवें यह सुनकर पितरों ने प्रसन्न होकर कहा कि पितृभक्ति के कारण से तेरे तप की वृद्धि होगी और तू क्षत्रियों को नाश करने के पाप से मुक्त होगा और ये तेरे कुण्ड भी निस्सन्देह तीर्थरूपी होजायँगे जो कोई मनुष्य इन कुण्डों में स्नान करके विधिपूर्वक पितरों का तर्पण करेगा उसके पितर निश्चय उसको दुर्लभ पदार्थ देकर उसकी सब मनोकामनाओं को पूरा करेंगे और उसको स्वर्गलोक भी देंगे २७। २८ यह वरदान देकर पितर परशुरामजी से पूछकर वहीं अन्तर्धान होगये २६ सो हे राजा युधिष्ठिर! वे महात्मा परशुरामजी के

कुण्ड इस प्रकार से पवित्र और तीर्थरूप हैं जो मनुष्य ब्रह्मचारी और व्रती होकर उनमें स्नान करता है और परशुरामजी की पूजा करता है उसको बहुत सा सुवर्ण मिलता है वहां से मनुष्य को वंशमूलक नामी तीर्थ की यात्रा करना चाहिये ४० । ४१ जिसमें स्नान करने से मनुष्य के वंश का उद्धार होता है और फिर कायशोधन तीर्थ को जावे ४२ जिसमें स्नान करने से मनुष्य का शरीर निस्सन्देह शुद्ध होजाता है और उसको शुभ और उत्तम लोक मिलते हैं ४३ वहां से लोकोद्धार तीर्थ की यात्रा करे जो तीनों लोकों में विख्यात है और जहां पहिले सर्वव्यापी विष्णु भगवान् ने लोकों का उद्धार किया था उसमें स्नान करने से मनुष्य के लोकों का उद्धार होता है ४४ । ४५ वहीं श्रीतीर्थ भी है जिसमें स्नान करने और देवता तथा पितरों को पूजने से मनुष्य को उत्तम लक्ष्मी प्राप्त होती है ४६ वहां से चलकर यात्री सावधान तथा ब्रह्मचारी होकर कपिलातीर्थ में स्नान करे और अपने पितर और देवताओं का पूजन करे जिसके करने से सहस्र कपिला गोदान करने का फल मिलता है वहां से फिर सूर्यतीर्थ को चला जाय जहां देवता और पितरों की पूजा करने से मनुष्य को अग्निष्टोमयज्ञ करने का फल मिलता है और अन्त में सूर्यलोक को जाता है ४७ । ४९ वहां से गवांभवन तीर्थ की यात्रा करे जहां स्नान करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ५० उस के आगे शंखिनीनाम देवी का तीर्थ है जिसमें स्नान करनेसे तीर्थसेवी मनुष्य को उत्तम स्वरूप मिलता है ५१ वहां स्नान करके अरन्तुक द्वारपाल यक्ष के तीर्थ कीयात्रा करे जो सरस्वती में है उसमें स्नान करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है वहां से फिर ब्रह्मावर्त को चलाजाय ५२ । ५३ जहां स्नान करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है वहां से फिर मानुषलोकनाम उत्तम तीर्थ की यात्रा करे जहां देवताओं समेत पितरों का वास रहता है वहां देवता और पितरों की पूजा में प्रीति रखनेवाला मनुष्य स्नान करके अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता है और उसको पितृलोक का वास मिलता है उसके आगे अम्बुमती में काशीश्वर का सुतीर्थकनाम एक तीर्थ है उसमें स्नान करने से मनुष्य सब बाधाओं से छूटकर ब्रह्मलोक को जाता है ५४ । ५७ इसी स्थानपर मातृतीर्थ भी है जिसमें स्नान करने से मनुष्य की संतान की वृद्धि होती है और उसको महालक्ष्मी मिलती है ५८ वहां से फिर जितेन्द्रिय और नियतभोजी यात्री को

सीतावन को जाना उचित है जहां ऐसा तीर्थ है कि वैसा दूसरे स्थान पर होना दुर्लभ है उस तीर्थ के दर्शनमात्र और उसमें बाल धोने से ही मनुष्य पवित्र हो जाता है ५६ । ६० और वहीं श्वाविल्लोमापहनाम तीर्थ भी है जहां विद्वान् ब्राह्मण लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक रहकर प्राणायाम करके अपने पापों को दूर करते हैं और पवित्र आत्मा होकर परमगति पाते हैं ६१ । ६३ उसमें यात्री को स्नान करके दशाश्वमेधिक नाम तीर्थ में जो उसी स्थानपर है स्नान करना चाहिये उसमें स्नान करने से परमगति मिलती है ६४ इसके पीछे मानुष तीर्थ में जाय जो तीनों लोकों में विख्यात है उस सरोवर में एकसमय काले मृग बाणों से पीड़ित होकर गिरकर मनुष्यरूप होगये थे इसलिये उस तीर्थ में मनुष्य ब्रह्मचर्य से स्नान करके सब पापों से विशुद्धात्मा होकर स्वर्गलोक पाता है और इसी तीर्थ की पूर्व दिशा में एक कोस पर आपगानाम नदी है जहां सिद्धलोग रहा करते हैं वहांपर देवता और पितरों के नामपर श्यामाक भोजन देने से बड़ा फल होता है यहां तक कि एक ब्राह्मण को भोजन कराने से कोटि ब्राह्मणोंको भोजन देने का फल होता है ६५ । ६६ उस तीर्थ में स्नान करने और देवता, पितरों की पूजा करने और वहां एक रात बसने से अग्निष्टोम यज्ञ करनेका फल मिलता है ७० वहां से चलकर ब्रह्माजी के उत्तम, प्रकाशक, ब्रह्मोदुम्बरनाम स्थान की यात्रा करे वहां सप्तऋषि के कुण्डों में और महात्मा कपिल के केदार नाम तीर्थ में स्नान करने और पवित्रतापूर्वक मन की शुद्धता से ब्रह्माजी का ध्यान करने से सब पापों से विशुद्धात्मा होते हुए मनुष्य को ब्रह्मलोक मिलता है ७१ । ७३ और उस कपिल के केदारतीर्थ में तपस्या करने से सब पापों से छूटकर मनुष्य को अन्तर्धान होजाने की सामर्थ्य होजाती है ७४ वहां से सरकनाम तीर्थ को जाय जो तीनों लोकों में विख्यात है और कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को शिवजी का पूजन करे ७५ वहां जाने से मनुष्य को स्वर्गलोक मिलता है और उसकी सब मनोकामना पूरी होती हैं हे कुरुनन्दन ! इस सरकतीर्थ में रुद्रकोटि, ह्रद और कूपतीर्थों में तीन तीन कोटि तीर्थ हैं और वहीं इलास्पदनामी तीर्थ भी है ७६ । ७७ वहां स्नान करने और देवता पितरों का पूजन करने से मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है और अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ७८ इसके आगे किंदान और किंजप्य नामी तीर्थ हैं उनमें स्नान, दान और जप करना अप्रमेय होता है ७९ वहां से कलशी तीर्थ में जाकर

श्रद्धायुक्त जितेन्द्रिय होकर स्नान करे जिसके करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है ८० और सरकतीर्थ से पूर्वदिशा में अम्बाजन्म नाम महात्मा नारदजी का विख्यात तीर्थ है उस तीर्थ में स्नान करने और प्राणों को छोड़ने से नारदजी की आज्ञा से मनुष्य को उत्तम लोक मिलते हैं ८१ । ८२ वहां से फिर पुण्डरीक तीर्थ को जाकर शुक्लपक्ष की दशमी को स्नानकरे तो स्नान करनेवाले को पुण्डरीक यज्ञ करने का फल मिलताहै ८३ इस तीर्थ के आगे त्रिविष्टप नामी तीनों लोकों में विख्यात तीर्थ है वहां वैतरणी नाम पुण्यनदी पापों को दूर करनेवाली है उसमें स्नान कर शूलपाणि वृषध्वज शिवजी का पूजन करने से मनुष्य सब पापों से शुद्धात्मा होकर परमगति पाता है ८४ । ८५ यहां से आगे चलकर फलकीवन की यात्रा करे जहां देवता देवियों समेत सहस्रों वर्ष से तप कर रहे हैं वहां दृषद्वती में स्नान और तर्पण करने से अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञों के करने का फल मिलता है वहीं सब देवताओं का तीर्थ भी है उसमें स्नान करने से मनुष्य को सहस्रगोदान करने का फल मिलता है और पाणिखात नाम तीर्थ में स्नान और तर्पण करने से अग्निष्टोम, अतिरात्र और राजसूय यज्ञों के करने का फल मिलता है और स्नान करनेवाला अन्तसमय में ऋषिलोक पाता है ८९ । ९० यहां से चलकर मिश्रक तीर्थ की यात्रा करे जहां हमने सुना है कि महात्मा व्यासजी ने सब तीर्थ लाकर ब्राह्मणों के लिये मिलाये हैं उसमें स्नान करने से सब तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है ९१।९२ वहांसे चलकर जितेन्द्रिय तथा नियताहारी होकर मनुष्य व्यासजी के वन में जाय जहां मनोजव तीर्थ है वहां स्नान करने से उसको सहस्रगोदान करने का फल मिलताहै ९३ फिर वहां से मधुवटी नाम देवी के तीर्थ की यात्रा करे जहां स्नान करने और पितर और देवताओं को पूजने से देवी की आज्ञा से मनुष्यको सहस्रगोदान करनेका फल मिलताहै वहीं कौशिकी और दृषद्वती नदियों का संगमहै उसमें ९४।९५ स्नानकरने से मनुष्य के सब पाप निश्चय दूर होजाते हैं वहां से फिर व्यासस्थली नाम तीर्थ को जाय जहां बुद्धिमान् व्यासजी की रक्षा देवताओं ने पुत्र के शोक में प्राण छोड़ने के समय में की थी ९६।९७ वहां जाने से मनुष्यको सहस्र गोदान करनेका फल मिलताहै वहांसे किंदत्त कूपकी यात्राकरे जहां एक प्रस्थ तिलदान करने से मनुष्य परमसिद्धि को पाता है और उसके सब ऋण दूर होजाते हैं और वहीं वेदीतीर्थ भी है जिसमें

स्नान करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ९८।९९ इसके आगे अह और सुदिननामी दो तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात हैं उनमें स्नान करने से मनुष्य को सूर्यलोक मिलता है १०० वहां से मृगधूम तीर्थ की यात्रा करे जो तीनों लोकों में विख्यात है वहां गङ्गाजी में स्नान करने और महादेवजी का पूजन करने से मनुष्यको अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है वहीं देवी के तीर्थ में भी स्नान करे जिसमें स्नान करने से मनुष्य को सहस्रगोदान करने का फल मिलता है १।२ इसकेपीछे वामनकतीर्थमें जावे जो तीनों लोकों में विख्यात है वहां विष्णुपद में स्नान करने और वामनजी को पूजने से मनुष्य की आत्मा सब पापों से शुद्ध होजाती है और अन्तसमय में विष्णुलोक पाता है वहीं कुलंपुन तीर्थ भी है जिसमें स्नान करने से मनुष्य का कुल पवित्र होजाता है ३।४ उसके आगे मरुत् देवताओं का उत्तम पवनकुण्डतीर्थ है जिसमें स्नान करने से मनुष्य वायुलोक को जाता है ५ और वहीं देवताओं का कुण्ड भी है उसमें स्नान करने और इन्द्र का पूजन करने से और देवताओं के प्रभाव से मनुष्य को स्वर्गलोक मिलता है ६ और शालिहोत्र और शालिसूर्य में यथाविधि स्नान करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ७ इन तीर्थों के आगे सरस्वतीजी में श्रीकुञ्जनामी तीर्थ है जिसमें स्नान करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है ८ वहां से फिर नैमिषकुञ्जतीर्थ की यात्रा करे पहिले उस स्थान पर जो तपस्वी ऋषि रहते थे वे तीर्थयात्रा करने के लिये कुरुक्षेत्र में चले गये थे इसकारण से ऋषियों को अवकाश मिलने के कारण यह नैमिषकुञ्ज रचा गया था इसमें स्नान करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है ९।११ इसके पीछे यात्री को कन्यातीर्थ की यात्रा करना उचित है जिससे उत्तम और कोई तीर्थ नहीं है उसमें स्नान करने से मनुष्य को सहस्रगोदान करने का फल मिलता है १२ उसके आगे ब्रह्माजी का उत्तम तीर्थ है वहां स्नान करने से मनुष्य को ब्रह्मण्यपद मिलता है और जो ब्राह्मण विशुद्धात्मा होकर उसमें स्नान करे तो उसको परमगति मिलती है उस तीर्थ से चलकर फिर चन्द्रमा के उत्तमतीर्थ की यात्रा करे जहां स्नान करने से मनुष्य को चन्द्रलोक मिलता है और फिर वहां से सप्तसारस्वत तीर्थ को चला जावे १३।१५ जहां मंकणकनामी महाऋषि जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं रहते हैं हमने सुना है कि पहिले समय में मंकणक ऋषि के हाथ में

कुशकी नोक समागईं थी उसके लगने से उस महाऋषि के हाथमें से शाकरस टपकने लगा उसको देखकर वह ऋषि हर्ष के कारण से नाचने लगा और उसके तेज से मोहित होकर सब जड़ और चैतन्य जीव भी नाचने लगे १६।१८ यह देखकर ब्रह्मादिक देवता और ऋषियों ने यह वृत्तान्त शिवजी से कहकर विनय की कि आप ऐसा यत्न कीजिये जिस से इस ऋषि का नाचना बन्द होजाय १६।२० यह सुनकर महादेवजी प्रसन्न होकर उसऋषि के पास गये और उससे कहने लगे कि हे धर्मज्ञ, महर्षे ! तुम क्यों नाच रहे हो और तुम्हारे हर्ष करने का क्या कारण है २१ । २२ यह सुन कर वह ऋषि कहने लगा कि क्या तुमको यह शाकरस नहीं दीखता है जो मुझ तपस्वी और धर्मपथ में टिके हुए ऋषि के हाथ से टपका है, मैं इसी रस को देखकर हर्षित होकर नाच रहा हूं यह सुनकर, बहुत हँसकर महादेवजी ने उस राग से मोहित हुए ऋषि से कहा कि हे विप्र ! मुझको इसमें कोई बात आश्चर्य की नहीं दीखती है और फिर चुटकी बजाई कि जिसके बजते ही उस भस्मक्षत से हिमके समान रस निकलने लगा २३।२५ यह देखकर मंकणकऋषि लज्जित होकर शिवजी के चरणों पर गिरपड़े और उनको सबसे बड़ा जानकर उनकी स्तुति करने लगे २६ हे शूलधारिन् ! तुम इस सुर और असुररूपी जगत् की गति और सब चर और अचर जीवों के उत्पन्न करनेवाले हो २७ महाप्रलय के आने पर सब विश्व तुमहीं में लय होजाता है तुम्हारी महिमा को देवता भी नहीं जानते हैं मेरी तो क्या सामर्थ्य है २८ ब्रह्मादिक देवताओं के भी तुमहीं कारण हो और जगत्के कर्त्ता और सब कर्मों के करानेवाले भी तुमहीं हो २६ तुम्हारी ही कृपा से सबदेवता आनन्दपूर्वक रहते हैं अब आप मुझपर भी ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरा तप नाश न होवे यहसुनकर शिवजी प्रसन्न होकर बोले ३० । ३१ हे ऋषे ! मेरी कृपा से तेरा तप सहस्रगुणित होकर बढ़ेगा और तेरे साथ मैं भी इस आश्रम में वास करूंगा ३२ और इस सारस्वत में जो मनुष्य स्नान करके मेरी पूजा करेगा उसको इस लोक और पर लोक में कोई वस्तु मिलना दुर्लभ नहीं होगा ३३ और अन्तसमय में उसको सारस्वत लोक निश्चय मिलेगा यह कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान होगये ३४ इस तीर्थ से फिर शुक्र के तीर्थ की यात्रा करे जो तीनों लोकों में विख्यात है और जहां ब्रह्मादिक देवता और बड़े बड़े तपस्वी ऋषि और भगवान् कार्त्तिकेयजी रहा करते हैं ३५ । ३६

वहीं सर्वपापविमोचन कपालमोचन नाम तीर्थ भी है उसमें स्नान करने से सब पाप दूर होजाते हैं ३७ इसके आगे अग्नितीर्थ है उसमें स्नान करने से मनुष्य के कुल का उद्धार होता है और उसको अग्निलोक मिलता है ३८ वहीं विश्वामित्र का भी तीर्थ है जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्राह्मण होजाता है ३९ वहां से चलकर ब्रह्मयोनितीर्थ की यात्रा करे जिसमें शुद्ध होकर पवित्र मन से स्नान करने से मनुष्य को ब्रह्मलोक मिलता है ४० और उसकी सात पीढ़ियां पवित्र होजाती हैं इस तीर्थ के आगे पृथूदकनाम कार्त्तिकेयजी का तीर्थ है जो तीनों लोकों में विख्यात है जो मनुष्य, देवता और पितरों के पूजन में भक्ति रखते हैं वे उस तीर्थ में स्नान करने से स्त्री अथवा पुरुष कोई हो सब ज्ञान अथवा अज्ञान से किये हुए पापों से छूट जाते हैं और अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाकर स्वर्गलोक पाते हैं ४१ । ४४ सब तीर्थों से बढ़कर कुरुक्षेत्र का माहात्म्य है उससे अधिक सरस्वती का है, सरस्वती से अधिक सरस्वती के तीर्थों का है और उन तीर्थों से भी अधिक माहात्म्य पृथूदक तीर्थ का है इससे यह तीर्थ सर्वोत्तम है यहां जप करनेवाला मनुष्य शरीर त्यागने से पुनःमृत्यु के दुःख को नहीं प्राप्त होता है ४५।४६ पृथूदक का यह माहात्म्य महात्मा व्यासजी और सनत्कुमारजी ने वर्णन किया है इससे इसतीर्थ की यात्रा अवश्य करनी चाहिये यह तीर्थ संदेहरहित, पवित्र और पावन है और सब तीर्थों से बड़ा है ४७।४८ ज्ञानी लोग कहते हैं कि इस तीर्थ में स्नान करने से पापी मनुष्य को भी स्वर्गलोक मिलता है ४९ वहीं मधुश्रवतीर्थ भी है उसमें स्नान करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ५० हे राजेन्द्र ! यहां से चलकर मेध्यतीर्थ की यात्रा करे जहां सरस्वती और अरुणा नदियों का संगम हुआ है इसमें स्नान करने और तीन रात्रि बसने से मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है और अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञों के करने का फल पाता है ५१ । ५२ और उसकी सात पीढ़ी भी पवित्र होजाती हैं इसी तीर्थ के निकट अर्धकीलकनामी तीर्थ भी है ५३ जिसको दर्भ ऋषि ने चारों समुद्र लाकर पहिले समय में ब्राह्मणों पर कृपा करके निर्माण किया था इसमें स्नान करने से क्रिया और मन्त्रहीन ब्राह्मण भी फिर ब्रह्मण्यता को पाता है यह बात पुराने मनुष्यों ने देखी है इसमें स्नान करनेवाले की दुर्गति नहीं होती है और मनुष्य को चार सहस्र गोदान करने का फल मिलता है वहीं पर सहस्रक और शतसहस्रक तीर्थ भी हैं मनुष्य उनमें स्नान करने से सहस्र गोदान करने

का फल पाता है ५४। ५८ इन तीर्थों में दान और व्रत करने का भी फल सहस्रगुणा होता है यहां से फिर रेणुका तीर्थ की यात्रा करे और उसमें देवता और पितरों के पूजन में प्रीति रखनेवाला यात्री स्नान करे ऐसा करने से मनुष्य की आत्मा शुद्ध होजाती है और अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है ५९। ६० फिर मनुष्य क्रोध करना छोड़कर इन्द्रियों को अपने वश में करके विमोचन तीर्थ में जाकर स्नान करे उसमें स्नान करने से दान लेने का दोष दूर होजाता है ६१ वहां से फिर पञ्चवटी तीर्थ को जाय और ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय होकर रहे ऐसा करने से मनुष्य को सत्पुरुषों के लोक में आदरसहित वास मिलता है ६२ इस स्थान पर श्रीयोगेश्वर शिवजी आप रहते हैं उनका पूजन करने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है ६३ और वहीं तैजस नाम वरुण देवता का भी तीर्थ है जहां ब्रह्मादिक देवता और तपस्वी ऋषियों ने स्वामिकार्त्तिक का देवताओं की सेना के सेनापति होने का अभिषेक किया था उससे पूर्व की दिशा में कुरुतीर्थ है इन दोनों में स्नान करने से, ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों को जीतकर रहने से मनुष्य सब पापों से छूटकर पवित्र होजाता है और अन्तसमय पर उसको ब्रह्मलोक मिलता है ६४। ६६ यहां से आगे स्वर्गद्वार तीर्थ की यात्रा करे जहां स्नान करने से मनुष्य को स्वर्ग और ब्रह्मलोक मिलता है ६७ वहां से अनरक तीर्थ को जाय जिसमें स्नान करने से दुर्गति नहीं होती है ६८ इस तीर्थ में ब्रह्मादिक देवता नारायण को आगे करके रहते हैं वहीं रुद्रपत्नीतीर्थ भी है वहां जाकर उस रुद्रपत्नी का ध्यान करने से मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है ६९। ७० और वहीं विश्वेश्वर उमापति और पद्मनाभ नारायण के भी तीर्थ हैं उनमें स्नान करने और शिवजी तथा नारायण की पूजा करने से मनुष्य पापों से मुक्त होजाता है और अन्त समय में उसको विष्णुलोक मिलता है ७१। ७२ यहां से फिर देवताओं के तीर्थ की यात्रा करे जहां स्नान करने से मनुष्य के सब दुःख दूर हो जाते हैं और उसकी चन्द्रमा कीसी प्रभा होजाती है ७३ इस तीर्थ से तीर्थसेवी स्वस्तिपुर को जाय जिसकी परिक्रमा करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ७४ और वहां से पावनतीर्थ को चला जाय जहां देवता और पितरों को तृप्त करने से मनुष्य को अग्निष्टोमयज्ञ करने का फल मिलता है ७५ इसी तीर्थ के निकट गङ्गाकुण्ड और गङ्गाकूप है जहां तीनकोटि तीर्थ

वास करते हैं ७६ उनमें स्नान करने से मनुष्य को स्वर्गलोक मिलता है इस तीर्थ के आगे आपगातीर्थ है वहां स्नान करने और महादेवजी की पूजा करने से मनुष्य गाणपत्य पद पाता है और अपने कुल को उद्धार करता है वहां से फिर स्थाणुवट तीर्थ की यात्रा करे जोकि तीनों लोकों में विख्यात है ७७ । ७८ जहां स्नान करने और रात में बसने से मनुष्य को रुद्रलोक मिलता है वहां से बदरीपाचन नाम वशिष्ठजी के आश्रम को जाय ७९ वहां तीन रात्रि बसकर केवल बदरीफल अर्थात् बेर खाकर रहे उस स्थान पर तीन रात्रि बेर खाने का फल और स्थानों पर बारहवर्ष बेर खाकर रहने के बराबर है इस तीर्थ से चलकर तीर्थसेवी रुद्रमार्गतीर्थ को जाय ८० । ८१ जहां एक रात और दिन उपवास करने से इन्द्रलोक मिलता है और वहां से एकरात्रतीर्थ में जाकर एक रात्रि वास करे ऐसा करनेवाले को ब्रह्मलोक मिलता है यहां से फिर तेजोराशि महात्मा सूर्याश्रम तीर्थ की यात्रा करे जो तीनों लोकों में विख्यात है यहां स्नान और सूर्य की पूजा करने से मनुष्य को सूर्यलोक मिलता है और उसके कुलका उद्धार होजाता है वहीं चन्द्रतीर्थ भी है उसमें स्नान करने से ८२ । ८५ निस्सन्देह चन्द्रलोक मिलता है इस तीर्थ के पीछे यात्री को दधीचिनामी महात्मा ऋषि के तीर्थ को जाना चाहिये ८६ जो तीनों लोकों में विख्यात पुण्यकारी पवित्रस्थान है और जहां बड़े तपस्वी अंगिरा ऋषि को सारस्वती गति प्राप्त हुई थी उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को सारस्वती गति और अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ८७ । ८८ उसके पीछे कन्याश्रमतीर्थ को जाय और नियताशन ब्रह्मचर्य से वहां तीन रात्रि वास करे ८९ ऐसा करने से मनुष्य को सौ दिव्य कन्या मिलती हैं और अन्तसमय में वह स्वर्गलोक को जाता है वहां से फिर सन्निहतीतीर्थ की यात्रा करे ९० जहां ब्रह्मादिक देवता और बड़े बड़े तपस्वी ऋषि प्रत्येक महीने में आया करते हैं इस तीर्थ में सूर्यग्रहण में स्नान करने से सौ अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ९१ । ९२ और पृथ्वी पर जो जो तीर्थ, नदी, कुण्ड, तड़ाग, झरने, बावली और देवताओं के स्थान हैं वे सब प्रतिमास की अमावास्या को इस सन्निहतीतीर्थ में आया करते हैं इसीकारण से इस तीर्थ का नाम सन्निहती है ९३ । ९५ इस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को स्वर्गलोक मिलता है और जो अमावास्या को सूर्यग्रहण में स्नान

और श्राद्ध करे तो सहस्र अश्वमेधयज्ञ करने का फल पाता है और स्त्री अथवा पुरुष कोई हो इस तीर्थ में स्नानमात्र करने से सबके सब पाप दूर होजाते हैं और पद्मवर्ण विमानों में बैठकर ब्रह्मलोक को जाते हैं ९६। ९९ इसके उपरान्त अचक्रुक नाम यज्ञद्वारपाल को वन्दना करने और कोटितीर्थ में स्नान करने से बहुतसा सुवर्ण मिलता है २०० इसी तीर्थ के निकट गंगाकुण्ड तीर्थ भी है मनुष्य उस तीर्थ में ब्रह्मचर्य से स्नान करने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के करने का फल पाता है इस पृथ्वी पर नैमिषतीर्थ, आकाश में पुष्कर और तीनों लोकों में कुरुक्षेत्र बड़े तीर्थ हैं। इनमें कुरुक्षेत्र का ऐसा माहात्म्य है कि पापी मनुष्य पर वहांकी धूलि भी हवा से उड़कर जापड़े तो उसको परमगति प्राप्त होती है इस कुरुक्षेत्रमें दृषद्वती नदी के उत्तर और सरस्वती के दक्षिण १।४ जो मनुष्य रहते हैं उनका रहना स्वर्ग की तुल्य है और जो मनुष्य यह भी कहते हैं कि मैं कुरुक्षेत्र को जाऊंगा अथवा कुरुक्षेत्र में वास करूंगा वे भी सब पापों से मुक्त होजाते हैं यह कुरुक्षेत्र ब्रह्माजी की वेदी है और उसमें पुण्यात्मा मनुष्य और तपस्वी ऋषि रहते हैं ५। ६ और वहां के रहनेवालों का किसी अवस्था में शोच करना उचित नहीं है ७ और इस कुरुक्षेत्र में जिस स्थानपर तरन्तुक, अरन्तुक परशुरामजी के कुण्ड और चंचक्रुक का अन्तर है उसको समन्तपञ्चक नाम से ब्रह्माजी की उत्तर वेदी कहते हैं॥ २०८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

चौरासीवाँ अध्याय।

पुलस्त्यजी का भीष्मजी से तीर्थों में स्नान करने का फल वर्णन करना।

पुलस्त्यजी बोले हे राजा भीष्म! उक्त तीर्थों की यात्रा करके धर्मतीर्थ की यात्रा करे जहां धर्मराज ने बड़ी तपस्या की थी और उन्होंने अपने नाम से उस स्थान को पुण्यतीर्थ बनाया था। धर्मात्मा मनुष्य उस तीर्थ में स्नान करने से निस्सन्देह अपनी सातपीढ़ियों को पवित्र करता है इसके उपरान्त उत्तमरूप ज्ञानपावन नाम तीर्थ को जावे १। ३ वहां स्नान करनेवाला मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ के करने का फल पाता है और अन्तकाल में मुनिलोक को जाता है वहां से फिर सौगन्धिक वन को चला जाय ४ जहां ब्रह्मादिक देवता, तपस्वी, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और महोरग आया करते हैं ५ उस वन में जाते ही मनुष्य के सब पाप दूर होजाते हैं वहां से आगे प्लक्षा देवी सरस्वती नामसे

विख्यात एक नदी सब नदियों में उत्तम है उसमें उस स्थानपर स्नान करनेसे जहां बल्मीक से जल निकलता है और देवता और पितरों का पूजन करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है, उसी स्थान पर ईशानाध्युषित नाम एक बड़ा दुर्लभ तीर्थ ६ । ८ बल्मीक से कुछ दूर पर है वहां स्नान करने से सहस्र गोदान और अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ९ इस बात को पुराने लोगों ने देखा है और वहीं सुगन्धा, शतकुम्भा और पञ्चयक्षा नाम तीर्थ भी हैं उनमें स्नान करनेसे मनुष्य को स्वर्गलोक मिलता है और इन्हीं तीर्थों के निकट त्रिशूलखात नामी तीर्थ भी है देवता और पितरों के पूजन में प्रीति रखनेवाले मनुष्यको उसमें स्नान करनेसे गाणपत्य पद मिलता है १०।१२ वहां से शाकम्भरी देवी के बड़े दुर्लभस्थान की यात्रा करे जो तीनों लोकोंमें विख्यात है १३ उस सुव्रतादेवी ने सहस्र वर्षतक शाक का आहार किया था और जो तपस्वी ऋषि उसके पास उसकी भक्ति के कारण से गये थे उनको भी उस देवी ने शाक ही भोजन कराया इस कारण से उसका नाम शाकम्भरी विख्यात हुआ जो मनुष्य उस देवी के स्थान पर जाकर शाक का आहार करके तीन रात्रि वास करता है उसको देवी की कृपा से बारह वर्ष तक शाक खाकर रहने का फल मिलता है इस स्थान से तीर्थसेवी को सुवर्णाख्य तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये जो तीनों लोकों में विख्यात है १४ । १८ और जहां विष्णु ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिये तपस्या की थी और देवताओं के बीच में बहुत से दुर्लभ वरदान पाये थे उनमें से दो ये थे कि संसार में तुमको सब प्रियतर मानेंगे १ और सब जगत् तुमको प्रधान कर तुम्हारी पूजा करेगा २ उस तीर्थ में जाकर शिवजी की पूजा करनेसे मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है और वह अन्तकाल में शिवजी का गण बनता है यहां से फिर धूमावतीतीर्थ को जाय जहां तीन रात्रि रहने से १९ । २२ मनुष्य की सब मनोकामना निस्संदेह पूरी होती हैं इस स्थान से दक्षिण की ओर रथावर्त नामी तीर्थ है २३ उसपर श्रद्धावान्, धर्मी और जितेन्द्रिय होकर चढ़ने से शिवजी की कृपा से मनुष्य को परमगति प्राप्त होती है २४ वहां से फिर धारातीर्थ की यात्रा करे जो सब पापों को दूर करनेवाला है उसमें स्नान करने से मनुष्य को शोक नहीं होता है और वहां से महापर्वत को नमस्कार करके २५।२६ गङ्गाद्वारतीर्थ को जावे जो स्वर्ग के द्वार की सदृश है वहां स्नान करने से निस्संदेह मनुष्य को कोटितीर्थों में स्नान और पुण्डरीक यज्ञ करने का फल मिलता है

और उसके कुल का उद्धार होता है इस तीर्थ में एक रात्रि बसने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है २७।२८ और वहीं सप्तगङ्गा, त्रिगङ्गा और शक्रावर्त तीर्थ भी हैं उनमें विधिपूर्वक तर्पण करने से मनुष्य को पुण्यलोक मिलता है २९ इसके आगे कनखलतीर्थ है वहां स्नान करने और तीन रात्रि रहने से मनुष्य को अश्वमेधयज्ञ करने का फल और स्वर्गवास मिलता है ३० तीर्थसेवी वहां से कपिलावट की यात्रा करे जहां एक रात्रि बसने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ३१ इसके आगे महात्मा कपिलनामी नागराज का उत्तमतीर्थ है उसमें स्नान करने से मनुष्य को सहस्र कपिलादान करने का फल मिलता है ३२। ३३ यहां से फिर शन्तनु के ललितकनामी तीर्थ की यात्रा करे जहां स्नान करने से मनुष्य की दुर्गति नहीं होती ३४ जो मनुष्य यमुना और गङ्गा के संगम में स्नान करता है उसको दश अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है और उसके कुलका भी उद्धार होता है ३५ इस तीर्थ में स्नान करके यात्री को त्रिलोकविख्यात सुगन्धतीर्थ को जाना चाहिये जहां जाने से मनुष्य सब पापों से छूटकर ब्रह्मलोक को जाता है ३६ वहां से रुद्रावर्त तीर्थ की यात्रा करे जहां स्नान करने से मनुष्य को स्वर्गलोक मिलता है ३७ गङ्गा और सरस्वती के संगम में जो मनुष्य स्नान करता है वह अश्वमेध यज्ञ करने के फल को पाकर स्वर्गलोक को जाता है ३८ फिर भद्रकर्णेश्वरतीर्थ में जा शिवजी की पूजा करने से मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है किन्तु स्वर्गवास पाता है ३९ वहां से कुब्जाम्रक तीर्थ की यात्रा करे जहां जाने से मनुष्य को स्वर्गलोग और सहस्रगोदान करने का फल मिलता है ४० उसके पीछे ब्रह्मचर्य से रहकर यात्री अरुन्धतीवट को जाय और वहां सामुद्रक में स्नान करके तीनरात्रि रहे ऐसा करने से मनुष्यको अश्वमेधयज्ञ और सहस्र गोदान करने का फल मिलता है और उसके कुल का भी उद्धार होजाता है ४१।४२ इस तीर्थ से चलकर ब्रह्मावर्त तीर्थ को जाय और ब्रह्मचर्य से रहे ऐसा करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल और चन्द्रलोक मिलता है ४३ वहां से यमुनाप्रभवतीर्थ की यात्रा करे वहां स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल और स्वर्गलोक प्राप्त होता है ४४ इसके पीछे दर्वीसंक्रमण तीर्थ को जाय जो तीनों लोकों में पूजित है वहां स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल और स्वर्गलोक मिलता है ४५ वहां से सिन्धुप्रभव तीर्थ को चला जाय जहां सिद्ध तथा गन्धर्व बसते हैं वहां पांच रात्रि वास करने से मनुष्य को बहुत सा सुवर्ण

मिलताहै४६ इसतीर्थसे वेदीतीर्थकी यात्राकरे जिसका मार्गकठिनहै वहां जानेसे मनुष्य को स्वर्गलोक और अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ४७ वहां से फिर ऋषिकुल्या और वासिष्ठतीर्थ को जाय जहां वासिष्ठों को उल्लंघ कर जाने से तीनों वर्णों के मनुष्य ब्राह्मण होजाते हैं ४८ वहां स्नान और तर्पण करने से मनुष्य को ऋषिलोक मिलता है ४९ इस तीर्थ में मनुष्य को शाक खाकर एक मास रहना चाहिये वहां से भृगुतुङ्ग पर्वत पर जाने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ५० और वहां से प्रमोक्षतीर्थ में जाकर स्नानकरने से सब पाप दूर होजाते हैं जो मनुष्य इस तीर्थ में कृत्तिका और मघा नक्षत्र में स्नान करता है उसको अग्निष्टोम और अतिरात्रयज्ञों के करने का फल मिलता है और वहां से विद्यातीर्थ को जाकर जो कोई संध्यासमय में स्नान करता है उसको जो विद्या वह चाहे सोही मिलती है यहां से चलकर महाआश्रममें एक रात्रि वासकरे जो सब पापों का दूर करनेवाला है यहां जो कोई एक काल उपवास करता है उसको शुभलोक मिलते हैं और छः काल व्रत रखनेवाले को महालय में वास और सुवर्ण मिलता है और उसके दश अगले और दश पिछले पुरुषा तर जाते हैं ५१ । ५५ इस तीर्थ से चलकर वेतसिकातीर्थ की यात्रा करे जहां ब्रह्माजी रहा करते हैं वहां जाने से शुक्र की सी गति और अश्वमेध करने का फल मिलता है ५६ वहां से सुन्दरिका तीर्थ को जाय जहां सिद्धलोग रहा करते हैं वहां स्नान करने से मनुष्य को सुन्दरस्वरूप मिलता है इस बात को पुराने लोगों ने देखा है ५७ इस तीर्थ से फिर ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर ब्राह्मणीतीर्थ को जाय वहां स्नान करने से मनुष्य पद्मवर्ण विमान में बैठकर ब्रह्मलोक को जाता है ५८ वहां से नैमिषतीर्थ की यात्रा करे जहां सिद्धलोग और ब्रह्मादिक देवता सदा रहा करते हैं ५९ इसतीर्थको ढूंढ़नेवाले के आधे पाप और जानेवाले के सब पाप दूर होजाते हैं ६० इसतीर्थ में सब पृथ्वी के तीर्थ बसते हैं जो तीर्थसेवी यहां एक मास बसकर इस तीर्थ में स्नान करता है उसको गोमेधयज्ञ करने का फल मिलता है और जो यात्री के वहांहीं प्राण छूट जावें तो उसकी सात पीढ़ियां पवित्र होजाती हैं और वह मनुष्य सब लोकों में आनन्दपूर्वक वास करता है ज्ञानीलोग इस तीर्थ को बड़ा पवित्र और पुण्यतीर्थ कहते हैं ६१ । ६४ वहां से गङ्गोद्भेदतीर्थ को जावे जहां तीन रात्रि बसने से मनुष्य ब्रह्मरूप होजाता है और अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता है ६५ इसके आगे सरस्वती तीर्थ है उसमें स्नान और तर्पण करने से मनुष्य सारस्वतलोक

में जाकर आनन्दपूर्वक वास करता है ६६ वहां से बाहुदातीर्थ की यात्रा करे जहां ब्रह्मचर्य से एकरात्रि बसने से मनुष्य को स्वर्गलोक प्राप्त होता है ६७ और देवसत्र यज्ञ करने का फल पाता है वहां से क्षीरवतीतीर्थ को जाय जहां बड़े बड़े पुण्यात्मा ऋषि रहते हैं वहां जाने से देवता और पितरों की भक्ति करनेवाले मनुष्य को वाजपेय यज्ञ के करने का फल मिलता है उसके आगे विमलाशोकतीर्थ है वहां ब्रह्मचर्य से एकरात्रि बसने से मनुष्य को स्वर्गलोक मिलता है वहां से गोप्रतार नाम सरयू के उत्तम तीर्थ की यात्रा करे ६८ । ७० जहांपर रामचन्द्रजी अपने भृत्य, सेना और वाहनों सहित देहत्याग कर उस तीर्थ, के प्रभाव से स्वर्गलोक को गये थे ७१ उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को रामचन्द्रजी की कृपा से स्वर्गलोक मिलता है और सब पापों से छूटकर पवित्र होजाता है वहां से चलकर गोमतीनाम रामचन्द्र के तीर्थ में स्नान करे ७२ । ७३ जिसमें एक लाख तीर्थ रहते हैं वहां स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ और सहस्र गोदान करने का फल मिलता है और उसका कुल पवित्र होजाता है ७४ । ७५ वहां से भर्तृस्थानतीर्थ को जाय जहां स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ७६ वहां से कोटितीर्थ की यात्रा करे जहां स्नान और स्वामिकार्त्तिक की पूजा करने से मनुष्य तेजस्वी होजाता है और सहस्र गोदान करने का फल पाता है ७७ वहां से वाराणसी तीर्थ को जाय जहां शिवजी की पूजा और कपिलकुण्ड में स्नान करने से मनुष्य को राजसूय यज्ञ करने का फल मिलता है ७८ इसके पीछे अविमुक्ततीर्थ को जाय जहां शिवजी का दर्शन करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से छूटजाता है ७९ और वहां प्राण छूट जाने से मनुष्य की मोक्ष होजाती है इसके उपरान्त मार्कण्डेयजी के दुर्लभ तीर्थ की यात्रा करे जहां लोकविख्यात गोमती और गङ्गा के संगम में स्नान करने से मनुष्य के कुल का उद्धार होजाता है और अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल पाता है ८० । ८१ वहां से गया को चला जाय जहां ब्रह्मचर्य होकर जाने से मनुष्य के कुल का उद्धार अच्छी तरह होजाता है और अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता है ८२ वहीं त्रिलोकविख्यात अक्षयवट तीर्थ भी है जहां लोग यह कहते हैं कि पितरों को जो कुछ दिया जाता है वह कभी कम नहीं होता है ८३ और वहीं महानदी भी है जिसमें स्नान और तर्पण करने से मनुष्य के कुल का उद्धार होजाता है और उसको अक्षयलोक मिलते हैं ८४ वहां से धर्मारण्य से उपशोभित ब्रह्मसर तीर्थ की यात्रा करे

जहां जाने से मनुष्य को ब्रह्मलोक मिलता है ८५ इस सरोवर में ब्रह्माजी ने एक श्रेष्ठ और ऊंचा यज्ञस्तम्भ खड़ा किया है उसकी परिक्रमा करने से मनुष्य को वाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है ८६ इस तीर्थ के पीछे धेनुकतीर्थ को जाय और वहां एक रात्रि बसकर तिलधेनु का दान करे ऐसा करने से मनुष्य निश्चय सब पापों से छूटकर पवित्र हो जाता है और चन्द्रलोक में वास करता है इस तीर्थ में अब भी पर्वत में घूमती हुई बछड़ा सहित कपिला के खुरों के चिह्न बने हुए हैं उनपर स्नान करने से मनुष्य के सब किये हुए अशुभकर्म नाश होजाते हैं८७। ९० वहांसे गृध्रवट तीर्थ को चला जाय वहां शिवजी की पूजा करने से और देह में भस्म लगाने से ब्राह्मण को बारहवर्ष के चीर्णव्रत करने का फल मिलता है और अन्य वर्ण के मनुष्यों के सब पाप दूर हो जाते हैं ९१। ९२ वहां से उद्यतनाम पर्वत की यात्रा करे जो गीतों से नादित है और जहां सावित्री के चरणों के चिह्न दिखाई देते हैं वहां पर जो ब्राह्मण संध्योपासन करताहै उसको बारहवर्ष संध्योपासन करने का फल मिलता है ९३। ९४ वहीं योनिद्वारतीर्थ भी है उसमें स्नान करने से मनुष्य फिर योनि में जन्म नहीं लेताहै ९५ गया में जो मनुष्य कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षों में वास करता है उसकी सात पीढ़ियां निस्संदेह पवित्र होजाती हैं संसार में मनुष्य बहुत से पुत्र इसी इच्छा से चाहा करते हैं कि इनमें से कोई तो ऐसा होगा जो गया अथवा वृषोत्सर्ग या अश्वमेध यज्ञ करेगा ९६। ९७इसके पीछे यात्री फल्गूतीर्थ की यात्रा करे जहां जाने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ९८ वहां से धर्मप्रस्थतीर्थ को जाय जहां धर्मराज सदा रहा करते हैं ९९ वहां कुएँ के जल से स्नान और तर्पण करने से मनुष्य पापों से छूट जाता है और स्वर्गलोक पाता है १०० वहीं महर्षि, शुद्धान्तःकरणवाले मतङ्गऋषि का भी आश्रम है उसमें जाने से मनुष्य को गवामयन यज्ञ करने का फल मिलता है और जो धर्मराज का पूजन करता है वह वाजिमेध यज्ञ करने का फल पाता है १। २ इसके उपरान्त मनुष्य ब्रह्माजी के तीर्थ में जाय और ब्रह्माजी का पूजन करे ऐसा करनेवाले को राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के करने का फल मिलता है वहां से तीर्थसेवी राजगृहतीर्थ को चला जाय ३। ४ जहां स्नान करने से मनुष्य कक्षीवान् राजा का सा सुख पाता है वहीं एक यक्षिणी भी है उसके भोजन कराने से मनुष्य उसकी कृपा से ब्रह्महत्या से छूटजाता है वहां से मणिनागतीर्थ को जाय जहां जाने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता

है ५।६ इस मणिनागतीर्थ के जलको पीने से मनुष्य को सर्प के काटनेका विष नहीं चढ़ता है ७ और वहां एक रात्रि रहने से सहस्र गोदान करनेका फल मिलता है इसके पीछे तीर्थसेवी गोतम ब्रह्मर्षि के वन की यात्रा करे ८ जहां अहल्या के कुण्ड में स्नान करने से परमगति और लक्ष्मी मिलती है उसी वन में एक उपदान भी है जो तीनों लोकों में विख्यात है उसमें स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ९।१० इसके आगे राजऋषि जनक का देवपूजित कूप है उसपर स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ११ वहां से विनशननामी पापों के दूर करनेवाले तीर्थ की यात्रा करे उसमें स्नान करने से मनुष्य को वाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है और वह चन्द्रलोक को जाता है १२ वहां से चलकर गण्डकी नदी में स्नान करे जो सब तीर्थों के जलसे उत्पन्न हुई है उसमें स्नान करने से मनुष्य वाजपेययज्ञ करने का फल पाता है और सूर्यलोक को जाता है १३ इसके पीछे विशल्यानदी पर जाय जो तीनों लोकों में विख्यात है उसमें स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है और स्वर्गलोक को जाता है १४ वहां से अधिवंगनाम तपोवन में जाय जहां जाने से मनुष्य गुह्यकों में आनन्दपूर्वक वास पाता है १५ इसके आगे कम्पाना नदीकी यात्राकरे जहां सिद्ध लोग रहा करते हैं वहां स्नानकरने से मनुष्यको स्वर्गलोक मिलताहै और पुण्डरीक यज्ञ करनेका फल पाताहै १६ वहां से माहेश्वरी धारा को जाय जिसमें स्नान करने से कुल का उद्धार होताहै और मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है १७ इसके उपरान्त देवताओं की पुष्करिणी में जाकर स्नान करे जिसमें नहाने से मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है और वह वाजपेययज्ञ करने का फल पाता है १८ वहांसे ब्रह्मचर्य के साथ सोमपद के तीर्थ को जाय जहां माहेश्वरपद में स्नान करने से मनुष्य को वाजपेययज्ञ करने का फल मिलता है १९ वहीं कोटितीर्थ भी है जिसको एक दुरात्मा असुर कछुए के रूप से हरलेगया था और श्रीविष्णुभगवान् ने उस असुर को मारकर उस तीर्थ को स्थापित किया था उस तीर्थ में स्नान करने से विष्णुलोक को जाता है और पुण्डरीक यज्ञ करने का फल पाताहै वहां से चलकर नारायणस्थल को जावे २०।२२ जहां विष्णु भगवान् आप बसते हैं और ब्रह्मादिक देवता, बड़े बड़े तपस्वी ऋषि, बारहों सूर्य, आठों वसु और ग्यारहों रुद्र उनकी सेवा किया करते हैं उस स्थानपर विष्णु भगवान् शालग्राम नाम से प्रसिद्ध हैं २३।२४ उन

त्रिलोकीनाथ वरदाता और अव्यय विष्णुजी के दर्शन करने से मनुष्य विष्णुलोक और अश्वमेधयज्ञ करने का फल पाता है २५ वहीं पर एक सब पापों का दूर करनेवाला कुआँ भी है जिसमें चारों समुद्र रहते हैं उस कुएँ पर स्नान करने से मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है और वहां अव्यय और वरदाता शिवजी का ध्यान करने से मनुष्य अन्धकार से निकलकर ऐसा शोभित होजाता है जैसा बादलों के हट जाने से चन्द्रमा शोभायमान दीखता है वहां से चलकर यात्री जातिस्मरतीर्थ में जाकर स्नान करे २६ । २८ जिसमें स्नान करने से मनुष्य को जातिस्मरत्व अर्थात् पूर्वजन्म का स्मरण मिलता है वहां से माहेश्वरपुर की यात्रा करे जहां शिवजी की पूजा और व्रतकरने से मनुष्यकी इच्छानुसार कामना निस्संदेह पूरी होती है इसके पीछे सर्वपापविनाशक वामनतीर्थको जाय २६ । ३० जहां विष्णुका ध्यान करनेसे मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है वहां से सर्वपापहारक कुशिकाश्रमकी यात्रा करे ३१ जहां सब पापोंके नाश करनेवाली कौशिकीनाम नदी है उसमें स्नान करने से मनुष्यको राजसूय यज्ञ करनेका फल मिलताहै ३२ वहां से चम्पकारण्य को जाय जहां एकरात्रि बसनेसे सहस्र गोदान करनेका फल मिलता है ३३ और यही फल परमदुर्लभ ज्येष्ठिलनामं तीर्थ में भी एकरात्रि बसने से मिलता है ३४ और वहां उमा महेश्वरके दर्शन करनेसे मनुष्यको मित्रावरुणका लोक मिलता है ३५ और जो उस स्थानपर तीनरात्रि वास करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ करनेका फल पाताहै वहांसे कन्या संवेद्यतीर्थ को जानेसे मनुष्य मनु प्रजापतिके लोकको जाताहै और तीक्ष्णव्रत करनेवाले ऋषि कहते हैं कि जो कोई उस तीर्थ में थोड़ासा भी दान करता है वह अक्षय बना रहताहै इसके पीछे निर्वीर तीर्थ की यात्रा करे जो तीनोंलोकों में विख्यात है ३६ । ३८ वहां जानेसे मनुष्य को विष्णुलोक और अश्वमेध यज्ञ करनेका फल मिलता है और जो कोई निर्वीरके संगमपर दान करता है उसको इन्द्रलोक मिलता है इस तीर्थ के आगे वशिष्ठजी का आश्रम है जो तीनों लोकों में विख्यात हैं ३६ । ४० वहां स्नान करने से मनुष्यको वाजपेय यज्ञ करनेका फल मिलता है वहां से ब्रह्मकूट तीर्थ की यात्रा करे जहां ब्रह्मर्षिगण रहा करते हैं ४१ वहां जानेसे मनुष्य के कुलका उद्धार होजाता है और उसको अश्वमेध यज्ञ करनेका फल मिलता है इसके पीछे कौशिकमुनिके कुण्ड को जाय जहां पर कुशिकवंशी विश्वामित्रने बड़ी सिद्धि पाई थी वहां कौशिकी

पर एकमहीना रहनेसे मनुष्यको अश्वमेधयज्ञ करनेका फल मिलता है और उस श्रेष्ठकुण्ड पर वास करनेसे मनुष्यको बहुतसा सुवर्ण मिलताहै और उसकी दुर्गति नहीं होती है वहां से चलकर उन कुमारों के दर्शन करे जो वीराश्रममें रहते हैं उनके दर्शन करनेसे मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करनेका फल निस्संदेह मिलता है वहांसे अग्निधारा नाम तीर्थ की यात्रा करे ४२। ४६ वहां स्नान और वरदाता शिव और अविनाशी विष्णु की पूजा करनेसे मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलताहै ४७ वहां से पर्वतराजके पास ब्रह्माजी के सरोवर पर जाय जहां स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल पाता है ४८ वहींपर ब्रह्माजी के सरोवरसे एकधारा निकलती है जिसको कुमारधारा कहते हैं और जो कि लोकको पवित्र करनेवाली और तीनों लोकों में विख्यात है ४६ उसमें स्नान करने स मनुष्य कृतार्थ होजाताहै और वहां छःकाल व्रत रखने से ब्रह्महत्यासे छूटजाता हैं ५० तीर्थसेवी को यहां से महादेवी गौरीके शिखर की यात्रा करनी चाहिये जो तीनों लोकों में विख्यात है ५१ उस शिखरपर चढ़कर स्तनकुण्डमें स्नान करनेसे मनुष्यको वाजपेय और हयमेधयज्ञोंके करनेका फल मिलता है और अन्तसमय में इन्द्रलोक को जाता है ५२।५३ वहांसे ताम्रारुण तीर्थपर जानेसे सावधान ब्रह्मचारी मनुष्यको अश्वमेधयज्ञ करने का मिलता है और वह ब्रह्मलोक को जाताहै ५४ और वहीं नन्दिनी तीर्थ भी है उसमें एक कूप है जिसपर देवता बने रहते हैं उस कूप पर जाने से मनुष्यको नरमेधयज्ञ करनेका फल मिलता है ५५ और कालिका के संगम में स्नानकरके कौशिकी और अरुणनाम नदियों के मध्य में तीनरात्रि रहने से मनुष्य के सबपाप दूर होजाते हैं ५६ और जो कोई उर्वशीके तीर्थकी यात्रा करता हुआ सोमाश्रम को और कुम्भकर्ण के आश्रमको जाताहै वह जगत् में पूजित होकर रहता है ५७ और पुराने लोगोंने यह भी देखा है कि कोकामुखनामी तीर्थमें स्नान करनेसे ब्रह्मचारी यतव्रती मनुष्यको पूर्वजन्म का स्मरण होजाता है ५८ और जो कोई ब्राह्मण शक्रनन्दातीर्थ को जाताहै उसका अन्तःकरण शुद्ध होजाताहै और वह सब पापों से छूटकर इन्द्रलोकको जाताहै ५६ इन तीर्थों की यात्रा करनेपर जो कोई ऋषभद्वीप में मेध्य, क्रौंचऔर निषूदनामी तीर्थों में जाकर सरस्वती में स्नान करताहै उसको चढ़ने को विमान मिलताहै ६० वहीं औद्दालक तीर्थ भी है जहां मुनिलोग रहा करते हैं उसमें स्नान करनेसे मनुष्य के सबपाप दूर होजाते

हैं ६१ और वहीं जो धर्मनामी पुण्यमय तीर्थ जहां ब्रह्मर्षि बसते हैं उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको वाजपेय यज्ञ करनेका फल और चढ़ने को विमान मिलताहै ६२ वहांसे गङ्गाजीके चम्पानामीतीर्थमें स्नानकरके दण्डार्थ तीर्थकी यात्राकरने से मनुष्य को सहस्रगोदान करनेका फल मिलताहै ६३ इसके पीछे ललीतिका तीर्थ में जाकर स्नान करे जो परम पुण्यद तीर्थ है वहां स्नान करने से मनुष्य राजसूय यज्ञ करनेका फलपाताहै और उसे चढ़नेको विमान मिलताहै॥ १६४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पचासीवाँ अध्याय।

नारदजीका युधिष्ठिर से अनेकतीर्थों की यात्रा करनेका माहात्म्य वर्णन करके अन्तर्द्धान होजाना और युधिष्ठिरका वही माहात्म्य ऋषियों से कहना।

पुलस्त्यजी बोले हे भीष्म! जो मनुष्य संध्यासमयमें संवेद्यनामी उत्तम तीर्थ में जाकर स्नान करता है उसको निस्संदेह विद्या प्राप्त होती है १ वहांसे लौहित्यतीर्थ की यात्रा करे जिसको पहिले समय में श्रीराम ने स्थापित किया था उसमें स्नान करने से मनुष्य को बहुतसा सुवर्ण मिलता है २ इसके पीछे करतोया तीर्थमें जाकर तीनरात्रि वासकरे वहां वास करनेसे मनुष्यको निस्सन्देह अश्वमेधयज्ञ करनेका फल मिलता है ३ वहांसे यात्री गङ्गा और सागरके संगम में जाकर स्नान करे जहां स्नान करनेसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञ करने का दशगुणा फल मिलता है ४ और जो कोई तीर्थसेवी गङ्गा के अपरंपार तीर्थ में स्नान करके वहां तीन रात्रि बसता है उसके सब पाप दूर होजाते हैं ५ वहां से चलकर वैतरणी नदी पर जावे और वहां विरजनाम तीर्थ में स्नान करे ऐसा करने से मनुष्य की कान्ति चन्द्रमा की सी हो जाती है ६ यह तीर्थ सब पापों का दूर करनेवाला है और वहां जाने से मनुष्य के कुल का उद्धार होजाता है और उसको सहस्रगोदान करने का फल मिलता है ७ वहां से शोण और ज्योतिरथ्य नदियों के संगम में जाकर स्नान और देवता व पितरों का तर्पण करे वहां ऐसा करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है ८ और नर्मदा और शोण नदियों के वंशगुल्म अर्थात् निकास के स्थान पर स्नान करने से मनुष्य को वाजिमेधयज्ञ करने का फल मिलता है ९ वहां से कोशलादेश के ऋषभतीर्थ में स्नान और तीन रात्रि वास करने से मनुष्य को वाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है १० और उसके कुल का उद्धार

हो जाता है और सहस्र गोदान करने का फल पाता है उसी देश में कालतीर्थ भी है उसमें स्नान करने से मनुष्य को निस्संदेह ग्यारह वृषभ छोड़ने का फल मिलता है और उसके आगे पुष्पवती तीर्थ है उसमें स्नान और तीन रात्रि वास करने से ११। १२ मनुष्य का कुल पवित्र होजाता है और वह सहस्र गोदान करने का फल पाता है वहां से चलकर बदरिका तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य की आयु बड़ी हो जाती है और अन्त समय स्वर्गलोक पाता है फिर गङ्गाजी के चम्पातीर्थ में स्नान करके दण्डाख्य तीर्थ में जाने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है वहां से लपेटिका नामी पुण्यतीर्थ की यात्रा करे १३।१५ जहां जाने से मनुष्य को वाजपेययज्ञ करने का फल मिलता है और वह देवताओं में पूजित होता है इसके पीछे यात्री महेन्द्रपर्वत की यात्रा करे जहां श्रीपरशुरामजी रहा करते हैं १६ वहां रामतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है वहीं पर केदारनामी मतङ्गऋषि का तीर्थ भी है १७ उसमें स्नान करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है यहां से यात्री श्रीपर्वत पर जाय जहां नदी में स्नान करके शिवजी का पूजन करने से मनुष्य को अश्वमेधयज्ञ करने का फल मिलता है इस पर्वत पर उमासहित महादेवजी और देवताओं सहित ब्रह्माजी सदा रहते हैं वहां देवकुण्ड में स्नान करने से १८।२० शुद्धरूप, पवित्र मनवाले मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करनें का फल मिलता है और परम सिद्धि प्राप्त होती है यहां से ऋषभ पर्वत पर जाय जो देवताओं से पूजित है वहां जाने से मनुष्य को वाजपेय यज्ञ करने का फल और स्वर्गलोक मिलता है २१ इसके पीछे कावेरी नदी की यात्रा करें जहां अप्सराओं के गण विचरा करते हैं वहां स्नान करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है २२ और वहां से समुद्र के तीर पर कन्यातीर्थ में जाकर स्नान करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है २३ वहां से समुद्र में गोकर्ण तीर्थ को जाय जो तीनों लोकों में विख्यात और सब लोकों से नमस्कृत है २४ और जहां ब्रह्मादिक देवता, तपस्वी, ऋषि, भूत, यक्ष, पिशाच, किन्नर, महोरग, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग, नदी, सागर और पर्वत सब शिवजी का आराधन किया करते हैं २५। २६ वहां शिवजी की पूजा करने और तीन रात्रि रहने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता है और शिवजी का गण होजाता है २७ और दश रात्रि बसने से मनुष्य

की आत्मा पवित्र होजाती है इस तीर्थ के आगे गायत्री का स्थान है जो तीनों लोकों में पूजित है २८ वहां तीन रात्रि बसने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है इस गायत्री के माहात्म्य का प्रत्यक्ष प्रमाण ब्राह्मण हैं जो उसके पाठ करने के प्रभाव से कैसी सामर्थ्य रखते हैं और जो अब्राह्मण अथवा वर्णसंकर इसका पाठ करता है उसका वह पाठ करना फलीभूत नहीं होता है किंतु ग्राम के गीतगाने की समान होता है इस स्थान से चलकर संवर्त्त नामी ब्रह्मर्षिकी दुर्लभ बावड़ी को जाय वहां जाने से मनुष्य स्वरूपवान् और ऐश्वर्यवान् हो जाता है इसके आगे वेणानामी तीर्थ है जहां तीनरात्रि वास करने से २९। ३२ मनुष्य को मोर और हंस पक्षियों से युक्त विमान मिलता है वहां से फिर गोदावरी की यात्रा करे जहां सिद्ध लोग सदा रहा करते हैं ३३ वहां स्नान करने से मनुष्य गोमेध यज्ञ करने का फल और वासुकिलोक पाता है और वेणा के संगम में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है वहां से जाकर वरदा के संगम में स्नान करे जिसके करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है वहां से आगे ब्रह्मस्थान है वहां तीनरात्रि बसने से ३४।३५ मनुष्य को स्वर्गलोक और सहस्र गोदान करने का फल मिलता है उसके पीछे कुशप्लव तीर्थ की यात्रा करे और ब्रह्मचर्य से रहकर स्नान करे और तीनरात्रि रहे ऐसा करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है वहां से यात्री देवह्रद नाम वनको जाय और कृष्णा और वेणा नदियों के जल से भरे हुए जातिस्मर नाम कुण्ड में स्नान करे ऐसा करने से मनुष्य जातिस्मर अर्थात् पूर्व जन्म का स्मरण करनेवाला होजाता है इसी स्थान पर इन्द्र सौ यज्ञ करके स्वर्गलोक को गया था इससे वहां जाने से ही मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है इसके उपरान्त यात्री सर्वह्रद तीर्थ में जाकर स्नान करे जिसके करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ३६। ३९ वहां से देवता और पितरों के पूजन में प्रीति रखनेवाले मनुष्य को श्रेष्ठ पुण्यद पयोषिणी नाम नदी में स्नान करना चाहिये जिसके करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ४० और वहां से चलकर दण्डकारण्य नामी तीर्थ की यात्रा करे जहां स्नानमात्र करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ४१ उसके आगे शरभंगनामी महात्मा शुकदेवजी का तीर्थ है उसमें स्नान करनेसे मनुष्यका कुल पवित्र होजाता है और

उसकी दुर्गति नहीं होती है ४२ वहां से शूर्पारकनामी तीर्थ की यात्रा करे जहां परशुरामजी सदा रहा करते हैं वहां रामतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को बहुतसा सुवर्ण मिलता है ४३ उसके आगे सप्त गोदावरी तीर्थ है जहां स्नान करने से जितेन्द्रिय व नियताहारी मनुष्य को बहुत पुण्य प्राप्त होता है और उसके आगे देवपथतीर्थ है वहां जाने से मनुष्य को देवसत्रयज्ञ करने का पुण्य मिलता है ४४।४५ इसके उपरान्त यात्री तुङ्गकारण्यतीर्थ की यात्राकरे जहांपर सारस्वतनामी ऋषिने वेदों की शिक्षा की थी और जहां वेदों के लोप होजाने पर अङ्गिराऋषिके पुत्र के ऋषियों के उत्तरीय वस्त्रपर बैठने से वे वेद सब ऋषियोंको स्वर और प्रणवके साथ जैसा जिसने पहिले अभ्यास किया था यथावत् उपस्थित हो गये थे ४६।४८ उसी स्थानपर ऋषि, देवता, वरुण, अग्नि, प्रजापति, नारायण, हरि, महादेव और भगवान् ब्रह्माजी ने भृगुजी को यज्ञ कराने की आज्ञा दी थी और भृगुजी के विधिपूर्वक यज्ञ करा देने पर सब ऋषि और देवता अपने अपने स्थानों को चले गये सो इस तुङ्गकारण्य में प्रवेश करते ही स्त्री और पुरुषों के सब पाप दूर होजाते हैं और जो कोई वहां ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रिय होकर एक महीने वास करता है उसके कुल का उद्धार हो जाता है और वह ब्रह्मलोक को जाता है ४६।५४ वहां से मेधाविकतीर्थ को जाय जहां स्नान और पितर व देवताओं का तर्पण करनेसे मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है और उसकी बुद्धि तीव्र और स्मृति दृढ़ होजाती है ५५ वहीं कालिञ्जर नाम तीनों लोक में विख्यात पर्वत है वहां जाकर देवकुण्ड में स्नान करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ५६ और जो मनुष्य इस कालिञ्जर पर्वत पर स्नान करके तपस्या करता है वह निस्संदेह स्वर्गलोक को जाता है ५७ वहां से चित्रकूट नामी उत्तम पर्वत की यात्रा करे और गङ्गाजी में स्नान और देव पितरों का तर्पण करे ऐसा करने से मनुष्य परमगति और अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता है।५८।५९ वहां से भरतजी के उत्तम स्थान को जाय जहां स्वामिकार्त्तिकजी सदा रहा करते हैं वहां जाने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है और वहीं कोटि तीर्थ भी है जिसमें स्नान करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ६०।६१ यात्री वहां से परिक्रम करता हुआ ज्येष्ठ स्थान को जाय जहां शिवजी की पूजा करने से मनुष्य की कान्ति चन्द्रमा की सी हो जाती है ६२ वहीं एक कूप भी है जिसमें चारों समुद्रों

का होना सुना जाता है उसमें जो देव और पितृभक्त मनुष्य स्नान करता है वह पवित्र होकर परमगति पाता है ६३। ६४ हे राजेन्द्र! वहां से शृङ्गवेरनामी नगर को जाय जहां पहिले समय में दशरथ के पुत्र रामचन्द्र गङ्गाके पार उतरे थे वहां ब्रह्मचर्य से गङ्गा में स्नान करने से मनुष्य के सब पाप दूर होजाते हैं और वह वाजपेय यज्ञ करने का फल पाता है वहां से मुञ्जवटनामी तीर्थ की यात्रा करे जहां शिवजी का आराधन और परिक्रमा करने से मनुष्य महादेवजी का गण बनताहै ६५।६८ और गङ्गामें स्नान करने से सब पापोंसे मुक्त हो जाताहै इसके पीछे प्रयागतीर्थ को जाय जिसकी प्रशंसा सब ऋषिलोग करते हैं ६६ इस तीर्थ में ब्रह्मादिक देवता, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, पितर, सनत्कुमार आदि परमऋषि, अङ्गिरा आदि ब्रह्मऋषि, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, सूर्य आदि चक्रचर, नदी, सागर, गन्धर्व, अप्सरा और भगवान् हरिजी रहा करते हैं वहां तीन अग्निकुण्ड हैं जिनके बीच में होकर श्रीगङ्गाजी जिनके आगे सब तीर्थ रहते हैं बड़े वेग से बहती हैं और लोकपावनी तीनों लोकों में विख्यात सूर्य की पुत्री यमुना का वहीं गङ्गाजी से संगम हुआ है इस गङ्गा और यमुना के मध्य की भूमि को लोग पृथ्वी का जघन अर्थात् नाभि के नीचे का भाग बताते हैं और ऋषिलोग इस प्रयाग को जो जघन स्थान में है सब तीर्थों के उत्पन्न होने का स्थान जानते हैं और कहते हैं कि यह सबका प्रतिष्ठान है इसमें कम्बल और अश्वतर नाग भी रहते हैं और इसी में भोगवती तीर्थ भी है यह प्रयाग ब्रह्माजी की वेदी है सब तपस्वी ऋषि और वेद यज्ञस्वरूप धारण किये हुए यहां ब्रह्माजी की सेवा करते हैं और देवता और चक्रवर्त्ती राजालोग यज्ञ करते हैं ७०।७८ इन कारणों से यह प्रयाग तीर्थ तीनोंलोकों में सब तीर्थों से अधिक और पुण्यतम है ७६ इसमें जाने अथवा इसकी प्रशंसा या इसका स्मरण करनेसे मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ८० और लोकविख्यात संगम में स्नान करने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के करने का फल मिलताहै ८१ यह तीर्थ देवताओं की यज्ञभूमि है इससे इस तीर्थपर थोड़ासा दियाहुआ दानभी बहुतसा फल देता है ८२ जो मनुष्यके हृदय में प्रयागमें प्राण छोड़ने की बुद्धि उपजे तो उस बुद्धि को वेद और लोक के वचनों से भी फेरना उचित नहीं है, क्योंकि इस प्रयाग में साठिकोटि और दश सहस्र तीर्थ रहते हैं ८३। ८४ चारों विद्याओं के अभ्यास और सत्य बोलने से जो पुण्य मिलताहै वह केवल इसगङ्गा और यमुनाके संगम

में स्नान करने से मनुष्य को प्राप्त होता है ८५ और वहां जो भोगवतीनाम वासुकि का उत्तमरूप तीर्थ है उसमें स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ८६ और वहीं गङ्गाजो में हंसप्रतपन और दशाश्वमेधिक नाम तीर्थ भी हैं जो तीनों लोकों में विख्यात हैं ८७ इस गङ्गा में किसी स्थानपर स्नान करने से कुरुक्षेत्र के समान फल मिलता है परंतु कनखल में विशेष और प्रयाग में महाफल प्राप्त होता है ८८ जो मनुष्य सौ काम छोड़कर गङ्गा में स्नान करता है उसके सब पाप इस प्रकार से भस्म हो जाते हैं जैसे ईंधन का ढेर अग्नि से भस्म हो जाता है ८९ सतयुग में सबतीर्थों में स्नान करने से पुण्य होता है और त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र और कलियुग में गङ्गाजी पुण्यरूपी कही हैं ९० पुष्कर में तप, महालय में दान, मलयाचलपर अग्नितपना, भृगुतुङ्ग पर्वतपर रहकर अनशन व्रत करना और पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गङ्गा और मगधदेश के तीर्थों में स्नान करना परम पुण्यदायक है ऐसा करने से मनुष्य को सात सात पीढ़ी अगली और पिछली तर जाती हैं ९१। ९२ और गङ्गाजी की स्तुति करने से पाप दूर हो जाते हैं दर्शन करने से कल्याण होता है और स्नान, पान करने से सात पीढ़ियां मनुष्य की पवित्र होजाती हैं ९३ और जब तक गङ्गाजी में मनुष्य के हाड़ रहते हैं तब तक वह मनुष्य स्वर्गलोक में इस प्रकार से प्रतिष्ठित रहता है जैसे पुण्यतीर्थ और पुण्य देवस्थानों की उपासना करने के पुण्य से मनुष्य अमरलोक पाने का भागी होजाता है ९४। ९५ देखो ब्रह्माजी ने आप यह कहा है कि गङ्गाजी के समान तीर्थ, केशव के समान देवता और ब्राह्मणों से बड़ा कोई नहीं है ९६ जिस देश में गङ्गा हैं वही देश तपोवन है और जो गङ्गातट की पृथ्वी है वही सिद्धक्षेत्र भूमि है ९७ इस सत्यकथा को ब्राह्मण, साधु, सुहृद्, पुत्र और आज्ञाकारी शिष्यों से कान में कहना उचित है ९८ यह कथा धन्य, पवित्र, स्वर्गदाता, उत्तम, पुण्यरूपी, रम्य, पावन, धर्मरूपी, सब पापों को दूर करनेवाली और बड़े बड़े ऋषियों की गुप्त बात है इसको ब्राह्मणों के बीच में पढ़ने से मनुष्य निर्मल होकर स्वर्गलोक पाता है ९९। १०० इन तीर्थों को कीर्तन करना स्वर्गदाता, पुण्यरूपी, शत्रुनाशक, आनन्ददाता, मेधाबुद्धिका उत्पन्न करनेवाला और श्रेष्ठ है १ और इसको नित्य सुनने से अपुत्र को पुत्र, निर्धन को धन, राजा को विजय, वैश्य को अर्थलाभ, शूद्र को ईप्सित कामना

और ब्राह्मण को विद्या का पार प्राप्त होता है २ । ३ इस तीर्थकीर्तन को नित्य पाठकरनेवाला स्वर्गलोक पाता है और उसको पूर्वजन्मों का हाल विदित होजाता है हे भीष्म ! हमने तुमसे सब तीर्थ जहां मनुष्य जा सक्ता है और जहां नहीं जा सक्ता है वर्णन किये हैं इनमें से अगम्य तीर्थों में मानसिक वृत्ति से जाना उचितहै क्योंकि ये तीर्थ केवल देव ऋषियों के ही साध्य हैं जो आकाशमार्ग से जाकर उनमें स्नान करते हैं ये सब तीर्थ अष्टवसु, साध्यगण, द्वादश सूर्य, मरुद्गण, दोनों अश्विनीकुमार आदि देवताओं की तुल्य हैं और शुभकर्म करनेवाले ऋषिलोग इनमें स्नान करते हैं तुमभी इन तीर्थोंकी यात्रा करो और अपने पुण्य को तीर्थयात्रा के पुण्य से बढ़ाओ पहिले समय में इन तीर्थों का सेवन शुद्धइन्द्रिय और शास्त्र जाननेवाले सत्पुरुषों ने आस्तिकता और श्रुतियों के ज्ञान से किया था जो मनुष्य अव्रती, अजितचित्त अर्थात् जिसने अपना चित्त अपने वशमें नहीं किया है अपवित्र, चौर और कुबुद्धि होता है वह तीर्थों में स्नान नहीं करता है तुम तो श्रेष्ठ व्रत करनेवाले और धर्मार्थदर्शी हो ४ । ९ हे भीष्म ! तुमने अपने धर्म से पिता, पितामह, प्रपितामह, ब्रह्मादिक देवता और ऋषियों को तृप्त किया है तुमको वसुओं का लोक मिलेगा और संसार में तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी १० । ११ इतनी कथा सुनाकर नारदजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर ! भगवान् पुलस्त्यजी भीष्म से उक्तप्रकार से कहकर प्रसन्नतापूर्वक वहीं अन्तर्धान होगये और शास्त्र के तत्त्वार्थ देखनेवाले भीष्म ने पृथ्वीपर भ्रमण करके तीर्थयात्रा की अब यह पापोंके दूर करनेवाली और महापुण्य देनेवाली कथा समाप्तहुई–जो मनुष्य तीर्थयात्रा के लिये पृथ्वीपर घूमता है उसको सौ अश्वमेध यज्ञ करने के फल से अठगुणा अधिक फल मिलता है जैसा कि पहिले भीष्मजी पाचुके हैं १२ । १६ हे भरतवंशिन् ! तुम जो ऋषियों को साथ लेजाकर यह यात्रा करोगे तो तुमको उसका अठगुणा फल मिलेगा इस तीर्थयात्रा में राक्षसों के गण के गण मिला करते हैं इससे तुम सरीखे राजा के सिवाय दूसरे राजा तीर्थयात्रा नहीं करसक्ते हैं १७ इस तीर्थकथन के देवऋषिचरित को जो कोई प्रातःकाल उठकर पढ़ेगा वह सब पापों से छूट जायगा १८ हे युधिष्ठिर ! तुम्हारे साथ बाल्मीकि, कश्यप, आत्रेय, कुण्डजठर, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, गालव, भरद्वाज, वसिष्ठ, उद्दालक, शौनक, पुत्रसहित व्यासजी, दुर्वासा और जाबालि आदि मुख्य मुख्य बड़े बड़े तपस्वी ऋषि हैं

हे महाराज ! तुम उन सबको साथ लेकर तीर्थयात्रा करो और जो यह लोमशनामी बड़े तेजस्वी महर्षि तुम्हारे पास चले आ रहे हैं इनको भी साथ लेते जाओ १६।२३ और मेरे साथ भी तुम तीर्थयात्रा करना तुमको राजा महाभिष की सी कीर्ति मिलेगी २४ हे राजाधिराज ! जिसप्रकारसे धर्मात्मा राजा ययाति, पुरूरवा, भगीरथ, रामचन्द्र, मनु, इक्ष्वाकु, पुरु और वैन्य आदि तीनोंलोकों में अपने धर्म के कारण से विख्यात हैं उसी प्रकार से तुम भी सूर्य की तुल्य उनसे अधिक कीर्तिमान् और विख्यात होगे २५। २७ और जैसे वृत्रासुर दैत्य के मारनेवाले इन्द्रने अपने सर्वशत्रुओं को मारकर और चिन्तारहित होकर तीनों लोकों का पालन किया था उसी प्रकार से तुम भी अपने वैरियों को मारकर प्रजाका पालन करोगे और अपने धर्म से पृथ्वी को जीतकर कार्तवीर्यार्जुन की समान कीर्ति पाओगे २८। ३० इतनी कथा सुनाकर वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! देवर्षि भगवान् नारदजी युधिष्ठिर को उक्तप्रकार से धैर्य देकर वहीं अन्तर्धान होगये ३१ और धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उस अर्थ को विचार कर तीर्थयात्रा करने का पुण्य ऋषियों से कह सुनाया ॥ १३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

छियासीवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिर का धौम्यऋषि से अर्जुन के वियोग का वृत्तान्त कहकर अन्यत्र जाने की इच्छा से पवित्र तीर्थों का वृत्तान्त पूछना ।

वैशंपायनजी बोले–हे राजा जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर अपने भाई और बुद्धिमान् नारदजी के मत को विचारकर ब्रह्मा के समान धौम्यऋषि से कहने लगे १ कि मैंने पुरुषोत्तम, सत्यपराक्रमी, धैर्यवान्, महाबाहु, समर्थ, तपोधन और वीर अर्जुन को अस्त्रविद्या सीखने के लिये परदेश में भेजा है यद्यपि वह अस्त्रविद्या में श्रीकृष्णजी की समान विचक्षण है मैं और प्रतापी व्यासजी इन दोनों पराक्रमी और शत्रुओं के नाश करनेवालों को जानते हैं २।४ ये दोनों अर्थात् श्रीकृष्ण और अर्जुन नर-नारायण और तीनों युगों में अवतार लेनेवाले हैं नारदजी भी इन दोनों को ऐसा ही बताते हैं उन्होंने बहुधा मुझसे यह संवाद कहा है ५ और मैंने भी उस अर्जुन को इन्द्र का पुत्र और इन्द्र की तुल्य समझकर देवराज इन्द्र को देखने और उससे अस्त्रविद्या सीखने की कामना से प्रदेश में भेज दियाहै ६।७ क्योंकि भीष्म और द्रोणाचार्य जिनको

जीतना बहुत कठिन है और कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि बड़े बड़े महारथी धृतराष्ट्र के पुत्रों से मिलेहुए हैं और सबके सब वेदपाठी, शूरवीर और अस्त्रवेत्ता हैं और अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा रखते हैं और इनके सिवाय सूत का बेटा कर्ण भी महारथी और सब दिव्य अस्त्रों का जाननेवाला है ८। ९ उसके अस्त्र चलाने का वेग वायु के वेग की समान है बाण उसके अग्निकी सदृश हैं और क्रोध धुयें की समान है सो वह कर्ण युग के अन्त में महाकाल से छोड़ी हुई अग्नि के समान दुर्योधनरूपी वायु से प्रेरितहोकर मेरी सेनारूपी तृणके वन को निस्संदेह भस्म कर डालेगा १०। ११ समर में उस कर्णरूपी प्रज्वलित अग्नि को मेघरूपी अर्जुन कृष्णरूपी वायु से प्रेरित होकर बाणरूपी जलधारा छोड़कर शान्त करेगा और वह अर्जुनरूपी मेघ बलाकारूपी श्वेत घोड़े गाण्डीवरूपी इन्द्रधनुष और अस्त्ररूपी बिजली से सुशोभित होगा १२। १३ मैं जानता हूं कि वह अर्जुन इन्द्र से सब दिव्य अस्त्र सीख आवेगा और इन सबको जीत सकेगा परंतु विना अर्जुन के इन शत्रुओं को जीतने का कोई उपाय नहीं है १४। १५ हे महाराज! ऐसा दिन कौनसा होगा जिस दिन हम उस अस्त्र सीखे हुए अर्जुन को, जो बोझ को उठाकर दुःखी नहीं होता है, देखेंगे उसके विना द्रौपदीसहित हम सबका चित्त इस वन में स्वस्थ नहीं रहता है १६। १७ आप और कोई ऐसा वन बताइये जहां अन्न और फल बहुत मिलें और पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्य रहते हों और स्थान भी जहां का पुण्य और पवित्र होवे १८ जिससे हम लोग वहां बसकर वीर अर्जुन के आने की बाट इस प्रकार से देखें जैसे मनुष्य बादलों की राह वर्षाऋतुमें देखा करते हैं १९ अब इस काम्यकवन में हमारा मन नहीं लगता है हम लोगों की इच्छा किसी और दिशा के जाने की है सो आप ब्राह्मणों से सुने हुए अनेक आश्रम, सरोवर, नदी और रमणीक पर्वतों का वृत्तान्त हमको सुनाइये कि हम लोग उसी ओर की यात्रा करें॥ २०। २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडशीतितमोऽध्यायः॥ ८६॥

सत्तासीवाँ अध्याय।

धौम्यऋषि का युधिष्ठिर से पूर्वदिशा के तीर्थों का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! धौम्यऋषि पाण्डवों को दुःखी चित्त और घबड़ाये हुए देखकर धैर्य देकर बृहस्पति की समान इस प्रकार से

कहनेलगे १ कि हे युधिष्ठिर! तुम अपने भाई और द्रौपदीसहित पुण्य आश्रम, दिशा, तीर्थ और पर्वतों का वृत्तान्त सुनो जिसके सुनने से तुमको पुण्य होगा और शोक से छूट जाओगे और जो उनमें स्नानों को जाओगे तो सौगुणा पुण्य पाओगे अब पहिले मैं तुमसे अपने स्मरण के अनुसार पूर्वदिशा के तीर्थों का वृत्तान्त कहता हूं जहां राजऋषियों के समूह के समूह रहते हैं २।५ हे भरतवंशिन्! इस देवर्षियों के रहनेवाली दिशा में पहिले नैमिष तीर्थ है उसमें पृथक् पृथक् देवताओं के पृथक् पृथक् पुण्य तीर्थ हैं ६ और वहीं गोमती नाम पुण्य नदी भी है जो बड़ी रमणीक और देवर्षियों से सेवित है यह नैमिषतीर्थ देवताओं की यज्ञभूमि और यमराज का शामित्र है ७ उसके आगे गय नाम पुण्यद पर्वत है जिसमें ब्रह्मसार नामी एक कल्याणरूपी तीर्थ है जहां देवता और ऋषि रहा करते हैं ८ हे पुरुषोत्तम! पुराने लोगों ने इसी तीर्थ के कारण से यह कहा है कि मनुष्य के बहुत से पुत्र हों तो अच्छा है क्योंकि जो बहुतसे पुत्र होंगे तो कोई तो उनमें से जाकर गया करेगा अथवा अश्वमेधयज्ञ या नीलावृषभ छोड़ेगा क्योंकि यह कर्म दश अगले और दश पिछले पुरखाओं को तारता है ९।१० और वहीं गयाशिर और फल्गूनामी महानदी और अक्षयकरणवट भी है जहां पर पितरों का श्राद्ध करने से पितरों को दिया हुआ पदार्थ अक्षय बना रहता है ११।१२ उसके आगे कौशिकीनदी है जहां विश्वामित्रऋषि ने ब्राह्मणत्व पाया था इस नदी पर मूल और फल बहुत मिलते हैं १३ और इसी दिशा में गङ्गानाम पुण्य नदी भी है जिसके तट पर भगीरथ ने बहुतसे बड़े बड़े यज्ञ किये थे १४ वहीं उत्पला वन तीर्थ भी है जो पाञ्चालदेश में गिना जाता है वहां विश्वामित्र ने पुत्रसहित यज्ञ किया था और परशुरामजी ने उनके ऐश्वर्य को देखकर उनके वंशकी प्रशंसा की थी १५।१६ और कान्यकुब्ज देशमें विश्वामित्रने इन्द्रके साथ सोमपान किया था और क्षत्रियधर्मको छोड़कर यह कहा था कि मैं ब्राह्मण हूं १७ इसके आगे गङ्गा और यमुना नदियों का संगम है जो पवित्र पापनाशक, धर्मका बढ़ानेवाला उत्तम तीनों लोकों में विख्यात है जहां ऋषिलोग रहा करते हैं वहां पहिले समय में भूतात्मा ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था उसीकारण से उस स्थानका नाम प्रयाग विख्यात हुआ है १८।१९ उसके आगे तपोवन में अगस्त्यजी का श्रेष्ठ आश्रम है जहां तपस्वीलोग रहते हैं २० उसके आगे कालिञ्जरपर्वत में हिरण्यबिन्दु नामी तीर्थ है और वहीं श्रेष्ठधर्म को बढ़ानेवाला

बड़ा रमणीक कल्याणकारी अगस्त्य पर्वत भी है २१ और उसके पीछे परशुरामजी का महेन्द्रपर्वत है जहां पहिले ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था २२ हे युधिष्ठिर! इसी पूर्व दिशा में मणिकर्णिका सरोवर है जिसमें श्रीगङ्गाजी ने प्रवेश किया था वही वाराणसी अर्थात् काशी है जो धर्म के बढ़ाने में ब्रह्मलोक की समान है २३ वहां निष्पाप मनुष्य रहते हैं उसके दर्शन से धर्मकी वृद्धि होती है यह स्थान संसार में मङ्गलीय और पवित्र विख्यात है २४ वहीं केदार नामी मतङ्गऋषि का बड़ा उत्तम स्थान है उसके आगे बड़ा रमणीक कुण्डोद नामी पर्वत है जिसपर सुन्दर फल मूल और जल मिलता है २५ राजा नल को पिपासाकुल होने पर इसी पर्वत पर जल मिला था और इसी के समीप देववन है जहां तपस्वी लोग रहा करते हैं २६ इसी दिशा में बाहुदा और नन्दा नाम नदियां पहाड़ के ऊपर बहती हैं हे युधिष्ठिर! मैंने तुमको ये सब पुण्यस्थान, तीर्थ, नदी और पर्वत पूर्व दिशा के सुनाये हैं अब जो जो पवित्र स्थान और तीर्थ आदि शेष तीनों दिशाओं में हैं उनको भी सुनो ॥ २७।२८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अट्ठासीवाँ अध्याय ।

धौम्यऋषि का युधिष्ठिर से दक्षिणदिशा के तीर्थ आदिकों का वृत्तान्त कहना ।

धौम्यऋषि बोले हे राजायुधिष्ठिर! अब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार दक्षिण दिशा के पुण्यतीर्थों का वृत्तान्त कहता हूं सुनो १ इस दिशा में प्रथम तो बड़ी कल्याणरूपी गोदावरी नदी है जो वन उपवन और तपस्वियों से सुशोभित और अति गंभीर है और उसके आगे वेणा और भीमरथी नाम नदियां हैं जिनके तटपर अनेक तपस्वियों के आश्रम हैं ये दोनों नदियां मृग और पक्षियों से व्याप्त सब पापों के भय को दूर करनेवाली हैं २।३ फिर पयोष्णी नाम राजऋषि नृगनाम की नदी परमरमणीक है जिसमें बहुत सा जल है और जिसके तटपर ब्राह्मणलोग रहा करते हैं ४ इसी नदी के तटपर बड़े तपस्वी और योगी मार्कण्डेय ऋषि ने राजा नृग के वंश की प्रशंसा उसीके सम्मुख की थी और हमने यह भी सुना है कि इसी स्थानपर राजा नृग के यज्ञ में इन्द्र सोमपान करके मतवाला होगया था और ब्राह्मणलोग दक्षिणा पाकर निहाल होगये थे इस पयोष्णी नदीपर वाराहतीर्थ के उत्तर ओर की पृथ्वी की धूलि स्पर्श करने या वायु से ऊपर पड़ने अथवा वहां पर नदी के जल को पीने

से मनुष्य के मरण पर्यन्त के पाप दूर होजाते हैं और वहांपर जो शिवजी का शिखर स्वर्ग से भी ऊंचा और शिवजी का ही रचा हुआ है उसको देखने से मनुष्य को शिवलोक मिलता है ५ । ८ हे युधिष्ठिर ! गङ्गा आदि नदियाँ एक ओर और पयोष्णी एक ओर है मैं पयोष्णी को सब तीर्थों से पुण्यदायक समझता हूं ९ वहीं माठरका वन कल्याणरूप, बहुत मूल और फल रखनेवाला और धर्म का बढ़ानेवाला है और वरुणस्रोतस नाम पहाड़पर यूप अर्थात् यज्ञस्तम्भ हैं १० और वहाँ से जो त्रिवेणी को मार्ग गया है उसके उत्तर ओर कण्वऋषि का आश्रम और तपस्वियों के वन हैं इसके आगे शूर्पारक में महात्मा जमदग्नि ऋषि की वेदी और रम्य पाषाण तीर्थ और पुनश्चन्द्रा नदी है ११ । १२ वहीं अशोक तीर्थ भी है जिसमें बहुत से आश्रम हैं उसके आगे पाण्ड्यदेशों में अगस्त्य और वारुणनामी तीर्थ हैं १३ और उसी देश में कुमारी तीर्थ भी बड़ा पुण्य का देनेवालाहै और वहीं ताम्रपर्णी है जहाँ मोक्षपानेकी इच्छा से देवताओं ने आश्रम में तपस्या की थी तब से वह स्थान गोकर्ण नाम से तीनों लोकों में विख्यात हुआ है वहाँ पर एक परम कल्याण का करनेवाला सरोवर है जिसमें बहुत शीतल जल भरा हुआ है वह जल धर्म का बढ़ानेवाला है जिनके अन्तःकरण अशुद्ध हैं वे उसमें नहीं प्रविष्ट होसक्ते हैं १४ । १६ वहाँ एक देवताओं की तुल्य पहाड़ भी है जिसपर वृक्ष, घास, फल और मूल बहुत हैं और अगस्त्यजी के शिष्य का आश्रम है १७ उसी ओर बड़ाकल्याणरूपी बैडूर्य नामी मणि रखनेवाला पर्वत है जहाँ फल, मूल और जल बहुत मिलते हैं यह पर्वत अगस्त्यजी का आश्रम है १८ इसके आगे सुराष्ट्रदेश है उसमें जो जो पुण्य और पवित्र स्थान, आश्रम, नदी और सरोवर हैं उनका भी वृत्तान्त कहता हूं सुनो ब्राह्मणलोग कहते हैं कि उस देश में एक तो चमसोद्भेदन तीर्थ है और समुद्र के तटपर प्रभास नाम देवताओं का तीर्थ है १९ । २० और वहीं पिण्डारक नाम तीर्थ है जहाँ तपस्वी रहते हैं और उज्जयन्त पर्वतहै जहाँ सिद्धि शीघ्र मिलती है २१ इसके विषय में हमने एक देवर्षि नारदजी का कहा हुआ पुराना श्लोक सुना है जिसका अर्थ यह है कि जो उज्जयन्त नाम पर्वत सुराष्ट्रदेशों में है जिसपर अनेक मृग और पक्षी रहते हैं उसपर तपस्या करने से मनुष्य को स्वर्गलोक मिलता है २२ । २३ वहीं द्वारका नाम धर्म की बढ़ानेवाली पुरी है जिसमें श्रीकृष्णजी रहते हैं ये श्रीकृष्ण साक्षात् पुरानेदेवता हैं और

उनका पूजन करना सनातनधर्म है २४ जो ब्राह्मण वेदपाठी और अध्यात्म के जाननेवाले हैं वे श्रीकृष्णजी की पूजा करने को ही सनातनधर्म कहते हैं २५ सो हे युधिष्ठिर ! ये श्रीकृष्ण जो पवित्रों से पवित्र गोविन्दरूप पुण्यों के पुण्य मङ्गलों में मङ्गल २६ व त्रिलोकी में कमललोचन, देवाधिदेव, सनातन, अविनाशी, क्षेत्रज्ञ, परमेश्वर अचिन्त्य आत्मावाले होकर भक्तभयहारी कहलाते हैं वह उसी द्वारकापुरी में रहते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

नवासीवाँ अध्याय ।

धौम्यऋषि का युधिष्ठिर से पश्चिम दिशा के तीर्थों का वृत्तान्त कहना ।

धौम्यऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! अब मैं उन पवित्र, पुण्यदायक स्थानों और तीर्थों का वृत्तान्त कहता हूं जो पश्चिम दिशा में अवन्तिदेशों में हैं १ प्रथम तो इस दिशा में नर्मदा नदी है जो पश्चिम की ओर को बहती हुई धर्म को बढ़ानेवाली है इसके तटपर प्रियंगु और आंब के वृक्षों के वन हैं २ इस नदी में सबतीर्थ, पवित्र स्थान, नदियां, पर्वत जो तीनों लोकों में विख्यात ब्रह्मादिक देवता, सिद्ध, ऋषि और चारण आदि पुण्यात्माजीव सदा स्नान करने को आया करते हैं ३।४ इसी दिशा में विश्रवामुनि का स्थान है जहां नरवाहन कुबेरजी उत्पन्न हुए थे और वैडूर्यशिखर नाम पर्वत परमकल्याणरूप धर्म का बढ़ानेवाला है जिस पर वृक्ष सदा फूले फले बने रहते हैं ५।६ इस पहाड़पर एक धर्मका बढ़ानेवाला सरोवर है जिसमें कमल फूले रहते हैं उस पर देवता और गन्धर्व बने रहते हैं ७ यह पर्वत स्वर्ग की तुल्य है देवता और ऋषियों के समूह के समूह वहां बिचरा करते हैं और अनेक आश्चर्य की बातें दिखाई देती हैं ८ वहीं पर ह्रदिनी नाम परमपुण्य नदी है जिसको राजऋषि विश्वामित्र लाये थे जिस नदी के तटपर राजा ययाति ने स्वर्ग से सत्पुरुषों के बीच में गिरकर फिर सनातन लोक पाये थे ९।१० वहीं एक पुण्य सरोवर और मैनाक और असित नामी मूल और फल से युक्त पर्वत हैं ११ इसी दिशा में कक्षसेन और च्यवन ऋषियों के पुण्य-आश्रम हैं जहां थोड़ी तपस्या करने से भी मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होजाती है वहीं जम्बू मार्ग नामी मृग और पक्षियों से युक्त आश्रम भी है जहां शुद्ध अन्तःकरण रखनेवाले ऋषियों के आश्रम हैं और उसके परे केतुमाला, मध्या और गङ्गाद्वारनामी बड़े पुण्यदायक तीर्थ हैं जहां तपस्वीलोग सदा रहा करते हैं और इस

के आगे सैन्धव वन है जहां पवित्र ब्राह्मण रहते हैं १२।१५ इसी दिशा में पुष्कर नाम धर्म का बढ़ानेवाला ब्रह्माजी का सरोवर भी है जहां वैखानसनाम के सिद्धऋषियों का आश्रम है १६ हे युधिष्ठिर! ब्रह्माजी ने यहां वास करने के लिये यह कहा है कि जो कोई पुष्कर का स्मरण मन से भी करता है उसके सब पाप दूर होजाते हैं और वह स्वर्गलोक पाता है॥ १७। १८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोननवतितमोऽध्यायः॥ ८९॥

नब्बेवाँ अध्याय।

धौम्यऋषि का युधिष्ठिर से उत्तर दिशा के तीर्थ और पवित्र स्थानों का वृत्तान्त कहना।

धौम्यऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! अब मैं उत्तर दिशा के तीर्थ और पुण्य स्थानों का वृत्तान्त कहता हूं १ तुम सावधानी से सुनो क्योंकि कथा को मन में याद रखने से अच्छी श्रद्धा उत्पन्न होती है २ इस दिशा में प्रथम सरस्वती, शालिनी, ह्रदिनी और यमुनानाम की नदियां बड़े पुण्य की देनेवाली हैं इनमें यमुना का बड़ा वेग है जो समुद्र में जा मिली हैं ३ यहां पर प्लक्षावतरण नाम बड़ा शुभ और पुण्यद तीर्थ है जहां ब्राह्मण लोग यज्ञ करके और सरस्वती में अवभृथ स्नान करके चले जाते हैं ४ वहीं अग्निशिरनाम भी बड़ा दिव्य और कल्याणरूपी तीर्थ है जहां सहदेव ने यज्ञ किया था कि जिसके कारण से संसार में यह इन्द्र की कही हुई बात ब्राह्मणों के द्वारा फैल रही है कि यमुना के तटपर सहदेव ने अग्नि की सेवा की थी और उसके किये हुए यज्ञों में लाखों की दक्षिणा खर्च हुई थी ५। ७ इसी दिशा में महायशस्वी, चक्रवर्ती राजा भरत ने एक सौ अड़तालीस अश्वमेध यज्ञ किये थे ८ हे तात! यह सुनने में आया है कि इस राजा ने अगले समय में ब्राह्मणों की सब मनोकामना पूरी की थीं वहीं शरभङ्ग ऋषि का भी परम पुण्यद आश्रम सुना जाता है ९। १० इस दिशा में जो सरस्वती नदी है वह सत्पुरुषों से निरन्तर पूजित रहती है और अगले समय में इस नदी के तटपर बालखिल्य ऋषियों ने यज्ञ किया था इसी दिशा में दृषद्वतीनाम नदी भी बड़े पुण्य की देनेवाली है और पाञ्चाल देश में न्यग्रोधनामी तीर्थ और द्विपदनामी मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा है ११ यहीं पर दालभ्यऋषि का आश्रम तीनों लोकों में विख्यात है। दालभ्यऋषि बड़े यशस्वी, सुव्रती और तेजस्वी थे और इसी स्थान पर ब्रह्मज्ञाता श्वेत, श्याम और रक्तवर्ण रखनेवाले सब वेदों के पण्डित नर नारायण ने मुख्य मुख्य यज्ञ किये थे १२। १४ अगले समय में

यहां विशाखयूप पर देवताओं ने इन्द्र और वरुण के साथ कई प्रकार से तप किया था इससे यह स्थान बहुत पुण्य का देनेवाला है १५ और यहां पर जो ढाक का वन है उसमें महाभाग जमदग्नि महर्षि ने यज्ञ किया था १६ उस यज्ञ में सब नदियां अपना अपना जल लेकर आई थीं और जमदग्निजी को घेरकर खड़ी होगई थीं १७ विश्वावसु गन्धर्ब ने उनको इस प्रकार से दीक्षित देखकर आप अपने मुख से एक श्लोक कहा था जिसका अर्थ यह है कि हे देवताओ ! महात्मा जमदग्निजी के यज्ञ में नदियों ने आकर ब्राह्मणों को मधु पिलाकर तृप्त किया १८।१९ इसी दिशामें श्रीगङ्गाजी हिमाचल पहाड़ को जिसपर गन्धर्ब, यक्ष, राक्षस, अप्सरा, किरात और किन्नर लोग रहा करते हैं फोड़कर निकली हैं यह स्थान गङ्गाद्वार कहलाता है वहां बहुतसे ऋषि रहते हैं और सनत्कुमारऋषि धर्म के बढ़ाने की इच्छा से उसका ध्यान किया करते हैं २० । २१ यहाँ कनखल और पुरुनाम पर्वत हैं जहां राजा पुरूरवा गया था धर्म के बढ़ानेवाले स्थान हैं २२ वहीं एक बड़े पर्वतपर जहाँ महाऋषि रहते हैं भृगुजी ने तपस्या की थी वह पर्वत तब से भृगुतुङ्ग आश्रम नाम से प्रसिद्ध है २३ उसके आगे बदरीवन के निकट तीनों लोकों में विख्यात त्रिकालज्ञ श्रीविष्णु भगवान् का विशाल और पुण्यद आश्रम है २४ । २५ हे युधिष्ठिर ! इस बदरीवन के निकट पहिले गङ्गाका जल एक ओर गरम और एक ओर शीतल बहता था और बालू सुवर्णसंयुक्त थी २६ यहाँ पर बड़े बड़े महाभाग, महाबलशाली और तेजस्वी ऋषि और देवता नित्य दिव्यरूप सर्वशक्तिमान् नारायण को नमस्कार करते हैं २७ हे युधिष्ठर ! जहां परमात्मा, सनातन, दिव्य गुणयुक्त नारायण हैं वहीं सब जगत्, सब तीर्थ और सब स्थान समझने चाहिये २८ नारायण ही पुण्य है, नारायण ही परब्रह्म है, नारायण ही तीर्थ है, नारायण ही तपोवन है, नारायण ही पर है, नारायण ही परम देवता है, नारायण ही प्राणियों का परमेश्वर है और नारायण ही नित्य श्रेष्ठ धाता और परमपद हैं। शास्त्र के जाननेवाले और विद्वान्लोग उस नारायण को ऐसा समझकर किसीप्रकार का शोच नहीं करते हैं २९।३० जहाँ आदिदेव और महायोगी मधुसूदनजी हैं वहीं सब तपोधन, सिद्ध और सब देवऋषि समझने चाहिये ३१ वह आदिदेव पुण्यों का भी पुण्य है तुमको इसमें कुछ संदेह करना उचित नहीं है हे युधिष्ठिर ! ये सब तीर्थ और स्थान जो हमने वर्णन किये हैं सब धर्म के बढ़ानेवाले और वसु, साध्य, आदित्य,

मरुद्गण, अश्विनीकुमार और देवताओं की तुल्य प्रभाव रखनेवाले ऋषियों से सेवित हैं इनकी जो तुम अपने महाभाग भाई और ब्राह्मणोंसहित यात्रा करोगे तो तुम्हारा सब शोक दूर हो जायगा ॥ ३२ । ३४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इक्यानबेवाँ अध्याय।

लोमशऋषि का इन्द्रलोक से युधिष्ठिर के पास आना और अर्जुन के अस्त्र सीखने का वृत्तान्त कहकर इन्द्रका संदेशा कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब धौम्यऋषि उक्त कथा राजा युधिष्ठिर से कह चुके तब वहाँ बड़े तेजस्वी लोमशऋषि आये। उनको देखकर राजा युधिष्ठिर सब साथी ब्राह्मणों सहित उठ खड़े हुए और आगे जाकर इस प्रकार से उनके समीप जाखड़े हुए जैसे इन्द्र के समीप देवता जाखड़े हों। राजा युधिष्ठिर ने उस समय लोमशऋषि की विधिपूर्वक पूजा की और उनसे वहाँ आने और घूमने का कारण पूछा १ । ३ लोमशऋषि यह सुनकर प्रसन्न हुए और मधुर वाणी से पाण्डवों को प्रसन्न करते हुए कहने लगे ४ कि हे युधिष्ठिर! दैवी इच्छा से मैं सब लोकों में घूमता हुआ इन्द्रलोक को चला गया था वहाँ मैंने इन्द्र के दर्शन किये और तुम्हारे वीर भाई अर्जुन को भी इन्द्र के आधे आसनपर बैठा हुआ देखा उसको देखकर मुझको बड़ाआश्चर्य हुआ उस समय मुझसे देवेन्द्र ने यह कहा कि तुम पाण्डवों के पास जाओ ५ । ७ सो मैं तुमको और तुम्हारे छोटे भाइयों को देखने की इच्छा से इन्द्र और महात्मा अर्जुन के कहने के अनुसार वहीं से चला आता हूं ८ हे राजन्! अब मैं तुमसे तुम्हारे हित की बात कहता हूं तुम अपने भाई और द्रौपदी सहित सुनो ९ तुमने जो अर्जुन को अस्त्र सीखने के लिये भेजा था सो उसको ब्रह्मशिरनामी अप्रमित अस्त्र जो अमृत से प्रकट हुआ था और शिवजी की तपस्या करने पर मिला था संहार, प्रायश्चित्त और मङ्गल अर्थात् अस्त्र को छोड़ना, खींचना, रक्षा करना और भस्म हुए पदार्थ को फिर ज्यों का त्यों कर देना, मन्त्र और विधान सहित महादेवजी से प्राप्त होगया है और यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र से वज्र आदि दूसरे अस्त्र भी मिल गये हैं १० । १३ इनके सिवाय उसने विश्वावसु गन्धर्व की बेटी से गाना, बजाना और नाचना भी विधिपूर्वक सीख लिया है सो वह तुम्हारा छोटा भाई अब सम्पूर्ण अस्त्र और गान्धर्व वेद को सीख कर

इन्द्र के यहाँ सुखपूर्वक रहता है १४। १५ हे युधिष्ठिर ! जब मैं इन्द्रलोक से चलने लगा तब इन्द्र ने मुझसे कहा कि हे द्विजोत्तम ! आप अवश्य मृत्युलोक में भी जायँगे वहाँ जब आप जायँ तब मेरी ओर से युधिष्ठिर से यह कह देना १६। १७ कि तुम्हारा छोटा भाई अर्जुन अस्त्रविद्या सीख चुका है अब वह कुछ देवताओं का काम जो देवताओं से नहीं होसक्ता है करके शीघ्र तुम्हारे पास आवेगा १८ तबतक तुम भी भाइयों सहित तपस्या करो, तप से श्रेष्ठ कोई पदार्थ नहीं है, मोक्ष भी तप से ही मिलती है १९ मैं उस सत्यप्रतिज्ञ कर्ण को जो बड़ा वीर, बड़ा पराक्रमी, युद्ध में अपने समान दूसरा न रखनेवाला, युद्ध में निपुण, बड़ा धनुषधारी, बड़ा अस्त्रवेत्ता, परम सुन्दर, सूर्य का पुत्र और महेश्वर के पुत्र की तुल्य है और अर्जुन को जो ऊँचे कन्धे रखनेवाले शरीर के साथ उत्पन्न हुआ था और जिसका पराक्रम स्पष्ट है जानता हूं २०।२२ कर्ण युद्ध में अर्जुन की सोलहवीं कला को भी नहीं पहुँचता है और जो तेरे मन में कर्ण की ओर का खटका लग रहा है वह भी मैं अर्जुन के तेरे पास चले आने पर दूर करदूंगा तबतक तुमने जो तीर्थयात्रा का मन में विचार किया है वही करो महर्षि लोमशऋषि तुमको सबतीर्थों में जानेका माहात्म्य सुनावेंगे उनके वचनों पर तुमको विश्वास करना चाहिये ॥ २३। २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

बानबेवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का इन्द्र की आज्ञा और अर्जुन का संदेशा सुनकर तीर्थयात्रा करने की इच्छा से ब्राह्मणादिकों को लौटा देना।

लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! जब इन्द्र मुझसे उक्त प्रकार से कह चुका तब अर्जुन कहने लगा कि हे महाराज ! आप मेरे भाई युधिष्ठिर को धर्मरूपी लक्ष्मी से युक्त कीजिये। आप सब श्रेष्ठ धर्म, तप और राजाओं के सनातन धर्मों को भी जानते हैं १। २ और जिस धर्म से मनुष्य पवित्र हो जाता है वह भी आपको मालूमहै इससे आप मेरे भाइयों को तीर्थरूपी पुण्य से युक्त कीजिये३ और ऐसा कीजिये जिससे राजा युधिष्ठिर तीर्थों की यात्रा और गौओं का दान करें आपकी रक्षा में रहने से राजा सब तीर्थों की यात्रा कर सकेंगे और दुर्ग, विषम स्थानों में आप राजा की राक्षसों से रक्षा कीजियेगा ४। ५ हे द्विजोत्तम ! जैसे पहिले समय में दधीचि ऋषि ने इन्द्र की और अङ्गिरा ऋषि

ने सूर्य की रक्षा की थी वैसे ही राक्षसों से कुन्ती के पुत्रों की रक्षा कीजियेगा ६ यातुधान नामी बहुत से राक्षस पर्वतों की समान हैं आपकी रक्षा में रहने पर वे राजा के निकट न आसकेंगे ७ सो हे युधिष्ठिर ! मैं इन्द्र की आज्ञा और अर्जुन की प्रार्थना से तेरे साथ रहकर सब भयों से तुम्हारी रक्षा करूंगा ८ मैंने पहिले दो बार सब तीर्थों की यात्रा की है अब तीसरी बार तुम्हारे साथ करूंगा ९ हे युधिष्ठिर ! यह तीर्थयात्रा सब भयों को दूर करनेवाली है मनु आदि राजऋषियों ने इसको किया है १० जो मनुष्य कुटिल, अशुद्ध अन्तःकरण, विद्याहीन, पापी और कुबुद्धि होता है वह तीर्थों में स्नान नहीं कर सक्ता है ११ तुम तो सदा धर्ममति, धर्मज्ञ, सत्यवादी, सब संगों से विमुक्त और ऐश्वर्यवान् हो और राजा भगीरथ, राजा ययाति और गयआदि अगले धर्मज्ञ राजाओं से किसी प्रकार से कम नहीं हो तुमको तीर्थयात्रा दुर्लभ नहीं है १२ । १३ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज ! मैं आपकी वार्त्ता का उत्तर त्रिलोकी में नहीं देखता हूं, आज मैं बहुत ही प्रसन्न हूं, भला इससे भी और क्या अधिक होगा जो इन्द्र मेरा स्मरण करे १४ और जिसका मिलाप आप सरीखे सत्पुरुषों से हो और जिसका भाई अर्जुन सा हो जिसकी याद देवेन्द्र सा देवता करे उससे बढ़कर कौन मनुष्य संसार में होगा १५ हे महाराज ! जो भगवान् इन्द्र ने मुझे तीर्थयात्रा करने की आज्ञा दी है उसके करने के लिये मैंने धौम्यऋषि की आज्ञानुसार पहिले ही से विचार कर रक्खा है १६ सो महाराज ! जब आप इच्छा करें तभी मैं भी तीर्थयात्रा करने के लिये आपके साथ चलने को उपस्थित हूं यह मेरा परम निश्चय है १७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! लोमशऋषि युधिष्ठिर को तीर्थयात्रा करने के लिये उपस्थित देखकर कहने लगे कि तुम अपने साथ के समुदाय को थोड़ा करो ऐसा करने से यात्रा इच्छा के अनुसार होगी १८ यह सुनकर युधिष्ठिर सब समुदाय से कहने लगा कि तुममें से जो ब्राह्मण और यती, भिक्षाभोजन करनेवाले और भूख, प्यास, राह चलने की थकावट और जाड़े और गरमी को नहीं सहसक्ते हों और मिष्टान्न, पकान्न, लेह्य, पान और मांस भोजन करने की इच्छा रखते हों वे सब लौट जावो १९।२० और हमारे रसोइये जो हमारेसाथ अन्नआदि भोजन करनेवाले हैं और पुरवासी जो राजभक्ति के कारण से हमारे साथ हैं वे भी लौट जायँ और राजा धृतराष्ट्र के पास चले जायँ राजा धृतराष्ट्र तुम सबको यथोचित मासिक

और जीविका देंगे और जो न दें तो तुम सब लोग पाञ्चाल देश में राजा द्रुपद के पास चले जाना राजा द्रुपद हमारी प्रीति के कारण से तुम सबको जीविका देंगे २१। २४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर बहुत से पुरवासी, वेदपाठी ब्राह्मण और यती दुःखी होकर हस्तिनापुर को लौटकर चले गये २५ अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर की प्रीति के कारण से उन सबको प्रीतिपूर्वक अपने पास रखलिया और सबको धन देकर तृप्त करदिया २६ उसके पीछे युधिष्ठिर ने उनके चले जाने पर लोमशऋषि और थोड़े ब्राह्मणों सहित उस वन में तीन रात्रि वास किया ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

तिरानबेवाँ अध्याय।

वनवासी ब्राह्मणों को साथ लेकर युधिष्ठिर का पूर्वदिशा को चल देना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब राजा युधिष्ठिर तीर्थयात्रा करने के लिये चलने को हुए तब वनवासी ब्राह्मण उनके पास आकर कहने लगे कि महाराज! आप तीर्थयात्रा करने को अपने भाई और महात्मा लोमशऋषि के साथ जाते हैं हम लोगों को भी लेते चलिये विना आपके हम लोग अकेले उन तीर्थों में नहीं जा सक्ते हैं १।२ क्योंकि वे तीर्थ श्वापदों से पूर्ण होकर दुर्ग और विषम हैं इसलिये अल्पपुरुष वहां नहीं जासक्ते हैं ४ आप सब भाई शूरवीर और धनुषधारियों में श्रेष्ठ हैं आपकी रक्षा में रहकर हम लोग भी तीर्थ कर आवेंगे ५ और आपकी प्रसन्नता से सुखपूर्वक तीर्थ और वनों की यात्रा का फल पावेंगे ६ और तीर्थों का दर्शन और स्नान करके शुद्ध और निष्पाप होजायँगे ७ और आपको भी तीर्थों में स्नान करने से निश्चय वे दुष्प्राप्य लोक मिलेंगे जो राजा कार्त्तवीर्य राजऋषि अष्टक, लोमपाद और राजा भरत को मिले हैं ८। ९ हम लोग भी आपके साथ चलकर प्रभास आदि तीर्थ, महेन्द्र आदि पर्वत, गंगा आदि नदियों और प्लक्ष आदि वनस्पतियों को देखना चाहते हैं जो आपको ब्राह्मणों की भक्ति लेशमात्र भी है तो हम लोगों के कहने को मान लीजिये इस में आपका भी कल्याण होगा तीर्थों में बहुधा तप के विघ्न करनेवाले राक्षस विचरा करते हैं आप हमलोगों की उनसे रक्षा कीजिये और जो जो तीर्थ नारदजी, धौम्यऋषि और तपस्वी देवऋषि लोमशजी ने वर्णन किये हैं उन सबकी विधिपूर्वक यात्रा कीजिये १०। १४ उन ब्राह्मणों की उक्त बात को सुनकर

युधिष्ठिर ने आँखों में आनन्द के आंसू भरकर सब भाइयों के बीच में कहा कि बहुत अच्छा आप जैसा कहते हैं हम वैसाही करेंगे १५। १६ इसके पीछे युधिष्ठिर ने भाइयों सहित लोमशऋषि और धौम्य पुरोहित की पूजा की और द्रौपदीसहित तीर्थयात्रा करने का विचार किया उसी समय वहां काम्यकवन में पाण्डवों को देखने के लिये महाभाग मनीषी व्यासजी, नारद और पर्वत ऋषि आये युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक उन तीनों की पूजा की और वे तीनों सत्कार पाकर उनसे कहने लगे १७। १६ कि हे युधिष्ठिर! हे नकुल! हे सहदेव! हे भीमसेन! तुम चारों भाई ऋजुता को ग्रहण करो और मन को शुद्ध करके तीर्थयात्रा करो। ब्राह्मणलोग कहते हैं कि शरीर से नियम का साधना मानुषव्रत और मन को शुद्ध करना दैवव्रत कहलाते हैं २०। २१ परंतु हे नरेन्द्र! शौच के लिये मन का निर्दोष होना ही पर्याप्त है इससे तुम सब शरीर और मन के नियमों का साधन और व्रत करके शुद्ध ही हो अब दैवव्रत को धारण करके आपस में मित्रता रखकर तीर्थयात्रा करो तुमको तीर्थयात्रा का फल यथोक्त मिलेगा २२। २३ यह सुनकर पाण्डवों ने द्रौपदीसहित वह व्रत स्वीकार किया और अगहन की पूनो के पीछे पुष्यनक्षत्र में मृगछाला और जटा धारण किये हुए और अभेद्य कवच अर्थात् बख़्तर पहिरे हुए लोमश ऋषि, व्यासजी, नारद और पर्वत ऋषि के चरणों को छूकर मुनियों से स्वस्त्ययन कराके उन सब वनवासी ब्राह्मणों और धौम्यपुरोहित सहित चल दिये २४। २७ हे जनमेजय! इन्द्रसेन आदि भृत्य पन्द्रह रथों को लिये हुए वह सेवक जो साथ जाने के योग्य थे उनके साथ होलिये और वे वीर पाण्डव अपने अपने आयुध अर्थात् हथियारों समेत तलवारों और सबाण तर्कसों को बांधे हुए पूर्वदिशा को चल दिये॥ २८। २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ६३॥

चौरानबेवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का लोमशऋषि से धर्मात्माओं के दुःखी और अधर्मियों के सुखी होने का कारण पूछना और लोमशऋषि का समाधान करना।

मार्ग में युधिष्ठिर ने लोमशऋषि से पूछा कि महाराज! जितने उत्तम गुण हैं उनसे मैं अपने को शून्य नहीं जानता हूं और यह भी समझता हूं कि हमारे शत्रु लोग गुण और धर्म दोनों से हीन हैं परंतु यह क्या कारण है जो

मैं तो ऐसा दुःखी होरहा हूं कि ऐसा कोई नहीं होगा और हमारे शत्रुओं की दिन प्रति बढ़ोतरी होती जाती है १ । २ यह सुनकर लोमशजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! अधर्मी पुरुषों को अधर्म करनेपर भी बढ़ते हुए देखकर तुमको दुःखी होना उचित नहीं है, हां ऐसा अवश्य होता है कि अधर्म करनेपर भी मनुष्य की वृद्धि और कल्याण होता है और शत्रुओं को भी जीत लेता है परंतु अन्त में मूलसहित धूल में मिल जाता है ३ । ४ मैंने देखा है कि दैत्य और दानवों ने अधर्म करके बड़ी वृद्धि पाई परन्तु अन्त में जड़-पेंड़ से नाश होगये और देवयुग में मैंने यह भी देखा था कि देवताओं ने धर्म में रुचि की और दैत्यों ने धर्म का त्याग किया सो धर्म करने के कारण से देवता तीर्थ में प्रवेश होगये और दैत्य नहीं होने पाये क्योंकि उनके मन में अधर्म से उत्पन्न गर्व प्रवेश होरहा था ५ । ७ उस गर्व से मान और क्रोध की अधिकता हुई और क्रोध से खोटे कर्म करने लगे और लज्जा जाती रही इस प्रकार से उनका व्रत नष्ट हो गया ८ इसके पीछे जब दैत्य व्रतहीन और निर्लज्ज होगये तब क्षमा, लक्ष्मी और धर्म ने उनको परित्याग करदिया ९ और इन तीनों के न होने पर उन दैत्य-दानवों के हृदय में जिनका चित्त गर्व से नष्ट होरहा था कलि ने प्रवेश किया इस प्रकार दरिद्रता से आविष्ट, कलि से हत और घमण्ड से तिरस्कृत होने के कारण उन क्रियाहीन, निर्बुद्धि और मानी दैत्य-दानवों का नाश होगया १० । १२ और देवतालोग जो धर्मात्मा और शीलवान् थे सागर, नदी, सरोवर आदि पुण्यस्थानों में चले गये और वहां उन्होंने तप, यज्ञ और दान कर करके अपने सब पाप दूर कर दिये और कल्याण प्राप्त किया सो हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार से नियमपूर्वक तीर्थयात्रा करने के कारण से देवताओं को परम ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था तुमभी इसीप्रकार से अपने छोटे भाइयोंसहित इन तीर्थों में स्नान करके १३ । १६ फिर अपनी लक्ष्मी पाओगे यह सनातन धर्म है । देखो राजा नृग, शिबि, औशीनर, भगीरथ, वसुमना, गय, पुरु और राजा पुरूरवा ने तीर्थयात्रा, तपस्या और महात्माओं के दर्शन करने से ही पुण्य, यश और द्रव्य पाये थे तुमको भी इसीप्रकार से लक्ष्मी मिलेगी और तुम्हारा पुण्य और तुम्हारी कीर्त्ति राजा इक्ष्वाकु, राजा मुचुकुन्द, राजा मान्धाता और राजा मरुत्त की सी होगी; तुमको लक्ष्मी और सब ऐश्वर्य उसीप्रकार से मिलेंगे जैसे देवता और देवर्षियोंको तपस्या करनेसे मिले थे और ये धृतराष्ट्र के पुत्र जो मोह

के वशमें होरहे हैं थोड़ेही दिनों में दैत्यों की तरह नाश होजायँगे ॥१७।२२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पंचानबेवाँ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर का नैमिषआदि तीर्थों की यात्रा करना और गयशिर पर्वत पर पहुँचकर राजा गय के यज्ञ करने का इतिहास सुनना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वे वीर पाण्डव उक्त प्रकार से अनेक प्रकार की बातचीत करते हुए और क्रमपूर्वक अनेक स्थानों में टिकते हुए सब साथियोंसहित नैमिषवन में पहुँचे और गोमती के अनेक तीर्थों में स्नान करके गोदान और धनदान देते भये १।२ और उन्होंने कन्यातीर्थ, अश्वतीर्थ और गौओं के तीर्थ में विधिपूर्वक देवता, पितर और ब्राह्मणों को तृप्त करके कालकोटि और विषप्रस्थ पर्वतों पर वास किया ३ इसके पीछे बाहुदा तीर्थ में जाकर सबों ने स्नान किये और वहां से प्रयाग को जो देवताओं के यज्ञ का स्थान है गये वहां जाकर कुछ काल वास करके तपस्या की और गङ्गा और यमुना के संगमपर ब्राह्मणों को धन का दान दिया इसके उपरान्त वे पाण्डव सब ब्राह्मणों सहित ब्रह्माजी की वेदी को गये और वहां रहकर कुछ काल तपस्या की ४।७ वहां नित्य वनफल लाकर ब्राह्मणों को भोजन कराते थे ब्रह्माजी की वेदी से चलकर गयशिरनाम पर्वतपर गये जो गयनामी पुण्यात्मा और धर्मज्ञ राजऋषि से संस्कार किया हुआ है और बड़ा पवित्र और दिव्य है वहीं एक महानदी बड़ी रमणीक है जिसके तट वानीरवृक्ष और पुलिन अर्थात् बालू के टापुओं से सुशोभित होरहे थे ८।१० उसी स्थान पर ब्रह्मसरनामी तीर्थ भी है जहां ऋषियों के अनेक स्थान हैं और जहां भगवान् अगस्त्यजी यमराज के पास गये थे इसी स्थान पर सब नदियों का आविर्भाव अर्थात् प्रकट होने की जगह है और सनातनरूप यमराज ने भी वहीं वास किया था ११।१२ यहीं पिनाकधारी शिवजी भी सदा वास करते हैं पाण्डवों ने वहां जाकर चातुर्मास्य और ऋषियज्ञ किये और वहां जो अक्षयवट है जहां यज्ञ करने से यज्ञ का फल अक्षय बना रहता है, उसके नीचे वास करके पाण्डवों ने उपवास किये वहां पाण्डवों के यज्ञ में सैकड़ों तपस्वी, विद्वान्, वेदपारग और महात्मा ब्राह्मण लोग भी आये। वे सभा में बैठ कर अनेक पुण्यरूपी कथा कहने लगे उनमें से शमठनामी ऋषि जो विद्यावान्, व्रती और

ब्रह्मचारी थे राजा गय का इतिहास कहने लगे और बोले हे भरतवंशी, युधिष्ठिर! तुमसे अमूर्तरयस के गयनामी पुत्र का इतिहास कहता हूं जो राजऋषियों में उत्तम और पुण्यकर्म करनेवाला था १२ । १८ इस राजा ने इस स्थान पर ऐसा यज्ञ किया था कि उसमें अनन्त दक्षिणा खर्च हुई थी, उस राजा ने अन्न की सैकड़ों हज़ारों ढेरियां पर्वत की समान लगवा दी थीं और घी वा दही की सैकड़ों नदियां भरवा दी थीं और मांगनेवालों के लिये व्यञ्जनों के सहस्रों प्रवाह कर रक्खे थे अर्थात् याचकों को भोजन मिलने के लिये सहस्रों स्थान नियत कर दिये थे और जो ब्राह्मण याचक न थे उनको अच्छे प्रकार से बने हुए भोजन कराये जाते थे १९ । २१ जिस समय दक्षिणा के बटने का समय होता था उस समय ऐसी वेदध्वनि होती थी कि आकाश गूंजने लगता था और कोई किसीकी बात को सुन नहीं सकता था २२ और पुण्याहवाचन के शब्द से सब पृथ्वी, दिशा और आकाश पूर्ण होजाता था वह समय बड़ा अद्भुत जानपड़ता था २३ हे भरतर्षभ! उस राजा के यज्ञ में प्राणी तृप्त होने के कारण से देश देश में उसके यश को गाते हैं। भला जिसके यज्ञ में पच्चीस पर्वत भोजनशेष बच रहे उसके यज्ञ में ऐसा कौन होगा जो विना भोजन पाये हुए रह गया हो हे युधिष्ठिर! राजा गय का सा यज्ञ तो न किसीने पहिले किया है और न कोई अब करेगा २४ । २६ और देवता भी उसके दिये हुए हविष से अतितृप्त होने के कारण से दूसरे के दिये हुए हविष को न लेसकेंगे और जो दक्षिणा गय के यज्ञ में दीगई थी उसकी संख्या होना इस प्रकार से असंभव है जैसे वर्षा की बूंदों, बालू के कणों और आकाश के तारागणों को गिनना संभव नहीं है सो हे युधिष्ठिर! राजा गय ने ऐसे अनेक यज्ञ इसी नदी के तट पर किये थे ॥ २७ । २९

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

छानबेवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिरका अगस्त्यजी के आश्रम को जाना और लोमशऋषिका वातापी दैत्य के मारेजाने की कथा कहना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर उस तीर्थ पर दान देकर सब ब्राह्मणोंसहित अगस्त्यजी के आश्रम को गया और वहां दुर्जयापुरी में वास किया। उस समय बोलनेवालों में वरिष्ठ युधिष्ठिर ने लोमशऋषि से पूछा कि महाराज! अगस्त्यजी ने वातापी को किसलिये मारा था, क्यों उसपर क्रोध किया था? और वह दैत्य कैसा प्रभाव रखता था १ । २ लोमशऋषि

बोले कि हे युधिष्ठिर! अगले समय में मणिमती पुरी में इल्वलनाम एक दैत्य रहता था उस दैत्य के छोटे भाई का नाम वातापी था ४ एक दिन उस दैत्य ने एक तपस्वी ब्राह्मण से कहा कि महाराज! मुझको एक ऐसा पुत्र दीजिये जो इन्द्रकी तुल्य हो। उस ब्राह्मण ने ऐसा पुत्र देने से निषेध किया तब वह इल्वल दैत्य महाक्रोधित होगया और ब्राह्मणमात्र से वैर मानकर ब्राह्मणों को मारने लगा। वह दैत्य बड़ा मायावी था और उसको ऐसी विद्या थी कि जिस मरे हुए को वह बुलाता था वह फिर शरीर पाकर उसके समीप चला आता था निदान उस दैत्य ने यह उपाय रचा कि अपने छोटे भाई वातापी को वह माया से बकरा बना देता और उसको मारकर उसके मांस को बनाता और ब्राह्मण को नौतकर वह मांस उसे भोजन कराता जब वह ब्राह्मण भोजन कर चुकता तब वह इल्वल दैत्य उस वातापी को बुलाता और वह वातापी ब्राह्मण के पेट को फाड़कर हँसता हुआ बाहर निकल आता इस प्रकार से उस दुर्मति इल्वल दैत्य ने अनेकानेक ब्राह्मण मारडाले ५। १३ इसी अवसर में अगस्त्यजी ने अपने पितरों को एक गढ़े में नीचे को मुख किये लटके हुए देखा उनको देखकर अगस्त्य जी ने पूछा कि आप कौन हैं और इस गढ़े में लटके हुए क्यों कँप रहे हैं? वे बोले कि हम तेरे पितर हैं संतान के न होने के कारण से इस गढ़े में लटके हुए हैं जो तू एक पुत्र उत्पन्न करे तो हमलोगों की इस नरक से मोक्ष होजाय और तू भी मोक्ष पावे १४। १७ यह सुनकर अगस्त्यजी जो तेजस्वी, सत्यवादी और धर्मपरायण थे कहने लगे कि हे पितरलोगो! मैं आप की कामना पूरी करूंगा आप अपने मन की चिन्ता को छोड़ दीजिये १८ यह कहकर अगस्त्यजी वहां से चलदिये और संतान उत्पन्न करने के लिये अपनी सदृश स्त्री ढूंढ़ने लगे जब कोई स्त्री अपने सदृश न पाई तब उन्होंने सब संसारी जीवों के उत्तम उत्तम अङ्गों को ग्रहण किया और उन अङ्गों से एक परम सुन्दरी स्त्री निर्माण की और अपने तपोबल से उसको राजा विदर्भ की रानी के गर्भ में प्रवेश करा दिया राजा विदर्भ उन दिनों में संतान होने के निमित्त तप करता था १६। २१ थोड़े ही काल में वह बिजली की समान चमकती हुई कन्यारूप से उस राजा की रानी के गर्भ से प्रकट हुई, शरीर उस कन्या का प्रकाशमान और कला बढ़ती हुई थी, राजा विदर्भ ने उसके उत्पन्न होते ही बड़े हर्ष से उसे ब्राह्मणों को दिखलाया, ब्राह्मणों ने उसको आशीर्वाद दिया और उसका

नाम लोपामुद्रा रक्खा २२ । २४ हे महाराज! वह कन्या दिन दिन बढ़ने लगी और थोड़े ही काल में इस प्रकार से बड़ी होगई जैसे जल में कमलिनी और अग्नि लगने पर अग्नि की ज्वाला शीघ्र बढ़जाती है। राजा ने उसके पास सौ कन्या अच्छा शृङ्गार किये हुए और सौ दासियां आज्ञाकारी नियत करदीं २५ । २६ उन दासियों और कन्याओं के बीच में वह लोपामुद्रा ऐसी शोभा देती थी मानो स्वर्ग में रोहिणी प्रकाश कर रही है २७ यद्यपि वह कन्या बड़ी शीलवती और युवती थी परन्तु महात्मा अगस्त्यजी के भयसे उसे किसी राजा ने नहीं मांगा और उस कन्या ने जो स्वरूप में अप्सराओं को भी उल्लंघन करती थी अपनी शीलता से अपने पिता और सुजनों को प्रसन्न किया उस समय उसके पिता ने उसे योग्य और युवती देख कर यह विचार किया कि मैं इस कन्या का विवाह किस के साथ करदूं ॥ २८ । ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवाँ अध्याय।

राजकन्या लोपामुद्रा के साथ अगस्त्यजी का विवाह होना।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! जब अगस्त्यजी ने देखा कि वह कन्या अब घर का काम काज करने के योग्य है तब वे राजा विदर्भ के पास गये और कहने लगे कि हे राजन्! मैं संतान उत्पन्न करने के लिये अपना विवाह करना चाहता हूं इससे मैं लोपामुद्रा को मांगता हूं तुम उसको मुझे देदो १ । २ यह सुनकर राजा अचेत सा होगया और कुछ उत्तर न देसका किन्तु कन्या को न देने की इच्छा से अपनी रानी के पास जाकर कहने लगा कि यह महाऋषि बड़ा बलवान् है क्रोधित होने पर सबको जलाकर भस्म कर देगा अब क्या करना चाहिये? लोपामुद्रा उन अपने माता और पिता को इस प्रकार से दुःखी देखकर उनके पास जाकर कहने लगी ३ । ५ कि हे पिताजी! मेरे कारण से आप दुःख न उठाइये मुझे अगस्त्यजी को दे दीजिये और मेरे द्वारा अपनी रक्षा कीजिये ६ यह सुनकर राजा ने उस कन्या को विधिपूर्वक अगस्त्यजी को देदिया, अगस्त्यजी उसे पाकर उससे कहने लगे कि हे सुन्दरि! इन बड़े मोल के वस्त्रों और गहनों को उतार डाल ७ । ८ यह सुनकर लोपामुद्रा ने जिसकी आंखें कमलसी और जांघें कदली के सदृश थीं वे दर्शनीय वस्त्र उतार डाले और बल्कलचीर और मृगछाला पहिरकर अग-

स्त्यजी की समान व्रत धारण कर लिया ९। १० अगस्त्यजी वहां से चलकर गङ्गाद्वार पर चले आये और अपनी आज्ञाकारिणी स्त्रीसहित तप करने लगे ११ उस स्त्री ने प्रसन्नता से अगस्त्यजी की बड़ी सेवा की और अगस्त्यजी उसकी सेवा से उसपर बड़ी प्रीति करनेलगे १२ बहुत दिनों के पीछे उस तपसे प्रकाशमान लोपामुद्रा ने ऋतुस्नान किया तब अगस्त्यजी ने उसे उसकी सेवा, शुद्धता, दम, शोभा और स्वरूप से प्रसन्न होकर मैथुन करने के लिये बुलाया १३।१४ यह सुनकर लोपामुद्रा ने लज्जित होकर हाथ जोड़े हुए नम्रता से विनय की कि महाराज! निस्सन्देह स्त्री सन्तान ही उत्पन्न करने के निमित्त होती है, परंतु आप ऐसा कीजिये जिससे रति में मेरी आपके साथ प्रीति उत्पन्न हो, मैं चाहती हूं कि जैसे वस्त्र और गहने मैं अपने पिता के घर धारण किये हुई थी वैसेही वस्त्र और गहने धारण करूं और आप भी सुन्दर माला और भूषण धारण कर लें फिर मेरा आपका संगम प्रीतिपूर्वक वैसी ही शय्या पर होवे जैसी शय्या मेरे पिताके घर थी इसके विपरीत इन चीर और काषायवस्त्रोंको पहिरकर रतिकरनेको चित्त नहीं चाहताहै ये भूषण किसी अवस्था में अपवित्र नहीं होते हैं १५।१६ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि हे कल्याणि! मेरे पास तेरे पिता की समान धन नहीं है २० लोपामुद्रा बोली कि इससंसार में जो कुछ धनहै उस सबको आप अपने तपोबलसे एकक्षणभरमें प्राप्त करसक्ते हैं २१ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि तू सत्य कहती है परंतु ऐसा करने से तप नष्ट होताहै इससे ऐसा कर जिससे तप नष्ट न होवे २२ लोपामुद्रा बोली कि महाराज! मेरे ऋतुका थोड़ासा समय रह गयाहै मैं और किसी प्रकार से आपके पास नहीं आना चाहती हूं और न यह चाहती हूं कि आपके धर्म का किसीप्रकार से लोप होवे आप जैसे उचित समझें वैसे ही मेरी कामना को पूरा करें २३।२४ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि जो तैंने ऐसा ही विचार कर लिया है तो हम तेरे लिये धन लेने जाते हैं तू यहां ही रहकर इच्छानुसार पदार्थ भोग ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय।

अगस्त्यजीका धन मांगने के लिये राजाश्रुतुर्वाण, राजा ब्रध्नश्व और राजा त्रसदस्युके पास जाना और उनसे धन न मिलने पर उन तीनों राजाओं को साथ लेकर इल्वल दैत्यके पासजाना।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! इसके पीछे अगस्त्यजी धन मांगने

की इच्छा से राजा श्रुतुर्वाण के पास गये जिसको वे सब राजाओं से अधिक धनवान् जानते थे १ वह राजा उन महाऋषि को अपने देशकी सीमा पर आया हुआ जान कर मन्त्रियों सहित आगे गया और आदरपूर्वक अपने घर लिवा लाया और विधिपूर्वक अर्घ देकर कहने लगा कि महाराज! आपका आना किस कारण से हुआ है २। ३ अगस्त्यजी बोले कि हे राजन्! मैं तेरे पास धन मांगने आया हूं तू मुझको यथाशक्ति अपने अधिक धन में से धन दे जिसमें किसी दूसरे को पीड़ा न पहुँचे ४ यह सुनकर उस राजा ने कहा कि महाराज! मेरा लाभ और व्यय बराबर है इससे जो कुछ आप अधिक समझें सो ले लीजिये। अगस्त्यजी ने उसके आय व्यय को बराबर देखकर विचार किया कि इससे धन लेने में प्राणियों को पीड़ा होगी यह विचार कर उन्होंने उस राजा से धन नहीं लिया और उसे साथ लेकर राजा ब्रध्नश्व के पास गये। उस राजा ने भी अगस्त्यजी को अपने देश की सीमा पर जाकर लिया और बड़े आदर से घर लाकर अर्घ पाद्य देकर आने का कारण पूछा ५।८ अगस्त्यजी बोले कि हम दोनों तेरे पास धन मांगने आये हैं तू अपने अधिक धन में से हमको भी यथाशक्ति धन दे जिससे किसी दूसरे को पीड़ा न पहुँचे ६ उस राजा ने भी कहा कि महाराज! मेरा लाभ और व्यय बराबर है जो कुछ आप अधिक समझें सो लेलें। अगस्त्यजी ने यह सुनकर उसके लाभ और व्यय को बराबर होने पर, धन लेने में प्राणियों को दुःख होना विचार कर धन नहीं लिया और उसको भी साथ लेकर तीनों राजा त्रसदस्यु के पास गये। उस राजा ने भी अगस्त्यजी और उन दोनों राजाओं को अपने देश की सीमा पर जाकर लिया और बड़े आदर से घर लाकर सबकी यथायोग्य विधिपूर्वक पूजा करके तीनों से आने का कारण पूछा १०। १४ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि हम तीनों धन मांगने को आये हैं तू अपने अधिक धन में से हमको धन दे जिससे किसी दूसरे को दुःख न पहुँचे १५ यह सुनकर उस राजा ने भी कहा कि महाराज! मेरा आय व्यय अर्थात् आमद और खर्च बराबरहै आप जो कुछ अधिक समझें सो लेलें १६ यह सुनकर अगस्त्यजीने विचारा कि इस राजा का लाभ और व्यय बराबर है इससे धन लेने में जीवों को पीड़ा होगी यह विचार कर उन्होंने धन नहीं लिया इसके पीछे वे तीनों राजा आपस में विचार कर अगस्त्यजी से कहने लगे कि महाराज! यहां जो इल्वल

दैत्य रहता है वह बड़ा धनवान् है चलिये हम सब उसके पास जाकर उससे धन मांगें १७। १६ यह सुनकर अगस्त्यजी ने इल्वल से धन मांगना उचित समझा और वे चारों धन मांगने के लिये उस दैत्य के पास गये ॥ २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

निन्नानबेवाँ अध्याय।

अगस्त्यजी का वातापी के मांस को खाकर पचा जाना और इल्वल दैत्य से धन लेकर अपने आश्रमको लौट आना और लोमशऋषि का युधिष्ठिर से वधूसरा तीर्थ का माहात्म्य कहना।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! इल्वल दैत्य अगस्त्यजी को तीनों राजाओं सहित अपने राज्य की सीमा पर आये हुए जानकर वहां गया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके घर पर लिवा लाया और अपने भाई वातापी के मांस को अच्छी तरह बनाकर उनका आतिथ्य किया। वे राजा लोग मेषरूपी वातापी के मांस को जानकर व्याकुल और अचेत से होगये। उस समय अगस्त्यजी ने उनसे कहा कि तुमलोग चिन्ता मत करो मैं वातापी को पचा जाऊंगा १।४ हे राजन्! इसके पीछे इल्वल ने आसन पर बैठाकर वातापी का मांस अगस्त्यजी के आगे परोस दिया अगस्त्यजी अकेले उसके मांस को खागये। जब भोजन कर चुके तब इल्वल ने वातापी को पुकारा उसके पुकारने पर महात्मा अगस्त्यजी की गुदा से अपान वायु मेघ की समान गर्जती हुई निकली उसको सुनकर इल्वल बारबार पुकारने लगा हे वातापी! निकल, हे वातापी! निकल, तब अगस्त्यजी ने हँसकर कहा कि वातापी कहां से निकले उसको तो हम पचा गये यह सुनकर वह महाव्याकुल होगया ५। ९ और अपने मन्त्रियों सहित अगस्त्यजी से हाथ जोड़कर कहने लगा कि महाराज! आप किस काम के लिये पधारे हैं? और मैं आपका क्या काम करूं? १० यह सुनकर अगस्त्यजीने हँसकर कहा कि मुझको बहुत से धन की इच्छा है ये राजा लोग धनवान् नहीं हैं, तुमको हम धन का स्वामी और समर्थ जानते हैं सो तू अपने अधिक धन में से हमको धन दे जिससे दूसरे को पीड़ा न पहुँचे ११। १२ यह सुनकर इल्वल ने अगस्त्यजी को दण्डवत् की और कहा कि आप जितना धन चाहते हैं मैं आपको उससे अधिक धन दूंगा आप कहिये क्या चाहते हैं? अगस्त्यजी बोले कि हे दैत्येन्द्र! तू इन प्रत्येक राजाओं को दश दश सहस्र गौ और इतना ही इतना सुवर्ण दे और मुझको इससे दुगुना धन, एक सुनहरा रथ और दो घोड़े जिनका वेग मन की समान हो दे १३। १५ यह सुनकर उस दैत्य ने उन

सबको कहनेसे भी कुछ अधिक अधिक धन दिया और अगस्त्यजी को उनकी इच्छा के अनुसार एक सुनहरा रथ भी दिया जिसमें विराव और सुरावनामी दो घोड़े जुते हुए थे। अगस्त्यजी उस रथ में उन राजाओं और इल्वल के दिये हुए धनसहित बैठकर चल दिये और शीघ्र अपने आश्रम में जा पहुँचे इसके पीछे वे राजालोग अगस्त्यजी की आज्ञा पाकर अपने अपने देश को चले गये और अगस्त्यजी ने लोपामुद्रा की मनोकामना पूरीकी १६।१८ इसके उपरान्त लोपामुद्रा ने अगस्त्यजी से कहा कि महाराज ! आपने मेरी सब मनो-कामना पूरी की अब एक बलवान् पुत्र मुझे और दीजिये १९ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि हे सुन्दरि ! मैं तेरे व्रत से प्रसन्न हूं तू बता कि कैसा पुत्र चाहती है ? तू कहे तो तेरे सहस्रपुत्र हों अथवा उन सहस्र की तुल्य सौ पुत्र हों अथवा सौ की बराबर दश पुत्र हों या इन सबको जीतनेवाला एक ही पुत्र होवे २०।२१ यह सुनकर लोपामुद्रा बोली कि मैं सहस्रपुत्रों की तुल्य एक ही पुत्र चाहती हूं क्योंकि विद्वान् और साधु पुत्र एक ही होना बहुत से असाधुपुत्रों से श्रेष्ठ होता है २२ लोमशजी बोले हे युधिष्ठिर ! यह सुनकर अगस्त्यजी ने कहा 'तथास्तु' अर्थात् ऐसाही हो और समय के आने पर उस समानशील रखनेवाली लोपामुद्रा के साथ संगम किया २३ लोपामुद्रा के गर्भ रह गया अगस्त्यजी गर्भ धारण कराके वन को चले गये और वह गर्भ उनके पीछे सात वर्ष तक बढ़ा किया २४ जब सातवां वर्ष व्यतीत हुआ तब एक बालक बड़ा तपस्वी और ज्वलनस्वरूप वेदों के अङ्गों और उपनिषदों सहित पढ़ता हुआ गर्भ से उत्पन्न हुआ मुनि ने उसका नाम दृढ़स्यु रक्खा परंतु इसके पीछे जब वह बालअवस्था में ईंधन का बोझ उठाकर आश्रम में ले आया तबसे अगस्त्यजी ने उसका नाम इध्मवाह रक्खा २५।२७ अगस्त्यजी ने इस प्रकार से संतान उत्पन्न की और उस संतान को वेद आदि के पाठ में तत्पर देखकर आप अत्यन्त प्रसन्न रहने लगे तबसे यह आश्रम अगस्त्यजी का कहलाता है संतान के उत्पन्न होने से अगस्त्यजी के पितरों को इच्छानुसार लोक मिल गये २८।२९ हे युधिष्ठिर ! अगस्त्यजी ने वातापी को उक्त रीति से नष्ट किया था यह रमणीक और गुणयुक्त आश्रम उन्हीं का है ३० और यह भागीरथी गङ्गा है जिसके तट पर देवता और गन्धर्व वास करते हैं देखो इसकी धारा कैसी बह रही है मानो वायु से प्रेरित पताका उड़ रही है और पहाड़ के शिखरों और शिलाओं के नीचे होकर

कैसी निकली हुई जारही है मानो सर्पिणी है। यही गङ्गा दक्षिण दिशा के देशों को माता की समान पानी देती हुई गई है और शिवजी की जटा से निकल कर समुद्र की पटरानी बनी है। हे युधिष्ठिर! इस पवित्र नदी में तुम स्नान करो ३१। ३३ हे युधिष्ठिर! देखो यह तीनों लोकों में विख्यात भृगुतीर्थ है जिसमें महर्षि रहते हैं ३४ परशुरामजी ने इसी तीर्थ में स्नान करके अपने गये हुए तेज को पाया था तुमभी अपने भाई और द्रौपदी सहित इसमें स्नान करो इसमें स्नान करने से परशुरामजी की भांति तुमभी दुर्योधन से हारे हुए अपने तेज को फिर पावोगे ३५। ३६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे युधिष्ठिर ने द्रौपदी और भाइयों सहित उस तीर्थ में स्नान करके देवता और पितरों का तर्पण किया ३७ उसमें स्नान करने से युधिष्ठिर का स्वरूप दीप्त से भी दीप्त अर्थात् प्रकाशमान और उसके शत्रुओं का रूप अदृश्यतर होगया ३८ इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने लोमशऋषि से पूछा कि महाराज! मुझको यह सुनाइये कि परशुरामजी का तेज किसलिये हर लिया गया था और फिर क्योंकर मिला ३९ यह सुनकर लोमशजी बोले कि हे युधिष्ठिर! मैं तुमको भार्गव परशुरामजी के चरित्र को सुनाताहूं। पहिले समय में श्रीविष्णुभगवान् ने रावण को मारने के लिये अयोध्यापुरी में राजा दशरथ के यहां रामचन्द्र के नाम से अवतार लिया था। हमने भी उस समय अयोध्या में रामचन्द्रजी के दर्शन किये थे ४०। ४१ हे राजेन्द्र! ऋचीक और रेणुका के पुत्र परशुरामजी उन दशरथनन्दन रामचन्द्र के अक्लिष्ट कर्मों को सुनकर उनके पराक्रम की परीक्षा लेने के लिये बड़े आश्चर्य के साथ क्षत्रियों के नाश करनेवाले दिव्य धनुष को लिये हुए अयोध्यापुरी को गये राजा दशरथ ने अपने देशकी सीमापर परशुरामजी को आया हुआ सुनकर अपने पुत्र रामचन्द्र को उनके पास भेजा। जब रामचन्द्र परशुरामजी के पास पहुँचे तब परशुरामजी ने उनसे हँसकर कहा कि देखो मैंने इस धनुष से क्षत्रियों को काल के तुल्य मारा है ४२। ४६ हे भगवन्! जो तुम अपने को समर्थ जानते हो तो लो इस धनुष को चढ़ाओ। यह सुनकर रामचन्द्रजी बोले कि महाराज! मुझको आपका अनादर करना उचित नहीं है, मैं क्षत्रियों के धर्म में अधम नहीं हूं, मैं जानता हूं कि ब्राह्मणों के निमित्त में क्षत्रियों का क्या धर्म है और इसके सिवाय इक्ष्वाकुवंशी राजालोग कभी अपने पराक्रम की श्लाघा नहीं करते हैं ४७।४८ यह सुनकर परशुरामजी

बोले कि हे राघव! यह बात मत कहो और धनुष को लेकर चढ़ाओ। यह सुनकर दशरथनन्दन रामचन्द्र ने क्रोधित होकर परशुरामजी के हाथ से वह क्षत्रियों का नाश करनेवाला दिव्य धनुष लेलिया ४९।५० और मन्द मन्द मुसकराकर इस प्रकार से उस धनुष को चढ़ाकर टंकोरा जैसे कोई बालक खेलते खेलते कोई काम कर डाले। उसके वज्र के समान टंकोरने के शब्द से सब प्राणी डर गये और रामचन्द्रजी ने परशुरामजी से कहा कि हे ब्रह्मन्! मैंने धनुष आपके कहनेसे चढ़ादिया अब आप और क्या चाहते हैं? यह सुनकर परशुरामजी ने एक दिव्य बाण रामचन्द्रजीको दिया और कहा कि इसको धनुषपर चढ़ाकर धनुष को कानतक खींचो ५१।५३ तब रामचन्द्रजी ने कहा कि हे भार्गवजी! हमने जो यह सुना था कि आप बड़े घमण्डी हैं सो सत्यहै इस पर भी आपकी बात हम क्षमा ही करते हैं आपने ब्रह्माजीकी कृपा से क्षत्रियोंसे अधिक तेज पाया है इसी कारण से आप मेरी निन्दा करते हैं ५४।५५ अब तुम मेरे निज स्वरूपको देखो मैं तुमको दिव्यदृष्टि देता हूं इसके उपरान्त परशुरामजी ने रामचन्द्रजी के शरीर में बारहोंसूर्य, आठोंवसु, ग्यारहोंरुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, पितर, अग्नि, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, नदी, ब्रह्मरूपी सनातन, बालखिल्यऋषि, देवऋषि, समुद्र, पर्वत, वषट्कार, यज्ञ, वेद, उपनिषद्, साममन्त्र, धनुर्वेद, मेघ, चारों प्रकार के वर्ष और बिजलियां देखीं ५६। ६० उसी समय रामचन्द्रजी ने उस बाण को खींचकर छोड़दिया छोड़ते ही पृथ्वी शुष्क होगई उल्का गिरे धूल और मेह की वर्षा हुई पृथ्वी कांपनेलगी और दिशाओं में विना बजाये शब्द होने लगा और वह ज्वलित बाण परशुरामजी के तेज को खींचकर उन्हें विह्वल करके रामचन्द्रजी के पास लौट आया ६१। ६३ इसके पीछे जब परशुरामजी की विह्वलता दूर होगई तब उन्होंने प्राणों को फिर पाकर विष्णुभगवान् के तेज को प्रणाम किया और रामचन्द्रजी की आज्ञा के अनुकूल आप महेन्द्र पर्वत पर चलेगये और वहां भयभीत व लज्जित होकर रहनेलगे ६४। ६५ जब एकवर्ष इसी प्रकार से व्यतीत होगया तब परशुरामजी के पितरों ने उन्हें दुःखी और तेजरहित देखकर कहा कि हे पुत्र! तुमने विष्णुभगवान् को पाकर जो उनका अपमान किया था वह अच्छा नहीं किया क्योंकि विष्णुभगवान् तीनों लोकों में मान्य और पूज्य हैं ६६। ६७ अब तू वधूसरा नामी नदी को चलाजा वहांके तीर्थों में स्नान करने से तेरा तेज फिर ज्यों का त्यों होजायगा ६८ उस

तीर्थ को दीप्तोद भी कहते हैं जहां तेरे प्रपितामह अर्थात् बाबा ने बड़ी तपस्या की थी ६९ सो हे युधिष्ठिर ! परशुरामजी ने पितरों की आज्ञा से यहां आकर इस तीर्थ में स्नान किये थे और फिर अपने तेज को पाया था ७० परशुरामजी विष्णुभगवान् से मिलकर इस प्रकार से इस तीर्थ को आये थे ॥ ७१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सौवाँ अध्याय।

लोमशऋषि का युधिष्ठिर से इन्द्र के वज्र के निर्माण होने की कथा कहना।

इतनी कथा सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हे द्विजवर्य, लोमशजी ! मैं उन बुद्धिमान् महर्षि अगस्त्यजी के कर्मों को फिर विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं १ यह सुनकर लोमशजी बोले अच्छा हम अगस्त्यजी की दिव्य अद्भुत और अतिअमानुष कथा और उनके प्रभाव का व्याख्यान कहते हैं तुम सुनो २ सतयुग में कालकेय नामी दानवों का जत्था बड़ाघोर, दुर्मद और दारुण होगया था उन्होंने वृत्रासुर को आगे करके नानाप्रकार के अस्त्र शस्त्र उठालिये और इन्द्रादिक देवताओं से युद्ध करने को उद्यत होगये ३। ४ देवता उन्हें देखकर वृत्रासुर के मारने का यत्न करनेलगे और इन्द्र को आगे करके ब्रह्माजी के पासगये ५ ब्रह्माजी उन हाथ जोड़े हुए देवताओं को देखकर कहनेलगे कि तुमलोगों के काम को मैं अच्छीतरह जानता हूं अब मैं तुमसे वृत्रासुर के मारने का उपाय कहता हूं पृथ्वी पर दधीचि नामी एक बड़े उदार महर्षि हैं ६। ७ तुम सबलोग उनके पास चले जाओ और उनसे वर मांगो वे तुम लोगों को अपने अन्तःकरण से वरदान देंगे ८ तुम सबलोग उनसे यही कहना आप तीनोंलोकों का हित करने के लिये अपने हाड़ हमलोगों को दीजिये ९ तुम्हारे ऐसा कहने से वे ऋषि अपना शरीर त्यागकर तुमको अपने हाड़ दे देंगे उनसे तुमलोग एक बड़ा घोर और दृढ़ वज्र बनाना १० वह वज्र छः कोने रखनेवाला और भयानक शब्द करनेवाला होवेगा इन्द्र उस वज्र से वृत्रासुर को मार सकेगा ११ इससे तुम सब अब जाकर इस यत्न को करो यह सुनकर सब देवता ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर और विष्णुभगवान् को आगे करके दधीचिऋषि के आश्रम को आये जो सरस्वती नदी के तट पर था वह आश्रम नाना प्रकार के वृक्ष और लताओं से घिरा हुआ था १२। १३ भौंरे उसमें गूंज रहे थे कोकिला आदि पक्षी मधुर मधुर बोलियां बोल रहे थे, छोटे छोटे जीव जहां तहां नाद कर रहे थे, भैंसे, वाराह,

सूमर और चमर आदि पशु सिंह के भय को छोड़कर बिचर रहे थे १४। १५ सुन्दर सरोवरों में मतवाले हाथी और हथिनियां स्नान और क्रीड़ा कर रहे थे और सिंह-व्याघ्र और गुहा कन्दराओं में रहनेवाले जीव गर्ज गर्ज कर फिर रहे थे निदान उस आश्रम की शोभा स्वर्ग के तुल्य थी देवताओं ने उस आश्रम में जाकर दधीचिऋषि को देखा जो सूर्य की तुल्य तेजस्वी और अपने तेज से जाज्वल्यमान हो रहे थे और इसप्रकार से विराजमान थे मानो ब्राह्मलक्ष्मी से शोभित ब्रह्माजी हैं १६। १९ उनको देखकर सब देवताओं ने उनके चरणों में नमस्कार किया और ब्रह्माजी के कहने के अनुसार उनसे वरदान मांगा २० इसके उपरान्त दधीचिऋषि ने प्रसन्न होकर कहा कि हे देवताओ! मैं तुम्हारे हित के लिये अब अपने प्राण छोड़ता हूं यह कहकर उस जितेन्द्रिय ऋषिने अकस्मात् अपने प्राण छोड़ दिये और देवताओं ने दशरीति के अनुसार उस ऋषि की हड्डियां ले लीं २१।२२ और जय चाहनेकी इच्छासे प्रसन्नहोकर त्वष्टा देवता के पास चलेआये और उसको वे हड्डियां देकर उससे अपना प्रयोजन कह सुनाया त्वष्टादेवता ने उनकी बात सुनकर प्रसन्नता से यत्नपूर्वक उन हड्डियों का एक बड़ा उग्ररूप वज्र बनाया और हर्ष से उसे इन्द्र को देकर कहने लगा कि आप इस वज्र से उस उग्र असुर को मारकर भस्म कीजिये और स्वस्थ होकर सुख से स्वर्ग का राज्य कीजिये यह सुनकर इन्द्र ने प्रसन्न होकर वह वज्र ले लिया॥ २३।२५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि शततमोऽध्यायः॥ १००॥

एकसौ एक का अध्याय।

इन्द्र का वृत्रासुर को मारना और दैत्यों का सब जगत् को नाशकरने की सलाह करना।

लोमशजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! इसके पीछे वज्रधारी इन्द्र बलवान् देवताओं से रक्षित होकर वृत्रासुर दैत्य से युद्ध करने को सम्मुख गया जो पृथ्वी और आकाश को रोकेहुए था और जिसके चारोंओर कालकेय नामी असुर जिनके शरीर पर्वतों के तुल्य थे अस्त्र शस्त्र लिये व खड़ेहुए रक्षा कर रहे थे १।२ दो घड़ी तक उन दोनों का ऐसा युद्ध हुआ कि लोकों को बड़ा भय होगया उन दोनों के परस्पर खड्गों के प्रहार करने का शब्द बड़ा भयानक होता था और उन दैत्यों के आकाश से कटकर गिरे हुए शिर पृथ्वी पर ऐसे दीखते थे मानों ताड़ के पेड़ में से ताड़ के फल गिरकर फैले हुए हैं ३।५ इसके उपरान्त काल-

केय दैत्यों ने जो सुनहरी क़वच धारण कियेहुए थे देवताओं पर दावानल से जलतेहुए वृक्षों की तुल्य परिघ नामी शस्त्रों की वर्षा की ६ देवता उन अभिमानी दैत्यों के वेग को न सह सके और घायल हो होकर भागे इन्द्र उनको इस प्रकारसे भागते हुए और वृत्रासुर को अपनी ओर बढ़ते हुए देखकर मोहित होगया ७। ८ और उसने कालकेय दैत्यों से भयभीत होकर भागकर नारायण की शरण ली ९ विष्णु भगवान् ने इन्द्र को इस प्रकार से भागा हुआ और मोहाविष्ट हुआ देखकर अपना तेज दिया और उसके पराक्रम को बढ़ा दिया उस समय इन्द्र को विष्णु से रक्षित देखकर सब देवता और ब्रह्मऋषियों ने भी अपना अपना तेज़ उसमें धारण करदिया १०। ११ और इन्द्र उन सबके तेज को पाकर बलवान् होगया उस समय वृत्रासुर इन्द्र को अपनेसे बलवान् देखकर गर्जनेलगा उसकी गर्जना से पृथ्वी आकाश स्वर्ग और पर्वत डामाडोल होगये और इन्द्र ने उसको सुनकर और भयभीत होकर वृत्रासुर के मारने के लिये अपना वज्र छोड़दिया १२। १४ वज्र के लगते ही वह सोने की माला धारण करनेवाला दैत्य इसप्रकार से गिरपड़ा जैसे अगले समय में मन्दराचल पर्वत विष्णुभगवान् के हाथ से गिरा था १५ उसके मरने पर इन्द्र डरकर सरोवर में छिपनेको दौड़ा और उसने यह नहीं जाना कि वज्र मेरे हाथ से छुटा है और वह दैत्य मारागया है १६ सब देवता और इन्द्र की स्तुति करनेवाले महाऋषि बहुत प्रसन्न हुए और सब देवता शीघ्रता से सर्व दैत्यों को मारनेलगे १७ तब दैत्य देवताओंसे भयभीत होकर समुद्रमें भागकर जा छिपे और वहां छिपकर आश्चर्य करके तीनोंलोकों को नाशकरने की इच्छा से आपस में अनेक उपाय कहकहकर विचार करनेलगे कि प्रथम हमको विद्यावान् और तपस्वियों को मारना उचित है क्योंकि सबलोकों का जीवन केवल तपही से है इससे तपको क्षयकरने के लिये हमें तपस्वी,धर्मज्ञ और ब्रह्मज्ञानियोंको मारना उचितहै उनके मरनेपर यहजगत शीघ्र नष्ट होजायगा वे दैत्य जगत् को नाश करने की इच्छासे इसप्रकार की आपस में सलाहकरके उस समुद्र में रहनेलगे जो दुर्ग और रत्नों की आकर है॥ १८।२२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

एकसौ दो का अध्याय।

कालकेय दैत्यों का तपस्वियों को भक्षण करना और देवताओं का नारायण से विनय करना।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! कालकेय दैत्य उक्त प्रकार से वरुण के

स्थान और जल के निधि समुद्र में रहकर तीनों लोकों का नाश करनेलगे १ वे दैत्य महाक्रोधित हुए दिन में तो समुद्र में रहते थे और रात्रि में समुद्र से निकलकर पुण्यस्थान और आश्रमों में जाकर मुनियोंको भक्षण करते थे २ वशिष्ठजी के आश्रम में इन दुरात्मा दैत्यों ने जाकर आठसहस्र और सत्रह तपस्वी ब्राह्मण भक्षण कर लिये ३ और च्यवनऋषि के आश्रम में ऐसे सौ मुनियों को मारकर खागये जो केवल फल का आहार करनेवाले थे ४ और भरद्वाज के आश्रम में बीस तपस्वी नष्ट करडाले ये तपस्वी ब्रह्मचारी, वायुभक्षी और जलाधारी थे हे युधिष्ठिर! इस प्रकार से उन कालकेय दैत्यों ने जो मृत्यु से ग्रस्त बल से मतवाले और ब्राह्मणों को मारनेवाले थे उन्होंने मुनियों के सब आश्रमों को नष्ट करदिया ५। ७ दैत्यों के इस हाल को किसी मनुष्य ने नहीं जान पाया जब प्रातःकाल होता तब लोग उन मुनियों के आश्रमों को आकर देखते कि उनमें वे तपस्वी लोग मरे हुए इस प्रकार से पड़े हैं कि उनमें न मांस है न लोहू है मज्जा और आंतें भी नहीं हैं हड्डियां जहां तहां फैलरही हैं स्रुवे कलश टूटे हुए पड़े हैं और अग्निहोत्र की आग फैली हुई पड़ी है ८। ११ इस प्रकार से कालकेय असुरों के भय से वेदपाठ और यज्ञोत्सव बन्दहो जाने के कारण से जगत् निरुत्साह होगया १२ और मनुष्य भयभीत होकर अपनी अपनी रक्षा के लिये दिशा और विदिशाओं में भागने लगे बहुत से पहाड़ों की कन्दराओं में जा छिपे बहुतसे झरनों में घुसगये और बहुतों ने भय से अपने प्राण छोड़ दिये १३। १४ उस समय जो जो बड़े बड़े शूरवीर और बाणैत थे उन्होंने उन दैत्यों के मारने के लिये बड़े बड़े यत्न किये और बड़ा परिश्रम किया परन्तु उन समुद्रमें रहनेवाले दैत्योंका पता नहीं पाया अन्त में कोई घर लौट आये और कोई उसी यत्नके करने में मरगये १५। १६ हे युधिष्ठिर! इसके पीछे यज्ञ और क्रियाओं के बन्द होजाने के कारण जगत् के नष्ट होजाने से देवताओं को बड़ा दुःख हुआ १७ और वे इन्द्रसहित मन्त्रकरके वैकुण्ठधाममें उन श्रीनारायणके पास गये जो अजन्मा, शरणरूप, समर्थ और अपराजित हैं और उनको नमस्कार करके कहने लगे १८। १६ कि महाराज! आप इस जगत् के और हम सबके रचनेवाले और विश्व के नाश करनेवाले हैं २० हे कञ्जलोचन! पहिले समय में आपही ने वाराहरूप धरकर जगत् का हित करने के लिये इस पृथ्वी को जो समुद्र में नष्ट हुई जाती

थी ऊपर उठालिया था २१ आपने ही नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु नाम बड़े पराक्रमी दैत्य को मारा था और वामनरूप धरकर बलि नामी महा असुर को जो सब जीवों से अवध्य था तीनोंलोकों के राज्य से भ्रष्ट किया था २२। २३ और क्रूरजम्भ नामी दैत्य को भी जो बड़ा बाणैत और यज्ञ का विध्वंस करनेवाला था आपने मारा था २४ हे महाराज! आपने इसीप्रकार से अनेक काम किये हैं हम उनकी गिनती कहांतक करें अब इस समय में हम भय से डरेहुओं की आपही शरण हैं २५ हे देवाधिदेव! हमलोग लोक के अर्थ से आपकी प्रार्थना करते हैं कि आप इस बड़ेभय से इन सब लोकोंसमेत देवताओं की और इन्द्र की रक्षा कीजिये॥ २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०२॥

एकसौ तीन का अध्याय।

देवताओं का नारायण की स्तुति करना और उनकी आज्ञा से अगस्त्यजी के पास जाकर उनकी स्तुति करना।

देवता बोले हे नारायण! आपकी कृपा से संसार में चारों प्रकार की प्रजा बढ़ती जाती है और वह प्रजा हव्य और कव्य से देवता और पितरों को तृप्त करती है १ और आपसेरक्षित रहने से निर्भय बसती है परन्तु अब यह बड़ा भारी भय प्राप्त हुआ है हम नहीं जानते हैं कि रात्रि में कौन ब्राह्मणों को आकर मारजाता है सो जो ब्राह्मण क्षय होजायँगे तो पृथ्वी का नाश होजायगा और पृथ्वी के नाश होने से स्वर्ग भी न रहेगा २। ४ हे जगत्पते! जो आपही रक्षा करेंगे तो आपकी कृपा से सबलोकों का नाश न होगा ५ यह सुनकर विष्णुभगवान् बोले कि हे देवताओ! मैं इस प्रजा के क्षय होने का कारण जो जानता हूं तुम भी सुनो तुमसे भी कहता हूं ६ कालकेय नामी दैत्यों ने जिन्हों ने वृत्रासुर के आश्रय होकर सब जगत् को नष्ट किया था उन्होंने वृत्रासुर के—इन्द्र के हाथ से—मारेजानेपर अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये महासमुद्र में वास किया है वे ही दैत्य अपने मन में सब लोकों को नाश करना विचार कर रात्रि में ऋषियों को मारते हैं ७। ६ सो समुद्र में रहने के कारण से तुमलोग उन दैत्यों को नहीं मारसकते हो, इससे ऐसा उपाय करो कि समुद्र न रहे १० समुद्र को विना सुखाये दूसरे उपाय से ये दैत्य नहीं मरेंगे और समुद्र को सुखानेवाला अगस्त्यजी के सिवाय दूसरा सामर्थ्य नहीं रखता है ११ यह सुनकर सब देवता ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर अगस्त्यजी के

आश्रम को गये और वहां उन्होंने अगस्त्यजी को जो मैत्रावरुण के पुत्र और दीप्त तेजधारी थे ऋषियों के बीच में इसप्रकार से बैठा हुआ देखा मानों देवताओं के बीच में ब्रह्माजी बैठे हैं १२ । १३ उन महात्मा, तपोराशि और अच्युत को देखकर देवता स्तुति करनेलगे कि हे अगस्त्यजी! पहिले समय में जब जगत्को नहुष ने दुःख दिया था तब आपही लोकों की शरण हुए थे और आपने ही उस लोक के कण्टकरूप नहुष को स्वर्ग से भ्रष्ट किया था १४।१५ और जब विन्ध्याचल पर्वत सूर्यपर क्रोध करके सूर्य का रथ रोकने के लिये बढ़ा था तब भी आपने ही उसके बढ़नेको रोका था कि वह फिर न बढ़सका १६ और जब सब संसार में अंधेरा फैलगया था और प्रजा मृत्यु से बड़ी पीड़ित हुई थी, तब भी आपही की रक्षा से जगत् को सुख मिला था १७ सो हे भगवन्! हम सबलोग भय से डरे हुए हैं और आपकी शरण हैं, आपसे हम वर मांगते हैं, कृपा करके हमको वरदान दीजिये ॥ १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

एकसौ चार का अध्याय ।

लोमशऋषि का युधिष्ठिर से विन्ध्याचल के बढ़ने का कारण कहना और देवताओं की प्रार्थना से अगस्त्यजी का समुद्र के पास जाना ।

उक्त कथा को सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा कि हे लोमशजी ! विन्ध्याचल पर्वत किस कारण से क्रोध करके मूर्च्छित होकर अकस्मात् ऊंचा होगया था मैं इस कारण को विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं १ लोमशजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! इसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि उदय और अस्त होनेवाले सूर्य ने पर्वतों के राजा कनक पर्वत अर्थात् सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा की थी, उसको देखकर विन्ध्याचल पर्वत ने सूर्य से कहा कि जैसे आप सुमेरु पर्वत के चारों ओर घूम कर उसकी प्रदक्षिणा करते हैं, हे भास्कर ! उसी प्रकार से मेरी प्रदक्षिणा भी कीजिये; यह सुनकर सूर्य ने उत्तर दिया २ । ४ कि मैं मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा अपनी इच्छासे नहीं करताहूं, किन्तु यह मार्ग मेरे घूमनेके लिये उसने नियत कर दियाहै; जो इस विश्व का रचनेवालाहै ५ यह सुनकर विन्ध्याचलपर्वत सूर्य और चन्द्रमा के मार्गको रोकने के लिये अकस्मात् ऊंचा होनेलगा ६ उस समय सब देवताओं ने आकर विन्ध्याचल पर्वतको अनेक उपायों से बढ़ने से रोकना चाहा, परंतु विन्ध्याचल ने उनकी बात नहीं मानी ७ तब सब देवता अगस्त्य मुनि के पासगये जो बड़े धर्मधारी, तपस्वी और अपने आश्रम में विराजमान

थे और उनसे अपने चित्तकी वृत्ति कहकर ८ बोले कि महाराज! यह शैलराज विन्ध्याचल क्रोध के कारण से सूर्य चन्द्रमा के मार्ग और नक्षत्रों की गति को रोकना चाहताहै ९ अब हे द्विजोत्तम! आपके सिवाय कोई इसको बढ़नेसे नहीं रोकसकता है, इससे आपही इसको रोकिये १० अगस्त्यजी देवताओं का यह वचन सुनकर अपनी स्त्रीसहित विन्ध्याचलके पासगये और उससे कहनेलगे ११ कि हे पर्वतों में उत्तम! मैं किसी कामके लिये दक्षिणदिशाको जाना चाहताहूं, तू मुझको जानेको राहदे १२ हे शैलेन्द्र! जबतक मैं लौटकर आऊं, तबतक मेरी बाट देखियो, मेरे लौट आनेपर तू इच्छा के अनुसार बढ़ियो, सो हे युधिष्ठिर! अगस्त्यजी विन्ध्याचल से इस प्रकार नियम करके दक्षिण दिशा को चले गये और वहांसे अभीतक नहीं लौटे हैं १३। १४ सो अगस्त्यजी ने इस प्रकार विन्ध्याचल को बढ़ने से रोका था यह कथा जो तुमने हमसे पूछी थी समाप्त हुई अब मैं तुमसे अगस्त्यजीका दूसरा वृत्तान्त कहता हूं जिसमें देवताओंने अगस्त्यजी से वरदान पाकर कालकेय दैत्योंको मारा था १५।१६ अगस्त्यजी देवताओं की बात को सुनकर बोले कि तुमलोग किसकारण आये हो और मुझसे क्या वरदान चाहते हो? यह सुनकर देवता मुनिजी से बोले १७ कि हे महात्मन्! हम चाहते हैं कि आप इस महासमुद्र को पीजायँ जिससे हम लोग उन देवद्रोही कालकेय दैत्यों को उनके साथियों सहित मारसकें १८ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि मैं ऐसा करके तुम्हारी मनोकामना पूरी करूंगा और लोकों को बड़ा सुखदूंगा १९ हे सुव्रत! यहकहकर अगस्त्यजी देवता तपस्वी सिद्ध और ऋषियों को साथ लियेहुए नदियों के स्वामी समुद्रके पास गये २० और उस आश्चर्यकी बातको देखनेके लिये मनुष्य, उरग, गन्धर्व, यक्ष और किंपुरुष भी उन महात्मा के पीछेपीछे चलेगये २१ थोड़ेही कालमें सबको साथ लियेहुए उस भीमनादकारी समुद्रके तटपर जा पहुँचे, जिसका शब्द बड़ा भयानक था और लहरोंसे नाचता हुआ वायुसे हिलतेहुए फेनसे हँसताहुआ सो दिखाई देताथा, उसमें अनेकप्रकार के ग्राहरहतेथे और नानाप्रकारके पक्षी उसके तटपर वास कर रहेथे॥ २२।२४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥ १०४॥

एकसौपाँचवाँ अध्याय।

अगस्त्यजी का समुद्र को पीना देवताओं का दैत्यों को मारना।

जब समुद्र के तटपर पहुँच गये, तब मित्रावरुण के पुत्र भगवान् अगस्त्यजी

ने सब साथी देवताओं व ऋषियों से कहा कि मैं लोकों का हित करने के लिये समुद्र को पियेलेता हूं, तुम्हें जो कुछ करना हो सो करो यह कहकर अगस्त्यजी ने सबलोकों के देखते देखते समुद्र को पीलिया १। २ यह देखकर इन्द्रादिक देवता चकित होगये और अगस्त्यजी की स्तुति करनेलगे ४ कि हे लोकभावन! आप हमारे रक्षक और लोकों के विधाता हैं आपकी कृपा से सब देवता और सब जगत् बच गया ५ उससमय गन्धर्बों के सब प्रकार के बाजे बजाने देवताओं के पूजन और फूलों की वर्षा करनेपर अगस्त्यजी ने समुद्र का सबजल सुखादिया ६ तब सब पराक्रमी देवता समुद्र को सूखा हुआ देखकर बड़े प्रसन्न हुए और दिव्य और उत्तम आयुध ले ले कर दैत्यों को मारनेलगे, उस समय वे दैत्य उन महाबली और वेगवान् देवताओं के वेग को न सहसके ७। ८ परन्तु हे भरतसत्तम! उन्होंने भयानक शब्द कर कर के दो घड़ीतक देवताओं से बड़ा भयानक तुमुल युद्ध किया ९ और अन्त में शुद्ध अन्तःकरण मुनियों के तप से शापित होने के कारण मारेगये और रणभूमि में सुनहरी कुण्डल और बाजूबन्द आदि आभरण धारण किये पड़ेहुए ऐसे दीखते थे मानों टेसू के वृक्ष फूलेहुए हैं १०। ११ उस समय हे मनुजाधिप! बहुत से दैत्य, जोकि मारने से बचगये थे वे भयभीत होकर पृथ्वी को फाड़कर पाताललोक को चलेगये १२ और देवता उनको इस प्रकार से मरेहुए और पराजित देखकर नानाप्रकार के वाक्यों से मुनिनायक अगस्त्यजी को प्रसन्नकरतेहुए बोले १३ कि महाराज! आपकी कृपा से लोकों को बड़ा सुख मिला और आपके ही तेज से ये पराक्रमी दैत्य मारेगये अब आप कृपा करके समुद्र को फिर पूर्ण करदीजिये और जो जल आपने पीलिया है, उसको इसमें फिर छोड़ दीजिये १४। १५ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि मैं समुद्र के पानी को पीकर पचागया, अब तुम सबको समुद्र के पूर्ण करने के लिये दूसरा उपाय करना उचित है, यह महर्षि का वचन सुनकर १६। १७ सब देवता विस्मित और व्याकुल होगये, हे महाराज! उस समय सब प्रजा के लोग परस्पर आज्ञा मांग व मुनिनायक अगस्त्यजी को प्रणाम कर करके अपने अपने स्थानों को चलेगये और देवता विष्णु भगवान् को लेकर ब्रह्माजी के पासगये १८। १९ फिर समुद्र के पूर्ण करने की सलाह करके हाथ जोड़कर कहने लगे कि समुद्र के पूर्ण होने का यत्न कीजिये॥२०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०५॥

एकसौ छठवाँ अध्याय ।

लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से समुद्र के पूर्णहोने में राजासगर के संतति होने की कथा कहना ।

लोमशजी बोले कि हे राजन् ! लोकपितामह ब्रह्माजी देवताओं की उक्त बात को सुनकर बोले कि हे देवताओ ! तुमसब अपनी इच्छा के अनुसार अभी जाओ, अब से बहुत दिनों के पीछे भगीरथ नामी राजा होगा, वह अपनी जाति वाले मनुष्यों के कारण से समुद्र को ज्यों का त्यों करदेगा १ । २ यह विधाता का वचन सुनकर सब देवता अपने अपने लोकोंको चलेगये और उससमय के आने की बाट देखनेलगे ३ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि महाराज ! जातिवाले मनुष्य इसमें क्यों और किसप्रकार से कारणहुए और समुद्र महाराजा भगीरथ के सम्बन्ध से किस प्रकार से पूर्ण हुआ ४ हे विप्रजी ! मैं इन राजा के उत्तम चरित्र को विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं ५ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! महात्मा, धर्मराज, युधिष्ठिर की बात सुनकर लोमश ऋषि महात्मा सगर का माहात्म्य वर्णन करने लगे ६ कि इक्ष्वाकु के वंश में एक सगर नाम का राजा बड़ा बलवान्, रूपवान्, सत्यवादी और प्रतापी हुआ था, परंतु उसके कोई पुत्र न था ७ इस राजा ने हैहय और तालजंघ देशों को जीतकर उन देशों के राजाओं को अपने वश में करलिया था ८ उसके वैदर्भी और शैव्यानाम की युवती व बड़ी स्वरूपवती दो रानियां थीं ९ उस राजा ने पुत्र की कामना से अपनी दोनों स्त्रियों सहित कैलास पर्वतपर जाकर बड़ी तपस्या की १० उससे वह शिवजी महाराज, जों महात्मा, तीन नेत्रधारी, त्रिपुर के मारनेवाले, आनन्दकर्त्ता, ईशान, पिनाक धनुष्धारी, शूल धारण करनेवाले, उग्रेश, उमापति और अनेक रूप धारण करनेवाले हैं, प्रसन्न हुए; और उन्होंने उनको अपने दर्शन दिये ११ । १२ उस समय उस महाभुजशाली राजा ने उन वरदायक को देखते ही रानियों सहित उठकर दण्डवत् की, और पुत्र मिलने की प्रार्थना की १३ तब शिवजी ने कहा कि हे राजन् ! जिस मुहूर्त्त में तैंने हमसे वरदान मांगा है उस मुहूर्त्त के फल के कारण से तेरे एक स्त्री से साठ सहस्र पुत्र बड़े शूरवीर और घमण्डी होंगे, और वे सब एक साथ ही नाश होजायँगे । परंतु दूसरी स्त्री के एक पुत्र बड़ा शूरवीर और तेरे वंश का चलानेवाला होगा १४ । १६ यह कहकर शिवजी वहीं अन्तर्धान होगये और राजा सगर भी अपने स्थान को चला आया १७ और बड़ी प्रसन्नता से उसने अपनी स्त्रियों सहित घर में प्रवेश

किया, थोड़े काल में उसकी कमललोचना वैदर्भी और शैव्या, दोनों स्त्रियां गर्भवती होगईं और गर्भ के समय के बीतने पर वैदर्भी के एक तोंबा-सा उत्पन्न हुआ, और शैव्या के एक देवरूपी पुत्र हुआ, राजा ने उस तोंबे को त्याग करने का विचार किया १८ । २० परंतु उसी समय आकाशवाणी हुई कि हे राजन्! तू ऐसा साहस मत करे, तुझे पुत्रों को त्यागना उचित नहीं है । अब तू इस तोंबे के भीतर से बीजों को निकाल ले और एक एक बीज को एक एक घृत के भरे हुए पात्र में रखवा कर उनकी रक्षा कर, ऐसा करने से कुछ दिनों में तेरे साठ सहस्र पुत्र होंगे, महादेवजी ने तेरे पुत्रों के होने का इसप्रकार से उपाय रचा है, तू अपनी बुद्धि को इसके विपरीत मत करे ॥ २१ । २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

एकसौ सातवाँ अध्याय ।

राजा सगर की अश्वमेधयज्ञ का वृत्तान्त और उनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रों की कथा ।

लोमशजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! नरनायक, राजाधिराज, राजा सगर ने आकाशवाणी सुनकर उस बात में श्रद्धा की, और उस तोंबे के भीतर के बीज निकाल कर एक एक बीज को एक एक घी से भरे हुए घड़े में रखदिया और एक एक घड़े पर एक एक धात्री रक्षा के लिये नियत कर दी, जब बहुत-सा काल व्यतीत हो गया; तब उन घड़ों से क्रमपूर्वक एक एक पुत्र निकला, इस प्रकार से शिवजी की कृपा से उस असमान तेजधारी राजा सगर के साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए, वे सब घोर, क्रूरकर्मी, आकाश में चलनेवाले, देवताओं को भी अपने सामने कुछ न गिननेवाले, बड़े योद्धा और शूरवीर हुए १ । ५ उन मन्दबुद्धियों ने सब लोक, देवता, गन्धर्व, राक्षस और अन्यान्य प्राणियों को बड़ी पीड़ा पहुँचाई, उनसे दुःखी होकर सब लोक और देवता ब्रह्माजी की शरण गए ६ । ७ महाभाग, सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी ने उन सबसे कहा कि तुम लोग अपने अपने स्थानों को जाओ ८ सगर के सब पुत्र अपने घोर कर्मों के कारण से थोड़े ही काल में नाश हो जायँगे ९ हे मनुजेश्वर! यह सुनकर सब देवता और सब लोक ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर अपने अपने स्थानों को चले आये १० जब बहुत दिन बीतगये, तब राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिये दीक्षा ली ११ और उसके पुत्रों से रक्षित यज्ञका घोड़ा बड़े यत्नसे पृथ्वीपर घुमाया गया, जब घूमते घूमते वह घोड़ा जलरहित भीम दर्शनवाले समुद्र में

पहुँचा तब अकस्मात् अन्तर्धान होगया, राजा सगर के पुत्रों ने उस घोड़े को हरा हुआ जानकर अपने पिता से उसके अदृश्य होजाने का वृत्तान्त कह सुनाया, तब राजा ने उन पुत्रों को आज्ञा दी कि तुम सबलोग चारों दिशाओं में जाकर घोड़े को ढूंढ़ो १२ । १४ हे महाराज! पिता की आज्ञा से उन पुत्रों ने सब पृथ्वी और चारों दिशाओं में घोड़े को ढूंढ़ा, परंतु न वह घोड़ा ही मिला न उसके लेजानेवाले का पता लगा १५ । १६ तब वे पुत्र लौटकर राजा के पास आए और उन्होंने सम्मुख हाथ जोड़ खड़े होकर कहा कि महाराज! हम सब पृथ्वी, समुद्र, वन, पर्वत, द्वीप, नदी, कन्दरा, वन और देशों में घोड़े को ढूंढ़ आए, कहीं घोड़े अथवा उसके लेजानेवाले का पता नहीं मिलता है, यह सुनकर राजा सगर क्रोध से मूर्च्छित सा होगया १७ । १६ और भावी के वश होकर सब पुत्रों को आज्ञा दी कि हे पुत्रो! तुमलोग जाकर फिर उस यज्ञ के घोड़े को ढूंढ़ो और जब तक वह न मिले, तब तक हमारे पास लौटकर मत आओ; यह सुनकर उन पुत्रों ने पिता की आज्ञा अङ्गीकार की, और पृथ्वी पर घोड़े को ढूंढ़ना आरम्भ किया, एक स्थान पर ढूंढ़ते ढूंढ़ते उनको पृथ्वी फटी हुई दिखाई दी २० । २२ उसे देखकर उन्होंने कुदालियां और फावड़े लेकर उस समुद्र की पृथ्वी को खोदना प्रारम्भ किया, उससे समुद्र को बड़ी पीड़ा हुई और उसमें जो असुर, उरग, राक्षस और नाना प्रकार के जीव रहते थे, वे ताड़ित होने से महादुःखी होकर चिल्लाने, पुकारने लगे २३ । २५ उस समय सैकड़ों व सहस्रों प्राणियों के शिर कट गये, सैकड़ों के धड़ गिर गये और सैकड़ों की त्वचा, हाड़ और मांस भिन्न भिन्न होकर बिखर गये २६ इसप्रकार से उन सगर के पुत्रों ने बहुत दिनोंतक समुद्र को खोदा, परंतु घोड़े का कुछ पता नहीं मिला २७ तब उन्होंने क्रोध करके समुद्र के पूर्व और उत्तर के देशों को यहांतक खोदा कि पृथ्वी को पातालतक भेदन किया, जब पाताल में प्रहुँचे, तब उन्होंने उस घोड़े को वहां फिरते हुए और कपिल मुनि को, जो अपने तेजसे ऐसे दीप्त हो रहे थे, मानो अग्नि प्रज्वलित होरही है, बैठे हुए देखा २८ । २६ घोड़े को देखकर उनका रोम रोम प्रसन्न होगया और वे काल से प्रेरित होने के कारण कपिलजी का अनादर कर क्रोधित होकर घोड़े के पकड़ने को दौड़े; यह देखकर कपिलजी जिनको वासुदेव कहते हैं क्रोधित होगए और उन्होंने अपने एक नेत्र को खोलकर उन सगर के पुत्रों पर अपने तप के तेज को डाल

दिया कि उससे वे सब भस्म होगये नारदजी यह हाल देखकर राजा सगर के पास गये और उससे उसके पुत्रों के भस्म होने का वृत्तान्त कह सुनाया, राजा सगर उस दुःख की बात को सुनकर ३०। ३४ एक मुहूर्त्ततक बहुत म्लानचित्त रहा, उपरान्त शिवजी के वाक्य को याद करके स्वस्थ हुआ और अपने असमञ्जस नामी पुत्र के अंशुमान्नाम पुत्र को बुलाकर कहने लगा कि हे पौत्र! मेरे साठ सहस्र पुत्र जो मेरे काम में नियुक्त थे, कपिलमुनि के तेज से भस्म होगए, अब मैं तेरे पिता को अपने धर्म की रक्षा और पुरवासियों का हित करने के लिये निकाले देता हूं ३५। ३८ यह सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा कि महाराज! राजा सगर ने अपने पुत्र, जिसको निकालना कठिन होता है, किस अपराध से निकाल दिया? आप कृपा करके यह मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ३६ यह सुनकर लोमशजी बोले कि सगर का असमञ्जस नाम का पुत्र शैव्या रानी से उत्पन्न हुआ था, उसने एक समय पुरवासियों के दुर्बल पुत्रों को रोने, पुकारने पर भी ग्रीवा पकड़ पकड़ कर नदी में फेंक दिया, यह देखकर पुरवासी भयभीत और शोकाकुल होकर राजा सगर के पास गए ४०। ४१ और हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे महाराज! आप हम लोगों के शत्रु और सेना आदि के भय से रक्षा करनेवाले हैं, अब आप हम सबको असमञ्जस के भय से भी बचाइये; राजा पुरवासियों से उस वृत्तान्त को सुनकर एक मुहूर्त्ततक विमन होकर विचार करता रहा, उपरान्त मन्त्रियों को आज्ञा दी कि जो तुमलोगों को हमारी आज्ञा माननी है, तो इसी समय असमञ्जस को नगर के बाहर निकाल दो, यह सुनकर मन्त्रियों ने राजा की आज्ञा के अनुसार तत्क्षण असमञ्जस को नगर के बाहर निकाल दिया, सो हे युधिष्ठिर! असमञ्जस के निकालने का कारण यह था; अब इसके पीछे राजा सगर ने जो कुछ अपने पौत्र अर्थात् असमञ्जस के पुत्र से, जो बड़ा बाणैत था, कहा, उसको भी तुमसे कहता हूं, सुनो ४२। ४७ राजा सगर ने अंशुमान् से कहा कि हे पौत्र! मैं तेरे बाप के निकालने और अपने साठ सहस्र पुत्रों के मरने और यज्ञ के घोड़े के न मिलने के कारण से महादुःखी हूं ४८ उस दुःख से मेरा हृदय जल रहा है, इससे तू घोड़े को लाकर मेरा नरक से उद्धार कर ४९ यह सुनकर अंशुमान् बड़ा कष्ट उठाकर उस देश में पहुँचा, जहां पृथ्वी फट रही थी और उसी मार्ग से होकर उस स्थान पर पहुँचा, जहां वह घोड़ा मौजूद था; और कपिलमुनि तपस्या कर रहे थे ५० उनको देखकर

अंशुमान् ने कपिलमुनि को पृथ्वी पर झुककर प्रणाम किया और अपने आने का कारण कह सुनाया ५१ कपिलमुनि उसे देखकर प्रसन्न हुए और कहने लगे कि मैं तुझपर प्रसन्न हूं, जो तेरी इच्छा हो, सो मांग, यह सुनकर अंशुमान् ने पहिले यज्ञ के कारण से उस घोड़े को मांगा और फिर कहा कि महाराज! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मेरे इन पितरों की मुक्ति होजाय ५२ । ५३ यह सुनकर परम तेजस्वी मुनिनायक कपिल मुनि बोले कि अच्छा मैं तेरी इच्छा के अनुसार तुझको वर देता हूं, तू क्षमावान्, धर्मात्मा और सत्यवादी है; तुझसे पौत्र को पाकर राजा सगर कृतार्थरूप हुआ ५४ । ५५ तेरे ही प्रभाव के कारण से ये सगर के पुत्र स्वर्गलोक पावेंगे तेरा पौत्र महादेवजी को प्रसन्न करके इन सगर के पुत्रों को पवित्र करने के लिये स्वर्गलोक से गङ्गाजी को लावेगा, उस समय इनकी मुक्ति होगी; अब तू जा और इस यज्ञ के घोड़े को लेजा, जिससे राजा सगर का यज्ञ पूरा होवे, यह सुनकर अंशुमान् घोड़े को लेकर चलाआया, और यज्ञस्थान में आकर अपने बाबा राजा सगर के चरणों पर गिरपड़ा राजा ने प्यार से उसके मस्तक को सूंघा, इसके पीछे अंशुमान् ने राजा से उनके पुत्रों की क्षय और घोड़े के लाने का जो कुछ वृत्तान्त देखा या सुना था, सब कह सुनाया, राजा ने उस वृत्तान्त को सुनकर पुत्रों के शोक के दुःख को छोड़ दिया ५६ । ६२ इसके पीछे राजा सगर ने अपना यज्ञ समाप्त किया और देवताओं की अनुमति से उसने समुद्र को ही अपना पुत्र जाना, इस राजा सगर ने बहुत दिनोंतक राज्य किया, उपरान्त राज्य का भार अपने पौत्र अंशुमान् को देकर स्वर्गवासी हुआ; अंशुमान् ने भी समुद्ररूपी खाई रखनेवाली पृथ्वी को अपने बाबा की तरह शासन किया और उसके दिलीप नामी एक पुत्र हुआ ६३ । ६६ अंशुमान् उस पुत्र को अपना राज्य देकर देवलोक को गया, इसके पीछे दिलीप अपने पितरों के नाश होने के हाल को सुनकर बड़ा दुःखी हुआ और उनकी सद्गति करने के लिए उसने गङ्गाजी को लाने के बड़े बड़े यत्न किये, परंतु गङ्गा आकाश से न गिरीं; उसके भगीरथ नामी श्रीमान्, धर्मात्मा सत्यवादी और दूसरों के गुणों में दोष न लगानेवाला पुत्र हुआ, दिलीप उसको अपना राज्य देकर वन को चलागया और वहां तपस्या करके कालयोग से स्वर्गवासी हुआ ॥ ६७ । ७१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

एकसौ आठवाँ अध्याय ।

हिमालयपर्वत पर, गङ्गाजी के दर्शनों की इच्छा से भगीरथ की तपस्या का वृत्त, गङ्गा से वरदान पाकर महादेवजी की तपस्या करना और उनसे वरदान मांगना ।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह महारथी, चक्रवर्त्ती राजा भगीरथ सबलोकों के मन और नेत्रों को आनन्द देनेवाला था १ हे नरनायक! वह अपने पितरों के महात्मा कपिलमुनि के शाप से नाश होने और स्वर्ग न मिलने के हाल को सुनकर दुःखी हुआ और राज्य को मन्त्रियों को सौंपकर आप हिमालय के पार्श्व में तप करने को चलागया २ । ३ वह हिमालय पर्वत अनेक प्रकार की धातु रखनेवाले शिखरों से अलंकृत, पवन आलम्बी मेघों से चारों ओर से आषिक्त, नदी, कुञ्ज और मन्दिरों से शोभित, गुहा और कन्दराओं में रहनेवाले सिंह व्याघ्रों से निषेवित, नानाप्रकार की मधुरवाणी बोलनेवाले भृङ्गराज, हंस, सारस, जलकुक्कुट, मोर, शतपत्र, जीव, जीवक, कोकिला, चकोर और असितापाङ्गी आदि पक्षियों से घोषित था और जहां तहां जल के स्थानों में कमल फूल रहे थे और उनके किनारे पर सारस मधुर मधुर बोली सुनारहे थे, किन्नर, अप्सरा और विद्याधर आदि देवजाति विहार कररहे थे, चारों ओर नानाप्रकार के वृक्ष जिनको हाथियों ने अपने दाँतों की नोक से घिसडाला था, शोभा देरहे थे, बड़े बड़े विषधर सर्प इच्छानुसार विचर रहे थे, देखने में वह पर्वत कहीं सुवर्ण की समान, कहीं चांदी के सदृश, कहीं अञ्जन सा काला और रत्नों से भरा हुआ था, भगीरथ उस पर्वत पर जाकर गङ्गाजी के दर्शनों की इच्छा से फल, मूल और जल का आहार करके घोर तपस्या करनेलगा, जब तपस्या करते करते एक सहस्र वर्ष बीत गए; तब गङ्गाजी ने प्रसन्न होकर अपनारूप धारण करके भगीरथ को दर्शन दिया ४ । १४ और कहा कि हे राजन्! तू मुझसे क्या चाहता है? क्या मैं तुझको दूं? बता जो कुछ तू मांगेगा सो ही तुझको दूंगी १५ यह सुनकर राजा भगीरथ बोला कि हे महानदि, गङ्गे! राजा सगर के साठ सहस्र पुत्र यज्ञ के घोड़े को ढूंढ़ने के लिए कपिलमुनि के आश्रम को गए थे, कपिल मुनि ने क्रोध करके उन मेरे पितरों को शाप से भस्म करके यमलोक में पहुँचा दिया; परंतु उन सबको स्वर्ग में वास नहीं मिला है, सो जबतक तू अपने जल से उनको न सींचेगी, तबतक उनकी गति न होगी १६ । १६ इससे हे महानदि! मैं तुझको उन पितरों के निमित्त बुलाना चाहता हूं तू कृपा करके उनको स्वर्ग

में पहुँचा २० लोमशजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह सुनकर लोकवन्दिता गङ्गा जी ने अति प्रसन्न होकर भगीरथ से कहा २१ कि हे राजन्! मैं तेरे काम को निस्सन्देह करूँगी, परंतु मेरे आकाश से पृथ्वी पर गिरने के वेग को सहना बहुत कठिन है; सिवाय नीलकण्ठ महादेवजी के और कोई त्रिलोक में उस वेग को नहीं सहसक्ता है २२। २३ इससे तू तप करके पहिले महादेवजी को प्रसन्न कर महादेवजी मुझको आकाश से गिरने पर अपने शिर पर धारण करलेंगे २४ हे राजन्! तेरे पितरों के हित के लिये तेरी मनोकामना पूरी करेंगे, यह सुनकर महाराजा भगीरथ कैलास पर्वत पर चलागया और वहां तीव्र तपस्या करके महादेवजी को प्रसन्न किया, जब महादेवजी प्रसन्न हुए, तब उसने उनसे अपने पितरों को स्वर्गवास मिलने की इच्छा से स्वर्ग से गिरीहुई गङ्गाजी को अपने शिर पर धारण करने का वरदान माँगा॥ २५। २७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०८॥

एकसौ नवाँ अध्याय।

गङ्गा का स्वर्ग से गिरना, शिवजी का उसको अपने मस्तक पर धारण करना, भगीरथ का गङ्गा को अपने पुरुषों के तारने को ले जाना और गङ्गाजी का समुद्र को जल से भर देना।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! भगवान् शिवजी भगीरथ की प्रार्थना को सुनकर देवताओं के प्रिय करने की इच्छा से बोले कि ऐसा ही होगा १ हे महाभाग! मैं तेरे कारण से देवनदी गङ्गा को, जो कि आकाश से गिरीहुई, आनन्दरूप, दिव्य और धर्म की बढ़ानेवाली है, धारण करूंगा २ यह कहकर महादेवजी अपने गणों के साथ जो बड़े घोर शस्त्रों को उठाये हुए थे, हिमालय पहाड़ के समीप चलेगए ३ और वहां एक स्थान पर बैठकर भगीरथ से बोले कि हे महाबाहो! अब तू गङ्गा को बुला मैं उसके आकाश से गिरने के वेग को धारण करूँगा, यह शिवभाषित वचन सुनकर राजा भगीरथ ने नम्रता से श्री गङ्गाजी का ध्यान किया, ध्यान करते ही वह पुण्य और रम्य जल रखनेवाली देवनदी शिवजी को बैठा हुआ देखकर अकस्मात् आकाश से गिरी उसको देखने के लिये बड़े बड़े ऋषि, देवता, गन्धर्व, उरग और यक्ष वहां आ पहुँचे उस समय गङ्गा का जल बड़ा चञ्चल घेर रखनेवाला मछली और मगरों से भरा हुआ था शिवजी ने उस सब जल को अपने शिर पर धारण करलिया और वह जल शिवजी के ललाट पर मोतियों की माला की समान तीन धारा होकर

बहने लगा ४। १० उसमें फेन की धारा ऐसी दीखती थी, मानो हंसों की पंक्ति है और वह कहीं सीधी और कहीं टेढ़ी होकर बहती थी और कहीं फेन से भरीहुई ऐसी जान पड़ती थी मानो कपड़े पहिने हुए मतवाली स्त्री जा रही है, उसके बहने का शब्द मधुर मधुर ध्वनि से होता था इसप्रकार वहगङ्गा आकाश से पृथ्वीतल पर आकर भगीरथ से कहने लगी ११। १३ कि हे राजन्! मैं तेरे ही कारण से पृथ्वी पर आई हूं अब तू चलने की राह बता १४ यह सुनकर भगीरथ गङ्गा के आगे आगे उस मार्ग पर होलिया जो उस स्थान को गया था, जहाँ महात्मा राजा सगर के पुत्रों के मृतक शरीर पड़े हुए थे १५ इसके पीछे शिवजी देवताओं सहित कैलास पर्वत पर चलेगए और भगीरथ गङ्गा सहित समुद्र पर पहुँचा वहाँ पहुँचने पर गङ्गा ने उस वरुणालय समुद्र को शीघ्र अपने जलसे भरदिया और राजा भगीरथ ने गङ्गाको अपनी पुत्री करके माना १६।१८ इसके पीछे भगीरथ ने अपना मनोरथ पाकर पितरों का तर्पण किया, हे युधिष्ठिर! तुमने जो हमसे पूछा था, सो हमने गङ्गा के समुद्र को पूर्ण करने के अर्थ आने और अगस्त्यजी के किसी कारण में समुद्र को पीने और वातापी के मारने का सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया ॥ १९। २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

एकसौ दशवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर की तीर्थयात्रा, कौशिकी नदी पर विश्वामित्र के आश्रम में विभाण्डक ऋषि की उत्पत्ति का हाल पूछना एवं राजा देश में वृष्टि न होने के कारण लोमपाद द्वारा ऋष्यशृङ्ग के लाने के लिये वेश्याओं को भेजना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे युधिष्ठिर ने नन्दा और अपरनन्दा नाम नदियों की यात्रा की जो पाप और भय की दूर करनेवाली हैं १ वहीं आमयरहित हेमकूट नामी एक पर्वत है उसपर युधिष्ठिर ने बहुतसी अद्भुत बातें देखीं २ अर्थात् उस पर्वत पर जब मनुष्य चढ़नेलगे तब विना वायु के बादल घिरआये और सहस्रों पत्थर आकाश से गिरे, जिसके कारण से मनुष्य उसपर चढ़ न सके और व्याकुल होगए ३ उस पर्वत पर वायु सदैव चला करती थी और पानी भी निरन्तर वर्षा करता था और वेदध्वनि सुनाई देती थी, परंतु कोई मनुष्य वेद पढ़ते हुए दिखाई नहीं देता था ४ और संध्या और सबेरे के समय वहां भगवान् हव्यवाहन अग्नि भी प्रज्वलित दिखाईदिया करती थी, जो कोई वहां जाता था उसको तप का विघ्न करनेवाली मक्खियाँ

काट खाती थीं, वहां जानेवाले मनुष्य के हृदय में वैराग्य उत्पन्न होजाता था और घर की याद आती थी इस प्रकार से युधिष्ठिर ने बहुतसी अद्भुत बातें देखकर लोमश ऋषि से उनका कारण पूछा ५।६ तब लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर से कहा कि हम इसका वृत्तान्त इस प्रकार से पहिले से सुनते चले आये हैं कि इस ऋषभकूट पर्वत पर एकऋषभ नामी तपस्वी जिसकी सैकड़ों वर्ष की आयुथी और बड़ा तपस्वी और क्रोधी था, रहा करता था ७।८ एक समय उसने दूसरे मनुष्यों की बातचीत सुनकर क्रोधित होकर पर्वत से कहा कि जो कोई मनुष्य तुझपर चढ़े, उसके ऊपर तू पत्थर वर्षाया कर ९ इसी प्रकार से उस तापस ने वायु को बुलाकर आज्ञा दी कि तू शब्द मत कर यहां बोलनेवाले मनुष्य का शब्द मेघ अपने शब्द से रोकदेता है १० सो हे युधिष्ठिर! उस मुनि ने क्रोध के कारण से कितनी ही इसीप्रकार की बातें कीं और कितने ही कामों को निषेध करदिया ११ और हमने यह भी सुना है कि पहिले समय में देवता इस नन्दातीर्थ में आए थे, उनके दर्शनों की इच्छा से यहां बहुत से मनुष्य भी अकस्मात् चले आए, तब इन्द्रादिक देवताओं ने इस पर्वतदेश को दर्शन करनेवालों के लिए कठिन और विघ्नरूप कर दिया १२।१३ तबसे मनुष्य इस पहाड़ पर देखना तो कहाँ चढ़ भी नहीं सकते हैं १४ इससे हे युधिष्ठिर! मौन ही रहना उचित है विना उत्तम तपस्या किये इस पर्वत पर चढ़ना और इसको देखना असम्भव है १५ देवताओं ने इस स्थान पर उत्तम यज्ञ किये थे उनके चिह्न अबतक दिखाई देते हैं १६ देखो यहां की दूब कुशा के समान होरही है पृथ्वी बराबर है और वृक्ष यज्ञस्तम्भ की सदृश होरहे हैं १७ हे भरतसत्तम! अबतक यहां देवता और ऋषि लोग रहते हैं, उनके यज्ञ की अग्नि प्रातःकाल और सायंकाल को दिखाई देती है १८ हे युधिष्ठिर! यहां स्नान करने से मनुष्य के सब पाप शीघ्र दूर होजाते हैं, इससे तुम भी अपने छोटे भाइयों सहित यहां स्नान करो १९ यहां से फिर कौशिकी नदी को चलेंगे, जहां विश्वामित्र ने बड़ी उग्र तपस्या की थी २० वैशंपायनजी बोले कि इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने सब साथियों सहित नन्दानदी में स्नान किये और वहां से चलकर कौशिकी नदी पर पहुँचे जो शुभ, रमणीक, शीतल जल से पूर्ण और धर्म की बढ़ानेवाली है २१ वहां पहुँच कर लोमश ऋषि ने कहा कि हे युधिष्ठिर! यह कौशिकी नाम देवनदी है और यह रमणीक आश्रम जो प्रकाश कररहा है, विश्वामित्र

का है २२ यहीं पर महात्मा काश्यपगोत्री विभाण्डक ऋषि का पुण्याख्य नाम आश्रम है जिनका पुत्र ऋष्यशृङ्ग नाम से बड़ा तपस्वी और जितेन्द्रिय विख्यात है २३ यह ऋष्यशृङ्ग पुत्र विभाण्डक ऋषि की मृगी से उत्पन्न हुआ था, इसने अपने तप के बल से अनावृष्टि में जल वर्षाया था और राजा लोमपाद के देश में बड़ा अद्भुत कर्म किया था, जिसके कारण से उस राजा ने खेतों के उपजने पर अपनी शान्ता नाम कन्या उसे विवाह दी थी २४।२६ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज ! ऋष्यशृङ्ग मृगी से क्योंकर उत्पन्न हुआ था और विरुद्ध योनि में जन्म पाने पर तप से क्योंकर युक्त हुआ २७ और अनावृष्टि में इन्द्र ने उससे भयभीत होकर किसलिये वर्षा की थी २८ और वह शान्ता नाम राजपुत्री कैसी स्वरूपवती थी जिसने मृगी के पुत्र के चित्त को लुभादिया २९ और राजा लोमपाद तो धर्मात्मा राजा सुनाजाता है उसके राज्य में इन्द्र ने वर्षा किस कारण से नहीं की ३० सो हे महाराज ! आप ऋष्यशृङ्ग की यह सब कथा विस्तारपूर्वक कहिये, मैं उसे सुना चाहता हूं ३१ यह सुनकर लोमशजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर ! ऋष्यशृङ्ग विप्रऋषि विभाण्डक का पुत्र था और शुद्धअन्तःकरण, सफलपराक्रम, सत्यपुरुष प्रजापति की समान तेजस्वी, अतिपूज्य, प्रतापवान्, बालक वृद्धों का सम्मत और बड़ा तेजस्वी था उसकी उत्पत्ति इस प्रकार से है ३२ कि एक समय विभाण्डक ऋषि महाह्रद में खड़े हुए तपस्या कररहे थे और बहुत काल बीतजाने के कारण से खड़े खड़े थकगये थे, उसी समय वहां उर्वशी अप्सरा आगई उसको देखकर विभाण्डक ऋषि का वीर्य पानी में गिरपड़ा, उस वीर्य को एक मृगी, जो उस समय उसीह्रद में जल पी रही थी, पी गई ३३।३५ उससे उस मृगी को गर्भ रहगया पहले समय में वह मृगी देवकन्या थी, परन्तु ब्रह्माजी के शाप से मृगी होगई थी, ब्रह्माजी ने उससे कहा था कि जब तेरे गर्भ से एक ऋषि उत्पन्न होगा, तब तू शाप से मुक्त हो जायगी सो उस ब्रह्माजी के वाक्य की सफलता और देवनिर्मित भावी को सत्य करने के लिये ऋष्यशृङ्ग मृगी के उत्पन्न हुआ और सदा तप में मन रखने के कारण से वन में ही रहा किया ३६।३८ और उसका नाम ऋष्यशृङ्ग इस कारण से था कि उसके शिर पर एक सींग था ३९ उसने अपने पिता के सिवाय कभी कोई मनुष्य नहीं देखा था इससे उसका चित्त ब्रह्मचर्य में ही रहा इसी अवसर में राजा

दशरथ के मित्र लोमपाद को अङ्गदेशों का राज्य मिला ४०।४१ एक समय वह राजा लोभ के कारण से ब्राह्मणों से झूंठ बोला तब ब्राह्मणों ने उस राजा को त्याग कर दिया और दैव इच्छा से उस राजा के पुरोहित के दोष के कारण से इन्द्र ने उसके राज्य में वर्षा नहीं की उससे प्रजा को बड़ी पीड़ा हुई ४२।४३ तब उस राजा ने बुद्धिमान्, तपस्वी और समर्थ ब्राह्मणों से पूछा कि महाराज! कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे इन्द्र वर्षा करे यह सुनकर उन ब्राह्मणों ने अपने अपने मत के अनुसार अनेक बातें कहीं, परंतु उनमें से एक श्रेष्ठमुनि ने यह कहा कि हे राजन्! तेरे ऊपर ब्राह्मणों का कोप है, तू प्रायश्चित्त कर ४४।४६ और ऋष्यशृङ्ग नामी मुनिपुत्र को जो वन में उत्पन्न हुआ है और स्त्रियों को नहीं जानता है कि कैसी होती हैं, यहां ले आ उसके आने से इन्द्र निस्संदेह तेरे देश में शीघ्र वर्षा करेगा ४७।४८ यह सुनकर राजा झूंठ बोलने का प्रायश्चित्त करके ब्राह्मणों के पास चला आया, उसको आयाहुआ सुनकर सब प्रजालोग प्रसन्न हुए, इसके पीछे राजा ने अपने उन मन्त्रियों को बुलाया, जो शास्त्रज्ञ, नीति के जाननेवाले और अपने कार्य के बनाने में बड़े निपुण थे, उनसे ऋष्यशृङ्ग ऋषि को अपने देश में बुलवाने का मन्त्र किया, जब मन्त्र निश्चय होगया तब राजा ने मुख्य मुख्य वेश्याओं को जो सब बातों में चतुर थीं, बुलवाया और आज्ञा दी कि तुमलोग जिस उपाय से हो सके ऋष्यशृङ्ग नामी मुनिपुत्र को लुभाकर और विश्वास देकर हमारे देश में लिवालाओ, यह सुनकर वे वेश्यायें राजा के डर और ऋषि के शाप से भयभीत होकर विवर्ण होगईं और सब सुधिबुधि खोकर कहने लगीं कि महाराज! यह काम असंभव है, उसी समय एक वृद्धा वेश्या ने राजा से कहा ४९।५५ कि महाराज! मैं उस तपस्वी ऋषि को यत्न करके आपके देश में ले आऊँगी परंतु आपसे जो जो सामग्री मैं मागूं मुझे दिलवा दीजिये यह सुनकर राजा ने सब सामग्री देने की आज्ञा देदी और उसे बहुतसा धन और नाना प्रकार के रत्न दिये उस सामग्री को लेकर वह वृद्धा वेश्या कई स्त्रियों को साथ लेकर वन को चल दी ॥ ५६ । ५८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय।

राजा लोमपाद की आज्ञा से वृद्धा वेश्या का शृङ्गऋषि के चित्त को अपने वश में करना।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! इसके पीछे उस वृद्धा वेश्या ने राजा

का कार्य सिद्ध करने के लिये राजा की आज्ञा और अपनी बुद्धि के अनुसार एक नाव पर एक बड़ा रमणीक मनोहर अद्भुत और दर्शनीय आश्रम बनाया और उसमें अनेक अनेक प्रकार के कृत्रिम फूल फल रखनेवाले मनोहर वृक्ष, लता, गुल्म लगा दिये और मनवाञ्छित स्वादिष्ठ फल देनेवाले वृक्षों से उसे शोभित कर दिया १।२ जब वह आश्रम उस नावपर बनकर तैयार होगया, तब वह वेश्या उस नावको लेकर वनको चलीगई और विभाण्डकऋषिके आश्रम के निकट उस नावको लगवा दिया; जब उस वेश्या ने मनुष्यों के द्वारा यह जान लिया कि इस समय विभाण्डक ऋषि वन को गये हैं, तब उसने अपनी बुद्धिमती पुत्रीको सब बातें, जो जो करना आवश्यक थीं, बतलाकर उस ऋषिके आश्रम में भेजदिया ४।५ उस वेश्यापुत्रीने जो बड़ी चतुर थी, वहाँ जाकर ऋष्यशृङ्ग ऋषि को, जो सदा तप किया करता था, देखा और उससे कहा ६ कि कहिये यहां सब तपस्वी कुशलपूर्वक रहते हैं ? और खाने को फल और मूल अच्छी तरह मिलते हैं ? और आपका आश्रम यही है ? मैं आपके दर्शनों की इच्छा से यहां आई हूँ ७ हे ऋष्यशृङ्ग! यहां तपकी वृद्धि होती है या नहीं ? आपके पिता तेजस्वी हैं या नहीं ? और आपसे प्रीति करते हैं अथवा नहीं करते हैं? और यहां वेदका पाठ भी होताहै या नहीं ? ८ यह सुनकर ऋष्यशृङ्ग बोला कि आप ब्रह्मलक्ष्मी से ज्योति की भाँति प्रकाश कररहे हैं, मेरी समझ में मुझे आपको दण्डवत् करना उचितहै, आप सुखपूर्वक इस कुश के आसनपर, जिस पर काले मृगका चर्म डसा हुआहै, बैठिये; मैं आपको अपनी प्रसन्नता से पाद्य, अर्घ देकर धर्म के अनुसार फल और मूल दूँगा, आपका आश्रम कहाँ है ? और क्या आपका नाम है ? धन्य है कि आप देवताओं की तुल्य होकर इस ब्रह्मव्रत को धारण किये हुए हैं ९।१० यह सुनकर वेश्या बोली कि हे काश्यपनन्दन ! हमारा रमणीय आश्रम इसपर्वत से तीन योजन परहै, हमारा धर्म यह है कि हम किसी की दण्डवत् नहीं लेते, न किसीका दिया हुआ पाद्य और अर्घ छूते हैं; इससे आप हमको वन्दना न कीजिये, हमको ही आपकी वन्दना करना उचित है; हमारा परमधर्म यह है कि हम आपको आलिङ्गन करें अर्थात् गले से गलेलग कर मिलें ११।१२ लोमशजीबोले कि हे युधिष्ठिर! यह सुनकर ऋष्यशृङ्ग बोला कि मैं आपको भल्लातक, आमलक, करूषक, इंगुद, धन्वन और पिप्पल आदि के पकेहुए फल देताहूँ, इनमें से जो आप चाहें सो खायँ १३ वेश्याने उन फलों

को ले लिया और चाखचाख कर फेंकदिया, फिर ऋष्यशृंगको मोदक दिये और कहा कि ये हमारे वन के फल हैं, ऋष्यशृङ्गको वे मोदक बड़े स्वादिष्ठ लगे और उसनें उनको बड़ी रुचि से खाया १४ इसके पीछे वेश्याने उसको सुन्दर सुगन्धित माला, उजले उजले वस्त्र और पीनेकी बहुतसी चीज़ें दीं और आनन्दसहित हँस हँसकर उसके साथ क्रीड़ा करनेलगी १५ कभी फल लगीहुई डाली की तरह झुक झुककर वह वेश्या गेंदसे क्रीड़ा करती और कभी अपना गात्र ऋष्यशृङ्ग के गात्रों से मिलाकर आलिङ्गन करती और सर्ज, अशोक और तिलक आदि फूले हुए वृक्षों की डालियों को तोड़ तोड़ कर कामदेवके मदसे भरीहुई अनेक अनेक प्रकारसे क्रीड़ा करती, इस प्रकारसे उस निर्लज्ज वेश्याने ऋष्यशृङ्ग को लुभाकर अपने वश में करलिया १६ । १७ जब उसने देखा कि ऋष्यशृङ्ग का स्वरूप कामदेव से विकृत होगया है, तब वह वेश्या उसको वारंवार चिपटाकर अग्निहोत्र करने का बहाना करके धीरे धीरे चली गई १८ उसके चले जानेपर ऋष्यशृङ्ग कामदेव से मत्त और अचेतसा होगया और वेश्या के चलेजाने के कारण से उस आश्रम में अकेला रहकर श्वास ले लेकर बहुत दुःखी हुआ १९ दो घड़ी के पीछे विभाण्डक ऋषि, जिनके नेत्र लाल लाल और सब शरीरपर रोम थे और वेदपाठी, व्रती और समाधि लगानेवाले थे, आ पहुँचे २० वे अपने उस पुत्र को उदासीन अकेला बैठा हुआ श्वास लेते हुए और ध्यानसा लगाये हुए अत्यन्त म्लानचित्त होकर वारंवार ऊपरको दृष्टि कर करके देखते हुए देखकर कहने लगे २१ कि हे पुत्र! तू समिध लाया है या नहीं? क्या तैंने अग्निहोत्र करलिया? ये स्रुवा और स्रुक क्यों नहीं धोये हैं? और गौ का दूध क्यों नहीं दुहा है? तू मुझको पहिले की भांति नहीं दीखता है? क्यों चिन्तासी कररहाहै? और ऐसा दुःखी है क्या यहां कोई आया था॥ २२।२३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

एकसौबारहवाँ अध्याय।

ऋष्यशृङ्ग का अपने पिता से वेश्या के आने का वृत्तान्त कहना।

विभाण्डक ऋषिकी बातको सुनकर ऋष्यशृङ्गने उत्तर दिया कि महाराज! आज यहां एक जटाधारी ब्रह्मचारी आया था, डील उसका न बहुत छोटा था न बहुत लम्बा, उसके शरीर का रंग सुवर्ण की सदृश था, आँखें कमलसी बड़ी बड़ी थीं और शोभा उसकी देवताओंकीसी थी १ उसका स्वरूप बड़ाही सुन्दर था,

प्रकाश उसका सूर्यकासा था, आँखें चिकनी और काली काली थीं, शरीर गोरा गोरा और जटा चिकनी, नीली, सुगन्धित और सुनहरी रस्सियों से गुँधी हुई थीं २ उसकी ग्रीवाके आभरण बिजली की समान चमकतेथे और कण्ठके नीचे हृदय परदो पिण्ड गोल गोल रोमरहित और मनोहर थे ३ उसकी टूंडी के पासका स्थान भरा हुआ और कमर पतली थी और उसके वस्त्रों में से उसकी मेखला अर्थात् करधनी सुवर्णकीसी प्रकाश करती हुई दीखती थी ४ उसके दोनों चरणों में दूसरे अद्भुत आभूषण प्रकाश कररहे थे और वे चलते में कूजते थे और हाथों में भी वैसीही ध्वनि करनेवाले आभूषण थे और ऐसे थे जैसी यह मेरी अक्षमाला है, उन आभूषणों का शब्द ऐसा होता था मानो सरोवर के ऊपर मतवाले हंस बोलरहे हैं और उसके वस्त्र अति उत्तम थे, ये मेरे वस्त्र वैसे नहीं हैं ५ । ६ मुख उसका बड़ा अद्भुत था और उसकी बातों से चित्त प्रसन्न होता था और उसकी वाणी हंस और कोकिलाकीसी मनोहर थी, जिसको सुनने से मेरे अन्तरात्मा को बड़ी पीड़ा हुई ७ हे पिता ! उस महात्मा के शरीरमें ऐसी गन्ध आती थी, जैसी वैशाख के महीने में अर्थात् वसन्तऋतुमें वायुके चलनेसे वन सुगन्धित होजाता है ८ और उसकी जटा इकट्ठी की हुई ललाटपर से इधर उधर को दो भाग की हुई दीखती थीं और कानों में चक्रवाक के समान चित्र लटके हुए थे ९ उसके दाहिने हाथमें एक गोल और विचित्र फल था अर्थात् गेंद; जब वह उस फलको ऊपर को फेंक देता था, तब वह पृथ्वी पर गिरकर फिर ऊपर को उछलता था १० और जैसे वायु से वृक्ष हिलता है, उसी प्रकार से वह फल ऊपरसे हिलता हुआ गिरकर और पृथ्वी को ताड़ित करके फिर ऊपर को ही चला जाता था; सो हे पिता ! उस देवकुमारों की तुल्य ब्रह्मचारीको देखकर मेरे हृदयमें परमप्रीति और रति उत्पन्न होगई ११ इसके सिवाय उस ब्रह्मचारी ने मेरे शरीरको पकड़कर मुझे अच्छीतरह से आलिङ्गन किया और मेरी जटा पकड़कर मेरे मुखको नवालिया और मुखसे मुख मिलाकर बड़ा शब्द किया, ऐसा करने से मेरे हृदय में बड़ा हर्ष उत्पन्न होगया १२ मैं उसको पाद्य और फल देने लगा, परंतु उसने उनको ग्रहण नहीं किया और कहा कि हमारा यही व्रत है, हम दूसरेका दिया हुआ पाद्य नहीं लेते हैं और उसने मुझे अपने पाससे फल दिये, वे फल इन फलों से रस और स्वाद में बहुत अच्छे थे और उनमें छिलका और गूदा जैसा इन फलों में है, नहीं था १३।१४ इसके सिवाय उसने मुझे अपनी उदारता से पीने के लिये बड़े २

स्वादिष्ठ जल दिये, जिनको पीकर मुझको बड़ा आनन्द हुआ और पृथ्वी चलती सी दीखने लगी १५ देखो यह जो विचित्र और सुगन्धित माला पड़ी है, इसको वही तपस्वी डाल गये हैं १६ सो हे पिता! अब मैं उसके चले जानेके कारणसे अचेत सा हो रहाहूं और मेरा गात्र सबओरसे जल रहा है, मैं चाहता हूं कि शीघ्र उसके पास जाऊं अथवा वह सदैव मेरे पास रहा करे १७ हे पिता! उसका वह ब्रह्मचर्यव्रत किस नाम से विख्यात है, मैं भी चाहता हूं कि उसके साथ रहकर वैसी ही तपस्या करूं, जैसी वह किया करताहै; अब उसको बिना देखे मेरा चित्त बहुत दुःखी होता है ॥ १८।१९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

एकसौतेरहवाँ अध्याय ।

विभाण्डकऋषिका अपने पुत्रको समझाना और वेश्यापुत्री का ऋष्यशृङ्ग को राजा अङ्ग के देशमें लेआना, इन्द्रका वर्षा करना और राजाका अपनी शान्ता पुत्री का विवाह ऋष्यशृङ्गसे करदेना ।

विभाण्डकऋषि बोले हे पुत्र! यहां अतुलपराक्रमी राक्षस अद्भुतरूप धारण करके तप का विघ्न करने के लिये बिचरा करते हैं १ और सुन्दर सुन्दर स्वरूप धारण कर करके अनेक प्रकारसे लुभाकर मुनियों को सुख और अच्छी गति प्राप्त नहीं होने देते २ उन मनुष्योंको जो सत्पुरुषों के लोकों को चाहते हों और जितेन्द्रिय हों, इनका सत्संग किसी अवस्था में करना उचित नहीं है, क्योंकि वे पापी और तपस्या में विघ्न डालनेवाले हैं, तपस्वी को तो उनकी ओर देखना भी न चाहिये ३ और जो उत्तम पीने के पदार्थ तू कहता है वे सब मधु हैं, जिनका पीना पाप का मूल और सज्जनों के अयोग्य है और जो ये उजली चित्र विचित्र और सुगन्धित माला हैं ये भी मुनियों के योग्य नहीं हैं ४ सो हे पुत्र! जिसको तू मुनि समझ रहाहै, वह निस्संदेह राक्षसहै विभाण्डक ऋषि उक्तप्रकारसे अपने पुत्रको समझाकर उस वेश्यापुत्री के ढूंढने को चलदिये और तीन रात्रि दिन में जब उसका कुछ पता नहीं पाया, तब अपने स्थान को लौटि आये ५ इसके उपरान्त जब विभाण्डक ऋषि फिर फल लेनेके लिये वनको चलेगये, तब अवसर पाकर वह वेश्यापुत्री वहां फिर चली आई, ऋष्यशृङ्ग उसे देखते ही संभ्रान्तचित्त होकर उसके पास चले गये और कहने लगे कि चलो जबतक हमारे पिता वन से लौटकर आवें तबतक हम तुम्हारा आश्रम देखि आवें ६ । ७ हे राजन्! यह सुनकर वह वेश्या पुत्री ऋष्यशृङ्ग को अपने स्थान को लिवा लेगई और यत्न

से नाव खोलकर चलदी और ऋष्यशृङ्ग को अनेक प्रकार से प्रसन्न करती हुई राजा अङ्ग के देश में आपहुँची ८ और वहां पर जो कृत्रिमरूप आश्रम बना हुआ था, उसमें ऋषिको लिवा लेगई, इसके उपरान्त राजा अङ्ग ऋष्यशृङ्ग को अपने महल में लिवा लेगया और वहांही उनको वास दिया, उनके वहां बसते ही इन्द्र ने अकस्मात् ऐसी वर्षा की कि सब देशों को जल से भर दिया ९।१० इसके पीछे राजा ने अपनी शान्तानाम पुत्री का विवाह ऋष्यशृङ्ग से कर दिया और उनके पिता विभाण्डक ऋषि का क्रोध शान्त करने के लिये यह उपाय किया कि उनके आश्रम से जो राह राजा के नगर को आनेकी थी, उसमें राजा ने ठौर ठौर पर बहुतसे किसान अर्थात् खेती करनेवाले और गोपोंको गाय ले लेकर बिठा दिया और उन सबसे कहदिया कि जब विभाण्डक ऋषि उस मार्ग से आवें और पूछें कि यह देश, गाय और खेतियां किसकी हैं तब तुमलोग यह कहना कि ये सब आपके पुत्र की हैं कहिये आपकी क्या आज्ञाहै? हम सब आपके दास हैं ११।१२ इसके उपरान्त जब विभाण्डक ऋषि वन से फल लेकर अपने आश्रम को आये और वहां ढूंढ़ने पर भी अपने पुत्र को नहीं पाया, तब महाक्रोधित हुए और यह शङ्का करके कि ये सब बातें राजा अङ्ग की की हुई हैं यह कहकर राजाको अपने शाप से देश और नगरसहित भस्म करने के लिये चम्पा नामी नगर को मार्गीहुए १४।१५ राहमें भूख प्यास और थकावटके कारणसे उन्होंने एक ग्राममें वास किया वहांके मनुष्योंने ऋषि का बड़ा आदर सत्कार किया और उस रात्रि को वहां राजाओं के तुल्य आनन्द से बसकर उन्होंने लोगों से पूछा कि तुमलोग किसके हो? वे बोले कि महाराज! हम सब और यह सब धन आपके पुत्रका ही है इसप्रकार से ग्राम-ग्राम में सत्कार पाने और प्यारी बातों के सुनने से विभाण्डक ऋषि का क्रोध शान्त होगया और वे राजा अंग के नगर में आपहुँचे १६।१८ हे राजेन्द्र! राजा अंग ने उनकी विधि के अनुसार पूजा की और उक्त प्रकार से आदर सत्कार पाने और अपने पुत्र को राजा के महलों में इन्द्र के समान पूजित और बिजली के समान घूमती हुई पुत्रवधू से युक्त देखकर उनका सब क्रोध दूर होगया और उन्होंने राजा को कृपादृष्टिसे देखा १९।२० इसके उपरान्त वहां कुछ काल वासकर वे अग्नि और सूर्य के तुल्य तेजस्वी ऋषिपुत्र से यह कहकर कि जब एक पुत्र होजाय तब तू राजा की मनोकामना पूरी करके वनको चला आइयो अपने आश्रम को चले गये और ऋष्यशृङ्ग ने वैसा ही किया

अर्थात् पुत्र उत्पन्न होने पर अपने पिता के आश्रमको चला आया और जितने दिन उसने राजा अङ्ग के यहां वास किया था उतने दिनों शान्ता ने उसकी आज्ञा का पालन, सेवा और भक्ति इस प्रकार से की जैसे रोहिणी ने आकाश में चन्द्रमा की, अरुन्धती वशिष्ठजी की, लोपामुद्रा अगस्त्यजी की, दमयन्ती नल की, शची इन्द्र की और इन्द्रसेना मुद्गलऋषि की करती थी सो हे युधिष्ठिर! यह पवित्र, धर्म का बढ़ानेवाला और सरोवर से शोभित आश्रम उसी ऋषि का है तुम इसमें स्नान करके विशुद्ध और कृतकृत्य होकर और २ तीर्थों की यात्राको चलो॥ २१।२५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११३॥

एकसौचौदहवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का कौशिकी आदि तीर्थों में स्नान करके महेंद्र पर्वत को जाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे राजा युधिष्ठिर क्रमसे सब देवस्थानों को देखता हुआ कौशिकी तीर्थको गया और वहां से गङ्गा और समुद्र के संगम के स्थान पर पहुँचकर पांचसौ नदियों में स्नान किये १।२ इसके पीछे युधिष्ठिर भाइयों सहित समुद्र के तटपर होता हुआ कलिङ्गदेश में पहुँचा वहां पहुंचनेपर लोमशजी ने युधिष्ठिर से कहा कि हे कौन्तेय! देखो यह कलिङ्ग देश है और वह वैतरणी नदी है, धर्मराज ने इस नदी के तटपर देवताओं सहित यज्ञ किया था ३।४ इस नदी के उत्तर के किनारेपर बड़े बड़े ऋषि और ब्राह्मण सदैव रहा करते हैं और वहीं एक यज्ञ करने के योग्य पर्वत भी है ५ हे युधिष्ठिर! यह मार्ग स्वर्ग चाहनेवालों के लिये देवताओं के विमान की सदृश है, यहांपर अगले समय में ऋषियों ने यज्ञ किया था और यहीं यज्ञ में शिवजी ने यज्ञ के पशु को ग्रहण करके यह कहा था कि यह हमारा भाग है ६।७ यह देखकर देवताओं ने विनय की कि महाराज! आप दूसरों के भाग को नाश न कीजिये और यज्ञ के सब भागों को लेने की इच्छा न कीजिये यह कहकर देवताओं ने शिवजी की स्तुति की और बड़े आदर से उनका पूजन किया ८।९ ऐसा करने पर शिवजी यज्ञ के पशु को छोड़कर विमान में बैठकर चल दिये तबसे देवताओं ने उनके भयसे यज्ञ में उनका भाग सनातन और सबसे उत्तम नियत कर दिया १०।११ सो हे युधिष्ठिर! इस तीर्थ में जो कोई मनुष्य उक्त गाथा को गाकर स्नान करता है उसको देवयान मार्ग अर्थात् ब्रह्मलोक को जाने की राह दीखने लगती है १२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे पाण्डव द्रौपदी सहित वैतरणी नदी

के पार उतर गये और वहां जाकर उन्होंने तर्पण किया १३ तब युधिष्ठिर लोमशजी से कहने लगा कि महाराज! देखिये मैं इस नदी में विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके तप के द्वारा मनुष्यभाव से छूट गया हूँ अब आपकी कृपा से मुझे सबलोक दिखाई देते हैं देखिये ये वैखानस ऋषि बोल रहे हैं और जप कर रहे हैं १४ । १५ यह सुनकर लोमशजी बोले कि यह ध्वनि जो तुमको सुनाई देती है यहां से तीन लाख योजन पर है अब इसको देखकर चुप हो रहो कुछ किसी से मत कहो १६ यह ब्रह्माजी का दिव्यवन है ब्रह्माजी ने यहां यज्ञ किया था उस यज्ञ में उन्हों ने कश्यपजी को पर्वत, वन और उपवन सहित संपूर्ण पृथ्वी दक्षिणा में दी थी १७ । १८ दान करने पर पृथ्वी बहुत दुःखी हुई और क्रोधित होकर ब्रह्माजी से बोली कि आपको मुझे किसी मनुष्य को देना उचित नहीं है आप का यह दान निष्फल है अब मैं रसातल को जाती हूं १९ । २० कश्यपऋषि ने पृथ्वी को इस प्रकार से दुःखी देखकर अपने तप से प्रसन्न किया और वह प्रसन्न होकर जल के ऊपर फिर आकर देवीरूप से सुशोभित हो गई २१ । २२ सो हे युधिष्ठिर! यह सुन्दर वेदीरूप स्थान वही शोभायमान हो रहा है इस पर चढ़ने से तुम बलवान् होजावोगे यह वेदी समुद्र के ऊपर तैररही है मनुष्य के छूते ही यह समुद्र में नीचे बैठ जाती है तुम अकेले इस पर चढ़कर समुद्र में स्नान करो मैं तुमको इस पर चढ़ने का मंत्र बताता हूँ और स्वस्त्ययन करता हूँ (मन्त्र) "ॐ नमो विश्वगुप्ताय नमो विश्वपरायते । सान्निध्यं कुरु देवेश! सागरे लवणाम्भसि ॥ अग्निर्मित्रोयोनिरापोथदिव्यो विष्णोरेतस्त्वममृतस्य नाभिः" ॥ इस मन्त्र को पढ़कर तुम वेदी पर चढ़ जाओ और इस (मन्त्र) "अग्निश्चते योनिरिडाच देहो रेतोधाविष्णोरमृतस्य नाभिः' ॥ को पढ़कर समुद्रमें स्नान करो इस मन्त्रको विनापढ़े दूसरीप्रकारसे इस जलके स्वामी और देवताओंकी योनि समुद्रका कुशा से भी छूना उचित नहीं है २३ । २६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने उक्त प्रकारसे मन्त्र पढ़कर लोमशऋषिकी आज्ञाके अनुसार समुद्रमें स्नानकिये और वहांसे चलकर रात्रिको महेन्द्र पर्वतपर वासकिया ॥ ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

एकसौपन्द्रहवाँ अध्याय ।

राजा युधिष्ठिर का महेन्द्र पर्वतपर बसना और अकृतव्रण का परशुरामजी की कथा वर्णनकरना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर ने उसी महेन्द्र पर्वत

पर एक रात्रि बसकर वहां रहनेवाले तपस्वियों का बड़ा आदर सत्कार किया और लोमशऋषि ने उससे एक एक तपस्वी को बतला बतलाकर कहा कि य भार्गवगोत्री हैं, ये आङ्गिरस हैं, ये वाशिष्ठगोत्री हैं और ये काश्यपगोत्री तपस्वी हैं १।२ युधिष्ठिर उन सब तपस्वियों से दण्डवत् करकर और हाथ जोड़ जोड़कर मिला, उपरान्त उसने परशुरामजी के अकृतव्रणनामी अनुचर से, जो वहां रहता था, पूछा ३ कि भगवान् परशुरामजी तपस्वियोंको अपना दर्शन देने के लिये कब आवेंगे ? मैं भी उनका दर्शन उसीसमय किया चाहता हूं ४ यह सुनकर अकृतव्रण बोला कि परशुरामजी को तुम्हारे आनेका हाल मालूम है और तुमसे प्रेमभी रखते हैं,इससे शीघ्र दर्शन देंगे ५ बहुधा परशुरामजी तपस्वियों को अष्टमी और चतुर्दशी को अपना दर्शन देते हैं,सो कल के दिन चतुर्दशी है ६ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि आप महाबलशाली परशुरामजी के अनुचर हैं और आपने उनके सब पिछले काम अपनी आंख से देखे हैं, इससे मैं सुना चाहता हूं कि परशुरामजी ने किस प्रकार और किस हेतु से सब क्षत्रिय पहिले युद्ध में जीते थे ७।८ यह सुनकर अकृतव्रण बोला कि हे भरतवंशी, महाराज ! मैं आपसे जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी के उत्तम आख्यान और देवताओं के तुल्य चरित्र को और हैहयदेश के स्वामी कार्तवीर्य की कथा को कहता हूं ९।१० हे पाण्डव ! सुनिये, परशुरामजी ने जिस हैहयदेश के राजा अर्जुन को मारा था, उसके सहस्रभुजा थीं ११ और दत्तात्रेयजी की कृपा से उसे सुनहरी विमान, संपूर्ण पृथ्वी, सब ऐश्वर्य और एकरथ, जो किसी स्थान में नहीं रुकता था, प्राप्त होगये थे, उसने उस रथ पर चढ़कर वरदान के कारण से देवता, यक्ष और ऋषियों को चारों ओर घूम-घूम कर मर्दन किया और सब जीवों को पीड़ा दी १२।१४ उस समय देवता और बड़े-बड़े ऋषि श्रीविष्णु भगवान् के पास जो सत्यपराक्रमी असुरों के मारनेवाले और देवताओं के देवता हैं, गये और विनय की कि हे भगवन् ! सब प्राणियों की रक्षा करने के लिये आप सहस्राबाहु को मारिये, वह दिव्य विमान में चढ़कर स्वर्ग में चला आता है और शची के साथ क्रीड़ा करते हुए इन्द्र को घर्षणा करता है, यह सुनकर लोकपूजित विष्णु भगवान् इन्द्र से उसके मारने की सलाह करके बदरीवन को, जो बड़ा रमणीक है, चले गये, इसी अवसर में कान्यकुब्ज देश का गाधिनामी बड़ा कीर्तिमान् राजा अपना राज्य छोड़कर वनको

तपस्या करने के लिये चला आया था, वहां उसके एक परमसुन्दरी कन्या, जिसका स्वरूप अप्सराओं का सा था, उत्पन्न हुई हे भरतसत्तम ! उस कन्या को ऋचीकनामी भृगुवंशी ऋषि ने राजा से वन में जाकर मांगा, राजा ने उत्तर दिया कि महाराज ! मुझको आप ऐसे महात्मा को लड़की देने में कुछ शङ्का नहीं है; परंतु हमारे कुल में पुरुषाओं की बांधी हुई यह रीति चली आती है कि कन्या उसको देना चाहिये, जो श्वेतरंग और श्यामकर्ण के एक सहस्र घोड़े लाकर दे, इसको आप समझ लीजिये विना इनके दिये आपको कन्या मांगना उचित्त नहीं है १५ । २४ यह सुनकर ऋचीकऋषि बोले अच्छा, मैं आपको श्वेतरंग के श्यामकर्ण और बड़े वेगवान् घोड़े दूंगा आप अपनी पुत्री को मुझे दीजियेगा २५ अकृतव्रण बोला हे युधिष्ठिर ! ऋचीकऋषि उक्त प्रकार से कहकर वरुण देवता के पास गये और बोले कि मुझको एक सहस्र बड़े वेगवान् श्यामकर्ण घोड़े, जिनका रंग श्वेत हो, दीजिये, वरुण ने एक सहस्र घोड़े ऋचीकऋषि को दे दिये गङ्गाजी में जहां पर जल में से ये घोड़े निकले थे, वह स्थान अश्वतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है, ऋचीकऋषि ने वे घोड़े लाकर राजा गाधि को दे दिये और राजा ने अपनी सत्यवती नाम कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया ऋचीकऋषि उसको लेकर अपने स्थान को चले गये और वहां उस सुमध्यमा सुन्दरी के साथ रमण करने लगे २६।३० हे राजन् ! इसके पीछे एक समय भृगुजी महाराज अपने पुत्र ऋचीकऋषि को स्त्री सहित देखने के लिये वहां आये और उनको देखकर बहुत प्रसन्न हुए ३१ उनको देखकर वे दोनों स्त्री-पुरुष हाथ जोड़कर पिता के सम्मुख खड़े होगये और उनकी विधि के अनुसार पूजा की ३२ उस समय भृगुजी ने प्रसन्न होकर अपने पुत्र की वधू से कहा कि हे सुभगे ! तू मुझसे वरदान मांग, मैं तेरी मनोकामना पूर्ण करूंगा ३३ यह सुनकर उसने कहा कि महाराज ! मैं चाहती हूं कि एक पुत्र मेरे और एक मेरी माता के उत्पन्न होवे ३४ यह सुनकर भृगुजी बोले कि अच्छा अबकी जब तुम्हारा ऋतुकाल आवे तब ऋतुस्नान करने पर तू पीपल के वृक्ष को और तेरी माता गूलर के वृक्ष को आलिङ्गन करना और ये दो भाग चरु अर्थात् यज्ञ की हवि, जिसमें हमने विष्णु का अंश धारण करदिया है, हम देते हैं, इनमें से इस भाग को तू खा लीजो और दूसरे को अपनी मां को खिला दीजो, यह कहकर भृगुजी वहीं अन्तर्द्धान

होगये, इसके उपरान्त जब ऋचीकऋषि की स्त्री और उस स्त्री की माता ऋतुमती हुई तब उन दोनों ने विपरीत वृक्षों को आलिङ्गन और विपरीत चरु को भोजन किया अर्थात् जो वृक्ष भृगुजी ने ऋचीकऋषि की स्त्री को आलिङ्गन करने को कहा था उसको उसकी माता ने आलिङ्गन किया और जो उसकी माता को बताया था वह उसने आलिङ्गन किया और चरु को भी इसी प्रकार से खाया अर्थात् उसका भाग उसने और उसका उसने खा लिया ३५। ३७ इस बात को जब बहुत सा समय व्यतीत होगया तब भृगुजी अपने दिव्य ज्ञान से उस बातको जानकर वहां आये ३८ और अपनी पुत्रवधू से बोले कि तेरी माता ने तेरे साथ बड़ी घाटि की है, जिसके कारण से तुम दोनों ने विपरीत वृक्षों को आलिङ्गन करके विपरीत चरु भक्षण किया है, अब इस कारण से तेरा पुत्र ब्राह्मण होगा परंतु क्षत्रिय की वृत्ति रक्खेगा ३९। ४० और तेरी माता का पुत्र बड़ा पराक्रमी और साधु क्षत्रिय होगा परंतु आचार उसके ब्राह्मणों के से होंगे ४१ यह सुनकर सत्यवती ने अपने श्वशुर भृगुजी को बारम्बार प्रसन्न कर करके कहा कि महाराज! मेरा पुत्र ऐसा न होइ, चाहे पौत्र होइ तो होइ ४२ हे पाण्डव! भृगुजी बोले कि अच्छा, ऐसा ही होगा, इसके उपरान्त समय आने पर सत्यवती के जमदग्नि नामी पुत्र उत्पन्न हुआ ४३ वह बड़ा तेजस्वी और स्वरूपवान् था और बड़ा होनेपर उसने वेद का अध्ययन ऐसा किया कि उसके सदृश दूसरा ऋषि उस समय में न था और धनुर्वेद और चारों प्रकार की अस्त्रविद्या भी उसे भासित होगई थीं ४४। ४५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११५॥

एकसौ सोलहवाँ अध्याय।

जमदग्निऋषि का रेणुका से विवाह होना और उससे परशुरामजी आदि पांच पुत्रों का उत्पन्न होना परशुरामजी का अपनी माता को पिता की आज्ञा से मार डालना और वरदान पाना और फिर कार्तवीर्य का वध करना और कार्तवीर्य के पुत्रों को जमदग्निजी को मार डालना।

अकृतव्रण बोला हे युधिष्ठिर! उस महातपस्वी जमदग्नि ने वेद के पाठ में युक्त होकर तपस्या की और अपने नियम से वेदों को बश में कर लिया १ उपरान्त राजा प्रसेनजित की रेणुका नाम कन्या को उसने मांगा और राजा ने उस कन्या का विवाह जमदग्निजी से कर दिया २ जमदग्निजी उस कन्या को लेकर अपने आश्रम को चले आये और तपस्या करने लगे, उसके पांच पुत्र उत्पन्न हुए, परशुरामजी उनमें से सबसे छोटे हैं, परन्तु गुण में

सबसे अधिक हैं ३ । ४ एक समय सब पुत्र फलाहार लेने को चले गये और रेणुका, जो कि नियतव्रतवाली थी स्नान करने को गई ५ उसने दैवइच्छा से नदी में चित्ररथ नाम राजा मार्तिकावत को कमलों की माला पहिरे हुए स्त्री सहित स्नान करते हुए देखा, उसको देखकर रेणुका कामासक्त होगई और उसका वीर्य जल में गिर पड़ा, इसके पीछे रेणुका विह्वल होकर डरती हुई अपने आश्रम को आई, उसके पति जमदग्निजी को यह सब वृत्तान्त योगदृष्टि से विदित होगया ६ । ८ और उन्होंने उसे धैर्य के चले जाने और ब्राह्मच लक्ष्मी के न होने के कारण से धिक्कार किया और निन्दा की ९ इसके उपरान्त जमदग्निजी के चार पुत्र रुमण्वान्, सुपुष्ठ, सुषेणवसु और विश्वावसु वन से एक दूसरे के पीछे लौटकर आये, पिता ने क्रमपूर्वक उन चारों को आज्ञा दी कि तुम अपनी माता को मार डालो, परंतु स्नेहबद्ध होने के कारण से उन चारों ने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुपचाप खड़े हो रहे १० । ११ यह देखकर जमदग्निजी ने उन चारों को शाप दिया और उससे वे चारों जड़ की तुल्य मृग पक्षियों के समान होगये १२ इसके पीछे परशुरामजी भी वन से लौटकर आये, पिता ने उनको भी आज्ञा दी कि तू अपनी इस पापिन माता को मार डाल, खेद मत करे ! यह सुनकर परशुरामजी ने तुरन्त अपनी माता का शीश काट लिया १३ । १४ यह देखकर जमदग्निजी का क्रोध तत्क्षण शान्त होगया और प्रसन्न होकर कहने लगे १५ कि तैंने मेरी आज्ञा से बड़ा दुष्कर कर्म कर डाला, मैं तुझसे बड़ा प्रसन्न हूं, अब जो तेरी कामना हो, उसको मुझसे मांग, मैं दूंगा १६ यह सुनकर परशुरामजी बोले कि महाराज ! मेरी माता फिर जी उठे और उसको यह ज्ञान न होवे कि मैंने उसे मारा है और उसके मारने का पाप मुझे न लगे और मेरे भाई शाप से छूटकर फिर ज्यों के त्यों होजावें और मेरी आयु बहुत बड़ी होजाय और मुझे युद्ध में कोई न जीत सके, यह सुनकर जमदग्निजी ने परशुरामजी की सब मनोकामना पूर्ण की १७ । १८ इसके उपरान्त एक समय जमदग्निजी के सब पुत्र वन को चले गये, उनके पीछे अनूपदेश का स्वामी, शूरवीर, कार्तवीर्यनामी राजा उनके आश्रम में आया, रेणुका ने फूल फल और मूल देकर राजा की पूजा की; परंतु उस युद्ध में मतवाले राजा ने उस पूजा को ग्रहण नहीं किया १९ । २० और अपने बल से आश्रम के वृक्षों को तोड़कर रँभाती हुई गाय के बछड़े को खोलकर लेगया,

जब परशुरामजी वन से लौटकर आये, तब जमदग्निजी ने उनसे सब वृत्तान्त कहा, परशुरामजी उस वृत्तान्त को सुनकर और गाय को बछड़े के लिये बारम्बार रँभाते हुए देखकर क्रोधित होगये और धनुष लेकर उसके पीछे पीछे चल दिये, जब निकट पहुँचे तब परशुरामजी ने उससे युद्ध करके उसकी परिघ के समान सहस्रभुजा भाला मार मारकर काटडालीं और उसको यमलोक को पहुँचाकर और बछड़ा लेकर फिर अपने आश्रम को लौट आये, कार्तवीर्य के पुत्रों ने अपने पिता का मरना सुनकर परशुरामजी से वैर बांधा, एक दिन जब परशुरामजी भाइयों सहित वन को चले गये, तब कार्तवीर्य के पुत्र जमदग्निजी के आश्रम में चले आये और उन युद्ध न करनेवाले तपस्वी ऋषि को बाणों से मार डाला, जमदग्निजी ने बाणों से पीड़ित होकर राम राम पुकार पुकारकर अपने प्राण छोड़ दिये और वे कार्तवीर्य के पुत्र यह कर्म करके अपने स्थान को लौट आये, उनके चले जाने पर परशुरामजी समिध लिये हुए अपने आश्रम को आये और अपने पिता को उस प्रकार की अयोग्य मृत्यु के वश में देख बड़े दुःखित होकर विलाप करने लगे ॥ २१। २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणिषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

एकसौ सत्रहवाँ अध्याय।

परशुरामजी का विलाप करना और प्रतिज्ञा करके सब पृथ्वी के क्षत्रियोंको इक्कीसबेर मारना और महेन्द्रपर्वत पर युधिष्ठिर को दर्शन देना और युधिष्ठिर का दक्षिण दिशा की यात्रा करना।

परशुरामजी विलाप करनेलगे कि हे पिता! तुमको कार्तवीर्य के अज्ञानी पुत्रोंने वन में मृगकी भांति मेरे दोषके कारणसे मार डाला है १ हाय तात! आप से धर्मज्ञ सर्वप्राणियों में निष्पाप और सत्पथ में वर्तमान ऋषि की ऐसी मृत्यु क्योंकर हुई २ हाय! उन पापियों को कौन सा पाप नहीं लगेगा, जिन्होंने आपसे वृद्ध तपस्वी और युद्ध न करनेवाले को पैने या तीखे सैकड़ों बाणों से छेद डाला है ३ न जाने वे निर्लज्ज आप एकाकी धर्मज्ञ और युद्ध न करनेवाले को मारकर अपने मंत्रियों से क्या कहेंगे ४ हे युधिष्ठिर! इस प्रकार से महातपस्वी परशुरामजी ने नाना प्रकार से बड़ा विलाप किया और पिता का संपूर्ण प्रेतकर्म किया ५ हे भरतवंशिन्! शत्रुपुरों के जीतनेवाले परशुरामजी जब प्रेतकर्म से निबट चुके, तब उन्होंने सब पृथ्वी के क्षत्रियों को वध करने की प्रतिज्ञा की ६ और क्रोध करके अकेले शस्त्र लिये हुए कार्तवीर्य के पुत्रों के नगर को चले गये और उन सबको और उनके सब साथी क्षत्रियों को युद्ध में मार डाला ७।८

इस प्रकार से महाबलशाली परशुरामजी ने इकीसबेर पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन करके क्षत्रियों के रुधिर से समन्तपञ्चक देश में पांच कुण्ड भरे और उस रुधिर से अपने पितरों का तर्पण किया, उस समय परशुरामजी को उनके बाबा ऋचीकऋषि ने दर्शन दिया और उपदेश किया ९। १० इसके पीछे प्रतापी परशुरामजी ने बड़ा यज्ञ करके इन्द्र को प्रसन्न किया और ऋत्विजों को पृथ्वी दान की और महात्मा कश्यपजी को दक्षिण में एक सुवर्ण की वेदी, जो चालीस हाथ चौड़ी, लम्बी और छत्तीस हाथ ऊंची थी, दान की ११ । १२ हे मनुजाधिप ! ब्राह्मणों ने उस वेदी को कश्यपजी की आज्ञा से खण्ड खण्ड करके आपस में बांट लिया, उस समय से वे ब्राह्मण खण्डवायननाम से विख्यात हैं १३ परशुरामजी इस प्रकार से पृथ्वी को दान करके इस महेन्द्र पर्वत पर चले आये और तब से यहीं रहा करते हैं १४ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार से परशुरामजी से लोकवासी क्षत्रियों का वैर हुआ था और परशुरामजी ने सब पृथ्वी के क्षत्रियों को मारकर जीता था १५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके उपरान्त चतुर्दशी के दिन परशुरामजी ने सब ब्राह्मण और भाइयोंसहित युधिष्ठिर को अपने दर्शन दिये १६ हे राजेन्द्र! भाइयों समेत युधिष्ठिर ने बड़ी भक्ति से सब ब्राह्मणों सहित परशुरामजी की पूजा की और उनकी आज्ञा से उस रात्रि को महेन्द्र पर्वत पर बसकर दूसरे दिन दक्षिण दिशा की यात्रा की ॥ १७ । १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

एकसौ अठारहवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिर का महेन्द्र पर्वत से चलकर अनेक दक्षिण देश के तीर्थों की यात्रा करना और प्रभासतीर्थ में पाण्डवों से मिलने को यादवों का आना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! महाप्रतापी राजा युधिष्ठिर महेन्द्र पर्वत से चलकर समुद्र के किनारे के सब तीर्थों को, जो ब्राह्मणों से शोभित थे, देखता हुआ और उनमें भाइयों सहित स्नान करता हुआ प्रशस्ता नदी के संगम पर पहुँचा और वहां भी स्नान व देवता, पितरों का तर्पण करके ब्राह्मणों को दान देकर उस गोदावरी पर पहुँचा, जो समुद्र में जा मिली है १ । २ हे राजन् ! वहां से द्रविड़देश में लोकपुण्यदायक समुद्र और महापवित्र अगस्त्यतीर्थ की यात्रा करता हुआ नारीतीर्थ में पहुँचा ४ और वहां महाधनुर्द्धर अर्जुन के ऐसे कामों को जो मनुष्य से होना असम्भव हैं उनको सुनकर वह

पाण्डुनन्दन परमर्षिसमूहों से सपूज्यमान होकर बहुत प्रसन्न हुआ ५ युधिष्ठिर ने उस तीर्थ में द्रौपदी और छोटे भाइयों सहित स्नान किये और वहां से अर्जुन के पराक्रम की सराहना करते हुए चल दिये इसके पीछे युधिष्ठिर ने समुद्र के तीर्थों में सहस्रों गोदान दिये और प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन के गोदान करने की प्रशंसा करते और अनेक पुण्यतीर्थों की क्रम से यात्रा करते हुए सूर्पाक नामी अति पुण्यतीर्थ में पहुँचे ६।८ वहां पर समुद्र के तट को छोड़कर एक अति उत्तम और लोकों में विख्यात उस वन को चले गये जहां अगले समय में देवताओं ने तपस्या की थी और पुण्य को श्रेष्ठ जाननेवाले राजाओं ने यज्ञ किया था ९ वहीं पर युधिष्ठिर ने ऋचीक के पुत्र की उस वेदी को देखा, जो पूजन करने के योग्य थी और जहां तपस्वियों के समूह के समूह रहा करते थे १० और वहीं वसुधाधिप, महात्मा राजा ने वसु, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, यमराज, सूर्य, कुबेर, इन्द्र, विष्णु, सविता, विभु, शिव, चन्द्रमा, दिवाकर, वरुण, साध्यगण, धाता, पितृगण, रुद्र, सरस्वती, सिद्धगण और और पवित्र देवता और पुण्यदायक मनोहर स्थानों के भी दर्शन किये ११।१३ और राजा युधिष्ठिर इन स्थानों के समीप रहनेवाले पण्डितों को वस्त्र-रत्नादिक दान देकर फिर सूर्पारक-तीर्थ में पहुँचे और वहां से सब ब्राह्मण और भाइयों सहित उस प्रभासनामी तीर्थ को गये जो पृथ्वी पर महात्मा द्विजवरों से विख्यात है १४।१५ वहां स्नान करके उसने सब भाई द्रौपदी और ब्राह्मणों सहित देवता और पितरों का तर्पण किया १६ और उस धर्मधारियों में श्रेष्ठ राजा ने बारह दिन तक केवल जल और वायुभक्षी रहकर अपने चारों ओर अग्नि जलाकर तपस्या की १७ उस समय श्रीकृष्ण और बलदेवजी अजमीढवंशी युधिष्ठिर के तप का हाल सुनकर सेना सहित वहां आये १८ और उस द्रौपदी सहित पाण्डवों को पृथ्वी पर मलीनता के साथ, जो इस योग्य न थी, बैठे हुए देखकर बहुत दुःखी होकर रोने लगे १९ उस समय युधिष्ठिर ने बलदेवजी, श्रीकृष्णजी, प्रद्युम्न, साम्ब सात्यकि और अन्य अन्य लोगों के पास जाकर प्रत्येक की धर्म के अनुसार पूजा की २० और वह सब भी न्याय के अनुसार पाण्डवों की पूजा करके और युधिष्ठिर से सत्कार पाकर पाण्डवों को घेरकर इस प्रकार से बैठ गये, जैसे देवता इन्द्र को घेरकर बैठ जावें २१ उस समय युधिष्ठिर ने उनसे अपने शत्रुओं का सब चरित्र और अपना वनवास और अर्जुन की अस्त्रविद्या

सीखने को स्वर्ग में जाने का सब वृत्तान्त वर्णन किया २२ उसको सुनकर और पाण्डवों को दुःखी और कृशरूप देखकर सब यादव दुःखी हुए और उनके नेत्रों से जल बहने लगा ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

एकसौ उन्नीसवाँ अध्याय।

पाण्डवों के वनवास के दुःख को देखकर सब यादवों का दुःखी होना और बलदेवजी का दुःखी होकर अनेक प्रकार से संताप करना।

उक्त कथा को सुनकर जनमेजय बोले कि हे वैशंपायनजी ! पाण्डव और यादव आपस में सुहृद और सब शास्त्रों के ज्ञाता थे मैं चाहता हूं कि अब आप यह वर्णन कीजिये कि उस प्रभासतीर्थ में उन दोनों की क्या क्या बातें हुईं? और क्या क्या उन्होंने किया १। २ यह सुनकर वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय ! जब सब यादव उस समुद्रतटवर्त्ती प्रभासतीर्थ में पाण्डवों को घेर कर बैठ गये तब वनमाली हलधारी जिनकी प्रभा गोदुग्ध, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा, मृणाल और चांदी के तुल्य थी कमललोचन श्रीकृष्णजी से कहने लगे कि सुनो भाई ! हमारी समझ में धर्म के करने से वृद्धि और अधर्म के करने से क्षय नहीं होती है देखो यह युधिष्ठिर परम धार्मिक होकर चीरवस्त्र और जटाधारण किये हुए वन में कैसा क्लेश पा रहा है ३। ५ और दुर्योधन अधर्म करने पर भी पृथ्वी का राज्य करता है इस बात को देखकर थोड़ी बुद्धिवाले मनुष्य सिवाय इसके और क्या कहेंगे कि धर्म से अधर्म श्रेष्ठ है ६ दुर्योधन की अति बढ़ोतरी और युधिष्ठिर के दुःख और राज्यभ्रष्ट होने को देखकर सबको यही शङ्का होगी कि धर्म और अधर्म दोनों में से किसको करना चाहिये, क्योंकि युधिष्ठिर ऐसा धर्मात्मा, सत्यधारी और दाता है कि चाहे यह राज्य और सुख को छोड़ देवे, परंतु धर्म छोड़कर अपनी बढ़ोतरी नहीं चाहेगा ७। ८ हम नहीं जानते हैं कि भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, ब्राह्मण और धृतराष्ट्र पाण्डवों को वनवास देकर सुख कैसे भोगते होंगे? हाय ! इन पापी भरतवंशियों को धिक्कार है ९ न जाने यह पापी राजा धृतराष्ट्र इन निष्पाप पुत्रों को राज्य से अलग करके परलोक में पितरों से क्या कहेगा? इस राजा ने बुद्धि से यह विचार भी नहीं किया कि न जाने क्या मुझसे ऐसा कर्म हुआ है जिससे मैं राजाओं में अन्धा उत्पन्न हुआ हूं और अब युधिष्ठिर को निकालकर न जाने मेरी क्या गति होगी? १०।१६

बड़े दुःख की बात है कि यह विचित्रवीर्य का पुत्र अपने पुत्रों सहित थोड़े ही दिनों में उस यमलोक की पृथ्वी को जाकर देखेगा, जहां के वृक्ष सुवर्ण की सदृश फूले हुए हैं और भीष्मादिकों को भी मरवावेगा, इसने यह अच्छा नहीं किया है, जो इस शास्त्रवेत्ता युधिष्ठिर को छोटे भाइयों सहित वनवास दिया है १२ । १३ मुझे यह निश्चय है कि यह लम्बी भुजा रखनेवाला भीमसेन जिसकी गर्जना से सेना के मनुष्यों की विष्ठा और मूत्र निकल जाते हैं नाना प्रकार के शस्त्र लेकर इस घोरवनवास और भूख प्यास और राह चलने के श्रम को याद कर करके शत्रुओं की बढ़ी हुई सेना को भी नाश कर डालेगा १४ । १५ क्योंकि इसके समान सब पृथ्वी पर कोई प्रतापी व बलशाली नहीं है और जिस समय यह इस वन की गर्मी-सर्दी और वायु को याद करेगा, उस समय शत्रुओं में से किसी को शेषनहीं छोड़ेगा १६ हाय! यह बड़े दुःख की बात है, जो अकेला भीमसेन युद्ध में सब पूर्व दिशा के राजाओं को जीतकर कल्याणपूर्वक अपने देश को लौटकर आया था, वह अब इससमय में फटे वस्त्र पहिरे हुए वन में ऐसा क्लेश पा रहा है १७ और यह सहदेव जिसने संपूर्ण दक्षिण दिशा और सिन्धुकूल देश के राजाओं को अकेले विजय किया था, वह तपस्वियों का सा वेष धारण किये हुए है १८ और यह नकुल जिसने एक रथ से सब पश्चिम दिशा को जीता था, जटा रखाये हुए मलीन अङ्ग वन में मूल और फल खातेहुए घूम रहा है १९ हाय ! यह द्रौपदी जो अतिरथी राजा द्रुपद के यज्ञ में वेदी से उत्पन्न हुई है और सुख भोगने के योग्य है इस दुःखरूपी वनवास को कैसे सह रही है २० न जाने क्या बात है जो ये पाण्डव धर्मराज, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों के पुत्र होकर इस प्रकार से वनवास का दुःख भोग रहे हैं ? २१ और यह भी नहीं जान पड़ता है कि युधिष्ठिर के जुये में स्त्री, भाई, नौकर और धन को हारने और दुर्योधन के उन सबको छल से जीतने पर यह पृथ्वी पर्वतों सहित क्यों नहीं दुःखी हुई ॥ २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

एकसौ बीसवाँ अध्याय ।

सात्यकी का अनेक प्रकार से दुर्योधन को जीतने का उपाय कहना, यादवों का पाण्डवों से विदा होना और पाण्डवों का पयोष्णी नदी पर वास करना ।

जब बलरामजी उक्त प्रकार से कह चुके, तब सात्यकी बोला कि हे राम ! यह समय विलाप करने का नहीं है, किंतु इस समय जो करना उचित है, वह

करना चाहिये; यद्यपि युधिष्ठिर ने कुछ कहा नहीं है १ संसार में जिस मनुष्य के सहायक होते हैं, वह आप कुछ नहीं करता है; किंतु उसके सहायक ही सब काम करतेहैं, जैसे शैव्य आदिकों ने राजा ययाति की सहायता की थी २ और जिस पुरुष के काम को सहायक अपनी मति से करते हैं, वह ही संसार में सनाथ और वीर गिना जाता है और उसको दुःख भी कभीनहीं होता है ३ जब पाण्डवों की सहायता के लिये त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण, बलदेवजी, प्रद्युम्न, साम्ब और मैं विद्यमान हूं फिर इनके वन में बसकर दुःख उठाने का क्या कारण है ४ इस से अब उचित है कि हम सब दशार्हदेश की सेना नाना प्रकार के शस्त्र और कवचों को ले लेकर चलें और दुर्योधन को भाइयों सहित मारकर यमलोक में पहुँचा दें ५ श्रीकृष्णचन्द्र चाहे यहीं रहें आप ही अपने क्रोध से इस पृथ्वी को लपेट सकते हैं और दुर्योधन को सहायकों सहित इस प्रकार से मार सकते हैं, जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था ६ हे बलरामजी ! अर्जुन मेरे भाई सखा और गुरु हैं और श्रीकृष्णजी उनको आत्मा की समान जानते हैं, सो मनुष्य जिस काम के लिये शिष्य और पुत्र चाहा करते हैं वह काम मुझको अवश्य करना उचित है, मैं दुर्योधन की अस्त्र की वर्षा को अपने अस्त्रों से निष्फल करके उस का निरादर करूंगा और अपने विष और अग्नि की तुल्य बाणों को छोड़कर उसके शिर को काट डालूँगा और अपने तीक्ष्ण खड्ग से उसके शिर को मथकर उसके सब अनुचरों को मारूंगा हे रोहिणीनन्दन ! मैं अकेला युद्ध में इन कौरवों को, जो भयानक कर्म करनेवाले और युद्ध में दुर्मद हैं, इस प्रकार से मारकर नाश कर सकता हूं जैसे तृणों के वन को अग्नि जलाकर भस्म कर देती है और प्रद्युम्न के छोड़े हुए बाणों को कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, विकर्ण और कर्ण नहीं सह सकते हैं ७ । ११ मुझको अभिमन्यु का पराक्रम विदित है, वह रण में प्रद्युम्न की समान युद्ध करता है और साम्ब अपनी भुजाओं से दुश्शासन को रथ और सारथी सहित मारकर दण्ड दे सकते हैं १२ इनके सिवाय रण में जाम्बवती के पुत्र के सम्मुख, जिसने बाल्यावस्था ही में शम्बर दैत्य की सेना नाश की थी, कोई नहीं ठहर सकता है १३ जिस गोलजंघा और मोटी लम्बी भुजा रखनेवाले साम्ब ने अश्वचक्र को युद्ध में मारा था, उस महारथी के सम्मुख कोई रथ ले जाकर युद्ध नहीं कर सकता है १४ और युद्ध करनेवाला इस प्रकार से जीता नहीं बच सकता है, जैसे मृत्यु से नहीं बचता १५ इनके

सिवाय श्रीकृष्णजी, द्रोणाचार्य और भीष्म आदि महारथियों को और पुत्रों सहित सोमदत्त को अपने अग्निरूपी बाणों से भस्म कर डालेंगे १६ देवताओं सहित सब लोकों में ऐसा कोई नहीं है, जो श्रीकृष्णजी के हथियार लेनेपर उन के सम्मुख युद्ध कर सके १७ और अनिरुद्ध ढाल तलवार लेकर धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर रुण्ड, मुण्डों से पृथ्वी को इसप्रकार से पाटि देंगे जैसे यज्ञ में वेदी के ऊपर कुश बिछा दिये जाते हैं १८ और गद, उल्मुक, बाहुक, भानुनीथ, निशठ, सारण और चारुदेष्ण भी अपने कुलके धर्मपर चलकर अपना अपना पराक्रम प्रकट करेंगे और वृष्णि, भोज और अन्धकवंशी सब मुख्य मुख्य योद्धा उन धृतराष्ट्र के पुत्रों को रण में मारकर यश पावेंगे १९। २० इसके उपरान्त जबतक युधिष्ठिर अपने जुये में की हुई प्रतिज्ञा को पूरी न कर लें, तब तक अभिमन्यु राज्यशासन करेगा और प्रतिज्ञा पूरी होनेपर कर्ण और धृतराष्ट्र के पुत्रों के हमारे हाथ से मारे जाने पर युधिष्ठिर पृथ्वी के भोगोंको भोगेंगे; इस उत्तम काम के करने पर हमारा बड़ा यशहोगा २१।२२ यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले हे सात्यकि! तैंने सब बातें सत्य कही हैं, मैं भी उनको अङ्गीकार करता हूं, परन्तु युधिष्ठिर अपनी भुजाओं से विना जीती पृथ्वी को कभी ग्रहण नहीं करेंगे २३ और ये पांचों भाई और द्रौपदी किसी अवस्था में भी काम, भय और लोभ के वश में होकर धर्म को नहीं छोड़ेंगे २४ अरे भाई! ये दोनों भीमसेन और अर्जुन इस पृथ्वी पर अप्रतिम योद्धा हैं अर्थात् इनकी समान दूसरा नहीं है और इसपर भी नकुल और सहदेव के साथ होने पर युधिष्ठिर क्योंकर राज्य न भोगेंगे २५ और इनके सिवाय कैकय, द्रुपद, राजा चन्देरी और हम सब मिलकर युद्ध में शत्रुओं का नाश कर डालेंगे २६ इसके पीछे युधिष्ठिर बोला कि हे सात्यकि! तुमने जो कहा है सो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, परंतु मुझको राज्य से धर्म की रक्षा करना अधिक उचित है, मेरा हाल केवल श्रीकृष्णजी ठीक ठीक जानते हैं और मैं भी श्रीकृष्णजी को यथावत् जानता हूं २७ जब पराक्रम दिखाने का समय आवेगा तब श्रीकृष्णजी को मालूम होगा, उस समय हे सात्यकि! तुम और श्रीकृष्णजी दोनों युद्ध में दुर्योधन का नाश करना २८ अब आप सब लोग जाइये! आप सब नरलोक के नाथों के भी नाथ हैं, बड़ी कृपा की जो मुझे आप लोगों ने अपने दर्शन दिये; आप सब धर्म में सावधान रहना, मैं फिर लौटकर आप लोगों के दर्शन

करूंगा २९ इसके पीछे सब यादव और पाण्डव एक दूसरे से यथायोग्य मिल कर और प्रणाम और आशीर्वाद करके बिदा हुए यादव अपने२गृहों को चले गये और पाण्डव तीर्थों की ओर चल दिये ३० और लोमशऋषि अन्य सब साथियों सहित उस पयोष्णी नदी के तट पर पहुँचे, जो धर्म की बढ़ानेवाली है, वहां उस नदी का जल जिसके पीने का माहात्म्य यज्ञ में सोमपान करने के समान है पीकर वास किया ॥ ३१ । ३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

एकसौ इक्कीसवाँ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर का पयोष्णी नर्मदा नदी और वैडूर्यपर्वत की यात्रा करना और लोमशऋषिका उन तीर्थों का माहात्म्य और उनमें यज्ञ होने की कथा वर्णन करना।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! ऐसा सुना जाता है कि इस स्थान पर राजा नृग ने यज्ञ किया था और उस यज्ञ में इन्द्र सोमपान करके तृप्त और प्रसन्न हुआ था १ और इन्द्र ने भी देवता और ब्रह्माजी सहित यज्ञ किया था, उस यज्ञ में बड़ी दक्षिणा खर्च हुई थी २ और यहीं राजा गय ने सात अश्वमेधयज्ञ करके सोम से वज्रधारी इन्द्र को तृप्त किया था ३ इन सातों यज्ञों में काष्ठ और मिट्टी के पात्र आदि जो कुछ यज्ञ की सामग्री हुआ करती है, सुवर्णमय थी अर्थात् चषाल, यज्ञस्तम्भ, चमस अर्थात् सोमपीने के पात्र, स्थालीपात्र अर्थात् वे पात्र जिनमें हवि रक्खी जाती है, स्रुच अर्थात् हवि देने के पात्र और स्रुव अर्थात् होम करने का पात्र ये सब सुवर्ण के थे और सातों यज्ञों के प्रयोगों में ये पात्र अलग अलग बनवाये गये थे ४ । ५ सुनहरी यज्ञस्तम्भों के ऊपर चषाल रक्खे गये थे, उनको इन्द्रादिक देवताओं ने आप उठाया था, उन सातों यज्ञों में इन्द्र सोमपानकरके और ब्राह्मण असंख्य दक्षिणापाकर मतवाले होगयेथे ६।८ और जो द्रव्य राजा गय ने सदस्यों को यज्ञ में दिया था, उसकी गिनती इस प्रकार से नहीं हो सकती है, जैसे बालू के कण, आकाश के तारागण और मेघ की बूंदें गिनने में नहीं आ सकती हैं ९ । १० हां, जो द्रव्य दिया जाता है, उस की निस्संदेह संख्या होती है, परन्तु उस राजा ने ऐसा ही द्रव्य सबको दिया था कि उसकी गिनती नहीं हो सक्ती है ११ उस यज्ञ में जो ब्राह्मण अनेक दिशाओं से आये थे, उनको उस राजा ने विश्वकर्मा की बनाई हुई सुवर्ण की गाय दे देकर तृप्त किया था १२ हे राजा युधिष्ठिर! राजा गय के यज्ञस्थानोंकी सीवां के वृक्ष इतने लगाये गये थे कि ऐसी पृथ्वी बहुत कम रह गई थी, जहां यज्ञ

नहीं किया गया था १३ इस कर्म के करने से राजा गय को इन्द्रसम्बन्धी लोक मिले थे, जो मनुष्य इस पयोष्णी में स्नान और आचमन करेगा, उसको भी वे ही लोक मिलेंगे १४ सो हे युधिष्ठिर! तुम भी यहां भाइयों सहित स्नान करके सब पापों से छूट जाओगे १५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित उस पयोष्णी नदी में स्नान करके महानदी नर्मदा और वैडूर्य पर्वत की ओर चल दिया और वहां पर जो जो तीर्थ और पुण्यस्थान लोमशऋषि ने वर्णन किये थे; युधिष्ठिर ने भाइयों सहित प्रीतिपूर्वक उन सबकी यात्रा की और सब स्थानों पर ब्राह्मणों को दान दिया १६। १८ उस समय लोमशऋषि ने कहा कि हे कौन्तेय! जो मनुष्य वैडूर्य पर्वत के दर्शन और नर्मदा में स्नान करता है उसको वे लोक मिलते हैं, जिनमें देवता और राजालोग रहते हैं १९ यह समय त्रेता और द्वापर की संधि का है इस समय में यहां आने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं २० हे तात! यह देश शर्याति के यज्ञ का है यहां इन्द्र ने अश्विनीकुमारोंसहित अमृत पिया था २१ और सर्वकर्मसमर्थ महातपस्वी च्यवनऋषि ने इन्द्रपर क्रोधकरके उसको जड़कीतरह स्तम्भित करदिया था और यहीं च्यवनऋषिको सुकन्यानाम राजपुत्री भार्या प्राप्त हुई थी २२ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज! च्यवनऋषि ने किस लिये क्रोध किया था और इन्द्र को कैसे स्तम्भित किया था और अश्विनीकुमारों ने अमृत किस प्रकार से पिया था? आप यह सब कथा विस्तारपूर्वक सुनाइये ॥ २३।२४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकविंशत्याधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

एकसौ बाईसवाँ अध्याय।

लोमशऋषि का युधिष्ठिर से च्यवनऋषि को सुकन्याभार्या मिलने का वृत्तान्त कहना।

लोमशऋषि बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! महाप्रकाशवान् च्यवनऋषि महर्षि भृगु के पुत्र थे, इस सरोवर पर उन्होंने बहुत दिनों तक वीर आसन से जड़की तुल्य बैठकर तपस्या की थी और बहुत काल बीत जाने के कारणसे उनके शरीर पर दीमक ने बल्मीक बना लिया था और उस बल्मीक पर लता उगि आई थीं और चीटियां रेंगती थीं १।३ निदान उन ऋषि का शरीर मृत्तिका के पिण्डकी समान हो गया था और वे ऋषि उसी अवस्था में घोर तप किया किये ४ हे भरतसत्तम! बहुत दिनों के पीछे एक समय इस उत्तम, रमणीय सरोवर पर राजा शर्याति विहार करने को गया था, उसके साथ चार सहस्र स्त्रियां और एक सुकन्या

नाम पुत्री थी ५ । ६ दैवयोग से वह पुत्री अपनी सखियों के साथ घूमती हुई च्यवनऋषि की बल्मीक के निकट जा पहुँची ७ और वहां वह पृथ्वी को देख देखकर अनेकप्रकार की वनस्पतियों के फूल चुन चुनकर विहार करने लगी ८ और अपने स्वरूप की सुन्दरता और किशोर अवस्था के मद और कामदेव के नवीन होने के कारण से उस वन की सुन्दर सुन्दर फूली हुई वन्यवृक्षों की शाखाओं को तोड़ने लगी ९ दैवयोग से वह विहार करती हुई सखियों से बिछुड़कर अकेली रह गई, उस समय उसके ऊपर जो बिजली के समान एक वस्त्र पहिरे हुए इधर उधर घूम रही थी; च्यवन ऋषि की दृष्टि पड़गई १० और उसे उस निर्जन वन में देखकर प्रसन्न होकर बुलाया, परन्तु उस राजकन्या ने उनकी बात नहीं सुनी और आश्चर्य से इधर उधर देखने लगी और उस च्यवनऋषि की बल्मीक के समीप जा पहुँची उस बल्मीक में वह कन्या उन ऋषि के नेत्रों को देखकर विचार करने लगी कि यह क्या चमक रहा है और कौतूहल से उसने उन ऋषि के दोनों नेत्रों में कांटे छेद दिये ११ । १२ तब च्यवनऋषि ने महा क्रोधकरके राजा शर्याति की सेना के मनुष्यों का मूत्र और विष्ठा बन्द कर दिया। १४ उससे वह राजा और उसकी सेना महादुःखी हुई; उस समय राजा ने पूछा १५ कि यहां महात्मा भार्गवजी, जो वृद्ध हैं, तपस्या बहुत दिनों से करते हैं, ऐसा जान पड़ता है कि किसी ने जान में या अनजान में उनका कुछ अपराध किया है सो जिसने अपराध किया हो, मुझसे शीघ्र कह दो ! यह सुनकर सब सेना के मनुष्यों ने कहा कि महाराज ! हम लोगों ने कोई किसी प्रकार का अपकार नहीं किया है, आप जैसे चाहें तैसे इस बात को निश्चय कर लीजिये, तब राजा ने साम और उग्र वचन कह कह कर अपने सुहृदों से पूछा, परंतु उन्होंने भी यही उत्तर दिया कि हम लोगों ने कोई अपकार नहीं किया है; इसके पीछे सुकन्या अपने पिता और सेना के मनुष्यों को मल के रुक जाने से दुःखी देखकर कहने लगी कि मैं आज घूमती हुई एक बल्मीक के पास जा निकली थी, उसमें मैंने खद्योत के समान चमकते हुए जीव देखे थे, उनको मैंने अलबत्ता खद्योत जानकर कांटे से छेद डाला था; यह सुनकर राजा शर्याति तुरन्त उस बल्मीक के पास गया १६ । २१ और उसमें उन तपस्वी वृद्ध भार्गव च्यवनऋषि को देखकर हाथ जोड़कर अपनी सेना का दुःख दूर करने के लिये विनय करने लगा २२ कि महाराज !

बालक ने अपने अज्ञान से जो आपका अपकार किया है, उसको क्षमा कीजिये; यह सुनकर भार्गवजी बोले कि तेरी कन्या ने अहंकार के कारण से मेरा यह अपमान किया है कि आंखें छेद डाली हैं; हे महीपाल ! अब मैं उस तेरी पुत्री को लेकर निस्संदेह तेरे अपराध को क्षमा करूंगा २३ । २५ लोमशजी बोले हे युधिष्ठिर ! राजा ने उक्त बात को सुनकर विना विचारे वह कन्या महात्मा च्यवनऋषि को दे दी २६ च्यवनऋषि उसको लेकर बहुत प्रसन्न हुए और राजा शर्याति भी अपने मनोरथ को पाकर अपनी सेनासहित अपने नगर को लौट गया २७ और वह सुकन्या उन तपस्वी को पति पाकर उनकी सेवा नियम और प्रीति के साथ करने लगी २८ हे युधिष्ठिर ! वह कन्या शुभमुखी अतिथि और अग्नि की सेवा करनेवाली और दूसरों के गुणों में दोष न लगानेवाली थी, उसने अपनी सेवा से च्यवनऋषि को प्रसन्न किया ॥ २९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

एकसौतेइसवां अध्याय ।

अश्विनीकुमार देवताओं का सुकन्या से समझाकर यह कहना कि तू च्यवनऋषि को छोड़कर हमको अपना पति कर ले. सुकन्याका निषेध करना फिर अश्विनीकुमारों का च्यवनजी को युवा कर देना और च्यवनजी का उनसे यज्ञ में उनका अमृत पिलाने का नियम करना ॥

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! थोड़े दिनों के पीछे एक दिन अश्विनीकुमार देवताओं ने उस सुकन्या को नंगी स्नान करते हुए देखा १ वे दोनों उसके देवराज की कन्या के तुल्य सुन्दर स्वरूप को देखकर उसके पास चले गये और पूछने लगे कि वामोरु ! तुम किसकी बेटी हो और इस वन में अकेली क्या कर रही हो ? हम तुम्हारा वृत्तान्त जानना चाहते हैं, जो कुछ बात हो ठीक ठीक कहो २ । ३ यह सुनकर सुकन्या ने लज्जित होकर कहा कि मैं राजा शर्याति की पुत्री और च्यवनऋषि की भार्या हूं ४ यह सुनकर वे दोनों अश्विनीकुमार देवता हँसकर कहने लगे कि तुमसी सुन्दरी को तुम्हारे पिता ने इस वृद्धऋषि को क्योंकर दे दिया ? इस वन में तुम बिजली के समान प्रकाश कर रही हो, तुम्हारी सुन्दरता को देवताओं की कन्या भी नहीं पाती हैं और यद्यपि तुम वस्त्रों से हीन और आभूषणों से रहित हो, परंतु हे कल्याणि ! तुम्हारे स्वरूप की शोभा ऐसी है कि उससे यह वन अधिक सुशोभित हो रहा है ५ । ७ तुम्हारा स्वरूप इस प्रकार से मैले कुचैले वस्त्रों को पहिरने के योग्य नहीं है, जब तुम अच्छे अच्छे

वस्त्र और सुन्दर सुन्दर गहने धारण करोगी तब तुम्हारा स्वरूप और ही दिव्य हो जायगा ८ तुम ऐसे बूढ़े और कामभोग से रहित पति की सेवा क्यों करती हो जो तुम्हारी रक्षा और तुम्हारा पोषण नहीं कर सकता है, तुम्हारा यह स्वरूप इस योग्य नहीं है, इससे तुम इस वृद्ध च्यवनऋषि को छोड़कर हम दोनों में जिसको चाहो अपना पति बना लो और अपनी देवकन्याओं की तुल्य आभा समेत अपने यौवन को वृथा मत गँवाओ, यह सुनकर सुकन्या बोली ६। ११ कि मुझको अपने पति च्यवनऋषि से परमप्रीति है, तुम मेरे पतिव्रत में किसी प्रकार की शङ्का मत करो; तब अश्विनीकुमार बोले कि हम दोनों देवताओं में श्रेष्ठ वैद्य हैं १२ हम तुम्हारे पति को युवा और स्वरूपवान् कर देंगे, उस समय तुम हम तीनों में से जिसको चाहो अपना पति कर लेना १३ अब तुम जाओ और अपने पति से पूछि आवो, यह सुनकर सुकन्या च्यवनजी के पास गई और उनसे अश्विनीकुमार देवताओंकी बात कह सुनाई, उसको सुनकर च्यवनजी ने कहा कि यह अवश्य करना चाहिये १४। १५ सुकन्या यह सुनकर अश्विनीकुमार देवताओं के पास गई और बोली कि मेरा पति आपकी बात को अङ्गीकार करता है, आप उसको युवा और स्वरूपवान् कर दीजिये; यह सुनकर अश्विनीकुमारों ने कहा कि तुम अपने पति से कह दो कि वह इस सरोवर के जलमें घुस जाय यह सुनकर सुकन्या ने च्यवनजी से वह वृत्तान्त कहा और च्यवनजी सुन्दर स्वरूप पाने की इच्छा से उस सरोवर के जल में घुस गये १६ हे राजन्! इसके पीछे दोनों अश्विनीकुमार भी उस सरोवर में प्रवेश कर गये और एक मुहूर्त्त के पीछे तीनों जने युवा होकर तुल्यवेष, दिव्यस्वरूप और उजले उजले कुण्डल धारण किये हुए उस सरोवर के बाहर निकल आये १७। १८ और एक साथ सुकन्या से कहने लगे कि हे शोभने! हम तीनों में से जिसको चाहे अपना पति कर ले १६ यह सुनकर सुकन्या ने अपने मन और बुद्धि से निश्चय करके उन तीनों तुल्य रूप रखनेवालों में से च्यवनजी को ही पति बरा उस समय महातेजस्वी च्यवन ऋषि सुन्दर स्त्री, युवा अवस्था और सुन्दरस्वरूप को पाकर बहुत प्रसन्न हुए और अश्विनीकुमारों से कहा कि जिस प्रकार से मैंने आपकी कृपा से युवावस्था, सुन्दर स्त्री और सुन्दरस्वरूप पाये हैं उसी प्रकार से मैं तुम दोनों को, यज्ञ में इन्द्र के देखते हुए, अमृत पीनेका भागी करूंगा २०। २३ यह सुन कर दोनों अश्विनीकुमार प्रसन्न होकर स्वर्ग को

चले गये और च्यवनजी और सुकन्या देवताओं की तुल्य विहार करने लगे ॥ २४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

एकसौ चौबीसवाँ अध्याय।

च्यवनऋषिका राजा शर्याति को यज्ञ कराना, उसमें अश्विनीकुमारों को अमृत पीने को देना, इन्द्र का निषेध करना और च्यवनऋषि को मारने के लिये वज्र उठाना, च्यवनजी का इन्द्र की भुजा को स्तम्भित कर देना और इन्द्र को मारने के लिये कृत्या को प्रकट करना।

लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे राजा शर्याति च्यवनऋषि के युवा हो जाने का वृत्तान्त सुनकर वहां आया और च्यवनजी को देवकुमारों के समान स्वरूपवान् और अपनी पुत्री सुकन्याको देखकर अपनी रानी सहित ऐसा प्रसन्न हुआ मानो सब पृथ्वी का राज्य मिल गयाहै १।२ च्यवनऋषि ने राजा का सत्कार करके सब वृत्तान्त कह सुनाया और राजा से कहा कि आप यज्ञकी सामग्री इकट्ठी कीजिये हम आपको यज्ञ करावेंगे ३।४ यह सुनकर राजा शर्याति बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सुन्दर मुहूर्त में यज्ञशाला बनवाकर सब यज्ञकी सामग्री इकट्ठी की, इसके पीछे सुन्दर दिन पाकर च्यवनऋषि ने राजा को यज्ञ कराया, उस यज्ञ में च्यवनजी अपने नियमानुसार एक पात्र में अमृत भरकर अश्विनीकुमार देवताओं को पीने के लिये देने लगे, उस समय इन्द्र ने उनको रोका और कहा कि ये दोनों देवताओं के वैद्य हैं, यज्ञ में सोमपान करने के योग्य नहीं हैं ५।६ यह सुनकर च्यवनऋषि बोले कि ये दोनों अश्विनीकुमार स्वरूपरूपी धन रखनेवाले हैं, इन्होंने मुझे जरारहित कर दिया है, तुम्हारे और देवताओं के सिवाय क्योंकर ये अमृत पीने के योग्य नहीं हैं? हे इन्द्र! तुम इनको भी देवता ही जानो १०।११ यह सुनकर इन्द्र बोला कि ये दोनों चिकित्सा करनेवाले हैं और इच्छा के अनुसार रूप रखकर मनुष्यलोक में घूमा करते हैं, इससे ये अमृत पीने के योग्य नहीं हैं १२ लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इन्द्र ने बारम्बार इसी प्रकार से कहा परंतु च्यवनऋषिने उसकी बात को न सुनकर, अमृत का पात्र उठा लिया। उस समय इन्द्रने च्यवनजी को अमृत का पात्र अश्विनीकुमारों के देने के लिये इच्छावान् देखकर कहा १३।१४ कि जो तुम इन दोनों को अमृत पीने को दोगे तो मैं तुम्हारे वज्र मारूंगा १५ यह सुनकर च्यवन जी ने इन्द्र की ओर देखा और मन्द मन्द मुसुकुराकर अश्विनीकुमारों को देने के लिये अमृत का पात्र विधिपूर्वक उठा लिया १६ उसको

देखकर इन्द्र ने अपने हाथ में वज्र लेकर मारने की इच्छा से भुजा उठाई, परंतु च्यवनजी ने अपने तपोबल से इन्द्र की भुजा स्तम्भित कर दी १७ और उसको और देवताओं को मारने की इच्छा से, उन्होंने कृत्या को प्रकट करने के लिये अग्नि में आहुति डाली १८ आहुति के देते ही च्यवनऋषि के तपोबल से कृत्या जो बड़ा पराक्रमी और बड़ा शरीर रखनेवाला मदनामी दैत्य था, प्रकट हो गया १९ उसका शरीर ऐसा था कि देवता और असुर उसकी ओर नहीं देख सकते थे, मुख उसका महाभयंकर और दांत बड़े पैने थे २० जब वह मुख फाड़ता था तब उसका एक ओंठ पृथ्वी पर रहता था और एक आकाश में जा लगता था, उसके मुख में चार डाढ़ें सौ सौ योजन लम्बी और नीचे ऊपर के दांत पहाड़ों की चोटियों के समान दश दश योजन लम्बे और त्रिशूल की नोक के सदृश पैने थे २१ । २२ भुजा दोनों उसकी पहाड़ों के समान दश दश सहस्र योजन लम्बी दोनों नेत्र सूर्य और चन्द्रमा के सदृश और मुख काल अग्नि के अनुरूप था २३ जीभ उस दैत्य की बिजली के समान चञ्चल थी उससे वह अपने मुख को चाटता हुआ और घोर दृष्टि से देखता हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो अपने बल से सब जगत् को निगल जायगा २४ वह दैत्य क्रोधित होकर महाघोर नाद करके मुख खोले हुए भक्षण करने की इच्छा से इन्द्र के सम्मुख गया ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

एकसौ पच्चीसवाँ अध्याय ।

इन्द्र का च्यवनऋषि से अपराध क्षमा कराना, च्यवनऋषि का इन्द्र के भय को दूर करना और यज्ञ समाप्त करके वन को चला आना और लोमशऋषि का युधिष्ठिर से वहां के तीर्थों का माहात्म्य वर्णन करना ।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! देवताओं का राजा इन्द्र उस मृत्यु के तुल्य दैत्य को मुख खोले हुए भक्षण करने की इच्छा से अपनी ओर आते हुए और अपनी भुजा को स्तम्भित देखकर, अपने ओठों को बारम्बार चाटने लगा और भय से लज्जित होकर च्यवनऋषि से कहने लगा १ । २ कि हे भार्गवजी ! अब से ये अश्विनीकुमार भी यज्ञ में अमृत पान करने को पाया करेंगे हे विप्र जी ! मैं सत्य सत्य कहता हूं, आप मुझ पर प्रसन्न हूजिये, मैं जानता हूं कि आपका किया हुआ काम मिथ्या नहीं है और न आप अपने काम को मिथ्या करेंगे, जिस प्रकार से आप इन अश्विनीकुमारोंको अमृत पीने के योग्य किया

चाहते हैं, मुझे भी उसमें कुछ शङ्का नहीं है; हमने यह बात केवल आपके तपोबल को प्रकाश और इस सुकन्या के पिता की कीर्ति को लोक में विख्यात करने के लिये की थी; इससे अब आप मुझ पर कृपा कीजिये, आप जैसा चाहते हैं वैसा ही होगा, यह सुनकर च्यवनऋषि का क्रोध दूर हो गया और उन्होंने इन्द्र को उस भय से छुटाकर उस उत्पन्न कियेहुए मददैत्य के चार विभाग किये उनमें से एक भाग च्यवनऋषि ने मदिरा पीने में, दूसरा स्त्रियों में, तीसरा जुआ खेलने में और चौथा मृगया अर्थात् शिकार खेलने में स्थापित करदिया और अमृत से इन्द्र और देवता और अश्विनीकुमारों को तृप्त करके और उस राजा का यज्ञ समाप्त करा के और अपने पराक्रम को तीनों लोकों में प्रकट करके उस आज्ञाकारी सुकन्या सहित च्यवनजी वन में विहार करने के लिये चले आये, सो हे युधिष्ठिर! यह सरोवर, जिसपर ब्राह्मण बोल रहे हैं, उन्हीं च्यवनऋषि का है ३।११ तुम अपने भाइयोंसाहित इनमें स्नानकरके देवता और पितरोंका तर्पण करो; फिर सिकताक्ष और सिन्धु के वन को चलकर कुल्याओं का दर्शन करना और सब पुष्करों में स्नान आचमन करना १२।१३ अब त्रेता और द्वापर की संधि है, इस समय में शिवजी के मन्त्र का जप करने से तुमको सिद्धि प्राप्त होगी १४ यह तीर्थ सब प्रकार से सब पापों का दूर करनेवाला दीखता है, तुम इसमें स्नान करो १५ और यह जो आर्चीक पर्वत है, इस पर ज्ञानी ऋषि लोग रहते हैं और मरुत देवताओं का इसपर उत्तम स्थान है, इस पर्वतपर फल सदैव लगे रहते हैं और पानी भी सदा बहा करता है १६ हे युधिष्ठिर! ये बहुत प्रकार के जो वृक्ष दिखाई देते हैं, वे देवताओं के यज्ञस्थान की सीमाओं के वृक्ष हैं और यह चन्द्रमा का तीर्थ है, जहां बालखिल्य और वैखानस ऋषि जो वायुभक्षी और अग्नि के समान तेजस्वी हैं, रहते हैं १७ इस पर्वत में तीन पवित्र शिखर और तीन ही झरने हैं, इनकी परिक्रमा करके इच्छानुसार स्नान और आचमन करो १८ हे राजेन्द्र! राजा शंतनु, राजा शुनक और दोनों नर नारायण ने इसी स्थान पर तपस्या करके सनातन लोक प्राप्त किये थे १९ हे युधिष्ठिर! तुम इस आर्चीक पर्वतकी भी पूजा करो, यहां देवता और पितरों ने महर्षियों के साथ तपस्या २० और यज्ञ की हवि भोजनकी थी और यह जो नदी दिखाई देती है, यह यमुना है, जिसका सोता कभी बन्द नहीं होताहै और जहां श्रीकृष्णजी ने तपस्या की थी २१ वहां भी तुम चलना और नकुल सहदेव भीमसेन और द्रौपदी को भी

लेते चलना २२ हे मनुजेश्वर! यह इन्द्र का प्रस्रवण है, जहां से धाता, विधाता और वरुण ऊर्ध्वलोकों को गये थे २३ इस आर्चीक पर्वत पर धर्मात्मा और क्षमावान् पुरुष रहते थे और यह ऐसे ही मनुष्यों के बसने के योग्य है, जिनकी बुद्धि मित्रभाव रखने और क्षमा करनेवाली हो २४ और यह यमुना, जिसके तटपर महर्षि रहते हैं और नानाप्रकार के यज्ञ हुए हैं धर्म की बढ़ानेवाली और पापों के भय को दूर करनेवाली है २५ इसी यमुना के तट पर धनुर्धारी राजा मान्धाता और संजय के पौत्र सोमक ने आप यज्ञ किया था॥ २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२५॥

एकसौ छब्बीसवाँ अध्याय।

लोमश ऋषि का राजा युधिष्ठिर से राजा मान्धाता का जन्म और यज्ञ करने का वृत्तान्त कहना।

उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने लोमश ऋषि से पूछा कि हे महाराज! युवनाश्व का पुत्र मान्धाता जो राजाओं में मुख्य और तीनोंलोकों में विख्यात है कैसे उत्पन्न हुआ था और उसने स्वर्ग में ऐसा श्रेष्ठ स्थान जैसा सुनने में आता है क्योंकर पाया था और विष्णु भगवान् के सदृश तीनोंलोक क्योंकर उसके वश में होगये थे? हे महाराज! यह सब कथा मुझको विस्तारपूर्वक सुनाइये और यह भी कहिये कि उस इन्द्र के सदृश तेजस्वी राजा का नाम मान्धाता क्योंकर हुआ था १। ३ यह सुनकर लोमशऋषि बोले कि हे युधिष्ठिर! मैं उस महात्मा राजा का मान्धाता नाम विख्यात होने की कथा वर्णन करता हूं, तुम सावधान होकर सुनो ४ इक्ष्वाकु के वंश में एक युवनाश्व नाम राजा हुआ था, उसने बड़े बड़े यज्ञ किये; पहिले तो उसने सहस्र अश्वमेध यज्ञ किये थे, फिर और और बड़े यज्ञ, जिनमें बहुत सी दक्षिणा खर्च होती है, किये ५। ६ उस महात्मा, महाव्रतधारी, राजर्षि के कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई, तब वह अपना राज्य मन्त्रियों को सौंपकर वन को चलागया और वहां जितेन्द्रिय और इष्टदेवता में एकाग्रचित्त करके नित्य रहने लगा, एक दिन वह राजा उपवास से दुःखी और प्यास से शुष्कहृदय होकर भार्गवजी के आश्रम में पहुँचा, हे राजेन्द्र! उस रात को महात्मा भार्गवजी ने युवनाश्व के इन्द के तुल्य पुत्र होने को यज्ञ किया था, और उस यज्ञ में एक कलश की स्थापना की थी जिसमें मन्त्रों से पवित्र जल, इस प्रयोजन से भरा गया कि युवनाश्व की स्त्री उसको पीकर इन्द्र के तुल्य पुत्र उत्पन्न करे, भार्गवजी यज्ञ के समाप्त होनेपर रात्रि को जागने के कारण से

उस कलश को वेदी पर रखकर सोगये, उसी समय राजा युवनाश्व भी वहां पहुँचा और प्यास से महादुःखी होकर जल मांगनेलगा ७। १३ परन्तु सब लोग उस आश्रम में ऐसे निद्रित होरहे थे कि उस शुष्ककण्ठ और पक्षी के समान बोलते हुए राजा का शब्द किसी ने नहीं सुना १४ उस समय वह राजा उस जल भरे हुए कलश को देखकर वहां शीघ्रता से चला गया और कलश को उठाकर सब पानी उसमें का पीकर रीता कलश वहीं धर दिया १५ और जल पीकर तप के फल को पाकर बहुत सुखी हुआ १६ इसके पीछे उस आश्रम में रहनेवाले सब तपस्वी ऋषि जागे और उस कलश को रीता देखकर एक दूसरे से पूछने लगे कि इसका जल किसने पिया है? उस समय युवनाश्व ने जो कुछ व्यवस्था थी, सत्य सत्य कहसुनाई, उसको सुनकर भार्गवजी बोले कि हे राजन्! तैंने यह अनुचित बात की; यह तप के जल से भरा हुआ घट तेरी स्त्री के पुत्र होने के लिये रक्खा हुआ था १७। १९ और मैंने बड़ा कठिन तप करके इस में ब्रह्मतेज स्थापन कर दिया था २० जिससे ऐसा पुत्र उत्पन्न होवे, जो महापराक्रमी तपोबल रखनेवाला और अपने बल से इन्द्र को भी यमलोक में पहुँचानेवाला हो, सो तुमने इसको पीकर अच्छी बात नहीं की २१। २२ अब हम इसके फल को अन्यथा नहीं कर सकते हैं, निश्चय दैव की ऐसी ही इच्छा थी, मेरे तपोबल और मन्त्रविधि से सिद्ध किये हुए जल को जो तुमने प्यासे होने के कारण से पी लिया है, उससे तुम्हारे उदर से एक पुत्र निस्सन्देह उत्पन्न होगा; इस अवस्था में हम तुमको तुम्हारी इच्छा के अनुसार वरदान देते हैं कि तुम्हारे इन्द्र के समान पुत्र तो उत्पन्न होगा परंतु तुमको गर्भधारण करने का दुःख नहीं होगा २३। २६ इसके पीछे जब सौ वर्ष बीतगये तब उस महात्मा राजा के बाईं पार्श्व को फाड़कर सूर्य के तुल्य महातेजस्वी पुत्र बाहर निकला, परंतु राजा युवनाश्व मरा नहीं, उसको देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ २७। २८ उस तेजस्वी पुत्र को देखने की इच्छा से इन्द्र वहां देवताओं सहित आया, उस समय देवताओं ने इन्द्र से पूछा कि यह बालक क्या पान करेगा? तब इन्द्र ने अपनी तर्जनी अंगुली उस बालक के मुख में देकर कहा कि यह मेरी अंगुली पीकर रहेगा, तब इन्द्र सहित देवताओं ने उसका नाम मान्धाता रक्खा २९।३१ हे युधिष्ठिर! वह बालक इन्द्र की अंगुली पीते ही दशहाथ लंबा होगया ३२ और सब वेद, धनुर्वेद और दिव्य अस्त्र उसको अभ्यासमात्र

ही करने से मिलगये और अजगवनामी धनुष और स्वर्ग में उत्पन्न बाण और अभेद्यकवच शीघ्र उसको प्राप्त होगये ३३ । ३४ हे भरतवंशिन्! तब इन्द्र ने उसका राज्याभिषेक किया और उसने अपने धर्म से सब लोक इस प्रकार से जीत लिये, जैसे विष्णु भगवान् ने तीनों लोकों को तीन डग में जीतलिया था ३५ उसकी आज्ञा का पालन विना रोकटोक होनेलगा, सब रत्न भी उसके पास अपने आप आकर इकट्ठे हो गये ३६ सो हे युधिष्ठिर! यह धन से भरी हुई पृथ्वी उसी राजा की है, उसने पूर्ण दक्षिणा खर्च होनेवाले अनेक प्रकार के यज्ञ किये थे ३७ उस तेजस्वी और यज्ञस्थानों की सीमा पर वृक्ष लगाने वाले राजा ने अपने श्रेष्ठ धर्म के कारण से इन्द्र का अर्ध आसन पाया था ३८ और रत्नाकर सहित सब पृथ्वी को केवल शासन ही से एक दिन में विजय किया था ३९ हे महाराज! उसके यज्ञस्थानों की सीमा के वृक्षों से यह पृथ्वी चारों समुद्रतक व्याप्त हो गई थी और उसने ब्राह्मणों को दशसहस्र पद्म गोदान दिये थे और ऐसा भी हमने सुना है कि उस राजा ने बारहवर्ष के अकाल में जब कि वर्षा नहीं हुई थी, खेतों को बढ़ाने के लिये इन्द्र के देखते हुए जल वर्षाया था और सोमकुल के राजा कन्धार को जो मेघ के तुल्य गर्जता था बाणों से मारडाला था, उस राजा ने चारोंप्रकार की प्रजा की रक्षा धर्म से की थी ४० । ४३ और तपस्या भी ऐसी की थी कि उसके तेज से सब लोक तपने लगे थे, सो हे युधिष्ठिर! इस कुरुक्षेत्र देश में यह देवयजननामी उसी सूर्य सम तेजधारी राजा का स्थान है, उसके जन्म की संपूर्ण कथा, जो तुमने हमसे पूछी थी, कह सुनाई ४४ । ४६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने महर्षि लोमशजी से राजा सोमक का वृत्तान्त सुनने की इच्छा से पूछा ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

एकसौ सत्ताईसवाँ अध्याय।

लोमशऋषि का राजा युधिष्ठिर से राजा सोमक का वृत्तान्त और उसके जन्तुनामी पुत्र उत्पन्न होने का हाल कहना।

राजा युधिष्ठिर बोले हे लोमशजी! मैं इस राजा सोमक के पराक्रम और कामों को भी विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं १ लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर! राजा सोमक नाम बड़ा धार्मिक था और उसके तुल्य गुण रखनेवाली सौ

रानियां थीं २ उसने बहुत दिनोंतक बहुत से यत्न किये, परन्तु किसी रानी से उसके संतान उत्पन्न नहीं हुई ३ जब वह वृद्ध हुआ तब बड़े यत्न से उन सौ रानियों में एक पुत्र जन्तुनामी उत्पन्न हुआ ४ हे मनुजाधिप! उसको वे सब मातायें सब सुख और भोगविलास छोड़कर पालन करनेलगीं, एक दिन एक चींटी किसी ओर से उस बालक के ऊपर चढ़गई और उसने उस बालक के कमर के ऊपर काटखाया; उससे वह बालक बड़े शब्द से रो पड़ा ५। ६ उसके रोने को देखकर उसकी वे सब माता भी एक साथ रोनेलगीं और उनके रोने का बड़ा कोलाहल हुआ ७ राजा उसको सुनकर मन्त्री, सेवक और ऋत्विजों सहित चौंक उठा और एक मनुष्य को भेजकर पुछवाया कि इतना कोलाहल होने का क्या कारण है? उसने आकर राजा के पुत्र के रोने का वृत्तान्त कह सुनाया, राजा उसको सुनकर तुरन्त उठ खड़ा हुआ और मन्त्रियों सहित महलों में जाकर अपने पुत्र को उठाकर हृदय से लगालिया ८। १० जब वह बालक रहगया, तब राजा मन्त्री और ऋत्विजों सहित फिर सभा में आ बैठा ११ और कहनेलगा कि संसार में एक पुत्र का होना धिकार है, इससे तो पुत्र न हो तो अच्छा है, क्योंकि प्राणी को एक पुत्र होने से उसके थोड़े से भी दुःख में बड़ी आतुरता हो जाती है; इससे एक पुत्र होना केवल शोक का मूल है १२ हे ब्राह्मणो! मैंने परीक्षा कर करके अपने सदृश सौ स्त्रियों से अपना विवाह किया, परंतु किसी के संतान नहीं हुई, अब बड़े यत्न से उन सौ में यह एक पुत्र हुआ है, इससे भी अधिक और क्या दुःख होगा १३। १४ हे द्विजोत्तम! इन स्त्रियों के साथ में मेरी अवस्था व्यतीत होचुकी और अब मेरे और स्त्रियों के प्राण केवल इस अकेले पुत्र के आधीन रहगये हैं १५ आपलोग कोई ऐसा छोटा या बड़ा अथवा दुष्कर यत्न जानते हैं, जिससे मेरे सौ पुत्र उत्पन्न होवें १६ यह सुनकर ऋत्विज् बोले हां, महाराज! हमलोग उस कर्म को जानते हैं, परंतु जो आप उसको करसकें, तो हमलोग वर्णन करें १७ यह सुनकर सोमक बोला कि महाराज! उस कर्म को अवश्य कहिये, चाहे वह करने के योग्य हो या न हो मैं जैसे बनेगा करूंगा १८ ऋत्विज् बोले कि, आप अपने जन्तु पुत्र को होमकर यज्ञ कीजिये, हम उस यज्ञ को करावेंगे, उससे आपके सौ पुत्र उत्पन्न होंगे १९ उस लड़के को होमने पर उसके धुयें को सूंघने से आपकी रानियों के सौ पुत्र बड़े पराक्रमी उत्पन्न होंगे २० और जिस स्त्री के

यह जन्तु पुत्र उत्पन्न हुआ है, उसीके वह फिर उत्पन्न होगा और उसके पार्श्व में एक चिह्न सुनहला होगा ॥ २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

एकसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय ।

राजा सोमक का ऋत्विज् के कहने से यज्ञ में अपने पुत्र का हवन करना और धूत्र को सूंघने से रानियों के सौ पुत्र उत्पन्न होना राजा और ऋत्विज् का मरकर नरक भोगना और शुभगति पाना ।

ऋत्विजों की बात को सुनकर सोमक बोला कि महाराज! जो जो बात जिस जिस प्रकार से करने के योग्य हो, उसको कीजिये, मैं पुत्रोंकी इच्छा से आपकी सब बातों को अङ्गीकार करूंगा १ लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे ऋत्विजों ने राजा सोमक को वह यज्ञ कराया, जब उस लड़के को होमने का समय हुआ, तब उसकी वे सब माता कृपायुक्त होकर उस लड़के को खींचने लगीं और महाशोक से रो रोकर हाय मर गई ! हाय मरगई !! ऐसे पुकारती हुई लड़के का दाहिना हाथ पकड़कर खड़ी होगई २ । ३ उससमय ऋत्विज् अर्थात् यज्ञ करानेवाले ने लड़के का बायांहाथ पकड़कर कुररी के समान उन रोती और चिल्लाती पुकारती स्त्रियों के हाथसे खींच लिया और उसे काटकरउसका पूये के आकार मांस ले लेकर होम किया, जब उसका शरीर सब होम गया, तब हे कुरुनन्दन! उसकी सब माता उसकी सुगन्ध को सूंघ कर महादुःखी हुईं और अकस्मात् पृथ्वी पर गिरपड़ीं, इसके पीछे उन सब स्त्रियोंके गर्भ रह गया ४।६ और दशमास बीतने पर उन सौओं स्त्रियों के एक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ७ उन सब पुत्रों में जन्तु पुत्र सबसे बड़ा और उसी रानी के उत्पन्न हुआ, जिसके पहिले हुआथा और सबमाता उसपुत्र को अपने पुत्रों से भी अधिक प्यार करने लगीं, उसके पार्श्व में सुनहला चिह्न भी था और वह उन सबपुत्रों से गुणों में भी अधिक था ८ । ९ इसके अनन्तर आयु के पूरे होने पर वह राजा और उसका वह परमगुरु ऋत्विज् दोनों मर गये १० परलोक में राजाने अपने उस गुरु को घोर नरक में जलते हुए देखकर पूछा कि आप यह नरक किस कारण से भोग रहे हैं ? यह सुनकर उसने राजा से कहा कि यह तुमको यज्ञ कराने का फल है ११ । १२ यह सुनकर राजर्षि ने धर्मराज से कहा कि महाराज! मेरे यज्ञ कराने वाले को नरकसे मुक्तकरदीजिये, इसकेबदले में मैं इस नरक में प्रवेश करूंगा १३ क्योंकि यह मेरे कारण से इस नरक की अग्नि में जल रहा है; यह सुनकर

धर्मराज बोले कि हे राजन्! जो मनुष्य जैसा करता है, उसका फल वही भोगता है, दूसरा मनुष्य उसको नहीं भोगसकता है; तुम्हारे कर्मों के फल ये मौजूद हैं १४ यह सुनकर सोमक बोला कि मैं इस ब्रह्मवादी अपने ऋत्विज् के सिवाय और फल नहीं चाहता हूं और जो मुझको देवलोक मिले तो वहां भी मैं इसको साथ लेकर बसना चाहता हूं १५ अथवा देवलोक न मिले तो मैं भी इसके समान इसी नरक में रहना चाहता हूं, निदान मेरी यह इच्छा है, हम दोनों के पुण्य और पाप का फल दोनों को बराबर मिले १६ यह सुनकर धर्मराज ने कहा कि जो तेरी ऐसी इच्छा है, तो तू इसके साथ नरकभोग, दोनों का समय पूरा हो जाने पर दोनों की सद्गति हो जायगी १७ लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर! राजा सोमक ने वैसाही किया और पापों के क्षीण हो जाने पर अपने गुरु के साथ उस नरक से मुक्त हो गया १८ और गुरु के साथही पुण्य से जीते हुए शुभ और उत्तम लोकों में वास करनेलगा १९ हे युधिष्ठिर! यह जो आगे आश्रम दिखाई देता है उसीका है, मनुष्य यहां छःरात्रि वसने से शुभगति पाता है, सो हम सब सावधानी से अपने अन्तःकरण को शुद्धकरके यहां छःरात्रि वास करेंगे॥ २०।२१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२८॥

एकसौ उन्तीसवाँ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर का लोमशऋषि के साथ अनेक तीर्थों का माहात्म्य सुनते हुए तीर्थयात्रा करना।

लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इसी स्थान पर अगले समय में ब्रह्माजी ने आपही इष्टीकृतनाम यज्ञ, जो सहस्रवर्ष में पूरा होता है, किया था १ और यमुनाजी के समीप अम्बरीष और नाभाग ने यज्ञ किया था, जिसमें उन्होंने दशदश पद्म गोदान सदस्यों को दिये थे २ उन्होंने उन यज्ञों को करने और तप करने से परमसिद्धि पाई थी और यह देश नहुष के पुत्र राजा ययाति का है, जिसने बड़े यज्ञ, पवित्रकर्म और इन्द्र के साथ ईर्ष्या की थी, वह भी बड़ा तेजस्वी और सब पृथ्वी का स्वामी था, यह यज्ञभूमि भी उसी राजा की है ३।४ देखो, ये वेदियां ययाति के यज्ञ की हैं, जो अग्नि स्थापन करने को निर्माण हुई थीं और सब पापों को दूर करनेवाली हैं, यह शमी का वृक्ष है और यह मधु का उत्तम पात्र है, यह नारायण आश्रम है और ये परशुरामजी के पांचों कुण्ड हैं और इस श्वेतवर्ण स्थान में ऋचीक के पुत्र की संचारभूमि है ५।७ हे कुरुनन्दन! इस

कुरुक्षेत्र के विषय में दो श्लोक जिनको उलूखलरूप आभरणवाली एक पिशाचिनी ने कहा था हम परंपरा से सुनते हुए चले आये हैं वे ये हैं ॥ ८ ॥

श्लोक

युगंधरे दधि प्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले । तद्भूतिलये स्नात्वा सपुत्रा वस्तुमर्हसि ॥ ९ ॥
एकरात्रमुषित्वेह द्वितीयं यदि वत्स्यसि । एतद्वै ते दिवावृत्तं रात्रौ वृत्तमतोऽन्यथा ॥ १० ॥

अर्थात् हे स्त्री ! क्या तू युगंधरदेश में दही खाकर और अच्युतस्थलनामी वर्णसंकरों के ग्राम में वास करके और भूतिलया नाम चोरों के ग्राम की नदी में जिसमें विना जलाये मुरदे डाले जाते हैं, नदी में स्नान करके अपने पुत्र सहित इस कुरुक्षेत्र में वास करसकती है ? अर्थात् नहीं करसकती हैं, जो एक रात्रि से अधिक रहेगी तो तेरी दिन में ऐसी गति मेरी सी होजायगी और दूसरी रात्रि में इससे भी अन्यथा गति होगी, प्रयोजन यह है कि कुरुक्षेत्र में वास करने से मोक्ष होजाती है, परंतु यह फल केवल उसी मनुष्य को मिलता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है, इसके उपरान्त लोमश ऋषि बोले कि हे युधिष्ठिर ! यह स्थान कुरुक्षेत्रका द्वार है, हम यहां एक रात्रि वास करेंगे ११ हे राजन् ! राजा ययाति ने यहां बहुत से रत्न लगाकर यज्ञ किये थे और उन यज्ञों से इन्द्र प्रसन्न हुआ था १२ और यह प्लक्षावतरण नाम यमुना का उत्तम तीर्थ है, पण्डितलोग इसको स्वर्ग का द्वार बताते हैं १३ इस तीर्थ में उन यज्ञों के करनेवाले जिनमें सारस्वत ब्राह्मण ऋत्विज् होते हैं और वे महर्षि, जो यज्ञस्तम्भ और उलूखलनामी यज्ञकी सामग्री को स्थापन करते हैं, अवभृथनामी स्नान करते हैं १४ राजा भरतने इसी स्थानपर बहुत से यज्ञ किये थे और अश्वमेधयज्ञ करने के लिये श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा था, इस राजा ने पृथ्वी को धर्म से पालन किया था और यही राजा मरुत्त ने संवर्त्तनाम ऋषिकी सहायता से उत्तम यज्ञ किया था १५ । १६ इस तीर्थ में भी स्नान करने से मनुष्य को सबलोक दिखाई देते हैं और वह पापों से छूट जाता है, इससे हे युधिष्ठिर ! इसमें भी अच्छीतरह स्नान करो १७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके उपरान्त युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित उस तीर्थ में स्नान करके लोमश ऋषि से कहने लगा १८ कि महाराज ! तप के प्रभावसे मुझे यहां से सब लोक दिखाई देते हैं और मैं अर्जुन को भी देखता हूं १९ यह सुनकर लोमश ऋषि बोले कि तुम सत्य कहते हो और यह जो परम पुण्य के देनेवाली सरस्वतीनदी

है, यह भी परमऋषियों को देखाई देती है; इसमें स्नान करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है, इसतीर्थ पर देवऋषि और राजऋषियों ने सारस्वत यज्ञ किये थे २० । २१ हे नरनायक ! यह स्थान चारों ओर पाँच पाँच योजनतक ब्रह्माजी की वेदी कहलाती है और महात्मा कुरुका यह क्षेत्र है ॥ २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

एकसौतीसवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिर का अनेक तीर्थों की यात्रा करना और लोमशऋषि का प्रत्येक तीर्थ का नाम और माहात्म्य वर्णन करना ।

लोमशऋषि बोले हे भरतवंशी युधिष्ठिर ! मनुष्य इस तीर्थ पर शरीर छोड़ कर स्वर्गलोक को जाता है, इसकारण से यहां सहस्रों मनुष्य शरीर त्याग करने को आया करते हैं १ अगले समय में यहां दक्षने यज्ञ किया था और इस स्थान को यह वरदान दिया था कि जो कोई इस स्थानपर अपना शरीर त्याग करेगा, वह स्वर्गलोक पावेगा २ हे युधिष्ठिर ! यह रम्य और निर्मल जल रखनेवाली सरस्वती है, इसमें यह विनशन नामी पुण्यतीर्थ है ३ और यह निषाद राजा का द्वार है, जिनके दोष के कारण से सरस्वतीनदी पृथ्वी में लोप इस प्रयोजन से होगई कि निषाद न जानने पावे कि सरस्वती कहां है ४ और यह चमसोद्भेदननामी तीर्थ है, जहां सरस्वती दिखाई देरही है और सब पवित्र नदियां इसमें मिली हैं और यह सिन्धुका बड़ा तीर्थ है, जहां लोपामुद्रा ने अगस्त्यजी को अपना पति बनाया था ५ । ६ और यह प्रभासनामी इन्द्र का प्रिय तीर्थ है, जो बड़ा पवित्र, धर्म का बढ़ानेवाला और पापों का दूर करनेवाला है ७ देखो, वह विष्णुपदनामी परम उत्तम तीर्थ दीखता है और यह देखो, बड़ी रमणीक और पवित्र विपाशानामी नदी है ८ जिसमें वशिष्ठऋषि अपने पुत्र के शोक में अपने अङ्गों को पाशों से बाँधकर गिरपड़े थे और गिरने के पीछे उनके सब बन्धन खुल गये थे ९ हे शत्रुदमन ! यह काश्मीर मण्डल परम पुण्यदायक है, जिसमें बड़े बड़े ऋषि रहाकरते हैं, इसको तुम अपने भाइयों सहित देखो हे भरतसत्तम ! यहांपर अग्नि, काश्यप, ययाति और उत्तरदेश में रहनेवाले ऋषियों का आपस में संवाद हुआ था १० । ११ हे महाराज ! देखो, यह मानस पहाड़ का द्वार है, जिसमें परशुरामजी ने वास किया था १२ इसका द्वार विदेहदेश में उत्तर की ओर है, उसको वायु से उड़ा हुआ कमलपत्र भी नांघ नहीं

सकता है १३ हे नरेश्वर, युधिष्ठिर ! जब क्षीणयुग होता है, अर्थात् सौर, बार्हस्पत्य, नाक्षत्र और चान्द्र ये चारों प्रकार के वर्ष एकसमय पर पूरे होते हैं, तब शिवजी महाराज पार्वतीसहित यहां अपने दर्शन देते हैं और अपने कुल और परिवारका शुभ चाहनेवाले मनुष्य इस सरोवर पर चैत्रमास में यज्ञ करके विधिपूर्वक शिवजी का पूजन करते हैं, जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर श्रद्धा और भक्ति से इस तीर्थ में स्नान करते हैं, उनको निस्संदेह शुभलोक मिलते हैं, देखो, यह उज्जानकनामी तीर्थ है, जहां स्कन्द और अरुन्धती सहित वशिष्ठ ऋषि शमपरायण होगये थे १४ ।१७ और यह कुशवाननाम सरोवर है, जिसमें कमल लगे हुए हैं, यह रुक्मिणी का आश्रम है और यहां रुक्मिणी ने क्रोध को छोड़कर शम प्राप्त किया था १८ इसके आगे वह भृगुतुंग पर्वत है और वह वितस्तानाम नदी बहरही है, जो सब पापों के दूर करनेवाली है, जल इसनदी का शीतल और निर्मल है, इस नदी पर बड़े बड़े महाऋषि रहते हैं १९ । २० वे देखो, यमुनाजी के पास जला और उपजला नाम नदियां बहरही हैं, जहां राजा उशीनरने यज्ञकरके इन्द्रके द्वारा वृद्धि पाईथी २१ हे युधिष्ठिर ! उस राजा के धर्म की परीक्षा करनेके लिये इन्द्र और अग्नि उसकी सभा में आये थे, इन्द्र तो श्येन अर्थात् बाज बनकर और अग्नि कपोत अर्थात् कबूतर बनकर गये थे और कबूतर बाज के डर से शरण चाहकर राजाकी जंघा में जा छिपा था ॥२२।२४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणित्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

एकसौ इकतीसवाँ अध्याय ।

लोमशऋषि का युधिष्ठिर से इन्द्र द्वारा राजा उशीनर के धर्म की परीक्षा का वर्णन करना ।

हे युधिष्ठिर ! उससमय कपोतरूपी अग्निदेव डर के मारे राजा की जङ्घा में जाछिपे और श्येनरूपी इन्द्र ने राजा से आकर कहा कि तुम सब राजाओं में धर्मात्मा कहलाते हो, फिर सबधर्मों से विरुद्धबात यह क्यों करते हो ? इस कबूतर को ब्रह्मा ने मेरा भक्ष्य अर्थात् भोजन रचाहै और क्षुधा मुझे अत्यन्त क्लेश दे रही है, इससे तुम इसको छोड़ दो, इसकी रक्षा करना धर्म नहीं है १ । २ यह सुनकर राजा बोला कि अरे श्येन ! यह कबूतर तुझ से डरकर अपने प्राणों की रक्षा के लिये मेरी शरण में आया है, इस अभय चाहनेवाले को तुझे न देने में बड़ा धर्म है, तू किस रीति से अधर्म बताता है ३ । ४ देख, यह विचारा अपने प्राणों की रक्षा के लिये तेरे डरसे कैसा भौचका और कांपरहा है, ऐसे का

त्याग करना बहुत वर्जित है ५ शास्त्र में भी लिखा है कि शरणागत के त्यागने का पातक गौ और ब्राह्मण को मारने के पातक के तुल्य होता है ६ यह सुनकर श्येन बोला कि हे राजन्! संसार में सब प्राणी आहार ही से उत्पन्न होते और बढ़ते और जीते हैं, सो यह आहार ऐसा पदार्थ है कि प्राणी धन के चले जाने से तो जी सकता है, परंतु आहार विना एक क्षण नहीं रह सकता है ७।८ हे मनुजाधिप! इससे अब भक्ष्य न मिलने के कारण से मेरा प्राण नहीं रहेगा और मेरे मरने पर मेरे पुत्र और स्त्री भी मर जायँगे, इस प्रकार से एक प्राण की रक्षा करने से कई प्राण जाते रहैंगे सो हे राजन्! जो धर्म, धर्म को बाधा करता हो, वह धर्म नहीं है किंतु अधर्म है श्रेष्ठ धर्म वही है जो विरोधरहित होवे ९।११ इससे मनुष्य को उचित है कि जब दो धर्म आपस में विरोध रखनेवाले होवें, तब छुटाई बड़ाई को देखकर वह धर्म करे जो बाधारहित होवे, सो हे राजन्! तुमभी इस धर्म में छुटाई बड़ाई को देखो और जो बड़ा हो उसी को धर्म समझो १२।१३ यह सुनकर राजा बोला कि हे श्येन! तुम बातें तो बड़ी नीति की कहते हो सच कहो, तुम गरुड़ तो नहीं हो, तुम्हारी बातों से मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तुम धर्म के विधान को जानते हो और सर्वज्ञ हो फिर न जानें शरणागत को त्याग करना तुम क्योंकर ठीक समझते हो, भाई! शरणागत का त्याग करना किसी प्रकार से उचित नहीं है, परंतु अब तुम यह समझो कि तुम इस कपोत को केवल आहार ही के लिये चाहते हो, वह आहार दूसरी प्रकार से भी हो सकता है, बैल, वाराह, भैंसा, मृग और जिस दूसरे जीव को तुम कहो उसका मांस मँगा दिया जावे, यह सुनकर श्येन बोला कि महाराज! मैं इनमें से किसी के मांस को भक्षण करना नहीं चाहता हूं १४।१८ मुझे दूसरी किसी वस्तु से क्या प्रयोजन है यह कबूतर ही देवता का रचा हुआ मेरा भक्ष्य है, इसीको आप छोड़ दीजिये, यह मर्यादा सनातन से चली आई है कि श्येन कबूतर ही खाता है, आप तो सार को विना जाने केले के वृक्ष पर चढ़ते हैं, यह सुनकर राजा बोला कि हे श्येन! मैं अपना ऋद्धियुक्त राज्य अथवा और जो कुछ तुम माँगो; सो तुमको कबूतर के बदले में दे सकता हूं; परंतु इस कबूतर को नहीं दूंगा, तुम भी कहो कि क्या ऐसा काम किया जाय, जिसके करने से तुम कबूतर को छोड़ दो, तुम जो कहोगे सोही मैं करूंगा, परंतु इस कबूतर को नहीं दूंगा १९।२२ यह सुन-

कर श्येन बोला कि हे नरनायक उशीनर ! अच्छा, जो आप को इस कबूतर से ऐसा ही स्नेह है, तो आप अपने शरीर का मांस काट कर और इस कपोत के बराबर तोल कर मुझे दे दीजिये, मैं आपका मांस लेकर तृप्त होजाऊंगा २३ । २४ यह सुनकर राजा बोला बहुत श्रेष्ठ, तुमने बड़ा अनुग्रह किया, अब मैं तुमको अपना मांस इसके बराबर तोले देता हूं २५ लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! इसके उपरान्त उस धार्मिक राजा ने अपने शरीर से एक मांस का टुकड़ा काटकर तुला में रखकर तोला तो कबूतर अधिक रहा फिर उसने दूसरा टुकड़ा शरीर से काट कर चढ़ाया, फिर भी कबूतर ही अधिक रहा, इस प्रकार से राजा ने अपने सब शरीर का मांस काट काट कर चढ़ा दिया, परंतु वह उस कबूतर की बराबर नहीं हुआ, जब राजा के शरीर में मांस नहीं रहा, तब वह राजा आप उस तुला में बैठ गया २६ । २८ उस समय श्येन ने प्रसन्न होकर कहा कि हे धर्मज्ञ ! मैं इन्द्र हूं और यह कबूतर अग्नि है, हम दोनों तेरे धर्म की परीक्षा लेने के लिये तेरे यज्ञ में आये थे २९ तैंने जो अपने शरीर का मांस काटा है, उसके कारण से तेरी कीर्ति लोकों में प्रकाश करेगी ३० और जबतक यह तेरी कथा संसार में रहेगी, तब तक वह कीर्ति मलीन न होगी और तेरे सनातन लोक भी तभीतक बने रहेंगे ३१ हे युधिष्ठिर! इन्द्र उक्त प्रकार से वरदान देकर स्वर्ग को चला गया और धर्मात्मा राजा उशीनर भी अपने धर्म से पृथ्वी और आकाश को प्रकाशित करके स्वर्गवासी हुआ । हे राजन् ! यह यज्ञस्थान उसी महात्मा राजा का है ३२ । ३३ इस पुण्य और पापों के दूर करनेवाले तीर्थ को तुम मेरे साथ रहकर देखो, यहां पर पुण्यात्मा और महात्मा ब्राह्मणों को देवता और सनातन ऋषि दिखाई देते हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि शताधिकैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

एकसौ बत्तीसवाँ अध्याय ।

लोमशऋषि का युधिष्ठिर से अष्टावक्र के जन्म, राजा जनक के यज्ञ में जाना वर्णन करना ।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! देखो यह पवित्र आश्रम श्वेतकेतु नामी उद्दालक के ब्रह्मज्ञानी पुत्र का है, इसमें सदा फूलने और फलनेवाले वृक्ष लगे हुए हैं १ यहां पर सरस्वती ने उस ऋषि की वाणी सुनने के लिये नारीरूप धारण करके उसको अपने दर्शन दिये थे २ उस युग में पृथ्वी पर दो मुनि वेदपाठियों में अत्यन्त श्रेष्ठ थे, एक तो अष्टावक्र, जिन के पिता का नाम

कहोड़क था और दूसरे श्वेतकेतु जो उद्दालक के पुत्र थे, ये दोनों आपस में मामा भानजे का सम्बन्ध रखते थे ३ इन दोनों ने राजा जनक के यज्ञ में जाकर बन्दी को विवाद में पकड़ लिया था, हे युधिष्ठिर! अब तुम इस पुण्यतप आश्रम में भाइयों सहित वास करो, यह आश्रम उस ऋषि का है, जिसका दौहित्र अर्थात् धेवता अष्टावक्र था, जिसने बाल अवस्था में ही राजा जनक की यज्ञशाला में जाकर बन्दी को वाद में परास्त करके नदी में डुबवा दिया था ४ । ६ यह सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा कि महाराज ! वह अष्टावक्र मुनि किससे उत्पन्न हुआ था और कैसा प्रभाव रखता था ? जो उसने यज्ञ में जाकर बन्दी को परास्त किया, कृपा करके यह सब विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ७ यह सुनकर लोमश जी बोले कि उद्दालक ऋषि का एक कहोड़क नामी जितेन्द्रिय, गुरुभक्त और आज्ञाकारी शिष्य था; उसने बहुत दिनोंतक विद्या का अध्ययन किया ८ उसकी सेवा से उसके गुरु ने प्रसन्न होकर उसको वेद पढ़ा दिया और अपनी सुजाता नाम कन्या से उसका विवाह भी कर दिया ९ उस कन्या के गर्भ रहा और वह गर्भस्थबालक अग्नि के समान तेजस्वी था, एकदिन उस बालक ने गर्भके भीतरसे अपने पिता से जो वेद का पाठ कर रहे थे, कहा कि मैंने आप की कृपा से गर्भ ही में सब शास्त्र और अङ्गों सहित वेदों को अध्ययन कर लिया है इस कारण आप से कहता हूं कि आप रात्रि और दिन वेदपाठ करते हैं, परंतु आप को विधिवत् वेदपाठ नहीं आता है १० इस प्रकार अपने शिष्यों के मध्य में उसके पिता महर्षि ने अपना अनादर पाकर क्रोध से उस गर्भस्थ बालक को शाप दिया कि गर्भ के भीतर से बोलने के कारण से तेरा शरीर अष्टावक्र अर्थात् आठ जगह से टेढ़ा होगा ११ जब वह बालक उत्पन्न हुआ, तब उसका नाम आठ जगह से टेढ़ा होने के कारण से अष्टावक्र रक्खा गया और श्वेतकेतु नामी उसका मामा भी उसी समय में उत्पन्न हुआ अर्थात् उन दोनों मामा भानजों की अवस्था बराबर थी १२ अष्टावक्र के उत्पन्न होने के पहिले उसकी मां गर्भ को बढ़ा हुआ देखकर अपने पति को एकदिन प्रसन्न करके कहने लगी कि महाराज ! अब मुझको दशवां मास भी लग गया है और आपके पास कौड़ी नहीं है, विना धन के इस पुत्र के उत्पन्न होने के दुःखसे मैं क्योंकर पार होऊंगी १३ । १४ यह सुनकर कहोड़कऋषि धन लाने के लिये राजा जनक के यहां गये परंतु राजा जनक के यहां के बन्दीनाम पण्डित से

वाद में हारजाने के कारण से बन्दी ने उनको पकड़कर जल में डुबो दिया १५ उद्दालकऋषि अपने शिष्य और जामाता का उक्त हाल सुनकर सुजात के पास आये और उससे कहा कि यह हाल अष्टावक्र से मत कहियो १६ उसने वैसा ही किया और अष्टावक्र पिता के मरने के पीछे उत्पन्न होने के कारण से उद्दालक ऋषि को ही अपना पिता और अपने मामा श्वेतकेतु को अपना भाई समझता रहा १७ इसके पीछे बारहीं वर्ष में एकदिन अष्टावक्र उद्दालक की गोद में बैठा हुआ था, उस समय वहां श्वेतकेतु भी चला आया और उसने अष्टावक्र की बांह पकड़ कर उसे उठा दिया और कहा कि यह तेरे पिता की गोद नहीं है, मेरे पिता की है, यह सुनकर अष्टावक्र को बड़ा दुःख हुआ और घर जाकर उसने अपनी मां से पूछा कि मेरा पिता कहां है? तब उसकी माता सुजाता ने दुःखी और शाप से भयभीत होकर सब वृत्तान्त कह सुनाया, उस को जानकर अष्टावक्र ने रात्रि को अपने मामा श्वेतकेतु से कहा १८। २० कि चलो, हम और तुम राजा जनक के यज्ञ में चलें हमने सुना है कि वह यज्ञ बड़े आश्चर्य का हुआ है, वहां हम तुम ब्राह्मणों के विवाद को सुनेंगे और अच्छे अच्छे पदार्थ भोगेंगे २१ इसके सिवाय वहां हमारी तुम्हारी चतुराई और वेद के उच्चारण की स्पष्टता का प्रकाश होगा, ऐसा विचार करते दोनों मामा, भानजे राजा जनक के यज्ञ में जाने की इच्छा से चल दिये २२ राह में उनको एक राजा मिला, उसने उनसे कहा कि हट जाओ उस समय अष्टावक्र ने उसको यह उत्तर दिया ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि शताधिकद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

एकसौ तेंतीसवाँ अध्याय।

अष्टावक्र का अपने मामा के साथ राजा जनक के यज्ञ में जाना और द्वारपाल और राजा जनक से प्रश्नोत्तर होना।

अष्टावक्र बोले कि अन्धे, बहिरे, स्त्री और बोझा ले जानेवाले मनुष्य राजा को मार्ग देते हैं अर्थात् जब राजा आता है, तब ये लोग राजा के मार्ग से हट जाते हैं परंतु ब्राह्मण राजा के मार्ग से नहीं हटता है, राजा ही हटकर ब्राह्मण को मार्ग देदेता है १ यह सुनकर राजा ने कहा बहुत अच्छा, हम आपको मार्ग देते हैं हम्हीं हटे जाते हैं, आप जिधर से चाहें जाइये, क्योंकि अग्नि जो थोड़ी भी हो तो उसे थोड़ी न समझना चाहिये, इन्द्र भी ब्राह्मणों को नमस्कार करता है २ इसके पीछे वे दोनों राजा जनक की यज्ञशाला के पास गये और वहां द्वार-

पालक से रोंके जाने पर अष्टावक्र ने राजा जनक से कहा कि हम दोनों अतिथि बड़े आश्चर्य से यज्ञ करने को आये हैं, हम चाहते हैं कि आप द्वारपालकों को आज्ञा दे दें कि वे हमको भीतर जाने देवें ३ हम तो यज्ञ देखने की लालसा और वाद करने की इच्छा से यहां आये हैं और क्रोध और दुःख से पीड़ित हो रहे हैं और यह द्वारपालक हमको भीतर नहीं जाने देता है ४ यह सुनकर द्वारपालक ने कहा कि महाराज ! हम आपको दण्डवत् करते हैं, हम केवल आज्ञाकारी हैं, हम क्या करें ? हमको इस सभा में बालक वेदपाठियों को जाने देने की आज्ञा नहीं है, केवल वे ही ब्राह्मण इसमें जाने पाते हैं, जो वृद्ध और ज्ञानी होते हैं ५ अष्टावक्र बोले कि जो तुमको वृद्ध ब्राह्मणों को जाने देने की आज्ञा है तो हम भी इस सभा में जाने के योग्य हैं, क्योंकि हमभी वृद्धों का सा आचरण करनेवाले जितेन्द्रिय और गुरुभक्त हैं, वेद हमको अच्छी तरह आता है और ज्ञानशास्त्र में भी अतिप्रवीण हैं, तुम हमको बालक जानकर हमारा अपमान मतकरो, ज्ञानी लोग कहते हैं कि ब्राह्मण बालक भी होय तो भी अपमान के योग्य नहीं है, देखो थोड़ी अग्नि को भी छूने से हाथ जल जाता है ६।७ यह सुनकर द्वारपालक बोला कि अभी तुम मुनियों से सेवित और ब्रह्मज्ञान को देनेवाली बहुरूप और अति शोभित वेदवाणी को पढ़ो और अपने बालकस्वरूप को देखो, तुम अपनी स्तुति आप करते हो, भाई ! पण्डित होना दुर्लभ है ८ यह सुनकर अष्टावक्र बोला कि देही के बड़े होने से बड़ाई नहीं गिनीजाती है, देखो सेमर के वृक्ष के फलों के पकजाने से कोई कार्य नहीं निकलता है, जो वृक्ष छोटा होता है और फल भी उसके छोटे होते हैं परंतु रसदार होते हैं, वह उस वृक्ष से बड़ा गिना जाता है, जो बड़ा होता है और फल भी उसमें बड़े बड़े लगते हैं परंतु वे फल निरस होते हैं ९ द्वारपाल बोला कि संसार में बालक वृद्धों से बुद्धि लिया करते हैं और समयपर वे भी वृद्ध हो जाते हैं, इससे थोड़े काल और थोड़ी अवस्था में ज्ञान होना असम्भव है, तुम बालक होकर वृद्धों की सी बातें क्यों करते हो १० अष्टावक्र बोले बालों के पकजाने से आदमी वृद्ध नहीं होता है, देवता लोग वृद्ध उसी को कहते हैं जो विशेष जानता है ११ ऋषियों ने बड़ा होना बालों की श्वेतता अथवा धन या भाई बन्धु होने पर नहीं रक्खा है, हमारा बड़ा केवल वही है जो अङ्गोंसहित वेदों का जाननेवाला है १२ सो हे द्वारपाल ! मैं इस राजसभा में बन्दी के देखने को आया हूं, तू हमारी खबर राजा जनक

से करदे, जो सोने की माला पहिरेहुए है १३ जब हम सभा में जाकर परिडतों से शास्त्रार्थ करेंगे और विवाद में बन्दी को जीत लेंगे तब तुझको जानपड़ेगा कि कौन छोटा और कौन बड़ा है १४ और राजा को भी सब समाज सहित उसी समय छुटाई बड़ाई देखपड़ेगी १५ द्वारपाल बोला कि अभी दशवर्ष की तुम्हारी आयु है, तुम वृद्ध और, ज्ञानी परिडतों के बीच में नहीं जा सकते हो, परंतु मैं तुम्हारे भीतर जाने का यह उपाय करता हूं कि मैं द्वार छोड़कर जाता हूं तुम मेरे पीछे भीतर घुसकर राजा के पास चलेजाना; इसके पीछे अष्टावक्र ने वैसाही किया और राजा के पास पहुँचकर कहने लगा १६ कि आप सब पृथ्वी के राजा हैं, सब प्रकार की ऋद्धि भी आपके पास है और राजाययाति के समान यज्ञ भी आपने किये हैं, मैं आपके पास ब्राह्मणों से यह सुनकर आया हूं कि आपके यहां एकनिर्भय बन्दीनामी परिडत है वह शास्त्रार्थ करनेवालों को हारजानेपर आपकी आज्ञा से आपके आदमियों से पकड़वाकर जल में डुबवा देता है, मैं अद्वैत ब्रह्म का वर्णन करूंगा मुझे बताइये कि वह बन्दी कहां है ? मैं उसको इस प्रकार से नाश किया चाहता हूं जैसे सूर्य के उदय होने पर सब तारागण छिपजाते हैं १७। १८ यह सुनकर राजा बोला कि तुम दूसरे के बल को न जानने के कारण से बन्दी के जीतने को कहते हो, बन्दी बड़ा परिडत है, उस से वेदपारग ब्राह्मण शास्त्रार्थ नहीं कर सकते हैं, तुमको उसके विषयमें ऐसा कहना कब योग्य है ? तुम अभी बन्दी को जानते नहीं हो, उससे ऐसा कहते हो, तुमसे पहिले भी बहुत से ब्राह्मण उस बन्दी से मिले, परंतु वे सब उसके सम्मुख इसप्रकार से अस्त होगये जैसे सूर्य के सम्मुख तारागण अस्त होजाते हैं बहुत से ब्राह्मण अनेक बातें कहते हुए विज्ञान में मतवाले होकर बन्दी को जीतने की इच्छा से शास्त्रार्थ करने आये परंतु सब परास्त होगये २०। २२ यह सुनकर अष्टावक्र बोले कि हे राजन्! बन्दी को अभी हमसा वादी नहीं मिला है, इस कारण से वह सिंहरूप होकर भय छोड़कर वाद करता है; अब मुझसे शास्त्रार्थ करने पर वह इस प्रकार से प्राणरहित होगा जैसे राहमें पहिये टूटजाने पर छकड़ा पड़ा रहता है २३ यह सुनकर राजा बोला कि तीसकला, बारहअंश, चौबीस पर्व और तीनसौ साठ अरा अर्थात् वह कालचक्र जिसमें सूर्य और चन्द्रमा आदि नक्षत्र घूमाकरते हैं और उनके घूमने से तीनप्रकार के वर्ष होते हैं एक सावन जो तीनसौ साठ दिन का होता है, दूसरा सौर जिनमें तीनसौ पैंसठ दिन

और पन्द्रह घड़ी होती हैं और तीसरा चान्द्र जो तीनसौ चौवन दिन का होता है इनके होने के प्रयोजन को जो जानता है वही बड़ा पण्डित है २४ अष्टावक्र बोले कि वह चौबीस पर्व, छै नाभि, बारह प्रधि और तीनसौ साठ अरा रखनेवाला और निरन्तर घूमनेवाला कालचक्र तुम्हारी रक्षा करे अर्थात् यह कालचक्र इस प्रयोजन से निर्माण हुआ है कि इसकी गति से उक्त तीन प्रकार के संवत्सर होते हैं उन तीनों संवत्सरोंमें जो यज्ञादिक कर्म जिस संवत्सरमें कहेहैं उसीमें करना चाहिये अन्यथा करने से उसका फल पूरा पूरा नहीं मिलता है, जैसे चान्द्रवर्ष में व्रतादिक, सौर वर्ष मे सोलहों संस्कार और सावन वर्ष में यज्ञादिक कर्म करना कहा है, सो इन तीनों वर्षों में किए हुए उचितकर्म तुम्हारी रक्षा करें २५ तब राजा बोला कि शरीररूपी रथ में घोड़ों के समान कौन जुते हुए हैं? जिनका आना अकस्मात् श्येन पक्षी अर्थात् बाज के गिरने के सदृश होता है और उनको कौन गर्भ में रखता है और गर्भ में रखने से कौन उत्पन्न होता है २६ अष्टावक्र बोले कि वे दोनों ईश्वर करे तुम्हारे न हों किन्तु तुम्हारे शत्रुओं के घरमें भी न आवें, वे दुःख और मृत्यु हैं, जो इस शरीररूपी रथ में घोड़ों के समान लगे हुए हैं और जिनका आना अकस्मात् श्येन पक्षी के गिरने के समान होता है उन दोनों का गर्भ में रखनेवाला मन है और उनको गर्भ में रखने से मन ही उत्पन्न होता है अर्थात् दुःख और मृत्यु का कष्ट मन ही को होता है और उस कष्ट में वह मन दूसरी प्रकार का हो जाता है २७ राजा बोला कि वह कौन है जो आंखें बन्द करके नहीं सोता है और उत्पन्न होने पर वह कौन है जो चलता नहीं और हृदय किसके नहीं होता है और वेग से कौन बढ़ता है? २८ अष्टावक्र बोले कि मत्स्य अर्थात् मछली आंख बन्द करके नहीं सोती है और अण्डा उत्पन्न होने पर चलता नहीं है और पत्थर के हृदय नहीं है और नदी वेग से बढ़ती है २९ राजा बोला कि महाराज! आप तो मनुष्य नहीं दीखते हैं, आप के वचनों से मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आप के समान दूसरा मनुष्य नहीं है, इस कारण से मैं द्वार खोले देता हूं देखिये वहां यह बन्दी बैठा हुआ है ॥३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि शताधिकत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

एकसौ चौंतीसवाँ अध्याय।

राजाजनकके यज्ञमें अष्टावक्र और बन्दीका शास्त्रार्थद्वारा बन्दीको हराना और समुद्रमें डुबवादेना।

अष्टावक्र बोले हे राजाजनक! इस उग्रसेन के तुल्य राजाओं की सभा में

उस बन्दी को जो वादियों में श्रेष्ठ है नहीं जान सकता हूं कि जिसको जानकर मैं इस प्रकार से उसका ग्रास करूं जैसे महा जल में बगुला मत्स्यों को ग्रास करता है; वह बड़ा शास्त्रार्थ का करनेवाला और मानी बन्दी मेरे सम्मुख आवे, सम्मुख आने पर कुछ न बोल सकेगा और इसप्रकार से सूख जायगा जैसे अग्नि से नदियों का वेग जाता रहता है, हे बन्दी ! तू मुझ से वाद करके इस प्रकार से नहीं बचेगा जैसे सोते हुए व्याघ्र को जगाकर और बैठे हुए विषधर सर्प के ऊपर पैर रखकर कोई मनुष्य बच नहीं सक्ता है १ । २ तेरी गति मुझ से सम्भाषण करने पर वैसी ही होगी जैसी उस मनुष्य की होती है जो दुर्बल होकर अपने अहंकार के कारण से पहाड़ को फोड़ने की इच्छा से उसे ताड़ना करता है अर्थात् पहाड़ को कुछ जान भी नहीं परता और ताड़ना करनेवाले ही के चोट लगती ४ सो हे राजा जनक ! आप मैनाक पर्वत के तुल्य सब राजाओं में बड़े हैं, आपके सम्मुख सब राजा बैल और बछड़ों के समान छोटे छोटे हैं और उन सब में आप इसप्रकार से श्रेष्ठ हैं जैसे देवताओं में इन्द्र और नदियों में गङ्गाजी उत्तम हैं; आप उस बन्दी पण्डित को मेरे सम्मुख कर दीजिये ५ । ६ लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! जब अष्टावक्र ने क्रोध करके उक्तप्रकार से गरज गरज कर बातें कहीं तब बन्दी बोला कि अच्छा मेरी बात का तुम उत्तर दो और तुम्हारी बात का मैं उत्तर दूंगा ७ यह कहकर बोला कि हमारा यह निश्चय है कि अग्नि एक ही है यद्यपि वह बहुत प्रकार से बढ़ती है और एक ही सूर्य सब जगत् में प्रकाश करता है और शत्रुओं का मारनेवाला एक ही देवराज है और पितरों का राजा यम भी एक ही है अर्थात् एक जीवात्मा ही है परमात्मा नहीं है तुम्हारा उत्तर इस विषय में क्या है, अष्टावक्र बोले कि नहीं इन्द्र और अग्नि दो सखा हैं और नारद और पर्वत दो ऋषि हैं और रथ के दोही चक्र हैं अश्विनीकुमार दो हैं और ब्रह्मा ने स्त्री और पुरुष भी दो ही उत्पन्न किये हैं अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा दोनों हैं क्योंकि परमात्मा के विना जीवात्मा की ज्ञानशक्ति नहीं हो सकती है ८ तब बन्दी बोला कि यह प्रजा कर्म से तीनप्रकार की उत्पन्न होती है अर्थात् पुण्य से देवता, पुण्य और पाप से मनुष्य और पाप से सर्पादिक जीव, जो तिरछे होकर चलते हैं और तीन वेद सिद्धान्त से युक्त वाजपेय अर्थात् तीन आश्रमों के कर्म तीन ही सिद्धान्तों से कियेजाते हैं और यज्ञ करानेवाले तीन ही कर्म करते हैं अर्थात् देवयज्ञ, पितृयज्ञ और ऋषियज्ञ और लोक भी तीन हैं अर्थात् स्वर्ग, नरक और

पृथ्वी और ज्योति भी तीन ही हैं आपका इसमें क्या उत्तर है १० अष्टावक्र बोले कि ब्रह्मज्ञानियों का स्थान चौथी संख्या रखनेवाला मोक्ष आश्रम है जो तीनों आश्रमों से परे है इसी ज्ञानरूपी यज्ञ को चारों वर्ण करते हैं और ब्रह्म की अवस्था भी चारही हैं विराट् १ सूत्र २ अन्तर्यामी ३ और तुर्या ४ और वर्ण भी चार प्रकारके हैं अकार १ इकार २ उकार ३ और अर्द्धमात्रा ४ और वाणी भी चार प्रकारकी हैं वैखरी १ मध्यमा २ पश्यन्ती ३ और पराख्या ४। ११ तब बन्दी आत्मा को कर्ता निश्चय करके कहनेलगा कि अग्नि पांच हैं अर्थात् गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि आदि और छन्द भी पांच पद का है और पूर्णमास आदि यज्ञ भी पांच ही हैं और इन्द्रिय भी पांच हैं और वेद में भी पांच चूड़ा रखनेवाली अप्सरा अर्थात् जीव के पीछे चलनेवाली चिति नाम माया जिसके प्रमाण १ विपर्यय २ विकल्प ३ निद्रा ४ और स्मृति ५ रूपी पांच चोटियां लिखी हैं और लोक में पांचही नद अर्थात् विषयों के स्थान हैं इसके उत्तरमें आप क्या कहते हैं १२ अष्टावक्र बोले कि हमने वेद में देखाहै कि किसी यज्ञ में दक्षिणा को छः कहा है और कालचक्र में छःऋतु और छःही इन्द्रियां हैं अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन और छःही कृत्तिका नक्षत्र हैं और साद्यस्कनाम यज्ञभी छः हैं अर्थात् पांचों इन्द्रियां और मन, नक्षत्र, ऋतु और यज्ञों के तुल्य विषयों को अनुभव करनेवाले हैं और आत्मा इन सबसे अलग साक्षी और अकर्तारूप है १३ इसके पीछे बन्दी आत्मा को कर्ता और भोक्ता सिद्ध करने के लिये बोला कि सात पशु अर्थात् पांच कर्म इन्द्रिय और मन तथा बुद्धि कर्म करनेवाले को अपने अपने सात विषय जिनमें लिप्त होने से परमात्मा नहीं दीखता है इसलोक और परलोक दोनों में प्राप्त कराते हैं और सातही ऋषि अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन बुद्धि हैं और उनके सात ही पूजनीय सुख हैं और वीणा में भी सात ही तार होते हैं अर्थात् जैसे वीणा के सात तार बजानेसे एक ही शब्द निकलता है और न बजाने से कोई शब्द नहीं होता है, इसी प्रकार से वीणा बजानेवाले की भांति आत्मा इस वीणारूपी शरीर को सात ताररूपी ज्ञान और कर्म इन्द्रिय और मन और बुद्धि के द्वारा शब्द रूपी सुख का अनुभव कराता है और सुषुप्तावस्थामें न बजाई हुई वीणा की तरह किसी प्रकार का सुख नहीं भोगता, इससे आत्मा अकर्ता नहीं है किन्तु आत्मा ही कर्ता है, तुम्हारा क्या उत्तर है १४ अष्टावक्र बोले कि इन्द्रियों के प्रवेश योग्य विषय आठ हैं और वे आठों विषय अनन्त

प्रकार के हैं और इन्द्रियादि नाम अष्टपदवाला आनन्दस्वरूप ब्रह्म, द्वैत का नाश करनेवाला अर्थात् अद्वैत है और विषयों के भोगनेवाले वासना के देवता अष्टवसु नाम सुने जाते हैं और सर्वयज्ञ अर्थात् ज्ञानयज्ञ में यूप अर्थात् अज्ञानी को मोहने वाला अज्ञान भी अष्टकोण अर्थात् आठ रूपवाली माया से सम्भव कहा है १५ यह सुनकर बन्दी बोला कि जैसे पितृयज्ञ में एक ऋचा को तीन वार पढ़ने से प्रत्येकबार तीन तीन समधि के योग्य होती है अर्थात् एक ऋचा नव समाधि के योग्य होती हैं इसी प्रकार से एक प्रकृतिके तीनों गुणों के न्यूनाधिक भागों को मिलाने से वे गुण नव प्रकारके होते हैं और उनसे नव ही प्रकार की उत्पत्ति कही है और जैसे नव नव अक्षर के चार पदों को मिलाने से बृहती छन्द बनजाता है और ९ अङ्कों को अर्थात् एक दो तीन आदि को क्रमभेद से रखने से जितनी चाहो उतनी ही संख्या होजाती है इसी प्रकार से माया के पूर्वोक्त नवगुण अनेकरूप धारण करते हैं इससे द्वैत सत्य है १६ अष्टावक्र बोले कि लोक में मनुष्य की दश दिशा कही हैं अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच उनके देवता और ये दशों दश विषयों के रूप को प्रकट करनेवाले हैं और ब्रह्म को भी दश सैकड़ा अर्थात् सहस्र प्रकार का कहा है और स्त्री भी गर्भ को दश ही महीने धारण करती है इसी प्रकार से माया में भी अहंकार से चिदात्मा ब्रह्म का संग है और तत्त्व के उपदेशक और तत्त्व के धारण करनेवाले और अधिकारी भी दश ही दश हैं जिनको पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच देवता कहचुके हैं १७ तब बन्दी बोला कि पशुओं की ग्यारहों इन्द्रियों के शब्द आदि ग्यारह विषय हैं और ग्यारह ही यूप अर्थात् बन्धन करनेवाले राग आदि हैं और ग्यारह ही प्राणियों के विकार हैं जिनको हर्ष और विषाद आदि कहते हैं और देवताओं में ग्यारह ही रुद्र कहे हैं अर्थात् हर्ष और विषाद आदि ग्यारहो विकार कुछ मनुष्य ही को नहीं किन्तु देवताओं को भी प्राप्त होते हैं १८ यह सुनकर अष्टावक्र बोले कि वर्षसंज्ञा बारह ही मास की है और जगतीछन्द का एक चरण भी बारह ही अक्षर का होता है और प्राकृतयज्ञ भी बारह दिन का होता है और इसलोक में ध्यानी और योगी लोग बारह ही आदित्य बताते हैं आदित्य का अर्थ खैंचनेवाला है सो वे बारहों खैंचनेवाले अर्थात् इन्द्रियों को उनके विषयों से अलग करनेवाले ये हैं धर्म १ सत्य २ दम ३ तप ४ अमात्सर्य ५ लज्जा ६ तितिक्षा ७ अनसूया ८ यज्ञ ९ दान १० धृति ११ और यम १२ प्रयोजन यह है कि जैसे

बारह मास और एक वर्ष कहने से एक ही काल प्रतीत होता है और जगतीछन्द अथवा बारह बारह अक्षर के चार चरण रखनेवाला छन्द कहने से एक ही छन्द जाना जाता है इसी प्रकार से ब्रह्म और जगत् एक ही है हां जो ज्ञानी और बारहों आदित्यों का आचरण करते हैं उनको ब्रह्म अपरोक्ष है और जो इसके विपरीत हैं उनको परोक्ष है १९ इसके उपरान्त बन्दी बोला कि त्रयोदशी तिथि उत्तम कही है और पृथ्वी के द्वीप भी तेरह ही हैं अर्थात् चित्त की शुद्धि होना देश और काल से सम्बन्ध रखती है; लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! बन्दी उक्तप्रकार से आधा श्लोक कहकर चुप होरहा और अष्टावक्र ने उसके आगे का आधा श्लोक इस प्रकार से कह सुनाया कि केशी अर्थात् अग्नि वायु और सूर्य के तुल्य आत्मा ने दश इन्द्रियां और मन बुद्धि और अहंकार इन तेरहों के विषय और भोगरूप यज्ञों को प्राप्त किया, जो आत्मा को छिपानेवाले हैं, इनको उल्लंघन करनेवाले बारह आदित्य हैं जिनको पहिले कहचुके हैं सो हम इन बुद्धि आदि के निवृत्त होने पर अद्वैत ब्रह्म को कहने को आये हैं २०।२१ इसके पीछे बन्दी को चुपका और नीचे को शिर झुकाये हुए कुछ ध्यानसा करता और अष्टावक्र को बोलता देखकर बड़ा शब्द हुआ २२ उस कोलाहल में राजा जनक के यज्ञ के सब ब्राह्मण प्रसन्न होकर अंजली बांधे हुए अष्टावक्र के समीप चले गए और उनकी बहुतसी प्रशंसा की २३ उस समय अष्टावक्र बोले इस बन्दी ने पहिले बहुत से पण्डित शास्त्रार्थ में हारजाने के कारण से जल में डुबवा दिये हैं इससे अब इसकी भी वही गति होनी चाहिए, इसको जल्दी लेजाकर जल में डुबो दो २४ यह सुनकर बन्दी बोला कि मैं राजा वरुण का पुत्र हूं मेरे पिता के यहां बारह वर्ष में समाप्त होनेवाला सत्र यज्ञ हो रहा है आपके पिता और दूसरे ब्राह्मणों को मैंने वहीं भिजवा दिया है सो वे सब यज्ञ देखने को गए हैं, आतेही होंगे और मैं अब इन पूजनीय अष्टावक्र की पूजा करूंगा जिनके कारण से अब मुझको पिता के दर्शन मिलेंगे २५।२६ तब अष्टावक्र बोले कि जिस वाणी और बुद्धि से जीते जाने के कारण से ब्राह्मण लोग समुद्र में डुबाये गये हैं उस वाचा और बुद्धि को हमने जीत लिया है परंतु सन्त लोग हमारे वचन का आदर नहीं करते हैं, देखो अच्छे और खोटे पुरुषों के वृत्तान्त को जाननेवाले अग्निदेव अपने स्वभाव से जलने पर सत्पुरुषों को अपने तेज से नहीं जलाते हैं और इसी प्रकार से सन्त लोग बालकों की कुत्सित वाणी को सुनकर मन में कुछ ध्यान नहीं

करते हैं, सो हे राजा जनक ! यही बात हम को यहां भी जान पड़ती है अर्थात् हमको बालक समझ कर हमारी बात पर कोई ध्यान नहीं देता है आश्चर्य है कि तुमसे ज्ञानी की भी ऐसी खोटी बुद्धि होवे और तेज जाता रहे, तुम अपनी स्तुति सुनकर मतवाले से होरहे हो और हाथी के समान मदमत्त होकर मेरे कहे को नहीं सुनते हो २७ । २८ यह सुनकर राजा जनक बोला कि मैं आपके अमानुष वचनों को सुनता हूं, आप साक्षात् दिव्यरूप हैं, जो आपने शास्त्रार्थ में बन्दी को जीतलिया है; अब यह बन्दी यहां आपके सम्मुख स्थित है जो कुछ आपकी इच्छा हो सो किया जाय २९ अष्टावक्र बोले कि इस जीते हुए बन्दी से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है जो इसका पिता वरुण है तो भी इसको समुद्र में डुबवादो ३० यह सुनकर बन्दी बोला कि मैं निस्संदेह वरुण का पुत्र हूं मुझको जल में डूबने से कुछ भय नहीं है और ये अष्टावक्र अपने पिता कहोड़क को, जो बहुत दिनों से नष्ट होगये हैं, देखेंगे ३१ लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे वे ब्राह्मण जिनको बन्दी ने समुद्र में डुबवा दिया था, वरुण से पूजित होकर समुद्र से निकले और राजा जनक के समीप चले आये ३२ उस समय कहोड़क ने राजा जनकसे कहा कि संसार में मनुष्य पुत्र की इच्छा इसी प्रयोजन से किया करते हैं, देखिये, जो काम मैं न कर सका था, उसको मेरे पुत्र ने किया ३३ संसार में निर्बल का पुत्र बलवान्, मूर्ख का पण्डित और अज्ञानी का ज्ञानी उत्पन्न होता है ३४ हे राजन् ! आपका कल्याण हो यमराज ने आपके शत्रुओं के शिर अपने तीक्ष्ण परशु से काटे हैं ३५ आपके इस यज्ञ में औक्थ्य नाम सामवेद का मन्त्र, जो गाने के योग्य है, गाया जाता है और सोम अर्थात् अमृत भी भले प्रकार से पिलाया जाता है और सब देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने पवित्र भागों को ग्रहण किया है ३६ लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! इसके उपरान्त बन्दी ने राजा जनक की आज्ञा से समुद्र के जल में प्रवेश किया और अष्टावक्र अपने मामा के साथ साथ सब ब्राह्मणों से पूजित होकर अपने पिता को पूजकर और बन्दी को जीतकर अपने आश्रम को चले आये ३७ । ३८ वहां उनके पिता ने उनकी माता के समीप जाकर उनसे कहा कि इस नदी में तुम प्रवेश करो, अष्टावक्र ने वैसाही किया और नदी से बाहर निकलने पर उनके सब अंग समान होगये ३९ तब से इस नदी का नाम समंगा विख्यात होगया, हे युधिष्ठिर ! इसमें स्नान करने से

मनुष्य पापों से छूटजाता है, तुम भी अपनी स्त्री और अपने भाइयोंसहित इस नदी में स्नान करो और इसका जल पियो और सब समाजसहित यहां एक रात्रि बसकर हमारे साथ और तीर्थों को चलो ॥ ४० । ४१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

एकसौ पैंतीसवाँ अध्याय।

लोमशऋषि का अनेक तीर्थों में स्नान करने का माहात्म्य और भरद्वाज के पुत्र यवक्रीत का वरदान वर्णन करना ॥

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! यह मधुबिला नाम नदी जिसका दूसरा नाम समंगा हुआ है, बह रही है और यह कर्दमिला नाम स्थान है जहां राजा भरत का अभिषेक हुआ था १ वृत्रासुर को मारकर इन्द्र इसी समंगा नदी में स्नान करने से पापमुक्त हुआ था २ देखो, मैनाक पर्वत में यह विनशन नामी तीर्थ है, जहां अगले समय में अदिति ने पुत्र मिलने की इच्छा से अन्नपाक दिया था ३ इस पर्वत पर चढ़ने से तुम्हारी अयश करनेवाली अलक्ष्मी दूर होजायगी ४ हे राजा युधिष्ठिर ! देखो, आगे यह ऋषियों का प्यारा कनखल पहाड़ है और वह देखो, महानदी गङ्गा जा रही है ५ अगले समय में यहां भगवान् सनत्कुमार ने सिद्धि पाई थी, इसमें स्नान करने से तुम्हारे सब पाप दूर होजायँगे ६ इसके आगे वह भृगुतुङ्ग पर्वत पर पुण्यजल से भराहुआ सरोवर है जिसको उष्णी गङ्गा कहते हैं, उसमें भी मन्त्रियों के साथ चलकर स्नान करो ७ और वह देखो, स्थूलशिरा मुनि का रमणीक आश्रम है, वहां मान और क्रोध को छोड़कर चलना ८ और उसके आगे वह रैभ्यऋषि का श्रीमान् आश्रम है जहां भरद्वाज का पुत्र यवक्रीत नामी मारागया था ९ हे पाण्डवेय ! यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज ! प्रतापी भरद्वाज ऋषि कैसे योगी हुए थे और उनका पुत्र यवक्रीत किस कारण से मारागया १० मैं इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं, मुझको देवताओं के तुल्य ऋषियों के कर्मों के सुनने से बड़ी प्रसन्नता होती है ११ यह सुनकर लोमश ऋषि बोले कि भरद्वाज और रैभ्यऋषि दोनों परम मित्र थे, और आपस में परस्पर प्रीति रखकर यहीं रहा करतेथे १२ रैभ्य ऋषि के दो पुत्र थे, एक का नाम अर्वावसु और दूसरे का नाम परावसु था और भरद्वाज के यवक्रीत नामी एक पुत्र था १३ रैभ्यऋषितपस्वी और विद्वान् थे और अपने पुत्र और शिष्यों को वेदाध्ययन कराया करते थे,

उनके पुत्रों की कीर्ति वेदाध्ययन के कारण से बाल्यावस्था ही से अतुल होगई थी, यवक्रीत अपने पिता को असत्कृत और तप में वर्तमान और रैभ्य ऋषि को पुत्रसहित ब्राह्मणों से सत्कृत देखकर महाक्रोधित और दुःखी हुआ और अपने चारों ओर अग्नि जलाकर विना पढ़े वेद का ज्ञान होने के लिये तपस्या करने लगा, उसके तप को देखकर इन्द्र को बड़ा दुःख हुआ १४।१७ हे युधिष्ठिर! उसने यवक्रीत के पास आकर पूछा कि तुम ऐसा घोर तप किस प्रयोजन से करते हो १८ यवक्रीत बोला कि महाराज! मैं चाहता हूं कि ब्राह्मण और गुरु से विना पढ़े सब वेद और शास्त्र मुझको आजावें, क्योंकि गुरु के पास जाकर पढ़ने में बहुत काल व्यतीत होता है इससे मैंने यह श्रेष्ठ यत्न विचारा है १९।२१ यह सुनकर इन्द्र बोला कि यह मार्ग ठीक नहीं है, जिसको तुम कर रहे हो, वृथा कष्ट करने से कुछ लाभ नहीं होगा जाओ, गुरु से जो विद्या चाहो सो पढ़ो २२ लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इन्द्र उक्त प्रकार से कहकर चला गया परंतु यवक्रीत उसकी बात को न मानकर तपस्या करने लगा २३ हमने सुना है कि उसने ऐसी घोर तपस्या की कि इन्द्र उसके तप से अत्यन्त तपित हो गया और फिर यवक्रीत के पास आकर उसे तपस्या करने से निषेध करके कहने लगा २४।२५ कि तुमने ऐसे काम के लिये तपस्या का आरम्भ किया जो हो नहीं सकता है, यह बात बुद्धिमानी की नहीं है, इस प्रकार से तुमको या तुम्हारे पिता को वेद नहीं आसकते हैं २६ यह सुनकर यवक्रीत बोला कि हे मघवन्! जो आप मेरी मनोकामना को पूरी नहीं करेंगे तो मैं बड़े नियम से अति घोर तपस्या करूंगा और अपने शरीर को काट काट कर होम दूंगा २७।२८ लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे इन्द्र ने महात्मा यवक्रीत के निश्चय को जानकर उसे तपस्या करने से रोकने के लिये बुद्धि से विचारकर अपना स्वरूप एक तपस्वी ब्राह्मण का सा जिसकी आयु सैकड़ों वर्ष की और शरीर अतिदुर्बल और यक्ष्मा रोग से ग्रसित दीखता था बना लिया और गङ्गा तट पर जहां यवक्रीत स्नान करने को जाया करता था, जा बैठा और गङ्गा में रेत की मुट्ठी भर भर के इस प्रयोजन से डालने लगा कि यवक्रीत को यह बात ज्ञात होवे कि वह वृद्ध ब्राह्मण गङ्गा का पुल बांधना चाहता है २९।३२ इसके पीछे जब यवक्रीत स्नान करने को गया तब उसने उस वृद्ध ब्राह्मण को बालू से पुल बांधने में उद्यत देखकर हँसकर कहा ३४ कि हे ब्रह्मन्! आप यह क्या कर रहे हैं? इस कार्य में तुम्हारा

यत्न और परिश्रम निरर्थक है ३५ यह सुनकर वह वृद्ध ब्राह्मण बोला कि मनुष्यों को गङ्गा के पार जाने में बड़ा क्लेश होता है इसलिये मैं पुल बांधना चाहता हूं जिससे यह मार्ग सुखदायी हो जाय ३६ यवक्रीत बोला कि गङ्गा का प्रवाह बहुत है इसमें इस प्रकार से पुल नहीं बँध सकता है, इससे तुम इस असम्भव कार्य को छोड़कर ऐसा काम करो, जिसका होना सम्भव हो ३७ वृद्ध ब्राह्मण बोला कि वेदों को विना पढ़े जानने के लिये आपका भी तप करना निरर्थक है, सो जैसे आप अशक्य पदार्थ को प्राप्त करने के लिये परिश्रम कर रहे हैं उसी प्रकार से मैंने भी यह भार अपने ऊपर उठा लिया है ३८ यवक्रीत बोला कि आप इन्द्र हैं जो आप मेरे परिश्रम को भी अपने परिश्रम की भांति निष्फल समझते हैं, तो जो बात सम्भव हो वह कीजिये अर्थात् और कोई वरदान दीजिये जिससे मैं दूसरे मनुष्यों को नांघकर प्रतिष्ठा पाऊं ३९।४० लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे इन्द्र ने उसे वरदान दिया कि जो तुझे और तेरे पिता जैसे चाहेंगे वैसे ही वेद आ जायँगे और जो कुछ तू और इच्छा करेगा वह भी पूरी होगी, इस प्रकार से वर पाकर यवक्रीत अपने पिता के पास आया और कहने लगा ४१।४२ कि आपको और मुझको दोनों को वेद इच्छा के अनुसार आ जायँगे और हमारी आपकी दूसरे मनुष्यों से अधिक प्रतिष्ठा होगी मुझे इन्द्र ने ऐसा ही वरदान दिया है ४३ यह सुनकर भरद्वाज बोले कि हे पुत्र ! तैंने अपनी इच्छा के अनुसार वरदान पाया है इससे तुझको अभिमान होगा और अभिमान के कारण से तेरा शीघ्र नाश हो जायगा ४४ देख इस विषय में मैं तुझको देवताओं की कही हुई एक कथा सुनाता हूं; अगले समय में एक बालधि नाम बड़े पराक्रमी मुनि हुए थे ४५ उन्होंने पुत्र के शोक में बड़ी कठिन तपस्या की, इस प्रयोजन से कि मेरा पुत्र अमर होजाय, देवता उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए और उसे यह वरदान दिया कि संसारी जीव अमर नहीं हो सकते हैं और न देवताओं के समान हो सकते हैं हां, तेरे पुत्र के निमित्त आयु हो सकती है ४६।४७ तब बालधि ने कहा कि बहुत श्रेष्ठ यह पर्वत निरन्तर स्थित है इस को निमित्त मानकर मेरे पुत्र की आयु कर दीजिये अर्थात् जब तक यह पर्वत रहे तब तक मेरा पुत्र न मरे ४८ भरद्वाज बोले हे यवक्रीत ! इसके पीछे उस मुनि के एक क्रोधी पुत्र उत्पन्न हुआ कि जिसकी शास्त्रों में बड़ी धारणा बुद्धि थी, वह उस वरदान को सुनकर अभिमान करके ऋषियों का अपमान करने लगा ४९

एक समय वह पृथ्वी पर घूमते घूमते और ऋषियों का अपमान करते महाबलशाली, बुद्धिमान् धनुषाक्ष नाम ऋषि के पास पहुँचा ५० और उस ऋषि का भी उसने अपमान किया, उस ऋषि ने अपमान के कारण से शाप दिया कि तू भस्म होजा परंतु वह भस्म नहीं हुआ ५१ तब धनुषाक्ष ने उसके निमित्त पर्वतों को भैंसाओं से खण्ड खण्ड कराडाला उन निमित्त पर्वतों के नष्ट होने से वह बालधि का पुत्र अकस्मात् मरगया तब उसका पिता उस मृतक को लेकर विलाप करने लगा ५२।५३ उसके विलाप को देखकर वेदपाठी ऋषियों ने यह कहा कि मनुष्य किसी अवस्था में दैव की रची हुई बात को उल्लंघन नहीं कर सकता है, देखो, धनुषाक्ष ने भैंसाओं से पर्वतों को गिरवा दिया ५४।५५ सो हे यवक्रीत ! जिस प्रकार से बालक तपस्वी लोग वरदान पाकर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार से तू नष्ट मत हो जाइयो ५६ देखिये रैभ्य ऋषि और इसके दोनों पुत्र बड़े पराक्रमी हैं, तू सावधानी से रहियो और इनसे किसी प्रकार से मत भिड़ियो ५७ यह रैभ्य ऋषि बड़ा क्रोधी है और पीड़ा देने की सामर्थ्य रखता है क्योंकि वह तपोबल रखता है ५८ यह सुनकर यवक्रीत बोला कि बहुत अच्छा, आप चिन्ता न कीजिये; मैं ऐसा ही करूंगा, रैभ्य ऋषि भी मेरे उसी प्रकार से मान्य हैं जैसे आप हैं ५९ लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! यवक्रीत उक्त प्रकार से अपने पिता से मीठी मीठी बातें कहकर निर्भयता के साथ दूसरे ऋषियों का अपमान करता हुआ आनन्दपूर्वक विचरने लगा ॥ ६० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

एकसौ छत्तीसवाँ अध्याय।

यवक्रीत का रैभ्यऋषि की पुत्रवधू से भोग करना, रैभ्य ऋषि के क्रोध से उत्पन्न राक्षस एक स्त्री-पुरुष द्वारा यवक्रीत का मारा जाना।

लोमश ऋषि बोले कि हे युधिष्ठिर ! थोड़े दिनों में एक समय वैशाख के महीने में यवक्रीत घूमता हुआ रैभ्य ऋषि के आश्रम में गया १ हे भरतवंशिन् ! वहां के रमणीक स्थान और फूले हुए वृक्षों में रैभ्य ऋषि की पुत्रवधू को किन्नरी के समान घूमते हुए देखकर कामासक्त होगया और लज्जा छोड़कर उस लज्जित स्त्री से बोला कि मेरे पास खड़ी रह २। ३ वह स्त्री उसके स्वभाव को जानकर और शाप से डरकर रैभ्य ऋषि के तेज को समझ कर 'तथास्तु' कहकर उसके पास चली गई ४ हे युधिष्ठिर ! तब यवक्रीत उसको एकान्त स्थान में ले गया और

उसको शोकरूपी समुद्र में डुबाकर चला आया जब रैभ्य ऋषि अपने आश्रम में आये और उन्होंने अपने परावसु पुत्र की स्त्री को दुःखी देखा तब उन्होंने उसे धैर्य देकर शोक करने का कारण पूछा ५ । ६ उस स्त्रीने यवक्रीत की सब व्यवस्था कह सुनाई, उसको सुनकर रैभ्य ऋषि के हृदय में अग्नि के समान महान् क्रोध हो आया ७ । ८ और उसके आवेश में उन तपस्वी, कोपशाली ने अपनी जटा का एक बाल उखाड़ कर मन्त्र से अग्नि में होम दिया, उससे तत्काल एक स्त्री प्रकट हो गई तब रैभ्य ऋषि ने दूसरा बाल उखाड़ कर उक्त प्रकार से होमा और उससे एक घोर नेत्र और भयानक स्वरूप रखनेवाला राक्षस प्रकट होगया, वे दोनों रैभ्य ऋषि से बोले कि महाराज ! हमको क्या आज्ञा है ९ । ११ रैभ्य ऋषि ने क्रोधित होकर कहा कि तुम दोनों यवक्रीत को मारडालो, यह सुनकर वे दोनों 'तथास्तु' कहकर चल दिये और वहां गये जहां यवक्रीत था १२ हे भारत ! तब उस कृत्या स्त्री ने अपने स्वरूप से यवक्रीत को मोहित करके उसका जल का कमण्डलु ले लिया और वह राक्षस उस जूंठे मुख और कमण्डलुरहित यवक्रीत को त्रिशूल लेकर मारने को दौड़ा १३ । १४ हे राजन् ! यवक्रीत उस दैत्य को मारने को उद्यत देखकर सरोवर की ओर दौड़ा और सरोवर को सूखा हुआ देखकर और और नदियों पर गया परंतु जहां गया तहां नदियां सूखी पाईं तब वह भयभीत होकर अपने पिता की अग्निहोत्रशाला की ओर दौड़ा और जब उस शाला में घुसने लगा तब उसको एक अन्धे शूद्र ने जो अग्निहोत्रशाला के द्वार पर रक्षा करने को नियत था पकड़कर रोक लिया १५ । १८ उसी समय वह राक्षस भी पीछे पीछे दौड़ता हुआ वहां आ पहुँचा और उसने यवक्रीत को द्वार पर ही त्रिशूल से मारकर गिरा दिया १९ उसको मारकर वह राक्षस रैभ्य ऋषि के समीप चला गया और उनकी आज्ञा पाकर उस स्त्रीसहित रहने लगा ॥ २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

एकसौ सैंतीसवाँ अध्याय ।

भरद्वाज ऋषि का पुत्रशोक में विलाप करना, रैभ्य ऋषि को शाप देना और अपने प्राण त्यागना ।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! यवक्रीत के मारेजाने के पीछे उसके पिता भरद्वाज संध्या आदि करके, होम करने को लकड़ियां लिये हुए अपने आश्रम को आये १ पहिले जब कभी भरद्वाज आते थे, तब अग्नि उनको देख-

कर प्रज्वलित हो जाया करती थी, उस दिन भरद्वाज के आने पर अग्नि प्रज्वलित नहीं हुई२ यह देखकर भरद्वाज ने उस अन्धे शूद्र से जिसको वे रखवाली करने को छोड़ गये थे पूछा कि भाई ! आज अग्नि मुझे देखकर क्यों प्रसन्न नहीं होती है और तू भी उदास सा क्यों बैठा है ? यह तो बता कि हमारे आश्रम में क्षेम कुशल है या नहीं ? कहीं हमारा अल्पबुद्धि पुत्र रैभ्य के आश्रम में तो नहीं गया था ? ये सब बातें मुझसे जल्दी कह मेरा मन शुद्ध नहीं होता है ३ । ५ यह सुनकर वह शूद्र बोला कि हां, महाराज ! आपका यह पुत्र जोकि मूढ़ मनवाला था वह रैभ्य ऋषि के आश्रम में गया था और बलवान् राक्षस से मारा हुआ यहां पड़ा सोता है ६ मैंने उस जूंठ मुख और जल चाहनेवाले आपके पुत्र को अग्निहोत्रशाला के द्वार पर भुजाओं से रोक लिया था और राक्षस त्रिशूल हाथ में लिये हुए उसके पीछे पीछे भागा हुआ आता था, मेरे रोकने पर उस राक्षस ने यहां आकर उसको त्रिशूल से पेट फाड़ मारकर गिरादिया ७ । ८ भरद्वाज उस शूद्र से अप्रिय बात सुनकर महादुःखी हुए और उस मृतक पुत्र को लेकर विलाप करने लगे ९ कि हे पुत्र ! तैंने ब्राह्मणों का हित करने के लिये इस संकल्प से तपस्या की थी कि मुझे वेद विना पढ़े आजावें १० सो महात्मा ब्राह्मणों में कल्याणशील स्वभाव और निष्पाप होकर तैंने सर्वप्राणियों में अपना स्वभाव कुटिल कर लिया ११ हे तात ! मैंने तुझे मना किया था कि तू रैभ्य ऋषि के आश्रम में मत जाइयो परंतु तैंने नहीं माना, उस काल और यमराजरूपी आश्रम में चला ही गया १२ जिसके कारण से वह तपस्वी परम दुर्मति रैभ्य मुझ वृद्ध के इकलौते पुत्र को जानने पर भी क्रोध के वश में हो गया १३ हाय! यह पुत्रशोक मुझको रैभ्य के कर्मरूप कारण से प्राप्त हुआ है, अब मैं ब्राह्मणों को छोड़ दूँगा और अपने शरीर को भी त्याग करूंगा और जैसे मैं पुत्र के शोक में मरता हूँ, इसीप्रकार से अनपराधी रैभ्य को उसका बड़ा पुत्र वेग ही मार डालेगा १४।१५ संसार में वे ही प्राणी सुखी हैं जिनके पुत्र नहीं हैं, क्योंकि वे पुत्रशोक न पाकर सुखपूर्वक बिचरते हैं १६ हाय ! मुझसे अधिक पापी कौन होगा, जो मैं पुत्रशोक से दुःखी होकर अपने मित्र को शाप देता हूँ १७ मैंने अपने पुत्र को अपनी आंख से मरा हुआ देखा और अपने मुख से अपने मित्र को शाप दिया ऐसा दुःख दूसरा कौन भोगेगा १८ लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! भरद्वाज ऋषि ने उक्त प्रकार से विलाप करके अपने

पुत्र की दाह क्रिया की और आप भी जलती हुई अग्नि में प्रवेश होकर स्वर्गवासी हुए ॥ १९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

एकसौ अड़तीसवाँ अध्याय।

राजा बृहद्द्युम्न का यज्ञ कराने के लिए रैभ्य के दोनों पुत्रों को बुलाना, रैभ्य का ज्येष्ठ पुत्र के हाथ से मारा जाना और रैभ्य के छोटे पुत्र का तपस्या करना और वरदान से भरद्वाज, यवक्रीत और रैभ्य ऋषि का जी उठना।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! इसी अवसर में राजा बृहद्द्युम्न ने जो रैभ्य ऋषि का यजमान था यज्ञ रचा १ और उस बुद्धिमान् उक्त राजा ने रैभ्य ऋषि के दोनों पुत्र अर्वावसु और परावसु और परावसु को यज्ञ कराने के लिए बुलाया २ हे कौन्तेय ! वे दोनों पिता की आज्ञा पाकर वहां गए और आश्रम में केवल रैभ्य ऋषि और परावसु की स्त्री ये दो रह गए ३ इसके पीछे परावसु अकेला अपनी स्त्री को देखने के लिए लौटकर आया और उसने वन में अपने पिता को जो काले मृग का चर्म ओढ़े हुए थे देखा ४ और नींद के आवेश में थोड़ी रात्रि रहे अँधेरे में उनको वन में फिरता हुआ देखकर अनुमान किया कि यह मृग है और अपने प्राण की रक्षा करने और सवारी न होने के कारण उसने उन्हें मारडाला ५।६ हे भरतवंशिन् ! इस के उपरान्त परावसु ने अपने पिता का प्रेतकर्म किया और उस कर्म से निश्चिन्त होकर यज्ञ में आया और अपने भाई से बोला ७ कि भाई ! मैंने पिता को मृग समझकर मारडाला है, मुझको ब्रह्महत्या लगी है, इससे तू जाकर ऐसा व्रत कर जिससे मेरी ब्रह्महत्या दूर होजाय और मैं राजा को यज्ञ कराऊँगा क्योंकि मैं अकेला इस काम को कर सक्ता हूँ और तेरी सामर्थ्य अकेले यज्ञ कराने की नहीं है ८।९ यह सुनकर अर्वावसु बोला कि बहुत अच्छा आप बुद्धिमान् राजा बृहद्द्युम्न को यज्ञ कराइये मैं जाकर ब्रह्महत्या दूर होनेवाले व्रत को करूँगा १० लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे अर्वावसु चला गया और उस ब्रह्महत्या दूर होनेवाले व्रत को समाप्त करके फिर यज्ञ में चला आया ११ परावसु भाई उसका उस को यज्ञ में आया हुआ देखकर राजा से कहने लगा ।कि इस ब्रह्महत्यारे को अपने यज्ञ में न आने दो इसको देखने से भी तुमको पीड़ा होगी। १२। १३ यह सुनकर उस राजा ने अनुचरों को

आज्ञा दी कि अर्वावसु को यज्ञशाला से निकाल दो, उन्होंने वैसाही किया, उस समय अर्वावसु वारंवार यह कहता रहा कि मैंने ब्रह्महत्या नहीं की है मेरे भाई ने की है और मैंने उसको उस हत्या से छुटाया है परंतु अनुचरों के धक्का देने और वारंवार हे ब्रह्महन् ! हे ब्रह्महन् ! कहने के कारण से उसको यह नहीं जान पड़ा कि मैंने कौनसी ब्रह्महत्या की है ? इसके उपरान्त वह तपस्वी अर्वावसु चुप होकर वहां से वन को चला गया और सूर्यप्रकाशक वेद के मन्त्र को जपकर बड़ी भक्ति से सूर्य की उग्र तपस्या करने लगा १४।१८ तब उन सूर्यदेव ने जो अविनाशी और यज्ञ में सब से पहिले भाग पानेवाले हैं, मूर्ति धारण करके उसको अपना दर्शन दिया और सब देवता और अग्निदेव ने उसके कर्म से प्रसन्न होकर यज्ञ कराने के लिए उसका वरण किया और परावसु को यज्ञशाला से निकाल दिया तदन्तर देवता और अग्निदेव ने उससे कहा कि तू वरदान माँग १६।२० तब अर्वावसु ने कहा कि मरा हुआ पिता जीजाय और उसको यह स्मरण न रहे कि मैं मारा गया था और मेरे भाई का पाप दूर हो जाय और भरद्वाज और यवक्रीत ये दोनों भी जी उठें और मुझे सौरवेद अच्छी तरह आजाय यह सुनकर देवताओं ने उसको सब वरदान दिए और उसके प्रभाव से वे सब जी उठे और वहीं प्रकट हो गए उस समय अग्नि आदि देवताओं से यवक्रीत ने पूछा कि महाराज ! मैंने वेदों को उत्तम प्रकार से पढ़ा था और व्रत भी अनेक किये थे फिर मुझ वेदपाठी और तपस्वी को रैभ्य ऋषि उस प्रकार से क्योंकर मरवाने को समर्थ हुए २१।२४ यह सुनकर देवता बोले कि तुमने वैसा कहाँ किया था जैसा कहते हो तुमने तो वेदों को विना गुरु के सुखपूर्वक पाया है और इस रैभ्य ने बड़े दुःख से बहुत काल में गुरुओं को प्रसन्न करके वेद पढ़े हैं २५।२६ लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! वे देवता उन सबको सजीव करके और यवक्रीत को उक्त प्रकार से उत्तर देकर स्वर्ग को चले गए २७ यह पवित्र आश्रम जिसमें फूले फले वृक्ष लगे हुए हैं उसी ऋषि का है, यहाँ वास करने से सब पाप दूर हो जाते हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

एकसौ उनतालीसवाँ अध्याय।

लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से अनेक पर्वतीय तीर्थों का व्याख्यान करना और युधिष्ठिर का भीमसेन को द्रौपदी की रक्षा करने की आज्ञा देना ।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! अब आगे उशीरबीज, मैनाक, श्वेतगिरि और काल नाम पर्वतों को नाँघकर सात प्रकार की गङ्गा मिलेंगी यह स्थान रजोगुण से रहित और पवित्र है, यहां अग्नि सदैव प्रज्वलित बनी रहती है १। २ अब मनुष्य इस स्थान को आये इसके तीर्थों को देख नहीं सक्ता है परंतु तुम सावधानी से समाधि लगाओ, तुमको ये तीर्थ भी दिखाई देंगे ३ और यह जो देवताओं का क्रीड़ा करने का स्थान दिखाई देता है, यहां उन देवताओं के आने जाने के चरणों के चिह्न बने हुए हैं, इसको और काल नाम पर्वत को उलंघन करना पड़ेगा ४ अब तुम श्वेत और मन्दिर नाम पर्वतों में प्रवेश कर रहे हो जहां के अधिपति मणिभद्र यक्ष और यक्षों के राजा कुबेर हैं हे युधिष्ठिर! उस मणिभद्र नाम यक्षों के इन्द्र की उपासना अट्ठासी सहस्र गन्धर्व और इतने ही किंपुरुष और इससे चौगुने यक्ष नाना प्रकार के अस्त्र लिये हुए किया करते हैं ५। ७ यहां उनको बड़ी संपत्ति है और वे वायु की-सी गति रखते हैं और ऐसे प्रबल हैं कि एकबेर इन्द्र को भी डिगामिगा देने की सामर्थ्य रखते हैं ८ हे युधिष्ठिर! ये सब पूर्वोक्त पर्वत यातुधान नामी राक्षसों से रक्षित और दुर्गम हैं इससे तुम समाधि करो और इसी ओर कुबेर के सखा रहते हैं जिनके स्वरूप उग्र और सौम्य हैं, उनसे मिलने के लिए पराक्रम सहित तैयार रहो ९। १० इसके आगे साठि योजन ऊँचा कैलास नामी पर्वत है और वह विशाल बदरी नाम आश्रम है जहां देवता आया करते हैं ११ वहीं कुबेर पुरी में असंख्य यक्ष, राक्षस, किन्नर, नाग, सुपर्ण और गन्धर्व रहते हैं १२ हे युधिष्ठिर! अब इन स्थानों को मेरे और भीमसेन के बल से रक्षित होकर अपने तप और दम के द्वारा मंझाओ; वरुण, यमराज, गङ्गा, यमुना, पर्वत, अश्विनीकुमार मरुद्गण, नदियां, सरोवर, देवता, असुर और अष्टवसु तुम्हारा कल्याण करें १३। १५ हे देवि, गङ्गे! मैं तेरी अति मनोहर धड़धड़ाहट को सुमेरु पर्वत से सुन रहा हूँ हे सुभगे! तू इस अजमीढ़वंशी राजा युधिष्ठिर की पर्वतों से रक्षा कर यह राजा पर्वतों में प्रवेश करना चाहता है, हे शैलपुत्री! इसका कल्याण कर, इस प्रकार से आशीर्वाद देकर लोमशऋषि ने युधिष्ठिर से कहा कि अब

सावधान होकर रहो १६ । १७ तब युधिष्ठिर ने कहा कि भाइयो ! लोमशजी ने ये अपूर्व भय की बातें कही हैं और इस देश को वे कहते हैं कि बड़ा दुर्गतम है अर्थात् जाने के योग्य नहीं है इससे प्रमाद को छोड़कर परम शौच अर्थात् मन आदि की शुद्धि और द्रौपदी की रक्षा करो १८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि भाई द्रौपदी की रक्षा बड़ी सावधानी से करो यह द्रौपदी भय के प्राप्त होने पर अर्जुन के वियोग में तुम्हारा ही स्मरण यहां करती है १९ यह सुन कर युधिष्ठिर नकुल और सहदेव के पास गया और प्यार से उन के मस्तक को सूंघकर उनसे कहने लगा कि तुम दोनों भी सावधानी से चलो किसी बातका भय मत करो॥२०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

एकसौ चालीसवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिर और भीमसेन का आपस में पर्वतीय तीर्थों की यात्रा करने के लिये
यह सलाह करना कि कौन चलने के योग्य है और कौन नहीं है और
फिर गन्धमादन पर्वत की यात्रा करना ।

युधिष्ठिर बोले हे भीमसेन ! यहां पर बड़े बड़े बलवान् प्राणी गुप्त विचरा करते हैं, इससे अब अग्नि को साथ लेकर पवित्रता से चलना चाहिये १ और तुम भीमसेन अपने बल के आश्रय से भूंख और प्यास की चिन्ता को दूर करो ऐसा करने से ही तुम्हारा बल और तुम्हारी चतुरता बनी रहेगी २ हे भीमसेन ! तुम लोमशऋषि के मुख से कैलासपर्वत का हाल सुनही चुके हो, अब बुद्धि से यह विचारो कि वहां द्रौपदी कैसे चल सक्ती है ३ हमारी समझ में तो यह आता है कि तुम सहदेव, द्रौपदी और सब भृत्यगण अर्थात् नौकर चाकर और ब्राह्मण लोग जो कठिन राह के क्लेश को सह नहीं सकते हैं लौट जाओ और हम और तपस्वी लोमशऋषि और नकुल तीनों थोड़ा आहार करनेवाले चले जायँ ४।६ तुम द्रौपदी की रक्षा करते हुए सब समाज सहित हमारे लौटने तक हरिद्वार में रहना ७ यह सुनकर भीमसेन बोले कि महाराज ! यह हारी थकी द्रौपदी अर्जुन को देखने की इच्छा से जाती है ८ कि जिस महात्मा और युद्ध में मुख न मोड़नेवाले अर्जुन को विना देखे आपको भी महादुःख हो रहा है ९ जब आप मुझको द्रौपदी को और सहदेव को न देखेंगे तब आपको और भी दुःख होगा इससे चाहे सब ब्राह्मण और नौकर चाकर लोग और जिस किसी और

को आप चाहें लौटा देवें परंतु मैं इन राक्षसों से व्याप्त पर्वत और कठिन स्थानों में आपको अकेला छोड़ना नहीं चाहता हूं और यह बड़भागिनी पतिव्रता द्रौपदी भी १०।१२ आपके विना न लौटेगी और सहदेव भी आपका परम भक्त है, मैं इसके चित्त की वृत्ति को जानता हूं; यह भी आपको छोड़कर न लौटेगा; सिवाय इस बात के हम सब ही अर्जुन को देखने की लालसा रखते हैं, इससे हम सब आपके साथ ही चलेंगे और जो वहां रथ न जा सकेंगे तो हम सब पैदल भी चलेंगे, आप द्रौपदी की ओर से चिन्ता न कीजिये, मैं उस को जहाँ जहाँ वह न चल सकेगी गोदी में उठाकर ले चलूँगा १३।१६ हे राजन्! इसी प्रकार से कठिन कठिन स्थानों में नकुल और सहदेव को भी उठाकर पार करूंगा, आप किसी बात की चिन्ता न कीजिये १७ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि तुम्हारे पराक्रम की वृद्धि होय, जो तुम इस प्रकार का साहस करने को कहते हो कि मैं द्रौपदी, नकुल और सहदेव को गोदी में उठा उठा कर दुर्गस्थानों में पार करूंगा तुम्हारा कल्याण हो यह बात हमने दूसरे मनुष्य में नहीं देखी ईश्वर करे तुम्हारा यश, धर्म और कीर्ति बढ़े १८।१९ और तुम ग्लानिरहित होकर पराभव अर्थात् नाश न पाओ २० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे द्रौपदी ने हँसकर कहा कि महाराज! मैं सुखपूर्वक चलूंगी, आप मेरी ओर की चिन्ता न कीजिये २१ लोमश ऋषि बोले कि इस गन्धमादन पर्वतपर विना तप का तेज रखनेवाला नहीं चढ़ सकता है इससे हम सबको नियम करके भय से युक्त होना चाहिये वहां जाने पर हम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और भीमसेन अर्जुन को देख सकेंगे २२।२३ वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! पाण्डव उक्तप्रकार से प्रसन्नतापूर्वक बातें करते हुए राजा सुबाहु के देश में पहुँचे, जो बहुत से हाथी और घोड़ों से युक्त था ४२ और जहां हिमालय पर्वत के निकट बहुत से किरात, तङ्गण और पुलिन्द जाति के मनुष्य रहते थे उस देश का राजा सुबाहु पाण्डवों को अपने देश की सीमापर आये हुए सुनकर आदर सहित लिवाले गया और वे उसके यहां उससे पूजित होकर रात्रि को सुख से बसे २५।२६ सूर्योदय होते ही उन्होंने इन्द्रसेन आदि नौकर रसोइये और द्रौपदी के दासों को राजा पुलिन्द को रक्षा के लिए सौंपदिया और आप सब द्रौपदी सहित अर्जुन के देखने की इच्छा से पैदल होकर धीरे धीरे प्रसन्नता से हिमालय पर्वत की ओर चल दिये॥ २७।३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४०॥

एकसौ इकतालीसवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिर का गन्धमादन पर्वत पर जाने को यात्रा करना और राह में अर्जुन के वियोग में अनेक प्रकार की बातें कहकर दुःखी होना ।

राह में चलकर युधिष्ठिर बोला कि हे भीमसेन ! हे नकुल ! हे सहदेव! हे द्रौपदि ! मेरी बात समझो और निश्चय जानो कि पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का नाश नहीं होसक्ता है, देखो हम सब वनचारी और दुर्बल कैसे क्लेशित हैं और असमर्थ होनेपर भी अर्जुन को देखने की लालसा से एक दूसरे को उठा उठाकर चलरहे हैं १ । २ अर्जुन के वियोग के कारण से मेरे सब अङ्ग इस प्रकार से दग्ध होरहे हैं जैसे रुई की राशि में अग्नि लग जानेपर सुलगा करती है ३ और इस क्लेशपर भी मैं छोटे भाइयों सहित वनवासी और अर्जुन के देखने का प्यासा हो रहा हूं द्रौपदी के बाल पकड़े जाने का दुःख और भी सताता है ४ हे भीमसेन ! मेरे दुःख का कारण केवल यही है कि मैं अपने पास उस नकुल से बड़े भाई अर्जुन को जो अजेय, महातेजस्वी और उग्र धनुर्धारी है नहीं देखता हूं ५ उसी को देखने के लिए मैं तुम सबको लियेहुए वन तीर्थ और सरोवरों पर फिर रहा हूं ६ हे भीमसेन ! मैं उस वीर और सत्यप्रतिज्ञ अर्जुन को न देखने के कारण दुःखी हूं ७ मेरे शोक का कारण यही है कि मैं अपने पास उस श्याम, सिंहविक्रान्तगामी और महाबाहु अर्जुन को नहीं देखता हूं ८ हे भीमसेन ! मुझे उस अस्त्रज्ञ, युद्ध में निपुण और धनुर्द्धारियों में अप्रमित अर्जुन के देखे विना चैन नहीं पड़ती है ९ मेरे जीव को पीड़ा इसीसे है कि मैं अपने निकट उस अर्जुन को नहीं देखता हूं जो समय पर शत्रुओं के बीच में यमराज के तुल्य घूमनेवाला, क्रोधित होनेपर मतवाले हाथी के समान, सिंहस्कन्ध इन्द्र के समान पराक्रमी, सहदेव से बड़ा भाई श्वेत घोड़े रखनेवाला, कुन्ती का पुत्र, अजेय और उग्र धनुर्द्धारीहै १० । १२ हे वृकोदर ! वह अर्जुन ऐसा क्षमावान् और शीलस्वभाव है कि छोटे मनुष्य से भी खोटे वचन सुनकर सीधे मार्ग पर चलनेपर उसे अभय करदेता है १३ पराक्रम उसका ऐसा है कि जो इन्द्र भी उसे कुटिलता और छल से मारना चाहे तो वह उसके लिए भी काल और विषरूप होजाता है १४ और बड़ा बुद्धिमान्, महाबली, दयावान्, प्रतापी, शरणागत शत्रु को अभय करनेवाला, हम सबका, आश्रय, रण में शत्रुओं को मारनेवाला, सब रत्नों का लानेवाला और हम सबका सुखदायी है १५ । १६ देखो,

वही पहिले मेरे लिए दिव्य और अनेक प्रकार के रत्न अपने पराक्रम से लाया था, जो अब दुर्योधन के पास हैं १७ हे पाण्डुनन्दन! उसीकी भुजा के बल से मेरी रत्नजटित सभा बनी थी, जो तीनों लोकों में विख्यात है १८ शूरवीरता में वह वासुदेवजी के तुल्य और युद्ध में कार्तवीर्य के समान अजेय है, मैं उसको अब अपने निकट नहीं देखता हूं १९ हे भीमसेन! वह शत्रु का मारनेवाला अपने पराक्रम से महापराक्रमी बलदेवजी श्रीकृष्णजी और तुम्हारे पीछे चलनेवाला हुआ था, उसका प्रभाव और भुजाबल इन्द्र के तुल्य, वेग वायु का सा, शोभा चन्द्रमा की-सी और क्रोध मृत्यु के समान है २० । २१ अब हम सब उस अर्जुन को देखने के लिए गन्धमादन पर्वत पर जायँगे जहां श्रीनारायण का विशाल बदरी नाम आश्रम है और उस उत्तम पर्वत को देखेंगे, जिस पर यक्ष सदैव रहा करते हैं २२ । २३ और वहां से तप करते हुए पैदल ही कुबेर देवता की पुष्करणी की यात्रा करेंगे, जो बड़ी रमणीक है और जहां राक्षस रहा करते हैं २४ हे भीमसेन! उस देश में लोभी, दयाहीन और अशान्त पुरुष नहीं जासक्ते हैं परंतु हम सब खड्ग आदि आयुध लिये हुए इन महाव्रती ब्राह्मणोंसहित वहां जायँगे २५।२६ जो मनुष्य अपवित्र होता है, उसको वहां जानेपर मक्षिका, दंश, मच्छर, सिंह, व्याघ्र और सर्प मिलते हैं और जितेन्द्रिय मनुष्य को ये नहीं दिखाई देते हैं २७ इससे हम सबको अर्जुन के देखने की इच्छा से शुद्ध अन्तःकरण और नियतात्मा होकर गन्धमादन पर्वत पर चलना चाहिये ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

एकसौबयालीसवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का अनेक तीर्थोंपर होतेहुए गन्धमादन पर्वत की यात्रा करना और लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से नरकासुर दैत्य के मारेजाने और विष्णु के वाराह अवतार लेकर पृथ्वी के उठाने की कथा वर्णन करना ॥

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! तुम सब पहाड़, नदी, पुर, कानन वन और श्रीमान् तीर्थों को देखना चाहतेहो, इससे विधिपूर्वक आचमन करके चलो १ हे पाण्डवो! देखो, यह राह मन्दर नाम पर्वत को गई है, अब तुम सब उद्वेग छोड़कर सावधान होजाओ २ इस पर्वतपर देवता और पुण्यकर्मा दिव्य ऋषियों का निवास है, इससे तुमको वहां पवित्रता से चलना चाहिये, देखो यह शिवजला और पुण्यरूपा महानदी जो बदरी से उत्पन्न हुई है और जिसपर देव

ऋषि रहाकरते हैं, जारही है ३। ४ आकाशचारी महात्मा बालखिल्य ऋषि और गन्धर्व लोग इस नदी को पूजते हैं और अपने मनकी कामना को सिद्ध करने के लिए इसकी प्रार्थना करते हैं यहां पवित्र ध्वनि वाले सामवेदी ब्राह्मण और मरीचि,पुलह,भृगु और अङ्गिरा आदि ऋषि लोग सामवेद के मन्त्रों को गाया करते हैं ५। ६ यहीं पर इन्द्र मरुद्गणों को लेकर अपना नित्यकर्म करते हैं और उस समय साध्यगण और दोनों अश्विनीकुमार उनकी सेवा करते हैं ७ और सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारागण इस महानदी पर कोई रात्रि और कोई दिन में आया करते हैं ८ गङ्गाद्वार पर इस महानदी के जल को शिवजीने अपने मस्तकपर धारण किया था जिनसे ये संपूर्ण लोक स्थित हैं ९ सो हे युधिष्ठिर! तुम सब सावधान होकर इस भगवती देवी गङ्गा के सम्मुख जावो और दण्डवत करो १० यह उन महात्मा लोमशजी का वचन सुनकर युधिष्ठिर ने सब भाइयों सहित गङ्गाजी को दण्तवत् की और वहांसे प्रसन्नतापूर्वक सब ऋषिगणों के साथ आगे को चलदिये ११। १२ थोड़ी दूर पर जाकर उन नरनायकों ने दूर से चमकते हुए पाण्डुवर्ण के मेरु के समान चारों दिशाओं में फैले हुए पहाड़ से देखे १३ देखकर पाण्डवों ने लोमशऋषि से उनका वृत्तान्त पूछना चाहा परंतु उसको लोमशऋषि उनके चित्त की वृत्ति को जानगये और कहनेलगे कि हे पाण्डवो! १४ ये जो कैलास पर्वत की चोटी के समान फैले हुए सुशोभित पहाड़ से दिखाई दे रहे हैं ये नरक नामी दैत्य के हाड़ हैं, पहाड़ के ऊपर पड़े होने के कारण से पर्वतरूपी दिखाई दे रहे हैं १५। १६ वह दैत्य पुरातन पुरुष श्रीविष्णु भगवान् के हाथ से, जो परमात्मा और इन्द्र का हित चाहनेवाले हैं, मारागया था १७ उसने दशसहस्र वर्ष तपस्या करके इन्द्र का इन्द्रासन लेना चाहता था और अपने पराक्रम और तपोबल के कारण से निर्भय रहता था और दूसरे लोग उससे भयभीत रहते थे १८। १९ हे निष्पाप! जब इन्द्र उसके बल और धर्म व्रत को जानकर भय से दुःखी और व्याकुल हुआ, उस समय उसने अपने मन में सर्वव्यापी और अविनाशी विष्णु भगवान् का ध्यान किया, ध्यान करते ही विष्णु भगवान् वहां आन पहुँचे और इन्द्र के सम्मुख खड़े होगये २०। २१ देवता और ऋषियों ने उन की स्तुति की और उनके प्रज्वलित तेज से अग्निदेव का तेज नष्ट होगया इस के पीछे इन्द्र ने उन वरदाता विष्णु को देखकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया और नम्रता से विनय पूर्वक अपना तत्त्व वचन अर्थात् प्रयोजन निवेदन किया, जिस

के कारण से वह भयभीत होरहा था २२।२४ विष्णुभगवान् उसकी प्रार्थना को सुनकर बोले कि मैं जानता हूं कि तुमको नरकासुरका भय होरहा है, जो तपस्या करके इन्द्रलोक लेना चाहता है २५ सो हे देवेन्द्र! मैं तुम्हारी प्रीति के कारण से उस दैत्य को एक मुहूर्त्त में ही मारेडालता हूं यद्यपि उसने तप से सिद्धि प्राप्त करली है २६ यह कहकर विष्णु भगवान् नरकासुर दैत्य के पास गए और उसके प्राणों को थप्पड़ मार मार कर हरलिया तब वह दैत्य निर्जीव होकर पहाड़ के समान पृथ्वीपर गिरपड़ा २७ सो हे युधिष्ठिर! यह समूह उसी दैत्य के हाड़ों का है और विष्णु भगवान् ने दूसरा उत्तम काम यह किया था कि इस पृथ्वी के पाताल में डूब जाने पर अपना एक सींगवाला वाराहरूप धारण करके इसको उसी सींगपर उठा लिया था २८। २९ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज! इस कथा को विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये विष्णु भगवान् ने इस पृथ्वी को सौ योजन ऊंचा क्योंकर उठाया था और यह अबला जगत् को धारण करनेवाली कल्याणरूपा सब प्रकार की खेती की उपजानेवाली पृथ्वी देवी सौ योजन नीचे को कैसे और किसके प्रभाव से चली गई थी और परमात्मा विष्णु भगवान् के इस चरित्र को किसने देखा था? इन सब बातों को आप कृपा करके विस्तारपूर्वक सुनाइये क्योंकि आप इस कथा को अच्छीतरह जानते हैं ३०। ३३ यह सुनकर लोमश ऋषि बोले कि हे युधिष्ठिर! अच्छा, हम इस कथा को विस्तारपूर्वक कहते हैं सुनो ३४ जिन दिनों में अभयकर्ता सत्ययुग वर्तमान था, उन दिनों में यमराज का काम श्रीदेवदेवेश आदिदेव अच्युत विष्णु भगवान् किया करते थे; उस समय संसार में जीवउत्पन्न तो होतेथे परंतु मरता कोई न था ३५। ३६ इस कारण से सब पक्षी, मेढ़ा, गौ, घोड़ा, मृग आदि पशु मांसाहारी जीव और मनुष्य दिनप्रति जल की भांति बढ़ते चले जाते थे ३७। ३८ थोड़े ही दिनों में इतने बढ़गये कि उनके बोझ से पृथ्वी सौ योजन नीचे को चलीगई ३९ और अत्यन्तदुःखी और बोझसे अचेत होकर उसने सुरनायक श्रीनारायण की शरण ली ४० और विनय करने लगी कि महाराज! जो आप कृपा करें तो मैं यहां बहुत दिनों तक ठहरूं, मैं अब बोझ के कारण से स्थित नहीं रहसक्ती हूं ४१ आप समर्थ हैं, मेरे ऊपर कृपा कीजिये, मैं आपकी शरण हूं, आप मेरे इस बोझ को दूर कीजिये ४२ अविनाशी सर्वशक्तिमान् नारायण उसके विनययुक्त वचनों को सुनकर बोले ४३ कि हे पृथिवि! हे वसुधे! तू बोझ के कारण से

दुःखी मत हो ! मैं तुझे हलका करने का उपाय करता हूं ४४ ऐसा कहकर नारायण ने उस पर्वतरूप कुण्डलधारी पृथ्वी को बिदा किया और अपना स्वरूप वाराह का जिसके एक सींग था, धारण किया ४५ और उसी स्थान पर अपने प्रकाशित रक्तनेत्रधारी और भयानक शरीर को धूम्र के तोम के समान बड़ा किया ४६ इसके उपरान्त भगवान् ने अपने सींग पर उस पृथ्वी को उठाकर सौ योजन ऊंचा कर दिया ४७ उठाने के समय पृथ्वी ऐसी डगमगाई कि सब देवता और तपस्वी, ऋषि उसके डगमगाहट से व्याकुल हो गये ४८ और स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी पर हाहाकार मच गया, उससमय किसी मनुष्य को सावधानी नहीं रही ४९ इसके उपरान्त सब देवता और ऋषि ब्रह्माजी के पास गये और उनसे हाथ जोड़कर विनय की ५० । ५१ कि महाराज ! सब लोक और समुद्र क्षोभित हो रहे हैं और सब चर-अचर जीव व्याकुल हैं, इस पृथ्वी को किसने और किसके प्रभाव से सौ योजन ऊंचा उठाया है और यह बात क्या है ? जो सब जगत व्याकुल हो रहा है, हम सब भी इसको देखकर अचेत से हो रहे हैं, आप इसका कारण शीघ्र हम लोगों से कहिये ५२।५३ यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि हे देवताओ ! तुम डरो मत और न असुरों का भय करो पृथ्वी के डगमगाने का कारण यह है सुनिये, जो वह श्रीमान् वेदात्मा भगवान् सर्वत्रगामी होकर टिका रहता है उसी के प्रभाव से स्वर्लोक का हिलना हुआ है ५४ । ५५ कि यह पृथ्वी सौ योजन नीचे को चली गई थी; अब उसको सर्वव्यापी वाराह भगवान् ने जो परमात्मा विष्णु का स्वरूप हैं ऊपर को उठाया है उसी से यह पृथ्वी डगमगा रही है तुमलोग अपने संदेह को दूर करो ५६ । ५७ यह सुनकर देवता बोले कि महाराज ! वह देश कहां है जहां आदिपुरुष विष्णु ने पृथ्वी को उठाया है ? हमलोग भी वहां जाना चाहते हैं ५८ ब्रह्माजी बोले कि यह बड़े हर्ष की बात है, जाओ तुम्हारा कल्याण हो और नन्दनवन में वाराह भगवान् के दर्शन करो वहां गरुड़जी उपस्थित हैं और विष्णुभगवान् वाराह रूप से पृथ्वी को उठाये हुए कालाग्नि के समान प्रकाशित हो रहे हैं ५९ । ६० उनकी छाती पर श्रीवत्सचिह्न शोभा दे रहा है तुम सब देवता वहां जाकर उस अविनाशी स्वरूप के दर्शन करो ६१ लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे सब देवता वाराह भगवान् के दर्शन करके ब्रह्माजी सहित अपने अपने लोकों को चले गये ६२ वैशंपायनजी बोले हे राजा

जनमेजय ! पाण्डव उक्त कथा को सुनकर लोमश ऋषि की आज्ञा से प्रसन्नता पूर्वक आगे को शीघ्रता के साथ चलने लगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

एकसौतेतालीसवां अध्याय।

पाण्डवों का अनेक पर्वत और नदी आदि को देखते हुए गन्धमादन पर्वत के समीप पहुँचना और वहां बड़ी आँधी और मेह का आना।

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे वे धनुषधारी, शूरवीर, पाण्डव धनुष, तरकस, बाण और खड्ग बांधे हुए गोधांगुलित्र अर्थात् चमड़े के हस्तत्राण पहिरे हुए द्रौपदी-सहित सब ब्राह्मणों को साथ लिये हुए गन्धमादन पर्वत की ओर चले १ । २ और पहाड़ों के ऊपर सरोवर, नदी, वन और छाया दार वृक्षों को देखते हुए आत्मा में अपना मन लगाकर फल-मूल भोजन करते हुए फूले फले वृक्षों से युक्त देश और नाना प्रकार के नीचे ऊंचे कठिन स्थान और अनेक प्रकार के मृगों को अवलोकन करते हुए उस पर्वत पर पहुँचे जहां महात्मा ऋषि, सिद्ध, देवता, गन्धर्व, अप्सरा और किन्नर रहा करते थे ३ । ६ वहां से चलकर वे पाण्डव गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे, उनके पहुँचते ही प्रचण्ड वायु चलने लगी और बड़ी वर्षा हुई, और उसने अकस्मात् पृथ्वी और आकाश को धूल से ढक दिया ७ । ८ उसके कारण से कुछ दिखाई न देने लगा और वे एक दूसरे से बात चीत न कर सके ९ तदनन्तर हे भरतवंशिन् ! पत्थरों की रज वायु से उड़ने लगी और उन सबोंने अपनी अपनी आंखें बन्द कर लीं और एकदूसरे को न देख सके १० उस समय वे सब वायु से वृक्षों के टूटने और उड़ उड़ कर पहाड़ों पर गिरने के शब्द को सुनकर आश्चर्यपूर्वक कहने लगे कि यह क्या है ? पृथ्वी फटती है या आकाश गिरता है या पर्वत विदीर्ण होता है ११ । १२ और हाथों से राह के वृक्ष बल्मीक और नीचे ऊंचे स्थानों को टटोल टटोलकर चिपट रहे १३ उस समय महा बलवान् भीमसेन धनुष लेकर एक वृक्ष के सहारे से द्रौपदी के पास खड़ा हो गया १४ और युधिष्ठिर और धौम्यऋषि महावन में जा छिपे और सहदेव अग्निहोत्र को लेकर पर्वत में छिप रहा १५ और नकुल और महातपस्वी लोमशऋषि और अन्य ब्राह्मण भयभीत होकर जहां तहां वृक्षों को पकड़ पकड़कर खड़े हो रहे १६ जब वायु मन्दी हुई और धूल भी बैठ गई तब एकाएकी बादल उमड़कर चले आये और

बड़ी बड़ी बूंदें गिरनें लगीं, उनके गिरने से चटचटा शब्द होने लगा और बिजलियां आकाश में इधर से उधर चमकने लगीं; थोड़ी देर में वायु के फिर प्रचण्ड होने पर ओलों सहित जल की धारा गिरने लगी और चारों ओर से समुद्र में मिलनेवाला जल फेन-सहित बह बहकर आने लगा १७। २० और फेनों समेत वृक्षों को लिये हुए पर्वतीय नदियां उमड़ि आईं २१ हे भारत! इसके पीछे जब वायु बन्द हो गई, वर्षा थम गई, चारों ओर से शब्द बन्द हो गया, सब पानी बहकर नीचे स्थानों में चला गया और सूर्य निकल आये, तब वे सब शूरवीर धीरे धीरे निकलकर परस्पर मिले और गन्धमादन पर्वत पर चल दिये ॥ २२ । २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

एकसौ चवालीसवाँ अध्याय।

द्रौपदी का मार्ग में थककर अचेत होकर गिर पड़ना, युधिष्ठिर का विलाप करना, ब्राह्मणों का युधिष्ठिर को समझाना और भीमसेन का घटोत्कच को बुलाना।

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! जब महात्मा पाण्डव उक्त स्थान से चलकर एक कोस पहुँचे तब वह पैदल चलने के अयोग्य तपस्विनी द्रौपदी वर्षा और वायु से थककर शरीर की कोमलता के कारण से अचेत हो गई, शरीर उसका मोह से कांपने लगा और वह अकस्मात् अपनी दोनों गोल और सुन्दर भुजाओं से अपनी गजकर सम जांघों को पकड़कर बैठ गई और पैर फैलाकर पृथ्वी पर क़दली के समान गिर पड़ी १।४ उस समय नकुल ने उसके पास जाकर उस टूटी हुई, लता के समान गिरती हुई वराङ्गना को पकड़ लिया ५ और युधिष्ठिर से पुकार कर कहा कि हे भारत! महाराज! देखिये यह नीले नयनवाली पांचाल देश के राजा की पुत्री थककर पृथ्वी पर गिर पड़ी है ६ इस मृदुगामिनी ने बड़ा दुःख पाया है, यह इस दुःख के योग्य नहीं है, आप यहां आकर इस थकी हुई को धैर्य दीजिये ७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! नकुल की बात सुनकर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन और सहदेव दौड़कर द्रौपदी के पास आये और धर्मात्मा युधिष्ठिर दुःखी होकर उस विवर्णमुखी और लेटी हुई को गोद में लेकर विलाप करने लगा ८।९ हाय! यह वराङ्गना द्रौपदी अच्छे अच्छे महलों में सुन्दर पलँगों पर सोने के योग्य होकर इस विपत्ति में पृथ्वी पर पड़ी हुई सोती है १० मेरे कारण से इसके कोमल चरण और कमल-सा मुख कैसे काले पड़ गये हैं ११ मुझ

कुबुद्धि ने यह क्या किया ? जो मैं जुआ खेला और इस कोमलाङ्गी को लेकर इस मृगों के रहने के वन में आया १२ इसके पिता द्रुपद ने यह समझकर हम लोगों को इसे दिया था कि यह पाण्डवों को पति पाकर सुख पावेगी १३ परंतु इसने सुख नहीं पाया और मुझ पापी के कारण से शोक और श्रम से दुःखी होकर पृथ्वी पर पड़ी हुई है १४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जब युधिष्ठिर ने उक्त प्रकार से विलाप किया, तब धौम्य आदि सब ब्राह्मण उसके पास चले आये १५ और धैर्य देकर अनेक प्रकार के आशीर्वाद दिये और राक्षसों को मारनेवाले मन्त्रों का जप करके अनेक प्रकार के यत्न किये १६ जब महर्षियों ने शान्ति करनेवाले अनेक मन्त्र पढ़े और पाण्डवों ने अपने शीतल हाथों से स्पर्श किया और जल छिड़ककर पवन की, तब धीरे धीरे सुखपूर्वक द्रौपदी चैतन्य हो गई १७।१८ तब पाण्डवों ने मृगचर्म बिछाकर मूर्च्छा से जगी; तपस्विनी, दुखिया द्रौपदी को लिटा दिया १९ नकुल और सहदेव अपने ज्या से चिह्नित हाथों से उसके पैरों को, जिनके तलुये लाल थे दाबने लगे २० और धर्मराज युधिष्ठिर उसको धैर्य देता रहा, इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा २१ कि हे महाबाहो ! ये पर्वत बहुत नीचे ऊंचे और बरफ के कारण से कठिनता से जाने के योग्य हैं, द्रौपदी इनमें कैसे चलेगी २२ यह सुनकर भीमसेन बोला कि हे पुरुषोत्तम ! आप चिन्ता न कीजिये मैं आपको और द्रौपदी समेत नकुल और सहदेव को आप उठाकर ले चलूंगा २३ और वह महाप्रतापी घटोत्कचनामी हिडम्बा का पुत्र, जो मेरे समान बलवान् है, आपके कहने से हम सबों को ले चलेगा २४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके उपरान्त युधिष्ठिर की आज्ञा से भीमसेन ने अपने पुत्र घटोत्कच का स्मरण किया, वह धर्मात्मा, वीर, पिता के याद करते ही वहां आ पहुँचा और हाथ बांधकर पिता के सम्मुख खड़ा हो गया, इसके पीछे उसने सब पाण्डव और ब्राह्मणों को दण्डवत् की और उन सबोंने उसे आशीर्वाद दिया २५।२६ आशीर्वाद पाकर वह अपने पिता भीमसेन से कहने लगा कि आपके याद करते ही मैं आपकी सेवा करने के लिये यहां आया हूं २७ कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है ? जो कुछ आप कहेंगे, उसको मैं निस्संदेह करूंगा; यह सुनकर भीमसेन उठकर अपने पुत्र से मिला ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

एकसौ पैंतालीसवाँ अध्याय।

सब पाण्डव और ब्राह्मणों का राक्षसों के ऊपर सवार होकर विशाल बदरी नाम आश्रम में पहुंचना और वहां नरनारायण के आश्रम की झांकी करके वहां के वन में विहार करना।

युधिष्ठिर बोला हे भीमसेन! यह घटोत्कच हमारा धर्म का जाननेवाला बलवान्, सच्चा, राक्षसों में श्रेष्ठ, परमभक्त और औरस पुत्र है, यह हमको जल्दी अपने ऊपर सवार कर ले, हम इसकी भुजाबल से द्रौपदी सहित सुखपूर्वक गन्धमादन पर्वत पर जाना चाहते हैं १। २ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन अपने भाई की उक्त बात को सुनकर वैरिविनाशन अपने पुत्र घटोत्कच से बोला ३ कि हे बेटा हिडम्बा के पुत्र! यह तेरी माता चलते चलते हार गई है, तू बलवान् और इच्छा के अनुसार चलनेवाला है, इससे तू इसको अपने कन्धे पर बिठा ले और हम सबके साथ साथ नीची गति से आकाश मार्ग से ले चल जिसमें इसे पीड़ा न होने पावे ४। ५ यह सुनकर घटोत्कच बोला कि हे अनघ! मैं अकेला ही द्रौपदी और युधिष्ठिर और नकुल, सहदेव और धौम्य पुरोहित को ले चल सकता हूं; अब तो मेरे साथ और भी आकाशचारी राक्षस हैं—अब क्यों न ले चल सकूंगा; ये सब मेरे शूरवीर साथी आप सबको और ब्राह्मणों को ले चलेंगे और मैं द्रौपदी को ले चलूंगा ६। ७ यह कहकर घटोत्कच ने द्रौपदी को अपने कन्धे पर बिठा लिया और दूसरे राक्षसों ने सब पाण्डव और ब्राह्मणों को अपने ऊपर सवार करा लिया और सबके सब आकाशमार्गी हुए उस समय लोमशऋषि दूसरे सूर्य के समान सिद्धमार्ग से उनके साथ-साथ हो लिये और वे सब रमणीक वन और उपवनों को देखते हुए, विशाल बदरी नाम आश्रम में पहुँचे ८। ११ वह स्थान यद्यपि बहुत दूर था, परंतु उन शीघ्रगामी राक्षसों पर सवार होने के कारण से उनको वह मार्ग बहुत छोटा सा जान पड़ा १२ राह में उन सबोंने उत्तम कुरुदेश और अन्य अनेक पहाड़ी देश देखे जो म्लेच्छ और विद्याधरों से व्याप्त अनेक प्रकार के रत्न, धातु, उपधातुओं से युक्त, वानर, किन्नर, किंपुरुष और गन्धर्वों से आवृत मोर, चमर, मृग, वाराह, गौ और भैंसाओं से सुशोभित नदियों के जलों से घिरे हुए और अनेक प्रकार के पक्षियों से शब्दित थे और पर्वतोत्तम कैलास पर्वत जिसमें अनेक आश्चर्य की बातें और उसके समीप के नरनारायण के आश्रम को देखते हुए १३। १८

उस बदरी के निकट पहुँचे जिसके फल पुष्पयुक्त शोभायमान वृक्षों के बड़े बड़े मनोहर स्कन्ध सघन छाया के सचिक्कण कोमल पत्ते और स्वादिष्ठ मीठे फल थे १६। २१ वहां नानाप्रकारके मद्से नित्य हर्षित पक्षी और बड़ेबड़े महाऋषि रहते थे २२ मक्खी और मच्छर का नाम न था और फल, मूल और जल जितना चाहो मिलता था पृथ्वी वहां की उर्वरा और घास हरी थी और देवता, गन्धर्व वहां सदैव रहाकरतेथे २३ भूमि उसस्थानकी बराबर और स्वाभाविक बरफ़ के कारण से चिकनी थी और काँटे देखने को न थे २४ हे राजन्! उसको देखकर सब पाण्डव ब्राह्मणों सहित धीरेधीरे राक्षसों के कन्धों पर से उतर पड़े और सब ने जाकर वहां नर नारायण के परम रमणीक आश्रम को देखा २५। २६ इस आश्रम में विना सूर्य की किरणों के भी अँधेरा नहीं रहता है और भूख, प्यास, सरदी और गरमी नहीं लगती है, वहां जाने से शोक दूर हो जाता है, अनेक महाऋषि और चारों वेदों के जाननेवाले ब्राह्मण वहां रहते हैं, अधर्मी मनुष्य वहां नहीं जा सकता २७। २८ यज्ञ करने के वह स्थान भी वहां बने हुए हैं, जिनमें बलिप्रदान, होम, मार्जन और लेपन करने की सब सामग्री धरी रहती है, वह स्थान दिव्यपुष्प, अग्नि के अंगारे, जल भरे हुए कलश और स्रुवा आदि यज्ञपात्रों से सुशोभित हो रहे थे २६। ३० सब प्राणियों की शरण का वही स्थान है, वहां सदैव वेदध्वनि हुआ करती है और जानेवाले का सब श्रम दूर हो जाता है ३१ उस अनिर्देश्य देवचर्या से उपशोभित आश्रम में सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी महाऋषि रहते हैं, ये ऋषि फल और मूल खाकर रहते हैं और काले मृगों के चमड़े ओढ़ते हैं और बड़े जितेन्द्रिय, शुद्धअन्तःकरण, मोक्षार्थी, महाभाग और ब्रह्मवादी हैं, उनको देखकर युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित उनके पास गया, उन वेदपाठी महर्षियों ने अपने दिव्य ज्ञान से उनको जानकर उन्हें आशीर्वाद दिया और प्रसन्नता से उनका सत्कार करके पवित्रजल, पुष्प, मूल और फल दिये ३२। ३७ युधिष्ठिर ने बड़ी प्रीति और प्रसन्नता से उस उपहार अर्थात् भेंट को अङ्गीकार किया और वहां से चलकर सहस्रों वेदपारग ब्राह्मण और अपने भाई और द्रौपदी सहित उस नरनारायण के आश्रम में गये जो इन्द्र के भवन के सदृश सुगन्धित, मनोरम, धर्म का बढ़ानेवाला ३८। ४० देवता और देवऋषियों से पूजित गङ्गा से उपशोभित था ४१ अनेक महाऋषि वहां सेवा कर रहे थे और वृक्षों में अनेक प्रकार के मधु के सदृश मीठे-मीठे फल लगे हुए थे; पाण्डव

वहां पहुँचकर उस आश्रम को देखने लगे और ब्राह्मणों सहित वहां वासकर के आनन्दपूर्वक रमण करने लगे ४२ । ४३ वहां से उन्होंने मैनाक पर्वत देखा, जिसकी सुनहरी चोटियों पर नाना प्रकार के पक्षी रहते हैं और उसके ऊपर जो बिन्दुसर नामी तीर्थ है, उसको भी देखा ४४ इसके उपरान्त पाण्डव वहां के सुन्दर वन में द्रौपदी सहित विहार करने लगे, उस वन में सब ऋतु के पुष्प फूल रहे थे ४५ वहां के वृक्षों की लताएँ फलों के बोझ से झुक रही थीं, कोकिला आदि पक्षी उनपर बैठे हुए मधुर मधुर बोल रहे थे, पत्ते उन वृक्षों के सघन और चिकने चिकने थे, छाया बड़ी शीतल थी और बड़े रमणीक और मनोहर दीखते थे, जहां तहां उस वन में कमल फूल रहे थे और सरोवर निर्मल जल भरा हुआ होने से बड़े शोभायमान लगते थे, उस समय वहां शीतल, मन्द और सुगन्ध वायु बहने लगी, उससे पाण्डव द्रौपदी सहित बहुत आह्लादित अर्थात् प्रसन्न हुए ४६ । ४९ फिर वहां से उन सीता सुतीर्था और भागीरथी नाम तीर्थों को देखते हुए जिनके घाट मणि और मूंगाओं के बने थे, किनारों पर दिव्य फूलों से फूले हुए वृक्ष लग रहे थे और बीच में कमल फूल रहे थे, फिर विशाल बदरी के निकट उस स्थान पर पहुँचे, जहां देवऋषि रहा करते थे, पाण्डवों ने उस दुर्गम स्थान में श्रीगङ्गाजी के जल से तर्पण किया ५० । ५२ और ब्राह्मणों सहित जप, तप और शौच में मन लगाकर वास किया ५३ फिर उस स्थान पर उक्त प्रकार से बसकर द्रौपदी के क्रीड़ा करने के लिये स्थानों को देखते हुए रमण करने लगे ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

एकसौ छियालीसवाँ अध्याय ।

एक सुगन्धित कमल के फूल का वायु से उड़कर द्रौपदी के पास आ पड़ना, द्रौपदी का भीमसेन को वैसेही फूल लाने को भेजना, भीमसेन का वन और पर्वतों की शोभा देखते हुए फूल लेने जाना और कदली खण्ड में पहुँचकर हनुमान्जी से वार्तालाप होना ।

वैशंपायनजी बोले–हे राजा जनमेजय ! वे पुरुषोत्तम पाण्डव उस स्थान में बड़ी पवित्रता से रहकर अर्जुन के दर्शनों की लालसा से छःरात्रि बसे १ उसके उपरान्त दैव इच्छा से वहां एक कमल जिसमें एक सहस्र पत्ते थे पूर्व और उत्तर के कोने से वायु से उड़कर आन पड़ा २ द्रौपदी ने उस सुगन्धित और पवित्र कमल को पृथ्वी पर से उठा लिया और उसकी मनोहर और उत्तम सुगन्ध से प्रसन्न

होकर उसने भीमसेन से कहा ३ । ४ कि हे भीमसेन ! इस सर्वोत्तम सुगन्धित कमल के फूल को देखो, इसको देखकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ है, मैं इस फूल को युधिष्ठिर को दूंगी, तुम ऐसेही और फूल मुझको ला दो, मैं उनको काम्यक वन में ले चलूँगी ५।६ तात्पर्य यह है कि जो तुम मुझको अपनी प्रिया समझते हो तो ऐसेही फूल बहुत से लाना, मैं इनको काम्यक वन में लेजाना चाहती हूं ७ द्रौपदी इस प्रकार भीमसेन से कहकर वह फूल युधिष्ठिर को देने के लिये चली गई ८ और महाबली भीमसेन अपनी उस प्रिया के अभिप्राय को जानकर उसी वायु के सम्मुख जिससे उड़कर वह फूल आया था और फूल लेने के लिये सुनहरी धनुष और विषधारी सर्पों के तुल्य बाण लिए हुए मतवाले हाथी और सिंहकी सी गति करके शीघ्र चल दिया ९ । ११ जाते में उसको सब प्रकार के जीवों ने देखा परंतु भीमसेन को किसी से भय नहीं हुआ वह वीर अपने बल के आश्रय रहता था, उसको ग्लानि, विकलता, भय और श्रम कभी नहीं होता था, आगे चल के वह अपनी प्रिया की कामना को पूरा करने के लिये पर्वत पर चढ़गया और वहां की शोभा देखने लगा, उस पर्वत की नीली नीली शिला वृक्ष और लताओं से ढकी हुई थीं १२ । १४ किन्नर लोग वहां के निवासी थे और वह अनेक प्रकार की धातु, वृक्ष, मृग और पक्षियों से चित्र विचित्र दीखता था १५ उँचाई उसकी पृथ्वी की भुजा के तुल्य थी और वह पर्वत अनेक प्रकार की वनस्पतियों से अनेक प्रकार के भूषण पहिरे हुए दीखता था, भीमसेन उस पर्वत के सब रमणीक शिखरों पर अनेक प्रकार की वस्तुएँ देखकर उनके अभिप्रायों को विचारता, कोकिला आदि पक्षियों की मनोहरवाणी सुनता हुआ, षट्पदों के रहने के देशों को देखता हुआ आगे को चला । उस समय सब ऋतुओं के पुष्पों के फूलने के कारण से सुगन्धित वायु चलने लगी, भीमसेन उससे श्रमरहित और प्रसन्न हो गया और मतवाले हाथी के समान झूमता हुआ चलने लगा, सुगन्धित वायु उसके शरीर में लगती जाती थी और ऐसा जान पड़ता था मानों वायु अपने पुत्र को थका हुआ देखकर उसके ऊपर हाथ फेरती है १६ । २० इसके पीछे उसने उस पर्वत को जिस पर यक्ष, गन्धर्व, देवता और ब्रह्मऋषि रहते थे, फूलों के लिये देखा, उस पर्वत के ऊँचे नीचे स्थान सुनहरी रुपहरी और श्याम रंगकी धातुओं से युक्त होने के कारण त्रिपुण्ड्र आकार दिखाई देते थे और उनके पार्श्व में बादलों के चलने से वे पक्षी की

भांति नाचते हुए जान पड़ते थे और जहां तहां झरनाओं के झरने से ऐसा जान पड़ता था मानों पर्वत मोतियों के हार पहिने हुए हैं और उसके ऊपर अप्सराओं के चलने से घुँघुरुओं के शब्द से यह विदित होता था कि पहाड़ मोर की भांति नाच रहा है, दिग्गज अपने दांतों को उस पहाड़ के पत्थरों से घिस रहे थे और उस पहाड़ के चारों ओर बहती हुई नदियां ऐसी दीखती थीं मानो पहाड़ का डुपट्टा उतरकर गिरपड़ा है, इस प्रकार की शोभा को और निर्भय उन हरिणों की क्रीड़ा को, जो मुख में घास का ग्रास लिये हुए सावधानी से समीप खड़े थे, निरखता हुआ अपने वेग से लताओं को हटाता हुआ २१ । २६ वह प्रसन्नमन वायुपुत्र भीमसेन अपनी प्रिया की कामना पूरी करने के लिये आगे को चला २७ उसके शरीर की प्रभा सोने की सी थी, अङ्ग उसका सिंह के सदृश दृढ़ था और पराक्रम वेग और आंखे उसकी मतवाले हाथी की सी थीं, यक्ष और गन्धर्वों की स्त्रियां पहाड़ के शिखरों पर बैठी हुई निश्चेष्ट और अदृश्यरूप से उसको देख रही थीं और वह अनेक क्रीड़ा और दुर्योधन के दिये हुये दुःखों को याद करता हुआ, गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर विचरने लगा २८।३१ और उस वनवासिनी द्रौपदी का मनोरथ पूरा करने के लिये उद्यम में प्रवृत्त होकर चिन्ता करने लगा कि अर्जुन तो स्वर्ग में है और मैं इधर फूल लेने के लिये चला आया हूं, वहां न जाने युधिष्ठिर क्या करेगा, मैं जानता हूं कि स्नेह के कारण से वह नकुल और सहदेव को त्याग नहीं करेगा, अब मुझको फूल जल्दी से क्योंकर मिलें, इस प्रकार से चिन्ता करता हुआ ३२ । ३४ वह वीर पहाड़ और वन के फूले हुए वृक्षों की शोभा देखता और पृथ्वी को अपने पैरों से कम्पित करता हुआ जल्दी चलने लगा और अपने वायुरूपी वेग से हाथियों के झुण्डोंको डराता, सिंह और व्याघ्रोंको मारता, वृक्षों को तोड़ता और लता बेलों को खींचता हुआ, हाथी के समान गन्धमादन पर्वत के एक शिखर पर चढ़ गया और वहां बादल के समान गर्जकर आगे को वेग से चल दिया, उसकी गर्जना सुनकर गुफाओं में सोते हुए व्याघ्र जग पड़े और डर के मारे जहां तहां जा छिपे और पक्षी उड़ने लगे, मृगों के झुण्ड के झुण्ड इधर उधर भागने लगे, रीछ वृक्षों से उतर उतर कर भागे और महासिंह जँभाई लेने लगे और भैंसे इधर उधर देखने लगे ३५।४१ हाथी और हाथिनियों के झुण्ड डर डरकर उस वन को छोड़कर दूसरे महावन

में चले गये ४२ और वाराह, भैंसा और मृग आदि अनेक वन के जीव भयभीत होकर अपनी अपनी बोली बोलने लगे ४३ चकवा, चकवी, मोर, चातक, हंस, तोता, कारण्डव, प्लव, कोकिला और कुरच आदि पक्षी उड़ उड़कर इधर उधर चल दिये ४४ इसके पीछे जो हाथी हथिनियों के साथ थे, वे और क्रोधी सिंह और व्याघ्र भय से मूत्र विष्ठा करते हुए और भयानक बोली बोल बोल मुखबाये हुए भीमसेन की ओर दौड़े ४५ । ४६ जब निकट आये तब उसने हाथियों को हाथी से और सिंहोंको सिंहों से और दूसरे जीवों को हाथों से मार मार कर गिरा दिया तब वे सब जीव भयभीत होकर मूत्र और विष्ठा करते हुए, भीमसेन के पास से भागकर इधर उधर वन में चले गये और वह वीर अपनी गर्जना से दिशाओं को पूरित करता हुआ शीघ्रता से वन में घुसगया और वहां गन्धमादन के एक शिखर पर चढ़कर उसने कदलीखण्ड अर्थात् केलों के वन को देखा उसको देखकर वह वेग से नीचे उतर आया और उस वन के समीप जाकर ४७।५१ मतवाले हाथी के समान केले के पेड़ों को उखाड़ उखाड़कर चारों ओर फेंकने लगा और नृसिंहजी के तुल्य गर्वित होकर बड़े शब्द से गर्जता हुआ आगे को चला ५२ । ५३ और बड़े बड़े शरीरधारी वन के जीव और मृग, वानर, सिंह, भैंसा और जलचारी जीवों को नांघता हुआ वन के भीतर घुस गया, उसकी गर्जना से दूसरे वनों के मृग और पक्षी भी डर गये और उनके शब्द से सहस्रों जलपक्षी जिनके पर जल में भीगे हुए थे, डरकर अकस्मात् एक सरोवर में से उड़कर चले, भीमसेन उन पक्षियों को देखकर उसी ओर चल दिया जिधर से वे पक्षी उड़े थे और एक बड़े लम्बे चौड़े और सुन्दर सरोवर पर जा पहुँचा ५४।५७ जिसके चारों ओर सुनहले केले एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर झुके हुए लगे थे और वे केले वायु से हिलने के कारण से ऐसे दीखते थे मानो उस सरोवर का पंखा कर रहे हैं ५८ भीमसेन उस कमल फूले हुए सरोवर में घुस गया और हाथी के सदृश उसमें क्रीड़ा करने लगा ५९ जब क्रीड़ा कर चुका, तब बाहर निकल कर पहाड़ के ऊपर बड़े सघन वन में चला गया ६० और वहां उसने अपने बल की पूर्ण अवधि तक धमाकर शंख बजाया और बड़े शब्द से गर्जकर अपने हाथ की ताल बजाई, उस शब्द से सब दिशा पूर्ण होगईं और पहाड़ों की कन्दरा गूंजने लगीं ६१ । ६२ उन गुफाओं में सोनेवाले सिंह पूर्णशब्द से दहाड़ने लगे, उनकी दहाड़ से डरे हुए हाथी बड़े शब्द से चिग्घारने लगे ६३।६४

इसके उपरान्त वानररूप वीर हनुमान् ने उस शब्द को सुनकर और अपने भाई भीमसेन को पहिंचान कर स्वर्ग का मार्ग इस हेतु से रोकदिया कि भीमसेन इस मार्ग से आगे को न जाय आगे जाने में उसको कोई शाप देदेगा अथवा धर्षण। करेगा, प्रीतिपूर्वक उसकी रक्षा करने के लिए उस कदलीखण्ड अर्थात् केले के वन के संकीर्ण मार्ग को रोकने की इच्छा से बड़ा लम्बा और चौड़ा वानररूपी शरीर धारण करके उस मार्ग के आगे लेटगए और जमुहाई ले लेकर अपनी इन्द्र की ध्वजा की तुल्य ऊंची और वज्र के गिरने के तुल्य शब्द करनेवाली लांगूल अर्थात् पूंछ को पर्वतपर मारते हुए सोगये ६५।७० उस पूंछ के पर्वतपर गिरने के शब्द से पहाड़ की गुफाओं में से सांड़ के डकारने के समान शब्द आनेलगा ७१ और वह पहाड़ हिलकर चारों ओर से फटगया ७२ उस शब्द से हाथी आदि के चिग्घारने का शब्द अन्तर्धान होगया और उस पहाड़ के एक शिखर से दूसरे शिखर प्रतिशब्दित होनेलगे ७३ उसको सुनकर भीमसेन के रोम खड़े होगये और वह उस शब्द के उत्पन्न होने के स्थान को उस कदलीखण्ड में ढूंढ़ने लगा ७४ और आगे जाके उसने एक मोटी शिलापर हनुमान्जी को सोतेहुए देखा ७५ जिनके शरीर की प्रभा और चञ्चलता और बोलने का शब्द बिजली के गिरने के सदृश था और उनकी ओर इस प्रकार से कठिनता से देखाजाता था जैसे बिजली के गिरने के समय बिजली की ओर नहीं देखाजाता ७६ कमर उनकी पतली थी और भुजदण्ड बहुत तय्यार थे और अपनी पुष्ट और छोटी गरदन को एकभुजा के मुड्ढेपर रक्खेहुए थे ७७ सब शरीर पर बड़े बड़े बाल थे और दो लड़ से होरहे थे और ऊंचे को उठीहुई पूंछ ध्वजा की समान जानपड़ती थी ७८ होठ उनके छोटे छोटे और जीभ और मुख अत्यन्त लाल थे, भौंह चञ्चल, दाढ़ें गोल, दांत श्वेत और अत्यन्त नुकीले थे और मुख की छवि ऐसी दीखती थी मानो किरणों से युक्त चन्द्रमा है ७९ । ८० सुनहले केलों में सोने के कारण से उनके शरीर के बाल अशोकवृक्ष के फूलों के सदृश दीखते थे और शरीर उनका ऐसा दीप्त होरहा था मानो जलतीहुई अग्नि है, भीमसेन उन वानरों मे श्रेष्ठ और बुद्धिमान् हनुमान्जी को हिमालय पहाड़ के तुल्य शरीर से मार्ग रोकेहुए देखकर निर्भयता से उनके पास चलागया और बिजली के गिरने के सदृश सिंहनाद करनेलगा, उसके सिंहनाद से सब मृग और पक्षी डरगये ८१।८५ और हनुमान्जी ने अपने लाल लाल नेत्रों को कुछ एक खोलकर और भीमसेन की ओर

अनादर के साथ देखकर मन्द मन्द मुसकराकर कहा ८६ कि तुमने मुझ सुख से सोते हुए को जगाया है, तुम तो ज्ञानी हो, तुमको जीवोंपर दया करनी चाहिये ८७ हम लोग तो निस्संदेह धर्म नहीं जानते हैं, क्योंकि हमारी उत्पत्ति तिर्यग्योनि से है; परंतु मनुष्य तो बुद्धिमान् होते हैं, उनको दया करना अवश्य उचित है ८८ आश्चर्य है कि तुमसा बुद्धिमान् होकर ऐसे खोटे शरीर वाणी और चित्त के दोष लगानेवाले धर्मनाशक कर्मों में चित्त लगावे ८९ हम जानते हैं कि तुम धर्म नहीं जानते हो और बुद्धिमानों की तुमने संगति नहीं की है,जिसके कारण से तुम बालकों की भांति मृगों को पीड़ा देरहे हो ९० अब तुम हमको बताओ कि तुम कौन हो और किसलिए यहां आये हो और कहां तुमको जाना है ? यहां से आगे यह पर्वत अगम्य और चढ़ने के योग्य नहीं है, यह मार्ग देवलोक को जाने का है, मनुष्य वहां नहीं जासक्ता है और विना सिद्ध मार्ग के और कोई राह आगे जाने की नहीं है ९१ । ९३ हे वीर ! हम तुम पर दया करके तुमको रोंकते हैं, तुम हमारी बात पर विश्वास करो और आगे मत जावो यहीं तक तुम्हारा आना कल्याणकारी है, यहां के अमृततुल्य मूल और फलों को खाकर लौटजावो, हमारी इस बात को मानने से तुम्हारे प्राण वृथा न जायँगे ॥ ९४ ।९६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

एकसौ सैंतालीसवाँ अध्याय ।

भीमसेन और हनुमान्जी का विवाद होना भीमसेन का हनुमान्जी का पराक्रम देखकर भयभीत होना और हनुमान्जी का भीमसेन से अपना वृत्तान्त कहना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उन बुद्धिमान्, वानरेन्द्र हनुमान् जी की इस बात को सुनकर भीमसेन बोला कि मैं जाति का क्षत्री हूं नाम मेरा भीमसेन है और चन्द्रवंशी राजाओं के कौरववंश में कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूं और मुझे वायुपुत्र पाण्डव भीमसेन कहते हैं, आप भी बताइये कि आप कौन हैं और वानर का स्वरूप धारण करके यहां क्यों पड़ेहुए हैं १ । २ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! हनुमान्जी भीगसेन की बात को सुन कर मन्द-मन्द मुसकराकर कहनेलगे कि मैं वानर हूं तुमको तुम्हारी इच्छा के अनुसार आगे जाने को राह नहीं दूंगा, तुम चाहे लौटो चाहे जावो, जो तुम लौटोगे नहीं तो मारे जावोगे ४ । ५ भीमसेन बोले कि हे वानर ! मैं चाहे

मारा जाऊं, चाहे कुछ हो, तुमसे मैं कुछ नहीं पूछता हूं तू राह में से उठ खड़ा हो और मुझे जाने दे, नहीं तो तू दुःख उठावेगा ६ हनुमान्‌जी बोले कि मैं रोग से ग्रसित होरहा हूं, मुझमें उठने की सामर्थ्य नहीं है, जो तुमको जाना आवश्यक है, तो मुझ को नांघकर चलाजा ७ भीमसेन बोला कि निर्गुण परमात्मा सब की देह में रहता है, मैं उस ज्ञान से जानने के योग्य परमात्मा का अपमान नहीं करसकता हूं और इसी कारण से तुझको भी नहीं नांघसक्ता हूं ८ जो मैं उस भूतभावन अर्थात् आकाश आदि के उत्पन्न करनेवाले को शास्त्र से न जानता होता तो सागर को हनुमान्‌जी की भांति तुझको और इस पर्वत को नांघकर चलाजाता ९ हनुमान् जी बोले कि यह हनुमान् नाम किसका है जिसने समुद्र को नांघा था हे नरोत्तम! इसका जो कुछ वृत्तान्त तुम जानते हो सो कहो १० भीमसेन बोला कि वह हनुमान् बड़ा बुद्धिमान् गुणवान् और महापराक्रमी मेरा भाई है वानरों में वह सब से श्रेष्ठ है और उस की कथा रामायण में इस प्रकार से विख्यात है कि उसने रामचन्द्रजी की स्त्री के कारण से सौ योजन समुद्र को एक ही फलांग में नांघा था ११। १२ मेरा वह भाई बड़ा पराक्रमी है और तेज, बल, पराक्रम और युद्ध में मैं भी उसीके समान हूं मैं तेरा निग्रह करसकता हूं इससे तू उठकर मुझे राह दे और मेरा पराक्रम देख और जो तू मेरी आज्ञा न मानेगा तो मैं तुझको अभी यमलोक में पहुँचा दूंगा १३। १४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! हनुमान् जी भीमसेन को बलके कारण से उन्मत्त और गर्वित देखकर हृदय में हँसे और कहने लगे कि भाई! दया करो मुझे बुढ़ापे के कारण से उठने की सामर्थ्य नहीं है कृपा करके तुम मेरी पूंछ को हटाकर चलेजावो १५। १६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! हनुमान्‌जी की बात को सुनकर उस बल से गर्वित भीमसेन ने विचार किया कि इस बल पराक्रम से हीन वानर को मारकर ही चलना चाहिये ऐसा विचार कर उसने कुछ हँसकर निरादरसे हनुमान् जी की पूंछ बायें हाथ से पकड़ ली और उसे हटाने लगा परंतु वह उसको हिला भी न सका १७। १८ इसके पीछे उसने उस इन्द्रधनुष के तुल्य उठी हुई पूंछ को दोनों हाथों से पकड़ लिया और पराक्रम से उसे हटानेलगा परंतु वह पूंछ उससे हिल भी न सकी और बल करते करते उसकी भौंहें चढ़गईं आंखें फटी फटी सी होगईं और मुख पिटा-सा निकल आया २०। २१ उस समय भीम-

सेन ने लज्जा से अपना शिर झुकालिया और हनुमान् जी को दण्डवत् करके दोनों हाथ जोड़े हुए उनकी बगल से खड़ा होकर कहने लगा कि हे वानरोत्तम! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये और मेरे कहेहुए खोटे वचनों को क्षमा कीजिये २२। २३ और मुझसे कृपा करके कहिये कि आप वानर का रूप बनाये हुए कौन हैं देवता हैं या गन्धर्व हैं या गुह्यक हैं या सिद्ध हैं २४ हे महाबाहो! मैं आपसे शिष्य के समान पूछता हूं जो उसके प्रकाश करने में किसी प्रकार की बुराई न हो तो उसको मुझसे कहिये २५ हनुमान्जी बोले कि अच्छा, जो तुझे हमारा वृत्तान्त जानने की इच्छा है तो हम अपना सब हाल कहते हैं सुन २६ हमारा जन्म जगत् के आधार वायु से केशरी के क्षेत्र में हुआ है और नाम हमारा हनुमान् है २७ अगले समय में बालि और सुग्रीव नामी बड़े पराक्रमी दो वानर उत्पन्न हुए थे, बालि इन्द्र का और सुग्रीव सूर्य का पुत्र था, सब वानर और वानरों के राजा उन दोनों की उपासना किया करते थे उनमें से सुग्रीव से हमारी ऐसी मित्रता होगई जैसे वायु और अग्नि की है २८। २९ इसके उपरान्त किसी कारण से बालि ने सुग्रीव को निकाल दिया और वह ऋष्यमूक पर्वत पर हमारे पास आकर रहनेलगा बहुत दिनों के पीछे श्रीविष्णु भगवान् ने राजा दशरथ के यहां नररूप से अवतार लिया और उनका नाम रामचन्द्र हुआ ३०। ३१ वे धनुर्धारियों में श्रेष्ठ रामचन्द्र पिता की आज्ञा से अपने छोटे भाई और स्त्रीसहित वन को निकल कर चले आये और दण्डकवन में रहने लगे ३२ हे निष्पाप! वहां से दुर्बुद्धिशाली बली रावण नामी राक्षसों का राजा मारीच नामी राक्षस को सुवर्णरूपी मृग बनाकर और उससे उन नरोत्तम को लुभाकर उनकी स्त्री को हरलेगया॥ ३३। ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४७॥

एकसौ अड़तालीसवां अध्याय।

हनुमान्जी का भीमसेन से सीताहरण की कथा कहना और उसे उस ओर न जाने का उपदेश देना।

हनुमान् जी बोले कि हे भीमसेन! स्त्री के हरे जाने पर रामचन्द्रजी अपने भाई सहित अपनी स्त्री को ढूँढ़ते हुए ऋष्यमूक के निकट आये वहां पर्वत के शिखर पर उन्होंने सुग्रीव को देखा और उससे उनकी मित्रता होगई उन्होंने बालि को मारकर सुग्रीव का राज्याभिषेक किया १। २ राज्य को पाकर सुग्रीव

ने उनकी स्त्री सीता को ढूंढ़ने के लिये सैकड़ों और सहस्रों वानर चारों ओर भेजदिये ३ उस समय हम भी अपने साथ करोड़ों वानरों को लिये हुए सीता को ढूंढ़ते हुए दक्षिण दिशा को चलेगये ४ वहां हमको संपाति नामी गृद्ध से मालूम हुआ कि सीता रावण राक्षस के घर में है ५ तब हम रामचन्द्रजी का काम करने के लिए सौ योजन चौड़े समुद्र को नांघकर लङ्का में चलेगये और वहां राघवजी की प्रिया सीता से जो राजा जनक की पुत्री और देवकन्याओं के समान थीं मिलकर और उस लङ्का को बाहिर्द्वार और महलों सहित जलाकर श्रीराचन्द्रजी का नाम प्रकाश करके लौटकर चले आये ६ । ६ और राजीवलोचन रामचन्द्रजी हमारी बातपर विश्वास करके समुद्र का सेतु बांधकर असंख्य वानरों को साथ लियेहुए समुद्र उतरकर लङ्का पर जाचढ़े वहां उन्होंने उस पीड़ा देनेवाले रावण नाम राक्षस को उसके भाई, बान्धव, पुत्र और राक्षसों के गणों सहित अपने पराक्रम से मारडाला और वहां का राज्य उसके भाई राक्षसेन्द्र विभीषण को, जो बड़ा भक्त धर्मात्मा और भक्तजनों का प्यारा था, देकर आप अपनी स्त्रीसहित अपनी अयोध्या नाम पुरी को जहां जाकर शत्रु युद्ध नहीं करसक्ता था लौटकर चलेआये १० । १५ वहां आनेपर रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक हुआ उस समय मैंने उनसे यह वरदान मांगा कि जबतक आपकी यह कथा संसार में बनी रहे तबतक मैं भी जीतारहूं उन्होंने मुझको वह वरदान देदिया तबसे मुझे उन सीतारामजी की ही कृपा से यहां इच्छा के अनुसार पदार्थ भोगने को मिलते हैं १६ । १८ रामचन्द्रजी ने एक सौ दश सहस्र वर्षतक अयोध्या का राज्य किया उपरान्त परम-धाम को चलेगये १६ अब हे तात ! यहां अप्सरा और गन्धर्ब उन्हीं रामचन्द्रजी का यश गा गाकर मुझको प्रसन्न किया करते हैं २० हे भीमसेन ! यह मार्ग मनुष्यों के जाने के योग्य नहीं है, क्योंकि यहां देवता रहतेहैं, मैंने तुझको इस कारण से रोकदिया था कि तू चला न जाय और तुझको देवसेवित मार्ग में आते हुए देखकर कोई शाप न देदे अथवा धर्षणा न करे इस के सिवाय जिस सरोवर पर तू जाना चाहता है वह भी इधर नहीं है ॥२१।२२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

एकसौ उंचासवाँ अध्याय।

हनुमान्‌जी का भीमसेन से चारों युगों का धर्म पृथक् पृथक् वर्णन करना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! महाभुजशाली भीमसेन उक्तप्रकार

से सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने भाई हनुमान्जी को दण्डवत् करके कहने लगा कि मेरे समान धन्य कौन है जो मुझको आप ऐसे श्रेष्ठों के दर्शन हुए आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया मैं आपके दर्शनों से तृप्त होगया परंतु इतना और आपसे चाहता हूं कि आप मुझको अपने उस स्वरूप के दर्शन दीजिये जो स्वरूप आपका उस समय था जिस समय आपने समुद्र को नांघा था १ । ४ मैं उस स्वरूप को देखकर सब प्रकार से तुष्ट होजाऊंगा मुझको आप के कहने का परम विश्वास है यह सुनकर हनुमान्जी ने हँसकर कहा कि भाई उस स्वरूप को तुम क्या कोई नहीं देख सकता है ? अब वह समय नहीं है वह समय और ही था सत्ययुग, त्रेता और द्वापर तीनों युगोंका समय अलग अलग है अब यह समय ह्रास होने का है अब हमारा वैसा स्वरूप नहीं है ५ । ७ पृथ्वी, नदी, वृक्ष, पर्वत, देवता और महाऋषि सब काल के ही अनुसार युग युग में पृथक् पृथक् वर्तावा करते हैं और सबका बल शरीर और प्रभाव युगों के ही अनुसार घट बढ़ जाताहै इससे तू मेरे उस स्वरूप को देखने की इच्छा मत करे हम भी युग के अनुसार बर्तावा कररहे हैं भाई समय बड़ी कठिनता से उल्लंघन किया जासक्ता है ८ । ९ तब भीमसेन बोला कि महाराज ! कृपा करके मुझे युगों की संख्या और प्रत्येक युग के आचार, धर्म, शक्ति, उत्पत्ति, बिनाश, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य का हाल सुनाइये १० हनुमान्जी बोले कि हे तात ! कृतयुग में सनातनधर्म प्रचलित था सब पदार्थ सिद्ध मिलतेथे कर्म नहीं करना पड़ता था इसीसे उस युग का नाम कृतयुग है ११ उस युग में धर्म का नाश नहीं होता था और न प्रजा की क्षय होती थी इसीसे कृतयुग का समय मुख्य गिना जाता है १२ और देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प न थे अर्थात् एक पुरुषोत्तम ही की पूजा सब करते थे और क्रय विक्रय अर्थात् खरीद फरोख़्त का भी व्यवहार न था १३ और सामवेदी ऋग्वेदी और ऋजुर्वेदी अलग अलग न थे अर्थात् एक ही वेद था चारों वर्णों में से कोई मानवीक्रिया अर्थात् खेती आदि नहीं करता था जो चाहता था सो संकल्पमात्रही करने से मिल जाता था और केवल संन्यास धर्म था १४ और व्याधि का होना इन्द्रियों का शिथिल होजाना दूसरों के गुणों में दोषलगाना और घमण्ड या कपट करना न था १५ और वैर, आलस्य, बुरा चाहना, चुगली करना, संताप, ईर्ष्या और झूठ का नाम न था १६ इन गुणों से उस समय में शुक्लवर्ण नारायण जो सब योगियों की परम

गति और सब प्राणियों की आत्मा हैं मिलते थे १७ उस युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बराबर थे और अपने अपने कर्म में निरत रहते थे १८ और आश्रम, आचार, ज्ञान और कर्म आदि सब धर्म सब वर्णों के समान थे १९ सब वर्ण एक ही आनन्दरूपी देवता को प्राप्त करने के लिये यत्न करते थे सबकी एक ही क्रिया एक ही मन्त्र और एक ही विधि थी और धर्म का आचार और वेद भी सबका एकही था २० और इन सब धर्मों को स्त्री पुत्र अथवा स्वर्ग आदि के मिलने की विना कामना किये हुए करने के कारण से परमगति प्राप्त होती थी २१ कृतयुग में धर्म के चारों चरण थे और चारों वर्णों का परमधर्म आत्मयोग की एकता अर्थात् आत्मज्ञान का होना था २२ हे भीमसेन! यह धर्म कृतयुग का होचुका जिसमें तीनों गुणों में से कोई न था अब त्रेतायुग का वृत्तान्त सुनो जिसमें यज्ञ प्रवृत्त हुए २३ इस युग में धर्म तीन चरण का रहगया और नारायण का वर्ण लाल होगया और मनुष्य सत्य में प्रवृत्त और क्रिया और धर्मपरायण होकर रहने लगे २४ अर्थात् अपने मन के संकल्पित फल की प्राप्ति के लिए यज्ञ आदिक अनेक क्रिया करने लगे २५ इस युग में तप और दान करने वाले मनुष्य अपने धर्म से कभी नहीं हटते थे और क्रियावान् होकर धर्मात्मा होते थे २६ जब त्रेतायुग के पीछे द्वापरयुग आया तब धर्म के दो चरण रहगये नारायण का वर्ण पीला होगया और एक वेद के चार वेद होगये २७ उनमें से कोई चारों वेद, कोई तीन वेद, कोई दो वेद, और कोई कोई एक भी नहीं पढ़ने लगे २८ और शास्त्र भिन्न भिन्न होकर भिन्न भिन्न क्रियाओं का उपदेश होने लगा और तप और दान में सब प्रजा प्रवृत्त होकर राजसी होने लगी २९ एक वेद को सुखपूर्वक न पढ़सकने के कारण से बहुत से वेद कियेगये सत्यधर्म का इस युग में नाश होगया कहीं कहीं ही रहगया ३० इस प्रकार से सत्यधर्म के नाश होजाने के कारण से बहुतसी व्याधि फैलगई और ईश्वरकृत नाना प्रकार की कामना और उपद्रव प्रकट होगये ३१ उन व्याधियों को दूर करने और कामनाओं के मिलने और स्वर्गआदि के प्राप्त होने के लिये मनुष्य तप और यज्ञ करने लगे ३२ इस प्रकार से हे भीमसेन! द्वापरयुग में अधर्म के कारण से प्रजा की क्षय होती है इसके पीछे कलियुग आता है उसमें धर्म का एक चरण रहजाता है और तमोगुण प्रधान होने से नारायण का वर्ण कृष्ण होजाता है इस युग में वेदाचार, धर्म, यज्ञ और सब क्रिया नष्ट होजाती

हैं ३३। ३४ और मनुष्यों को अतिवर्षा, आधि, व्याधि, आलस्य, क्रोध और क्षुधा आदि अनेक उपद्रवों से भय और पीड़ा रहती है ३५ इस प्रकार से युगों के लौटने पौटने से धर्म का नाश होजाता है धर्म के नाश होने से लोकों का नाश होता है ३६ और लोकों के नष्ट होने से धर्मप्रवर्तक भाव अर्थात् ज्ञान आदि क्षय होजाते हैं और युगक्षय के किये हुए धर्मों से प्रार्थना विपरीत हो जाती है अर्थात् जिस काम के लिये प्रर्थाना करो वह नहीं होता है ३७ सो हे भीमसेन! वही कलियुग अब आनेवाला है मुझसे चिरंजीवी पुरुषों को भी काल के अनुसार वर्ताव करना पड़ता है ३८ तुझको जो मेरे स्वरूप के देखने की इच्छा है वह निरर्थक है ज्ञानी मनुष्य निरर्थक काम की कभी इच्छा नहीं करते हैं ३९ हम से तैंने चारों युगों का वृत्तान्त पूछा था वह हमने कह सुनाया अब तू जा तेरा कल्याण होगा ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनपञ्चाशदाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

एकसौ पचासवाँ अध्याय।

हनुमान्‌जी का भीमसेन को अपना स्वरूप दिखाना और उससे ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का धर्म वर्णन करना।

उक्त कथा को सुनकर भीमसेन बोला कि मैं आपके पूर्वरूप को बिना देखे किसी अवस्था में नहीं जाऊंगा जो आपका मुझपर अनुग्रह है तो मुझे अपने दर्शन दीजिये १ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन की बात को सुनकर हनुमान्‌जी ने मुसकराकर वही स्वरूप धारण किया जो समुद्र को नांघने के समय में था २ उससमय हनुमान्‌जी का शरीर बड़ा लम्बा चौड़ा पहाड़ से भी ऊंचा मानो दूसरा बड़ा पहाड़ है लाल लाल नेत्र तीक्ष्ण दाढ़ें, टेढ़ी भृकुटी और बड़े तेज से जगमगाता हुआ होगया और उससे वह सब कदली खण्ड वृक्षों सहित दबगया हनुमान्‌जी उस स्वरूप को धार करके पूछ लपेटकर इस प्रकार से बैठगये मानो सब दिशाओं को व्याप्त कररहे हैं भीमसेन भाई के उस स्वरूप को देखकर आश्चर्य में आगया और प्रसन्न हुआ और उनके सुवर्ण के पर्वत के तुल्य शरीर की सूर्य की-सी प्रभा को देखकर उसने अपनी आंखें बन्द करलीं उस समय हनुमानजी ने मन्द मन्द मुसकराकर उससे कहा ३।८ कि हे भीमसेन! तू मेरे इतने ही रूप को देखसक्ता है परंतु मैं शत्रुओं के बीच में जाने पर अपनी इच्छा के अनुसार

जितना चाहूं उतना ही बड़ा स्वरूप कर सक्ता हूं ९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीमसेन हनुमान्‌जी के उस विन्ध्याचल की सदृश स्वरूप को देखकर संभ्रान्त-सा होगया और बड़ी प्रसन्नता से दोनों हाथ जोड़े हुए हनुमान्‌जी के सम्मुख जाकर कहने लगा १०। ११ कि हे समर्थ ! हे पराक्रमिन् ! मैं आपके इस बड़े विस्तृत अप्रमेय अनाधृष्य और मैनाक पर्वत की तुल्य स्वरूप के दर्शन कर चुका अब आप इसको अन्तर्धान करके पहिला-सा स्वरूप धारण कर लीजिये मेरी सामर्थ्य अब इसे देखने की नहीं है १२। १३ परंतु अब मुझे यह संदेह बड़ा भारी है कि आप ऐसे वीर के पास होने पर रामचन्द्रजी आप ही रावण को मारने क्यों गये १४ आप अकेले ही अपने पराक्रम से लङ्का को योद्धाओंसहित नाश कर सकते थे १५ संसार में मैं किसी पदार्थ को ऐसा नहीं समझता हूं जिसको आप न पा सक्के हों रावण आपके सम्मुख अपने सहायकों सहित युद्ध करने को समर्थ न था १६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीमसेन की बात को सुनकर हनुमानजी ने गंभीर वाणी से कहा १७ कि हे भीमसेन ! तुम सच कहते हो वह अधम राक्षस रावण मेरे समान योद्धा न था परंतु जो वह रावण मेरे हाथसे मारा जाता तो रामचन्द्रजी की कीर्ति क्योंकर होती इससे रामचन्द्रजी ही उस राक्षस को गणसहित मारकर सीता को लेकर अपने नगर को चले आये थे और उनकी यह कीर्ति संसार में विख्यात हुई १८। २० अब तुम हमसे प्रीति रखना और निर्विघ्नता से चले जाओ राह में वायु तुम्हारी रक्षा करेगी २१ यह मार्ग सौगन्धिक वन को गया है तुमको आगे कुबेरजी के उद्यान अर्थात् बाग़ आदि क्रीड़ा करने के स्थान मिलेंगे, जिनकी रक्षा यक्ष और राक्षस करते हैं २२ वहां जाकर तुम फूल तोड़ने में शीघ्रता न करना क्योंकि मनुष्य को देवता विशेष मान्य हैं २३ हे भरतश्रेष्ठ ! देवता भक्ति, बलि, होम, मन्त्र और नमस्कार से प्रसन्न होकर कृपा करते हैं २४ इससे वहां जाकर कोई काम सहसा मत करना जो करना सो धर्म से करना धर्मात्माओं का अच्छा धर्म विचारकर काम करना परमधर्म है २५ धर्म को न जाननेवाला और वृद्धों की सेवा न करनेवाला मनुष्य बृहस्पति की सदृश होने पर भी धर्म और अर्थ के विषय को नहीं पहिचान सकता है २६ कहीं ऐसा भी होता है कि धर्म अधर्म और अधर्म धर्म गिना जाता है ऐसी अवस्था में बुद्धिहीन मनुष्य को मोह हो जाता है इससे इस बात को पहिले विचारकर

फिर कोई काम करना चाहिये २७ धर्म आचार करने से होता है, धर्म से वेदों की प्रतिष्ठा है, वेदों से यज्ञ किये जाते हैं और यज्ञों से देवता प्रतिष्ठित रहते हैं २८ वेद की आज्ञा के अनुकूल यज्ञ करने से देवता तृप्त होते हैं और बृहस्पति और शुक्रजी की कही हुई नीति पर चलने से मनुष्य सुखपूर्वक रहते हैं २९ ब्राह्मण आदिक द्विजन्मा अपनी जीविका के लिये वाणिज्य, नौकरी, व्यापार और खेती और गौ, बकरी और भेड़ी आदि पशुओं का पालन करते हैं ३० परंतु विज्ञानियों की विद्या तीन ही प्रकार की है अर्थात् ब्राह्मण को वेद पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना और क्षत्री को दण्ड देना और नीति पर चलना और वैश्य को व्यापार करना उचित है संसार में चलने का यही मार्ग है जो इससे विपरीत किया जाय और दण्ड और नीति से धर्म का आचरण न हो तो सब जगत् विना मर्यादा के हो जायगा ३१। ३२ इन तीनों उक्त धर्मों पर चलनेवाली प्रजा से धर्म उत्पन्न होता है और इनके विपरीत करनेवाली प्रजा नाश हो जाती है ३३ ब्राह्मणों का केवल एक ही धर्म अर्थात् आत्मज्ञान और एक ही वर्ण अर्थात् शुक्लवर्ण और सात्त्विक धर्म है और यज्ञ कराना वेद पढ़ाना और दान लेना ये धर्म साधारणमात्र हैं ३४ वेदपाठी ब्राह्मण को इन तीनों धर्मों को करना उचित है और क्षत्रियों का धर्म प्रजा का पालन करना वैश्य का धन की वृद्धि करना और शूद्रों का द्विजन्मा अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य की सेवा करना है और होम करना, व्रत करना और भिक्षा मांगना ये तीनों धर्म उन शूद्रों के नहीं हैं जो अपने से गुरु अर्थात् ऊँचे वर्ण के मनुष्यों में रहते हों ३५। ३६ हे भीमसेन! तुम्हारा धर्म रक्षा करना है क्योंकि तुम क्षत्री हो इससे तुम अपने धर्म को सौम्य स्वभाव और जितेन्द्रिय होकर करो ३७ जो क्षत्री, वृद्ध, पण्डित और बुद्धिमान् मनुष्यों से मन्त्र लेता है वही पृथ्वी का शासन कर सकता है और व्यसनी क्षत्री शीघ्र नष्ट हो जाता है ३८ राजा के अच्छी प्रकार से निग्रह और अनुग्रह करने से ही संसार की मर्यादा उत्तम प्रकार से बँधती है ३९ इससे राजा को उचित है कि देश, दुर्ग अर्थात् क़िला और मित्र शत्रुओं की सेना में अपने दूत रखकर वृद्धि और क्षय को देखता रहे ४० उपाय, दूतमन्त्र, पराक्रम, निग्रह और चतुराई आदि से राजा के सब कार्य सधते हैं और साम, दाम, दण्ड और भेद इनमें से एकसे अथवा सबसे जैसे बने अपने कार्य का साधन करना

राजा का परम धर्म है ४१।४२ सब दूतों का मूलमन्त्र है अर्थात् जहां जैसा दूत भेजना या रखना हो, उसको पहिले मन्त्र करके विचार ले और जो बात मन्त्र से सिद्ध होनेवाली हो, उसका विचार ब्राह्मणों से करे ४३ और जो मन्त्र गुप्त रखने का हो उसका विचार स्त्री, मूढ़, बालक, लोभी, नीच और उन्मत्त अर्थात् मद्यपी मनुष्यों से न करे ४४ राजा को उचित है कि विद्वानों से मन्त्र का विचार करे काम समर्थ मनुष्यों से करावे हितकारी पुरुषों के हाथ में नीति का प्रबन्ध रक्खे और मूर्खों से कोई काम न ले ४५ जहां धर्म का काम हो, वहां धर्मात्मा को, जहां धन का काम हो, तहां पण्डितों को, जहां स्त्रियों का काम हो, तहां नपुंसकों को और जहां क्रूरकर्म कराना हो तहां क्रूर मनुष्यों को नियत करे ४६ और सब कामों में अपने कार्य अथवा अकार्य होने का निश्चय और शत्रुओं का बल और अबल राजा का दूत अथवा और लोभी पुरुषों के द्वारा जानना उचित है ४७ और मर्यादाहीन मनुष्यों को दण्ड देना और जीने की इच्छा से शरण आये हुए पर अनुग्रह करना भी सर्वथा उचित है ४८ क्योंकि राजा के दण्ड देने और पालन करने से संसार की मर्यादा भले प्रकार से बँध जाती है ४९ हे भीमसेन! हमने ये सब क्षत्रियों के धर्म जो तुमको सुनाये हैं ये ही तुम्हारे भी धर्म हैं तुमको शील स्वभाव से इन धर्मों का करना उचित है ५० जैसे तप इन्द्रियों का जीतना और यज्ञ आदिक के करने से ब्राह्मणों को स्वर्ग मिलता है और दान करने और अतिथि की पूजा करने से वैश्यों की सद्गति होती है उसी प्रकार से दण्ड देने और पालन करने से क्षत्रियों को स्वर्ग प्राप्त होता है और नीतिपूर्वक दण्ड देनेवाले काम और द्वेष से रहित निर्लोभी और क्षमावान् क्षत्रियों को निस्संदेह सत्पुरुषों के समान लोक मिलते हैं॥ ५१ । ५२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५०॥

एकसौ इक्यावनवाँ अध्याय।

हनुमान्जी का भीमसेन से मिलकर वरदान देना और उसे राह बतलाकर अन्तर्धान होजाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! हनुमान्जी उक्त धर्म को कहकर अपने बड़े शरीर का संहार करके अपनी इच्छा के अनुसार छोटा स्वरूप धारणकर दोनों भुजाओं से भीमसेन से मिले १ भाई से मिलकर भीमसेन की सब थकावट दूर हो गई और महापराक्रम को पाकर उसने समझा कि मेरे समान

दूसरा मनुष्य धन्य नहीं है इसके उपरान्त हनुमान्‌जी ने अपनी आंखों में प्रेम के आंसू भर लिये और गद्गद होकर कहा कि अब तुम अपने स्थान को जाओ जब कभी कथा आ जाय तब मेरा स्मरण करना २। ४ और हमारे यहां पर रहने का हाल किसी से न कहना अब कुबेर की पुरी से यहां पर देवता और गन्धर्वों की स्त्रियों के आने का समय आ गया है हे भीमसेन! तेरी देह के स्पर्श करने से मुझको राघवजी का स्मरण आ गया जो रामनाम से विख्यात जगत् को आनन्द देनेवाले हैं और सीता के कमलरूपी मुख को प्रफुल्लित और रावणरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्यरूपी हैं उनका जो दर्शन मुझको इस समय हुआ है वह तुमको भी सफल होवे ५। ८ तुम हमारे भाई हो इससे जो इच्छा हो सो वर तुम हमसे मांग लो तुम कहो हम अभी जाकर धृतराष्ट्र के नीच पुत्रों को मारकर चले आवें अथवा कहो यहां बाँधकर ले आवें या जो तुम्हारी इच्छा हो तो हस्तिनापुर को शिलसे मर्दन करडालें ६। ११ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन उन महात्मा हनुमान्‌जी की उक्त बात को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला १२ कि महाराज! आपका ऐसा कहना ही सबकामों का करना है मैं केवल यह चाहता हूं कि मुझपर आपकी कृपादृष्टि रहे १३ आपको नाथ पाकर हमसब पाण्डव सनाथ हुए हमसब आपके ही तेजसे शत्रुओं को मारकर जीतेंगे १४ यह सुनकर हनुमान्‌जी बोले कि हम सुहृत्ता और भाईपने के भाव के कारण से तेरा यह प्रिय करेंगे कि जब तू शत्रुओं की बलवान् सेना में घुसकर सिंहनाद करेगा तब हम तेरे सिंहनाद के शब्द को अपने शब्द से बढ़ावेंगे और युद्ध की विजयध्वजा पर बैठकर बड़ा भयानक शब्द करेंगे कि उसके कारण से तू शत्रुओं को सुखपूर्वक मारेगा, यह कहकर और भीमसेन को राह बतलाकर हनुमान्‌जी वहीं अन्तर्धान होगये ॥ १५। १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

एकसौ बावनवाँ अध्याय।

भीमसेन का अनेक वन, नदी और सरोवरों को देखतेहुए उस नदी के तटपर पहुँचना जहां सौगन्धिक कमल लगेहुए थे।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उन वीर वानर हनुमान्‌जीके अन्तर्धान होजाने पर महाबली भीमसेन हनुमान्‌जी के बताये हुए रास्तेपर श्रीरामचन्द्रजी के माहात्म्य और हनुमान्‌जी की शोभा और स्वरूप को स्मरण करता

हुआ चल दिया और गन्धमादन पर्वतपर बिचरनेलगा १ । २ और अनेक वन, उपवन और विचित्र सरोवर जिनके किनारे फूले हुए वृक्ष लगे थे और नदी और चित्रविचित्र फूल रखनेवाले वन और हाथियों के झुण्ड जिनका शरीर कीच से भरा हुआ था और बरसते हुए बादलों के समान दीखते थे और हिरनी सहित हिरनों के झुण्ड जिनके मुख में हरीघास का ग्रास भरा हुआ था मार्ग में देखता हुआ महिष, वाराह और शार्दूल आदि जीवों से भरेहुए वन को मँझाता हुआ और अत्यन्त सुगन्धित पुष्प और लाल और कोमल पत्ते रखनेवाले वृक्षों के वन में होता हुआ कमलिनियों के वनको नांघता हुआ प्रफुल्लित वृक्षों से शोभित पहाड़ के शिखरों को देखता हुआ थोड़ा दिन रहे एक हिरनों के वन में पहुँचा और वहां उसने एक नदी देखी जिसमें निर्मल और सुनहरे कमल फूले हुए थे ३ । ११ उस नदी का तट हंस, कारण्डव और चकवा चकवी आदि जल के पक्षियों से शोभित हो रहा था और वह निर्मल कमलों के कारण से उस गन्धमादन पर्वत की माला सी जान पड़ती थी १२ भीमसेन उस नदी में सौगन्धिक नामी कमलों के वन को देखकर जिसकी छवि उदयकाल के सूर्य की-सी दीखती थी सिद्ध अर्थ होगया और वनवास से दुखी हुई अपनी प्रिया को याद करने लगा ॥ १३ । १४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

एकसौ तिरपनवां अध्याय ।

भीमसेन का कमलिनी और पुष्करिणी की शोभा देखना और वहां के रक्षकों का भीमसेन से पूछना कि तुम कौन हो और किसलिये आये हो ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीमसेन उस कैलास पर्वत के समीपवर्ती सुन्दर कमलिनी की शोभा देखने लगा, जो कुबेर के भवनों के निकट थी और जिसकी रक्षा राक्षस कर रहे थे उस कमलिनी के आसपास पहाड़ों के झरने झररहे थे और तटपर नानाप्रकार के छायादार वृक्ष और अनेक प्रकार की लता लगी हुई थीं १ । २ बीच में कहीं हरे और कहीं सुनहरे कमल खिलरहे थे पक्षी उसके चारों ओर मधुरमधुर वाणी सुनारहे थे कीचड़ का वहां नाम न था जल अति सुन्दर और निर्मल था और सब ओर से ऐसी विचित्र थी कि देखनेवाले को बड़ी अद्भुत दीखती थी ३ । ४ भीमसेन ने उसका जल शीतल आरोग्य करनेवाला और अमृत के सदृश स्वादिष्ठ देखकर बहुत-सा पान किया ५

इसके पीछे भीमसेन ने रमणीक पुष्करिणी को देखा जो चारों ओर से कमलों से ढकीहुई और सुगन्धित पुष्पों से घिरी हुई थी ६ उसके कमलों की नाल वैडूर्य मणि की-सी थी और हंस कारण्डव आदि मनोहर पक्षी वहां बैठे हुए थे वह पुष्करिणी अप्सरा देवता और ऋषियों से परम पूजित थी राक्षस और किन्नर उसकी रक्षा करते थे राजाओं के राजा कुबेरजी उसी स्थान पर क्रीड़ा किया करते थे ७। ८ कुन्तीनन्दन, महाबलवान् भीमसेन उसको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ उस समय वहां के क्रोधवशा नाम एक लाख राक्षस रक्षक भीमसेन को मृगचर्म ओढ़ेहुए सुनहरा बाजूबन्द और खड्ग आदि आयुध बांधे हुए फूलों को लेने की इच्छा से निर्भय आते हुए देखकर आपस में पुकार पुकारकर कहने लगे १०। १३ कि इस पुरुषोत्तम से जो मृगचर्म ओढ़े हुए और हथियार बांधे हुए आरहा है पूछना चाहिये कि यहां किस निमित्त से आया है १४ तब वे सब राक्षस भीमसेन के पास आकर पूछनेलगे कि हे महामते ! तुम हथियार लिये हुए मुनियों का सा वेष बनाये हुए कौन हो और यहां किस काम के लिये आये हो ॥ १५ । १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

एकसौ चौवनवाँ अध्याय।

भीमसेन और कमलिनी के रक्षक राक्षसों से विवाद होना, भीमसेन का कमलिनी में विहार करना और कमल तोड़ना और राक्षसों को मारकर भगा देना।

भीमसेन बोला हे राक्षसो ! मैं राजा युधिष्ठिर का छोटा भाई भीमसेन पाण्डव हूं यहां विशालाबदरी नाम आश्रम में अपने भाइयोंसहित आकर टिका हूं, वह यहां से सौगन्धिक जाति का एक कमल वायु से उड़कर जा पड़ा था उसको द्रौपदी ने देखा वह अब बहुत से कमल के फूल मांगती है सो मैं अपनी उस धर्मपत्नी का प्रिय करने के लिये कमल के फूल लेने आया हूं २।३ यह सुनकर राक्षस बोले कि हे पुरुषोत्तम ! यह कुबेर देवता का क्रीड़ा करने का प्यारा स्थान है मर्त्यधर्मा मनुष्य यहां विहार नहीं कर सकता है ४ हे पाण्डुनन्दन, वृकोदर ! देव ऋषि, यक्ष और देवता भी यहां विना कुबेर के पूछे जलपान नहीं करते हैं सो यह स्थान गन्धर्व और अप्सराओं के विहार करने का है ५ जो कोई यहां अन्याय से कुबेरजी का अपमान करके विहार करना चाहता है वह निस्सन्देह मारा जाता है ६ क्या तुम कुबेर का अनादर करके बल से फूल

हरना चाहते हो और तुम अपने को धर्मराज का भाई कैसे बताते हो ७ तुम कुबेरजी की आज्ञा लेकर जल पान और विहार करो नहीं तो तुम इन कमलों को देख भी नहीं सकोगे ८ यह सुनकर भीमसेन बोला कि हे राक्षसो ! प्रथम तो यहां कुबेरजी ही नहीं हैं जिनसे आज्ञा मांगू और जो होते भी तोभी मैं उनसे आज्ञा न मांगता ९ क्योंकि राजा लोग याचना नहीं करते हैं यह राजाओं का सनातन धर्म है मैं भी उस धर्म को त्याग करना नहीं चाहता हूं १० यह सुन्दर कमलिनी पहाड़ के झरनों से उत्पन्न हुई है कुछ महात्मा कुबेरजी के भवन से नहीं निकली है इससे जैसी यह कुबेरजी की है वैसी ही और सब प्राणियों की भी है ऐसी अवस्था में कौन किसीसे याचना करता है ११।१२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! महाबलशाली भीमसेन उक्त प्रकार से कहकर क्रोधयुक्त होकर उस कमलिनी में घुस गया और विहार करनेलगा १३ उस समय वे राक्षस क्रोधित होकर चारों ओर से दौड़े और प्रतापी भीमसेन को घुड़क घुड़ककर कहनेलगे कि वहां मत जाओ परंतु भीमसेन ने उनकी एक भी बात न सुनी उस कमलिनी को इधर से उधर मँझातारहा इस पर वे राक्षस महाक्रोधित होकर एक दूसरे से पुकार पुकारकर कहने लगे दौड़ियो चलियो यह मनुष्य कह्लारपुष्प तोड़ता है देखो, पकड़लो, बांध लो, जाने न पावे आज हम इसको भूनकर खाजावेंगे और नेत्र निकाल निकालकर शस्त्र लिये हुए उसको मारने को दौड़े १४।१६ उस समय भीमसेन अपनी भारी गदा को जो यमराज के दण्ड की तुल्य थी लेकर उन राक्षसों के सम्मुख गया और उनसे कहा कि ठहरो ठहरो १७ यह सुनकर वे भयंकर राक्षस तोमर और पट्टिशआदि शस्त्र लिये भीमसेन के मारने को दौड़े और उसको चारों ओर से घेर लिया १८ उस समय उस शूरवीर वेगवान् शत्रुओं के मारनेवाले सत्यवादी धर्मात्मा और अजेय भीमसेन ने उन राक्षसों के मारे हुए शस्त्रों को निष्फल करके उसी पुष्करिणी के तटपर शूरवीर सौ राक्षस मारकर गिरा दिये १९।२० तब वे राक्षस भीमसेन के पराक्रम, बाहुबल और युद्ध विद्या की निपुणता को देखकर उसके सम्मुख न जासके और अचेत और घायल होने के कारण से युद्ध छोड़कर आकाशमार्ग से कैलास पर्वत के शिखरों की ओर भागे २१।२२ इस प्रकार से वह वीर भीमसेन उन राक्षसों को अपने पराक्रम से इसप्रकार से मारकर मानो इन्द्र ने दानव और दैत्यों के समूह को

मारा है फिर उस कमलिनी में घुसगया और उसमें विहार करके इच्छा के अनुसार कह्लार कमलों को तोड़नेलगा २३ और उनको लेकर और उस कमलिनी के अमृततुल्य जल को पीकर तेजस्वी और पराक्रमी होगया २४ इसके पीछे वे राक्षस भयभीत होकर कुबेरजी के पास गये और उनसे भीमसेन के पराक्रम का सब वृत्तान्त कहा २५ कुबेरजी उस वृत्तान्त को सुनकर बोले कि भीमसेन को इच्छा के अनुसार कमल द्रौपदी के लिये लेजाने दो मैं इस सब वृत्तान्त को जानता हूं २६ यह सुनकर वे राक्षस कुबेरजी से आज्ञा लेकर और क्रोध छोड़कर भीमसेन के पास चले आये और उन्होंने उस अकेले को उस कमलिनी में सुखपूर्वक विहार करते देखा ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

एकसौ पचपनवाँ अध्याय।

उल्काआदि बहुत से उत्पातों का होना उनसे युधिष्ठिर का यह जानना
कि कहीं भीमसेन से युद्ध होता है और युधिष्ठिर का
सब समाजसहित भीमसेन के पास जाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यहां तो भीमसेन ने उन दिव्य और बहुरूपी कमलों को तोड़कर इकट्ठा किया और वहां जहां राजा युधिष्ठिर था रणके उत्पात को सूचन करनेवाली प्रचण्ड वायु रजसहित चलनेलगी बड़ा भयानक उल्कापात हुआ सूर्य की प्रभा जातीरही चारों ओर अन्धकार छागया और जिस समय भीमसेन राक्षसों से युद्ध कररहा था उस समय भयानक निर्घात शब्द हुआ पृथ्वी हिलनेलगी आकाश से धूल की वर्षा हुई दिशा लाल होगई पशु और पक्षी गधे की समान रेंकनेलगे और चारों ओर ऐसा अन्धकार होगया कि कुछ न सूझनेलगा १।५ इनके सिवाय और भी बहुत से उत्पात हुए उनको देखकर युधिष्ठिर कहने लगा कि हम लोगों से कौन युद्ध किया चाहता है हे भाई, पाण्डवो! युद्ध करने के लिये सज्ज अर्थात् तैयार रहो ६।७ इन उत्पातों से सूचना होती है कि हमारे पराक्रम करने का समय निकट आगया है ऐसा कहकर धर्मनन्दन युधिष्ठिर ने चारों ओर को देखा और वहां अपने पराक्रमी भाई भीमसेन को न देखकर द्रौपदी और नकुल सहदेव से पूछनेलगे कि भीमसेन कहां है और क्या करना चाहता है ८।१० कहीं उस साहसी ने कोई साहस का काम तो नहीं किया है ये युद्ध के सूचक उत्पात

किस कारण से होरहे हैं ११ कि जिनसे भय का होना ज्ञात होता है यह सुनकर सुन्दरहासिनी द्रौपदी बोली १२ कि महाराज! मैंने भीमसेन को उसी जाति के बहुत से सौगन्धिक कमल लेने को भेजा है जिस जाति का एक कमल वायु से उड़कर यहां आपड़ा था सो वह वीर मेरा प्रिय करने के लिये उन कमलों को लेने यहां से ईशान दिशा को गया है १३ । १५ यह सुनकर युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव से कहा कि चलो हम सब भी शीघ्र वहीं चलें जहां वह वीर गया है हे राक्षसो ! तुम इन लटे हुए ब्राह्मणों को अपने ऊपर चढ़ालो हे घटोत्कच ! तू अपनी माता द्रौपदी को लेचल हम जानते हैं कि भीमसेन यहां से बहुत दूर निकल गया है क्योंकि उसको गये हुए बहुत बिलम्ब हुई अबतक तो कभी का आजाता क्योंकि उसकी चाल वायु के बेग के सदृश है वह गरुड़जी के समान पृथ्वी को नांघ सकता है और आकाश में उछलने और इच्छा के अनुसार नीचे कूदने की भी उसे सामर्थ्य है १६ । १९ हे राक्षसो ! हम चाहते हैं कि तुम्हारे प्रभाव से हम सब उसके पास जल्दी से पहुँच जावें जिसमें वह ब्रह्मवादी सिद्धों का अपराध न करने पावे २० हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर उन घटोत्कच आदि राक्षसों ने जो कुबेरजी की उस कमलिनी को जानते थे द्रौपदी पाण्डव और ब्राह्मणों को अपने ऊपर चढ़ा लिया और लोमशजी को साथ लेकर चल दिये २१ । २२ और उस मनोहर सौगन्धिक कमलों से भरी हुई कमलिनी के निकट जा पहुँचे वहां उन्होंने जाकर भीमसेन और उन मरे हुए यक्षों को देखा २३ । २४ जिनके नेत्र भुजा और जंघा टूट गई थीं और ग्रीवा चूर्ण होगई थी भीमसेन उस समय उस कमलिनी के तटपर क्रोध से आंखें स्तब्ध अर्थात् खुली हुई किये दांतों को पीसता हुआ हाथ में इस प्रकार से गदा लिये हुए मानो प्रलयकाल में यमराज कालदण्ड लिये हुए है बैठा हुआ था युधिष्ठिर उसे देखकर वारंवार उससे मिला और मधुरवाणी से शिक्षा दी कि भाई ! तैंने यह क्या साहस किया है ? देवताओं का अपराध तो नहीं किया ? अब जो तुझे मेरा प्रिय करना अभीष्ट है तो ऐसा फिर मत कीजियो यह कहकर युधिष्ठिर ने वे कमल रख लिये और सब पाण्डवों ने उस कमलिनी में विहार किया इसी अवसर में शिलारूपी शस्त्र लिये हुए बड़े बड़े लम्बे चौड़े राक्षस जो वहां के रक्षक थे आपहुँचे और उन्होंने नम्रता से झुककर सब पाण्डव और लोमश आदि ब्राह्मणों को दण्डवत् की २५ । ३२ युधिष्ठिर ने उन सबको शान्त

किया और कुबेरजी को भी उन सबके वहां आने का हाल विदित होगया उस पर्वतपर पाण्डवों ने अर्जुन की प्रतीक्षा अर्थात् राह देखने में बहुत दिनोंतक वास नहीं किया ॥ ३३ । ३४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

एकसौ छप्पनवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का कुबेर के धाम को जाने का विचार करना आकाशवाणी का होना और युधिष्ठिर का सब समाजसहित नरनारायण के आश्रम को लौट आना।

वैशंपायनजी बोले–हे राजा जनमेजय! उस कमलिनी पर वास करने पर राजा युधिष्ठिर एकदिन द्रौपदी और ब्राह्मणों सहित कहने लगे कि हे भीमसेन! हमने धर्म के बढ़ानेवाले आनन्दरूपी तीर्थ और मन को प्रसन्न करनेवाले अनेक वन देखे जिनमें अगले समय में देवता और मुनि रहते थे और अब जिनको ब्राह्मण मानते हैं १ । २ और उन अनेक आश्रमों में ऋषियों के पहिले चरित्र और राजऋषियों के कर्म और अनेक प्रकार की सुन्दर कथा सुनी विशेष कर सब तीर्थों में हमने ब्राह्मणों के साथ स्नान किये और जलपुष्पों से देवताओं की पूजा की और जो कुछ मूल फल मिले उससे पितरों को तृप्त किया ४ । ६ और रमणीक पर्वत महासमुद्र और इला, सरस्वती, सिन्धु, यमुना और नर्मदा आदि नदियों में और अन्य अन्य अनेक रमणीक तीर्थों में ब्राह्मणों सहित स्नान किये ७ । ८ और गङ्गाद्वार की यात्रा करके बहुत से शुभ पर्वत और हिमालय पर्वत जिसपर बहुत से पक्षी रहते हैं और विशालबदरी नाम नरनारायण का आश्रम और यह पुष्करिणी जो देवता और ऋषियों से पूजित है और सब देवताओं के स्थान महात्मा लोमश ऋषि के साथसाथ देखे ६ । ११ परंतु यह कुबेर का आश्रम नहीं देखा है इसको कैसे देखें जाने का मार्ग तो कोई दीखता ही नहीं है १२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब युधिष्ठिर उक्त प्रकार से कह चुका तब आकाशवाणी हुई कि कुबेरजी के आश्रम से आगे कोई नहीं जासकताहै आगे का मार्ग दुर्गम है १३ तुम यहीं से लौटकर नरनारायण के आश्रम को चलेजाओ १४ वहां से वृषपर्वा के आश्रम को जाना जहां सिद्धलोग रहते हैं और बहुत फल फूल लगे हुए हैं १५ और वहां से आर्ष्टिषेण के आश्रम में होते हुए कुबेरजी के धाम को जाना १६ इसी अवसर में मन को प्रसन्न करनेवाली सुगन्धित वायु के चलने से फूलों की वर्षा हुई १७ उस आकाशवाणी को सुनकर

युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ उस समय धौम्य ऋषि ने कहा कि हे भरतवंशिन् ! इसका उत्तर देना उचित नहीं है जैसा आकाशवाणी ने कहा है वैसा ही करना चाहिये १८ । १९ यह सुनकर युधिष्ठिर ने वैसा ही किया और वहां से नरनारायण के आश्रम को लौटकर भीमसेन आदि भाई द्रौपदी और ब्राह्मणों सहित सुखपूर्वक रहने लगे ॥ २० । २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

एकसौ सत्तावनवाँ अध्याय ।

जटासुरदैत्य का युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी को हरकर लेजाना
और भीमसेन का उसको मारना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पाण्डव उस पर्वत पर ब्राह्मणों सहित अर्जुन के देखने की लालसा से बसने लगे उनके साथ एक कपटवेषधारी जटासुर नामी राक्षस ब्राह्मण का वेष बनाये पाण्डवों के तरकस धनुष और द्रौपदी को हरकर लेजाने की इच्छा से रहता था और यह कहा करता था कि मैं सब शास्त्रों का जाननेवाला मन्त्र में कुशल ब्राह्मण हूं युधिष्ठिर और ब्राह्मणों की भांति उसका भी पालन करता रहा और उसने उसको इस प्रकार से नहीं जाना जैसे राख में दबीहुई अग्नि नहीं जान पड़ती है एक दिन ऐसा हुआ कि भीमसेन तो अहेर खेलने को चले गये और घटोत्कच आदि दैत्यों को युधिष्ठिर ने बिदा कर दिया और लोमश आदिक ऋषि स्नान करने और फूल लेने चले गये और टिकने के स्थानपर केवल युधिष्ठिर नकुल सहदेव और द्रौपदी रहगये उस समय उस राक्षस ने अवसर पाकर अपना भयानक रूप धारण कर लिया और पाण्डवों के सब अस्त्र और युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी चारों को उठाकर लेचला उस समय सहदेव ने पराक्रम और यत्न से अपनी तलवार निकाल ली और बन्धन को काटकर कूद पड़ा और जिस ओर भीमसेन गया था उस ओर भीमसेन को पुकारने लगा १ । ११ जब वह राक्षस युधिष्ठिर, नकुल और द्रौपदी को लेकर चलनेलगा तब युधिष्ठिर ने उससे कहा कि तू बड़ा अज्ञानी है इस सिद्धान्त को नहीं जानता है कि हमारे हर लेजाने में तेरे ही धर्म का नाश है १२ जो जीव मनुष्य और पशु पक्षी आदि की योनि में उत्पन्न हैं, वे भी विशेष कर राक्षसों के धर्म को जानते हैं, राक्षस धर्म के मूल हैं और धर्म को अच्छे प्रकार से जानते हैं, तुझे भी उचित है कि उस धर्म को

समझ कर तू खड़ा हो जा १३।१४ अरे राक्षस! देख, देवता, राक्षस, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पितर, सर्प, पशु, पक्षी, कीड़े और चींटी आदि तीर्यग्योनि के जीव सब मनुष्य से ही जीविका पाते हैं सो तेरी भी जीविका मनुष्य से ही है १५।१६ जब इस लोककी वृद्धि होती है, तब राक्षसों के लोक की वृद्धि होती है और जब इस लोक में कोई बात शोच की होजाती है तब उसका शोच देवता भी करते हैं १७ क्योंकि हव्य और कव्य से पूजित होने के कारण से उनकी भी वृद्धि होती है सो हे राक्षस! हम देश के पालन कर्ता और रक्षक हैं १८ जो देश की रक्षा न होगी तो ऐश्वर्य और सुख क्योंकर हो सकता है इससे राक्षस को निष्पाप राजा का अपमान करना उचित नहीं है १९ अरे नरभक्षी! हम तो अपना थोड़ा-सा भी पाप नहीं जानते हैं और जो अन्न देवता असुर और ब्राह्मण आदिकों के भोजन करने पर शेष रह जाता है उसको खाते हैं २० और गुरु और ब्राह्मणों को झुककर प्रणाम करनेवाले हैं और तेरे मित्र और विश्वासी हैं तुझको मित्र और विश्वासियों से द्रोह करना किसी अवस्था में उचित नहीं है २१ हे राक्षस! किसीको उस जीव के साथ द्रोह करना उचित नहीं है जिसके स्थान में रहता हो अथवा जिसका दिया हुआ भोजन खाता हो तू हमारे घर में सुखपूर्वक रहकर हमारा अन्न भोजन करके हमारे ही साथ द्रोह करता है, तुझको हमको हरकर लेजाना उचित नहीं है और जो तेरी बुद्धि अवस्था और आचार वृथाही है और तू सब धर्मों से हीन है तो तू वृथा ही मारा जायगा २२।२४ ला हमारे अस्त्र देदे और हमसे युद्ध कर जो तू युद्ध में जीत जाय तो द्रौपदी को ले जाइयो जो तू इस पर भी अवज्ञा से इस काम को करेगा तो सिवाय अधर्म और अकीर्ति के और कुछ तेरे हाथ न लगेगा तैंने इस मानुषी स्त्री को हरा नहीं है किंतु मटके में घोलकर विष पिया है २५।२६ जब उक्त प्रकार से कहने पर भी वह राक्षस न माना तब युधिष्ठिर ने अपना शरीर भारी कर लिया उससे वह राक्षस पहिले के समान शीघ्र न चलसका उस समय युधिष्ठिर ने द्रौपदी और नकुलसे कहा २७।२८ कि तुम दोनों इस अज्ञानी राक्षस का भय मत करो मैंने इसकी गति रोकदी है भीमसेन आता ही होगा उसके आनेपर यह राक्षस तुरन्त मारा जायगा इसके पीछे उस मूढ़ राक्षस को देखकर सहदेव ने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से कहा २९।३० कि महाराज! क्षत्रिय का धर्म इससे बढ़कर कोई नहीं है कि रण में सम्मुख मारा जाय अथवा शत्रु को जीते इससे यह

देश और समय अच्छा मिला है मैं इससे युद्ध करूंगा या तो यह मुझको मार डालेगा या मैं इसको प्राणरहित करूंगा दोनों बातें अच्छी हैं मारेजाने में सद्गति मिलेगी और जीतने में विजय होगी सो मैं अब शपथ करता हूं कि जो सूर्यके अस्त होनेपर यह राक्षस जीता रहजाय तो मैं आज से अपने को क्षत्रिय नहीं कहूंगा अरे राक्षस! खड़ारह कहां जाता है मेरा नाम सहदेव पाण्डव है, मुझको मारकर इनको लेजाने पावेगा अथवा तू मेरे हाथसे मारा जायगा इसी अवसर में दैव इच्छा से ३१। ३६ इन्द्रके वज्र के सदृश गदा हाथ में लिये हुए भीमसेन आता हुआ देख पड़ा उसे देखकर द्रौपदी और युधिष्ठिर आदि भाई प्रसन्न हुए जब वह निकट आया तब देखता क्या है कि सहदेव पृथ्वी पर खड़ा हुआ उस राक्षस की निन्दा कर रहा है और उसके मार्ग को रोकरहा है और वह राक्षस युधिष्ठिर नकुल और द्रौपदी को लिये हुए भागना चाहता है परंतु बोझे और सहदेव के रोकने के कारण से इधर उधर घूमरहा है यह देखकर भीमसेन को महाक्रोध हो आया और उसने कहा कि अरे पापी! मैं तुझको उस समय से जानता हूं जिस समय तैंने मेरे अस्त्रों की परीक्षा की थी ३७। ४० परंतु उससमय मैंने तुझे इस कारण से नहीं मारा था कि तू ब्राह्मण के वेषमें था और मैंने कभी कोई अप्रिय बात नहीं कहीं थी ४१ और यह भी विचारकर रह गया था कि यह हमारे साथ कुछ बुराई नहीं करता है जिस काम को चाहते हैं उसी को यह भी करता है और निष्पाप होकर अतिथि और ब्राह्मण का वेष धारण किये हुए है इसको मैं निरपराध कैसे मारूं ४२ क्योंकि जो मनुष्य राक्षस को जानता भी हो परंतु वह स्वरूप ब्राह्मण का धारण किये हो तो भी उसके मारने से मारने वाला नरकगामी होता है सो उस समय तेरा काल पूरा नहीं हुआ था परंतु अब तेरा काल निश्चय पूरा होगया जिसके कारण से उस काल ने तुझसे द्रौपदी का हरण कराकर तुझे हमें सौंप दिया है ४३। ४४ अरे दैत्य! तैंने मछलीरूप होकर इस कालरूपी सूत्र में लटकी हुई बंशी को निगल लिया है अब तू क्योंकर जीसकता है ४५ अब तू उस देश को नहीं जाने पावेगा जहां की इच्छा करके तू इनको लेकर चला था किन्तु वहां जावेगा जहां हिडम्ब और बक नामी दैत्य गये हैं ४६ भीमसेन की उक्त प्रकार की बातें सुनकर वह काल से प्रेरित हुआ राक्षस उन सबको छोड़कर लड़ने को तैयार होगया और क्रोध से होठों को कँपाता हुआ भीमसेन से बोला कि यह दिशा मेरी जानी हुई न थी किन्तु मैंने यह विलम्ब केवल

तेरे ही कारण से की थी ४७। ४८ तैंने जो जो राक्षस मारे हैं, उनका सब का हाल मैंने सुना है अब मैं तुझे मार कर तेरे रुधिर से उनकी जलक्रिया करूंगा ४९ यह सुनकर भीमसेन क्रोध से यमराज के सदृश स्वरूप किये हुए हाथ उठाकर होठों को चाटता हुआ राक्षस की ओर बढ़ा और वह राक्षस भी उसे युद्ध के लिये सम्मुख आता हुआ देखकर क्रोध धारण करके होठों को चबाता हुआ उसके सम्मुख हुआ उस समय वे दोनों ऐसे दीखते थे मानों इन्द्र और राजा बलि हैं ५०। ५२ जब उन दोनों का भयानक बाहुयुद्ध होनेलगा तब नकुल और सहदेव भी क्रोध करके राक्षस के सम्मुखदौड़े ५३ भीमसेन ने उनदोनों को रोंक दिया और कहा कि तुम देखो मैं अकेला ही इस राक्षस को मार सकता हूं ५४और अपने भाई पुण्य धर्म इष्ट और सबकी शपथ करता हूं कि इसको अवश्य मारूंगा ५५ इसके उपरान्त वे दोनों ईर्ष्या करते हुए परस्पर हाथ मिलाकर एक दूसरे से चिपटगये ५६ और एक दूसरे से इस प्रकार से लड़ने लगे जैसे अगले समय में देवता और दानवों का युद्ध हुआ था ५७ दोनों जने वृक्ष उखाड़कर गर्ज गर्ज कर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ५८ और क्रोध कर कर के एक दूसरे को मारने की इच्छा से दोनों ने बड़े बड़े वृक्ष जङ्घाओं से तोड़डाले ५९ उस युद्ध में वृक्ष नाम को नहीं रहे और लड़ाई भी उनकी ऐसी होनेलगी जैसे स्त्री के कारण से बालि और सुग्रीव नामी दोनों भाइयों की हुई थी ६० दो घड़ीतक तो वे दोनों एक दूसरे के वृक्ष उखाड़ उखाड़ कर मारते रहे जब वृक्ष कोई नहीं रहा और सेकड़ों वृक्ष मूंजकी भांति जर्जरी होगये ६१। ६२ तब दोनों जने शिला ले ले कर इस प्रकार से लड़ने लगे मानो दो पर्वत बादलों से लड़रहे हैं ६३ और इनसे एक दूसरे को घायल करके परस्पर बांहें पकड़ पकड़ कर दो हाथियों के समान एक दूसरे को अपनी अपनी ओर खींचनेलगे ६४। ६५ और परस्पर घूंसे मारने से कटकटा शब्द होने लगा ६६ इसी अवसर में भीमसेन ने पांच शिखाले सर्प के सदृश मुट्ठी बाँधकर उस राक्षस की ग्रीवा में एक घूंसा मारा ६७ और वह राक्षस भीमसेन से लड़ता लड़ता थकगया भीमसेन उसे थका हुआ देखकर प्रसन्न हुआ ६८ और उसको पृथ्वीपर दोनों हाथों से पकड़कर रगड़ने लगा ६९ थोड़ी देर में भीमसेन ने उसके अङ्गों को रगड़कर चूर्ण करडाला और तलप्रहार से उसका शिर धड़ से अलग करदिया ७० वह शिर रुधिर भराहुआ दांत और आंखें निकाले हुए होठों को चाबता सा वृक्ष से गिरे हुए फल की भांति पृथ्वीपर जा

पड़ा भीमसेन उस राक्षस को मारकर प्रसन्न हुआ और ब्राह्मणों से स्तुति सुनता हुआ इस प्रकार से युधिष्ठिर के समीप गया मानो मरुत देवताओं से स्तूयमान इन्द्र जारहा है ॥ ७१ ।७२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

एकसौ अट्ठावनवां अध्याय।

युधिष्ठिर का नारायण आश्रम से वृषपर्वाऋषि के आश्रम को जाना और वहां से गन्धमादन पर्वत की शोभा देखते हुए आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में पहुँचना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राक्षस के मारे जानेपर कुन्तीनन्दन सर्वकर्मसमर्थ राजा युधिष्ठिर नारायण आश्रम को फिर लौट आया और वहां रहने लगा १ एक दिन उसने अर्जुन को याद करके सब भाइयों को द्रौपदी सहित बुलाकर यह वचन कहा २ कि अब हमको वन में आनन्द से घूमते हुए चार वर्ष होगये और अब यह पांचवां वर्ष जाता है जिसमें अर्जुन आने को कहगया था और यह नियम करगया था कि हम स्वर्ग में रहकर पांच वर्ष अस्त्रविद्या सीखेंगे उपरान्त तुमसे उस पर्वतोत्तम श्वेत पर्वतपर आमिलेंगे जो फूले फले वृक्षों से शोभित और मतवाले हुए कोकिला, मोर, भौंरे, चातकआदि पक्षियों से शब्दित और व्याघ्र, वाराह, महिष, नील गाय, हरिण, श्वापद, मृगों से व्याप्त और शतपत्र सहस्रपत्र के नीले और नाना प्रकार के फूले हुए कमलों से भूषित देवता और असुरों से सेवित बड़ा पुण्य और पवित्र है वह समय अब पूरा होगा और हम उस गाण्डीवधनुर्द्धर अर्जुन को देवलोक से इस लोक में आया हुआ देखेंगे ऐसा कहकर युधिष्ठिर ने सब ब्राह्मणों को बुलाया और सब कारण कहकर उनकी प्रदक्षिणा की ३। ११ ब्राह्मण उस बातको सुनकर प्रसन्न हुए और कहनेलगे कि हे युधिष्ठिर! अब थोड़े ही दिनों में तुम्हारा सब क्लेश दूर होजायगा और कल्याण कुशल सहित सुख का उदय होगा और तुम क्षत्रियधर्म से पृथ्वी का पालन करोगे यह सुनकर युधिष्ठिर ने अपने भाई और लोमश आदि ब्राह्मण और राक्षसोंसहित वहां से यात्रा की १२।१४ और राक्षसों पर जहां तहां उतरते चढ़ते अनेक क्लेशों को याद करते हुए उत्तरदिशा में सिंह व्याघ्र, हाथी आदि वन के जीव और कैलास, मैनाक, गन्धमादन और हिमाचल आदि पर्वत और पर्वतों के ऊपर अनेक नदियों को देखते हुए सत्रहवें दिन हिमाचल पर्वत के उस पुण्यरूपी पृष्ठपर पहुँचे १५।१८ जहां नानाप्रकार

के वृक्ष और लता लगी हुई थीं वहां उन्होंने वृषपर्वा का आश्रम देखा जिसके चारों ओर जल के आवर्त्त से उत्पन्न हुए फूले हुए वृक्ष लगे हुए थे १९।२० पाण्डव गतश्रम होकर उस आश्रम में गये और वृषपर्वा राजऋषि को दण्डवत् की २१ वृषपर्वा राजऋषि ने पाण्डवों का सम्मान पुत्र के सदृश किया वहां सातदिन सुखपूर्वक बसे आठवें दिन उन्होंने उस राजऋषि से आज्ञा लेकर चलने की इच्छा की और उन सब साथी ब्राह्मणों को एक एक करके सत्कार सहित वृषपर्वा राजऋषि को कुछ दिनों के लिये सौंप दिया और रत्न, भूषण, वसन और यज्ञपात्र आदि जो कुछ पाण्डवों के पास था वह भी उन्होंने वहीं छोड़ दिया २२।२५ इसके उपरान्त उन त्रिकालज्ञ, धर्मदर्शी और विद्वान् राजऋषि ने पाण्डवों को पुत्र तुल्य जानकर शिक्षा की और पाण्डव उनसे आज्ञा लेकर उत्तर दिशा को मार्गी हुए कुछ दूर तक वृषपर्वा राजऋषि भी उनके साथ साथ गये उपरान्त पाण्डवों को आशीर्वाद देकर उन्हें धौम्य और लोमश ऋषि को सौंप कर नाना प्रकार के मृगों से व्याप्त मार्ग को बताकर अपने आश्रम को लौट आये २६ । २८ और युधिष्ठिर जो कि कुन्तीनन्दन होकर सत्य पराक्रमवाले थे वह अपने भाइयों सहित वहां से पैदल ही चलदिये और अनेक वृक्षों के नीचे पहाड़ के शिखरों पर टिकते हुए चौथे दिन उस श्वेतपर्वत की सीमापर जा पहुँचे जो मणि और सोने चांदी की शिलाओं का समूह रखनेवाला और जल धारी बादलों के सदृश सब स्थानों पर जल से सुशोभित था पाण्डव वहां से वृषपर्वा के वताये हुए रास्ते पर अनेक पर्वतों को देखते हुए चले गये और राह में अनेक दुर्गम गुफाओं को जो मृग, पक्षी और वानर आदि अनेक वन के जीव, वृक्ष, लता और कमलों के सरोवरों से बड़ी मनोहर होरही थीं सुखपूर्वक बिना क्लेश पाये नांघते हुए माल्यवन्त पर्वत पर पहुँचे और वहां वास किया इसके उपरान्त पाण्डवों ने गन्धमादन पर्वत की शोभा देखी और उसे देखकर उनको ऐसा आनन्द हुआ कि उनके रोम खड़े होगये उन पर्वत पर सिद्ध, चारण, किंपुरुष, विद्याधर और किन्नरी विहार कररही थीं ३० । ३८ और कहीं हाथियों के झुंड, कहीं मृगों के समुदाय और कहीं सिंह व्याघ्र विचररहे थे ३९ पाण्डवों ने बड़ी प्रसन्नता से उस नन्दनवन की-सी शोभा रखने वाले गन्धमादन पर्वत के सुन्दर वन में प्रवेश किया उसकी शोभा मन और हृदय को आनन्द देनेवाली थी पाण्डव उस शोभा को द्रौपदी और

महात्मा ब्राह्मणोंसहित देखते हुए आगे चले ४० । ४१ उस वन में पक्षी मधुर मधुर बोली सुनाते थे जिसको सुनकर ऐसी प्रीति उत्पन्न होती थी कि कान उससे तृप्त नहीं होते थे और आम्र, आम्रातक, भव्य, नारिकेल, तेंदू, मुंजातक, अञ्जीर, अनार, अमरूद, पनस, लकुच, मोंच, खजूर, अम्लवेत, पारावत, क्षौद्र, नीप, बेल, कैथ, जामुन, काश्मरी, बेर, प्लक्ष, गूलर, बड़, अश्वत्थ, क्षीरक, भिलावां, आमलक, हड़, बहेड़ा, इंगुद, करमर्द, चम्पक, अशोक, केतक, बकुल, पुन्नाग, सप्तपर्ण, कर्णिकार, केतक, पाटल, कुटज, मन्दार, इन्दीवर, पारिजात, कोविदार, शाल, ताल, तमाल, पीपल, हिंगुक, शाल्मली, किंशुक, अशोक, शिंशपा, सरल और अन्य अनेक वृक्ष जिनके फलों का स्वाद अमृत के समान था फूले फले लगे हुए थे डालियां उनकी पुष्पों से श्वेत और फलों से झुक रही थीं ४२ । ५१ उन पर चकोर, शतपत्र, भृङ्गराज, शुक, कोकिल, कलविंक, हारित, जीव, जीवक, प्रियक, चातक और अनेक पक्षी मधुर मधुर और सुरीले शब्द बोल रहे थे ५२ । ५३ और अनेक मनोहर सरोवरों में कुमुदिनी, पुण्डरीक, कोकनद और कह्लार आदि अनेक जाति के कमल खिल रहे थे उन कमलों पर वह भौंरे गूंज रहे थे जो उनके रसरूपी मद को पीकर आलसी और कमलों के भीतर की लाल रज के ऊपर गिरने से रञ्जित हो रहे थे और उन सरोवरों के किनारे कादम्ब, चकवा, चकवी, कुरर, जलकुक्कुट, कारण्डव, प्लव, हंस, बगुला और भृङ्ग आदि अनेक जलचारी पक्षी बैठे हुए परम शोभा दे रहे थे ५४ । ५८ जहां तहां कमल के षण्डों के पास वृक्षों की लताओं से बने हुए मण्डपों के नीचे मोरनी और मोरबादलकी गर्ज से कामासक्त होकर मीठी मीठी बोली बोल रहे थे और कामविलास के मद से मतवाले होकर अपने चित्र विचित्र परों को फैलाये हुए बड़े हर्ष से नाच रहे थे ५९ । ६१ बहुत से मोर अपनी अपनी प्रियाओं के साथ जहां तहां घूम रहे थे बहुत से बल्ली और लताओं की बनी हुई कुञ्जों में विहार कर रहे थे बहुत से कुटज नामी वृक्षों के ऊपर और नीचे बैठे थे ६२ । ६३ कहीं कहीं वृक्षों के खोखलों में सिन्धुवार नामी वृक्ष जो कामदेव के तोमर शस्त्र के तुल्य थे लगे हुए थे ६४ कहीं पहाड़ के शिखर पर सुनहले फूल और कहीं कर्णिकार बृक्ष के फूल खिले हुए शोभा दे रहे थे कहीं कुरुबक नामी बृक्ष फूल रहे थे जिनकी शोभा कामदेव के बाणों के सदृश और दर्शन कामी पुरुषें

को शोक उत्पन्न करनेवाला था ६५। ६७ कहीं तिलक नामी बड़े बड़े फूल लगे हुए थे कहीं कहीं सहकार के मनोहर फूलों पर भौंरे गूंज रहे थे कहीं पहाड़ की चोटी पर सुनहरे, लाल, काले और वैडूर्यमणि के समान फूलों से लदे हुए वृक्ष खड़े थे ६८। ६९ कहीं शाल, तमाल, पाटल और बकुल नामी फूल इस प्रकार से लगे हुए थे कि उनसे उस पर्वत के शिखरमाला धारण किये हुए दीखते थे ७० पाण्डव इस प्रकार से पहाड़ के ऊपर उन अनेक सरोवरों को देखते हुए जिनमें स्फटिक के तुल्य निर्मल जल भरा हुआ था और पद्म और उत्पल जाति के कमल खिल रहे थे जिनके तट पर हंस, सारस आदि पक्षी बोल रहे थे उस वन में अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्प, मधुर फल और मनोरम वृक्षों को अवलोकन करते हुए फिरने लगे और कमल, उत्पल और पुण्डरीक जाति के कमलों की सुगन्धि से सुगन्धित हुई वायु के चलने से बड़े प्रसन्न हुए ७१। ७६ उस समय राजा युधिष्ठिर भीमसेन से कहने लगे कि देखो यह गन्धमादन पर्वत का वन कैसे आश्चर्य के साथ शोभित हो रहा है ७७ कि जिसमें दिव्य पत्र, पुष्प और फल रखनेवाली कैसी कैसी लता कैसे कैसे आकारों से फैली हुई हैं ७८ फूल भी कैसे कैसे खिल रहे हैं और कोकिला आदि पक्षी कैसी मीठी मीठी बोली बोल रहे हैं इस वन में कोई वृक्ष अथवा लता कांटेदार और पुष्परहित नहीं दीखते हैं ७९ देखो इस गन्धमादन पर्वत के शिखर कैसे सुशोभित हो रहे हैं उनके ऊपर कैसे कैसे वृक्ष लगे हुए हैं जिनके पत्ते और फल चिकने और कोमल हैं देखो, यह कमलिनी कैसी है फूल इसमें कैसे खिल रहे हैं और भौंरे कैसी मधुर गुंजार कर रहे हैं और वे सरोवर भी देखो हम जानते हैं कि हाथी और हथिनियों ने इनमें क्रीड़ा की है, आहा वह आगे की कमलिनी कैसी अच्छी है, भीमसेन देखो, इसके कमल कैसे उत्तम हैं ८०। ८१ और इस पहाड़ी वन में कैसी शोभा दे रही हैं, मानो मालाधारी दूसरी लक्ष्मी है देखो, ये भी सरोवर कैसे सुन्दर हैं इनके फूलों की महक बड़ी ही उत्तम और इनके तट पर भौंरे कैसे कैसे सुरों में गूंज रहे हैं देखो ये देश देवताओं के क्रीड़ा करने के कैसे हैं ८२। ८३ हे भीमसेन! हम भी इनको देखकर सिद्ध अर्थ और दिव्य गति को प्राप्त हुए हैं और ये वृक्षों की फूली हुई लता पर्वत के शिखरों से चिपटी हुई कैसी सुन्दर दीखती हैं और मतवाले मोर मोरनियों के साथ कैसी मधुर वाणी बोल रहे हैं और चकोर, शतपत्र,

कोकिला और शारिका आदि पक्षी इन फूले हुए वृक्षों पर किस प्रकार से उड़ उड़ कर बैठते हैं देखो ये लाल पीले और रङ्ग रङ्ग के पक्षी वृक्षों पर बैठे हुए कैसी शोभा देरहे हैं ८४ । ८७ और ये जीव और जीवक पक्षी इन लाल और हरी घासों पर बैठे हुए कैसे एक दूसरे की ओर देख रहे हैं और इन पर्वत के झरनाओं पर ये सारस बैठे हुए कैसी मधुर बोली बोल रहे हैं कि जिसको सुन कर मनुष्य का चित्त प्रसन्न होजाता है ८८ । ८९ और इन वैडूर्यमणि के सदृश सरोवरों पर ये भृङ्गराज उपचक्र और लोहपृष्ठ पक्षी बैठे हुए हैं और उनके भीतर ये पद्म कां-सा वर्ण रखनेवाले चार दांत रखनेवाले हाथी हथिनियों सहित विहार करते हुए कैसे सुशोभित होरहे हैं और ये जल की धारा जिनकी चमक सूर्य की किरणों के समान और भयानकरूप हैं बड़े ऊंचे झरनाओं से पहाड़ की चोटियों पर गिरती हुई कैसी उत्तम दिखाई देती हैं मानो शरद् ऋतु के सजल मेघ हैं ९० । ९२ और यह पहाड़ देखो अनेक प्रकार की धातुओं से कैसा बहुरङ्गी दीखता है कहीं अञ्जन के सदृश है, कहीं सुवर्ण के तुल्य है और कहीं हरताल कहीं हिंगुल कहीं मैनशिल कहीं अभ्रक और कहीं श्यामघटा के सदृश लोहितवर्ण और कहीं काले सूर्य के समान प्रकाशमान है ९३ । ९५ इन धातुओं से पर्वत अत्यन्त सुशोभित होरहा है वृषपर्वा ऋषि ने जैसा कहा था वैसा ही यह है निस्संदेह गन्धर्व लोग अपनी स्त्री और किंपुरुषों सहित पहाड़ की चोटियों पर दीखरहे हैं देखो उनके गाये हुए सामवेद के मन्त्र और एक-सी ताल रखनेवाले गीत सुनाई देरहे हैं कौन ऐसा प्राणी है जिसका मन इनको सुनकर मोहित न होजावे देखो इस धर्म को बढ़ानेवाली देवनदी गङ्गा के तट पर ये हंसों के गण कैसी शोभा देरहे हैं, यह गङ्गा ऋषि और किन्नरों से सेवित है और यह पर्वत धातु, नदी, किन्नर, पशु, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, वन और नाना प्रकार के सर्पों से कैसी शोभा रखता है ९६ । १०० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पाण्डव उस पर्वत की शोभा को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उनका मन उस शोभा को देख कर तृप्त नहीं हुआ १०१ इस प्रकार से बिचरते हुए वे उस आर्ष्टिषेण राजऋषि के आश्रम में पहुँचे जो फले हुए वृक्षों से सुशोभित था वहां पहुँचकर उस धर्मनिष्ठ कृशतप सब धर्मों के ज्ञाता आर्ष्टिषेण ऋषि के पास गये जिसके शरीर में केवल धमनी मात्र रहगई थी ॥ १०२ । १०३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

एकसौ उनसठवाँ अध्याय ।

पाण्डवों का आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में पहुँचना और आर्ष्टिषेण का युधिष्ठिर को शिक्षा करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर अपना नाम लेकर आर्ष्टिषेण ऋषि को साष्टाङ्ग दण्डवत् की उसके पीछे भीमसेन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी ने भी शिर झुकाकर प्रणाम किया और सब जने ऋषि के समीप बैठ गये १ । २ इसके पीछे पाण्डवों के पुरोहित धर्मज्ञ धौम्य ऋषि भी वहां गये और विधिपूर्वक उन शांसितव्रत ऋषि से मिलकर समीप बैठगये ३ तब धर्मज्ञाता आर्ष्टिषेण ने अपनी दिव्य दृष्टि से पाण्डवों को पहिंचान लिया और उन्हें बैठने की आज्ञा दी ४ फिर वह महातपस्वी उनका विधिपूर्वक आदर सत्कार करके युधिष्ठिर से पूछने लगे हे राजन् ! तुम झूंठ तो नहीं बोलते हो और धर्म पूर्वक माता पिता की चाल पर चले जाते हो या नहीं ५ । ६ कहीं पाप कर्म के करने में तुम्हारा चित्त तो नहीं रहता है और तुम अपने गुरु और वृद्धों की पूजा करते हो या नहीं ७ और उपकारी के साथ प्रत्युपकार और अपराधी का त्याग भी करते हो या नहीं और तुम अपने को ज्ञाता तो नहीं समझते हो ८ जो साधु पूजन के योग्य हैं वे अपनी पूजा तुम से पाकर प्रसन्न होते हैं या नहीं और वन में रहने पर भी तुम धर्म करते हो या नहीं ९ हे पृथानन्दन, पाण्डव ! तुम्हारे आचारों से धौम्य ऋषि तो दुःखी नहीं होते हैं और दान, धर्म, तप, शौच, सीधापन, तितिक्षा और बाप दादों की मर्यादा पर चलते हो या नहीं और जो मार्ग राजऋषियों का चला हुआ है उसी पर तुमभी चलते हो या उससे अन्यथा वर्त्तावा करते हो १० । ११ पुत्र और पौत्र के उत्पन्न होनेपर उनके पितर पितृलोक में यह शोचा करते हैं कि यह हमारा पुत्र अथवा पौत्र शुभकर्म करेगा तो हमको इसके शुभ कर्मों से यह पदार्थ प्राप्त होगा और जो यह अशुभ कर्म करेगा तो उसके कुकर्म से हम को यह दुःख मिलेगा सो हे युधिष्ठिर ! जिस मनुष्य के कर्मों से माता, पिता, गुरु, अग्नि और आत्मा प्रसन्न होते हैं उन्होंने निस्संदेह इसलोक और पर लोक और दोनों को जीतालिया है १२ । १४ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज ! जो जो बातें आपने पूछीं हैं उन सब को मैं विधिपूर्वक यथाशक्ति करता हूं १५ तब आर्ष्टिषेण ऋषि बोले कि हे राजायुधिष्ठिर ! इस पर्वत पर

जल और वायु को भक्षण करनेवाले और आकाश में चलनेवाले बड़े बड़े तेजस्वी ऋषि पौर्णिमा आदि पर्वों की संधि में आया करते हैं और किंपुरुष और यक्ष अपनी कामासक्त स्त्रियोंसहित पर्वत के शिखरों पर देखा करते हैं १६ । १७ और गन्धर्व अप्सराओं के भी बहुत से गण दिव्य वस्त्रों को धारण किये हुए दिखाई देते हैं और माला पहिरे हुए विद्याधरों का उरगों के समूह का और गरुड़ का भी दर्शन होता है और जहां जहां पर्वत में संधि है वहां वहां भेरी, ढोल, शंख और मृदङ्गों के बजने का भी शब्द सुनाई देता है १८ । २० सो जब कभी ऐसा हो तब तुम सब यहीं से सुनना और देखना और वहां कभी न जाना २१ यह देवताओं के विहार करने का स्थान है यहां से आगे जाना उचित नहीं है; क्योंकि आगे मनुष्य नहीं जासकता है २२ यहां के प्राणी थोड़ासा भी चपल कर्म करने से मनुष्य से द्वेष करने लगते हैं और राक्षस उस मनुष्य को मारते हैं २३ इस कैलास पर्वत के शिखरों के आगे केवल बड़े बड़े सिद्ध और देवऋषि जासकते हैं २४ और जो कोई और मनुष्य अपनी चपलता से वहां जाता है उसको राक्षस लोहे के शूलों से मार डालते हैं २५ हे तात ! इस पर्वत की संधियों में कुबेरजी नरपर सवार होकर अप्सराओं सहित पर्वों की संधि में अपना दर्शन देते हैं २६ उनका दर्शन सब प्राणी इस प्रकार से करते हैं मानो सूर्य उदय हुआ है २७ और पर्वत के इस शिखर पर देवता, दानव, सिद्ध और कुबेरजी के क्रीड़ा करने के स्थान हैं २८ जब पर्वों की संधि आती है तब कुबेरजी के समीप तुम्बुरु गन्धर्व के सामगीत गाने का शब्द सुनाई देता है २६ यहां के रहने वाले प्राणी इन सब आश्चर्यों को देखा करते हैं ३० तुम भी अर्जुन के आने तक यहां रहो और रसीले फल और मुनिलोगों के खाने के पदार्थ भोजन करो ३१ हे पाण्डवो ! यहां तुमको चपलता करना उचित नहीं है इच्छा के अनुसार रहो और विहार करो थोड़े दिनों में पृथ्वी को शस्त्र से जीतकर पालन करोगे ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

एकसौ साठवाँ अध्याय ।

भीमसेन का पर्वत के शिखरपर जाकर कुबेरभवन को देखना वहां राक्षसों से युद्ध होना और भीमसेन का मणिमान् आदि राक्षसों को मारना ।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने पूछा कि हे वैशंपायनजी ! हमारे

पितामह पाण्डवों ने जो बड़े महात्मा और पराक्रमी थे गन्धमादन पर्वत पर आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में कितने दिनों वास किया और वहां रहकर वे क्या खाकर कौन काम करते रहे और यह भी सुनाइये कि उस शूरवीर भीमसेन ने उस पर्वतमें क्या क्या काम किये हे द्विजोत्तम! यक्षों से तो उसका फिर युद्ध नहीं हुआ था क्या कुबेरजी से पाण्डवों का मिलाप होगया था क्योंकि वहां कुबेरजी आया करते थे जैसा कि आर्ष्टिषेण ऋषि ने कहा था हे तपोधन! मैं इस सब हाल को विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं पाण्डवों का चरित्र सुनते सुनते मेरा मन नहीं भरता है १। ६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भरतवंशी पाण्डव आर्ष्टिषेण ऋषि की उक्त शिक्षा को सुनकर उसीप्रकार से रहनेलगे सुन्दर स्वादिष्ठ फल और बाणों से मारे हुए मृगों का मांस उनका भोजन था और वे उस पहाड़ की पृष्ठपर अनेक प्रकार के मधु अर्थात् रसपान करते हुये विहार करने लगे ७। ६ लोमशऋषि उनको अनेक प्रकार की कथा सुनाया करते थे इसप्रकार रहते हुऐ उनको पाचवां वर्ष प्रारम्भ होगया १० हे राजन्! वहां से घटोत्कच राक्षस यह कहकर कि जब काम होगा तब आपके स्मरण करने पर फिर चला आऊँगा पूर्व दिशा की ओर चला गया और पाण्डवों को उसी आश्रम में रहते हुए पांचवां वर्ष प्रारम्भ होने के पीछे बहुत से महीने बीतगये पाण्डवों ने इस अवसर में बहुत से आश्चर्य देखे तदनन्तर बहुत से महानुभाव मुनि और चारण लोग जो युतव्रत और शुद्धात्मा थे पाण्डवों से प्रीति मानकर वहां आये और उन्होंने पाण्डवों से अनेक कथायें वर्णन कीं ११।१४ इसके उपरान्त बहुत दिनों के पीछे एक दिन गरुड़जी ने अकस्मात् एक बड़े सर्प को जो एक बड़े सरोवर में रहता था और मणि रखता था हरण किया १५ उससे वह पर्वत हिलने लगा और बहुत से वृक्ष गिर पड़े उस आश्चर्य को पाण्डव आदि सब वहा के रहने वालों ने देखा १६ इसी अवसर में बहुत से सुगन्धित फूल वायु से उड़ पाण्डवों के सामने आपड़े १७ पाण्डव अपने सुहृद् और यशस्विनी द्रौपदी सहित उन दिव्य और पचरंगे फूलों को देखनेलगे १८ उस समय द्रौपदी ने भीमसेन से जो कि आनन्दपूर्वक वहां एकस्थान पर बैठा हुआ था कहा १६ कि देखो गरुड़जी के परों की वायु से उड़कर ये कैसे सुन्दर पांचरंग के फूल आ पड़े हैं २० तुम्हारे छोटे भाई महात्मा अर्जुन ने जो अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने वाला है सबके देखते अश्वरथा नदी के पास खाण्डव

वन में गन्धर्व उरग राक्षस और इन्द्र को युद्ध में मारकर हटा दिया था और बहुत से मायावी राक्षसों को मारकर गांडीव धनुष प्राप्त किया था २१ । २२ तुम्हारा भी उसी प्रकार से बड़ा तेज और भुजाबल है उसको सहने की किसी की सामर्थ्य नहीं है तुम्हारी शूरता इन्द्र के समान है २३ इससे मैं चाहती हूँ कि हे भीमसेन ! तुम्हारी भुजा के बल से इस पर्वत के राक्षस डरकर इधर उधर दिशाओं में भागजायँ २४ और तुम्हारे सुहृद् लोग निर्भय होकर इस चित्र विचित्र पुष्पों से अलंकृत पहाड़ की चोटी को देखें जो बड़ी कल्याणरूप है २५ और मैं भी तुम्हारी भुजाबल से रक्षित होकर बहुत दिनों से इस पर्वत की चोटी को देखना चाहती हूँ २६ एवं महाभुजशाली भीमसेन द्रौपदी की उक्तबातों को सुनकर इस प्रकार से उन्हें न सह सका जैसे अच्छा बैल मार को नहीं सहता और वह सिंहगामी, श्रीमान्, उदार, मनस्वी, बलवान्, गर्वित, अभिमानी, शूरवीर, रक्तनेत्र और मोटे कंधे रखनेवाला, मतवाले हाथी के समान पराक्रमी सिंह की सी डाढ़ रखनेवाला, शालवृक्ष के समान ऊंचा महात्मा, सुन्दर अङ्ग, कम्बुग्रीव और महाबाहु भीमसेन जिसके शरीर की प्रभा अच्छे सुवर्ण के सदृश थी धनुष तलवार और तरकस लेकर सिंह के समान निर्भय और मतवाले हाथी के समान झूमता हुआ पर्वत की ओर चल दिया २७।३१ सब प्राणी उस को जातेहुये देखने लगे और वह द्रौपदी के हर्ष को बढ़ाने के लिये निर्भय होकर पहाड़ पर चढ़गया ३२ । ३३ श्रम, भय, अप्रसन्नता और झूंठ ये उस वायुनन्दन, पराक्रमी पृथापुत्र के पास कभी नहीं आते थे ३४ वहां उसने बायें और दहिने मार्गों को शून्य पाया और वह बलवान् उस भयानक और कठिन पर्वत की चोटीपर चढ़गया ३५ किन्नर, महानाग, मुनि, गन्धर्व और राक्षस उसे देखकर प्रसन्न हुए और उसने वहां से कुबेरजी के भवन को देखा जिसमें कञ्चन और स्फटिक के मन्दिर बने हुए थे ३६ । ३७ उसके चारों ओर वह सुनहरी परकोटा खिंचा हुआ था जो रत्नों से जटित क्रीड़ा करने के स्थानों से सुशोभित था ३८ उसके ऊपर पहाड़ के सदृश अटारियां बनी हुई थीं और भीतर जाने को द्वार भी था जहां पर ध्वजा लगी हुई थी अप्सरा नाच रही थीं और वह पताकाओं से अलंकृत होरहा था वे पताका वायु से हिल रही थीं भीमसेन धनुष् की कोटि को हाथमें लिये हुए कुबेरजी के भवन की शोभा देखता हुआ आगे को चला उस समय बड़ी सुगन्धित वायु जिस

के स्पर्श से बड़ा आनन्द होता था चलनेलगी ३९ । ४२ भीमसेन उस वायु से प्रसन्न होकर उस पर्वत की चोटी के नाना प्रकार के परम शोभित वृक्षों को देखता हुआ कुबेरजी के भवन को चित्रविचित्र पुष्प और अनेक प्रकार के रत्नों से भूषित अवलोकन करता हुआ गदा खड्ग और धनुष हाथ में लिये हुए पर्वत के समान अचल खड़ा होगया ४३ । ४५ और वहां उसने शंखध्वनि ज्या का शब्द करके अपनी ताल बजाई कि जिसको सुनकर सब जीव मोहित होगये ४६ यक्ष राक्षस और गन्धर्व उसको सुनकर रोमाञ्चित होगये और परिघ खड्ग, गदा, शक्ति और शूल लेकर भीमसेन से युद्ध करने को चले आये भीमसेन उनसे युद्ध करनेलगा और उनके छोड़े हुये शूल, शक्ति और फरसों को अपने भयानक बल्लों से काटकर गिरा दिया और उन आकाश में स्थित और चारों ओर खड़े हुए राक्षसों को बाणों से छेदने लगा उससे उन राक्षसों के शरीर से रुधिर की वर्षा भीमसेन के ऊपर होनेलगी ४७ । ५१ और जल की वर्षा के सदृश उन गदा आदि अस्त्र लियेहुए राक्षसों के अङ्गों से रुधिर की धारा चारों ओर गिरने लगी ५२ भीमसेन के मारे हुए अस्त्रों से उन यक्ष और राक्षसों के शिर और शरीर कट कट कर पृथ्वीपर गिरपड़े उस समय भीमसेन उन राक्षसों से ढका हुआ ऐसा दीखने लगा मानों सूर्य बादलों में छिपा हुआ है ५३ । ५४ उस समय भीमसेन ने जिसका पराक्रम सत्य और तेज सूर्य के तुल्य था अपने तीक्ष्ण बाणों से सब राक्षसों को मोहित करदिया ५५ और यद्यपि सब राक्षस चारों ओर से गर्जते थे और भीमसेन को घुड़कते थे परंतु भीमसेन किञ्चिन्मात्र भी मोहित नहीं हुआ ५६ उस समय राक्षस भयभीत और घायल होकर दुःखसे चिल्लाने लगे ५७ और गदा, शूल, खड्ग, शक्ति और फरसा आदि अपने शस्त्रों को छोड़ छोड़कर दक्षिण दिशा की ओर चलदिये ५८ और कुबेरजी के मित्र मणिमान् राक्षस के समीप पहुँचे जो विशाल वक्षस्थलवाला होकर महाभुजाओंवाला था वह शूल और गदा हाथ में लियेहुए बैठा हुआ था ५९ उनको देखकर वह बोला कि तुम लोग बहुत से होनेपर भी अकेले मनुष्य के भय से भागे हुए चले आते हो कुबेरजी से तुम लोग क्या कहोगे ६० । ६१ यह कहकर वह राक्षस शक्ति, शूल और गदा हाथ में लेकर भीमसेन के सम्मुख युद्ध करने को गया उसे मतवाले हाथी के समान आतेहुए देखकर भीमसेन ने वत्सदन्त नामी तीन बाण उस राक्षस के पार्श्वपर मारे ६२ । ६३

वह उनके लगने से क्रोधित होगया और उसने अपनी बड़ी गदा घुमाकर उसके मारी ६४ भीमसेन ने उस बिजली के समान गदा को आती हुई देखकर अपने तीक्ष्णबाणों से उसे ढकदिया ६५ परंतु वे सब बाण उस गदा से टूट गये और उसको न रोकसके तब उस वीर ने उसको गदायुद्ध की रीतिसे गिरा दिया ६६ । ६७ इसी अन्तर में उस राक्षस ने एक लोहे की शक्ति मारी जिस की मूठ सुनहरी थी ६८ और बड़ी भयानक अग्नि के समान प्रज्वलित और डरावना शब्द करनेवाली थी वह भीमसेन की दाहिनी भुजा को देख कर पृथ्वी पर गिरपड़ी ६९ उससे घायल होकर भीमसेन क्रोधित होगया और उसकी आंखे लाल लाल होगईं उस समय भीमसेन ने अपनी लोहे की गदा जो शत्रुओं को भय दिलानेवाली और नाश करनेवाली थी ले ली और वह बड़े वेग से उस राक्षस के सम्मुख युद्ध करने को गया उस राक्षस ने भी एक बड़ा शूल हाथ में लेलिया और उसे घुमाकर भीमसेन पर फेंका भीमसेन ने उस शूल को अपनी गदा की नोक से तोड़कर गिरा दिया ७० । ७२ और उस राक्षस को मारने के लिये इस प्रकार से दौड़ा मानों गरुड़जी सर्प को मारने को जाते हैं इसके पीछे भीमसेन ने गर्जकर और उछल कर अपनी वज्र के तुल्य गदा घुमाकर उस राक्षस के ऊपर छोड़दी और वह उस राक्षस को मारकर पृथ्वीपर गिरपड़ी और वह राक्षस पृथ्वी पर प्राणरहित गिरा हुआ ऐसा दीखने लगा मानो सिंह ने बैल मारा है इसके उपरान्त मरने से बचे हुए राक्षस उस मणिमान् राक्षस को मरा हुआ देखकर करुणा और भयानक शब्द करते हुए पूर्व दिशा को भागगये ॥ ७४ । ७७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

एकसौ एकसठवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिरआदि का भीमसेन के पास जाना वहां कुबेरजी का आना और अपने पाप से छूटने का वृत्तान्त युधिष्ठिर को सुनाना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, धौम्य ऋषि, द्रौपदी और सब ब्राह्मण पर्वत की गुफाओं को अनेक प्रकार के शब्दों से शब्दित और भीमसेन को वहां न देखकर उदास होगये १।२ और द्रौपदी को आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में छोड़कर एक साथ सबके सब पहाड़ की उस चोटी पर चढ़गये ३ और वहां उन्होंने भीमसेन और उसके चारों

और महापराक्रमी राक्षसों को निर्जीव पड़ा देखा ४। ५ उस समय भीमसेन की छवि ऐसी थी मानों गदा और खड्गआदि शस्त्रों को लिये हुए इन्द्र है जिसने दानवों को मारा है ६ पाण्डव उसे देखकर उससे मिले और परम उत्तम गति को पाते हुए वहां बैठगये ७ उस समय उनसे वह पर्वत का शिखर ऐसा सुशोभित दीखनेलगा मानो स्वर्ग में लोकपाल देवता इकट्ठे हुए हैं ८ तब युधिष्ठिर ने कुबेर के भवन और मरे हुए राक्षसों को देखकर भीमसेन से कहा ९ कि भाई! तैंने साहस अथवा मोह के कारण से यह पाप किया है तुझको मुनियों का वेष रखकर ऐसा निरर्थक वध करना उचित न था १० धर्मात्माओं का यह मत है कि राजा को ऐसा दुष्ट कर्म करना न चाहिये जैसा तैंने देवताओं के साथ किया है ११ अर्थ और धर्म को छोड़कर जो मनुष्य पाप कर्म करता है उसको उन कर्मों के करने का फल अवश्य प्राप्त होता है इससे जो तू मेरा प्रिय करना चाहता है तो फिर ऐसा न कीजिये १२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! तत्व के जाननेवाले राजा युधिष्ठिर ने उक्त प्रकार से भीमसेन को समझाया और चुप होकर उसके विषय में शोच करने लगा इसी अवसर में भीमसेन के हाथ से बचे हुए राक्षस जो शस्त्र और कवच से रहित थके हुए और रुधिर से लिप्त अङ्ग थे बाल फेरे हुए कुबेरजी के भवन में पहुँचे और बड़ी पीड़ा से भयानक शब्द करके कुबेरजी से कहने लगे कि हे धनेश्वर, नराधिप, महाराज! एक मनुष्य ने पर्वत के शिखर पर आकर सब क्रोधवशा नाम राक्षसों को जो आपके आगे चलनेवाले थे गदा, परिघ, खड्ग और तोमर आदि शस्त्रों से युद्ध करनेपर भी मारडाला है और वे सब निर्जीव पड़े हुए हैं आपकी कृपा से हम लोग बचकर भाग आये हैं आपका मित्र मणिमान् भी मारा गया १३। २० अब जैसा आप उचित समझें वैसा कीजिये यह सुनकर कुबेरजी ने क्रोध से लाल लाल आंखें करके कहा कि भीमसेन ने यह दूसरा बड़ा अपराध किया है अच्छा हमारा रथ जोत कर तैयार करो यह सुनकर यक्षों ने पर्वत के समान ऊँचे रथ में जिसके चलने का शब्द बादल की गर्जना के सदृश था गन्धर्व देश के घोड़े जोते जो सुनहरी माला पहिने हुए थे वे घोड़े शीघ्रगामी पराक्रमी सब लक्षणों से युक्त और दशों भोरियों से शुद्ध थे उन्होंने परस्पर हींस कर विजयरूप शब्द किया उस रथ में चढ़कर देवता और गन्धर्वों से स्तुति सुनते हुए जो कुबेरजी

चले उनके पीछे पीछे एक सहस्र से अधिक यक्ष हो लिये और वे आकाश मार्ग से शीघ्र गन्धमादन पर्वतपर जापहुँचे उनके चलने से ऐसा दीखता था मानो वे सब आकाश को खींचते हुए चले आते हैं २१ । २९ पाण्डव महात्मा कुबेरजी को सपक्ष घोड़ों से जुते हुए रथ में यक्ष और राक्षसों के समूह सहित आते हुए देखकर प्रसन्न हुए और कुबेरजी भी उन वीर पाण्डवों को जो धनुष् और खड्ग धारण किये हुए थे देखकर और उनको देवताओं का काम करनेवाले जानकर हर्षित हुए ३० । ३२ कुबेरजी के आगे चलनेवाले यक्ष उस पर्वत के शिखपर इस प्रकार से आकाश से उतर कर खड़े होगये जैसे उड़ते हुए पक्षी उतर कर वृक्षपर बैठजाते हैं और वे सब कुबेरजी को पाण्डवों पर प्रसन्न देखकर चुप चाप खड़ेहो रहे ३३ । ३४ युधिष्ठिर नकुल और सहदेव ने अपने को अपराधी समझकर कुबेरजी को प्रणाम किया और हाथ जोड़े हुए उनको घेरकर खड़े होरहे ३५ । ३६ कुबेरजी उस समय पुष्पक नामी जड़ाऊ विमानपर जो विश्वकर्माका बनाया हुआ था विराजमान हुए और सहस्रों यक्ष राक्षस जिनके बड़े बड़े शरीर थे उनको घेरकर बैठगये ३७ । ३८ और सैकड़ों गन्धर्व, अप्सरा वहां इस प्रकार से आकर स्थित होगये मानो इन्द्र के समीप देवता बैठे हुए हैं ३९ उस समय भीमसेन सुवर्ण की माला और गदा, खड्ग, धनुष् हाथ में लिये हुए कुबेरजी की ओर देखनेलगा और यद्यपि राक्षसों के हाथ से घायल होरहा था परंतु कुबेरजी की ओर देखने से उसके चित्त में ग्लानि नहीं आई ४० । ४१ कुबेरजी उसे तीक्ष्ण बाण लिये हुए युद्ध करने की इच्छा से सम्मुख खड़ा हुआ देखकर युधिष्ठिर से कहने लगे ४२ कि तुमको सब प्राणी प्राणियों के हित में प्रीति रखनेवाला समझते हैं तुम इस पर्वत की चोटीपर निर्भय होकर रहो ४३ और भीमसेन पर किसी प्रकार से क्रोध न करो क्योंकि इन राक्षसों का काल ही आ पहुँचा था भीमसेन केवल निमित्तमात्र है ४४ और ऐसा साहस करने के कारण से तुमको किसी प्रकार की लज्जा भी करना उचित नहीं है देवताओं को इन राक्षसों के नाश होने का हाल पहिले ही से मालूम था ४५ हे भरतर्षभ ! मैं भीमसेन पर किसी प्रकार से क्रोधित नहीं हूं किन्तु प्रसन्न हूं और इसके काम से मुझे बड़ा हर्ष हुआ है ४६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! कुबेरजी राजा युधिष्ठिर से उक्त प्रकार से कहकर भीमसेन से बोले कि हे वृकोदर ! मेरे मन में क्रोध नहीं है

तुमने जो देवता और मुझको अनादर करके द्रौपदी के कारण से यह साहस और अपनी भुजाबल से यक्ष और राक्षसों का नाश किया है तससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं क्योंकि तेरे इस कर्म से मेरा घोर शाप दूर होगया है ४७।४९ अगले समय में अगस्त्यजी ने मुझे किसी अपराध के कारण से शाप दिया था वह शाप आज निवृत्त हुआ मैं इस दुःख को होनहार पहिलेही से जानता था इससे हे भीमसेन! इसमें तेरा कुछ अपराध नहीं है ५०।५१ यह सुनकर युधिष्ठिर कुबेरजी से पूछने लगे कि महाराज ! आपको अगस्त्यजीने किस कारण से शाप दिया था मुझे बड़ा आश्चर्य है कि उस महात्मा ऋषि के शाप से आप उसी समय अपनी सेना और अनुचरों सहित भस्म नहीं हुए मैं इस सब वृत्तान्त को सुना चाहता हूं आप कृपा करके कहिये ५२।५३ कुबेरजी बोले कि कुशवती में देवताओं की सभा हुई थी वहां हम भी घोररूप और अनेक अस्त्रों को धारण करनेवाले यक्षों की तीनसौ महापद्मसेना लेकर गये थे राह में हमको अगस्त्यजी मिले जो पुष्पितवृक्ष और अनेक प्रकार के पक्षियों से सुशोभित यमुनातट पर ऊपर को बाहु उठाये हुए सूर्य के सम्मुख खड़े होकर उग्र तपस्या कर रहे थे और तेजके कारण से ऐसे दिखाई देते थे मानो बड़ी प्रज्वलित अग्नि है उनको देखकर हमारे सखा मणिमान् ने अपनी मूर्खता के अज्ञान, गर्व और मोह से आकाश से उनके मस्तकपर थूक दिया उसको देखकर उन्होंने मुझसे कहा कि हे कुबेर! तुम्हारे देखते हुए उस दुष्टात्मा ने मेरा ऐसा अपमान किया है इससे यह दुष्ट इस सब सेना के साथ मनुष्य के हाथ से मारा जायगा और दुर्मति के कारण से तुम भी सेना के मरने से क्लेश पाकर उसी मनुष्य के दर्शन करने से इस पाप से छूटोगे ५४।६१ और इस सेना के राक्षसों के पुत्र और पौत्र आदि जो तुम्हारी आज्ञा से सेना में रहेंगें उनको यह शाप नहीं लगेगा हे युधिष्ठिर ! अगस्त्यजी ने मुझे उक्त प्रकार से शाप दिया था उससे मुझे अब भीमसेन ने छुटाया है॥ ६२।६३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६१॥

एकसौबासठवाँ अध्याय।

कुबेरजी का पाण्डवों को शिक्षा देकर अपने भवन को चलाजाना और पाण्डवों का उस रात्रि को उसी पहाड़ की चोटी पर वास करना।

कुबेरजी बोले हे युधिष्ठिर! संसार में कार्य के साधन करने की विधि पांच

प्रकार की है धृति अर्थात् संकट में व्याकुल न होना १ चतुराई २ पराक्रम ३ विधान अर्थात् यत्न करके कार्य करना ४ और विधि अर्थात् उदय के हेतु को पहिंचानना ५ सत्ययुग के मनुष्य धृतिमान् अपने अपने कामों में चतुर पराक्रमी और विधान के जाननेवाले थे १ । २ सो जो क्षत्रिय धृतिमान् देशकाल को पहिंचाननेवाला और धर्म को जाननेवाला होता है वह इस पृथ्वीपर बहुत दिनों तक राज्यशासन करता है ३ और जो अपना वर्ताव भी ठीक ठीक उक्त विधियों पर करता है उसको इस लोक में यश और परलोक में सद्गति मिलती है ४ देखो देश और काल को विचार करने के कारण से इन्द्र ने वसुओं सहित पराक्रम से स्वर्ग का राज्य पाया था ५ जो मनुष्य पापात्मा दुष्टबुद्धि और देशकाल के अनुसार कार्य के विषय और करने के समय को नहीं जानता है और क्रोध के कारण से अपने गिरने को नहीं देखता है वह इसलोक और परलोक दोनों में शीघ्र नष्ट होजाता है ५।७ और यही गति उस मनुष्य की भी होती है जो वृथा आचार करता है और जो मनुष्य दुष्ट बुद्धि वञ्चक सहसा कामकरनेवाला अथवा अपने को सामर्थ्यवान् माननेवाला होता है वह निश्चय पाप का भागी होता है सो हे युधिष्ठिर ! यह भीमसेन धर्म को नहीं जानता है और घमंडी, क्रोधी निर्बुद्धि और निर्भय है तुम इसको शिक्षा करो कि यह लौटकर आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम को चलाजाय और तुम सब भी वहीं निर्भय और शोक को छोड़कर कृष्ण पक्षपर रहो मेरी आज्ञा से सब अलकापुरीवासी गन्धर्व किन्नर और पर्वतीलोग ब्राह्मणों सहित तुम सबकी रक्षा करो ८ । १२ हे राजन् ! भीमसेन यहां साहस करके आया है तुम इसको फिर ऐसा करने से निषेध कर दो इसीमें अच्छा है १३ ऐसा करने से यहां के वनवासी तुमको देखकर सदा तुम्हारी रक्षा करेंगे १४ और हमारे भृत्य तुम सबके लिये बहुत प्रकार के स्वादिष्ठ अन्न और पीने के पदार्थ पहुँचाया करेंगे १५ मुझको तुम सबकी रक्षा करना उसी प्रकार से उचित है जैसे तुम्हारी रक्षा यमराज, भीमसेन की वायु, अर्जुन की इन्द्र और नकुल और सहदेव की अश्विनीकुमार करते हैं १६ । १७ तुम्हारा छोटा भाई अर्जुन जो अर्थतत्त्व और सब धर्मों को जानता है स्वर्ग में कुशल है १८ जो कुछ स्वर्गसम्बन्धी परम संपत्ति इस लोक में मानीजाती ह उसको वह अपने जन्म से रखता है और दम अर्थात् बाहरकी इन्द्रियों का जीतना और दान, बल, बुद्धि, लज्जा

धैर्य और तेज आदि गुण भी उसमें स्थित हैं १९।२० मोह के वश में होकर वह निन्दा का काम कभी नहीं करता है और न कभी उसका कोई झूंठा वचन कहना सुनागया २१ वह कुरुवंशियों की कीर्ति का बढ़ानेवाला है और देवता और पितर उसको मानते हैं वह अस्त्रों का अभ्यास कररहा है २२ और तुम्हारे बाबा राजा शंतनु जिसने सब राजाओं को अपने धर्म से अपने वश में कर लिया था स्वर्ग में गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्जुन को देख देख कर प्रसन्न होते हैं तुम्हारे बाबा ने भी अपने कुल की मर्यादा के साथ पितर, देवता, ऋषि और ब्राह्मणों को पूजकर यमुना तटपर सात अश्वमेध यज्ञ किये थे २३।२५ सो हे युधिष्ठिर ! उस राजा शंतनु ने इन्द्रलोक से तुम्हारी कुशल पूछी है २६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! कुबेरजी की उक्त बातों को सुनकर पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए और भीमसेन ने गदा शक्ति, खड्ग और धनुष को बांधकर कुबेरजी को नमस्कार किया २७।२८ तब कुबेरजी ने उस शरणागत भीमसेन को आशीर्वाद दिया कि तू शत्रुओं का मानभंग करनेवाला मित्रों को आनन्द देनेवाला लक्ष्मी को बढ़ानेवाला हो २९ इसके पीछे कुबेर जीने कहा कि अब तुम सब अपने आश्रम में रहो यक्ष तुम्हारी सब कामना पूरी करेंगे ३० और अर्जुन भी अस्त्रविद्या लेकर इन्द्र से बिदा होकर शीघ्र तुमसे आकर मिलेगा ३१ कुबेरजी युधिष्ठिर से उक्त प्रकार से कहकर अस्ताचल पर्वतपर चलेगये ३२ और सहस्रों यक्ष और राक्षस भी नाना प्रकार के रत्नों से भूषित होकर अनेक सवारियों में चढ़ चढ़ कर उनके पीछे पीछे चले गये ३३ कुबेरजी के रथ के घोड़े वायु और बादलों को खींचते हुए शीघ्र आकाशमार्गी होगये और कुबेरजी के भवन में उनका शब्द पक्षियों के सदृश ऐसा हुआ जैसा शब्द ऐरावत मार्ग पर अर्थात् जिस मार्गपर इन्द्र का ऐरावत हाथी चलता है होता है ३४।३५ इसके पीछे कुबेरजी की आज्ञा से उन मरे हुए राक्षसों के शरीर, जो अगस्त्यजी के शाप के कारण से मारे गये थे, इधर उधर फिकवा दिये गये और महात्मा पाण्डवों ने उस रात को राक्षसों से पूजित होकर वहीं वास किया ॥ ३६।३८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

एकसौ तिरसठवाँ अध्याय।

धौम्यऋषि का युधिष्ठिर को ब्रह्मलोक आदि दिखाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! प्रातःकाल होने पर धौम्य और आर्ष्टिषेण ऋषि सन्ध्या आदि कर्म करके पाण्डवों के समीप आये पाण्डवों ने हाथ जोड़ कर उन दोनों को दण्डवत् और सब ब्राह्मणों का यथायोग्य पूजन किया १।२ इसके उपरान्त धौम्य ऋषि ने युधिष्ठिर का दाहिना हाथ पकड़ लिया और पूर्व की ओर मुख करके यह वचन कहने लगे ३ देखो, यह मन्दराचल पर्वत है, जो पृथ्वी को समुद्रतक दबाता चलागया है इस दिशा में बहुत से उत्तम पर्वत, वन और कानन हैं और रक्षा इस दिशा की इन्द्र और कुबेरजी करते हैं ४।५ बुद्धिमान् और धर्मज्ञ ऋषि इस स्थान को महाइन्द्र और कुबेर का स्थान बताते हैं ६ और ब्राह्मण, धर्मज्ञ, ऋषि, सिद्ध, साध्य और देवतालोग कहते हैं कि सूर्य इसी दिशा में उदय होते हैं ७ यह दक्षिण दिशा है जहाँ सब धर्मों के जाननेवाले यमराज रहते हैं और सब प्राणी मरकर जाते हैं ८ देखो, इस दिशा में वह संयमन नामी यमराज का परम उत्तम भवन कैसा अद्भुत दिखाई देता है ९ और इधर देखो, यह अस्ताचल पर्वत समुद्र के पास है वरुणलोक भी वहीं है वरुण वहां रहकर पश्चिम दिशा में प्राणियों की रक्षा करते हैं १०।११ और यह देखो, सुमेरपर्वत उत्तर दिशा को प्रकाशित कररहा है जहां केवल ब्रह्मज्ञानियों की ही गति है इसी पर्वतपर ब्रह्मलोक है जहां सब चर और अचर जीवों के उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी रहते हैं १२।१३ और दक्षआदि ब्रह्माजी के मानसी पुत्रों का भी कल्याणरूप और उपाधिरहित स्थान इसी पर्वतपर है १४ हे तात! यहीं वशिष्ठ आदिक सप्तऋषि भी प्रतिष्ठित होकर उदय होते हैं और मेरुपर्वत के उस शिखर के देश को देखो, जो रजरहित दीखता है, उसी स्थानपर अपनी तृप्ति के लिये ब्रह्माजी सब देवताओं सहित रहते हैं १५।१६ और इस ब्रह्मलोक से परे जो शुभ और सर्वतेजोमय स्थान दिखाई देता है जिसको देवता भी नहीं देखसक्ते हैं वह सूर्य और अग्नि के विना अपने ही तेज से प्रभासित हो रहा है महात्मा श्रीविष्णु भगवान् नारायण का स्थान है जो सब भूतों के कारण और आदि अन्त रहित हैं देवता और दानव उस स्थान को दुःख से देख सकते हैं १७।१८ नारायण का यह स्थान मेरुपर्वत पर पूर्व की

ओर हटकर है वहां सब प्राणियों के ईश्वर और सबके उत्पन्न करनेवाले विष्णु भगवान् लक्ष्मी सहित सब प्राणियों पर अपने तेज का प्रकाश करते हुए विराजमान हैं वहां केवल यती और योगीलोग ही जासकते हैं ब्रह्मऋषियों की भी गति नहीं है और महाऋषियों की कौन कहे २० । २२ क्योंकि वहां सर्वव्यापी अचिन्त्यात्मा विष्णु भगवान् आप विराजमान हैं जो योगी और यती लोग बड़ी तपस्या और अनेक शुभकर्म करते हैं और मोह अज्ञान से छूटकर उस अपने आप उत्पन्न होनेवाले सनातन नारायण के लोक में जाते हैं वे फिर लौटकर संसार में जन्म नहीं लेते हैं २३ । २५ यह स्थान सनातन है न कभी बिगड़ता है न बनता है और न छोटा बड़ा होता है हे युधिष्ठिर ! तुम इस स्थान को प्रणास करो २६ सूर्य और चन्द्रमा तारागणों सहित इस मेरु पर्वतके चारों ओर नित्यप्रति घूमा करते हैं जो देश सूर्य केसम्मुख रहता है वहां दिन रहता है और जो देश सूर्य के सम्मुख नहीं रहता है वहां रात्रि रहती है सूर्य एकसमय प्रदक्षिणा करके फिर पूर्वमुख होकर प्रदक्षिणा मेरुपर्वत की करते हैं और उनके और चन्द्रमा आदि नक्षत्रों के इस प्रकार से घूमने से अनेक प्रकार के पर्व पड़ते हैं और उनसे सौर्यमास और चान्द्रमास आदि महीने होते हैं २७ । ३२ हे युधिष्ठिर ! इस मार्ग में सूर्यदेव विना आलस्य के निरन्तर घूमा करते हैं और अपने प्रकाश से जगत् को प्रभासित करते हैं जब सूर्य दक्षिणायन होकर घूमते हैं तब जाड़ा पड़ने लगता है और जब उत्तरायण होकर घूमते हैं और सब जड़ और चैतन्य जीवों के रस को अपनी किरणों से शोषण करते हैं तब मनुष्यों के पसीना आने लगता है और श्रम आलस्य और ग्लानि होने लगती है और सदैव स्वप्न दीखते हैं ३३ । ३७ इस प्रकार से सूर्य उक्त मार्ग में घूमकर प्रजा को उत्पन्न करते हैं और जल वर्षाते हैं और वर्षा, ताप और वायु से सब जड़ और चैतन्य जीवों को बढ़ाकर फिर दक्षिणायन मार्ग में लौटआते हैं ३८ । ३९ हे युधिष्ठिर ! इस कालचक्र में सूर्य की गति निरन्तर रहती है और सूर्य सदैव प्राणियों के साररूपी रस को शोषण करके फिर छोड़देते है ४० । ४१ औरसूर्य ही के घूमने से दिन रात और आयुकर्म के अनुसार सब जीवों का कला काष्ठा स्वरूप होता है अर्थात् पहिले लड़का होता है और फिर क्रम क्रम से बढ़ने से स्वरूप बदल जाता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणित्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

एकसौ चौंसठवाँ अध्याय।

पाण्डवोंका हिमालय पर्वतपर रहना और अर्जुन का अस्त्रविद्या सीखकर इन्द्रलोक से यात्रा करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पाण्डव उस पर्वत पर अर्जुन के दर्शन की लालसा से उत्तम व्रतों को करते हुए रहनेलगे और उनको बड़ा आनन्द हुआ उनके पास गन्धर्व और महाऋषियों के समूह प्रीतिपूर्वक आया जाया करते थे १।२ उस हिमालय पर्वत को पाकर जो फूले हुए वृक्षों से बड़ा मनोहर होरहा था पाण्डव ऐसे हर्षित हुए जैसे मरुद्गण स्वर्ग में जाकर प्रसन्न होते हैं ३ कभी वे पाण्डव पहाड़ के शिखर और अन्य स्थानों को जो मोर और हंसों के शब्दों से बड़े सुहावने लगते थे देखने चले जाते और कभी कुबेरजी की बनाई हुई पुष्करणियों में जाकर विहार करते थे पुष्करणियां शैवाल अर्थात् सिवार से आच्छादित कमलों से सुशोभित और कारण्डवआदि जलपक्षियों से शब्दित होरही थीं ४।५ उसी पर्वतपर पाण्डवों ने अनेक क्रीड़ा करने के स्थानों को भी देखा जो मणियों से जटित और चित्र विचित्र पुष्पों से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कुबेरजी के क्रीड़ास्थान हैं ६ इस प्रकार से उन्होंने निरन्तर घूम घूम कर उस पर्वत के शिखरों को जो नानाप्रकार का वर्ण रखते थे और सुगन्धित पुष्पों के वृक्षों से व्याप्त थे देखा परंतु वे उनके विस्तार और शोभा को अनुभव न करसके ७ हे नरवीर! वहां पर उस पर्वत और उसपर की ओषधियों का ऐसा प्रकाश था कि दिन और रात्रि नहीं जानपड़ती थी ८ पाण्डवों ने वहां रहकर सूर्य के उदय और अस्त होने के स्थान अर्थात् उदयाचल अस्ताचल और दिशा विदिशा जो सूर्य की किरणों से प्रभासित रहती थीं देखे ९।१० और वेदपाठ, जप, क्रिया, धर्म और व्रतआदि नियमों को करते हुए महारथी और सत्यव्रत अर्जुन के आने की बाट देखते हुए रहनेलगे ऋषिलोग उनको यह आशीर्वाद देते थे कि तुमको अस्त्र सीखे हुए अर्जुन के मिलने का सुख यहीं प्राप्त होगा और पाण्डव उन आशीर्वादों को सुनकर तप और योग में स्थित होकर रहते थे और उनको अर्जुन की चिन्ता में एक दिन और रात्रि एक वर्ष के समान जान पड़ती थी ११।१२ हे जनमेजय! जब अर्जुन जटा रखाकर धौम्य ऋषि की अनुमति और युधिष्ठिर की आज्ञा से काम्यकवन से तपस्या करने को चला था

तभी पाण्डवों को उसके जाने का बड़ा शोक हुआ था अब तो उसे गये हुए भी बहुत दिन होगये थे और मन भी सबका उसी की ओर लगा हुआ था अब उन को विना अर्जुन के क्योंकर आनन्द मिलना संभव था १४। १५ उस पर्वत पर अर्जुन की चिन्ता में पाण्डवों का एक महीना बड़े कष्ट से व्यतीत हुआ १६ उस के पीछे अर्जुन इन्द्र के भवन में पांच वर्ष में इन्द्र से अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, वायु विष्णु, इन्द्र, पशुपति, ब्रह्मा, प्रजापति, यम, धाता, सविता, त्वष्टा और कुबेर आदि देवताओं के अस्त्रों को सीख कर इन्द्र से बिदा मांगकर और उसकी प्रदक्षिणा और दण्डवत् करके महाहर्षित होता हुआ गन्धमादन पर्वत पर आया ॥१७।२०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

एकसौ पैंसठवाँ अध्याय

अर्जुन का इन्द्रलोक से गन्धमादन पर्वत पर आना और धौम्य ऋषि और पाण्डवों से मिलना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इन्द्रलोक से चलने पर जब वह इन्द्र का रथ जिसमें अर्जुन बैठा हुआ था और हरे घोड़े जुत रहे थे ऐसा दिखाई देता था मानो बिजली चमक रही है आकाश में पाण्डवों के निकट आया तब वे उसमें अर्जुन को आया हुआ विचार कर बहुत प्रसन्न हुए १ उस रथमें मातलि सारथी घोड़ों की बागडोर पकड़े हुए बैठा हुवा था और वह रथ बादलों में उल्का की समान चमकता हुआ ऐसा दीखता था मानो निर्धूम प्रज्वलित अग्नि की लौ उठरही है २ थोड़ी देर में वह रथ गन्धमादन पर्वत पर उतरा और पाण्डवों ने उसमें अर्जुन को किरीट, माला और नवीन आभरण धारण किये हुए इन्द्र के सदृश तेज धारण किये हुए बैठा देखा अर्जुन ने उस रथ से उतर कर पहिले धौम्य ऋषि को दण्डवत् की फिर युधिष्ठिर और भीमसेन को प्रणाम करके द्रौपदी से मिला इस के उपरान्त नकुल और सहदेव ने अर्जुन को दण्वत् की और वह उनको आशीर्वाद देकर भाइयों के समीप बैठगया ३।५ उसको देखकर पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए और उसने भी प्रशंसा करके युधिष्ठिर को प्रसन्न किया ६ इसके उपरान्त पाण्डव उस इन्द्र के रथ के पास गये जिस में बैठकर इन्द्र ने दैत्यों का बध किया था उसकी परिक्रमा की तदनन्तर युधिष्ठिर ने मातलि सारथी का इन्द्र के समान सत्कार किया और

उससे प्रत्येक देवता की क्षेमकुशल विधिपूर्वक पूछी ७। ८ मातलि ने भी युधिष्ठिर को अनेक बातें कहकर प्रसन्न किया और पाण्डवों को पितापुत्र की भाँति आशीर्वाद देकर उसी रथ में बैठकर इन्द्रलोक को लौट गया ९ उसके चले जाने पर अर्जुन ने इन्द्र के दिये हुए उत्तम उत्तम धनों को युधिष्ठिर के अर्पण किया और जो जो दिव्य आभूषण लाया था जिनकी प्रभा सूर्य के तुल्य थी वे सब द्रौपदी को दिये इसके पीछे अर्जुन ने उन महात्मा सूर्य अग्नि के तुल्य तेजस्वी ब्राह्मणों में बैठकर इन्द्र आदि देवताओं से अस्त्र पाने और अपने स्वर्ग में रहने का वृत्तान्त संक्षेप करके सुनाया और यह कहा कि मेरे शीलस्वभाव से सब देवता मुझ से प्रसन्न रहे यह कहकर अर्जुन उस रात्रि को नकुल और सहदेव के साथ सो रहा ॥ १० । १४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

एकसौ छाछठवाँ अध्याय।

इन्द्र का पाण्डवों के पास आना और उनको काम्यक वन को लौटजाने का उपदेश करके स्वर्ग को चले जाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! रात्रि के व्यतीत होने पर सब भाइयों समेत अर्जुन ने उठकर धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया १ इसी अवसर में आकाश में देवताओं के बाजे बजने लगे और रथों की झंझनाहट, घण्टों की टंटनाहट, मृग, सर्प, और पक्षियों के बोलने का घोष पृथक् पृथक् सुनाई देने लगे २। ३ थोड़ी देर में इन्द्र का सुवर्ण जटित रथ जिसके चलने का शब्द मेघ की गर्जना के समान होता था उस पर्वत पर आकाश से उतरा उसके पीछे गन्धर्व और अप्सराओं के समूह सूर्यतुल्य प्रकाशित विमानों में चढ़े हुए आए रथ के पृथ्वीपर आने पर सहस्राक्ष इन्द्र पाण्डवों के सम्मुख उस रथ से उतरा ४। ६ उसको देखकर राजा युधिष्ठिर सब भाइयों सहित उठकर उसके समीप गया ७ और वेदोक्त रीति से उसकी यथायोग्य पूजा की उस समय अर्जुन इन्द्र को दण्डवत् करके सेवक के समान उसके समीप खड़ा हो रहा ८। ९ उस जटिल तपोयुक्त और अकल्मष अर्जुन को इस प्रकार से इन्द्र के समीप विनीत खड़ा हुआ देखकर महातेजस्वी कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने प्यार से उसके माथे को सूँघ कर इन्द्र की पूजा की इन्द्र उस प्रसन्न चित्त युधिष्ठिर को देखकर बोला कि हे पाण्डुनन्दन! तुम्हारा कल्याण होगा और तुम पृथ्वी का राज्य करोगे अब तुम सब

लौटकर काम्यक वन को चले जाओ १० । १३ तुम्हारे भाई अर्जुन ने मेरा प्रिय काम किया है और अब वह सब अस्त्र पाकर ऐसा पराक्रमी होगया है कि उसे तीनों लोकों में कोई जीत नहीं सकता है १४ यह कह कर इन्द्र प्रसन्नतापूर्वक महाऋषियों से स्तुति सुनता हुआ स्वर्ग को चला गया १५ हे राजा जनमेजय! जो कोई मनुष्य इस अर्जुन के इन्द्रलोक में रहने और पाण्डवों के इन्द्र से समागम होने की कथा को ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और व्रत करके पाठ करेगा वह बाधारहित होकर सुखपूर्वक सौ वर्ष तक जीवेगा ॥ १६ । १७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

एकसौ सरसठवाँ अध्याय।

अर्जुन का युधिष्ठिर से किरातरूपी महादेवजी से युद्ध होने और उनसे पाशुपत अस्त्र मिलने की कथा कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इन्द्र के चलेजाने पर अर्जुन ने अपने भाइयों व द्रौपदी सहित राजा युधिष्ठिर की पूजा की युधिष्ठिर ने उसकी पूजा से प्रसन्न होकर प्यार से उसके माथे को सूँघा और गद्गद वाणी से कहने लगा १ । २ कि हे अर्जुन! स्वर्ग में तेरा काल कैसे कैसे व्यतीत हुआ था और जो जो अस्त्र तुझको इन्द्र और शिवजी आदि देवताओं ने प्रसन्न होकर दिये हैं उनको तैंने किस प्रकार से पाया था क्या आराधना तैंने की थी और तुझको इन देवताओं का दर्शन किस प्रकार से हुआ था? इस सब वृत्तान्त को मैं विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं और इन्द्र ने जो यह कहा था कि अर्जुन ने मेरा प्रिय काम किया है सो वह क्या काम था और तैंने उसको कैसे किया था ३ । ८ यह सुनकर अर्जुन बोला कि बहुत अच्छा मैं इन्द्र और शंकर के दर्शन होने की कथा कहता हूं सुनिये ९ मैं आपकी आज्ञा के अनुसार आपकी सिखाई हुई विद्या पढ़कर तप करने के लिये काम्यकवन से चलकर भृगुतुङ्ग पर्वत पर पहुँचा वहां मैंने रात्रि को वास किया उपरान्त राह में मुझको एक ब्राह्मण मिला उसने पूछा कि तू कौन है मैंने उससे सब सच्चा सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया १० । ११ हे राजसत्तम! उसको सुनकर उस ब्राह्मण ने मेरी सत्यता की प्रशंसा की और प्रसन्न होकर मुझसे प्रीति मानकर कहा कि तू तप कर तप के प्रभाव से थोड़े ही दिनों में तुझको इन्द्र के दर्शन मिलेंगे १२ । १३ हे महाराज! मैं उसकी बात को मानकर हिमालय पर्वतपर चढ़गया और तपस्या

करने लगा एक महीना मैं फल और मूल खाकर रहा १५ हे पाण्डुनन्दन ! दूसरे महीने में केवल जल के आधार से रहा तीसरे में निराहार रहकर तपस्या की १६ चौथे महीने में मैंने ऊँचे को बाँह उठाकर तप किया परंतु मेरा बल नहीं घटा मुझको इस बात को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ १७ जब पांचवां महीना लगा तब एक दिन मेरे सम्मुख एक बड़ैल सूअर अपने मुख से पृथ्वी को खोदता और पैरों से पृथ्वी पर चिह्न करता हुआ कभी इधर कभी उधर दौड़ता हुआ आया और उसके पीछे पीछे एक किरात धनुष्, बाण, खड्ग और साथ में बहुतसी स्त्रियां लिये हुए आ पहुँचा मैंने धनुष् बाण लेकर उस बड़ैल के एक बाण मारा १८।२१ उसी समय उस किरात ने भी धनुष् बाण चढ़ाकर बड़ा दृढ़ बाण उसी बड़ैल के मारा कि जिसको देखकर मेरा मन कांपने लगा २२ इस के पीछे उस किरात ने मुझसे कहा कि यह बड़ैल मेरा पूर्व परिग्रह है तुमने अहेर मारने के धर्म को छोड़कर इसके क्यों बाण मारा है २३ अब मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से तेरा घमण्ड दूर करूंगा तू खड़ारह २४ यह कहकर उसने मेरे ऊपर बाणों की वर्षा करके मुझे इस प्रकार से ढक दिया जैसे बादल की बूंदों से पर्वत ढक जाता है २५ तब मैंने भी अपने दृढ़ और तीक्ष्ण बाण छोड़े और उनसे उस किरात को इस प्रकार से छेदडाला जैसे वज्र से पर्वत विदीर्ण होजाता है २६ तब उस किरात का स्वरूप सहस्रों प्रकार का होगया और मैंने उसके सब प्रकार के स्वरूपों में बाण मारे २७ इसके उपरान्त उन सब स्वरूपों का मिलकर फिर एक ही स्वरूप होगया और मैंने उसको भी बाणों से ताड़ना किया २८ वह स्वरूप कभी छोटा सा शरीर और बड़ा भारी मुख और कभी बड़ा भारी शरीर और छोटा सा मुख बना लेता था थोड़ी देर में वह स्वरूप एक सा होकर मुझसे युद्ध करने लगा मैं उससे बाणों से युद्ध न करसका और हार कर मैंने वायव्य अस्त्र छोड़ा २९।३० परंतु वह किरात उससे नहीं मरा यह देखकर मैं आश्चर्य में रहगया ३१ और मैंने फिर अन्य बहुत से अस्त्र मारकर उसे ढकदिया ३२ इसके उपरान्त मैंने स्थूलाकर्ण, वारुण, और शलभ आदि अस्त्र छोड़े और बाण और पत्थरों की वर्षा से उससे युद्ध किया ३३ तब वह मेरे छोड़े हुए सब अस्त्रों को अपने पराक्रम से निगलगया तब मैंने ब्रह्मास्त्र छोड़ा ३४ उसके छोड़ते ही उसमें से जलते हुए बाण निकल निकल कर चारों ओर फैलगये और उसके तेज से एकक्षण भर में सब दिशा और

आकाश प्रकाशित होगये ३५। ३६ परंतु उस तेजस्वी किरात ने उस अस्त्र को भी निगललिया उसके निष्फलजाने पर मुझे भय ने चारों ओर से घेर लिया ३७ परंतु मैंने अपने हृदय को दृढ़करके धनुष चढ़ा लिया और उसके अक्षय बाण मारने लगा उसने उन बाणों को भी निगल लिया ३८ जब अस्त्र और शस्त्र कुछ मेरे पास न रहे तब मेरा और उस किरात का बाहु-युद्ध होने लगा और अनेक मुक्के और चपेटे मैंने उस किरात के मारे परंतु उसके बल का पार नहीं पाया अन्त में मैं अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ३९। ४० और वह किरात हँसकर सब साथ की स्त्रियों सहित अन्तर्धान होगया ४१ थोड़ीदेर में बृषभध्वज शिवजी महाराज पार्वती सहित दिव्यस्वरूप धारण करके सर्पों के भूषण और पिनाक धनुष धारण किये हुए पहिले किरातरूप को छोड़कर मेरे सम्मुख आकर खड़े होगये और कहनेलगे कि मैं तुझपर प्रसन्न हूं यह अपना धनुष और दोनों अक्षय बाण रखनेवाला तर्कस ले और इनको धारण कर ४२। ४६ और जो कुछ तुझको इच्छा हो सो मांग सिवाय देवभाव के अर्थात् देवता होने के और जो कुछ तू मांगेगा सो मैं तुझको दूंगा मेरा मन तो अस्त्र विद्या में लगा ही हुआ था मैंने उनकी बात को सुनकर मन से उनको नमस्कार किया और कहा कि महाराज! जो आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं सब देवताओं के अस्त्र पाना चाहता हूं यह सुन कर शिवजी बोले कि तुझको सब अस्त्र मिलेंगे ४७। ५० और मैं अपना रौद्रअस्त्र भी तुझको दूंगा यह कह कर शिवजी ने मुझे अपना पाशुपत अस्त्र देदिया ५१ और शिक्षा की कि मनुष्य और थोड़ा बल रखनेवाले प्राणियों पर इसको कभी न छोड़ियो क्योंकि ऐसा करने से यह अस्त्र सब जगत् को भस्म कर डालेगा हां जब तुझको अत्यन्त ही पीड़ा हो, कोई और अस्त्र काम न दे तब इस अस्त्र को छोड़ियो इसके पीछे शिवजी की कृपा से वह अप्रतिहत अर्थात् जिसको कोई नहीं रोंक सकता है और शत्रु और शत्रुओं की सेना का काटनेवाला अस्त्र जिसको कोई देवता, दानव और राक्षस पा और दे नहीं सकता है मूर्त्तिमान् होकर मेरी बगल में आकर स्थित होगया तदनन्तर मैं शिवजी की आज्ञा से वहीं ठहरा रहगया और शिवजी मेरे देखते देखते अन्तर्धान होगये॥ ५२। ५७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६७॥

एकसौअरसठवाँ अध्याय ।

अर्जुन का युधिष्ठिर से अपने स्वर्ग में रहने और निवात कवच दानवों से युद्ध करने के लिये जाने का वृत्तान्त कहना ।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज! महात्मा, देवाधिदेव, त्र्यम्बक, सदाशिव जी के अन्तर्धान होनेपर मैंने प्रसन्नतापूर्वक उस रात्रि को वहीं वास किया प्रातःकाल होनेपर जब मैं अपनी नित्यक्रिया करचुका तब मेरे पास वही ब्राह्मण फिर आया जो पहिले मिला था १ । २ हे भरतवंशिन्! मैंने उससे अपने भगवान् महादेवजी से मिलने का सब वृत्तान्त कहा ३ वह उस वृतान्त को सुनकर बोला कि जैसे तुमको महादेवजी के दर्शन हुए हैं उस प्रकार से दूसरे को होना कठिन है ४ अब तुमको यम आदि सब लोकपाल मिलेंगे और उनके पीछे इन्द्र के भी दर्शन तुमको होंगे वह तुझको सब अस्त्र देगा ५ यह कहकर वह सूर्य के तुल्य तेजस्वी ब्राह्मण मुझसे वारंवार मिलकर अपनी इच्छाके अनुसार चला गया ६ उस दिन जब तीसरा प्रहर हुआ तब ऐसी वायु चलने लगी मानो संसार को फिर नवीन करदेगी और पर्वत पर बड़े बड़े दिव्य और सुगंधित पुष्प मेरे निकट प्रकट होगये ७ । ८ चारों ओरसे दिव्य बाजे बजने लगे और इन्द्र सम्बन्धी स्तुति सुनाई देनेलगी ९ और इन्द्र के सम्मुख गन्धर्वों के गाने और अप्सराओं के नाचने का शब्द होने लगा १० उसी समय इन्द्र के अनुचर मरुद्गण और भवन के भीतर रहनेवाले जयन्त आदि विमानों में बैठ बैठकर आये ११ और इन्द्रदेव श्रेष्ठ रथमें बैठे हुए जिसमें हरिनाम के घोड़े जुते हुए थे सब समाज सहित पूर्वदिशा में आकर स्थित होगये उसी समय नरवाहन कुबेरजी ने उत्तर दिशा में और यमराजने दक्षिण दिशा में और बरुण ने पश्चिम दिशा में आकर मुझे दर्शन दिया १२।१४ हे नरनायक, महाराज! वे सब देवता मुझसे कहने लगे कि हे अर्जुन! हम सब लोकपाल देवता हैं हम को देखो और हमसे अस्त्र लो तुमने देवताओंका कार्य सिद्ध करने के लिये शिवजी का दर्शन पाया है १५ । १६ यह सुनकर मैंने लोकपालों का दर्शन किया और सावधान होकर विधिपूर्वक उन सबसे अस्त्र लिये १७ इसके पीछे हे भरतसत्तम! सब देवता जहां से आये थे वहीं को चलेगये और भगवान् इन्द्र ने रथपर चढ़कर मुझसे कहा कि हे अर्जुन! तुझको स्वर्ग में हमारे पास आना चाहिये १८ । १९ हे अर्जुन! हम तेरा हाल तेरे आने

के पहिले ही से जानते हैं अब तुझको हमारा दर्शन हुआ तैंने अगले समय में तीर्थों में वारंवार स्नान किये थे और अब यह बड़ीभारी तपस्या की है इससे तू स्वर्ग में सदेह जा सकेगा तुझको वहां आना और उत्तम रणरूपी तप करना अवश्य उचित है २०।२२ हमारी आज्ञा से हमारा मातलि सारथी तुझको स्वर्ग लोक को लेजायगा तेरा हाल सब देवता और महात्मा मुनि जानते हैं २३ यह सुनकर मैंने कहा कि हे भगवन्! हे देवेश्वर! मुझपर प्रसन्न हूजिये मैं अस्त्र सीखने के लिये आपको अपना गुरु बनाना चाहता हूं २४ यह सुनकर इन्द्र बोले कि हे तात! अस्त्रों के जानने से तू क्रूरकर्म करने लगेगा इससे जिस काम के लिये तू अस्त्र चाहता है उसको हमसे कह हम तेरे उस काम को पूरा करेंगे २५ यह सुनकर मैंने विनय की कि हे देवराज! हे श्रेष्ठदेव! मैं इन अस्त्रों का प्रयोग अस्त्र न चलानेवाले मनुष्यों पर नहीं करूंगा और अस्त्रों से जय होनेवाले लोकों को भी पीछे प्राप्त करूंगा आप मुझको दिव्य अस्त्र दीजिये २६।२७ यह सुनकर इन्द्र बोले कि हे अर्जुन! मैंने यह बात केवल तेरी परीक्षा करने के लिये कही थी तू मेरा पुत्र है तैंने बहुत योग्य बात कही २८ अब तू हमारे भवन में आइयो और वहां वायु, अग्नि, अष्टवसु, वरुण, मरुद्गण, साध्यगण, ब्रह्माजी, गन्धर्व, उरग और राक्षसों से अस्त्र सीखियो और नैर्ऋत और वैष्णव अस्त्र भी तुझको मिलेंगे हमारे पास सब अस्त्र विद्यमान हैं यह कहकर इन्द्र वहीं अन्तर्धान होगये २६।३१ इसके उपरान्त मैंने अपने समीप इन्द्र के दिव्य मायामय और पवित्र रथ को ज़िसमें हरि नाम के घोड़े जुते हुए थे मातलि सारथीसहित देखा ३२ उस सारथी ने लोकपालों के चलेजाने पर मुझसे कहा कि हे अर्जुन! सहस्राक्ष इन्द्र तुमको देखना चाहते हैं इससे तुम विलम्ब मत करो शीघ्र तैयार होजाओ और मेरे साथ सदेह चलकर स्वर्गलोक देखो यह सुनकर मैंने हिमालय पर्वत की प्रदक्षिणा की और उस रथ पर बैठगया और मातलि ने उस रथ के मन और वायु के तुल्य बेगवान् घोड़ों को हांका रथ के चलने पर मातलि ने मेरी ओर मुड़कर देखा और चकितसा होकर कहने लगा कि मुझे बड़ा आश्चर्य है ३३।३८ कि इस दिव्य रथ के चलने पर तुम्हारा आसन दृढ़ बनारहा अर्थात् हिले झुले नहीं मैंने इन्द्र को भी देखा है कि जब कभी वे इसपर सवार हुए हैं और घोड़ों ने प्रथम उत्पात किया है अर्थात् पहिले

ही पहिल झिझककर चले हैं तब भी उनका आसन डगमगा गया है परन्तु तुम रथ के चलने पर भी निश्चल बैठे हुए दीखते हो यह बात तुममें इन्द्र से विशेष जान पड़ती है यह कहकर मातलि उस रथ को हांककर आकाशमार्ग से ऊपर को ले चला और मुझको देवताओं के स्थान और विमान दिखलाता गया ३९ । ४२ देवता और ऋषियों ने मेरा सत्कार किया और मैं राह में देवऋषियों की इच्छानुसार चलनेवाले लोकों को और गन्धर्व, अप्सरा और देवताओं के नन्दनवन आदि वन, उपवन और लोकों को देखता हुआ इन्द्र भवन और अमरावतीपुरी के निकट जा पहुँचा ४३ । ४५ वह पुरी रत्नों से अलंकृत थी और वृक्ष वहां के दिव्य ऐसे थे कि जो फल तुम चाहो सो ही उनमें से तोड़ लो वहां सूर्य नहीं तपता है जाड़ा गर्मी और थकावट नहीं व्यापती है ४६ हे नृपाल ! रजोगुण की बाधा भी वहां नहीं होती है बुढ़ापा, शोक और दुर्बलता का नाम नहीं है ४७ और देवताओं में वहां किसी प्रकार की ग्लानि अथवा क्रोध या लोभ नहीं रहता है वहां के रहनेवाले प्राणी सदा तुष्ट रहते हैं और वृक्ष सदैव फूले फले और हरे बने रहते हैं ४८ । ४९ वहां अनेक प्रकार की पुष्करिणी बनी हुई हैं और उनमें सौगन्धिक नामी कमल खिले हुए रहते हैं वायु वहां शीतल मन्द सुगन्ध चला करती है पृथ्वी वहां की रत्न और पुष्पों से भूषित रहती है और बहुत से सुन्दर पक्षी मीठी मीठी बोली बोला करते हैं ५० । ५१ इन्द्रपुरी के निकट पहुँचने पर मैंने आकाश में आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, बारहों सूर्य और दोनों अश्विनीकुमार देखे मैंने उन सबको दण्डवत् की और उन्होंने मुझे यह आशीर्वाद किया कि तू पराक्रमी, यशस्वी, तेजस्वी, अस्त्रों का जाननेवाला और युद्ध में विजय पानेवाला हो इसके उपरान्त मैंने इन्द्रपुरी में प्रवेश किया और इन्द्र के सम्मुख हाथ जोड़कर जा खड़ा हुआ इन्द्र ने प्रसन्न होकर मुझको अपने आधे आसन पर बैठा लिया ५२ । ५५ और मेरे ऊपर बड़े मान से हाथ फेरा इसके पीछे मैं वहां देवता और गन्धर्वों के साथ बसकर अस्त्र सीखता रहा और विस्वावसु गन्धर्व के पुत्र चित्रसेन से मेरी मित्रता होगई ५६ । ५७ हे राजन् ! उसने मुझको संपूर्ण गान्धर्व वेद सिखाया और मैं वहां बड़े सुख से बसता रहा ५८ हे भरतसत्तम ! मैंने वहां मधुर मधुर बाजों के शब्द और गन्धर्वों के मनोहर गीतभी सुने और अप्सराओं का नाच भी देखा परंतु मैं सबका आदर सत्कार यथायोग्य करता रहा और आप राग

रहित होकर अस्त्रों के सीखने में तत्पर रहा इन्द्र मेरे उस चलन से प्रसन्न हुआ हे महाराज, युधिष्ठिर! इस प्रकार से मेरा समय स्वर्ग में व्यतीत हुआ ५९। ६१ इसके उपरान्त इन्द्र ने मुझे विश्वासपात्र और अस्त्र जाननेवाला समझ कर मेरे माथे पर हाथ फेरा और मुझसे कहा ६२ कि हे अर्जुन! अब तुझको देवता भी सब मिलकर नहीं जीत सकते हैं अशुद्ध अन्तःकरणवाले मनुष्यों की क्या सामर्थ्य है जो तुझसे युद्ध कर सकें ६३ रण में तुझे कोई न मार सकेगा और न कोई तेरा सामना कर सकेगा तू सावधान, चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ब्रह्मण्य, अस्त्रज्ञ और शूरवीर है तेरी समान आज कोई योद्धा नहीं है तू हमसे पन्द्रह अस्त्र पा चुका है और उनका चलाना लौटाना ठंडा करना और प्रायश्चित्त अर्थात् अस्त्र से मरे हुए को फिर जिलाना और प्रतिघात अर्थात् दूसरे के चलाये हुए अस्त्र को अपने अस्त्र से शमित करना भी तुझे बता दिया है अब इन सबको काम में लाने और हमको गुरुदक्षिणा देने का समय आन पहुँचा है सो जो तू उसको करने की प्रतिज्ञा करे तो मैं तुझसे उस काम को कहूँ यह सुनकर मैंने कहा ६४। ६९ कि महाराज! जो काम मेरे करने के योग्य है उसको आप किया हुआ ही समझें यह सुनकर इन्द्र ने हँसकर कहा ७० कि तीनों लोकों में ऐसा कोई काम नहीं है जो तुझसे नहीं हो सकता है निवात कवच नामी तीन कोटि दैत्य समुद्र की कुक्षि में, दुर्ग स्थानों में रहते हैं वे हमारे शत्रु हैं और सब एक बराबर बल रखते हैं ७१। ७२ हे कुन्तीनन्दन! तू जाकर उन दैत्यों को मार उनको मारने पर तेरी दक्षिणा पूरी होगी यह कह कर इन्द्र ने मुझको अपना बड़ी प्रभावाला दिव्य रथ दिया जिसमें मातलि सारथी था और ऐसे घोड़े जुते थे जिनका रंग मोर के परों के सदृश था और यह सुन्दर किरीट मेरे शिर में बाँध दिया और अङ्ग अङ्ग के उत्तम भूषण और यह अभेद्य कवच भी दिया और इस गाण्डीव धनुष में यह ज्या लगा दी जो कभी पुरानी नहीं होती है इसके उपरान्त मैं उस रथ में बैठकर चल दिया ७३। ७६ अगले समय में इन्द्र ने विरोचन के पुत्र बलि को इसी रथ में बैठकर जय किया था उस रथ के शब्द को सुनकर सब देवता मुझे इन्द्र समझ कर मेरे पास आये और पूछने लगे कि हे अर्जुन! तू क्या करना चाहता है ७७। ७८ यह सुनकर मैंने उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि हे देवताओ! मैं निवातकवच नामी दैत्यों को मारने जाता हूँ आप लोग मुझे

मेरा कल्याण होने का आशीर्वाद दीजिये यह सुनकर देवता इन्द्र की भाँति मेरी स्तुति करने लगे और बोले ७६ । ८० कि इन्द्र ने इस रथ में बैठकर शम्बर, नमुचि, बलि, वृत्र, प्रह्लाद, नरक और अर्बुदों दैत्यों को जय किया था ८१ । ८२ हे कौन्तेय ! तुम भी उसी प्रकार के अपने पराक्रम से निवातकवच दैत्यों को जीतोगे ८३ और इस शंख से भी तुम दानवों को विजय करोगे इन्द्र ने भी इस शंख से अनेक लोक विजय किये थे ८४ इस प्रकार से देवताओं के स्तुति करने पर मैंने वह देवदत्त नामी शंख विजय प्राप्त करने के लिये ले लिया ८५ और शंख, कवच, धनुष, और बाण लेकर युद्ध करने के लिए उन उग्र दानवों के नगर को चल दिया ॥ ८६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

एकसौ उनहत्तरवाँ अध्याय ।

अर्जुन का निवातकवच दैत्यों के नगर में पहुँचना और उन दैत्यों से युद्ध करना ।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज ! स्वर्ग से चलकर जहां तहां महा ऋषियों से स्तुति सुनता हुआ समुद्र के समीप पहुँचा जिसमें फेन लिये हुए लहरें उठ रही थीं और ऐसी दीखती थीं मानो चलते हुए पर्वत हैं १ । २ कहीं रत्नों से भरी हुई सहस्रों नावें लगी हुई थीं कहीं बड़ी बड़ी मछलियां कहीं बड़े बड़े कछुये और कहीं कहीं जल में डूबे हुए मगर पर्वतों के समान दीखते थे कहीं जल में डूबे हुए शंख ऐसे जान पड़ते थे मानो रात्रि में पतले बादलों से ढके हुए तारागण हैं और अनेक प्रकार के सहस्रों रत्न उस समुद्र के जल के ऊपर तिर रहे थे ३ । ५ वायु वहां बड़ी भयानक चल रही थी मैं उस समुद्र की शोभा को देखता हुआ उन दानवों से भरे हुए नगर के निकट शीघ्र जा पहुँचा वहां पहुँचकर मातलि ने रथ को आकाशमार्ग से पृथ्वी पर उतार लिया और उसको चारों ओर से देखकर उस नगर के सम्मुख शीघ्रता से ले चला ६ । ८ उस रथ के चलने के शब्द को सुनकर सब दानव मुझे इन्द्र समझ कर व्याकुल हो गये ६ और विस्मित होकर धनुष, बाण, खड्ग, गदा, शूल और फरसा आदि अस्त्र हाथ में लेलेकर खड़े होरहे १० और सबने भयभीत होकर नगर के द्वार बन्द कर लिये जब वहां मुझे उस नगर का कोई रक्षक दिखाई नहीं दिया तब मैंने प्रसन्न होकर देवदत्त शंख को धीरे धीरे बजाया ११ । १२ उसके शब्द से आकाश गूंजने लगा और बड़े बड़े प्राणी भी डर डर कर

जहां तहां छिपगये १३ थोड़ी देर में सहस्रों निवातकवच दैत्य अनेक प्रकार की गर्जना करते हुए हाथों में शूल, गदा, पाट्टिश, करवाल, रथचक्र, शतघ्नी, भुशुंडी और खड्ग आदि चित्र विचित्र हथियार धारण किये हुए निकल आये १४ । १६ उनको देखकर मातलि ने इधर उधर रथ के जाने के योग्य मार्गों को देखकर समान पृथ्वी की ओर इस शीघ्रता से रथ हांका कि चलते में पृथ्वी पर की कोई वस्तु यथावत् नहीं जानी जाती थी वह एक बड़ा आश्चर्य-सा हुआ १७ । १८ इसके पीछे दानवों ने अनेक बाजे जिनके स्वरूप विकृत थे बजाये और उनके शब्द से समुद्र में पर्वतरूपी बड़ी बड़ी मछलियां इधर से उधर भागने लगीं १९ । २० तदनन्तर सहस्रों दानव तीक्ष्ण बाण छोड़ते हुए मेरे सम्मुख बढ़े और मेरा उनसे महाघोर युद्ध होने लगा जिसमें बहुत से दैत्य मारे गये २१ । २२ उस समय युद्ध में देवऋषि, दानवऋषि, ब्रह्मऋषि, और सिद्धलोग वहां आये और उन सबों ने मेरी स्तुति इस प्रकार से की जैसे तारकासुर दैत्य से युद्ध करते समय इन्द्र की स्तुति की थी ॥ २३ । २४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

एकसौ सत्तरवाँ अध्याय ।

निवातकवच दैत्यों का अर्जुन से युद्ध करना और उस युद्ध में अर्जुन के हाथ से सहस्रों दैत्यों का माराजाना ।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज ! उक्त ऋषियों के आने के पीछे सब निवातकवच दैत्य एक साथ मेरे सम्मुख दौड़े और चारों ओर से घेरकर मेरे रथ के जाने का मार्ग बन्द करदिया और मुझको बाणों की वर्षा से अदृश्य करदिया १ । २ उन दैत्यों के भुशुण्डी, शूल, गदा और शक्ति आदि हथियारों की वर्षा मेरे रथ के ऊपर निरन्तर होने लगी ३ । ४ बहुत से दैत्य जिनका प्रहार बड़ा भयानक था मेरे सम्मुख दौड़े परंतु मैंने उस समय गाण्डीव धनुष चढ़ाकर प्रत्येक दैत्यों के दश दश तीक्ष्ण बाण मारे और उनके लगने से वे सब विमुख होगये उसी अवसर में मातलि भी बड़ी युक्ति से रथ को हांककर शीघ्रता से इधर उधर हांकने लगा और बहुत से दैत्य उसके भ्रमण और घोड़ों की टाप से दब दब कर मरगये यद्यपि मेरे उस रथ में हरे रंग के सहस्र

घोड़े जुते हुए थे परंतु मातलि उनको इस प्रकार से हांकता हुआ चारों ओर घुमाता था जैसे कोई थोड़े घोड़े जुते हुए रथ को हांक लेता है ५ । ६ मेरे बाणों के निपात और रथ की धड़धड़ाहट और घोड़ों की टापों से सहस्रों दैत्य मारे गये १० बहुतसे दैत्यों को जिनका सारथी मारा गया था और आप भी धनुष् लिये हुए निर्जीव होगये थे रथ के घोड़े खींचे खींचे फिरते थे ११ इसके पीछे उन निवातकवच दैत्यों ने दशों दिशाओं को रोककर गर्ज गर्ज कर चारों ओर से मेरे ऊपर शस्त्रों की वर्षा की उससे मेरा मन बहुत व्यथित होगया १२ उस समय मैंने मातलि का यह पराक्रम देखा कि वह अत्यन्त वेग से जाते हुए घोड़ों को बड़े यत्न से डाटे रहा १३ हे राजन् ! मैंने भी तब अपने तीक्ष्ण और चित्र विचित्र अस्त्रों से सहस्रों दानव और उनके आयुधों को छेद डाला १४ मुझको इस प्रकार से युद्ध करते हुए देखकर मातलि प्रसन्न हुआ १५ उस समय बहुत से दैत्य रथ के घोड़ों की टाप से दब दब कर मरगये और बहुतों ने मेरे बाणों से घायल होकर मेरे ऊपर ऐसी बाणों की वर्षा की कि मुझे ढकदिया १६ । १७ तब मैंने भी ब्रह्मास्त्र आदि शीघ्रगामी बाण छोड़कर सहस्रों दानवों को मारकर गिरादिया १८ फिर उन दानवों ने दुःखी और क्रोधित होकर मेरे ऊपर शक्ति, शूल और खड्ग आदि आयुधों की वर्षा की उनसे मुझे बड़ी पीड़ा हुई परंतु मैंने भी माधव अस्त्र का प्रयोग करके जो बड़ा तीक्ष्ण और तेज से भरा हुआ था उन दैत्यों के फेंके हुए खड्ग, त्रिशूल और तोमरों को टुकड़े टुकड़े करडाला और शेष से प्रत्येक दैत्य के दश दश बाण मारकर उनको छेदडाला उस समय मातलि मेरे गाण्डीव धनुष् से भौंरों की पंक्ति की सदृश छोड़े हुए बाणों को देखकर मेरी सराहना करने लगा १९ । २३ इसके पीछे उन दानवों ने भी मेरे ऊपर बाणवृष्टि करके मुझे ढकदिया मातलि ने उनकी बाणवृष्टि भी सराही और मैंने उन बाणों को अपने बाणों से काटकर गिरादिया २४ तब उन दानवों ने फिर मुझपर बाणवृष्टि की और मुझे चारोंओर से ढकदिया मैंने भी अस्त्रघाती अस्त्रों से उनकी बाणवृष्टि को रोकदिया और सहस्रों दानवों को काटकर गिरादिया २५ । २६ तब उनके कटे हुए शरीरों में से रुधिर की धारैं इस प्रकार से निकलनेलगीं जैसे वर्षाकाल में पर्वतों के शिखरों पर से जल चारों ओर को गिरता है २७ उस समय वे असुर मेरे वज्ररूपी बाणों

से व्याकुल होगये और शरीर और अस्त्रों के शतधा भिन्न होने के कारण से क्षीण पराक्रम होकर माया रचकर युद्ध करने लगे ॥ २८ । २९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते बनपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

एकसौ एकहत्तरवाँ अध्याय।

अर्जुन का निवातकवच दानवों से युद्ध करके उनको मारकर यमलोक में भेजना।

अर्जुन बोले हे युधिष्ठिर, महाराज! इसके पीछे वे निवातकवच दैत्य चारों ओर से मेरे ऊपर वृक्षप्रमाण पत्थर वर्षाने लगे उनको देखकर मेरी दृष्टि को बहुत पीड़ा हुई परंतु महासंग्राम में मैंने वज्र तुल्य वेगवान् महेन्द्रास्त्र छोड़कर उन पत्थरों को चूर्ण कर डाला १ । २ तब उन पत्थरों से अग्नि प्रकट होगई और उनका चूर्ण अग्नि की राशि के समान गिरने लगा ३ इसके पीछे आकाश से मेरे चारों ओर मूसलाधार जल वर्षने लगा और वायु प्रचण्ड चलने लगी उस समय वायुकी संसनाहट, जलकी तड़तड़ाहट और दैत्यों की गड़गड़ाहट से कोई बात सुनाई नहीं पड़ती थी ४ । ६ उन आकाश से निरंतर गिरनेवाली धाराओं से मैं मोहित सा होगया परंतु मैंने इन्द्र के बताये हुए जल के सुखानेवाले दीप्त अस्त्र को छोड़कर सब जल को सुखादिया ७ । ८ तब दानवों ने अपनी माया से अग्नि और प्रचण्ड वायु प्रकट की मैंने वारुणास्त्र से अग्नि को और शैल अस्त्र से वायुवेग को शान्त करदिया ९ । १० इसके उपरान्त उन दुर्मद दानवों ने एक साथ ही नानाप्रकार की माया प्रकट की चारोंओर से घोरअस्त्र अग्नि पत्थर वर्षने लगे और वायुप्रचण्ड चलनेलगी उससे मेरे शरीर के रोम खड़े होगये और चित्त को बड़ी पीड़ा हुई थोड़ी देरमें चारों ओर महा अन्धकार छागया उस के कारण से रथ के घोड़े न चल सके और मातलि भी रथ से खिसल पड़ा और उसके हाथ से सुनहरा चाबुक गिरपड़ा तब मातलि ने भयभीत होकर मुझ से कहा कि हे अर्जुन! अब तुम कहां हो ११ । १५ यह सुनकर मुझको भी बड़ा भय हुआ और मातलि ने मुझसे उस भयकी अवस्था में कहा कि पहिले अमृतके लिये देवता और असुरोंका बड़ाभारी संग्राम हुआ था वह मैंने देखा था और जब शम्बर दैत्यसे इन्द्र ने युद्ध किया था तब भी मैं ही इन्द्रका सारथी था और वृत्रासुर और बलिके संग्राम में भी मैंने ही इन्द्र का रथ हांका था परंतु मैं ऐसा अचेत किसी युद्धमें हुआ नहीं था जैसा इस युद्ध में हुआ हूं न जाने ब्रह्माने यह घोर संग्राम जगत् को संहार करने को रचा है ऐसा संग्राम पहिले कभी कहीं नहीं हुआ

था १६ । २१ यह सुनकर मैंने अपने मन को स्थिर किया और उस भयभीत मातलि से कहा तुम किसी प्रकार का भय मत करो मेरे बल, अस्त्र और गाण्डीव धनुष् के प्रभाव को देखो अभी मैं अपने अस्त्रों के प्रभाव से इन दानवों की दारुण माया और इस अंधकार को दूर किये देता हूं २२ । २४ हे नराधिप ! यह कहकर मैंने देवताओं के हित के लिए सब प्राणियों को मोहनेवाली अस्त्रमाया छोड़ी २५ उससे वह असुरों की सब माया दूर होगई तब अपार बलशाली दानवों ने और बहुत प्रकार की माया प्रकट की २६ कभी अंधेरा और कभी उजेला हो जाता था और कभी ऐसा जानपड़ता था कि जल में डूबे जाते हैं परंतु जब अस्त्र के प्रभाव से वह सब माया नष्ट होगई और उजेला होगया तब मातलि घोड़ों को अच्छी तरह पकड़कर रथको हांकता हुआ लोमहर्षण संग्राम में इधर से उधर बिचरने लगा २७ । २८ उस समय सब दानव चारों ओर से सिमिटकर मेरे ऊपर आकर गिरे मैंने अवसर पाकर मार मारकर उन सबको यमलोक में भेजदिया २९ इसके उपरान्त बचे हुए दानवमाया करके एक साथ गुप्त हो गये और कोई दिखाई नहीं देने लगा ॥ ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

एकसौ बहत्तरवाँ अध्याय ।

अर्जुन का संपूर्ण निवातकवच दैत्यों को मारकर उनके पुर की शोभा देखना और इन्द्रपुरी को लौटना ।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज ! वे दानव अदृश्य होकर माया से युद्ध करने लगे मैंने भी उनसे अदृश्य अस्त्र के द्वारा युद्ध किया १ और गाण्डीव धनुष् से छोड़े हुए अस्त्र प्रेरित बाणों से उनके शिर कट कट कर जहां तहां गिरनेलगे २ इसके पीछे उन दानवों ने अपनी माया को संहार करलिया और एकाएकी अपने नगर के भीतर घुसगये ३ उस समय प्रकाश के होने पर मैंने देखा कि सहस्रों दानव रणभूमि पर कटेहुए पड़े हुए हैं कोई कवच पहिरे हुए ही मरगया है कोई शस्त्र लिये हुए ही कटगया है कोई आभरण धारण किए हुए ही पञ्चत्व को प्राप्त हुआ है और किसी किसी का शरीर चूर्ण हो गया है निदान वे दानव वहां इस प्रकार से मरे और कटे हुए पड़े थे कि उनके कारण से मेरे रथ के घोड़े नहीं चलसके और वे उछलकर आकाश मार्ग में रथ को लिए हुए चलने लगे ४ । ६ उस समय सब निवातकवच

दानव फिर वहां अदृश्यरूप से आगये और कुछ आकाश में स्थित होकर मेरे ऊपर पहाड़ फेंकने लगे बहुतों ने नीचे से मेरे रथ के पहिए और घोड़ों की टांगें पकड़लीं और मुझको रथसहित इस प्रकार से पर्वतों से ढकदिया कि वह स्थान जहां मेरा रथ था पर्वत की गुफा-सा दीखने लगा ७। १० पर्वतों से ढकजाने और घोड़ों के पकड़े जाने के कारण से मुझको बड़ी पीड़ा हुई मातलि मुझको उस अवस्था में देखकर कहने लगा कि हे अर्जुन! तुम डरो मत और वज्र अस्त्र छोड़ो ११। १२ यह सुनकर मैंने इन्द्र के प्रिय और भयानक वज्र अस्त्र का प्रयोग किया १३ और गाण्डीव धनुष् को अभिमन्त्रित करके वज्ररूपी लोहे के बाण छोड़े १४ वे बाण वज्र से प्रेरित होकर उन पर्वतरूपी दानव और उन रची हुई माया को छेदनेलगे और उससे वे मर मर कर एक दूसरे से चिपटे हुए पृथ्वी पर गिरनेलगे उन बाणों ने उन दानवों को भी मारकर यमलोक को पहुँचादिया जो मेरे रथ के घोड़े और पहियों को पकड़े हुए थे १५। १७ उन दानवों के मरकर गिरने से उनके पर्वतरूपी फैले हुए शरीरों से वह देश ढकगया १८ हे राजन्! मेरी अथवा मातलिसमेत रथ के घोड़ों की कोई हानि किसी प्रकार की नहीं हुई उस समय मातलि ने मुझसे हँसकर कहा कि हे अर्जुन! तुम्हारा सा पराक्रम किसी देवता में भी नहीं है १९। २० हे युधिष्ठिर, महाराज! उन दानवों के मारेजाने पर उस नगर में उनकी स्त्रियां इस प्रकार से रोनेलगीं जैसे शरद्ऋतु में सारसी चिल्लाती हैं २१ मैं उस समय उन स्त्रियों को रथ के शब्द से डराता हुआ नगर के समीप चलागया वे स्त्रियां उन दश सहस्र रथ के घोड़ों को जिनका वर्ण मोर के रंगके सदृश था और उस रथ को जिसका प्रकाश सूर्य के तुल्य था देखकर भागने लगीं उनके भागने का ऐसा शब्द हुआ मानो पहाड़पर पत्थरों की शिला गिरती हैं २२। २४ जब मैं निकट पहुँचा तब वे स्त्रियां अपने अपने रत्नजटित और सुनहरे मकानों में घुसगईं २५ इसके पीछे मैंने उस उत्तम और देवताओं के नगर से भी श्रेष्ठ पुर को देखकर मातलि से पूछा २६ कि देवता इस नगर में क्यों नहीं रहते हैं यह नगर तो मुझको इन्द्रपुरी से भी अच्छा दीखता है २७ यह सुनकर मातलि बोला कि पहिले यह नगर देवताओं का ही था परंतु निवातकवच दैत्यों ने बड़ी तपस्या करके ब्रह्माजी से यह वरदान मांगा था कि हमको यह नगर बसने को मिले और देवता हमको किसी प्रकार से न जीतसकें सो वरदान

पाने पर उन दानवों ने देवताओं को इस नगर से निकाल दिया था २८ । २९ इसके उपरान्त इन्द्र ने ब्रह्माजी से अपने हित की इच्छा से पूछा कि महाराज ! ये दैत्य क्योंकर मारे जायँगे इनके वध की विधि बताइये यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा कि मैं जानता हूँ कि तुम्हीं दूसरा शरीर धारण करके इन दानवों को मारोगे ३० । ३१ हे अर्जुन ! इसी कारण से इन्द्र ने इन दैत्यों को मारने के लिये तुमको संपूर्ण अस्त्र दिये हैं ये दैत्य जिनको तुमने मारा है देवताओं से वध्य न थे ३२ इनका अब समय आ पहुँचा था सो तुम इनको नाश करने के लिये यहां प्राप्त हुए और तुमने उनका नाश यथावत् किया ३३ इन्द्र ने इन्हीं दानवों को मारने के लिए तुमको अस्त्रों का बल ग्रहण कराया था ३४ हे युधिष्ठिर महाराज ! इसके उपरान्त मैं नगर को देखकर मातलि के साथ देवलोक को लौट आया ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

एकसौ तिहत्तरवाँ अध्याय ।

अर्जुन का हिरण्यपुरनाम दानवों के नगर को गिराना और दानवों को मारकर मातलिसहित इन्द्रपुरी को लौटकर चला जाना ।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज ! इन्द्रपुरी को लौटने के समय राह में मैंने एक बड़ा अद्भुत नगर देखा जो इच्छापूर्वक जहां चाहो वहां जा सक्ता था और सूर्य के तुल्य प्रकाश कर रहा था १ वृक्ष वहां के फूले फले रत्नजटित और चित्र विचित्र थे पक्षी उन पर बैठे हुए मधुर मधुर वाणी बोल रहे थे उस नगर के चार द्वार थे और भीतर बड़े बड़े अद्भुत और रत्नजटित गृह बने हुए थे गोपुर और अटारियां उन गृहों पर परम शोभा दे रही थीं उसके देखने से आश्चर्य-सा होता था उस नगर में पौलोम और कालकञ्ज नामी असुर रहते थे और शूल, खड्ग, मुशल, मुद्गर और धनुष आदि अनेक आयुध लिये हुए बहुत से असुर जो माला धारण किए हुए थे उसकी रक्षा कर रहे थे २ । ५ उस नगर को देखकर मैंने मातलि से पूछा कि यह अद्भुत दर्शन क्या है ? मातलि बोला कि पुलोमा नाम दैतेयी और कालका नामी दो महासुरी थीं उन्होंने सहस्र वर्ष तक बड़ा उग्र तप किया था ६ । ७ ब्रह्माजी उनकी तपस्या से प्रसन्न हुए थे और उनसे उन दोनों ने यह वरदान मांगा था कि हमारे पुत्र देवता राक्षस और सर्पों से अवध्य होंवे अर्थात् उनको देवता या राक्षस अथवा सर्प

न मार सकें और उनको रहने के लिए एक बड़ा रमणीक और प्रकाशित नगर मिले जो आकाश में जहां चाहे तहां चल फिर सके और सब रत्न और गुणों से युक्त शोक रोगरहित और देवता, महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, पन्नग, असुर और राक्षसों से भी दुर्धर्ष होवे यह सुनकर ब्रह्माजी ने उन दोनों आसुरियों को उक्त वरदान दिया और उनके पुत्रों के लिये यह नगर बनाया, इसका नाम हिरण्यपुर विख्यात है देवता इसमें नहीं रहते हैं केवल पौलोम और कालकञ्ज नाम दैत्य ही बसते हैं और वे ही इसकी रक्षा करते हैं ८। १२ हे अर्जुन ! ये दानव इस नगर में निर्भय वास करते हैं और देवताओं से अवध्य हैं अगले समय में ब्रह्माजी ने कहा था कि इनकी मृत्यु मनुष्य के हाथ से होगी सो तुम वज्र अस्त्र से मारकर इन दैत्यों को भी नाश करो १४। १५ यह सुनकर मैं उन दैत्यों को देवताओं से अवध्य जानकर प्रसन्न हुआ और मैंने मातलि से कहा कि अब तुम शीघ्र मेरे रथ को इस नगर के निकट ले चलो मैं इन दैत्यों को भी अस्त्रों से मारूंगा क्योंकि जो दैत्य देवताओं के शत्रु हैं वे निश्चय मेरे वध्य हैं १६। १७ यह सुनकर मातलि उस हरी जाति के घोड़ों से जुते हुए रथ को शीघ्र हांककर उस नगर के समीप लेगया १८ मुझे देखकर वे दैत्य चित्र विचित्र वस्त्र आभरण और कवच धारण किये हुए रथों में बैठ बैठ कर मेरे सम्मुख आये १९ और मेरे ऊपर नालीक, नाराच, भल्ल, शक्ति, दुधारा और खड्ग आदि शस्त्र प्रहार करने लगे २० हे राजन् ! उस समय मैंने रथ को घुमा घुमा कर विद्याबल से बाणों की वर्षा की और उनके फेंके हुए शस्त्रों को रोककर उन्हें मोहित कर दिया तब वे दैत्य मोहित होकर आपस में परस्पर मारने लगे और एक दूसरे की ओर दौड़ने लगे उस समय मैंने तीक्ष्ण बाणों से उनके शिर काट काटकर गिरा दिये २१। २२ इस प्रकार से ताड़ित होने पर वे दैत्य अपने नगर में घुस गये और दानवी माया करके नगरसहित आकाश को उछल कर चले मैंने बड़ी बाणवर्षा करके उनका मार्ग रोक दिया जब ऊपर को जाने को राह न मिली तब वह इच्छानुसार चलनेवाला और सूर्य के तुल्य प्रकाशित नगर जिसकी रक्षा दैत्य सुखपूर्वक कर रह थे, नीचे को चला आया और अन्तरिक्ष में घूमने लगा कभी ऊंचेको चला जाता था कभी तिरछा चलनेलगता था और कभी पानी में डूब जाता था २४। २७ हे परन्तप ! उस समय मैंने दिव्यअस्त्र और बाणों के जालों से उस अमरावती के तुल्य नगर की गति

चारों ओर से रोक दी और वह मेरे तीक्ष्ण लोहे के बाणों से कटकट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा २८।३० तब उसमें रहनवाले दानव मेरे बाणों से ताड़ित और काल से प्रेरित होकर इधर उधर घूमने लगे उस समय मातलि मेरे सूर्यरूपी रथ को आकाश में चढ़ाकर शीघ्र नीचे को उतार लाया और उन दानवों ने क्रोधित होकर साठ सहस्र रथों से मुझे घेर लिया, मैं भी उनको अपने तीक्ष्ण बाणों से जिनमें गिद्ध के पर लगे हुए थे मारने लगा ३१।३४ और वे दैत्य भी समुद्र की लहरों की भांति लौटकर मुझसे लड़ने लगे, उस समय मैंने यह अनुमान करके कि ये दैत्य मनुष्य से नहीं जीते जा सकते हैं, दिव्य दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया परंतु उन दैत्यों ने धीरे धीरे मेरे चलाये हुए सब अस्त्र नष्ट करदिये और चित्र विचित्र मुकुट, कवच और ध्वजा धारण किये हुए अनेक प्रकार के रथों में बैठे हुए रण में घूमने लगे कि जिनको देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ ३५।३८ उस समय मैंने अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्रों से प्रेरित करके बाणवर्षा की परंतु वे महापराक्रमी दैत्य युद्ध में ऐसे कुशल थे कि उन्होंने उन सब अस्त्रों को व्यर्थ कर दिया और मुझे पीड़ित किया उनकी युद्ध की निपुणता और अस्त्र की कुशलता को देखकर मेरा हृदय भय से आविष्ट हो गया, परंतु मैंने सावधान होकर शिवजी को नमस्कार किया और यह कहकर कि प्राणियों का कल्याण हो उस महाअस्त्र का प्रयोग किया जो पाशुपत नाम से विख्यात है और उग्र शत्रुओं का नाश करनेवाला है उसका प्रयोग करते ही मैंने अपने समीप एक पुरुष देखा जिसके तीन शिर, नौ आंखें, तीन मुख, अग्नि के समान प्रज्वलित बाल और छः महानागों का वस्त्र पहिरे हुए था ३९।४३ शिवजी के उस सनातन और घोर रौद्र अस्त्र को देखकर मैंने उसको गाण्डीव धनुष पर चढ़ा लिया और तीन नेत्र रखनेवाले शिवजी को नमस्कार करके दानवों को मारने की इच्छा से उसे छोड़ दिया ४४।४५ हे प्रजाधीश! उसके छोड़ते ही सहस्रों मृग, सिंह, व्याघ्र, रीछ, भैंसे, सर्प, बैल, शरभ, हाथी, वानर, ऋषभ, वाराह, मार्जार, शालावृक, प्रेत, भुरुण्ड, गिद्ध, गरुड़, चमर, देवता, ऋषि, गन्धर्व पिशाच, यक्ष, असुर, गुह्यक, नैर्ऋत्य, गजमुख, मगर, उलूक, मीन और घुड़मुहे अनेक अनेक प्रकार के रूप और अस्त्र धारण किये हुए प्रकट हो गये ४६।५१ और यातुधाननामी असुर और और बहुत प्रकार के जीव गदा और मुद्गर आदि शस्त्र लिये हुए इतने उत्पन्न हो गये कि उनसे सब जगत् व्याप्त हो गया उनमें से

बहुतों के तीन शिर, चार डाढ़ें, चार मुख और चार चार भुजा थीं उन सबोंनें पृथ्वी को मांस, मेदा और हाड़ों से युक्त करदिया और सब दानवों को मारडाला ५२।५४ उस समय मैंने भी बहुत से दैत्यों को अग्नि, सूर्य और वज्ररूपी लोहे के बाणों से मारकर गिरा दिया उनको आकाश से निर्जीव हो हो कर गिरते हुये देखकर मैंने शिवजी को फिर नमस्कार किया और मातलि सारथी मेरे उस काम को देखकर जिसका होना देवताओं से भी कठिन था प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़कर कहने लगा ५५। ५६ कि आज तुमने जो काम किया है उसको देवता और असुर नहीं किन्तु इन्द्र भी नहीं कर सकता था ६० तुमने अपने पराक्रम और तप के बल से इस आकाशचारीपुर को जो देवताओं का अवध्य था नाश किया है ६१ इसके उपरान्त उन दानवों के मरने पर उस गिरे हुए नगर से दानवों की स्त्रियां रोती पुकारती बाहर निकलीं और अपने अपने बाप, भाई, पुत्र और पति का शोक करती हुई विलाप करने लगीं, कोई छाती पीटकर अचेत हो जाती और पृथ्वी पर गिर पड़ती थीं किसीकी माला टूटकर खिसल पड़ती थी किसी के आभूषण गिर पड़ते थे किसी के बाल खुल जाते थे और कोई कोई सारसी पक्षी के सदृश हूक दे देकर रोती थी ६२। ६४ और वह दानवों का नगर स्वामी के मारेजाने और शोक के कारण से शोभाहीन और तेजरहित हो गया और ऐसा दीखने लगा मानो सूखा हुआ वन और नागरहित सरोवर है इसके उपरान्त वह नगर आकाश में गन्धर्व नगर के समान अदृश्य हो गया ६५। ६६ तब मातलि मुझको रणभूमि से इन्द्रपुरी को ले गया वहां पहुँचकर मैं इन्द्र के पास गया और मातलि ने इन्द्र से मेरी प्रशंसा करके हिरण्यपुर के गिराने और निवातकवचों के मारने और दानवी माया को दूर करने का सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया ६७। ७० उसको सुनकर सहस्राक्ष इन्द्र ने मरुद्गणोंसहित प्रसन्न होकर कहा कि भाई अच्छा किया अच्छा किया और फिर देवताओंसहित मुझे धैर्य देकर यह मधुरवाणी उच्चारण की ७१। ७२ कि वाह अर्जुन! तैंने यह काम देवता और असुरों को उल्लंघनकर किया है और हमारे शत्रुओं को मारकर हमको गुरुदक्षिणा दी है ७३ दृढ़ और ज्ञानी पुरुष को रणभूमि में इसी प्रकार से यत्न और अस्त्रों का प्रयोग करना उचित है ७४ अब तुझको युद्ध में कोई देवता, दानव, राक्षस, यक्ष, असुर, गन्धर्व, पक्षी और पन्नग नहीं जीत सकता है ७५ तेरा भाई कुन्तीनन्दन, धर्मात्मा,

युधिष्ठिर तेरी भुजाबल से जीती हुई पृथ्वी का भोग करेगा ॥ ७६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

एकसौ चौहत्तरवाँ अध्याय।

अर्जुन का युधिष्ठिर से अपने इन्द्रपुरी से गन्धमादन पर्वत पर आने का वृत्तान्त कहना।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर महाराज! इसके पीछे इन्द्र ने मुझ बाणों से घायल और विश्वासी को अपने पास बैठा लिया और मुझसे कहने लगा कि हे अर्जुन! जितने दिव्य अस्त्र हैं वे सब तुझको प्राप्त हो गये हैं, अब तुझको कोई मनुष्य भूतल में नहीं जीत सकता है १।२ हे राजन्! संग्राम में भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और शकुनि सब राजाओंसहित तेरी सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ३ यह कहकर इन्द्र ने मुझको शरीर की रक्षा के लिये यह कवच सुनहरी माला और यह देवदत्त नामी शंख जिसका शब्द बड़ा भारी है, दिया और अपने हाथ से यह किरीट मेरे शिर में बाँध दिया ४। ५ और ये वस्त्र और आभरण भी दिये जो प्रकाशमान और बहुत मोल के थे ६ हे युधिष्ठिर महाराज! इस प्रकार से मैंने इन्द्रभवन में ५ वर्ष गन्धर्वों के बालकों के साथ सुखपूर्वक वास किया और जुआँ खेलने के दोष को स्मरण करता रहा, उपरान्त इन्द्र ने मुझसे कहा कि हे अर्जुन! अब तेरे जाने का समय आ पहुँचा है, तेरे भाई तेरी याद करते हैं, यह सुनकर मैं वहाँ से चला आया और इस गन्धमादन पर आकर भाइयोंसहित आपके दर्शन किये ७। १० यह सुनकर युधिष्ठिर बोले हे अर्जुन! तैंने प्रारब्ध से सब अस्त्र पाये हैं और इन्द्र का आराधन और पार्वतीसहित शिवजी का दर्शन भी प्रारब्ध ही से किया है और प्रारब्ध ही से तैंने शिवजी को युद्ध में प्रसन्न किया प्रारब्ध ही से कुन्ती के पुत्रों की वृद्धि हुई और प्रारब्ध ही से तू यहां कुशलपूर्वक आ पहुँचा है ११।१३ अब मैं यह मानताहूँ कि मैंने सब पृथ्वीको विजय करलिया और धृतराष्ट्रके पुत्रों को भी अपने वशीभूत किया १४ परंतु अब मैं उन दिव्य अस्त्रों को देखना चाहता हूँ, जिनसे तैंने ऐसे पराक्रमी निवातकवच दैत्यों का वध किया १५ यह सुनकर अर्जुन बोला बहुत अच्छा कल प्रातःकाल आपको सब दिव्य अस्त्र दिखाऊँगा, वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह कहकर उस रात्रि को अर्जुन ने भाइयोंसहित उसी स्थान पर वास किया ॥ १६।१७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

एकसौ पचहत्तरवाँ अध्याय।

अर्जुन का युधिष्ठिर को स्वर्ग से लायेहुए अस्त्रों को दिखलाना और नारदजी का निषेधकरना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! प्रातःकाल उठकर धर्मराज युधिष्ठिर ने भाइयोंसहित नित्यक्रिया की और उससे निवृत्त होकर मातृसुखकारी अर्जुन से कहा कि भाई! अब हमको वे अस्त्र दिखला जिनसे तैंने उन दानवों का वध किया था १। २ यह सुनकर अर्जुन ने पवित्र होकर दिव्य कवच धारण कर लिया और पर्वतरूपी रथ पर चढ़कर देवदत्त नामी शंख और गाण्डीवधनुष को हाथ में ले लिया और उन देवताओं के दिये हुए दिव्य अस्त्रों को क्रमपूर्वक दिखलाना प्रारम्भ किया उन अस्त्रों के प्रयोग करने पर पृथ्वी, नदियाँ और समुद्रसहित अर्जुन के दोनों पैरों से दबी हुई होने पर भी हिलने लगी पर्वत फटने लगे, वायु का चलना बन्द हो गया, सूर्य का प्रकाश जाता रहा और अग्नि प्रज्वलित न होने लगा ३। ९ ब्राह्मण वेद का पाठ भूल गये और पृथ्वी के सब प्राणी अस्त्रों से पीड़ित होकर बाहर निकल आये और हाथ जोड़कर काँपते हुए त्राहि त्राहि करने लगे इसके पीछे ब्रह्मऋषि, सिद्ध, महाऋषि, देवऋषि, देवता, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पक्षी, सब आकाशचारी जीव, ब्रह्माजी, लोकपाल और भगवान् महादेवजी अपने सब गणोंसहित वहाँ आये और अर्जुन के सम्मुख खड़े हो गये १०। १५ उस समय पाण्डवों के चारों ओर दिव्य पवन चलने लगी और उससे चित्र विचित्र फूलों की उन पर वर्षा हुई १६ और देवताओं की आज्ञा से गन्धर्व अनेक प्रकार की रागिनी गाने लगे और अप्सरा टोली बाँध बाँधकर नाचने लगीं १७ इसके पीछे देवताओं से प्रेरित होकर नारदजी वहाँ आये और अर्जुन से कहने लगे १८ कि भाई भारत, अर्जुन! इन दिव्य अस्त्रों का प्रयोग मत करो विना लक्ष्य अर्थात् निशाने के इनका प्रयोग होना उचित नहीं है १९ क्योंकि हे कुरुनन्दन! विना लक्ष्य मिलने और पीड़ित होने के इनके प्रयोग करने में महादोष होता है २० शास्त्र के अनुसार इन अस्त्रों को रक्षित रखने से ये अस्त्र निस्संदेह बलवान् हो जाते हैं और अरक्षित रहने से तीनों लोकों को नाश कर डालते हैं इससे फिर ऐसा मत करना २१। २२ और हे युधिष्ठिर! जो तुमको इन अस्त्रों के देखने की इच्छा है तो जब युद्ध जुड़े और अर्जुन शत्रुओं को नाश करनेके लिये इन अस्त्रों का प्रयोगकरे तब तुम भी इनको देख लेना २३ वैशंपायनजी

बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे सब देवता और अन्य अन्य प्राणी जो वहाँ आये थे अर्जुन को अस्त्र का प्रयोग करने से निषेध करके अपने अपने स्थानों को चले गये और पाण्डवों ने द्रौपदीसहित बड़ी प्रसन्नता से वहीं वास किया ॥ २४ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

एकसौ छिहत्तरवाँ अध्याय।

भीमसेन आदि चारों भाइयों का, युधिष्ठिर से दुर्योधन के समीप के वन को चलने के लिये कहना और युधिष्ठिर का सबसे विदा होकर ब्राह्मणोंसहित वहाँ से चलना।

इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय ने पूछा कि हे वैशंपायनजी ! जब शूरवीर अर्जुन अस्त्र सीखकर अपने भाइयों से आन मिला, तब पाण्डवों ने क्या किया १ वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय ! अर्जुन के स्वर्ग से आने पर वे वीर पाण्डव उसी रमणीक पर्वत पर कुबेरजी के मनोहर वन और उपवनों में विहार करने लगे और अर्जुन वहां के अत्यन्त सुन्दर भवन और नानाप्रकार के वृक्षों से सुशोभित क्रीड़ा करने के स्थानों को देखता हुआ निरन्तर भ्रमण करने लगा २।३ कुबेरजी की कृपा से उनको अच्छे स्थान और उत्तम भक्ष्य भोज्य मिलते रहे उनको पाकर उन राजपुत्रों ने फिर मनुष्यों के ऐश्वर्य के पाने की इच्छा नहीं की और वह काल उनका बहुत आनन्द से व्यतीत हुआ ४ अर्जुन के आने के पीछे पाण्डव वहां चार वर्ष रहे और वे वर्ष उनको पिछले दिनों की एक रात्रि के समान जान पड़े इसप्रकार छः वर्ष पहिले और चार वर्ष ये मिलकर जब पाण्डवों के वनवास के दश वर्ष बीत गये ५ तब एक दिन भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने एकान्त में युधिष्ठिर के पास बैठकर यह हितकारी और प्यारी बात कही ६ कि हे युधिष्ठिर महाराज ! हम सब आपका प्रिय और आपकी प्रतिज्ञा को सत्य करना चाहते हैं इसी कारण से हमलोग वन को छोड़कर दुर्योधन को अनुचरोंसहित मारने को नहीं जाते हैं ७ हमारे वनवास का अब ग्यारहवाँ वर्ष है सो यद्यपि हम सब सुखभोगी होकर दुःख पा रहे हैं परंतु अब हमको उचित है कि हम सब मान छोड़कर आपकी आज्ञा से दुर्योधन के निकट किसी वन में चल बसें क्योंकि निकट रहने से हमारी ओर से उसको शङ्का न रहेगी जब कुछ दिन में वह भूल जायगा तब हम सब कपट वेष से कहीं दूर चले चलेंगे और वहां एक वर्ष गुप्त रह

कर फिर प्रकट हो जायँगे और दुर्योधन को अनुचरोंसहित नाश करके अपने वैर को फूल फलोंसहित उसके अर्पण करेंगे और पृथ्वी पर सुखपूर्वक वास करेंगे वह देश निस्सन्देह स्वर्ग के तुल्य है वहां रहने से हमारे शोक का दूर होना भी संभव है ८। ११ परंतु ऐसा करने से आपकी शुद्ध कीर्ति लोक में नष्ट हो जायगी और कुरुओं के राज्य को पाकर आप यज्ञादिक क्रिया कर सकेंगे १२ हे नरनायक! जो भोग आप कुबेर देवता से पा रहे हैं वे आपको सदैव ही मिलेंगे इससे आप अब शत्रुओं को मारने और पापियों को दण्ड देने की बुद्धि धारण कीजिये १२ हे धर्मराज! आपका तेज ऐसा उग्र है कि साक्षात् इन्द्र भी उसको नहीं सह सकता है और भगवान् गरुड़ध्वज अर्थात् श्रीकृष्णजी और सात्यकी दोनों आपके अर्थ को सिद्ध करने में प्रवृत्त हैं और वे दोनों ऐसे प्रबल हैं कि देवताओं से भी सामना करने पर उनको पीड़ा नहीं पहुँच सकती है इसी प्रकार से भीमसेन और यह अर्जुन भी दोनों ऐसे बलवान् हैं कि अपना प्रतियोधा नहीं रखते हैं १४। १५ हे नरदेववर्य! जिस प्रकार से श्रीकृष्णजी यादवोंसहित आपका हित किया चाहते हैं उसी प्रकार से हम चारों अर्थात् भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी आपका अर्थ सिद्ध किया चाहते हैं और शत्रुओं को नाश करके आपके धन और ऐश्वर्य को बढ़ाना चाहते हैं १६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर युधिष्ठिर ने उठकर कुबेरजी के भवन की प्रदक्षिणा की और वहां के स्थान, नदी, सरोवर और राक्षसों से मिलकर अपने जाने के मार्ग को देखकर हिमालय पर्वत को देखा और उससे प्रार्थना की कि हे गिरिराज! मेरी बुद्धि आपकी कृपा से ऐसी होवे कि मैं शत्रुओं को मारकर और राज्य के भोगों को भोगकर फिर यहां आऊं और जितात्मा होकर तपस्या करने के लिये आपके दर्शन करूं यह कहकर युधिष्ठिर भाइयों और ब्राह्मणोंसहित उसी मार्ग से चल दिया जिससे आया था १७। २० मार्ग में जहां कहीं झरने और दुर्गस्थान पड़ते थे वहां घटोत्कच सबको अपने ऊपर सवार कराकर ले जाता था और लोमश ऋषि प्रसन्न होकर पाण्डवों को पुत्र की भांति उपदेश करके देवताओं के पुण्यस्थान को चले गये और वे पाण्डव आर्ष्टिषेण ऋषि से शिक्षा पाकर रमणीक वन उपवन और सरोवरों को देखते हुये चल दिये॥ २१। २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७६॥

एकसौ सतहत्तरवाँ अध्याय ।

पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत से वृषपर्वा के स्थान को आना वहां से नारायणआश्रम को जाना और वहां से अनेक देशों में होते हुए सरस्वती के तट पर आना और वहां वास करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उस गन्धमादन पर्वत के छोड़ने पर जो झरनाओं से सुशोभित दिग्गज, किन्नर और पक्षियों से सेवित था भरतवंशी पाण्डवों का चित्त प्रसन्न नहीं रहा १ परंतु जब उन्होंने आगे चलकर कुबेरजी के प्यारे पर्वत कैलास को देखा जिसका प्रकाश ऐसा हो रहा था मानों जल से भरी हुई मेघ की घटा है तब उनको बड़ा हर्ष हुआ २ और वे वीर धनुर्धारी, खड्गधारी नरोत्तम होकर पर्वतों के ऊंचे ऊंचे निरोध अर्थात् रोक और सिंहों के रहने की बनी और नदियों पर उतरने के पुल और जहां तहां ऊंचे नीचे स्थान मृग, पक्षी और हाथियों से सेवित वनों को देखते हुए आगे चले ३ । ४ जहां कहीं रमणीक वन अथवा निर्मल नदी सुन्दर सरोवर या उत्तम छोटी बड़ी पहाड़ की गुफा आ जाती थी वहीं रात्रि में अथवा दिन में वे पाण्डव अपना डेरा कर देते थे ५ इस प्रकार से अनेक दुर्गस्थानों में बसते हुए कैलास को नांघकर पाण्डव वृषपर्वा ऋषि के आश्रम में आये ६ वहां पहुँचकर वे राजऋषि वृषपर्वा से मिले और उनसे पूजित होकर मोहरहित होते हुए उन्होंने अपना सब पूर्व वृत्तान्त विस्तार से वर्णन किया इसके पीछे उसी के देव, महर्षि सेवित पुण्याश्रम के पास एक रात्रि रहकर वे वीर विशाल बदरीआश्रम को चल दिये और वहां नारायणआश्रम में पहुँचकर उस कुबेरजी की प्यारी नलिनी पर वास किया जो देवता और सिद्धों से सेवित है ७ । ८ और उसको अच्छे प्रकार से देखकर शोकरहित पाण्डव जो कि सर्व नरों में मुख्य थे वे वहां इस प्रकार से रमने लगे जैसे ब्रह्मऋषि नन्दनवन में पहुँचकर रमण करते हैं १० इस प्रकार से उन नरवीरों ने उस विशाल बदरीआश्रम में एक महीना सुख से वास किया उपरान्त वहां से किरातों के राजा सुबाहु के देश को चल दिये और चीन, तुषार, दरद, और कुलिन्द आदि अनेक देशों को देखते और हिमालय के दुर्गस्थानों को नांघते हुए उस राजा के नगर के निकट जा पहुँचे ११ । १२ वह राजा सुबाहु उनको आया हुआ सुनकर अपने पुत्र और पौत्रों सहित उनके लेने के लिये बड़ी प्रसन्नता से आगे गया और पाण्डवों ने भी उस राजा से मिलकर उसे

नमस्कार किया १३ इसके पीछे पाण्डव विशोक आदि सारथी महेन्द्रसेन आदि सेवक रसोई बनानेवाले और सामग्री ले चलनेवाले अनुचरों से मिले और वहां एक रात्रि रहकर वहां से घटोत्कच को अनुचरोंसहित बिदा करके सब समाज और रथोंसहित यामुन पर्वत पर चले गये १४ । १५ वहां लाल और पाण्डुरंग के शिखर पर विशाखयूप नाम स्थान में वास किया १६ फिर वहां एक वर्ष तक रहकर वहां के चैत्ररथ के तुल्य उस सुन्दर वन में जो अनेक प्रकार के सुन्दर मृग और पक्षियों से सुशोभित था पाण्डव अहेर खेलते और विहार करते रहे १७ उसी वन में भीमसेन को एक बड़े अजगर ने जो बली भूखा और मृत्यु के समान था पकड़ लिया था और युधिष्ठिर ने जिसकी आत्मा उस समय विषाद और मोह से पीड़ित हो गई थी उसकी रक्षा की थी और उसको उस सर्प से छुटाया था १८ । १९ इस प्रकार से विहार करते हुए उनको बाहरवां वर्ष लग गया और वे उस नन्दनवन के सदृश वन से चलकर एक जलरहित पहाड़ी देश में पहुँचे और वहां से वे सब धनुर्वेद के जाननेवाले सरस्वती नदी के तट पर द्वैतवन नाम सरोवर पर जा बसे २० । २१ वहां उनको आया हुआ जानकर वहां के रहनेवाले ऋषि जो तपस्वी दम, आचार, समाधियुक्त कुशासन और कमण्डलु धारण करनेवाले और पत्थर पर कूटकर भोजन करनेवाले थे उनसे मिलने को आये २२ वह सरस्वती का तट प्लक्ष, अक्ष, रौहीतक, वेतस, बदरी, खैर, शिरीष, बेल, इंगुद, पीलू, छोंकर और करील आदि वृक्षों से परम सुशोभित हो रहा था २३ और यक्ष, गन्धर्व, महाऋषि और देवताओं का प्रिय स्थान था पाण्डव उसके तट के वन में घूम घूमकर विहार करने लगे ॥ २४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

एकसौ अठहत्तरवाँ अध्याय।

भीमसेन का वन में क्रीड़ा करने को जाना वहां उसको एक अजगर का मिलना और अजगर का भीमसेन की बांह पकड़ लेना उससे भीमसेन का मोहित होना ।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय बोला कि हे वैशंपायनजी ! भीमसेन का पराक्रम भयानक और दश सहस्र हाथियों के समान था और उस बल का उसको ऐसा अभिमान था कि उसने पुलस्त्यनन्दन कुबेरजी को युद्ध के लिये बुलाया और कुबेरजी की नलिनी में कमलों को तोड़कर उसके

रक्षक यक्ष और राक्षसों को मारकर गिरा दिया उसी से भीमसेन के विषय में आपने वर्णन किया है कि उसको एक सर्प से बड़ा भय हुआ और वह बड़ी विपत्ति में ग्रसित हो गया यह सुनकर मुझको बड़ा आश्चर्य होता है आप इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक सुनाइये मैं इसको पूरा पूरा सुनना चाहता हूं १। ३ यह सुनकर वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब पाण्डव वृषपर्वा राजर्षि के आश्रम से चलकर उस अद्भुत वन में जा बसे तब एक दिन अपनी इच्छा से भीमसेन धनुष् और खङ्ग बांधे हुए उस रमणीक वन की शोभा देखने को जिसमें देवता और गन्धर्व रहते थे गया ४। ५ और हिमालय पर्वत के सुन्दर देशों को जो देवता, ऋषि, सिद्ध और अप्सराओं से सेवित चकोर, उपचक्र, जीवजीवक और कोकिला आदि पक्षी व मृगों से शब्दित और बहुत से फूले फले छायावान् मन नेत्रों को आनन्द देनेवाले वृक्षों से शोभित बरफ के सदृश शीतल वैडूर्यमणि की समान निर्मल जल रखनेवाली हंस और कारण्डव आदि जल के पक्षियों से युक्त पहाड़ी नदियों से भूषित थे देखता हुआ कुछ दूर निकल गया ६। ६ और देवदारु, चन्दन के वृक्षों से युक्त तुङ्ग और कालीयक वृक्षों के वन में पहुँचा वह वन देवदारु के वृक्षों से मेघ की घटा के सदृश दीखता था वहां भीमसेन पर्वत के समान निर्जल स्थानों में बाणों से मृगों को मारता हुआ सिंह, शार्दूल, मृग, वाराह और भैंसाओं का अहेर खेलता हुआ घूमने लगा वह महाबली कभी वृक्षों को उखाड़कर इधर उधर फेंक देता था कभी उनको अपने वेग से तोड़ डालता था कभी वन के प्रदेश और पर्वत के शिखरों पर जाकर भयानक शब्द करता था कभी दौड़ने लगता था कभी सिंहनाद करता था कभी ताल बजाता था कभी खम्ब ठोंकता था इस प्रकार से भीमसेन के क्रीड़ा करने पर वह वन उसके शब्द से गूंजने लगा और बड़े बड़े गजेन्द्र और मृगेन्द्र उस शब्द से भयभीत होकर अपनी अपनी गुफा छोड़कर भागने लगे १०। १८ इसके पीछे भीमसेन कहीं दौड़ता कहीं ठहरता कहीं बैठता कहीं वन के जीवों को मारता और कहीं भयानक अद्भुत शब्द करता हुआ वनचारी मृग के समान इधर उधर घूमता हुआ आगे को बढ़ा १६। २१ उसके शब्द से पहाड़ की गुफाओं में सोते हुए सर्प भयभीत हो गये और वह सबको नांघता हुआ धीरे धीरे आगे को चला थोड़ी दूर जाकर उसने एक बड़ा भारी सर्प देखा जिसके देखने से रोम खड़े हो जाते थे वह सर्प पर्वत के एक

ऐसे स्थान पर जहां जाना कठिन था अपने बड़े लम्बे चौड़े पर्वताकार शरीर से पर्वत की कन्दरा को ढके बैठा हुआ था २२ । २४ उसका वर्ण हलदी के समान था और शरीर पर चित्र विचित्र चिह्न बने हुए थे दांत उसके चार थे और आंखें लाल लाल अग्नि के समान दीप्त थीं वह वारंवार श्वास लेता हुआ जीभ से होठों को चाटता हुआ बड़ा भयानक काल और यमराज के सदृश दीखता था वह अजगर सर्प क्रोधित होकर भीमसेन के पास चला आया और उसने अकस्मात् भीमसेन की दोनों भुजा मुख से पकड़कर दाब लीं उसके दाबते ही भीमसेन मोहित हो गया और यद्यपि उसका दश सहस्र हाथी का बल दुस्सह था परंतु वरदान के कारण से वह बल कुछ काम न दे सका निदान वह मोहित होकर कुछ विशेष चेष्टा न कर सका और अनेक उपाय करने पर भी अपने को उस सर्प से न छुटा सका और न उस सर्प को किसी प्रकार की पीड़ा दे सका ॥ २५ । ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

एकसौ उन्नासीवाँ अध्याय ।

भीमसेन का सर्प से पूछना कि तू कौन है और विलाप करना और युधिष्ठिर का अनेक उत्पात देखकर भीमसेन को ढूंढ़ने जाना और उसको सर्प से पकड़ा हुआ देखना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीमसेन उस सर्प के वशीभूत होकर उसके बड़े अद्भुत पराक्रम को देखकर चिन्ता करने लगा और उस महासर्प से बोला कि हे भुजङ्गश्रेष्ठ ! तुम कौन हो और मुझको पकड़कर क्या किया चाहते हो १ । २ मैं भीमसेन नामी युधिष्ठिर का छोटा भाई पाण्डव हूं और दश सहस्र हाथियों का पराक्रम रखता हूं तुमने मुझको अपने वश में कैसे कर लिया है ३ सैकड़ों सिंह, केशरी, व्याघ्र, भैंसा, हाथी और वाराह मेरे हाथों से मारे गये हैं और बड़े बड़े पराक्रमी राक्षस, पिशाच और सर्प भी मेरी भुजाओं के वेग को धारण नहीं कर सके परंतु तुमने मुझको ऐसा अपने वश में कर लिया है कि उद्योग से भी मैं तुमसे अपने को नहीं छुटा सकता हूं इससे मैं तुमसे पूछता हूं कि तुम्हारे पास ऐसी क्या विद्या है या क्या वरदान है जिससे तुममें इतना पराक्रम है ४ । ६ मैं जानता हूं कि मनुष्य का सब पराक्रम असत्य है जो तुमने मेरा दश सहस्र हाथी का बल नष्ट कर दिया ७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उस सर्प ने अक्लिष्टकारी वीर भीमसेन की बात सुनकर अपने बड़े

शरीर से उसको चारों ओर से लपेट लिया और उसकी मोटी भुजाओं को छोड़कर उससे कहने लगा ८ । ९ कि हे महाबाहो ! आज बहुत दिनों के पीछे मुझ भूंखे को प्रारब्ध और देवताओं की कृपा से भोजन मिला है भाई ! सब देहधारियों को अपने अपने प्राण प्यारे हैं मुझको जिस प्रकार से यह सर्पदेह मिली है वह सब मैं तुमसे कहता हूं सुनो १० । ११ हे शत्रुदमन ! यह अवस्था मेरी महर्षियों के शाप से हुई है इससे मैं अब उस शाप का अन्त करने की इच्छा से सब वृत्तान्त तुमसे कहता हूं १२ मैं आपके वंश में उत्पन्न नहुष नामी राजऋषि तुम्हारे पुरखाओं का पुरखा हूं तुमने भी मेरा नाम सुना होगा मैंने ब्राह्मणों का अपमान किया था उसके कारण से मुझे अगस्त्यजी ने शाप दिया और उस शाप से मेरी यह गति हुई तुम मेरे इस प्रारब्ध को देखो और इस होनहार को भी ध्यान करो कि यद्यपि तुम मारने के योग्य नहीं हो क्योंकि हमारे वंश में उत्पन्न होने के कारण से तुम हमारे प्रियदर्शन पुत्र हो परंतु मैं तुम को मारकर भक्षण करना चाहता हूं १३ । १५ हे नरोत्तम ! जब छठवां काल अर्थात् मेरे भोजन का समय आता है तब हाथी, भैंसा या कोई जीव हो मेरे वश में आकर मुक्त नहीं हो सकता है १६ सो हे भीम ! तुम केवल यही मत समझो कि मुझको एक तिर्यग्योनि के सर्प ने पकड़ा है किन्तु मुझे वरदान भी है १७ जिस समय मैं इन्द्रासन से नीचे को गिराया गया था उस समय मैंने भगवान् अगस्त्यजी से प्रार्थना की थी कि महाराज ! इस शाप के अन्त होने का समय नियत कीजिए १८ तब उन तेजस्वी कृपालु ऋषि ने मुझसे कहा था कि हे राजन् ! थोड़े काल के व्यतीत होने पर तुम शाप से छुट जाओगे १९ यह सुनकर मैं पृथ्वी पर आन पड़ा और इस अवस्था में प्राप्त हो गया परंतु मेरी स्मृति अर्थात् याद नहीं गई मुझको सब पहिला वृत्तान्त ज्यों का त्यों याद बना रहा २० अब मुझे याद है कि अगस्त्यजी ने यह भी कहा था कि जो आत्मा और अनात्मा का ज्ञान रखनेवाला पुरुष तेरे कहे हुए प्रश्नों का उत्तर देगा वही तुझको इस शाप से छुटावेगा २१ और यह भी वरदान दिया था कि जिस प्राणी को तू पकड़ लेगा उसका बल शीघ्र नष्ट हो जायगा चाहे वह कैसा ही बलवान् हो २२ यह कहकर ब्राह्मण अन्तर्द्धान हो गये और मैं महापापी इस सर्प की योनि से नरक में पड़ा हुआ शाप के अन्त होने के काल की बाट देख रहा हूं २३ । २४ यह सुनकर महाभुजशाली भीमसेन बोला

कि हे महासर्प ! मैं न अपनी निन्दा करता हूं न तुम पर क्रोध करता हूं २५ क्योंकि मनुष्य को दुःख और सुख के मिलने अथवा नष्ट होने से सामर्थ्यहीन अथवा सामर्थ्यवान् होकर ग्लानि करना उचित नहीं है प्रारब्ध को उपाय से कोई नहीं मेट सकता है मनुष्य का पुरुषार्थ निष्फल है मेरी समझ में तो जो कुछ है सो दैव अर्थात् प्रारब्ध है २६ । २७ देखो, यह प्रारब्ध ही की मन्दता का कारण है जो मेरी भुजाओं का बल नष्ट हो गया और विना कारण मेरी यह गति हुई २८ मुझको अपने मरने का कुछ शोच नहीं है परंतु राज्यहीन और वन में छोड़े हुए भाइयों का शोच मुझे मारे डालता है २९ वे विह्वल होकर इस दुर्गम और यक्ष, राक्षसों से व्याप्त हिमालय पर्वत पर मुझको ढूंढ़ते फिरेंगे ३० और मुझे नष्ट हुआ सुनकर राज्य के मिलने के प्रयत्न को छोड़ देंगे क्योंकि मैं ही उन धर्मात्मा और शीलवानों को राज्य के मिलने का यत्न करने की पीड़ा दिया करता था ३१ अथवा उनको महात्मा अर्जुन के कारण से दुःख न होवे क्योंकि वह सब अस्त्रों का ज्ञाता और देवता, गन्धर्व और राक्षसों से अनाधृष्य है और ऐसा महाबली है कि इन्द्र को भी अकेला ही इन्द्रासन से गिरा सकता है उसको दुर्योधन से ज्वारी, द्वेषी, घमण्डी और मोह से भरे हुए मनुष्य को जीतना कितनी बड़ी बात है ३२ । ३४ परंतु मुझको बड़ा शोच अपनी दुःखी माता का है जो अपने पुत्रों के महत्त्व को सदैव दूसरों से अधिक होना चाहा करती है ३५ सो हे सर्प ! मेरे मारे जाने से मेरी उस अनाथा माता के सब मनोरथ निष्फल हो जायँगे ३६ और नकुल सहदेव जो प्रतिष्ठावान् गुरुभक्त और मेरी भुजाओं के बल से रक्षित रहते हैं मेरे नाश होने से उत्साहहीन और निर्जीव हो जायँगे इस प्रकार से भीमसेन बहुत-सा विलाप करता रहा परंतु उस सर्प से दबा हुआ होने के कारण हिलझुल भी न सका ३७ । ३९ इसी अवसर में युधिष्ठिर अपने निवासस्थान के निकट बहुत से खोटे और घोर उत्पातों को देखकर व्याकुल हो गया दक्षिण दिशा में आश्रम के पास डरी हुई गीदड़ी भयानक और अकल्याणसूचक शब्द से रोने लगी ४० । ४१ और वर्तिका नाम पक्षी जिसके एक पक्ष एक नेत्र और एक ही टांग थी सूर्य के सम्मुख बैठकर रुधिर वमन करने लगी ४२ वायु रूखी तीक्ष्ण और कङ्कड़ लिये हुए चलने लगी और सब मृग पक्षी दाहिनी ओर बोलने लगे ४३ पीठ की ओर से काले वर्ण का काक चल चल ऐसा शब्द

सुनाने लगा और युधिष्ठिर की दाहिनी भुजा वारंवार फड़कने लगी ४४ हृदय और बायां चरण घूमने लगा और बायां नेत्र भी फड़कने लगा ४५ इन सब बातों को देखकर युधिष्ठिर ने अनुमान किया कि कोई भय प्राप्त होनेवाला है यह अनुमान करके उसने द्रौपदी से पूछा कि भीमसेन कहां है ४६ द्रौपदी बोली कि महाराज! वह बहुत देर से कहीं को गया हुआ है यह सुनकर युधिष्ठिर धौम्य पुरोहित को साथ लेकर चल दिये और अर्जुन को द्रौपदी की ओर नकुल और सहदेव को ब्राह्मणों की रक्षा के लिये छोड़ गये ४७। ४८ आगे जाकर युधिष्ठिर भीमसेन के जाने के मार्ग को अनेक चिह्नों से पहिंचानकर उस महावन में भीमसेन को पूर्व दिशा में ढूंढ़ना प्रारम्भ किया और वहां उसको पृथ्वी पर पड़े हुए बड़े गजेन्द्र और भीमसेन के पैरों के चिह्न मिले ४९।५० उनको देखता हुआ वह आगे को बढ़ा और वहां उसे सहस्रों मृग और सैकड़ों मृगेन्द्र मरे हुए पड़े मिले ५१ उनको और बहुत से टूटे हुए वृक्षों को जो भीमसेन की जंघा से गिर गये थे देखकर युधिष्ठिर बढ़ता हुआ उस वन में चला गया और एक गुफा के निकट जा पहुँचा जहां बड़ी रूखी वायु चल रही थी और वृक्षों में पत्ते न थे वहां उसने एक ऐसे निर्जल और ऊसर स्थान पर जो बहुत नीचा-ऊंचा और अनेक पत्थर वा कटीले छोटे पेड़ों से भरा हुआ था भीमसेन को सर्प से लपेटा हुआ और पृथ्वी पर निश्चेष्ट पड़ा हुआ देखा॥ ५२। ५४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७९॥

एकसौ अस्सीवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर और उस सर्प का जिसने भीमसेन को ग्रस लिया था आपस में प्रश्नोत्तर होना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर अपने प्यारे भाई को सर्प से लपटा हुआ देखकर कहने लगा कि हे भीमसेन! तुम इस विपत्ति में कैसे आ पड़े और यह पर्वत के समान सर्प कौन है १। २ यह सुनकर भीमसेन ने आदि से लेकर सब वृत्तान्त अपने भाई युधिष्ठिर से वर्णन किया और कहा कि यह नहुष नामी राजऋषि है मुझको इसने भोजन करने के लिये ग्रस लिया है ३। ४ यह सुनकर युधिष्ठिर ने उस सर्प से कहा कि हे आयुष्मन्! कृपा करके तुम मेरे इस अमित पराक्रमी भाई को छोड़ दो मैं तुम्हारी क्षुधा दूर करने के लिये दूसरा पदार्थ भोजन के लिये दूँगा ५ यह सुनकर सर्प बोला

कि यह राजपुत्र मुझको आहाररूप ही मिला है और मेरे मुख में चला गया है अब तुम यहां से चले जाओ नहीं तो कल तुमको भी भोजन करूंगा ६ हे तात ! मेरा यह व्रत है कि जो कोई मेरे इस देश में आता है वह मेरा आहार होता है तुम भी यहां आये हो इससे तुम भी मेरे आहार होगे यह तेरा भाई मुझको बहुत दिनों के पीछे भोजन करने को मिला है मैं इसको छोड़ नहीं सकता हूँ और न दूसरा आहार इसके बदले में चाहता हूँ ७। ८ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि हे सर्प ! मैं युधिष्ठिर हूँ तुमसे पूछता हूँ कि तुम कौन हो देवता हो या दैत्य हो या उरग हो मुझसे सत्य सत्य कहो तुमने भीमसेन को किसलिये ग्रसा है ९ हे सर्प ! तुमको क्या लाकर दिया जावे या क्या तुमको बताया जावे अथवा कौन सा भोजन तुम्हारी भेंठ किया जावे जिसको ग्रहण करके तुम प्रसन्न हो और इसको छोड़ दो १० यह सुनकर वह सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर मैं नहुष नामी राजा तुम्हारा पुरखा हूँ और चन्द्रवंश में चन्द्रमा से पांचवें राजा आयु का पुत्र हूँ ११ मैंने अपने यज्ञ, तप, वेदपाठ, दम और पराक्रम से तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था १२ और उस ऐश्वर्य को पाकर मैं ऐसा मदान्ध और घमण्डी हो गया था कि मैंने अपनी पालकी सहस्र ऋषियों से उठवाई उस ब्राह्मणों के अपमान से अगस्त्यजी ने मुझे शाप दिया और उस शाप से मैं इस गति को पहुँचा १३।१४ परन्तु हे पाण्डव ! महात्मा अगस्त्यजी की कृपा से अभी तक मेरा ज्ञान और मेरी बुद्धि नष्ट नहीं हुई है १५ यह तुम्हारा भाई मुझको छठे पहर में भोजन के निमित्त मिला है मैं इसको छोड़ नहीं सकता हूँ और न इसके बदले में दूसरा भोजन चाहता हूँ १६ परंतु जो तुम मेरे पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर यथावत् दे दोगे तो अलबत्ता तुम्हारे भाई भीमसेन को छोड़ दूंगा १७ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि बहुत अच्छा, हे सर्प ! जो तुम्हारी इच्छा हो वह प्रश्न हमसे पूछो हम तुमको उसका उत्तर देंगे १८ तुम उन सब बातों को जानते हो जो ब्राह्मण को जानना उचित है तुम प्रश्न करो हम उसको सुनकर उसका उत्तर देंगे १९ यह सुनकर सर्प बोला बहुत अच्छा, हे राजन् ! बताओ संसार में ब्राह्मण किसको कहना चाहिये और वह पदार्थ क्या है ? जिसका जानना अवश्य उचित है तुम हमको बातों से चतुर दिखाई देते हो २० युधिष्ठिर बोले कि हे नागेन्द्र ! स्मृति का यह वाक्य है कि ब्राह्मण वह है जो सत्य-

वादी, दानी; क्षमावान्; शीलस्वभाव, हिंसा न करनेवाला; तपस्वी और कृपायुक्त हो २१ हे सर्प! जानने के योग्य पदार्थ केवल ब्रह्म हैं जो अचिन्त्य और सुख दुःख से रहित है जिसको पाकर मनुष्य को कर्मकृत भोग नहीं भोगने पड़ते हैं २२ सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर! संसार में ब्राह्मण आदि चार वर्ण हैं उन चारों का सत्य और वेद; प्रमाण और हितकारी है, परंतु जो सत्य आदि उक्त गुण शूद्र में होयँ तो क्या वह शूद्र भी ब्राह्मण के समान हो सकता है और जो तुमने कहा कि जानने के योग्य पदार्थ ब्रह्म है जो सुख और दुःख से रहित है तो यह बताओ कि वह पद कौन है जो सुख और दुःख से हीन है मुझको ऐसा कोई पद दिखाई नहीं देता है २३। २४ युधिष्ठिर बोले कि हां, जो ब्राह्मण के लक्षण शूद्र में होयँ और शूद्र के ब्राह्मण में होयँ तो वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है किंतु शूद्रही है और वह शूद्रभी शूद्र नहीं है किंतु ब्राह्मण ही है २५।२६ और जो तुम कहते हो कि कोई पदार्थ जानने के योग्य नहीं है और न कोई पद ऐसा है जो सुख और दुःख से रहित है सो सब सत्य है निस्संदेह कोई पद सुख और दुःख से इस प्रकार खाली नहीं है जैसे शीत में उष्ण और उष्ण में शीत का अभाव होता है परंतु सुख और दुःख कर्म से उत्पन्न होते हैं और जहां कर्म का त्याग है वहां सुख और दुःख से रहित ज्ञानगम्य ब्रह्मरूपी निर्विकारपद है २७।२८ सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर! तुम कहते हो कि ब्राह्मण वही है जो ब्राह्मणों के धर्मपर चले तो जब तक अपना अपना कर्म न करे तबतक जाति का होना वृथा है ३० युधिष्ठिर बोला—हे सर्प! इस लोक में वर्णों की आपस में ऐसी मिलावट है कि जाति की परीक्षा होना कठिन है सदा से सब मनुष्य सब वर्णों की स्त्रियों से भोग करते हैं और उनके संतान उत्पन्न होती हैं और सबकी वाणी अर्थात् बोली और सबका मैथुन और जन्म-मरण एक ही समान है इससे तत्त्व के जाननेवाले महात्माओं ने आचार को ही प्रधान माना है सब मनुष्यों का जातकर्म करना नाल काटने से पहिले करना कहा है जिसमें माता सावित्रीरूप और पिता आचार्यरूप वर्णन किये हैं इससे जबतक मनुष्य का संस्कार वेद के अनुसार नहीं किया जाता है तबतक वह शूद्र के समान रहता है जाति में संशय होने के कारण से स्वायम्भुव मनुजी ने भी यह कहा है ३१। ३५ कि जो वेद के अनुसार संस्कार न किया जावे तो वह मनुष्य और वर्ण का अधिकारी नहीं हो सकता है अर्थात् शूद्र ही रहता है सो हे सर्प!, वर्णों की मिलावट

बड़ी बलवान् है विना संस्कार और आचार के उनका जानना कठिन है इसी कारण मैंने पहिले आचार से ही ब्राह्मण का होना कहा था ३६ । ३७ यह सुनकर सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर ! जो पदार्थ हमने जानने के योग्य तुमसे पूछा था वह तुमने हमसे यथावत् वर्णन किया अब हम तुम्हारे भाई भीमसेन को क्योंकर भक्षण कर सकते हैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

एकसौ इक्यासीवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिर का सर्प से अनेक प्रश्न पूछना, सर्प का दिव्य देह धारण करके स्वर्ग को चला जाना और युधिष्ठिर भीम और धौम्यसहित अपने आश्रम को लौट आना ।

युधिष्ठिर बोले—हे सर्प ! तुम वेद और वेद के अङ्गों के ज्ञाता हो यह बताओ कि मनुष्य को उत्तम गति किस कर्म के करने से मिलती है १ सर्प बोला कि मेरी समझ से मनुष्य को, पात्र को दान देने, मीठा बोलने, सत्य कहने और अहिंसा में प्रीति रखने से स्वर्गवास मिलता है २ युधिष्ठिर बोले अच्छा अब यह बताओ कि दान देना और सत्य बोलना इन दोनों में कौन सा धर्म बड़ा है और हिंसा न करना और मीठी बोली बोलना इनमें से कौन न्यून और कौन अधिक है ३ सर्प बोला कि हे राजेन्द्र ! दान, सत्य, ज्ञान, अहिंसा और मीठा बोलना इन पांचों की बड़ाई छुटाई कार्य की बड़ाई, छुटाई पर स्थित है कहीं दान से सत्य बड़ा गिना जाता है और कहीं सत्य से दान विशेष माना जाता है ४ । ५ इसी प्रकार से अहिंसा और प्रिय बोलना भी परस्पर कार्य के अनुसार एक दूसरे से बड़े छोटे समझे जाते हैं ६ निदान इनकी बड़ाई छुटाई कार्य पर है अब जो कुछ और तुमको पूछना है वह भी पूछो हम उत्तर देंगे ७ तब युधिष्ठिर बोला कि हे सर्प ! शरीर के छुटने पर मनुष्य को किस कर्म के फल से स्वर्ग मिलता है ८ । ९ सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर ! जीव को कर्म के अनुसार उत्तम, मध्यम और अधम, तीन प्रकार की गति मिलती है और वे तीनों गति ये हैं स्वर्गवास १ मनुष्ययोनि में जन्म २ और तिर्यग्योनि में जन्म ३ सो दान आदि शुभकर्म और हिंसा न करने से मनुष्य इस लोक को छोड़ स्वर्ग को जाता है १० और इनके विपरीत कर्म करने से मनुष्ययोनि मिलती है परंतु तिर्यग्योनि में जन्म होनेका कारण कुछ विशेष है वह यह है कि जो कोई काम, क्रोध, हिंसा, लोभ और मनुष्यभाव से भ्रष्टकर्म करता है उसको तिर्यग्योनि में जन्म लेना पड़ता है ११ । १२ तिर्य-

ग्योनि में जन्म लेने का पृथगभाव यह है कि मनुष्ययोनि में जन्म पावे परंतु गौ और घोड़ाआदि तिर्यग्योनि के जीव जो अहिंसक हैं देवभाव को भी प्राप्त होते हैं १३ सो हे युधिष्ठिर! जीवात्मा अपने कर्म के अनुसार उक्त तीनों गतियों में भ्रमण करता रहता है और ब्राह्मण उस आत्मा को ब्रह्म में लगाता है और वह जीवात्मा वारंवार जन्म लेकर अपने कर्म के फल को भोगता है और उस फल का संगी होकर संतान के जन्म और मरण के सुख और दुःख को देखता है १४ । १५ तब युधिष्ठिर बोले कि हे सर्प! अब यह कहो कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का आधार क्या है और इनके विषय का विचार एक साथ ही बुद्धि क्यों नहीं कर सकती है १६ । १७ सर्प बोला कि हे भरतसत्तम! जब इस देह का आत्मा बुद्धि से युक्त होता है तब वह इन्द्रियों का आधार होकर भोगों को भोगता है उनके भोगने में बुद्धि, मन और ज्ञान कारण होते हैं हे युधिष्ठिर! यह आत्मा इन्द्रियों के द्वारा जो विषयों के स्थान हैं मन सहित बाहर निकलकर क्रमपूर्वक अलग अलग विषयों को प्राप्त करता है और जीवात्मा को उन विषयों का अलग अलग विधान करनेवाला मन है अर्थात् मन एक समय में एक ही विषय की कांक्षा कर सकता है इस कारण से एकही साथ सब विषयों का ग्रहण नहीं हो सकता है १८ । २१ हे पुरुषोत्तम! जीवात्मा दोनों भौंहों के बीच में सदैव स्थित रहकर उत्तम और अधम बुद्धि को अनेक प्रकार के विषयों में प्रेरणा किया करता है इससे यह बुद्धि ही आत्मा का प्रकाश करनेवाली है २२ । २३ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हे सर्प! मन और बुद्धि का क्या लक्षण है इसको जानना ज्ञानियों का परम कार्य है २४ सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर! बुद्धि आत्मा के संग रहनेवाली है आत्मा ही के आश्रय है और आत्मा ही को चाहनेवाली है उसके उत्पन्न होने का स्थान विषयों का संयोग है और मन तो वासनारूप ही से उत्पन्न है बुद्धि उस वासना को बढ़ाती है इन दोनों अर्थात मन और बुद्धि में अन्तर इतना है कि बुद्धि में किसी गुण की विधि नहीं है और मन बुद्धिरूप गुण रखता है सो हे युधिष्ठिर! बुद्धि वा मन का लक्षण और अन्तर उक्त प्रकार से है तुम भी बुद्धिमान् हो कहो तुम इस विषय को किस प्रकार से मानते हो २५ । २७ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि तुम बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हो और बुद्धि तुम्हारी शुभ है और जो पदार्थ जानने के योग्य है उसको भी तुम जानते हो मुझे बड़ा आश्चर्य है

तुमने सर्वज्ञ होकर मुझसे क्यों ऐसा प्रश्न किया और स्वर्गवास पानेपर तुम्हारे मन में मोह ने क्योंकर प्रवेश किया २८। २९ यह सुनकर सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर! सुख और ऋद्धि ऐसे पदार्थ हैं कि इनके मिलने से बड़े बड़े ज्ञानी और शूरवीर भी मोहित होजाते हैं मेरा भी चित्त परम ऐश्वर्य के पाने से मोहित और मदोन्मत्त होगया था और जब स्वर्ग से गिरकर पृथ्वीपर आया तब मुझको चेत हुआ ३०। ३१ हे युधिष्ठिर! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया जो तुमसे साधु से संभाषण करने से मैं इस महाकष्टरूपी शाप से मुक्त हुआ ३२ अगले समय में मैं स्वर्ग में दिव्य विमान पर चढ़कर फिरा करता था और अपने अभिमान से मतवाला होकर किसी को कुछ न समझता था ३३ ब्रह्मऋषि, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प और सब त्रिलोकी के जीव मुझको कर देते थे ३४ हे पृथ्वीपते! मेरी दृष्टि में ऐसा बल था कि जिस प्राणी की ओर मैं देखता था उसी के तेज को शीघ्र ही हर लेता था ३५ सहस्र ब्रह्मऋषि मेरी पालकी को उठाकर ले चलते थे परंतु मेरी अनीति ने मुझे उस ऐश्वर्य से गिरादिया ३६ एकदिन ब्रह्मऋषि मेरी पालकी को उठाकर लिये जाते थे मैंने अपने दर्प से उस समय अगस्त्यजी को पैर से मारकर कहा कि (सर्प)! जल्दी चलो तब अगस्त्यजी ने क्रोधित होकर मुझको शाप दिया कि तू सर्प होकर पृथ्वी पर गिरपड़ ३७ तब मैं अकस्मात् पालकी में से गिरपड़ा स्वरूप मेरा सर्प का सा और मुख नीचे को होगया जब मैंने इस बात को जाना तब अगस्त्यजी से प्रार्थना की कि महाराज! इस शाप के अन्त होने का समय नियत कीजिये ३८ और मुझ अपराधी के अपराध को क्षमा कीजिये यह सुनकर अगस्त्यजी ने मुझपर कृपा की और गिरने के समय मुझसे कहा ३९ कि हे महाराज! तुझको धर्मराज युधिष्ठिर इस शाप से छुटावेगा और तू इस अभिमान और घोर पाप के फल को भोगकर फिर पुण्य के फल को भोगेगा उस ऋषि की तपस्या के बल को देखकर मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ ४०। ४१ इसी कारण से मैंने तुमसे ब्रह्म और ब्रह्मज्ञानियों के लक्षण कहे हैं पुरुषों के साधक केवल सत्य इन्द्रियों का जीतना तप और दान है जाति और कुल से स्वर्ग आदि नहीं मिल सकते हैं यह तुम्हारा भाई भीमसेन प्रसन्न रहे और तुम्हारा कल्याण हो अब मैं स्वर्ग को फिर जाता हूं ४२। ४३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह सर्प उक्त प्रकार से कह कर और दिव्य स्वरूप धारणकर-

के स्वर्ग को चलागया ४४ और युधिष्ठिर भीमसेन से मिलकर धौम्य पुरोहित सहित अपने आश्रम को लौटआया ४५ वहां आकर युधिष्ठिर ने सब वृत्तान्त ब्राह्मणों से कहा वे ब्राह्मण और द्रौपदी और नकुल, सहदेव, अर्जुन उसको सुनकर बहुत लज्जित हुए ४६ । ४७ इसके पीछे उन ब्राह्मणों ने भीमसेन के साहस की निन्दा की और उसको उपदेश किया कि फिर ऐसा करना तुमको उचित नहीं है ४८ और पाण्डवों ने महाबलवान् भीमसेन को भय से मुक्त देख कर प्रसन्नतापूर्वक उस वन में विहार किया ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

एकसौ बयासीवाँ अध्याय।

पाण्डवों का वर्षाकाल में पर्वतों पर रहना और कार्त्तिक पूर्णिमा में काम्यक वन को चलना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उसी वन में पाण्डवों के वास करते करते सब जीवों को सुखदेनेवाला और ग्रीष्म का अन्त करनेवाला वर्षाकाल आगया १ और चारों दिशाओं से काले काले बादल उमड़ उमड़कर गर्जने लगे और आकाश में मण्डलाकार हो होकर रात्रि दिन जल वर्षानेलगे बिजली उन मण्डलाकार मेघों में सूर्य की प्रभा के समान चमकने लगी और पृथ्वी जल से भीगकर ठंढी होने हरी हरी घास के ऊपर उगने और मतवाले सर्प और डांसों से युक्त होने के कारण से बड़ी मनोहर दीखने लगी २ । ४ चारों ओर जल के भरजाने से यह नहीं जाना जाता था कि पृथ्वी कहां सम है कहां विषम है कहां नदी है और कहां स्थल है ५ और वन वहां के उन नदियों के चढ़ने से जो बड़े अर्राटे के साथ बाण के समान वेग से बहती थीं परम शोभायमान होगया ६ उसमें वाराह मृग और पक्षी अनेक प्रकार की बोलियां बोलने लगे और चातक, मोर, कोकिला और मतवाले मेढक चारों ओर फिरने और मधुर मधुर ध्वनि सुनाने लगे ७ । ८ पाण्डव उस कल्याणरूपी वर्षाकाल में पर्वत के सूखे सूखे स्थानों में रहा किये जब वर्षा व्यतीत होगई तब आनन्दरूपी शरदृऋतु आई जिसमें वन और पर्वतों के शिखर अनेक प्रकार की घासों से सुशोभित होगये नदियों का जल शुद्ध और निर्मल होगया ९ । १० आकाश और नक्षत्र विमल होगये और रात्रि शीतल, रजरहित और चन्द्रमा और नक्षत्रों से प्रकाशित होने लगी पशु पक्षी समूह के समूह विचरने लगे

पाण्डवों को यह ऋतु बड़ी कल्याणरूपी दीखती थी ११। १२ और वे सुन्दर नदी और पुष्करणियों पर जिनमें कुमुद और पुण्डरीक नामी कमल खिले हुए थे विहार करनेलगे १३ और उनका चित्त उस कल्याणरूपी सरस्वती नदी को देखकर जिसका जल निर्मल पुण्यकारी और अनेक प्रकार के वृक्षों से बड़ी शोभित होरही थी बड़ा हर्षित हुआ १४। १५ इस प्रकार से रहते रहते जब कार्त्तिकशुक्ल पौर्णमासी की रात्रि आई तब पाण्डवों ने सब तपस्वियों सहित रथोंपर भार लदवाया और उस रात्रि के व्यतीत होनेपर प्रातःकाल सब समाजसहित काम्यक वन को चलदिये॥ १६। १८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८२॥

एकसौ तिरासीवाँ अध्याय।

पाण्डवों का काम्यक वन में पहुँचकर आये हुए श्रीकृष्णजी और सत्यभामा से वार्तालाप करना और मार्कण्डेय ऋषि का युधिष्ठिर के पूछने पर जीवात्मा के कर्मानुसार सुख और दुःख भोगने का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पाण्डव काम्यक वन में पहुँचकर द्रौपदी सहित रहने लगे, उस वन के तपस्वियों ने पाण्डवों का आतिथ्य किया और वहां उनके पास चारों ओर से बहुत से ब्राह्मण आये उनमें से एक ब्राह्मण ने पाण्डवों से कहा कि अर्जुन के प्यारे सखा श्रीकृष्णजी जो स्वतन्त्र और बुद्धिमान् हैं और तुम्हारा कल्याण चाहते हैं तुम्हारे यहां आने का हाल सुनकर तुमको देखने के लिये आनेवाले हैं १। ४ और मार्कण्डेयजी महाराज जो बड़े तपस्वी हैं और जिनकी बड़ी आयु है वे भी शीघ्र तुमसे यहां आकर मिलेंगे ५ उस ब्राह्मण के इतना कहने पर श्रीकृष्णजी का रथ आता हुआ दीख पड़ा जिसमें शैब्य और सुग्रीवनामी घोड़े जुते हुए थे और श्रीकृष्णजी उसमें सत्यभामा सहित इस प्रकार से बैठेहुए शोभा देते थे मानो इन्द्र अपनी इन्द्राणी सहित बैठेहुए हैं ६। ७ जब वह रथ समीप आया तब श्रीकृष्णजी प्रसन्न होकर रथ से उतर पड़े और युधिष्ठिर और भीमसेन को नमस्कार कर धौम्य पुरोहित के पास जाकर उन्होंने उनकी पूजा की नकुल और सहदेव ने श्रीकृष्णजी को नमस्कार किया फिर श्रीकृष्णजी द्रौपदी को सान्त्वन करके बहुत दिनों के पीछे अपने प्रियमित्र अर्जुनको देखकर उससे वारंवार मिले ८। १० इसी प्रकार से श्रीकृष्णजी की प्यारी पटरानी सत्यभामा भी पाण्डवों की प्रियभार्या

द्रौपदी से मिली ११ इसके पीछे पाण्डवों ने द्रौपदी और धौम्य पुरोहितसहित कमललोचन श्रीकृष्णजी की पूजा की और कुशल क्षेम पूछी १२ उस समय श्रीकृष्णजी वीर अर्जुन से मिलकर इस प्रकार से सुशोभित हुए मानो भगवान् रुद्र कार्त्तिकेयजी सहित विराजमानहैं १३ इसके उपरान्त अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से सब वन का वृत्तान्त वर्णन किया और पूछा कि सुभद्रा और अभिमन्यु कैसे हैं १४ यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने अर्जुन, द्रौपदी और धौम्य पुरोहित की पूजा की और युधिष्ठिर की इस प्रकार से प्रशंसा करनेलगे १५ कि हे युधिष्ठिर! राज्यलाभ से धर्मलाभ उत्तम है और धर्म का मूल तप है सो तुमने उस धर्मको पकड़कर अपने सत्य और सीधेपन से यह और पर दोनों लोक अपने वश में कर लिये १६ इसके सिवाय तुमनें व्रत किये वेद पढ़े धनुर्वेद सीखा क्षत्रियधर्म से धन संचय किया और पुराने पुराने यज्ञ किए १७ हे नरेन्द्र! हम यह भी देखते हैं कि तुम्हारी प्रीति ग्राम्यधर्मों में अर्थात् मैथुनादि में लेशमात्र नहीं है न तुम कोई शुभकर्म किसी कामना से करते हो और न अर्थ के लोभ से अपने धर्म को छोड़ते हो इसी कारण से तुम धर्मराज हो १८ हे राजन्! देखो, जब तुमको बहुत से देश बहुत सा धन और बड़े बड़े भोग प्राप्त थे तब भी तुम्हारी प्रीति दान, सत्य, तप, श्रद्धा, क्षमा और धृति आदि में ही रहती थी १९ जिस समय कुरुजाङ्गल देश के मनुष्यों ने द्रौपदी का अपमान सभा में देखा था उस समय यह तुम्हाराही काम था जो ऐसे धर्म व्यवहार से विपरीत अन्याय को धर्म जान कर सहगये २० अब तुम शीघ्रही सब कामनाओं से युक्त होकर प्रजा का पालन करोगे और तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होने पर हम निस्संदेह कौरवों को निग्रह करने का यत्न करेंगे २१ इसके पीछे श्रीकृष्णजी ने धौम्य पुरोहित, युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव औरद्रौपदी से कहा कि बड़े प्रारब्धकी बात है जो अर्जुन अस्त्र सीखकर कल्याणपूर्वक आप लोगों से आन मिला २२ इसके अनन्तर श्रीकृष्णजी याज्ञसेनी द्रौपदी से कहने लगे कि तू बड़ी प्रारब्धिनी है जो अर्जुन स्वर्ग से आया और तू उससे मिली २३ हे द्रौपदि! तेरे सब पुत्र सुशील हैं और धनुर्वेद के पढ़ने सीखने और सत्पुरुषों केसे काम करने में प्रीति रखते हैं २४ और तेरे भाई और पिता ने उन बालकों को राज्य और देश देने कहे परंतु वे वहां नहीं रहे किन्तु धनुर्वेद सीखने को आनन्द के साथ द्वारिका को चले आये और यादवों से धनुर्वेद सीखने लगे अब वे द्वारका में सुभद्रा के

पास रहते हैं और सुभद्रा उनका पालन उसी प्रकार से करती है जैसे तू और कुन्ती दोनों करती थीं और प्रद्युम्न भी उनको धनुर्वेद की शिक्षा उसी प्रकार से देता है जैसे अनिरुद्ध, अभिमन्यु, सुनीथ और भानु को शिक्षा करता है २५ । २८ और आलस्य छोड़ कर उन शूरवीरों को गदा, खड्ग और ढाल का पकड़ना अस्त्रों का चलाना और घोड़े आदि पर सवार होकर युद्ध करना बहुत अच्छी तरह सिखाता है २९ और प्रद्युम्न, अभिमन्यु और तेरे पुत्रों को शस्त्रों की शिक्षा करके उनके पराक्रम को देख देखकर बहुत प्रसन्न होता है ३० हे द्रौपदि ! जब कभी तेरे पुत्र किसी स्थान को विहार करने को जाते हैं तब उनके साथ में रथ, घोड़े, पालकी और हाथी बराबर जाते हैं ३१ श्रीकृष्णजी द्रौपदी से उक्त प्रकार की बातें कहकर युधिष्ठिर से बोले कि हे राजन्! दशार्ह, कुकुर और अन्धक देश के योद्धा तुम्हारी आज्ञा का पालन किया चाहते हैं जहां तुम आज्ञा करो तहां वे रहें और उनकी सब चतुरङ्गिणी सेना जिसके नियन्ता बलदेवजी हैं सज अर्थात् तैयार रहकर धृतराष्ट्र के पापी पुत्र दुर्योधन को सब साथियों सहित यमलोक में पहुँचाना चाहती हैं ३२ । ३४ सो हे नरेन्द्र ! तुम अपने उसी प्रणपर बने रहो जो तुमने सभा में किया था और जहां मन हो तहां विहार करो दशार्हदेशी योद्धा हस्तिनापुर के योद्धाओं को मारकर तुम्हारी बाट हस्तिनापुरमें देखते रहेंगे जब तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुको तब हस्तिनापुर को चले आना ३५ । ३६ यह सुनकर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी की प्रशंसा की और उनके मत को विचार कर हाथ जोड़कर कहा ३७ कि हे केशव ! तुम पाण्डवों की गति हो और हम सब तुम्हारी ही शरण हैं निस्संदेह समय के आने पर तुम ऐसा ही करना ३८ अब हम सब को इस निर्जन वन में बारह वर्ष बीत गये और एक वर्ष अज्ञात रहने को और रह गया है उसके समाप्त होने पर हम सब आपकी शरण लेंगे ३९ हे केशव ! अब भी आपही की शरण में हैं ईश्वर करे आपकी ऐसी ही बुद्धि सदा बनी रहे ४० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जिस समय श्रीकृष्णजी और युधिष्ठिर उक्त प्रकार से वार्त्तालाप कर रहे थे उसी समय मार्कण्डेयजी महाराज जो बड़े तपस्वी सहस्रों वर्ष की आयु रखनेवाले, धर्मात्मा अजर और अमर थे वहां आये उस समय उनकी अवस्था पच्चीस वर्ष की सी दीखती थी उनको देखकर श्रीकृष्ण और पाण्डव और सब ब्राह्मण खड़े होगये और सब ने आदर

सहित उनको बैठाकर उनकी पूजा की जब वे भगवन्माया में दृढ़ विश्वास रखनेवाले महात्मा बैठगये तब श्रीकृष्णजी ने सब ब्राह्मण और पाण्डवों के मत के अनुसार उनसे विनय की ४१। ४४ कि महाराज ! मैं सत्यभामा द्रौपदी और पाण्डव और ये सब ब्राह्मण यहां आपके मुखारविंद से श्रेष्ठ वचन सुनने के लिये इकट्ठे हुए हैं सो आप कृपा करके अगले समय के वृत्तान्तों की कथा और राजऋषियों के सदाचारों को वर्णन कीजिये ४५। ४६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उसी समय वहां देवऋषि नारदजी भी पाण्डवों को देखने की इच्छा से आये ४७ उन पुरुषोत्तमों ने पाद्य और अर्घ्य देकर न्याय के अनुसार उनकी पूजा की ४८ नारदजी उस पूजा को ग्रहण करके बैठ गये और पाण्डवों को कथा सुनने के लिये निमन्त्रित जानकर उन्होंने मार्कण्डेयजी से उस कथा की प्रशंसा की उसी समय काल के ज्ञाता श्रीकृष्णजी ने भी मन्द मन्द मुसकराकर मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज ! अब आप जो कथा पाण्डवों से कहना चाहते हैं कहिये ४९। ५० यह सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि अच्छा ठहरो हम एक बड़ी कथा वर्णन करेंगे ५१ यह सुनकर पाण्डव ब्राह्मणोंसहित एक क्षण भर चुपके बैठे रहे औरमध्याह्न समय के सूर्य के सदृश प्रकाशमान उस महामुनि की ओर देखते रहे ५२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! क्षण भर के उपरान्त जब मार्कण्डेयजी कथा कहना चाहते ही थे कियुधिष्ठिर ने उनसे कथा प्रारम्भ करने के लिये यह कहा ५३ कि महाराज ! आप पुराने ऋषि हैं आपने देवता, दैत्य, महात्मा, ऋषि और सब राजऋषियों के चरित्र देखे हैं ये देवकी के पुत्र श्रीकृष्णजी जो हमारे उपास्य और सम्मत हैं और जिनको देखने के लिये मेरे मन में बहुत दिनों से लालसा लग रही थी मुझे देखने को यहां आये हैं सो महाराज अपने को दुःखी और धृतराष्ट्र के दुर्वृत्त पुत्रों को सब ऐश्वर्यसम्पन्न देखकर मेरी बुद्धि इस संशय में पड़ी हुई है ५४। ५६ कि जब मनुष्य शुभ और अशुभ कर्म दोनों आपही करता है और उन कर्मों का फल भी वही भोगता है तो फिर ईश्वर क्योंकर करता है ५७ हे ब्रह्मवेत्ताओं में वरिष्ठ ! सुख अथवा दुःख का होना यही कर्मों का फल है मनुष्य उस फल को इस देही से अथवा और शरीर से अवश्य भोगता है सो हे महाराज ! मैं आपसे पूछता हूँ कि जीवात्मा इस शरीर को छोड़कर इसलोक अथवा परलोक में अपने कर्मों के अनुसार शुभ अथवा

अशुभ कर्म क्योंकर करता है और भोगता है और उसके वे अलौकिक अर्थात् परलोकसम्बन्धी कर्म कहां रहते हैं ५८। ६० यह सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह प्रश्न तुम्हारे पूछने और जानने के योग्य है हम जानते हैं कि तुम इसको जानते हो परंतु तुमने यह प्रश्न हमसे संसार के हित के लिये पूछा है ६१ अच्छा अब तुम चित्त को एकाग्र करके सुनो हम इसलोक और परलोक में मनुष्य के सुख और दुःख भोगने का हाल वर्णन करते हैं ६२ सबसे पहिले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे उन्होंने देहधारियों के निर्मल और शुद्ध शरीर धर्मतन्त्ररूपी बनाये थे ६३ उस समय के वे मनुष्य सफल संकल्प अर्थात् जो बात चाहें वही तत्काल मिल जाय और सुव्रत सत्यवादी ब्रह्मपारायण और पुण्यरूप होते थे और अपनी इच्छा के अनुसार स्वर्ग को चले जाते थे और वहां देवताओं से मिलकर फिर लौट आते थे ६४। ६५ जब उनकी इच्छा होती थी तभी शरीर को छोड़ देते थे और इच्छा के अनुसार जहां चाहें तहां जा सकते थे बाधा उनको बहुत कम व्यापती थी और उपद्रव से भी रहित होते थे ६६ देवता और महात्मा ऋषियों का दर्शन करते थे सब धर्मों को देखते थे और जितेन्द्रिय होकर मत्सरता से हीन होते थे ६७ आयु उन मनुष्यों की सहस्रों वर्ष की होती थी और पुत्र भी सहस्रों ही होते थे परंतु जब दूसरा समय आया तब वे ही पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी और मोह करनेवाले होनेलगे और अपनी जीविका छल और कपट से करने लगे तब उस अशुभ कर्म के प्रभाव से वे पापी पशु पक्षी आदि नरकरूपी अनेक योनियों में जन्म ले लेकर अशुभ कर्म को भोगने लगे और उनके इष्टसंकल्प अर्थात् मन की कामना और ज्ञान निष्फल होने लगे और सब अज्ञानी होकर सब बातों में शङ्का करने लगे और दुःखदायी हो गये ६८।७१ कुल भी उनके नष्ट होने लगे और कालान्तर में वे सब रोगी, दुरात्मा, अशुभकर्मी, अल्पआयु, पापी, अनेक कामना रखनेवाले, रौद्रकर्मी अर्थात् कतल आदि अपराधों के करनेवाले नास्तिक और निर्बुद्धि हो गये ७२।७३ सो हे युधिष्ठिर! देह त्यागने पर मनुष्य की गति केवल कर्मों ही के द्वारा होती है अर्थात् देह छोड़ने पर जैसा जो कर्म करता है वैसा ही उसको फल मिलता है और जो तुमने यह प्रश्न किया है कि ज्ञानी और अज्ञानी मनुष्यों के पुण्य और पापकर्मों का कोष अर्थात् खज़ाना कहां रहता है और ज़ीवात्मा उस पुण्य और पाप को

कहां भोगता है उसका भी निर्णय सुनो ७४ । ७५ इस शरीर के दो रूप हैं एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म जो लिङ्गशरीर कहलाता है सो मनुष्य उस देवता के रचे हुए लिङ्गशरीर से शुभ और अशुभ कर्मों को इकट्ठा करता रहता है जब उसकी आयु पूरी होजाती है तब वह सूक्ष्मशरीर जीवात्मा इस स्थूल शरीर को त्याग कर तत्काल दूसरी योनि में जन्म ले लेता है और उसके किये हुए कर्म उसके साथ छाया के समान चले जाते हैं और यमराज उस जीवात्मा को उन्हीं कर्मों के अनुसार सुख अथवा दुःखरूपी फल देता है और उस फल को उसे अवश्य भोगना पड़ता है ७६ । ७६ हे युधिष्ठिर ! यह गति हमने केवल अज्ञानियों की कही है अब ज्ञानियों की उत्तमगति का भी हाल सुनो ८० ज्ञानी मनुष्य तपस्या करते हैं, शास्त्र की मर्य्यादा पर चलते हैं, व्रतको स्थिरता से करते हैं और सत्यवादी, गुरुभक्त, सुशील, धर्मात्मा, क्षमावान्, जितेन्द्रिय, तेजस्वी, पवित्र योनि में उत्पन्न होनेवाले, शुभ लक्षणों से युक्त, सतोगुणी, आरोग्य, अल्पदुःखी और भय और उपद्रव से रहित होते हैं ८१ । ८३ और स्वर्ग से गिरकर गर्भ में वास करके जब उत्पन्न होते हैं तब अपने ज्ञानचक्षुओं से अपने आत्मा और परमात्मा को जान लेते हैं ८४ ऐसे महात्मा ऋषि जिनकी बुद्धि शास्त्र के अनुसार होती है इस कर्म भूमिपर जन्म लेकर फिर स्वर्गलोक को चले जाते हैं ८५ और संसारी जीवों को वह स्वर्ग किसी को दैव इच्छा से किसी को हठ से और किसी को कर्म करने से प्राप्त होता है ८६ हे युधिष्ठिर ! यह बात भी परमकल्याण करनेवाली है सुनो कोई मनुष्य तो ऐसे होते हैं कि उनको इसलोक में तो सुख मिलता है परंतु परलोक में कुछ नहीं मिलता है और कोई ऐसे होते हैं कि उनको परलोक में सुख मिलता है इस लोक में नहीं मिलता है किसी को दोनों लोकों में सुख मिलता है और किसी को न इसलोक में सुख मिलता है न परलोक में ८७ । ८८ देखो, संसार में जो मनुष्य धनवान् हैं और सदा अच्छा खाते। पहिनते और सुखसे रहते हैं उनको इस लोक में तो सुख ही है परंतु परलोक में सुख नहीं मिलता है ८६ और जो पुरुष योगी, तपस्वी, वेदपाठी, जितेन्द्रिय और हिंसारहित हैं उनको परलोक में सुख मिलता है परंतु इसलोक में नहीं मिलता है ६० और जो प्रारंभ से ही धर्म पर चलते हैं और धर्म से धन इकट्ठा करके अपना विवाह करके यज्ञादिक करते हैं उनको इसलोक और परलोक दोनों में सुख मिलता है ६१

और जो अज्ञानी हैं और विद्या नहीं पढ़ते हैं और तप और दान भी नहीं करते और न पुत्रों को उत्पन्न करने का यत्न करते हैं वे सुख नहीं पाते हैं उनको इसलोक और परलोक दोनों में सुख नहीं मिलता है ६२ सो हे युधिष्ठिर! तुम सब देवताओं का काम करने के लिये स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आये हो और बड़े पराक्रमी, तेजस्वी, दृढ़, विद्यावान्, शूरवीर, तपस्वी, जितेन्द्रिय, बड़े कर्मठी, देवता, ऋषि, पितरों को तृप्त करनेवाले और पुण्यात्मा हो तुम सबको क्रमपूर्वक स्वर्गवास मिलेगा यह थोड़े दिनोंका क्लेश केवल सुखका उदय करने के लिये है इसको देखकर तुम किसी बात में विशेष शङ्का मत करो॥६३।६५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८३॥

एकसौ चौरासीवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से ब्रह्मघाती हैहयदेश के एक राज का इतिहास वर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे पाण्डवों ने मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज! हमलोग मुख्य मुख्य ब्राह्मणों का माहात्म्य सुना चाहते हैं, आप कृपा करके कहिये यह सुनकर महातेजस्वी महातपस्वी और सर्वशास्त्रज्ञाता मार्कण्डेयजी बोले १।२ कि हैहयवंश में एक बड़ा शूरवीर और स्वरूपवान् बलवान् राजकुमार था एक दिन वह अहेर खेलने को मूँज, काँस, घास और लताओं से घिरे हुए वन में गया वहां उसने एक मुनि को जो काले हरिण का चर्म ओढ़े हुए थे देखा और वह उनको घास में छिपे होने के कारण से हरिण समझकर मारकर गिरादिया जब वह कमललोचन राजकुमार उनके पास गया और देखा कि मृग नहीं है किंतु मुनि मारे गये हैं तब उसको बड़ा दुःख हुआ और वह शोक में अचेतसा होकर अपने हैहयदेश को लौटकर चला आया और उस देश के सब बुद्धिमान् राजाओं से सब वृत्तान्त कहा ३।६ हे तात! वे राजा लोग भी उस फल और मूल भोजन करनेवाले मुनि के मारे जाने का हाल सुनकर महादुःखी हुए और इस बात को जानने के लिये कि वह मुनि कौन और किसका पुत्र था वे सब वन को चले आये और उस मरे हुए मुनि को ढूंढ़ने लगे ढूंढ़ते ढूंढ़ते वे कश्यपगोत्री अरिष्टनेमि नामक ऋषि के आश्रम में पहुँचे ७।८ और वहां उस नियतव्रती महात्मा मुनि को दण्डवत् करके बैठ गये उस ऋषि ने उनका आदर सत्कार करके उनकी पूजा करनी चाही परंतु सब बोले कि हे महामुने! हम लोग कर्मदोष के कारण आपसे पूजा के

योग्य नहीं हैं हमारे हाथ से ब्राह्मण मारा गया है ९ । १० यह सुनकर वह ऋषि बोला कि तुम्हारे हाथ से वह ब्राह्मण कैसे मारा गया और अब वह मरा हुआ कहां है हमको यह सब बताओ और हमारे तप के बल को देखो ११ यह सुनकर उस महात्मा से उन राजाओं ने सब वृत्तान्त कहसुनाया और वे उस मुनि को साथ लेकर वन में उस मरे हुए मुनि के ढूंढ़ने को गये परंतु वह निर्जीव मुनि उनको कहीं नहीं मिला इससे वे सब अचेत और लज्जित होगये तब अरिष्टनेमि ऋषि ने हँसकर कहा १२।१३ कि हे राजाओ! देखो, वह ब्राह्मण जो तुम्हारे हाथ से मारा गया था यह है यह मेरा पुत्र है और तप का बल रखता है १४ हे राजन्! उसको देखते ही वे सब राजा चकित से होगये और आश्चर्य आश्चर्य कहकर बोले कि महाराज! यह आपके बुलाने से क्योंकर जी उठा वह कौनसा तप है जिसके करने से मरा हुआ मनुष्य फिर जी जाता है १५ । १६ हे महाराज! हम उसको सुना चाहते हैं जो वह सुनने के योग्य हो तो वर्णन कीजिये यह सुनकर उस मुनि ने उत्तर दिया कि हे नरपालको! हम लोगों को मृत्यु नहीं जीत सकती है कारण न जीतने का यही है कि हम लोग सदैव सत्य बोलते हैं झूठ को जानते भी नहीं और अपने धर्म पर चलते हैं और जो बात ब्राह्मणों की कुशल करनेवाली होती है उसे ब्राह्मणों से कह देते हैं और उनके दुराचारों का किसी से नाम भी नहीं लेते और अतिथियों को अन्नदान और भृत्यों को भोजन आदि से संपन्न करके जो शेष रह जाता है उसी को हमलोग भोग लगाते हैं १७ । २० और क्षमाशील और शान्तस्वभाव रखकर इन्द्रियों का दमन करते हैं और पुण्यदेशों में वास करके तीर्थों पर दान देते हैं २१ हमारे ऐसे आचार तेजस्वी पुरुषों के देश में रहने के कारण से हैं हे राजाओ! मृत्यु के जीतने का पहले समस्त कारण हमने तुमलोगों से कहा है अब तुम सब जाओ तुमको ब्राह्मण के मारने का पाप न लगेगा २२ हे भरतसत्तम! यह सुनकर वे सब राजालोग उस महर्षि को दण्डवत् करके बहुत अच्छा कहते हुए प्रसन्नता के साथ अपने अपने स्थानों को चले आये २३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

एकसौ पचासीवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से राजा वैन्य के यज्ञ में अत्रिऋषि के जाने और धन लाने का वृत्तान्त कहना।

मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डवो! अब दूसरी कथा ब्राह्मणों के माहात्म्य

की वर्णन करते हैं सुनो वैन्यनामी एक राजऋषि थे उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने की दीक्षा ली थी १ अत्रिऋषि ने उस यज्ञ में जाकर धन लाने की इच्छा नहीं की परंतु पीछे यह विचार करके कि धर्म का फल चाहने से धर्म नष्ट हो जाता है इसलिये वहां नहीं गये फिर उस महातेजस्वी ने वन में ही रहना अच्छा विचार कर अपनी स्त्री और पुत्रों को बुलाकर कहा कि अब हमारा विचार वैन्य के यज्ञ में जाने का नहीं है यहाँ वन में रहकर तपस्या करने से हमलोगों को मोक्ष मिलेगा जो सब उपद्रवों से रहित है इससे तुमलोग भी वनवास ही की रुचि रक्खो २ । ४ यह सुनकर धर्म का ही अनुसरण करती हुई उनकी स्त्री बोली कि महाराज ! आप महात्मा वैन्य राजऋषि के पास जाकर बहुतसा धन लाइये ५ हे विप्रर्षे ! वह हमारा यजमान है उससे मांगने पर वह कभी धन देने से निषेध नहीं करेगा सो आप जाकर धन ले आइये और उसको सेवक और पुत्रों को देकर फिर इच्छा के अनुसार वनवास का विचार कीजियेगा धर्म के ज्ञाताओं ने यही परमधर्म कहा है ६ । ७ यह सुनकर अत्रिऋषि बोले कि हमसे महात्मा गौतम ऋषि ने कहा था कि राजा वैन्य सत्यव्रती और धर्मात्मा है परंतु उसके पास द्वेषसे भरेहुए ब्राह्मण रहते हैं इस कारण से गौतमऋषि के कहने के अनुसार मैं वहां जाना नहीं चाहता हूं क्योंकि जो मैं वहां जाकर कोई बात कल्याणकारक और धर्मयुक्त कहूंगा उसको वे ब्राह्मण विपरीत और निरर्थक बतावेंगे ८ । १० परंतु हे महाप्राज्ञे ! मुझे तेरा भी कहना करना है इससे मैं वहां जाता हूं और मुझे निश्चय है कि राजा वैन्य बहुतसा धन और गौ देगा ११ यह कहकर अत्रि ऋषि चल दिये और राजा वैन्य की यज्ञशाला में पहुँचकर राजा को यह मङ्गलीय स्वस्त्ययन सुनाया कि हे राजन् ! तू धन्य है ईश है और तू भूतल में नृप अर्थात् मनुष्यों का रक्षक है और इस पृथ्वी पर प्रथम है मुनियों के समूह के समूह तेरी स्तुति करते हैं और तुझसे बढ़कर कोई धर्म का जाननेवाला नहीं है यह सुनकर उस यज्ञशाला में से एक गौतम ऋषि नामी ब्राह्मण ने अत्रिऋषि से क्रोधित होकर कहा १२ । १४ कि हे अत्रि ! तुम फिर ऐसे शब्द मत कहना तुम्हारी बुद्धि सावधान नहीं है हमारा सबका प्रथम पुरुष और रक्षक इन्द्र है १५ अत्रि बोले कि हे गौतम ! तुम मोह से मोहित होरहे हो और बुद्धि भी तुम्हारी अल्प है यह राजा भी इन्द्र और प्रजापति के समान विधाता है १६ गौतम बोले कि मैं कदापि मोहित नहीं हूं मैं सब जा-

जानता हूं मोहित तो तुमही होरहे हो जो धन के लिये जनों की समाज में राजा की इस प्रकार से स्तुति करते हो १७ तुम अभी न परम धर्म को जानते हो न प्रयोजन को पहचानते हो तुम्हारी बुद्धि तो मूढ़ और बालकों की सी है तुम्हारे बाल वृथा ही श्वेत होगये हैं १८ मार्कण्डेयजी बोले हे पाण्डवो ! जब उन दोनों में इस प्रकार से बहुत विषाद बढ़ा तब उस यज्ञ में जो ब्राह्मण बुलाये हुये आये थे वे पूछने लगे कि ये दोनों आपस में कैसा विवाद कर रहे हैं और क्या चाहते हैं इनको राजा वैन्य की सभा में किसने घुसने दिया है जो ये चिल्ला चिल्लाकर कलह कर रहे हैं १९।२० उस समय एक काश्यपनामी ऋषि ने जो सब धर्मों का ज्ञाता था उनके पास जाकर विवाद करने का कारण पूछा उसको सुनकर गौतमऋषि ने उस यज्ञ के सदस्यों से कहा कि हे द्विजसत्तमो ! अत्रि ने राजा वैन्य की स्तुति विधाता कहकर की है उसको सुनकर हमको बड़ा संदेह हुआ है मार्कण्डेयजी बोले हे पाण्डवो ! यह सुनकर वे सब मुनि संदेह मिटाने के लिये सनत्कुमारजी के पास गये जो धर्म के परम ज्ञाता थे और उनसे सब वृत्तान्त कहा उसको सुनकर सनत्कुमारजी धर्मसे कहने लगे २१।२४ कि हे मुनियो ! जब ब्रह्मकुल क्षत्रीकुल से और क्षत्रीकुल ब्रह्मकुल से मिलजाता है तब वे दोनों कुल मिलकर शत्रुओं का नाश इस प्रकार से कर देते हैं जैसे अग्नि और वायु मिलकर सब वन को भस्म कर डालते हैं २५ और राजा भी निश्चय धर्मरूप और धर्म का स्थापन करनेवाला है और प्रजा का स्वामीहै इससे राजाही इन्द्र अर्थात् रक्षक और शुक्र अर्थात् नीति का जाननेवाला और धाता अर्थात् जनकरूप और बृहस्पति अर्थात् हित का उपदेशक है २६ इससे जो राजा की स्तुति प्रजापति,विराट्,सम्राट्,क्षत्रिय,भूपति और नृप आदि शब्दों से की जाय तो कौन ऐसा होगा जो उनको न मानेगा २७ राजा को पूर्वयोनि अर्थात् धर्म को प्रवृत्त करने के कारण से प्रथम कारण और युधाजित् अर्थात् संग्राम में जय करने से उपद्रवों की शान्ति करनेवाला और भव अर्थात सबकी रक्षा करके स्वर्ग में पहुँचानेवाला और सत्य की उत्पत्ति का स्थान और सत्यधर्म का प्रवृत्त करनेवाला कहते हैं और ऋषियों ने अधर्म के डर से क्षत्रियकुल को अपने तपका बल दिया है जिससे राजा पृथ्वी पर अधर्म को इस प्रकार से नाश करता है जैसे सूर्य अपने तेज से अन्धकार को दूर करता है २८।३० इससे और शास्त्र के प्रमाण से राजा की प्रधानता सिद्ध होती है इससे राजा को

विधाता कहना अनुचित नहीं है जिसने राजा की स्तुति इस शब्द से की है उसका पक्ष सिद्ध है ३१ मार्कण्डेयजी बोले हे पाण्डवो! उस पक्ष के सिद्ध होने पर राजा वैन्य ने प्रसन्न होकर अत्रिऋषि से कहा कि हे महाराज! आपने मुझको मनुष्यों में बड़ा बनाकर देवताओं के तुल्य पदवी दी है इससे मैं आपको सर्वज्ञ जानता हूं इसलिये आपको एक सहस्र श्यामा दासियां जो सुन्दर वस्त्र और गहने पहिरे हुए हैं और दशकोटि सोना और दश भार चांदी के देता हूं आप उसको लीजिये ३२ । ३५ यह सुनकर अत्रिऋषि उस सब धन को लेकर अपने घर को चले आये और उसे पुत्रों को दे शुद्धात्मा होकर तपस्या करने के लिये वन को चले गये ॥ ३६ । ३७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

एकसौ छियासीवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से सरस्वती और तार्क्ष्यऋषि के आपस में प्रश्नोत्तर होने का वृत्तान्त कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे परपुरंजय, वीर, युधिष्ठिर! अब हम तुमसे तार्क्ष्यमुनि और सरस्वती देवी का संवाद वर्णन करते हैं १ एक समय तार्क्ष्यऋषि ने सरस्वती से पूछा कि हे भद्रे! इस संसार में मनुष्य का कल्याण करनेवाला क्या पदार्थ है और कर्म करने का वह कौनसा प्रकार है जिसको आचरण करने से मनुष्य अपने धर्म से नहीं हटता है मैं इस सबको साङ्गोपाङ्ग सुना चाहता हूं जिससे मैं भी उसी प्रकार से कर्म करूं और धर्म से चलित न होऊं २ और यह भी जानना चाहता हूं कि अग्नि का पूजन किस प्रकार से और किससमय होना चाहिये और होम करना कब उचित है और वह कौनसा कर्म है जिससे धर्म का नाश न हो हे देवि! यह सब वृत्तान्त मुझसे कहो जिससे मैं उसीप्रकार करके सुन्दर लोक पाऊं ३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! उस उत्तम बुद्धि तार्क्ष्यऋषि के पूछने पर सरस्वती देवी इस प्रकार से धर्मोपदेशक और हितकारी बातें कहने लगी ४ कि जो मनुष्य सदैव सावधानी और पवित्रता से वेदपाठ और जप करता है और ब्रह्म को सर्वव्यापी जानता है वही देवलोक पाता है और देवताओं की प्रीति भी उसीसे होती है ५ उस देवलोक में बड़ी पवित्र और रमणीक शोक के दूर करनेवाली पुष्करिणी बनी हुई हैं उनमें निर्मल जल है सुन्दर सुन्दर मछलियां हैं और सुनहरे कमल फूले हुए हैं पुण्यभोगी पुरुष

अच्छी तरह अलंकृत और सुवर्ण का सा वर्ण रखनेवाली अप्सराओं से पूजित होकर उन पुष्करिणियों के तटपर वास करते हैं ६ । ७ गोदान करनेवाले को परमलोक और बैलदान करनेवाले को सूर्यलोक और वस्त्रदान देनेवाले को चन्द्रलोक और सुवर्ण के दानी को अमरलोक मिलता है ८ और जो कोई मनुष्य ऐसी गौका दान करता है जो दूध देती हो बछड़ा रखती हो और भागती न हो वह स्वर्गलोकमें इतने वर्षतक वास करता है जितने उस गौ के रोम होते हैं ९ और जो कोई ऐसे बैल को दान देता है जो सीधा, बलवान्, युवा और हलवाहक हो उसको वे लोक मिलते हैं जो दश गोदान करनेवाले को प्राप्त होते हैं १० और जो कोई कपिला गायको वस्त्र और कांसे की दोहनी और दक्षिणासहित दान देता है उसको वह गाय कामधेनु के स्वरूप से स्वर्गलोक में मिलती है ११ और उस गाय के जितने रोम होते हैं उतने ही गोदान करने का फल मनुष्य को होता है और वह गाय दानकर्ता के पुत्र, पौत्र और कुलकी सातवीं पीढ़ी तक को स्वर्गलोक में पहुँचाती है १२ और जो कोई गोदान दक्षिणा सुनहले सींग और कांसे की दोहनी और अन्य अन्य देनेके योग्य धनसहित करता है उसको वसुओं के लोक सुलभ होजाते हैं १३ जो मनुष्य अपने कर्मों से उस नरक में गिराया जाता है जिसमें बड़े बड़े दानव रहते हैं और अँधेरे से पूर्ण है उसको गोदान उस नरक से इस प्रकार पार लगा देताहै जैसे समुद्र में नौका वायु के सहारे से उतर जाती है १४ और जो मनुष्य ब्राह्मविवाह से कन्यादान करताहै अथवा वेदपाठी ब्राह्मण को पृथ्वीदान देताहै या और कोई दान विधिपूर्वक करता है उसको इन्द्रलोक मिलताहै १५ हे तार्क्ष्य! जो कोई सातवर्षतक नियमसे अग्नि में होम करता है वह अपने आप और सात अगली और सात पिछली पीढ़ियों को तारता है १६ यह सुनकर तार्क्ष्य ऋषि बोले कि हे शारदे, हे देवि! मैं अग्निहोत्र के पुराने व्रत को जानना चाहताहूं कृपा करके कहो कि वह व्रत क्या है १७ यह सुनकर सरस्वती बोली कि वेद के और वेदार्थ के न समझनेवाले और अपवित्रात्मा अशुद्ध हाथपांव रखनेवाले मनुष्यों को अग्निमें हवन करना उचित नहीं है क्योंकि देवता श्रद्धाहीन और अपवित्र पुरुष की दी हुई हविको ग्रहण नहीं करते हैं १८ और जो ब्राह्मण वेदपाठी नहीं है उसकी दी हुई आहुति निष्फल होजाती है इससे मनुष्य को उचित है कि हवन करानेवाले ब्राह्मण के गोत्र आदि को पूछकर

यह बात निश्चय करले कि वह वेद पढ़ा है या नहीं और जो वेद न पढ़ा हो तो उससे हवन न करावे क्योंकि वेदशून्य ब्राह्मण को अग्नि में आहुति देना उचित नहीं है १९ जो मनुष्य धन का गर्व न करके सत्यव्रत होकर श्रद्धा से अग्नि में होम करते हैं और जो कुछ हवन में शेष रह जाता है उसी को भोजन करते हैं वे गोलोक को जाते हैं और उनको ब्रह्माजी और परब्रह्म का दर्शन मिलता है २० यह सुनकर तार्क्ष्यऋषि बोले कि हे सुन्दररूपधारिणि ! हे बड़भागिनि ! तुझको प्रज्ञा देवी जानकर मैं पूछताहूं कि तू कौन है तू बुद्धि में आत्मस्वरूप से प्रविष्ट होकर परमात्मस्वरूप है २१ सरस्वती बोली कि मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणों का संदेह दूर करने के लिये अग्निहोत्र से निकली हूं और अपना यह सच्चा वृत्तान्त मैंने तुझसे केवल तेरे भक्तिभाव को देखकर कहाहै २२ तार्क्ष्यऋषि बोले कि हे सुभगे ! तेरे समान कोई नहीं है तू लक्ष्मी के समान अत्यन्त सोहती है और प्रज्ञा देवी को धारती है इसलिये तेरा यह स्वरूप बड़ा दिव्य अत्यन्त कान्ति रखनेवाला है २३ सरस्वती बोली कि हे विप्र ! मन्त्र और द्रव्य आदि जो कुछ यज्ञों के अङ्ग हैं उन्हींसे मैं वृद्धि पाती हूं और स्वरूपवती होजातीहूं २४ हे तार्क्ष्य ! समिध सौवर्ण और यव आदि जो कुछ यज्ञद्रव्य हैं उनको दिव्यबुद्धि धारण करके तू मेरी आत्मा ही का स्वरूप समझ २५ तार्क्ष्य बोले हे सरस्वति ! मैं उस शोकरहित और सबसे श्रेष्ठ परम मोक्षरूप को नहीं जानता हूं जिसमें केवल ज्ञानियों की ही गति होती है और जिसको मुनिलोग परम कल्याण जान कर अपनी इन्द्रियों का निरोध करते हैं तू कृपा करके उस मोक्षरूप को मुझसे वर्णन कर २६ सरस्वती बोली कि जो जीवन्मुक्त और शोकरहित पुरुष वेद के ज्ञाता होते हैं और अहिंसा आदि व्रत और जप आदि पुण्यकर्म करके तपरूपी धन रखते हैं वेही उस सबसे श्रेष्ठ और सबसे परे उस पुराण ब्रह्म को जो सच्चिदानन्दरूप से विख्यात है पाते हैं २७ और जिस अवस्था में वे उस परमात्मा को पाते हैं वही अवस्था मोक्षका स्वरूप है उसी परमात्मा में सहस्रशाखासम्पन्न अर्थात् भोगों के स्थानों सहित गन्धवान् अर्थात् धर्म और ज्ञान वैराग्ययुक्त एक वेतसवृक्ष अर्थात् संसाररूपी वृक्ष है उस वृक्ष की जड़ से नदियां निकलती हैं अर्थात् भोगों की वासना उत्पन्न होती हैं और उसीसे मीठे जल के झरने झरते हैं अर्थात् सुख प्राप्त होता है २८ और उसी वृक्ष की शाखाओं में पुत्र पौत्रादि के विषय से युक्त धान

और यव गेहूं आदि अन्न और अपूप आदि सच्छिद्र पक्व भोजन मांस शाक और खीर आदि अनेक स्वादिष्ठ भोजनरूपी कीच रखनेवाली अनेक नदियां बहती हैं तात्पर्य यह है कि यह संसार जिसकी उपमा वृक्ष से दी है परमात्मा के अन्तर्गत है परंतु जो मनुष्य उस संसार के नदीरूपी विषय और भोगों में लिप्त होकर सिकता अर्थात् रजरूपी पुत्र पौत्रादि में मिलकर कीचरूपी स्वादिष्ठ पदार्थों को ही भोजन करना प्रिय जानते हैं उनका वस्त्ररूपी चित्त उस कीच और रज से मलिन रहता है इससे वे उस परमात्मा को नहीं देख सकते हैं २९ हे तार्क्ष्य ! जिस परमात्मा की प्राप्ति के लिये अग्नि आदि देवताओं ने इन्द्र और मरुद्गणों सहित बड़े बड़े यज्ञ उक्त संसाररूपी वृक्ष में किये हैं वही मुझ विद्यारूप सरस्वती का परमपद अर्थात् प्राप्त होने का स्थान है३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

एकसौसत्तासीवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से वैवस्वतमनु का उपाख्यान कहना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज ! हम वैवस्वत मनु का चरित्र सुना चाहते हैं वर्णन कीजिये १ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! बहुत अच्छा, सुनिये, मनुजी सूर्य के पुत्र थे महाप्रतापी और ब्रह्माजी के समान तेजस्वी थे २ और ऐसे पराक्रमी शोभायमान तेजस्वी तपस्वी थे कि इन गुणों से उन्होंने अपने पिता और प्रपितामह को भी उल्लंघन किया ३ उन्होंने विशाला बदरीनाम आश्रम में जाकर दशसहस्रवर्ष तक बड़ी उग्र तपस्या की थी पहिले तो कुछ दिनोंतक एक पैरसे खड़े होकर ऊपर को बाहु उठाये हुए तपस्या की उपरान्त अधोमुख होगये और विना पलकमारे बड़ाघोर और दृढ़ तप किया ४ । ५ उसी तप की अवस्था में एक दिन चीरणी नदी के तटपर एक मत्स्य ने आकर उनसे कहा कि हे भगवन्, महाराज ! मैं एक छोटी सी मछली हूं मुझको नदी की बड़ी बड़ी मछलियों से बड़ा भय रहता है क्योंकि हमारी सदैव की यही जीविका है कि बड़ी मछली छोटी मछली को खाजाती है आप कृपा करके उन बड़ी मछलियों से मेरी रक्षा कीजिये मैं भी उसके बदले में आपका प्रत्युपकार करूंगी ६ । ९ यह मछली का वचन सुनकर मनुजी ने दया विचार कर उस मछली को हाथ में उठालिया और जल से

भरेहुए रत्नपात्र में छोड़दिया १० वह मछली सत्कृत होकर उस पात्र में रहने लगी और मनुजी को भी उससे पुत्र के सदृश प्रीति होगई कुछ काल में वह मछली बढ़ते बढ़ते इतनी बड़ी होगई कि उस पात्र में न समासकी ११ । १३ तब उसने मनुजी से कहा अब मेरे लिये दूसरा स्थान नियत कीजिये १४ यह सुनकर मनुजी ने उसको रत्नपात्र से निकालकर एक बड़ी बावड़ी में पहुँचा दिया १५ वहां वह मछली रहा की और बहुत से वर्ष बीतनेपर इतनी बड़ी हो गई कि उस बावड़ी में भी न आसकी यद्यपि वह बावड़ी दो योजन लम्बी और एक योजन चौंड़ी थी १६ । १७ हे कौन्तेय ! तब उस मछली ने फिर मनुजी से कहा कि महाराज ! अब मुझको समुद्र की पटरानी गङ्गाजी में पहुँचा दीजिये वहां मैं सुखपूर्वक रहूंगी अथवा जो कोई और स्थान आप उचित समझें वहां ले चलिये मैं वहां ही रहूंगी मुझको आपकी आज्ञा मानना अवश्य उचित है क्योंकि आपके कारण से मैंने बड़ी वृद्धि पाई है १८ । २० यह सुनकर मनुजी उसको लेगये और गङ्गाजी में छोड़ आये कुछ दिनों में वह वहां रहते रहते और बड़ी होगई और वहां भी सुखपूर्वक न रहसकी तब उसने फिर मनुजी से कहा कि हे भगवन् ! अब मैं गङ्गाजी में भी सुखपूर्वक नहीं रह सकती हूं कृपा करके मुझको समुद्र में पहुँचाइये २१ । २३ हे पार्थ ! यह सुनकर मनुजी उस मछली को उठा कर लेगये और समुद्र में छोड़दी २४ वह मछली बड़ी थी परंतु जब मनुजी उसको उठाकर ले चले तब वह इतनी बड़ी होगई जितनी कि मनुजी ले जा सकते थे और उसके शरीर में से बड़ी सुगन्ध आती थी २५ जब मनुजी ने उसको समुद्र में छोड़ दिया तब वह मुसकुराती हुई उनसे कहनेलगी २६ कि हे भगवन्, मनुजी ! तुमने सबप्रकार से मेरी बड़ी रक्षा की है अब जो कार्य तुमको करना उचित है उसको मैं कहती हूं सुनो २७ अब लोकों के प्रक्षालन होने का समय आन पहुँचा है सो थोड़े ही दिनों में प्रलय होगी और उसमें सब भूमिसम्बन्धी चर और अचर जीवों का नाश होजायगा इसमें मैं तुम्हारे हित के लिये तुमको उपदेश करती हूं २८ । २९ कि हे महामुने ! तुम एक बड़ी दृढ़ नाव बनवा रक्खो और उसमें एक बड़ी दृढ़ रस्सी भी बांध रक्खो जब वह प्रलय काल का समय आवे तब तुम सप्तऋषियों सहित सब संसारी बीजों को लेकर उस नाव पर चढ़जाना और मेरे आने की बाट देखना मैं उसीसमय वहां एक बड़ा सींग धारण कियेहुए आऊंगी तुम मुझको

उसी सींग से पहिंचान लेना बिना मेरे तुम्हारी नाव प्रलय काल के महाजल में तर न सकेगी ३०।३४ हे जननायक ! इसबात को तुम निश्चय समझना इसमें किसी प्रकार की शङ्का न करना यह सुनकर मनुजी बोले कि बहुत श्रेष्ठ मैं ऐसाही करूंगा उपरान्त वे दोनों आपस में एक दूसरे को पूछकर इच्छा के अनुसार चलेगये इसके पीछे हे महाराज ! मनुजीने उस मछली के कहने के अनुसार नाव बनवाई और जब प्रलयकाल आया तब सब बीजोंको लेकर उसी नावमें बैठगये जब समुद्र बढ़ा और नाव पृथ्वीसे उठकर तैरनेलगी तब मनुजी ने उस मछली को याद किया उनके याद करते ही वह मछली बड़ा भारी सींग धारण कियेहुए पर्वताकार ऊंची उठी हुई वहां आन पहुँची उसे देखकर मनुजी ने तुरन्त नाव में लगी हुई रस्सी का फंदा बनाकर उस मछली के सींग में डाल दिया उससे वह नाव उस सींग में बँधगई और वह मछली उस नाव को महासमुद्र में बड़े वेग से खैंचती हुई फिरने लगी ३५।४२ हे परपुरंजय ! उससमय समुद्रमें जल के गिरने का बड़ा अर्राटा होता था और लहरें ऐसी ऊंची ऊंची उठती थीं कि उनसे समुद्र नाचता हुआसा जान पड़ता था और वह नाव उस समुद्रमें महावायु के कारण से मतवाली स्त्री के सदृश नाचती थी थोड़े काल में सब दिशा विदिशा और स्वर्ग आकाश नष्ट होकर जलरूप होगये और चारों ओर अन्धकार वर्तमान होगया उससमय में केवल मनुजी और सप्तऋषि उसमछली समेत रहगये और सब पदार्थ नष्ट होगये वह मछली उस नाव को कई वर्ष तक उस महासमुद्र में खैंचे खैंचे फिरा की उपरान्त उसको खींचकर वहां लेगई जहां हिमालय पहाड़ का बड़ा ऊंचा शिखर है वहां पहुँचकर हँसतीहुई उस मछली ने सप्तऋषियों से कहा ४५।४८ कि अब देर मत करो इस नाव को इस पहाड़ के शिखर से बांध दो यह सुनकर हे भरतश्रेष्ठ ! सप्तऋषियों ने झटपट उस नाव को हिमालय पहाड़ के उस शिखर से बांधदिया वह शिखर अबतक नौ बन्धन नाम से विख्यात है इसके उपरान्त उस मछली ने उन ऋषियों से कहा कि मैं ही वह सबसे बड़ा ब्रह्मा हूं और जिसका दर्शन नहीं मिलता है वह भी मैं ही हूं मैंने मछली का स्वरूप धारण करके तुम सबको इस भय से छुटाया है ४६।५२ अब मनु को उचित है कि वह देवता असुर और मनुष्य आदि सब चर और अचर प्रजाको उत्पन्नकरे उसको प्रजा के उत्पन्न करने का ज्ञान तपसे होगा और मेरी कृपा से प्रजा के उत्पन्न करने में उसे मोह नहीं होगा ५३।५४ यह कहकर वह

मछली अन्तर्धान होगई और मनुजी ने प्रजाको उत्पन्न करनेका विचार किया परन्तु उनको यह ज्ञान नहीं हुआ कि प्रजा किस प्रकार से उत्पन्न की जावे तब उन्होंने बड़ी तपस्या की और उस तपस्या के प्रभावसे सबप्रजाकी रचना यथावत् की हे युधिष्ठिर ! हमने यह मात्स्यक नामी पुराण वर्णन किया है जो पापोंको दूर करनेवाला है जो कोई इस मनुजी के चरित्र को नित्य पढ़ेगा अथवा सुनेगा उसके सब मनोरथ पूरे होंगे और उसको सुन्दर लोक मिलेंगे ॥ ५५ । ५८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

एकसौ अट्ठासीवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से महाप्रलय का वृत्तान्त कहना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उक्त कथा को सुनकर धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरने विनयपूर्वक फिर यशस्वी मार्कण्डेयजी से पूछा १ कि हे महामुने ! महात्मा, परमेष्ठी ब्रह्माजी के सिवाय इस संसार में आपके समान किसी की आयु नहीं है जब सहस्र युग व्यतीत होजाते हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन पूरा होता है सो आपने तो ब्रह्माजी के अनेक दिन देखे होंगे २ । ३ हे विप्रजी ! जब प्रलय होता है और आकाश, देवता और दानव आदि सबका नाश हो जाता है तब ब्रह्माजी के पास आप ही केवल रहते हैं ४ और जब वह प्रलयकाल समाप्त होजाता है और ब्रह्माजी जगकर सृष्टि की रचना करते हैं तब भी आप ही अकेले सब उत्पन्न होनेवाले जीवों को देखते हैं ५ हे विप्रर्षे ! जिस प्रकार से ब्रह्माजी सब दिशाओं को वायुरूप करके और जहां तहां जल फैलाकर जगत् की रचना करते हैं उस सबको भी आपने देखा है ६ हे द्विजोत्तम ! आपने समाधि में तत्पर होकर जगद्गुरु ब्रह्माजी का आराधन किया और संपूर्ण ब्रह्माण्ड को अनेक उपायों से आत्मा तुल्य करके घोर तपस्या के प्रभाव से ब्रह्माजी को जीत लिया है ७ । ८ आप नारायण के समीप रहनेवाले हैं और पूर्वकाल में आपने भगवान् ब्रह्माजी के उत्पन्न होने के स्थान दिव्य हृदयकमल को खोल कर अन्तर दृष्टि से विश्व के रचनेवाले परब्रह्म के स्वरूप को बहुत बार देखा है ९ । १० हे विप्रर्षे ! इसी कारण से परमपदस्थायी ब्रह्माजी की कृपा से आपको बुढ़ापा और मृत्यु बाधा नहीं कर सकते हैं ११ और जब सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, देवता, असुर और सब जड़ और चैतन्य जीव नाश होकर एकार्णव होजाता है और शेषजी प्रकट होते हैं और सब

जीवों के ईश्वर ब्रह्माजी कमल पर शयन करते हैं तब आपही अकेले उनको देखते हैं १२ । १४ हे द्विजोत्तम ! यह सब पुरातन वृत्तान्त आपने अपने नेत्रों से देखा है इससे मैं सबके हित के लिये इस वृत्तान्त को सुना चाहता हूं मेरी समझ में सब लोकों में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसको आप न जानते हों १५ । १६ मार्कण्डेयजी बोले हे पुरुषोत्तम, युधिष्ठिर ! मैं उस जन्म-मरण से रहित निर्गुण और गुणात्मा अविनाशी पुरुषोत्तम को नमस्कार करके तुम्हारी पूछी हुई कथा को वर्णन करता हूं सृष्टि का रचनेवाला ब्रह्म ये ही पीताम्बरधारी जनार्दन हैं १७ । १८ ये ही कर्ता हैं ये ही अनेक रूप धारण करनेवाले हैं ये ही भूतात्मा हैं ये ही प्राणियों के प्रभु हैं इन्हींका रूप अचिन्त्य है ये ही पवित्र हैं ये ही आदि अन्त से रहित हैं ये ही विश्वरूप हैं ये ही अव्यय हैं ये ही अविनाशी हैं और ये ही सबके कर्ता और अपने आप प्रकट होनेवाले हैं १९ । २० हे राजसत्तम ! अपने आपको ये ही जानते हैं वेद भी इनको नहीं जान सकते हैं इन्होंने ही इस आश्चर्यरूपी जगत् को रचा है प्रलयकाल के व्यतीत होनेपर पहिले चार सहस्र दिव्य वर्षतक सत्ययुग रहता है उसके पीछे तीन सहस्र दिव्य वर्षतक त्रेतायुग और दो सहस्र दिव्य वर्षतक द्वापरयुग और एक सहस्र दिव्य वर्षतक कलियुग रहते हैं इन चारों युगों की संध्या और संध्यांश के काल का प्रमाण उतने ही उतने सौ वर्ष का है जितने जितने सहस्र वर्षों का प्रमाण प्रत्येक युग का है और इन दिव्य वर्षों का एक दिन संसारी एक वर्ष की बराबर होता है इस प्रकार से जब पहिले तीनों युग बीतजाते हैं और चौथे कलियुग का भी काल पूरा होजाता है तब सत्ययुग फिर आजाता है इस प्रकार से इन चारों युगों का प्रमाण बारह सहस्र दिव्य वर्षों का है २१ । २७ जब ऐसी ही ऐसी एक सहस्र चौकड़ी व्यतीत होजाती हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है उस दिन के अन्त में सब विश्व ब्रह्मलोक में जाकर लय होजाता है उसी ब्रह्मा के दिन की अवधि का नाम प्रलय है हे युधिष्ठिर ! जब चारों युगों की एक चौकड़ी पूरी होनेपर आजाती है और कलियुग थोड़ा सा रहजाता है २८ । २९ तब मनुष्य बहुधा मिथ्यावादी होने लगते हैं और यज्ञ दान और व्रत की प्रतिनिधि प्रवृत्त होती है ब्राह्मणलोग शूद्रों का काम करने लगते हैं और शूद्रलोग धन का संचय करते हैं ३० । ३१ और क्षत्रिय भी अपने धर्म से भ्रष्ट होजाते हैं हे तात ! ब्राह्मण यज्ञ, जप, दण्ड और मृगचर्म को

छोड़ कर सर्वभक्षी होजाते हैं और शूद्रलोग जप में तत्पर और ब्राह्मण जपके त्यागी होने लगते हैं ३२ । ३३ हे नरेश्वर! आंध्र, शक, पुलिन्द, यवन, काम्बोज, वाह्लिक, शूर और आभीर आदि म्लेच्छजातियों के मिथ्या आज्ञा देनेवाले पापी और मिथ्यावादी राजा होते हैं उस समय में कोई ब्राह्मण अपने धर्म से अपनी जीविका उपार्जन नहीं करता है ३४ । ३६ हे नराधिप ! विपरीत धर्म पर चलने से क्षत्रिय और वैश्य भी अल्पायु, अल्पपराक्रमी, अल्पवीर्यवान्, अल्पदेही और अल्पसार रखनेवाले होने लगते हैं और सत्य बहुत कम बोलते हैं और देश शून्य सा होकर दिशायें मृग और सर्पों से व्याप्त होजाती हैं ३७।३८ और ब्रह्मवादी धूर्त होने लगते हैं और शूद्रलोग ब्राह्मणों से नीच वचन और ब्राह्मणलोग शूद्रों से विनययुक्त वचन बोलने लगते हैं ३९ और बहुत से क्रूरकर्मी जीव होने लगते हैं और औषधियों में गन्ध और अन्न में स्वाद नहीं रहता है और स्त्रियां छोटी छोटी बहुत संतान रखनेवाली शील और आचार से रहित और मुखभगा अर्थात् लिङ्गको मुख में धारण करनेवाली होजाती हैं ४०।४१ और सब मनुष्य अन्न बेचनेवाले और ब्राह्मण वेद बेचनेवाले और स्त्रियां योनि विक्रय करनेवाली होने लगती हैं ४२ और गौवें बहुत थोड़ा दूध देने लगती हैं और वृक्ष भी कम फूलते फलते हैं और उन वृक्षों पर कागों का बास रहता है ४३ और ब्राह्मण ऐसे राजाओं का दान लेने लगते हैं जो ब्रह्महत्यारे झूठे लोभी कपटरूपी धर्म रखनेवाले और मोह से परिपूर्ण होते हैं ४४ । ४५ और दिशाओं के लोग भिक्षा के लिये ब्राह्मणों से पीड़ा पाने लगते हैं और कर के डर से गृहस्थी मनुष्य चोरी करने लगते हैं ४६ और ब्राह्मणलोग अपनी जीविका व्यापार से करते हैं और मुनियों कासा कपट वेष बनाकर झूंठ मूठ को नख और बाल बढ़ा लिया करते हैं ४७ और ब्रह्मचारी धन के लोभ से झूंठे आचार और मद्यपान करने लगते हैं और गुरु की शय्यापर सोते हैं ४८ और आश्रमीलोग अर्थात् ब्रह्मचारी और संन्यासी आदि बहुत सा पाखण्ड रचकर पराये अन्न के स्वाद बखान बखान कर ऐसे भोजन चाहने लगते हैं जिनके भक्षण से केवल मांस और लोहू शरीर में बढ़े ४९ और इन्द्र भी ऋतु के अनुसार वर्षा नहीं करते हैं न अन्न अच्छीतरह से उगता है और जो लोग पवित्र गिने जाते हैं वे भी हिंसा करते हैं ५०।५१ वह समय ऐसा होता है कि उसमें अधर्म करने का बड़ा फल गिना जाता है और धर्मात्मा मनुष्यों की बहुत थोड़ी आयु

होती है और कोई धर्म नहीं रहता है मनुष्य उस समय में बहुत से द्रव्यों को कपट के बाँटों से बेंचने लगते हैं व्यापारी महाकपटी होजाते हैं ५२ । ५३ और पापियों की वृद्धि होती है और धर्मात्मा नहीं बढ़ते हैं धर्म के बल की हानि होती है और अधर्म बलवान् होजाता है ५४ किन्तु धार्मिक पुरुष अल्पायु और दरिद्री होते हैं और धर्म को त्याग करनेवाले मनुष्यों की आयु बड़ी और ऐश्वर्य वृद्धियुक्त होता है और जहां जहां नगर के क्रीड़ा करने के स्थान होते हैं वहां व्यभिचारी मनुष्य रहते हैं और प्रजा अधर्म के अनेक उपायों से व्यवहार करने लगती है ५५ । ५६ और थोड़े से ही धन के होने से गर्वित होजाती है हे राजन् ! बहुत से मनुष्य पापाचार रखकर परस्पर विश्वासघात करके विश्वास पर रक्खे धन को हर लेने का उपाय करते हैं और निर्लज्ज होकर वेही मनुष्य रक्खे धन को नहीं कबूलते हैं ५७ । ५८ और देवताओं के मन्दिर और मनुष्यों के विहार करने के स्थानों में व्याघ्र आदि मनुष्यभक्षी जीव सोते हैं और सात, आठ वर्ष की स्त्रियों के गर्भ रहने लगता है और दश या बारह वर्ष की आयु में पुरुषों के पुत्र उत्पन्न होता है ५९ । ६० और सोलह वर्ष की अवस्था में मनुष्य वृद्ध होने लगते हैं और उनकी आयु बहुत शीघ्र क्षीण होजाती है ६१ तरुण पुरुषों का स्वभाव वृद्धों का सा और वृद्धों का शील तरुण पुरुषों का सा होने लगता है ६२ और स्त्रियां अपने योग्य पति को धोखा देकर पशुओं की भांति दासों से व्यभिचार कराने लगती हैं ६३ और वीरपत्नी स्त्रियां भी पति के विद्यमान होनेपर दूसरे मनुष्यों का आश्रय करके उनसे कुकर्म कराती हैं इस प्रकार से जब सहस्र युग के व्यतीत होने पर आयु क्षय होजाती है तब हे महाराज ! बहुत दिनों तक अकाल रहता है और मनुष्य अल्पसार और भूखे होने के कारण से नाश होजाते हैं ६४ । ६६ इसके पीछे बारहों सूर्य और सातों अग्नियां अपने उग्र तेज से सब नदी और समुद्रों के जल को शुष्क कर देती हैं ६७ हे भरतवंशिन् ! सब गीले और सूखे काठ और तृण भस्मीभूत होजाते हैं इस प्रकार से जब लोक बारहों सूर्य के तेज से सूख जाते हैं तब उन लोकों में संवर्तक नाम अग्नि प्रचंड वायुसहित प्रवेश होती है ६८ । ६९ बाद पृथ्वी को भेदन कर रसातल में प्रविष्ट होकर देव, दानव और गन्धर्वों को बड़ी भय उपजाती है ७० और आकाश,पाताल और पृथ्वी आदि सब लोकों में व्याप्त होकर बीस योजन के सैकड़ों और सहस्रों योजन लम्बे चौड़े लोकों को देवता, असुर,

गन्धर्व,यक्ष,उरग,राक्षस, नाग और सब जगत् के जीव और सब पदार्थों सहित एक क्षण भर में भस्म कर देती है इसके उपरान्त आकाशमें चारों ओर से महामेघोंकी घटा हाथियों के समूह के सदृश उठती हैं और बिजली के उग्र दर्शन चमक के साथ सब ओर व्याप्त हो जाती हैं वे घटाएँ कोई नीले कमल के समान कोई कुमुद के सदृश कोई किंजल्करूपी कोई पीली कोई हल्दी के रंग की कोई काग के अण्डों की सी उज्ज्वलता रखनेवाली कोई शिंगरफ-सी लाल कोई कमल के पत्र के तुल्य कोई अञ्जन-सी काली कोई बड़े पुर के आकार और कोई मकर के अनुरूप और बिजलियों की माला से भूषित होती हैं ७१ । ७८ और बड़े घोर शब्द से गर्ज गर्जकर सब आकाश और पर्वतों सहित पृथ्वी को ढककर ब्रह्माजी की आज्ञा से बारह वर्ष तक मुसलाधार जल वर्षाकर उस प्रलयकाल की अग्नि को बुझा देती हैं तब समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ देता है पर्वत सब फट जाते हैं और पृथ्वी जल में डूब जाती है ७९ । ८३ इसके उपरान्त वायु से प्रेरित होकर सब बादल आकाश में घूम घूमकर नष्ट हो जाते हैं और फिर आदिदेव ब्रह्माजी उस घोर वायु को पीकर सो जाते हैं ८४ । ८५ हे युधिष्ठिर! जब पिछली महाप्रलय में उक्त प्रकार से सब जगत् और देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी और पञ्चमहाभूत नाश होकर एकार्णव हो गये तब मैं अकेला नाश से बचकर उस एकार्णव में इधर से उधर बहने लगा और किसी प्राणी को न देखकर बहुत व्याकुल हो गया ८६ । ८८ और तैरता तैरता बहुत दूर तक चला गया और थक गया परन्तु मुझको कोई शरण न मिला ८९ हे पृथ्वीपते ! कुछ काल के पीछे उस एकार्णव में मुझको एक बड़ा भारी वट का वृक्ष दिखाई दिया जिसकी शाखायें बहुत दूर तक फैली हुई थीं जब मैं उस वृक्ष के समीप पहुँचा तब देखता क्या हूं कि उसके ऊपर एक सुन्दर शय्या बिछ रही है और उस पर बड़े दिव्य बिछौने हो रहे हैं और उन बिछौनों पर एक बालक जिसका मुख चन्द्रमा का-सा और नेत्र फूले हुए कमल के सदृश थे लेटा हुआ है ९० । ९२ हे नराधिप ! उसको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और मैं विचार करने लगा कि सब संसार के नष्ट होनेपर यह बालक कैसे बच रहा जो यहां शयन कर रहा है यद्यपि मैं त्रिकालदर्शी हूं परन्तु मैंने उस बालक को तपोबल से चिन्तन करने पर भी नहीं पहिंचाना ९३ । ९४ और उस कमललोचन का स्वरूप मुझको बड़ा अद्भुत द्युतिमान् अतसी के पुष्प की सी प्रभा रखने-

वाला लक्ष्मी-चिह्न से शोभित और श्रीवत्सधारी दीखने लगा इसके उपरान्त उस बालक ने मुझसे यह प्रिय वाक्य कहा ९५। ९६ कि हे मार्कण्डेय! मैं जानता हूं कि तुम थके हुए हो और विश्राम चाहते हो तुम मेरे शरीर में प्रवेश होकर जब तक चाहो ठहरो मैंने तुम पर कृपा करके तुम्हारे लिये बसने को स्थान निर्माण कर लिया है ९७। ९८ हे भारत! यह सुनकर मेरे हृदय में दीर्घकाल तक जीने और मनुष्यरूप रहने में वैराग्य उत्पन्न हो गया परन्तु उसी समय उस बालक ने अकस्मात् अपना मुख फैला दिया और मैं अवश होकर दैवयोग से उसके मुख में चला गया ९९। १०० हे मनुजाधिप! उदर में भीतर जाकर देखता क्या हूं कि वहां सब पृथ्वी ज्यों की त्यों नगरों सहित स्थित है और गंगा, शतद्रू, सीता, यमुना, कौशिकी, चर्मण्वती, ऐरावती, वेत्रवती, चन्द्रभागा; सरस्वती, सिन्धु, विपाशा, गोदावरी व स्वोकसार, नालिनी, नर्मदा, ताम्रा, वेणा, सुवेणा, कृष्णवेणा, इरामा, वितस्ता, महानदी, कावेरी, शोण, विशल्या, किंपुना और और जो जो नदियां हैं सब बह रही हैं और जलजीवों से सेवित रत्नाकर समुद्र भी है और सूर्य, चन्द्रमा आदि नक्षत्रों सहित आकाश भी प्रकाशित और शोभित हो रहा है १। ८ हे राजन्! अनेक काननों से पृथ्वी परम सुशोभित हो रही है ब्राह्मणलोग यज्ञ कर रहे हैं क्षत्रिय सब वर्णों की रक्षा में तत्पर हैं वैश्य न्यायपूर्वक खेती करते हैं शूद्र द्विजन्मा तीनों वर्णों की प्रीतिपूर्वक सेवा कर रहे हैं और हिमालय, हेमकूट, निषध, श्वेत, गन्धमादन, मन्दर, नील, मेरु, महेन्द्र, विन्ध्याचल, मलयाचल, पारियात्र और और जितने पर्वत हैं सब दृष्टि आ रहे हैं और सिंह, व्याघ्र, वाराह और जो जो पृथ्वी के जीव हैं सब वहां स्थित हैं इन सबको देखता हुआ मैं वहां चारों ओर घूमने लगा ९। १७ और दिशाओं में घूमते घूमते मैंने इन्द्रादिक देवता, साध्यगण, एकादश रुद्र, द्वादश सूर्य, गुह्यक, पितर, सर्प, नाग, गरुड़, अष्टवसु, दोनों अश्विनीकुमार, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, ऋषि, दैत्य, दानव, कालकेय, असुर और सिंहिका के पुत्रों से आदि लेकर सब देवताओं के शत्रु और जो जो कुछ जड़ और चैतन्य पदार्थ संसार में हैं सब उस बालक की कुक्षि में देखे और फलाहार करके सौ वर्ष तक विना विश्राम लिये दौड़ता हुआ सब जगत् में फिरता रहा परन्तु उस महात्मा बालक की देह का मुझको अन्त नहीं मिला १८। २४ तब मैंने मन, वाणी और कर्म से उसी वरेण्य वरदाता देवता की शरण ली और मैं वायु-वश से

फिर उस महात्मा बालक के मुख में होकर बाहर निकल आया २५। २६ और उस अमित तेजस्वी और श्रीवत्स-चिह्न रखनेवाले जगत्पति महापुरुष को उसी बालकरूप से उसी वट के ऊपर बैठा हुआ देखा २७। २८ तब उस पीताम्बरधारी ने प्रसन्नता से हँसकर मुझसे कहा कि हे मुनिसत्तम, मार्कण्डेय! कहो तुम मेरे उदर में रहकर विश्रान्त हुए या नहीं और तुम्हारी थकावट दूर हुई या नहीं २९। ३० यह सुनकर एक मुहूर्त में मेरी दृष्टि प्रकाशित हुई और मैंने अपने आपको देखकर अपने को मुक्त और लब्धज्ञान जाना ३१ तब मैंने उसके सुन्दर कोमल चरणों को जिनके तलुए और उँगलियां लाल लाल परम शोभित थीं अपने मस्तक से लगाया और नम्रता से प्रणाम करके उस कमललोचन के पास चला गया और उस भूतात्मा से देवता के अमित तेज और परमप्रभा को देखने लगा इसके पीछे मैंने दोनों हाथ जोड़कर उसको फिर नमस्कार किया और उससे पूछा कि भगवन्! मैं आपको और आपकी इस उत्तम माया को जानना चाहता हूं ३२। ३५ मैंने आपके मुखमार्ग से आपके उदर में जाकर सब लोक और देवता, दानव, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, नाग और जड़ चैतन्यजीवों सहित जगत् को यथावत् देखा ३६ । ३७ हे देव, महाप्रभो, कमललोचन! आपकी कृपा से मैं वहां घूमा किया परंतु मेरी स्मृति बनी रही और अब आपकी ही इच्छा से फिर बाहर निकल आया हूं सो मैं यह जानना चाहता हूं कि आप कौन हैं ३८। ३९ और सब जगत् को पीकर बालकरूप से यहां किस लिये स्थित हैं और आपके उदर में यह सब रचना किस प्रयोजन से होरही है यह बात बहुत बड़ी है मेरी सामर्थ्य इस बात को चिन्तन करने की भी नहीं है इससे मैं ब्राह्मणों की कामना से इस सब वृत्तान्त को यथावत् सुनना चाहता हूं यह सुनकर वह श्रीमान् द्युतिमान् देवदेवेश मुझसे कहने लगे॥ १४०। १४३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८८॥

एकसौ नवासीवाँ अध्याय।

नारायण का मार्कण्डेयजी से अपनी आत्मा का स्वरूप वर्णन करना और मार्कण्डेयजी का वही वृत्तान्त युधिष्ठिर से कहना।

हे मार्कण्डेय! मुझको देवता भी तत्त्वपूर्वक नहीं जानते हैं परंतु तुम्हारी प्रीति के कारण से मैं तुमको जगत् के उत्पन्न करने का वृत्तान्त सुनाता हूं १ तुम

ब्रह्मऋषि पितृभक्त, ब्रह्मचारी और मेरी शरण में प्राप्त हो इस प्रकार से तुमको मेरा साक्षात् दर्शन मिला है २ पूर्वकाल में मैंने जल का नाम नार रक्खा था वही नार मेरा स्थान है इससे मुझको तत्त्वदर्शी नारायण कहते हैं ३ मेरा एक ही रूप अविनाशी है मैं ही अनेक रूपों से प्रकट होता हूं और सब जीवों का रचने और संहार करनेवाला मैं ही हूं ४ हे द्विजोत्तम ! विष्णु, ब्रह्मा, देवेश, इन्द्र, कुवेर, प्रेतराज, यम, शिव, चन्द्रमा, काश्यप, प्रजापति, धाता, विधाता और यज्ञ भी मैं ही हूं ५ । ६ अग्नि मेरा मुख है पृथ्वी मेरा पैर है सूर्य और चन्द्रमा मेरे नेत्र हैं स्वर्ग और आकाश मेरा मस्तक है दिशा मेरे कान हैं जल मेरा पसीना है दिशा और आकाश मेरा शरीर है और वायु मेरा मन है मैंने बहुत से पूर्ण दक्षिणावाले सैकड़ों यज्ञ किये हैं ७ । ८ वेद के जाननेवाले ब्राह्मण मुझे यज्ञपुरुष जानकर मेरा पूजन करते हैं और स्वर्ग के चाहने की इच्छा से क्षत्रियलोग मेरा यज्ञ करते हैं ९ और स्वर्ग पाने की इच्छा से वैश्यलोग भी मेरा पूजन करते हैं मैं ही शेषरूप धारण करके मेरु और मन्दर आदि पर्वत और चारों समुद्र सहित पृथ्वी को धारण करता हूं मैंने ही पूर्वकाल में वाराहरूप धारण करके जल में डूबती हुई पृथ्वी को अपने पराक्रम से ऊपर को उठाया था मैं ही बड़वामुख नाम अग्नि होकर जल को पी जाता हूं और फिर छोड़ देता हूं ब्राह्मण मेरे मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र चरणों से उत्पन्न हैं और सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्वणवेद १० । १४ चारों मुझ ही से प्रकट होते हैं और मुझमें ही फिर आ बसते हैं और शान्तिरूप, जितेन्द्रिय, काम, क्रोध, द्वेष और अहंकार से रहित तत्त्वदर्शी निष्पाप ब्रह्मज्ञानी और वेदपाठी यतीलोग सदैव मेरा ही ध्यान और मेरी ही उपासना करते हैं और संवर्तकनाम अग्नि तथा वायु और इसी नाम का सूर्य भी मैं ही हूं सब तारागणों को मेरे रोमकूप और सब समुद्रों समेत चारों दिशाओं को मेरे वस्त्र और शय्या समझो और मुझको इन सबके लय होने का स्थान जानो और काम, क्रोध, हर्ष, भय और मोह भी मेरे रोम हैं मैंने ही इनको देवताओं के कार्य के सिद्ध करने के लिये विभक्त किया है १५ । २१ और सत्य, दान, तप, अहिंसा और स्वर्ग देनेवाले कर्म सबको मैंने ही रचा है और सब मुझमें ही बसते हैं ज्ञानीलोग मुझसे ही अभिभूत होकर विशेष चेष्टा करते हैं २२ । २३ और ब्राह्मणलोग वेद पढ़कर अनेक प्रकार के यज्ञ करके आत्मा को शान्त और क्रोध को जीतकर मुझको प्राप्त करते हैं २४ पापी, लोभी, कृपण,

नीच और अशुद्ध अन्तःकरणवाले मनुष्य मुझे नहीं पा सकते हैं इससे जिन मनुष्यों का अन्तःकरण शुद्ध है उनका बड़ा फल है और जिस मार्ग पर योगी लोग चलते हैं वह अज्ञानियों के लिये परम दुर्लभ है २५ । २६ हे सत्तम ! जब जब धर्म नष्ट होजाता है और अधर्म चारों ओर फैल जाता है और ऐसे भयानक दैत्य और राक्षस पृथ्वीपर जन्म लेते हैं जिनको देवता नहीं मार सकते हैं हिंसक होते हैं तब तब मैं शुभकर्मी मनुष्यों के घर में अवतार लेकर मनुष्यरूप से सबको शान्त करता हूं २७ । २६ मैं ही सब देवता, मनुष्य, गन्धर्व, उरग, राक्षस और रजड़ चैतन्यजीवों को उपजाकर अपनी मायासे संहार कर डालता हूं ३० और मर्यादा बांधने के लिये संसार में मनुष्यदेह से अवतार लेता हूं ३१ मेरा वर्ण सतयुग में श्वेत, त्रेता में पीत, द्वापर में रक्त और कलियुग में काला हो जाता है ३२ हे ब्रह्मन् ! इस पिछले युग में धर्म का केवल एक भाग रहता है और तीन भाग अधर्म रहता है और जब काल का अन्त आजाता है तब मैं ही महाकाल होकर तीनों लोकों को सब जड़ चैतन्य जीवों सहित नाश कर डालता हूं मैं ही विश्वात्मा हूं मैं ही सब लोकों को सुख देनेवाला हूं और मैं ही सर्वगत, अनन्त, इन्द्रियों का स्वामी और सर्वशक्तिमान् हूं मैं ही अकेला कालचक्र को घुमाता हूं ३३ । ३५ हे मुनिसत्तम ! वही कालचक्र सब जीवों को नाश करनेवाला और सब लोकों का उद्यम करनेवाला है मेरा आत्मा सब प्राणियों में व्याप्त होरहा है परंतु मुझको कोई जानता नहीं है ३६ हे द्विज, निष्पाप ! भक्तलोग सब लोकों में मेरी ही पूजा करते हैं हे मार्कण्डेय ! जो तुमने मेरे शरीर के भीतर जाकर कुछ क्लेश पाया है वह तुम्हारे कल्याण और सुख का उदय करेगा और तुमने लोक में जो कुछ जड़ चैतन्य पदार्थ देखे हैं वे सब मेरी ही आत्मा के रचे हुए हैं और ब्रह्मा भी मेरे ही शरीर का अर्धभाग है ३७।३८ हे विप्रर्षे, मुनिसत्तम, विप्रवर्य ! मैं शंख, चक्र और गदा का धारण करनेवाला नारायण हूं सो जबतक युगों की एक सहस्र आवृत्तियाँ न हो जायँगी तबतक मैं विश्व को अपनी आत्मा में धारण किये हुए सोऊंगा और बालक न होकर बालकरूप से इसी स्थान पर उस समय तक रहूंगा जिस समय तक ब्रह्मा न जागेंगे । अब मैं तुमको ब्रह्मरूपी वरदान देता हूं तुम ब्रह्मऋषियों में परम पूजित होगे और सब जड़ चैतन्य जीवों के नष्ट होने पर एकार्णव को देखकर व्याकुल होगये थे इस कारण से मैंने तुम्हारे मन की व्यथा को जानकर अपने शरीर के भीतर सब जगत् दिखलाया था,

परंतु उसे देखकर तुम आश्चर्य करने लग गये और तुमको ज्ञान नहीं हुआ, तब मैंने शीघ्र तुमको मुख से बाहर निकाल लिया ४० । ४५ हे मार्कण्डेय ! मैंने तुमसे अपनी आत्मा का सब वृत्तान्त, जिसको देवता और असुर भी दुःख से जान सकते हैं, वर्णन किया ४६ अब हे विप्रर्षे ! जबतक भगवान् ब्रह्माजी न जागेंगे तबतक मैं यहीं सोऊंगा, तुम भी यहीं सुखपूर्वक बसो। जब सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी जागेंगे, तब मैं और ब्रह्मा एकरूप होकर आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और संपूर्ण जड़ चैतन्य जीवों की रचना करेंगे ४७ । ४६ इतनी कथा सुनाकर मार्कण्डेयजी बोले हे तात, भरतश्रेष्ठ, सर्वधर्मधारिवरिष्ठ, राजन्, युधिष्ठिर ! वह देवदेवेश उक्त प्रकार से कहकर वहीं अन्तर्धान हो गया और मैंने उस महाप्रलय के अद्भुत स्वरूप और नानाप्रकार की सृष्टि की रचना को देखा ५० ।५१ हे पुरुषोत्तम ! जो कमललोचन देवता मैंने महाप्रलय में देखा था वह यही श्रीकृष्ण है जो तुम्हारा सम्बन्धी है ५२ इसी की कृपा से मेरी स्मृति बनी हुई है और मेरा दीर्घ आयु होना और इच्छा के अनुसार मरना भी इसी की कृपा से है ५३ हे कुन्तीनन्दन ! यही श्रीकृष्ण पुराणपुरुष है, यही समर्थ है, यही अचिन्त्य आत्मा है, यही धाता है, यही विधाताहै, यही संहार करनेवाला है, यही सनातनहै, यही श्रीवत्सचिह्न रखनेवाला है, यही गोविन्द है, यही प्रभु है, यही प्रजापति है, यही आदिदेव है, यही विष्णुहै, यही सबका पिताहै और यही सबकी माता है, इसी पीताम्बरधारी को देखकर मुझे सब पिछला वृत्तान्त याद आगया। यह शरण के योग्य है इससे हे युधिष्ठिर ! तुम इसीकी शरण जाओ ५४ । ५७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर पाण्डवों ने द्रौपदी सहित श्रीकृष्णजी को नमस्कार किया और उस पुरुषोत्तम ने भी उनसे साम-वचन कह कहकर उनका सम्मान किया ॥ ५८ । ५६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

एकसौ नब्बेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से कलियुग और कल्की अवतार वर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उक्त कथा को सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने महामुनि मार्कण्डेयजी से कलियुग के भविष्य कर्मों का वृत्तान्त सुनना चाहा और कहा कि हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ, मुनिजी ! आपने जगत्

की प्रलय और उत्पत्ति का आश्चर्यरूपी वृत्तान्त सुनाया परंतु अब मुझको यह संदेह है कि जब आगे कलिकाल में धर्म समाकुल हो जायँगे तब क्या बात शेष रहेगी इससे मैं यह सुनना चाहता हूं कि उस युग में मनुष्यों का पराक्रम, आहार, विहार, आयु और वस्त्र किस प्रकार के होंगे और फिर कितने काल के पीछे सत्ययुग आवेगा सो कृपा करके यह सब विस्तारपूर्वक सुनाइये। आप तो बड़ी विचित्र कथा कहते हैं १। ५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर मुनिनायक, महर्षि मार्कण्डेयजी श्रीकृष्ण और पाण्डवों को प्रसन्न करने के लिये कहने लगे ६ कि हे राजन्! पूर्वकाल में जो कुछ मैंने देखा या सुना है अथवा हे राजेन्द्र! जो कुछ मुझे ईश्वर की कृपा से अनुभव हुआ है हे भरतर्षभ! काल को पाकर मुझसे कहा हुआ जो सब लोक का भविष्य वृत्तान्त है उस सबको मैं कहता हूं सुनो ७। ८ सत्ययुग में सब धर्म बैल के समान चारों पैरों से युक्त थे और मनुष्य उनका आचरण निष्कपट और उपाधिरहित होकर करते थे, त्रेता में वही धर्म तीन तीन चरणों के रह गये एक चरण अधर्म से टूट गया और अब द्वापर में धर्म के केवल दो ही चरण हैं अर्थात् आधा धर्म और आधा अधर्म होता है ९। १० अब इसके आगे जब कलियुग आवेगा तब अधर्म तीन पैरों से सब लोको में व्याप्त होजायगा और धर्म का केवल एक चरण रह जायगा अर्थात् तीन अंश पाप और एक अंश धर्म होगा। मनुष्यों की आयु, पराक्रम, बुद्धि, बल और तेज प्रत्येक युग में कम होते चले जाते हैं। जब कलियुग का समय होगा तब चारों वर्ण कपटरूपी कर्मों को करके धर्म करेंगे और पण्डितों के अभिमान के कारण से सत्य क्षीण हो जायगा ११। १४ सत्य के जाने से आयु कम होने लगेगी और आयु के क्षीण होने से मनुष्य विद्याबल से अपनी जीविका उपार्जन न कर सकेंगे १५ विद्या के न होने से मनुष्यों का ज्ञान नष्ट हो जायगा और ज्ञान के नष्ट होने से सब मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी और अज्ञानी होकर परस्पर वैर बाँधकर एक दूसरे को मारने की इच्छा करने लगेंगे और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य परस्पर संकीर्ण होकर सत्य और तप को छोड़ देंगे और शूद्र-तुल्य हो जायँगे और अन्त्य अर्थात् चाण्डाल आदि मध्य अर्थात् क्षत्रिय पृथ्वी के रक्षक राजा होंगे और मध्य अन्त्य अर्थात् चाण्डालों का कर्म करेंगे १६।१८ और वस्त्रों में सन का वस्त्र और अन्नों में कोदों अति उत्तम गिने जायँगे १९
।

और सब मनुष्य केवल अपनी स्त्रीही के मित्र होकर रहेंगे और मछलियोंके मांस को बेचकर अथवा भेड़ी बकरियों को दुहकर अपना पेट पालेंगे २० गौयें उस समय में नष्ट हो जायँगी और जो मनुष्य सदाके व्रतधारी होंगे वेभी लोभी हो जायँगे २१ सबका मन हिंसा करनेमें रहेगा और परस्पर चोरी करेंगे और नास्तिक और जप न करनेवाले हो जायँगे २२ लोग नदियोंके किनारे कुदालोंसे खेतियां करेंगे और वे भी निष्फल होंगी और जो मनुष्य श्राद्ध और यज्ञ आदि देवकर्मों के करने का व्रत रक्खेंगे वेभी लोभ के कारण से परस्पर भोजन करने लगेंगे अर्थात् पिता पुत्र के घर और पुत्र पिता के घर श्राद्ध आदिक कर्मों में भोजन किया करेंगे २३। २४ और भोजन के सब पदार्थ मर्यादारहित होंगे, ब्राह्मण वेदनिन्दक होकर व्रत नहीं करेंगे और बहुत सा वाद करके अनेक हेतु दिखाकर यज्ञ और होम को छोड़कर नीच कर्मों में रत हो जायँगे २५। २६ और मनुष्य खेतियां नीची पृथ्वी पर करने लगेंगे और धुरी में गौ और एक वर्ष के बछड़ों को जोतेंगे २७ पिता पुत्र को और पुत्र पिता को मारकर खेद न करेंगे और बहुत सा वाद करने के कारण से उनकी निन्दा भी नहीं होगी २८ इस प्रकार से सब जगत् कर्म न करने और यज्ञ आनन्द और उत्सवों के बन्द होजाने के कारण से म्लेच्छों से भर जायगा और वे म्लेच्छ बहुधा कृपण, भाई, बन्धु और विधवाओं के धन को हर लिया करेंगे २९। ३० और अल्प पराक्रमी लोग लोभ और मोह के कारण से कपटरूपी आचार रखनेवाले दुष्टों के दिए हुए दान को भी ले लिया करेंगे। हे कौन्तेय! राजालोग पापी, मूर्ख और अपने को पण्डित जाननेवाले होकर परस्पर एक दूसरे को मारेंगे और युद्ध के लिये बुलाया करेंगे इस प्रकार से वे क्षत्रिय रक्षा करना छोड़कर इस लोक के कांटे हो जायँगे और लोभी, मानी, अहंकारी और घमण्डी होकर केवल दण्ड ही देने में मन रक्खेंगे ३१। ३४ हे भरतवंशिन्! दया न होने से रोते हुए साधुओं के धन और स्त्री को हरकर आप भोगेंगे ३५ उस समय में न कोई कन्यादान करेगा, न कोई कन्या मांगेगा किंतु अपने आपही चाहे जिसको ग्रहण कर लिया करेंगे ३६ और मूढ़चित्त राजा भी असंतुष्ट होकर अनेक उपायों से दूसरे के धन को हरलिया करेंगे ३७ हे युधिष्ठिर! निस्संदेह सब संसार म्लेच्छरूप हो जायगा और चोरी हाथों हाथ होने लगेगी ३८ लोग अपने को पण्डित मानने लगेंगे, सत्य संसार से उठ जायगा और बालक वृद्धों

की सी बुद्धि और वृद्ध बालकों की सी बुद्धि रखने का अभिमान रक्खेंगे ३९ और जो मनुष्य भीरु होंगे उनको शूरता का अभिमान होगा और जो शूर होंगे वे डरपोंकनों से विवाद करेंगे और परस्पर कोई किसीका विश्वास नहीं करेगा ४० सब लोभी और मोह से भरे हुए मनुष्य होंगे और आहार सबका एक सा हो जायगा इस प्रकार से अधर्म तो बढ़ता रहेगा और धर्म का लेश नहीं रहेगा ४१ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सब नष्ट होकर सब जगत् एक वर्ण हो जायगा ४२ स्त्रियां अपने पति की सेवा नहीं करेंगी और न पिता पुत्रको और न पुत्र पिता को मानेगा ४३ सब मनुष्य वहीं जा जाकर बसेंगे जहां यव और गेहूं आदि अन्न उत्पन्न होते होंगे ४४ और सब पुरुष इच्छाचारी हो जायँगे और स्त्रियों में क्षमा नहीं रहेगी ४५ न कोई श्राद्ध करेगा न देवकर्म करेगा सबके स्वभाव म्लेच्छों के से हो जायँगे ४६ और तमोगुण में ग्रस्त होकर कोई किसी की न सुनेगा और न कोई किसी को गुरु जानेगा ४७ और आयु सब की सोलह वर्ष की होने लगेगी सत्रहवें वर्ष में प्राण छुट जाया करेंगे ४८ और कन्याओं के पांचवें अथवा छठे वर्ष में गर्भ रहने लगेगा और सात अथवा आठ वर्ष के लड़कों के पुत्र उत्पन्न हुआ करेगा ४९ और स्त्री पति से और पति स्त्री से संतोषित नहीं रहेंगे ५० सब मनुष्य हिंसक, अल्पद्रव्य रखनेवाले और वृथालिङ्गी होंगे और कोई किसी को दान नहीं देगा ५१ सब पुरुष अन्न बेचने लगेंगे, ब्राह्मण वेद बेचेंगे और स्त्रियां अपनी भग बेचेंगी ५२ सबके सब म्लेच्छों का सा आचार रखकर सर्वभक्षी और सब कर्मों में भयानकरूप होजायँगे ५३ हे भरतश्रेष्ठ! धन के लोभ से सब मनुष्य क्रय विक्रय अर्थात् ख़रीद फ़रोख़्त के समय ठगई करेंगे ५४ और जो जिसकी इच्छा में आवेगा सोई कर्म करेंगे और स्वभाव सेही कुकर्मी और एक दूसरे की श्लाघा करनेवाले हो जायँगे और विना व्यथा के वृक्ष और बाग़ों का नाश करेंगे उस समय में सब जीवों को अपने अपने जीवित का त्रास रहेगा ५५ । ५७ हे नृपाल! सब मनुष्य लोभ से अभिभूत होकर ब्राह्मणों का धन छीनकर भोगेंगे और उनको मारेंगे ५८ तब ब्राह्मण भयभीत, दुःखी और शूद्रों से पीड़ित होकर विना रक्षक के हाहाकार करते हुए इस पृथ्वी पर जहां तहां घूमेंगे ५९ और उन शूद्रों की हिंसा, दया, हीनता और भयानकरूप से डरे हुए ब्राह्मण भाग भाग कर नदी, पर्वत और विषम स्थानों में जा

बसेंगे ६०।६१ और चोरों से पीड़ित राजा के कर से दुःखी और सब मनुष्यों से शङ्कित होकर धैर्य को छोड़ देंगे और शूद्रों की सेवा और नीचकर्म करने लगेंगे ६२।६३ और शूद्रगद्दीपर बैठकर धर्मका व्याख्यान कहेंगे और ब्राह्मणलोग उनके नीचे बैठकर उस व्याख्यानको सुनेंगे ६४ इस प्रकार से कलियुग के उत्तर समय में सब बातें विपरीत होने लगेंगी । मनुष्य देवताओं के पूजन को छोड़ कर कबरों की पूजा करने लगेंगे ६५ शूद्र ब्राह्मणों की सेवा नहीं करेंगे और जहां जहां महाऋषियों के आश्रम, ब्राह्मणों के स्थान और देवता और सर्पोंके आलय होंगे वहां वहां कबरों के चिह्न होजायँगे ६६।६७ हे राजन् ! सब लोग रौद्रकर्मी, धर्महीन, मांसभक्षी और मद्यपी होने लगेंगे । ये सब लक्षण युग के क्षय होने के हैं और जब फल में फल और पुष्प में पुष्प उत्पन्न होने लगेंगे तब युगका अन्त हो जायगा उस समय वर्षा अकाल में होगी ६८।७० सबके कर्म विपरीत हो जायँगे और शूद्र ब्राह्मणों के साथ विरोध करने लगेंगे ७१ सब पृथ्वी म्लेच्छों से पूर्ण हो जायगी और ब्राह्मण कर के भयसे दशों दिशाओं में भाग भागकर जा बसेंगे ७२ बेगार से दुःखी होकर फल और मूल खा खाकर रहेंगे इस प्रकार से जब लोक व्याकुल होगा तब कोई बात मर्यादा की नहीं रहेगी, शिष्य गुरु की शिक्षा नहीं मानेंगे और जो आचार रखनेवाले और निर्धन होंगे उनको सब धिक्कार देंगे और धनवाले के पास सब मित्र और भाई बन्धु वास करेंगे, निर्धन को कोई नहीं पूछेगा ७३।७५ ऐसा समय वर्तमान होने पर सब प्राणियों का नाश हो जायगा और सब दिशा प्रज्वलित और नक्षत्र प्रभाहीन हो जायँगे ७६ ग्रहों की चाल विपरीत, वायु प्रचण्ड और उल्कापात आदि अनेक भय होने लगेंगे ७७ और सूर्य दूसरे छः ग्रहों के साथ बड़े तेज से तपने लगेगा और निर्घात शब्द और दिशाओं में दाह भी होगा ७८ इन्द्र बिना काल के वर्षा करेगा और सूर्य उदय और अस्तकाल में राहु से अन्तर्हित होने लगेगा ७९ खेतियों में अन्न उत्पन्न नहीं होगा, स्त्रियां बड़ी कर्कशा और खोटा वचन बोलनेवाली हो जायँगी । उनको रोना बहुत अच्छा लगेगा और पति की आज्ञा नहीं मानेंगी । पुत्र माता और पिता को मारने लगेंगे ८०।८१ स्त्रियां पुत्र का आश्रय लेकर अपने पति को मारेंगी । राहु विना पर्व के सूर्य को ग्रसने लगेगा ८२ अग्नि सब ओर बहुत लगा करेगी और राहगीरों को मांगने पर भी कोई भोजन नहीं देगा और न कोई

उनको कहीं टिकने देगा तब वे निकाले हुए राहगीर जहां तहां मार्गों में ही पड़े रहेंगे और निर्घात शब्द के होने से काग, मृग और पक्षी भयानक बोलियां बोलेंगे और मनुष्य अपने अपने मित्र, सम्बन्धी और स्वजन परिजनों को छोड़ छोड़कर अनेक देश, दिशा, पत्तन और नगरों में जा बसेंगे । इसके उपरान्त जब कलियुग समाप्ति पर आवेगा तब ऐसा दारुण समय होगा कि मनुष्य एक दूसरे को हाय बेटा, हाय पिता, पुकारने लगेंगे इस प्रकार से जब युगक्षय हो जायगा तब भगवान् फिर कृपाकरेंगे और द्विजाति आदि सब वर्ण लोक में बढ़ने लगेंगे और जिस दिन सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति पुष्य नक्षत्र में एक ही साथ एक राशिपर आजायँगे उसीदिन सत्ययुग लग जायगा ८३।९० सत्ययुग के लगने पर वर्षा समय पर होने लगेगी, नक्षत्र शुभ होजायँगे और ग्रह अपनी अपनी गति करने लगेंगे और संसार के सब उपद्रव शान्त होकर सुकाल होने लगेगा और मनुष्य आरोग्य होने लगेंगे ९१।९२ उसी समय में संभल ग्राम में एक ब्राह्मण के घर भगवान्का कल्की अवतार होगा। नाम उसका विष्णुयशा होकर बड़ा पराक्रमी और बुद्धिमान् होगा । संकल्पमात्र ही करनेसे उसके पास सब वाहन, आयुध, योद्धा और कवच वर्तमान हो जायँगे और वही बड़ा धर्मात्मा और चक्रवर्ती राजा होकर, ब्राह्मणों को साथ लेकर, सब नीच म्लेच्छोंको मारकर नाशकरेगा और इस व्याकुल लोकको परमानन्द देगा। उस बुद्धिमान् तेजस्वी के सबके नाश करनेपर सत्ययुग लग जायगा॥९३।९७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

एकसौइक्यानवेवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से कल्कीअवतार की कथा कहके धर्मपर आरूढ़ रहनेकी शिक्षा करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! वह कल्की अवतार चौरों को विध्वंसन करके अश्वमेध यज्ञ करेगा और उस यज्ञ में इस पृथ्वी को विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान कर देगा १ और ब्रह्मा की बांधी हुई मर्यादा को संसार में स्थापित करके जब वह वन को चला जायगा तब सब मनुष्य उसके प्रचलित किये हुए धर्मपर चलने लगेंगे और चौरों के नाश हो जाने से सब स्थानों में क्षेम हो जायगी २।३ वह विप्रवर्य कल्की काला मृगचर्म ओढ़कर शक्ति, त्रिशूल आदि अनेक आयुध लिये हुए देश देश और निर्जन स्थानों में भ्रमण करेगा, जहां जहां उसको ब्राह्मण मिलेंगे तहां तहां वह ब्राह्मणों का सत्कार करेगा

और ब्राह्मण भी उसकी स्तुति करेंगे और जहां कहीं चोरों को पायेगा वहीं उनको मारकर यमपुरी पहुँचा देगा। इस प्रकार से सब संसारी चोर मां, बाप, भाई और पुत्र आदि को पुकार पुकार कर नाश हो जायँगे ४।६ इसके पीछे हे भारत! सत्ययुग का समय लग जायगा, उस समय में अधर्म का नाम न रहेगा, धर्मकी दिन दिन वृद्धि होगी और मनुष्य भी क्रियावान् होने लगेंगे ७ और बाग और यज्ञ की सीमाके वृक्ष, तड़ाग, पुष्करिणी, देवमन्दिर, अनेक यज्ञ और ब्राह्मण, साधु, मुनि और तपस्वी प्रकट हो जायँगे ८।९ और जितने पाखण्ड के आश्रम होंगे सब नाश हो जायँगे प्रजा में सत्य स्थित हो जायगा और मनुष्यों का वासनारूपी बीज ब्रह्मज्ञान से नष्ट हो जायगा १० हे राजेन्द्र! ऋतु ऋतु की खेतियां अच्छे प्रकार से होने लगेंगी और मनुष्य दान, व्रत और नियम के करने में प्रसन्नता रक्खेंगे ११ ब्राह्मण वेदपाठ, जप और यज्ञ आदि कर्मों के करने में तत्पर होकर धर्म ही करने की कामना रक्खेंगे और राजा लोग पृथ्वी का पालन धर्म से करेंगे १२ और व्यवहार में वैश्यों की और षट्कर्मों में ब्राह्मणों की और पराक्रम में क्षत्रियों की प्रीति होने लगेगी और शूद्र भी तीनों ऊंचे वर्णों की सेवा करने में तत्पर हो जायँगे। हे युधिष्ठिर! यह सत्ययुग का धर्म है और त्रेता, द्वापर और कलियुग का धर्म हम तुमसे कहही चुके हैं। हम चिरंजीवी हैं इससे हमने संसार के बहुतसे मार्ग देखे और अनुभव किये हैं। उन सबके अनुसार मैंने वायु के कहे हुए परम प्रतिष्ठित पुराण को स्मरण करके यह भूत और भविष्य वृत्तान्त सुनाया है १३।१७ अब हम तुम्हारा धर्म का सन्देह दूर करने के लिये दूसरी शिक्षा करते हैं, उसको भी तुम भाइयों सहित सुनो १८ वह शिक्षा यह है कि तुम सबको अपना मन धर्म ही में लगाना चाहिये क्योंकि दोनों लोकों में केवल धर्मात्मा ही को सुख मिलता है और दूसरी बात यहहै कि तुमको ब्राह्मण का अपमान करना किसी अवस्था में उचित नहीं है क्योंकि ब्राह्मण क्रोधित होकर प्रतिज्ञा से तीनों लोकों को नाश करसक्ता है १९।२० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! बुद्धिमान्, परमप्रकाशवान्, कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर मार्कण्डेयजी के उक्त वचनों को सुनकर बोले २१ कि महाराज! किस धर्म के अनुसार मुझको प्रजा की रक्षा करना उचित है और वह धर्म कौन सा है जिसपर चलने से मैं अपने धर्ममार्ग से भ्रष्ट न होऊं २२ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! तुमको सब प्राणियों पर दया करना, हित

करना, प्रीति मानना, दूसरे के गुण में दोष न लगाना, सत्य बोलना, मृदुता रखना, जितेन्द्रिय रहना, प्रजा की रक्षा करना, धर्म करना, अधर्म छोड़ना, देवता और पितरों को पूजना, प्रमाद से किये हुए कर्म को दान से दूर करना, धैर्य रखना, पृथ्वी को जीतना और सदा प्रसन्न और सुखी रहना उचित है २३। २६ हे तात, युधिष्ठिर! हम तुमसे सब भूत और भविष्य धर्म अच्छे प्रकार से कह चुके और हमको भूतल में कोई ऐसी भूत अथवा भविष्य बात नहीं दीखती है जिसको तुम न जानते हो इससे तुमको अपने हृदय में क्लेश मानना उचित नहीं है। ज्ञानियों को काल के अनुसार बड़ी पीड़ा पाने पर भी मोह नहीं होता है २७ हे महाबाहो! काल बड़ाही बलवान् है, देवता भी काल के आने पर मोहित हो जाते हैं और काल ही की प्रेरणा से प्रजा को मोह हो जाता है २८ हे निष्पाप! इससे तुम मेरे कहे हुए वाक्यों में किसी प्रकार की शङ्का न करो, शङ्का करने से तुम्हारा धर्म लोप हो जायगा २९ तुम कौरववंशी हो। तुमको मन, वाणी, कर्म से सब उक्त धर्मों को करना उचित है ३० यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि महाराज! आपने जो कानों को सुख देने वाले वाक्य कहे हैं उनको मैं अवश्य यत्नपूर्वक करूंगा ३१ हे विप्रेन्द्र! मुझ को लोभ, भय और मत्सरता नहीं है मैं निस्संदेह आप की शिक्षा के अनुसार चलूंगा ३२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी के वचनों को सुनकर पाण्डव और श्रीकृष्णजी अतिप्रसन्न हुए और जो वेदपाठी ब्राह्मण वहां आये थे वे उस मार्कण्डेयजी के कहे हुए पुराने इतिहास को सुनकर विस्मित हो गये॥ ३३। ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९१॥

एकसौ बानबे का अध्याय।

मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिर से ब्राह्मणों का माहात्म्यवर्णन करने में राजा परीक्षित् के पुत्र राजा शल, दल और वामदेवजी का संवाद कहना।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय बोला कि हे वैशंपायनजी! अब आप ब्राह्मणों के उस माहात्म्यको वर्णन कीजिये जो महातपस्वी मार्कण्डेयजी ने पाण्डवों से वर्णन किया था १ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! मार्कण्डेयजी ने युधिष्ठिरके पूछने पर कहा कि मैं ब्राह्मणों का एक अपूर्व चरित्र वर्णन करता हूं सुनो २ अयोध्यापुरी में परीक्षित् नामी एक इक्ष्वाकुवंशी राजा

था । एक समय वह राजा अहेर खेलने को गया और वहां उसने अपना घोड़ा एक मृग के पीछे डाल दिया और सब संग साथियों से छूटकर अकेला दूर निकल गया ३ । ४ और एक नीले रंग के बड़े घने वन के निकट जा पहुँचा । राजा वहां थकावट और भूख प्यास से व्याकुल होकर उस वनखण्ड में चला गया और वहां एक रमणीक सरोवर देखकर घोड़े से उतर पड़ा और उस सरोवर में घोड़ा सहित स्नान करके, घोड़े को बांध उसके आगे कमल के पत्ते और नाल डाल कर आप उसी सरोवर के तटपर आसन बिछाकर लेट गया और विश्राम करने लगा । थोड़ी देर में उसने कुछ गाने की सी मधुर वाणी सुनी ५ । ७ उसको सुनकर वह विचारने लगा कि यहां मनुष्य की तो गति है ही नहीं, यह गाने का शब्द किसका आरहा है ८ इसी अवसर में एक परम सुन्दरी कन्या फूल बीनती हुई और गाती हुई राजा के समीप आ निकली । राजा उसको देखकर पूछने लगा कि हे सुन्दरि ! तू कौन है और किसकी बेटी है ? वह बोली कि मैं कन्या हूं । तब राजा ने कहा मैं भी तेरा चाहनेवाला हूं ९ । १० यह सुनकर वह कन्या बोली कि मैं विना नियम किये तुम को प्राप्त नहीं हो सकती हूं । राजा ने पूछा वह नियम क्या है ? कन्या बोली मुझको कभी जल मत दिखलाना ११ राजा बोला बहुत अच्छा । इसके पीछे राजा ने उस कन्या से अपना विवाह करलिया और बड़े आनन्द से उस के साथ क्रीड़ा करके चुपचाप वहीं बैठ गया १२ इसी अवसर में राजा की सेना आ पहुँची और वह उसको चारों ओर से घेरकर बैठ गई तब राजा उस स्त्री को सुन्दर पालकी में बैठाकर वहां से चल दिया और अपने नगर के निकट आकर एक एकांतस्थान में उस स्त्री सहित बैठ गया १३ । १४ और उसके साथ ऐसा क्रीड़ासक्त हो गया कि सब राजकाज भूल गया । उस राजा के प्रधान बड़े चतुर थे । उन्होंने राजा का यह हाल देखकर उस स्थान के समीप रहनेवाली स्त्रियों से पूछा कि यहां क्या हुआ करताहै ? वे स्त्रियां बोलीं १५।१६ कि यहां यह बात बड़ी अपूर्व है कि जल नहीं जानेपाता है । यह सुनकर उन प्रधानों ने उस स्थानके निकट एक बड़ा रमणीक वन बनवाया । उसमें फूले फले हुए बहुत से वृक्ष लगवाये परन्तु उसके भीतर जल का कोई स्थान नहीं बनवाया और उस वन के बगल में एक गुप्त बावली अमृतरूपी निर्मल जलसे भरी हुई बनवाई । जब वह बनकर तैयार होगया तब उन प्रधानों ने राजा से

एकांत में जाकर कहा कि यह समीप का वनबड़ा उत्तम और जलहीन है, आप इस वन में क्रीड़ा किया कीजिये १७ यह सुनकर राजा उस स्त्री को लेकर उस रमणीक वन में चला गया और वहां उसके साथ विहार करने लगा। एक समय राजा वहां भूख और प्यास के कारण से दुःखी हुआ और वहां उसने एक गृह देखा। राजा उस प्रिया सहित उस गृह में घुस गया और वहां उसने अमृतरूपी जल से भरी हुई एक बावली देखी १८।२० राजा उसके किनारे पर खड़ा हो गया और नियम को भूलकर अपनी प्रिया से बोला कि चलो इस बावली में उतरकर क्रीड़ा करें यह सुनकर वह स्त्री जल में उतरकर डूब गई और फिर नहीं उछली २१।२२ राजा उस जलमें चारों ओर उसको ढूढ़ने लगा परंतु उसका कुछ पता नहीं लगा। तब उसने उस बावली का जल निकलवाकर उसको सुखा दिया और वहां उसने एक सुन्दर मेंडक को बैठा हुआ देखा। उसको देखकर राजा ने अनुमान किया कि यह मेंडक ही उस स्त्री को खागयाहै। यह अनुमान करके राजा ने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि सब मनुष्य जहां जहां मेंडक पावें तहां तहां उनको मारडालें और जो मनुष्य मुझसे द्रव्य लेने की इच्छा रखते हों वे मेरेपास मेंडकरूपी भेंट ले लेकर आवें २३।२४ यह आज्ञा पाकर मनुष्य मेंडकोंको सब दिशाओं में जा जाकर मारने लगे उससे मेंडकोंको बड़ा भय हुआ और वे सब मेंडक मिलकर अपने राजा के पास गये और उससे सब वृत्तान्त कहा २५ उसको सुनकर मेंडकों के राजाने तपस्वी का रूप बनाकर राजा से आकर कहा २६ कि महाराज! आप क्रोध को छोड़कर कृपा कीजिये। इन निरपराध मण्डूकों को मारना आपको उचित नहीं है। यह वार्त्तासुनिये॥२७॥

चौ०। हे अच्युत तजि क्रोध महान। मति मारो मण्डूक अयान।
अबुध होत जे जन मतिहीन। होत लक्ष्मी तिनकी क्षीन २८
मण्डूकनको वध करि आप। नहिं त्यागिहौ क्रोध को दाप।
याते तजहु अधर्म अकार्थ। मेंडकवध में नहिं कछु स्वार्थ २९

यह सुनकर राजा ने जिसका मन अपनी प्रिया के शोक में व्यग्र होरहा था उससे कहा ३० कि मैं मण्डूकों के अपराधको क्षमा नहीं करसक्ता हूं, क्योंकि उन दुरात्माओं ने मेरी प्यारी को खालिया है। मुझे उनको मारनाही उचित है। आपभी मुझको न रोकिये ३१ यह सुनकर वह मण्डूकों का राजा मनमें दुःखी होकर बोला हे राजन्! अब तुम खेद मत करो, प्रसन्न हो मैं आयुनामी मण्डूकों का राजा हूं और वह स्त्री जिसका तुम शोक कर रहे हो सुशोभनाम

मेरी पुत्री है । वह सदैव की दुःशीला है । कई बार इसी प्रकार से वह राजाओं के साथ छल कर चुकी है ३२ तब राजा बोला कि मैं उस पर आसक्त हूं, आप कृपा करके उसको मुझे दीजिये ३३ यह सुनकर उस मण्डूकपति ने अपनी कन्या उस राजा को दे दी और कन्या को शिक्षा की कि तू इस राजा की सेवा करियो और क्रोध के कारण से यह शाप भी दिया कि तैंने बहुत से राजाओं के साथ छल किया है इससे तेरे इस असत्य आचार के कारण से तेरे पुत्र ब्राह्मणों के अप्रिय करनेवाले होंगे ३४।३५ इसके पीछे वह राजा उस अपनी प्रिया को पाकर ऐसा प्रसन्न हुआ मानो तीनों लोकों का राज्य मिला है और उस प्रसन्नता के कारण से उसने नम्रीभूत वाक्य कहकर मण्डूकों के राजा को दण्डवत् की और उससे कहा कि आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है ३६ तदनन्तर वह मण्डूकों का राजा अपनी पुत्री से बिदा होकर जहां से आया था तहां को चला गया ३७ और वह राजा उस प्रिया के साथ सुखपूर्वक रहने लगा । उसके तीन पुत्र हुए शल १ दल २ और बल ३ । राजा उनमें से बड़े पुत्र शल को राज्य देकर वन में तपस्या करने को चला गया ३८ एक समय वह शल राजा अहेर खेलने को गया और वहां उसने अपना रथ एक मृग के पीछे डालकर सारथी से कहा रथ को हांककर मुझे शीघ्र ले चल । यह सुनकर वह सारथी बोला ३९।४० महाराज ! आप निरर्थक हठ न कीजिये इस मृग को आप वाम्य घोड़ों को भी रथ में जोतने पर नहीं पा सकेंगे । यह सुनकर राजा बोला कि तू मुझको वाम्य घोड़ों को बता, नहीं मैं तुझे मार डालूंगा । वह सारथी यह सुनकर डर गया परंतु वामदेवजी के शाप के भय से उसने उन घोड़ों को नहीं बताया । तब राजा ने तलवार निकाल ली और उससे कहा कि शीघ्र बता, नहीं तो मैं तुझे अभी मारे डालता हूं । तब उस सारथी ने भयभीत होकर राजा से कहा कि महाराज ! वे वाम्य घोड़े वामदेवजी के हैं और मन की समान शीघ्र चलते हैं ४१ यह सुनकर राजा ने कहा कि अच्छा हमारा रथ वामदेव के आश्रम को ले चल । उसने वैसा ही किया । राजा उस आश्रम में पहुँचकर वामदेवजी से बोला कि भगवन् ! मेरे बाणों से बिधबिधकर मृग भाग जाते हैं इससे आप मेरे ऊपर कृपा करके मुझे वाम्य घोड़े दे दीजिये । यह सुनकर वामदेवजी ने राजा को दोनों घोड़े दे दिये और उससे कहा कि जब तुम्हारा काम हो चुके तब इन घोड़ों को लौटा देना । वह राजा उन घोड़ों को लेकर और

ऋषि से आज्ञा मांगकर चला आया और उनको रथ में जोतकर एक मृग के पीछे रथ दौड़ाया। जब उसने उन घोड़ों की चाल देखी तब वह सारथी से कहने लगा कि ये रत्नरूपी घोड़े ब्राह्मणों के योग्य नहीं हैं और न इस योग्य हैं कि वामदेवजी को लौटा दिये जावें। यह कहकर उस राजा ने मृग को समीप जाकर मार लिया और घोड़ों को अपने नगर में लाकर अपने महल के भीतर बँधवा दिया ४२।४३ वामदेवजी उन घोड़ों के लौटने की बाट देखते रहे और अपने मन में विचारते रहे कि यह क्या कारण है जो राजा ने घोड़े लौटाये नहीं। जब एक मास व्यतीत हो गया और घोड़े राजा ने नहीं लौटाये तब वामदेवजी ने अपने आत्रेयनामी शिष्य को आज्ञा दी ४४।४५ कि तू राजा के पास चला जा और हमारी ओर से उससे कहियो कि जो तुम्हारा कार्य हो चुका हो तो वाम्य घोड़ों को अब लौटा दो। यह सुनकर शिष्य राजा के पास गया और उसने राजा को वामदेवजी के वाक्य सुनाकर घोड़े मांगे। राजा ने उत्तर दिया कि ये घोड़े राजाओं के योग्य हैं, ब्राह्मणों के योग्य नहीं हैं। ब्राह्मणों को घोड़ों से क्या प्रयोजन है। तू जा और वामदेवजी से इसी प्रकार से कह देना ४६ यह सुनकर वह शिष्य वामदेवजी के पास लौट आया और उनसे राजा का उत्तर कहा। उसको सुनकर वामदेवजी क्रोधित होकर आप राजा के पास गये और उससे घोड़े मांगे परंतु राजा ने नहीं दिये ४७ तब वामदेवजी ने कहा कि हे राजन्! मानो, हमारे घोड़े दे दो। हम ब्राह्मण हैं, तुम क्षत्रिय हो। हमारे तुम्हारे बीच में वरुण देवता स्थित हैं। क्यों अपने को वरुण की पाश से बँधवाना चाहते हो ४८ राजा बोला कि हे वामदेवजी! ब्राह्मणों की सवारी में सुन्दर शिक्षित बैल होने चाहिये, उसी सवारी में बैठकर जहां तुम्हारी इच्छा हो चले जाओ और इससे भी आपको कुछ नहीं है क्योंकि आपसे महाऋषियों को तो वेदों के छन्द धारण करते हैं ४९ वामदेवजी बोले कि हां निस्संदेह वेद के छन्द हमसे ऋषियों को परलोक में धारण करते हैं परंतु इस लोक में यही घोड़े हमारी और हमसे दूसरे ऋषियों की सवारी देते हैं ५० राजा बोला कि आप चार गधे और हरिजात के घोड़े जो वायु की तुल्य शीघ्रगामी हैं अपनी सवारी के लिये ले लीजिये और सवार होकर चले जाइये। वाम्य घोड़े राजाओं की सवारी के योग्य हैं इससे वे घोड़े मेरे हैं आपके नहीं हैं ५१ वामदेवजी बोले कि ब्राह्मण का व्रत बड़ा घोर होता है, तुम हमारे घोड़े दे दो नहीं तो तुम अभी मारे जाओगे।

चार यातुधाननामी राक्षस बड़े भयानकरूप से लोहे के त्रिशूल लिये हुए मेरी आज्ञा से अभी यहां आकर तुम्हारे चार टुकड़े करके चारों ओर फेंक देंगे ५२ राजा बोला कि मेरे जिन मनुष्यों ने इस ब्राह्मण को मेरे मारने के लिये उद्यत मन, वाणी या कर्म से जाना है वे इसी समय यहां आकर शूल और खड्ग से इस ब्राह्मण को शिष्यसहित मारकर गिरा दें ५३ वामदेवजी बोले कि तुम हमसे वाम्य घोड़े इस नियम से मांग लाये थे कि मैं फिर लौटाल जाऊंगा सो यदि तुमको अपना जीवन प्रिय है तो शीघ्र अपने नियम को पूरा करो ५४ राजा बोला कि निस्सन्देह अहेर खेलना ब्राह्मणों के लिये नहीं है, तुम मिथ्या कहते हो, मैं तुमको इस मिथ्यावाद करने का दण्ड नहीं देता हूं जाओ। हां और जो कुछ तुम्हारी आज्ञा है उसको मैं उत्तमलोक प्राप्त करनेके लिये अङ्गीकार कर सक्ता हूं ५५ वामदेवजी बोले कि जो मनुष्य ब्राह्मण को मन, वाणी और कर्म से भी दण्ड देने के योग्य नहीं जानता है उसी का कल्याण होता है ५६ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! उक्त वार्त्तालाप के होने पर वहां चार घोररूप राक्षस अकस्मात् त्रिशूल लिये हुए आ गये और उन्होंने उस राजा को मार डाला। मरते समय राजा ने चिल्लाकर कहा ५७ कि हे ब्रह्मन् ! जो मेरा छोटा भाई दल और ये वैश्य मेरी आज्ञा का पालन करेंगे तो तुम्हारे वाम्य घोड़े तुमको नहीं मिलेंगे। तुमसे मनुष्य को धर्मात्मा और शीलवान् नहीं कहना चाहिये ५८ यह कहकर राजा निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी समय इक्ष्वाकुवंशियों ने राजा को मरा हुआ जानकर दल का राज्याभिषेक कराया ५९ तब वामदेवजी दल के पास गये और उससे कहा कि सब धर्मों में यही कहा है कि ब्राह्मण की वस्तु देना ही चाहिये इससे जो तुमको अधर्म से डर है तो हमारे वाम्य घोड़े शीघ्र हमको दे दो। यह सुनकर दल क्रोधित होकर अपने सारथी से बोला ६०। ६१ कि हमारे विष के बुझाये हुए बाणों में से एक बाण ले आ, उससे बिधकर यह वामदेव दुःख पाकर कुत्ते के काटे के समान मरेगा ६२ वामदेवजी बोले कि मैं जानता हूं तेरे शेनजित नामी एक पुत्र दश वर्ष का है, मेरे वचन से प्रेरित होकर तेरे छोड़े हुए बाण उसको मारेंगे ६३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! यह सुनकर दल ने वह विष में बुझा हुआ बाण वामदेवजी को मारने के लिये छोड़ा परंतु उस बाण ने महल में जाकर राजपुत्र को मार डाला। दल उस बात को सुनकर कहने लगा ६४ कि मैं अब इक्ष्वाकुवंशियों

का प्रिय करता हूं, जाओ दूसरा विष में बुझा हुआ बाण लाओ और मेरे पराक्रम को देखो मैं इस ब्राह्मण को अभी मारे डालता हूं ६५ वामदेवजी बोले कि हे मानवेन्द्र ! जब तू धनुष पर बाण चढ़ाने चाहेगा तभी तू जड़ के तुल्य हो जायगा और बाण न छोड़ सकेगा ६६ इसके पीछे दल ने ज्यों ही बाण धनुष पर चढ़ाया त्यों ही वह स्तम्भित हो गया और कहने लगा कि हे इक्ष्वाकुवंशियो ! देखो मेरे हाथ और पैर रह गये हैं, अब मैं इस बाण को नहीं चलासकता हूं इस कारण से अब मेरी इच्छा वामदेवजी को मारने की नहीं है ये वामदेवजी जीते रहें ६७ वामदेवजी बोले कि जो तेरी ऐसी ही इच्छा है तो तू यह बाण अपनी रानी के छुआ दे ऐसा करने से तू इस पाप से छूट जायगा। दल ने वैसा ही किया और उसके हाथ पैर खुल गये। उस समय दल की रानी ने वामदेवजी से कहा ६८ कि महाराज ! मैं ब्राह्मणों की सेवा करने की इच्छा से अपने इस निर्दयी पति से प्रतिदिन कल्याणकारी बातें कहती थी, उसको समझकर मैं आपसे चाहती हूं कि मुझको पुण्यलोक मिले ६९ वामदेवजी बोले कि हे सुन्दरि, राजपुत्रि ! तैंने राजा के कुल की रक्षा की, अब मैं तुझको वरदान देता हूं कि तू इस इक्ष्वाकुकुल के बड़े राज्य को पालन कर ७० रानी बोली कि महाराज ! जो आपने मुझपर कृपा की है तो राजा को भी पाप से मुक्त कर दीजिये और ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरा कल्याण हो और मैं पुत्र और बान्धवोंसहित राज्य भोगूं ७१ यह सुनकर वामदेवजी बोले कि 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही हो। इसके पीछे राजा दल ने प्रसन्न होकर वामदेवजी को प्रणाम किया और उनको वाम्य घोड़े दे दिये ॥ ७२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

एकसौ तिरानबेवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से बकऋषि और इन्द्र का संवाद वर्णन करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! सब ऋषि, ब्राह्मण और राजा युधिष्ठिर ने उक्त कथा को सुनकर मार्कण्डेयजी से पूछा कि महाराज ! बकनामी ऋषि की बड़ी आयु किस कारण से हुई थी। मार्कण्डेयजी बोले कि हां बकऋषि बड़े तपस्वी और आयुष्मान् थे, आपको इसमें क्या संदेह है, यह बात निश्चय है, इसमें विचार करना उचित नहीं है १। २ यह सुनकर भाइयोंसमेत कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बोले कि हमने सुना है कि महात्मा बक और दाल्भ्य

ऋषि चिरंजीवी, इन्द्र के मित्र और प्रमाणीक ऋषि थे। हे भगवन्! मैं आपसे उन बकऋषि और इन्द्र के दुःख सुखरूपी समागम को तत्त्वपूर्वक सुना चाहता हूं ३।५ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्! अच्छा, सुनो। पूर्वकाल में जब देवासुरसंग्राम प्रवृत्त होकर निवृत्त हुआ और इन्द्र तीनों लोकों का राज्य करने लगा ६ और वर्षा अच्छी होने लगी, खेतियां भले प्रकार से उगने लगीं, प्रजा अपने अपने धर्म में रत और रोगरहित होने लगी और सब मनुष्य बड़ी प्रसन्नता से रहने लगे, तब इन्द्र एक दिन ऐरावत हाथी पर सवार होकर स्वर्ग से पृथ्वी पर अपनी प्रजा के देखने को आया और चित्र विचित्र आश्रम, अनेक नदी, नगर, ग्राम, देश, धर्मात्मा राजा, कूप, बावड़ी, तड़ाग, अनेक सरोवरों को जिनके किनारे ब्रह्मचारी ब्राह्मणलोग बास कर रहे थे देखता हुआ पूर्वदिशा के रमणीक देश में जो समुद्र के समीप और बहुत से वृक्षों से परम शोभायमान था पहुँचा। उस देश में उसने एक बड़ा सुन्दर आश्रम जिसमें मृग और पक्षी कलोल कर रहे थे देखा और उसी आश्रम में बकनामी ऋषि को पाया ७।१४ वह ऋषि देवेन्द्र को देखकर प्रसन्न हुआ और उसने फल, मूल पाद्य, अर्घ और आसन आदि निवेदन करके उनकी पूजा की १५ बलासुरघाती देवेन्द्र वहां सुखपूर्वक बैठ गये और उस ऋषि से पूछने लगे कि हे निष्पाप, मुनिनायक, ब्रह्मन्! तुम्हारे जन्म के अब एक लाख वर्ष व्यतीत हो चुके, कहिये चिरञ्जीवी पुरुषों को किस बात का दुःख रहता है १६।१७ बकऋषि बोले कि हे देवेन्द्र! अप्रियपुरुषों के साथ वास होना, प्रिय पुरुषों से वियोग होना और असत्पुरुषों का मिलना यही चिरञ्जीवी मनुष्यों को दुःख होता है १८ पुत्र, स्त्री, स्वजातीय और सुहृदों का नाश और शत्रुओं के वश में रहना इनसे अधिक कोई दुःख नहीं है १६ और धन आदि ऐश्वर्य से हीन होकर दूसरे मनुष्यों से निरादर पाना भी महादुःख है इससे अधिक और दुःख नहीं है २० सो हे देवेन्द्र! चिरञ्जीवी मनुष्यों को कुलीनों के कुल की क्षय और अकुलीनों के कुल की वृद्धि और संयोग वियोग देखना पड़ता है और यह बात प्रत्यक्ष है और आप भी जानते हैं कि नीचकुल के मनुष्यों की बढ़ोतरी होने से कैसी विरुद्ध बातें होती हैं २१।२२ इसके सिवाय बड़ी आयुवालों को देवता, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, उरग और राक्षसों का विपर्यास अर्थात् नाश देखना पड़ता है इससे और क्या अधिक दुःख है २३ कुलीन

पुरुष दुष्टकुल के पुरुषों के वश में होकर अनेक क्लेश भोगते हैं और धनाढ्य लोग दरिद्रियों का अपमान करते हैं और ज्ञानी और पण्डित लोग क्लेशित और अज्ञानी सुखी रहते हैं सो हे देवेन्द्र ! चिरञ्जीवी मनुष्यों को इस प्रकार के अनेक मनुष्यसम्बन्धी दुःख, क्लेश और विपरीत धर्म का आचरण देखना पड़ता है। यह सुनकर इन्द्र बोला हे महाभाग ! हे महर्षे ! २४ । २६ फिर चिरञ्जीवियों को कोई सुख भी होता है ? बकऋषि बोले कि जो पुरुष अपने घर में आठवें अथवा बारहवें दिन शाक आदि बनाकर खा लेता है परंतु अपनी जीविका कुमित्रों के आश्रय से उत्पन्न नहीं करता है उससे बढ़कर सुखिया कोई नहीं है। अपने घर में स्वतन्त्रता से अपने ही उद्योग से लाये हुए फल और शाक आदि को बनाकर खा लेना परम कल्याणकारी है और दूसरे के घर में निरादरसहित स्वादिष्ठ अन्न भी खाना श्रेष्ठ नहीं है इसी से सत्पुरुषों ने ऐसा कहा है कि जो कृपण, दुरात्मा और कुत्ते के समान रुधिर पान करनेवाला मनुष्य दूसरे के अन्न को खाने की इच्छा रखता है उसको और उसके भोजन करने को धिक्कार है और जो द्विज पितरों को और अतिथियों को अन्नदान करके शेष बचे हुए अन्नको आप खाकर रहता है उससे भी अधिक सुखी कोई नहीं है और उस शेष बचे हुए भोजन से भी अधिक कोई स्वादिष्ठ और पवित्र भोजन नहीं है और जो मनुष्य ब्राह्मण को भात खिलाता है उसको उतने सहस्र गोदान करने का फल मिलता है जितने ग्रास ब्राह्मण खाता है और उस मनुष्य के यौवन अवस्था में किये पाप भी सब दूर हो जाते हैं २७ । ३५ और जिसके द्वार पर ब्राह्मण भोजन करके आचमन करता है उसके सब पाप क्षणमात्र में ही धुल जाते हैं ३६ हे युधिष्ठिर ! देवेन्द्र इस प्रकार से बकऋषि से अनेक प्रकार की बहुत सी कथा सुनकर अपने स्थान को चला गया ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिणवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

एकसौ चौरानबेवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिर से राजा शिबि का माहात्म्य वर्णन करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से फिर पूछा कि महाराज ! आपने ब्रह्मऋषियों का वृत्तान्त तो सुनाया परंतु अब मैं राजऋषियों की कथा सुनना चाहता हूँ । मार्कण्डेयजी बोले बहुत श्रेष्ठ, सुनिये १ कुरु के वंश में एक सुहोत्रनामी राजा था । एक दिन

वह राजा महाऋषियों से मिलकर अपने घर को लौटा हुआ आता था। मार्ग में उसको राजा उशीनर का शिबिनामी पुत्र रथ में बैठा हुआ सम्मुख आते हुए मिला उन दोनों ने आपस में मिलकर अपनी अपनी आयु के अनुसार एक दूसरे को दण्डवत् की और अशीर्वाद दिया परंतु दोनों ने अपने अपने को गुणों में तुल्य जानकर एक ने दूसरे को जानेको मार्ग नहीं दिया अर्थात् एक ने कहा तू हट जा मैं चला जाऊं और दूसरे ने कहा तू अलग हो जा मैं निकल जाऊं। उसी समय उन दोनों के समीप नारदजी आ गये और उन्होंने उनसे पूछा कि तुम दोनों एक दूसरे के मार्ग को रोके हुए क्यों खड़े हो ? २ राजा बोले कि धर्म जाननेवालों ने पूर्व समय में ऐसा कहा है कि अपने से श्रेष्ठ को, वृद्ध को, समर्थ को और स्त्री को मार्ग देना उचित है सो हम दोनों बराबर हैं, एक दूसरे को क्योंकर मार्ग दें। यहसुनकर नारदजी ने तीन श्लोक पढ़े ३ जिनका आशय यह है कि मनुष्य कोमल वचनों से क्रूरपुरुष को, क्रूर वचनों से कोमल जन को, साधु को असाधु वचनों से और असाधु को साधु वचनों से अवश्य वशीभूत कर सकता है और चाहिये भी यही कि नीच पुरुष को दान से, झूंठे को सत्यसे, क्रूर को क्षमा से और असाधु को साधुता से जीत लेवे सो देवताओं के निर्णय के अनुसार यह उशीनर का पुत्र राजा शिबि तुम दोनों में अधिक शीलवान् और साधु है अब तुम दोनों आपस में समझ लो और जो तुममें से अधिक हो वह हटकर चला जावे, तुम दोनों उदार चित्त हो। यह कहकर नारदजी चुपके हो रहे और वह कौरवबंशी राजा शिबि की परिक्रमा करके प्रशंसा करता हुआ मार्ग देकर चला गया ४।७ हे युधिष्ठिर ! यह राजा शिबि का माहात्म्य नारदजी ने कहा था ॥ ८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

एकसौ पंचानबेवां अध्याय।

मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिर से दान की प्रशंसा में राजा ययाति का चरित्र वर्णन करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! अब दूसरा चरित्र सुनो। एक समय नहुष का पुत्र राजा ययाति अपने पुरवासी और देशनिवासियोंसहित अपनी सभा में बैठा हुआ था। उसी समय एक ब्राह्मण ने राजा से आकर कहा कि महाराज ! मैं गुरुदक्षिणा देने के लिये आपसे नियमपूर्वक कुछ भिक्षा मांगने आया हूं १ राजा बोला वह नियम क्या है ? ब्राह्मण ने कहा कि महाराज!

इस लोक में दाता याचक पर भिक्षा मांगने पर क्रोध करने लगते हैं इससे मैंने आप से पूछा है कि आप मेरी प्रियवस्तु को आज किस प्रकार मांगने से देंगे २। ३ राजा ने कहा कि हे ब्राह्मण! तुम दानपात्र ब्राह्मण हो सुनो, मैं दान करके किसी से यह नहीं कहता हूं कि मैंने यह दान किया और न यह सुनता हूं कि यह पदार्थ देने के योग्य नहीं है अर्थात् मेरे पास जो कुछ है सब मांगने पर दे सकता हूं और दान देकर कभी शोच नहीं करता हूं किंतु बहुत प्रसन्न होता हूं, मुझे याचना करनेवाला ब्राह्मण बड़ा प्यारा लगता है, मेरा स्वभाव याचना करनेवाले पर क्रोध करने का नहीं है। लो अब मैं तुमको सहस्र गोदान देता हूं ४। ५ यह कहकर राजा ने उस ब्राह्मण को सहस्र गौवें दे दीं और वह ब्राह्मण गौ लेकर आशीर्वाद देता हुआ चला आया॥ ६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९५॥

एकसौ छानबेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से वृषदर्भ और सेदुकनामी राजाओं की कथा तथा इन्द्र और अग्नि द्वारा राजा शिबि के धर्म की परीक्षा का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज! मैं राजऋषियों का और माहात्म्य सुना चाहता हूं १ मार्कण्डेयजी बोले अच्छा सुनो, वृषदर्भ और सेदुकनामी दो राजा बड़े प्रतापी, नीति और अस्त्र-शस्त्र के ज्ञाता थे २ उनमें से सेदुक को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ कि वृषदर्भ का यह गुप्त वृत्त है कि ब्राह्मण को सिवाय सोना और चांदी के और वस्तु देना उचित नहीं है ३ कुछ काल पीछे एक वेदपाठी ब्राह्मण ने सेदुक से आकर अपने गुरु को गुरुदक्षिणा देने के लिये भिक्षा मांगी और कहा कि महाराज! मुझको सहस्र घोड़े दीजिये। राजा बोला कि हे ब्राह्मण! मेरी सामर्थ्य गुरु के लिये दक्षिणा देने की नहीं है ४। ६ तुम राजा वृषदर्भ के पास जाकर भिक्षा मांगो, वह राजा धर्मज्ञ है, उसका यह गुप्त व्रत है। वह तुमको अवश्य सहस्र घोड़े देगा ७ यह सुनकर उस ब्राह्मण ने वृषदर्भ के पास जाकर सहस्र घोड़े मांगे। वृषदर्भ ने उस ब्राह्मण के कोड़ा मारा तब उस ब्राह्मण ने कहा कि तुमने मुझ निरपराधी को क्यों मारा है, मैं तुमको शाप देता हूं। यह सुनकर राजा वृषदर्भ बोला कि हे वेदपाठिन्! जो कोई तुमको कोई पदार्थ न दे तो क्या उसको शाप देना चाहिये बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम शाप देते हो

ब्राह्मणको ऐसा उचित नहीं है ८।१० ब्राह्मण बोला कि मुझको सेदुकने आपके पास भेजा है और मैंने उसी के कहने के अनुसार आपसे भिक्षा मांगी है ११ यह सुनकर राजा बोला चाबुक मारनेपर अब मैं कैसे आपको निष्फल जाने दूं। आज आप ठहरिये प्रातःकाल जो कुछ बलि अर्थात् आमदनी आवेगी वह मैं तुमको दूंगा। यह कहकर उस राजा ने दूसरे दिन उस ब्राह्मण को उस सब दिन की आमदनी देदी जो सहस्र घोड़े के मूल्यसे भी अधिक थी १२।१३ अब और वृत्तान्त सुनो एक समय देवताओं ने आपस में विचार किया कि चलो हमलोग राजा उशीनर के पुत्र शिबि के धर्म की परीक्षा करें। ऐसा विचार कर इन्द्र और अग्निदेव चल दिये। अग्नि कपोत बनकर आगे आगे हो लिया और इन्द्र श्येन अर्थात् बाज बनकर मांसार्थी उस कपोत के पीछे पीछे दौड़ता हुआ चला और वे दोनों राजा शिबि के समीप आये। वहां आकर कपोत राजा शिबि की गोद में जो दिव्य आसनपर बैठा हुआ था गिरपड़ा १४।१६ उसको देखकर राजा के पुरोहित ने राजा से कहा कि महाराज! इस कपोत ने प्राणों की रक्षा के लिये श्येन के भय से आपकी शरण ली है परन्तु इसका आपकी गोद में गिरना बड़ा अशुभ है इससे आप प्रायश्चित्त करने के लिये धनदान कीजिये १७। १८ इसके पीछे कपोत ने राजा से कहा कि महाराज! मैंने श्येन के डर से अपने प्राणों की रक्षा के लिये आपकी शरण ली है। मैं कपोतरूप धारण किये हुए मुनि हूं, तू मेरा प्राणरूप है, मैंने अपने अङ्गों को तेरे अङ्गों में मिलाकर तेरी शरण ली है १९ मैं वेदपाठी और जप करनेवाला ब्रह्मचारी और तपस्वी, गुरुभक्त और निष्पाप हूं। मैं छन्दो को अच्छे प्रकार से जानता हूं, वेद मेरे अक्षर अक्षर करके पढ़े हुए हैं सो मैं कपोत नहीं हूं, मुझको श्येन को न दीजिये। वेदपाठी को शत्रु के सुपुर्द कर देना अच्छा नहीं है २०। २१ इसके उपरान्त श्येन राजा से बोला २२ कि जन्मान्तर में ऐसा हुआ करता है कि स्त्री माता हो जाती है, पिता पुत्र होजाता है और शत्रु मित्र और मित्र शत्रु हो जाते हैं। आप भी पहिले इस कपोत ही से उत्पन्न हुए थे सो इस पितारूप कपोत की रक्षा करके आप विघ्न न कीजिये २३ राजा बोला कि कभी किसीने ऐसी संस्कृत और श्रेष्ठ वाणी भी सुनी है जैसी यह कपोत और श्येन दोनों बोल रहे हैं। इन दोनोंकी वाणीको सुनकर मैं नहीं जानताहूं शुभ कर्म कैसे किया जाय २४ देखो, जो कोई शरण आये हुए जीवको उसके

शत्रु को दे देता है उसके राज्य में वर्षाऋतु में वर्षा नहीं होती है, न उसका बोया हुआ अन्न उपजता है और उसको रक्षा चाहने के समय कोई रक्षक भी नहीं मिलता है २५ ऐसे मनुष्य की सन्तान भी बाल अवस्था ही में मरजाती है, पितर भी उसके स्वर्गवास नहीं पाते हैं और उसके दिये हुए हव्य को देवता ग्रहण नहीं करते हैं २६ ऐसे अज्ञानी को निष्फल अन्न मिलता है, स्वर्गलोक से वह भ्रष्ट होजाता है और इन्द्रादिक देवता उस पर वज्र का प्रहार करते हैं २७ इससे हे श्येन ! जो तू कहै तो हम बैल का मांस बनवाकर भातसहित जहां तेरी क्रीड़ा का स्थान हो वहां इस कपोत के बदले में पहुँचा दें २८ श्येन बोला कि मैं न बैल का मांस चाहता हूं, न इस कपोत से अधिक मांस चाहता हूं। यह कपोत ही मेरा देवताओं का दियाहुआ भक्ष्य है इसीको मुझे दे दीजिए २९ राजा बोला कि भाई इस कपोत के बदले में चाहे तू मेरा सब अङ्ग ले ले अथवा अङ्ग का टुकड़ा ले ले परंतु कपोत को मत मार। मैं इस कपोत को किसी अवस्था में न दूंगा चाहे मेरे प्राण जाते रहैं। अब तू क्लेश मत करे। यह कपोत सोमसंयुक्त अर्थात् यज्ञ के सदृश सदा रक्षा के योग्य है ३०।३१ इसके बदले में और जो कुछ तू कहे सो मैं करसक्ता हूं। बता क्या तेरा प्रिय करूं जिससे इस संसार में मेरे धर्म और कर्म की प्रशंसा होवे ३२ यह सुनकर श्येन बोला कि बहुत अच्छा, आप अपनी जंघा का मांस काट कर इस कपोत की बराबर मुझे तौल दीजिये, ऐसा करने से मेरा प्रिय होगा। यह कपोत बचजायगा और आपका संसार में नाम होगा ३३ यह सुनकर राजा ने तराजू मँगाकर अपनी दाहिनी जांघ में से एक टुकड़ा मांस का काट कर चढ़ा दिया परंतु वह कपोत के तुल्य नहीं हुआ। तब राजा ने दूसरा टुकड़ा काटकर चढ़ाया फिर भी कपोत ही भारी रहा। इस प्रकार से राजा ने सब शरीर का मांस काट काट कर चढ़ा दिया परंतु कपोत अधिक ही रहा ३४। ३५ तब राजा आप तराजू पर जा चढ़ा और उसने अपने मन को नेक भी उदास नहीं किया। यह देखकर वह श्येन पक्षी त्रात अर्थात् रक्षा की ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गया। तब राजा ने उस कपोत से पूछा कि हे पक्षिन् ! यह श्येन पक्षी कौन था, असमर्थ ऐसा काम कभी नहीं करेगा। तुम मेरे प्रश्न का उत्तर ठीक ठीक कहो ३६। ३७ कपोत बोला कि मैं धूम्र की ध्वजा रखनेवाला वैश्वानर नाम से प्रसिद्ध अग्नि हूं और श्येन वज्रधारी शचीपति इन्द्र था।

हम दोनों तेरे धर्म की परीक्षा लेने के लिये इस रूप से आये थे ३८ अब तैंने अपने अङ्ग के जिस जिस स्थान से मांस के टुकड़े काट काटकर मेरे बदले में दिये हैं वहां वहां मैं तेरे शरीर में पवित्र कल्याणरूप और सुनहरे चिह्न किए देता हूं। तू प्रजा का पालन करेगा, यश पावेगा और देवऋषियों का सम्मत होगा और तुम्हारे शरीर को फाड़कर तुम्हारे इस पार्श्व से एक बड़ा यशस्वी शूरवीर और श्रेष्ठपुत्र होगा जिसका नाम कपोतरोमा होगा ॥ ३९ । ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि शिबिचरिते षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

एकसौ सत्तानबे का अध्याय।

मार्कण्डेयजीका युधिष्ठिरसे अष्टक, प्रतर्दन, वसुमना और शिबि के स्वर्ग जानेका वृत्तान्तकहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त वृत्तान्त को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने फिर मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज! राजऋषियों का और माहात्म्य कथन कीजिये। यह सुनकर मार्कण्डेयजी अष्टक का माहात्म्य इस प्रकार से वर्णन करने लगे कि विश्वामित्र के पुत्र अष्टक ने यज्ञ किया था उस यज्ञ में सब राजालोग और उसके भाई प्रतर्दन, वसुमना और उशीनर का पुत्र शिबि भी आये थे। जब यज्ञ समाप्त हो गया तब वह राजा भाइयों सहित रथ में सवार होकर स्वर्ग को चला। राह में उनको नारदजी मिले। उन सबों ने उनको दण्डवत् की और कहा कि रथपर सवार हो लीजिये १। २ यह सुनकर नारदजी 'तथास्तु' कहकर रथपर सवार हो लिये। उस समय उन चारों में से एक ने नारदजी से पूछा कि महाराज! मैं आपको प्रसन्न करके कुछ पूछना चाहता हूं। नारदजी बोले कि पूछो। तब उसने कहा जिनकी आयु पूर्ण होती है वे सर्वगुणसंपन्न और प्रसन्न होते हैं सो हम चारों 'पूर्णायु' होकर स्वर्ग प्राप्त करके जाते हैं। हम चारों में से कौन क्षीणपुण्य होकर पहिले पृथ्वी पर गिरेगा। नारदजी बोले कि अष्टक गिरेगा ३। ४ तब उसने पूछा कि क्या कारण है? नारदजी बोले कि मैं अष्टक के घर गया था वह मुझको जब रथ पर सवार कराकर चला तब मैंने कई सहस्रवर्ण विभक्त गाय देखीं। मैंने अष्टक से पूछा कि ये गायें किसकी हैं? अष्टकने कहा कि मैंने इन गायों को छोड़ा है। इस प्रकार से यह अपनी श्लाघा अपने आप करता है इससे यही पहिले स्वर्ग से गिरेगा। तब उसने पूछा कि महाराज! अब हम तीन रह गये, उनमें से पहिले कौन क्षीणपुण्य होकर गिरेगा ५ नारदजी बोले कि प्रतर्दन। तब

उसने पूछा कि इसके गिरने का क्या कारण है। नारदजी बोले कि मैं इसके घरपर भी गया था, यह मुझको रथपर चढ़ाकर ले चला। मार्ग में एक ब्राह्मण ने इससे आकर घोड़ा मांगा। इसने कहा कि मैं लौटकर आपको घोड़ा दूंगा तब ब्राह्मण ने कहा कि मुझे शीघ्र घोड़ा दीजिये। तब इसने अच्छा कहकर रथ के दाहिनी ओर का घोड़ा खोलकर दे दिया। आगे चलकर दूसरा ब्राह्मण मिला उसने भी इससे घोड़ा मांगा तब इसने उससे भी उक्त प्रकार से कहकर रथ के बाईं ओर का घोड़ा उसको दे दिया। थोड़ी दूरपर तीसरा ब्राह्मण मिला उसने भी इससे घोड़ा मांगा तब इसने रथ के वामधुर्य घोड़े को खोलकर उसे दे दिया। आगे बढ़कर चौथा ब्राह्मण मिला उसने भी इससे घोड़ा मांगा। यह उस समय जल्दी में था इससे इसने कहा कि मैं दूंगा ठहरो। तब वह ब्राह्मण बोला कि शीघ्र दीजिये। यह सुनकर इसने रथ का चौथा घोड़ा भी खोलकर दे दिया और रथ की धुरी को आप थांभकर कहने लगा कि ब्राह्मणों को योग्य और अयोग्य का कुछ विचार नहीं है ९।१० इसप्रकार से इसनेदान तो दिया परंतु दोष भी लग गया इससे यह क्षीणपुण्य होकर पृथ्वीपर गिरेगा। तब उसने पूछा कि महाराज! अब दो मनुष्य और रह गये इनमें से पहिले कौन स्वर्ग से क्षीणपुण्य होकर गिरेगा? नारदजी बोले वसुमना गिरेगा ११ उसने पूछा कि यह किस कारणसे गिरेगा। नारदजी बोले कि एक समय मैं चारों ओर घूमताहुआ वसुमनाके घरगयाथा १२ और प्रयोजन मेरे जानेका यह था कि मुझे पुष्परथ की आवश्यकता थी। जब मैं इसके घर पहुँचा तब मैंने देखा कि ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढ़ रहे हैं। जब ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढ़ चुके तब इसने पुष्परथ ब्राह्मणों को दिखलाया, मैंने उस रथकी प्रशंसा की। तब इसने मुझसे कहा कि भगवन्! यह रथ आपका ही है। इसके पीछे मुझको रथ की फिर आवश्यकता हुई और मैं फिर इसके घर गया तब भी इसने यही कहा कि यह रथ सब प्रकार से आपही का है। फिर मैं तीसरी बार गया और मैंने ब्राह्मणों को स्वस्तिवाचन करते देखा। उससमय भी इसने रथ को ब्राह्मणों को दिखलाकर मुझसे कहा कि हे भगवन्! आपने इस पुष्परथ का स्वास्तिवाचन देखा। इस प्रकार से इसने द्रोहवचन अर्थात् देना लेना कुछ नहीं वृथा ही स्तुति की। इससे यह क्षीणपुण्य होकर स्वर्ग से फिर पृथ्वी पर उतारा जायगा १३। १५ तब उसने पूछा कि अब यह एक रह गया यह स्वर्ग में जाकर उतरेगा या नहीं? नारदजी बोले

कि यह चौथा राजा शिबि स्वर्ग में जाकर पृथ्वी पर नहीं आवेगा । हां मैं चाहे क्षीणपुण्य होकर उतारा जाऊं । उसने पूछा इसका क्या कारण है ? नारदजी बोले कि मैं राजा शिबि के समान नहीं हूं । एकसमय राजा शिबि के पास एक ब्राह्मण आया और उसने राजा से कहा कि मैं अन्न चाहता हूं । राजा ने उससे पूछा कि आपके लिये क्या अन्न बनाया जावे १६ । १७ ब्राह्मण बोला कि अपने बृहद्गर्भ नाम पुत्र को काटकर उसका मांस बना और अन्य अन्य भी अन्न बना । यह सुनकर राजा ने पुत्र को काटकर उस शिरके मांसको संस्कार कराया और जब हो गया तब उस मांस को एक पात्र में रखकर शिरपर लिये हुए उस ब्राह्मण को ढूंढ़ने निकला १८ ढूंढ़ते समय किसी ने राजा से कहा कि वह ब्राह्मण बड़ा क्रोधी है, तेरे नगर में घुस कर कोषागार, शस्त्रघर, स्त्रियों का स्थान, अश्वशाला और हस्तिशाला को दग्ध कर रहा है १९ यह सुनकर राजा ने अपने मन को यत्किंचित् भी मलीन नहीं किया किंतु उसी प्रकार मांस शिरपर लिये हुए ब्राह्मण को ढूंढ़ने नगर के भीतर चला गया । जबवह ब्राह्मण मिला तब राजा ने उससे कहा महाराज! लीजिये यह मांस तैयार है । यह सुनकर उस ब्राह्मण ने आश्चर्य से नीचे को मुख कर लिया और राजाको कुछ उत्तर नहीं दिया २० तब राजा ने उस ब्राह्मण से अनेक बातें कहकर उसे प्रसन्न किया और उससे कहा कि भोजन कीजिये । वह ब्राह्मण एक मुहूर्त भर राजा की ओर देखता रहा उपरान्त बोला २१ कि तुमहीं इसको भोजन करो राजा बोला बहुत श्रेष्ठ, ऐसा कहकर राजा ने पूर्ववत् प्रसन्नतापूर्वक उस ब्राह्मण की पूजा की और मांस के पात्र को खोलकर बैठ गया ज्योंही राजाने चाहा कि भोजन करूं, त्योंही उस ब्राह्मणने राजा का हाथ पकड़ लिया और उसे वरदान देकर उससे कहा कि तैंने क्रोधको निस्संदेह जीत लियाहै और तेरे पास कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसको ब्राह्मणोंको देनेसे तू निषेध करे। उस समय राजा ने ऊपर मुख उठाकर जो देखा तो देखता क्याहै कि उसका वही पुत्र जिसको उसने काटकर बनाया था, अलंकृत होकर देवकुमारों के सदृश खड़ाहै। तब वह ब्राह्मण राजा से यह कहकर अन्तर्धान हो गया कि मैं विधाता हूं, तेरी परीक्षा करनेके लिये इस रूपसे आयाथा । इसके उपरान्त राजा के मन्त्रियोंने राजासे पूछा कि आपने ऐसा कर्म किस कामना से किया था २२।२५ राजाबोला किमैं कोई दान, यश, ऐश्वर्य, भोग और किसीवस्तुकी तृष्णाकी कामनासे नहीं देताहूं।

भाई यह पापियोंके चलने का मार्ग नहीं है। यह वह श्रेष्ठमार्ग है जिसपर सत्पुरुष चलते हैं। इससे मैं भी निष्काम होकर उसी मार्ग पर चलताहूं। हे युधिष्ठिर ! यह शिबि का बड़ाश्रेष्ठ माहात्म्य है मैं इसमाहात्म्यको यथावत् जानताहूं २६।२७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

एकसौ अट्ठानबे का अध्याय।

पाण्डवों का मार्कण्डेयजी से पूछना कि आपसे बड़ी आयु भी किसी की है और मार्कण्डेयजीका राजा इन्द्रद्युम्नकी कथा कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे सब ऋषियों ने और पाण्डवों ने मार्कण्डेयजी से पूछा कि महाराज ! आपसे अधिक भी किसी की आयु है ? मार्कण्डेयजी बोले कि हां, इन्द्रद्युम्ननामी राजऋषि मुझसे बड़ा है। वह राजऋषि क्षीणपुण्य होकर स्वर्ग से पृथ्वीपर गिरकर मेरे समीप आया और मुझसे बोला कि संसार में अब मेरी कीर्ति नष्ट होगई है, आप मुझको जानते हैं ? मैंने कहा कि मैं एक रात्रि से अधिक किसी ग्राम में नहीं बसता हूं, सदैव मेरी प्रीति तीर्थाटन में रहती है और जपके नियममें मग्न रहता हूं इससे मुझको यह भी नहीं ज्ञान है कि मुझको अपने लिये अब क्या करना चाहिये ? और न मैं कुछ शरीर के उपताप के कारण से अपने निमित्त करता हूं। ऐसी अवस्था में मुझको भूत और भविष्य का ज्ञान क्योंकर रह सक्ता है १।३ तब उस राजऋषिने मुझसे पूछा कि तुमसे और भी कोई बड़ी आयु रखनेवाला है। मैंने कहा हां, प्रावारकर्णनामी उलूक जो यहां से बहुत दूर पर हिमालय पहाड़ में रहता है, मुझसे अधिक चिरजीवी है। वह आपको आश्चर्य नहीं कि जानता हो ४ इसके पीछे वह राजऋषि मुझको घोड़ा बनाकर उलूक के पास ले पहुँचा और उसने उलूक से पूछा कि आप मुझको जानते हैं ? उलूक ने एक मुहूर्त ध्यानकरके उससे कहा कि मैं आपको नहीं जानता हूं। तब उस इन्द्रद्युम्न राजऋषिने उलूकसे फिर पूछा कि अच्छा संसारमें किसीकी आयु आपकी आयु से बड़ी भी है ? उलूक बोला कि हां, इन्द्रद्युम्न सरोवरपर नाड़ीजंघ नाम बगला रहता है उसकी आयु मुझसे बड़ी है, उससे आप चलकर पूछिये। यह सुनकर वह राजऋषि मुझको और उलूकको लेकर इन्द्रद्युम्न सरोवर पर जहां वह बगला रहता था पहुँचा। वहां पहुँचकर हमलोगोंने उस बगले से पूछा कि आप इस इन्द्रद्युम्न राजा को जानते हैं ? वह बगला एक मुहूर्त विचारकर बोला कि मैं इनको नहीं

जानता हूं। तब हम लोगोंने उस बगले से फिर पूछा कि आपसे बढ़कर भी कोई चिरजीवी है। वह बगला बोला हां, इस सरोवर में अकूपार नाम एक कछुआ रहता है वह मुझसे भी अधिक चिरजीवी है, उससे आप पूछिये कदाचित् वह इस राजा को किसी प्रकार से जानता हो ५। ८ इसके उपरान्त उस बगले ने कछुये को सम्बोधन करके बुलाया और उससे कहा कि हमको आपसे कुछ पूछना है आप बाहर आइये तो पूछें। यह सुनकर वह कछुआ सरोवर से निकल कर हमलोगों के पास चला आया तब हमलोगों ने उससे पूछा कि आप इस राजा इन्द्रद्युम्न को जानते हैं ९ तब वह कछुआ एक मुहूर्तभर ध्यान करके खिन्नचित्त होकर आंखें डबडबाता हुआ बोला कि हम इस राजा को क्योंकर न जानें इसने सहस्र यज्ञों में यज्ञस्तम्भ लगाये थे और अनन्त दक्षिणा व्यय की थी और अनन्त गोदान किये थे जिसके कारण से यह सरोवर बनाया गया था जिसमें हम रहते हैं १०। ११ ज्योंही हम सब कछुये से उक्त वृत्तान्त सुनचुके त्योंही देवलोक से देवरथ वहां प्रकट हुआ और हम सबने यह वाणी सुनी कि हे इन्द्रद्युम्न! तेरी कीर्ति अभी संसार में है, तू स्वर्ग में जाकर यथोचित स्थान में वास कर, तेरा स्वर्ग में जाना शुभ हो १२ इस वाणी से ऐसा प्रतीत हुआ कि पुण्यकर्म का शब्द स्वर्ग और पृथ्वी दोनों को स्पर्श करता रहता है जब तक वह शब्द पृथ्वीपर रहता है तभीतक प्राणी स्वर्ग में वास करताहै १२ और जिस प्राणी की संसार में अकीर्ति रहती है वह अधम लोकों में गिरता है इससे मनुष्य को उचित है कि मोक्ष के लिये सदैव कल्याणरूपी व्रत करे और पापवृत्ति को छोड़कर धर्ममार्ग पर चले १४। १५ हे युधिष्ठिर। वह राजा इन्द्रद्युम्न उक्त वाणी को सुनकर उस रथको देखकर बोला कि जब तक मैं इन वृद्धों को इनके स्थानों पर न पहुँचा आऊं तब तक ठहरो १६ इसके पीछे वह राजऋषि मुझको और प्रावारकर्ण उलूक को उचित स्थान पर पहुँचाकर उसी रथ में बैठकर स्वर्ग को चला गया और वहां उचित स्थान पर रहने लगा। हे पाण्डवो! मैंने इस प्रकार से चिरजीवी लोग देखे १७ यह सुनकर पाण्डव बोले कि फिर आपने बहुत अच्छा किया जो स्वर्गसे गिरे हुए राजा इन्द्रद्युम्न को फिर उसके स्थान को ही पहुँचा दिया। यह सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि इस देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी ने भी राजा नृग को नरक से उद्धार करके स्वर्गवास दिया है॥ १८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

एकसौ निन्नानबे का अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से दानधर्म वर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर महाभाग मार्कण्डेयजी से इन्द्रद्युम्न राजऋषि की स्वर्गसिद्धि का वृत्तान्त सुनकर पूछने लगा कि महाराज! आपके विचार में मनुष्य किस प्रकार की अवस्था में दान करने से इन्द्रलोक प्राप्त करसक्ता है और बालअवस्था, गार्हस्थ्य, यौवन और वृद्धावस्था चारों अवस्थाओं में किस प्रकार से फल भोगता है। कृपा करके इसका वृत्तांत यथावत् वर्णन कीजिये १।४ मार्कण्डेयजी बोले अच्छा सुनो। चार प्रकार के मनुष्यों का जन्म वृथा है प्रथम जो पुत्रहीन और अधर्मी हैं, दूसरे जो दूसरे के आश्रय होकर भोजन करते हैं, तीसरे जो केवल अपने ही अर्थ भोजन बनाकर खाते हैं और चौथे जो बालक, वृद्ध और अतिथि को विना भोजन कराये आप खा लेते हैं और सोलह दान करना वृथा हैं। प्रथम ऐसे मनुष्य को देना जिसने ब्रह्मचर्य व्रत सदा के लिये लिया हो और वह उस धर्म से पतित हो गया हो, दूसरे ऐसा धन दान करना जो अन्याय से संचित किया गया हो, तीसरे पतित ब्राह्मण को दान करना, चौथे मिथ्यावादी गुरु को, पांचवें पापी को, छठे कृतघ्नी को, सातवें गांव में भिक्षा मांगनेवाले को, आठवें वेद बेचनेवाले को, नवें शूद्र की रसोईं करनेवाले को, दशवें ब्राह्मणजातिमात्र को अर्थात् ऐसे ब्राह्मण को जो कर्म और वेद से शून्य है केवल नाममात्र को ब्राह्मण है, ग्यारहवें ऐसे ब्राह्मण को जो शूद्रा स्त्री का पति हो, बारहवें स्त्रियों को, तेरहवें व्यालग्राह्यों को, चौदहवें सेवा करनेवाले ब्राह्मण को, पन्द्रहवें चौर को और सोलहवें मिथ्यावादी को ५।६ और जो मनुष्य तमोगुणी होकर भय अथवा क्रोध से दान करता है वह उसके फल को गर्भ में वास करके भोगता है और जो द्विजन्माओं को दान करता है वह उस दानके फल को वृद्धभाव से भोगता है १० इससे हे युधिष्ठिर! स्वर्ग की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को सदैव द्विजन्माओं को ही दान देना उचित है ११ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज! ब्राह्मणलोग चारों वर्णों का दान लेते हैं, वे ऐसा कौनसा विशेष कर्म करते हैं जिससे आपभी तरते हैं और दूसरों को तारते हैं १२ मार्कण्डेयजी बोले कि वेदपाठी ब्राह्मण जप, मन्त्र, होम और वेदपाठ से सब पापों को दूर करके वेदरूपी नाव के द्वारा आप तरते हैं और दूसरों कोभी

तारते हैं १३ जो मनुष्य ब्राह्मणों को तुष्ट करता है उससे देवता संतुष्ट होजाते हैं और वेदपाठी ब्राह्मण के केवल वचन से ही मनुष्य को स्वर्गलोक मिल जाता है १४ सो हे युधिष्ठिर ! तुम पितर, देवता और ब्राह्मणों की पूजा करते हो, तुम इसके प्रभाव से निस्संदेह अनन्त पुण्यलोक को जाओगे १५ मनुष्य मरने के समय श्लेष्मा आदि रोगों से अचेत हो जाता है, उस समय में स्वर्ग-प्राप्ति के लिये ब्राह्मणों की ही पूजा करना उचित है १६ इसके सिवाय श्राद्ध में भी ऐसे ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है जो अनिन्दित हों और दुर्वर्ण, कुनखी, कुष्ठी, कपटी, कुण्ड, गोलक और जो धनुष बाण धारण करने-वाले हैं वे यत्नपूर्वक श्राद्ध में वर्जित हैं क्योंकि ये श्राद्ध निन्दित ब्राह्मण यजमान को इस प्रकार से दग्ध कर देते हैं जैसे अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है । हां, जो ब्राह्मण अन्धे, गूंगे और बहिरे हों उनको वेदपाठी ब्राह्मणों के साथ श्राद्ध में युक्त करना अनुचित नहीं है १७ । १९ और देखो, दान देना ऐसेही ब्राह्मण को उचित है जो आप तर जाय और दाता को तार ले जाय २० । २१ और अग्नि, पुष्प, चन्दन और होम आदिसे इतनी प्रसन्नता नहीं होती है जितनी अतिथि को भोजन कराने से होती है २२ हे राजन् ! इससे तुम अतिथि को भोजन देने में अपना चित्त स्थिर रक्खो । जो मनुष्य पादोदक, पादघृत, दीप, अन्न और स्थान दान करता है वह यमराज के पास नहीं जाता है और देवता के निर्माल्य को हटाना और ब्राह्मणों की जूंठन उठाना, गन्ध लगाना, सेवा करना और अङ्ग दाबना इन प्रत्येक के करने का फल गोदान से भी अधिक है २३ । २५ और मनुष्य कपिलादान करने से सब पापों से निस्संदेह छूट जाता है, इससे मनुष्य को उचित है कि ऐसे ब्राह्मण को गोदान करे जो वेदपाठी, दरिद्री, गृहस्थी, अग्निहोत्री और पुत्र और स्त्री रखता हो और अनउपकारी हो अर्थात् अपना उसने कोई उपकार न किया हो । ऐश्वर्यवान् ब्राह्मण को देना निषेध है क्योंकि उसमें कोई गुण नहीं होता है २६ । २८ और एक गोदान एक ही ब्राह्मण को देना उचित है बहुतों को कभी न दे । क्योंकि दान की हुई गाय को बेचने से दाता के तीन पुरखा स्वर्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं २९ और वह गाय न दाता को तारती है, न उस लेनेवाले ब्राह्मण को और जो कोई अतिशुद्ध सुवर्णदान करता है वह दान अन्य सौगुने सुवर्ण के दान से अच्छा होता है और जो कोई धुरंधर

और बलवान् बैल को दान करता है ३० । ३१ वह दुर्गस्थानों को पार होकर स्वर्ग को जाता है और जो कोई ज्ञानी ब्राह्मण को पृथ्वीदान करता है उसकी सब मनोकामनाएँ पूरी होती हैं और जो मनुष्य ऐसे पुरुषोंको जो मार्ग चलने के कारण से थके हुए हैं और पीड़ित हैं और पांव उनके धूल में भरे हुए हैं अन्नदाता को पूछने पर यह बता देते हैं कि फलाना मनुष्य अन्नदान करता है, उसको भी निस्सन्देह अन्न देनेवाले के समान फल मिलता है इससे तुम सब दानों को छोड़कर केवल अन्नदान करो ३२ । ३५ अन्नदान के समान दूसरे दान का फल नहीं है । जो कोई वेदपाठी ब्राह्मण को बनाया हुआ अन्न देता है वह प्रजापति के लोक को जाता है । अन्न सबसे श्रेष्ठ है, उससे उत्तम और पदार्थ नहीं है ३६ । ३७ अन्न को कोई विराट्रूप कहते हैं और कोई उसको संवत्सर मानते हैं । संवत्सर होने से अन्न यज्ञरूप है और यज्ञ से सब पदार्थ मिल सकते हैं ३८ अन्न ही से सब जड़ और चैतन्य प्राणी प्रकट होते हैं इस कारण से अन्न सबसे श्रेष्ठ है ३९ जिन्होंने तड़ाग, बावड़ी और कूप जल के निमित्त और स्थान रहने को और अन्न भोजन के लिये पराये उपकार के लिये बना रक्खे हैं और मीठी बोली बोलते हैं वे यमराज की बात भी नहीं सुनते हैं ४० और जो मनुष्य अपने परिश्रम से उत्पन्न किये हुए धन से इकट्ठे किये हुए धान्य को सुशील ब्राह्मण को दान करता है, पृथ्वी उस पर धन की धार छोड़ती है और प्रसन्न होती है ४१ अन्नदाता सबसे पहिले स्वर्ग को जाता है, सत्यवादी उसके पीछे जाता है और विना मांगे दान करनेवाले को भी स्वर्ग मिलता है ये तीनों बराबर हैं ४२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे युधिष्ठिरने फिर मार्कण्डेयजी से पूछा कि ४३ महाराज ! यमलोक का मार्ग और उससे नरलोक का अन्तर क्या है और किस प्रकार का है और प्रमाण उसका क्या है और मनुष्य किस उपाय से उस मार्ग के पार जा सकता है ?, यह सब वृत्तान्त मुझको सुनाइये ४४ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! तुम्हारा प्रश्न धर्मरूपी बड़ा गुह्य, पवित्र और ऋषियोंकी स्तुतिके योग्य है । उसका उत्तर सुनो ४५ यमलोक का मार्ग और उससे नरलोक का अन्तर छियासी सहस्र योजन है ४६ उस मार्ग में जो आकाश में है वृक्ष, छाया, जल और स्थान कोई नहीं है जहां थका हुआ और दुखी मनुष्य विश्राम करे । उसके देखने से डर लगताहै । यमराज की आज्ञा से यमदूत प्राणी को बलसे उसी मार्ग

से यमलोक को ले जाते हैं ४७।४८ परन्तु मनुष्य आदि सब जीव जो ब्राह्मणों को घोड़ा आदि दान करते हैं वे सुखपूर्वक उस मार्ग में होकर जाते हैं ४९ जो छत्रदान करते हैं उनको मार्ग में धूप नहीं सताती है ५० अन्नदान करनेवाला उस मार्ग में तृप्त रहता है और अन्न न देनेवाला क्षुधा से पीड़ित जाता है । वस्त्रदान करनेवाला वस्त्र पहिरे हुए जाता है और वस्त्रदान न करनेवाला नंगा रहता है ५१ सुवर्ण का दान करनेवाला अलंकृत होकर सुखपूर्वक जाता है और पृथ्वी का दाता सब मनोकामना पाता हुआ सुखपूर्वक यात्रा करता है ५२ खेतीदान करनेवाले मनुष्यों को उस मार्ग में क्लेश नहीं होता है और गृहदान देनेवाले विमान में बैठकर जाते हैं ५३ जलदान करनेवालों को उस मार्ग में तृषा नहीं लगती है और प्रसन्न रहते हैं और दीपदान करनेवालों के मार्ग में प्रकाश रहता है ५४ गोदान करनेवाले मनुष्य सब पापों से छूटकर सुखपूर्वक जाते हैं और एक मास उपवास करनेवाले हंसयुक्त और छः रात्रि व्रत रखनेवाला मयूरयुक्त विमानों में बैठकर उस मार्ग के पार होते हैं और जो मनुष्य एकभुक्त से तीन रात्रि व्यतीत करता है और बीच में कुछ नहीं खाता है उसको अनामय लोक मिलते हैं और प्रेतलोक में उसको सुख प्राप्त होता है ५५।५७ ऐसे पुण्यात्मा मनुष्यों को मार्ग में पुष्पोदका नाम नदी मिलती है । उसमें वे लोग शीतल और अमृत के समान जल पीते हैं ५८ हे महाराज ! पापी जीवों के लिये वही नदी मलमूत्रादि युक्त हो जाती है । इस प्रकार से वह नदी सब मनोकामनाएँ पूरी करनेवाली है ५९ इससे हे युधिष्ठिर ! तुमभी ऐसे मनुष्य को यथाविधि अवश्य पूजो जो मार्ग चलते चलते क्षीणशरीर और जो धूलि से भरा हुआ अङ्ग होकर अन्नदाता को पूछता हुआ आशा के साथ तुम्हारे स्थान पर आवे वही अतिथि और वही ब्राह्मण है ६० । ६१ मार्ग चलनेवाले अतिथि के पीछे पीछे इन्द्रादिक देवता भी चलते हैं सो जहां अतिथि का पूजन होता है वहां वे देवता भी प्रसन्न होते हैं और पूजन न होने से निराश होकर चले जाते हैं ६२ इससे हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर ! तुमभी यथोक्त विधान से अवश्य अतिथि का पूजन करो । हमने इस बात को सैकड़ों प्रकार से कहा अब तुम और क्या सुना चाहते हो ६३ युधिष्ठिर बोले हे धर्मज्ञ, प्रभो ! मैं आपकी कही हुई पवित्र और धर्मयुक्त कथा को बारम्बार सुना चाहता हूं ६४ मार्कण्डेयजी बोले बहुत श्रेष्ठ । हे राजन् ! हमारी कही हुई धर्मोपदेशिनी और पापविध्वंसिनी

कथा सुनिये ६५ ज्येष्ठपुष्कर में कपिला गोदान करने का जो फल होता है वह वेदपाठी ब्राह्मणों के चरण धोने में होता है ६६ और पृथ्वी जब तक ब्राह्मणों के चरणोदक से गीली बनी रहती है तबतक पितर कमलपत्र से जल पीते हैं ६७ ब्राह्मण के स्वागत से सब अग्नि, आसन देने से इन्द्र, चरण धोने से पितर और भोजन कराने से प्रजापति तृप्त होजाते हैं ६८ हे युधिष्ठिर ! मनुष्य को गोदान उस समय करना उचित है जिस समय गौ ब्याये और बछड़े के केवल दो पांव और मुख दीखें क्योंकि जबतक बछड़ा अन्तरिक्ष में रहता है अर्थात् योनि में रह कर गर्भ को पूरा पूरा नहीं छोड़ता है तब तक गौ पृथ्वीरूप रहती है । ऐसे समय पर दान करने से उस गाय और बछड़े के जितने रोम हैं उतनेही सहस्र वर्ष तक दाता स्वर्गलोक में वास करता है ६९ । ७१ हे भरतवंशिन् ! जो मनुष्य काली गाय को सुवर्ण की नाक और खुर बनवाकर तिलसहित सब रत्नों से अलंकृत करके दान करता है और लेनेवाला उस गाय को फिर साधू को दे देता है वह मनुष्य फलों के फल पाता है और उसको ऐसा जानना चाहिये मानो उसने समुद्र, पर्वत और वनों सहित संपूर्ण पृथ्वी दान की है ७२ । ७४ और तारने में उस ब्राह्मण को समर्थ समझना उचित है जो भोजन के पात्रको अपने से पृथक् रखकर, जांघ के भीतर हाथ किये हुए, विना बोले चाले भोजन करे ७५ और जो ब्राह्मण मद्यपी नहीं हैं और संहितापाठी हैं वे सदाही तारण करने में समर्थ हैं ७६ वेदपाठी ब्राह्मण को जो कुछ हव्य और कव्यपदार्थ हैं सब दान देने योग्य हैं । उसको देना ऐसा है मानो अग्नि में हवन किया ७७ वेदपाठी ब्राह्मण शस्त्रप्रहारी नहीं होते हैं कि उनका क्रोध ही इस प्रकार से नाश कर देता है जैसे इन्द्र अपने वज्र से असुरों को मार डालता है ७८ हे निष्पाप, युधिष्ठिर ! यह धर्मसम्बन्धी कथा हमने तुमसे कही । नैमिषारण्यवासी मुनिलोग इस कथा को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे ७९ और शोक, भय, क्रोध और पाप से रहित होगये थे । इस कथा को सुनकर मनुष्य मुक्ति पाता है ८० उक्त कथा को सुनकर युधिष्ठिर बोले हे महाराज ! वह कौनसा शौच है जिससे वेदपाठी शुद्ध होजाते हैं, कृपा करके उसको वर्णन कीजिये ८१ मार्कण्डेयजी बोले कि शौच तीन हैं । प्रथम वाक्शौच अर्थात् पवित्र वाणी बोलना, दूसरा कर्मशौच अर्थात् सदैव अच्छे कर्म करना और तीसरा जलात्मक शौच अर्थात् शास्त्र की रीति से देही को शुद्ध करना । इन तीनों शौचों के करनेवाले मनुष्य

निस्संदेह स्वर्गीय हैं ८२ जो ब्राह्मण प्रातःकाल और सन्ध्यासमय सन्ध्योपासनपूर्वक गायत्री का जप करता है वह उस गायत्री देवी के प्रभाव से पवित्र और नष्टकिल्बिष होकर इस पृथ्वी को सागरसहित दान लेने पर भी खण्डित नहीं हो सक्ता है ८३। ८४ और उसको सूर्यादि ग्रह अरिष्टकारक होने पर भी बाधा नहीं कर सक्ते हैं किन्तु सौम्य और बड़े कल्याणकारी हो जाते हैं ८५ और मांसाहारी भयानक राक्षस भी उसको भय नहीं पहुँचासक्ते हैं ८६ वेदपाठी ब्राह्मणों को वेद पढ़ाने, यज्ञ कराने और दूसरे का दान लेनेसे दोष नहीं होता है क्योंकि ब्राह्मण जलती हुई अग्नि के समान है ८७ और ब्राह्मण चाहे सुवेद हो अथवा दुर्वेद हो, प्राकृत हो अथवा संस्कृत हो, कैसा ही हो उसका अपमान करना किसी अवस्था में उचित नहीं है क्योंकि वह राख में छिपी हुई अग्नि के समान होता है और जैसे अग्नि श्मशान भूमि में भी दूषित नहीं होती है इसी प्रकार से ब्राह्मण चाहे विद्वान् हो, चाहे अविद्वान् किन्तु उसको बड़ा देवता ही समझना चाहिये ८८।८९ और जिस नगर में उत्तम ब्राह्मण नहीं रहते हैं वह उत्तम प्राकार अर्थात् शहरपनाह और पुरद्वार अर्थात् नगर में घुसने का दरवाजा और अनेक प्रकार के प्रासाद अर्थात् महलों के होनेपरभी सुशोभित नहीं होताहै ९० हे नरनायक ! नगर उसीको समझना चाहिये जहाँ वेदज्ञ, व्रतसम्पन्न, ज्ञानवान् और तपस्वी वेदपाठी ब्राह्मण रहते हों ९१ हे युधिष्ठिर! वन अथवा व्रज में जहाँ जहाँ शास्त्री ब्राह्मण रहते हों वहाँ-वहाँ तीर्थस्थान और नगर समझना चाहिये ९२ मनुष्य के पाप तपस्वी ब्राह्मण और रक्षा करनेवाले राजा के पूजनेसे तुरंत दूर हो जाते हैं ९३ ज्ञानीलोग तीथस्थान और त्रिसुपर्ण आदि पवित्र मन्त्रों के पाठ और सत्पुरुषों के साथ बातचीत करने को परम श्रेष्ठ कहते हैं ९४ और सन्तलोग यह मानते हैं कि आत्मा सत्संग के वाक्यरूपी जलसे पवित्र हो जाताहै ९५ तीन दण्ड धारण करना, जटा रखाना, मौन रहना, मुण्डन करवाना, बल्कल अथवा मृगचर्म का वस्त्र रखना, व्रत करना, स्नान करना, अग्निहोत्र करना, वन में रहना और शरीर को सुखाना ये सब विना निर्मल चित्त हुए मिथ्या और निरर्थक हैं ९६ ।९७ सो चित्त की शुद्धि होना विना विषय और भोगों के त्यागे कठिन है, जो विषय नेत्र आदि छः इन्द्रियों में वर्त्तमान रहते हैं ९८ हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर ! विकारयुक्त मनको जीतना बहुत कठिन है परंतु जो मनुष्य मन, वचन, कर्म और बुद्धि से भी कभी पाप नहीं करते हैं वे बड़े महात्मा और तपस्वी

हैं। शरीर का सुखाना कुछ तपस्या नहीं है ९९ और जो लोग शुक्लवृत्ति से जीविका उत्पन्न करते हैं और पुत्रादि के पोषण और पालन करने के लिये यत्न नहीं करते हैं वे निष्पाप कदापि नहीं हैं क्योंकि भोजन छोड़ देना कोई तपस्या नहीं है १०० जो मुनि अपने घर में पवित्रता से रहता है और शरीर त्याग तक दयावान् रहता है वह सब पापों से छूट जाता है १ भोजन न करने और व्रत रखने से पापकर्म दूर नहीं होते हैं किन्तु इस मांस और रुधिर का आश्रय रखनेवाले शरीर को पीड़ा होती है २ और विना जाने हुए कर्म के करने से क्लेश होता है और पाप दूर नहीं होते हैं और अग्नि विना भाव के मनुष्य के दुष्कर्मों को भस्म नहीं करती है ३ मनुष्य पुण्यकर्म करने से निस्संदेह मोक्ष का अधिकारी होता है और अनशन अर्थात् निराहार व्रत करने से भी एक प्रकार की शुद्धि होती है परंतु इन व्रतों को अथवा फल मूल का आहार करने और मौन रहने, वायुभक्षण करने, शिर मुड़ाने, कुटी को त्यागने, जटा रखाने, स्थण्डिलपर सोने, अग्नि तपने, जल में घुसे रहने और पृथ्वीपर सोने से कदापि मनुष्य मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता है ४ । ६ यह उत्तमपद केवल ज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है जिसके होते ही जरा,मरण और व्याधि ये सब दूर होजाते हैं ७ और आत्मा फिर इस प्रकार से ज्ञानरूपी अग्नि से जले हुए क्लेशों से पीड़ित नहीं होता है जैसे अग्नि से जले हुए पदार्थ फिर सजीव नहीं होसकते हैं ८ संसारी सब शरीर इसप्रकारसे नाशवान् हैं जैसे समुद्र में उठाहुआ फेन फिर नाश हो जाता है सो जो कोई पूरे अथवा आधे श्लोक के उपदेश से सर्वव्यापी आत्मा को जान लेता है वही सिद्ध अर्थ है ९। १० दो अक्षर तत्त्व से अथवा श्लोकमन्त्र पदों से वा वेद ब्राह्मणों से अथवा दूसरे सहस्रों उपनिषदों से प्रत्यगात्मा का केवलीभाव जानकर कोई एक ब्रह्मज्ञानी परमपद को पहुँचता है ११ और 'अहं ब्रह्मास्मि' यह अनुभव ही मोक्ष का लक्षण है अर्थात् प्रत्यय है और जिन मनुष्यों के आत्मा में संशयरूपी द्विविधा लगी हुई है उनका न यह लोक सुधरता है न परलोक और सुख भी उनको नहीं मिलता है १२ और जो मनुष्य वेद के अर्थ को समझता है और उसके तात्पर्य को पूरा पूरा जानता है उसको वेदोक्त कर्मों से ऐसा उद्वेग होता है जैसे दावानल से मनुष्यों को भय होता है १३ सो हे युधिष्ठिर! जो तुम एकाक्षर प्रणवसे बँधे हुए ज्ञानको वेदोक्त युक्तियों के द्वारा चाहते हो तो शुष्क तर्क को छोड़कर श्रुति स्मृति का आश्रय करो क्योंकि उस ज्ञानसाधन

के वेदविपरीत होनेसे तत्त्वज्ञानकी सिद्धि नहीं होगी १४ मनुष्य को प्रथम यत्न से वेदों का जानना उचित है क्योंकि वेद तत्त्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं। उनके जानने से आत्मज्ञान होता है। वही आत्मज्ञान ज्ञानियों का जानने-योग्य पदार्थ अर्थात् ब्रह्मज्ञान है १५ और देवताओं की आयु और कर्मों का फल और शरीरधारियों का प्रभाव युग युग के अनुसार घटता बढ़ता रहता है १६ इन्द्रियों की निर्मलता के कारण से अनशन व्रत का त्याग करना उचित है इससे इन्द्रियों के विषयों को रोकना ही बड़ा दिव्य अनशन व्रत है १७ मनुष्य को तप करने से स्वर्ग मिलता है, दान करने से अच्छे भोग भोगने को प्राप्त होते हैं, ज्ञान से मोक्ष मिलता है और तीर्थयात्रा से पाप दूर होते हैं १८ वैशंपायनजी बोले हे राजेन्द्र, जनमेजय! यह सुनकर महायशस्वी राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज! मैं प्रधान और उत्तम विधि को सुनना चाहता हूं १९ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र! तुम दानधर्म का वृत्तान्त सुना चाहते हो, यह धर्म सबसे उत्तम होने के कारण से मुझको भी अभीष्ट है, सुनो। अब मैं श्रुति और स्मृति से प्रकट होनेवाली दान की गुप्तबातों का प्रकाश करता हूं। श्राद्ध करना पीपल की छाया में जहां पीपल के पत्तों से हवा भी होती हो अच्छा है २०। २१ और अन्न आदि द्रव्यों का मनुष्य के जीवन अर्थात् प्राण पालने के लिये देना एक लाख कन्यादान करने के समान है। इस दान का नाश कभी नहीं होता है २२ और जो मनुष्य धर्मशाला बनवाकर उसमें योग्य मनुष्यों को बसाता है वह सब यज्ञों के करने का फल पाता है २३ और प्रतिस्रोत तीर्थ पर अर्थात् उस स्थान पर जहां पूर्व को बहनेवाली नदियां पश्चिम की ओर बहती हों, घोड़ों का दान करना अक्षय फल का देनेवाला है और अन्न की इच्छा रखनेवाले अतिथिरूपी इन्द्र को अन्नदान देने से भी अक्षयफल प्राप्त होता है और पीपल की छाया में भी श्राद्ध करने से महाधुर के समान सब पाप दूर हो जाते हैं और ब्राह्मण को ग्रहण में दान देना अक्षयफल का देनेवाला और मंगलरूप है २४ दान देना सदा उत्तम है परंतु पर्व में अर्थात् अमावस-पूनो को देने से दुगुना और ऋतु ऋतु में देने से दशगुना और वर्ष के प्रारंभ में देने से सौगुना और सूर्य के विषुवत् रेखा पर जाने के समय अर्थात् सूर्य के मेष और तुला पर आने पर देने से अनन्तगुना फल होता है और मकर, कर्क, धन, मिथुन, कन्या और मीन की संक्रान्ति

और सूर्य और चन्द्र ग्रहणों में दान करने से दान का फल अक्षय प्राप्त होता है २५। २६ और जो मनुष्य पृथ्वीदान नहीं करता है उसको भोगने को भूमि और जो यान अर्थात् सवारी नहीं देता है उसको चढ़ने को सवारी नहीं मिलती है अर्थात् जो मनुष्य ब्राह्मणों को जिस जिस कामना से जो जो पदार्थ देता है जन्म लेने पर वही वही पदार्थ उसको भोगने को मिलते हैं २७ सुवर्ण अग्नि का पुत्र अर्थात् अग्नि के वीर्य से उत्पन्न हुआ है और पृथ्वी वैष्णवी है और गायें सूर्य की पुत्री हैं इससे सुवर्ण, पृथ्वी और गौओं को दान करना तीनों लोक दान करने के समान हैं २८ सो हे युधिष्ठिर! दान से श्रेष्ठधर्म न कोई हुआ है न है और होनहार भी नहीं है। इससे बुद्धिमान् लोग संसार में दान को प्रधान और श्रेष्ठ कहते हैं॥ १२९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वएयेकोनद्विशततमोऽध्यायः॥ १९९॥

दोसौ का अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिरसे धौन्धुमार उपाख्यान में उत्तङ्कऋषि का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर ने इन्द्रद्युम्न के स्वर्ग प्राप्त होने का वृत्तान्त सुनकर महाभाग तपस्वी और दीर्घ आयुष्मान् मार्कण्डेयजी से फिर पूछा कि हे धर्मज्ञ, महाराज! आप सब देवता, दानव, राजऋषि और सनातन ऋषियों के वंशों को अच्छी तरह जानते हैं १। ३ हे मुनिनायक, द्विजोत्तम! मेरी समझ से इस लोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसको आप न जानते हों। मनुष्य, उरग और राक्षसों की भी सब कथाएँ आपको विदित हैं ४ हे द्विजसत्तम! देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और अप्सराओं के चरित्र भी आपसे छिपे नहीं हैं इससे मैं आपसे यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं कि इक्ष्वाकुवंशी कुवलाश्व का नाम धुन्धुमार क्योंकर धरा गया था। हे भार्गवसत्तम! उसके नाम के बदलने का क्या कारण था ५।७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर के उक्त प्रकार के प्रश्न को सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि हे महीपते, युधिष्ठिर! यह धौन्धुमार आख्यान बड़ा धर्मोपदेशक है सुनिये। मैं राजा कुवलाश्व के धुन्धुमार नाम होने का वृत्तान्त कहता हूं ८। १० हे तात, महाराज! उत्तङ्कनामी एक महात्मा महाऋषि थे। उनका आश्रम मरुधन्व देश में है। उन्होंने बहुत वर्षों तक विष्णुभगवान् की कठिन तपस्या की थी ११।१२ भगवान् ने उनकी तपस्या से प्रसन्नहोकर उनको

प्रत्यक्ष आकर अपने दर्शन दिये, उनको देखते ही उत्तङ्क स्तुति करने लगे १३ उत्तङ्कजी बोले कि हे महातेजस्विन्, देव! आप सब प्रजा, देवता, असुर, मानव, जड़, चैतन्य, ब्रह्मा, वेद और जो कुछ और पदार्थ हैं सबके उत्पन्न करनेवाले हैं। आकाश आपका शिर है, सूर्य चन्द्रमा आपके नेत्र हैं १४।१५ हे अविनाशिन्, मधुसूदनजी! वायु आपका श्वास है अग्नि आपका तेज है, सब दिशा आपकी भुजा हैं, समुद्र आपकी कुक्षि है, पर्वत आपके घुटनू हैं, पृथ्वी आपके पैर हैं और सब औषधियां आपके रोम हैं १६।१७ इन्द्र, चन्द्रमा, अग्नि, वरुण, असुर और उरग नम्रीभूत होकर आप ही की उपासना और नानास्तवों से स्तुति करते हैं १८ हे भुवनेश्वर! आपही सर्वव्यापी हैं। बड़े बड़े योगी और महाऋषि आपकी स्तुति करते हैं १९ हे पुरुषोत्तम! आपकी प्रसन्नता से जगत् स्वस्थ और अप्रसन्नता से भयभीत रहता है, आप अकेले ही सब भयों को दूर कर सक्ते हैं २० हे देव! आप देवता, मनुष्य और सब प्राणियों को सुख देनेवाले हैं। आपने अपने तीन पराक्रमों से तीनों लोक हरे थे २१ आप ही ने बढ़े हुए असुरों को नाश किया था और आपके ही पराक्रम से देवताओं ने परम निर्वाणपद पाया है २२ आपके क्रोध करने पर बड़े बड़े दैत्यों के इन्द्र आपसे हार गये, आप ही सब प्राणियों के कर्ता और विकर्ता हैं २३ आपका आराधन करके सब देवताओं की सुखपूर्वक वृद्धि होती है। मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इन्द्रियों के स्वामी विष्णु भगवान् उत्तङ्क की उक्त स्तुति को सुनकर महात्मा हृषीकेश विष्णुजी उत्तङ्क से बोले कि मैं प्रसन्न हूं, तू वर मांग २४ उत्तङ्क बोले कि महाराज! मेरा अभीष्ट पूर्ण हुआ जो मैंने आप जगत् के रचनेवाले, दिव्यरूप, सनातन पुरुष के दर्शन पाये २५ तब विष्णु भगवान् ने कहा कि हे ब्रह्मन्! हे द्विज! मैं तेरी भक्ति और तेरे धैर्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, परंतु तुझ को हमसे वरदान लेना अवश्य उचित है २६ यह सुनकर हे भरतसत्तम! उत्तङ्क ने प्राञ्जली बनाकर कहा कि हे कमललोचन, सर्वशक्तिमन्, भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके यह वरदान दीजिये कि मेरी बुद्धि सदैव धर्म, सत्य और दम में परायण बनी रहे और आपका ध्यान मैं भक्तिपूर्वक किया करूं २७।२८ विष्णु भगवान् बोले कि हे द्विज! मेरी कृपा से ऐसा ही होगा और योग भी तुझे अपने आप भासित हो जायगा, उस योग से युक्त होकर तू देवता और सब लोकों में बड़ा कार्य करेगा। वह कार्य यह है कि

धुन्धुमारनामी महाअसुर संसार को नाश करने की कामना से बड़ी भारी तपस्या कर रहा है, उस असुर को इक्ष्वाकुवंशी राजा बृहदश्व का पुत्र कुबलाश्व नामी मेरे योगबल को पाकर हे विप्रर्षे ! तेरी आज्ञा से मारेगा और धुन्धमारनाम से विख्यात होगा एवं विष्णु भगवान् उक्त प्रकार से कहकर वहीं अन्तर्धान होगये ॥ २६ । ३४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

दोसौएक का अध्याय ।

इक्ष्वाकुवंशी राजा बृहदश्व की वंशावली और धुन्धदैत्य को मारने की आज्ञा का वर्णन ।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! राजा इक्ष्वाकु के मरने पर उसका पुत्र शशाद इस पृथ्वी को पाकर राजा हुआ । राजधानी उसकी अयोध्यापुरी थी१ शशाद के ककुत्स्थनाम बलवान् पुत्र हुआ और ककुत्स्थ के अनेनानामी पुत्र हुआ । अनेना के पृथुनामी पुत्र हुआ और पृथु के विश्वगश्व पुत्र हुआ । उस के अद्रिनामी पुत्र हुआ । अद्रि के युवनाश्व पुत्र हुआ और युवनाश्व के श्राव और श्राव के श्रावस्तकनामी पुत्र हुआ जिसने श्रावस्ती पुरी बसाई थी। श्रावस्तक के बृहदश्वनामी और बृहदश्व के कुबलाश्वनामी पुत्र हुए । कुबलाश्व गुणों में अपने पिता से अधिक था और उसके इक्कीस सहस्र पुत्र बड़े बलवान् और विद्यावान् उत्पन्न हुए २ । ६ राजा बृहदश्व अपने शूरवीर और धार्मिक पुत्र कुबलाश्व को राज्य देकर तपस्या करने के लिये तपोवन को चला गया ७ । ८ हे युधिष्ठिरजी ! वहां उसके आने का हाल सुनकर महातेजस्वी और अप्रमेयात्मा उत्तङ्क ऋषि उसके पास गये और उसको वन में तपस्या करने से निषेध करके कहने लगे कि हे राजन् ! तुमको अभी प्रजा की रक्षा करना उचित है जिससे हमलोग निर्भय होकर रहें ६ । ११ हे राजन् ! अभी तुमको वन में जाना उचित नहीं है क्योंकि तुम्हारी रक्षा से पृथ्वी उद्वेगरहित रहती है। वन में तपस्या करने का इतना बड़ा धर्म नहीं है जितना प्रजा के पालन करने का है इससे तुम अभी वन में तप करने की इच्छा मत करो १२।१३ हे राजेन्द्र! पूर्वकाल में राजऋषियों ने जैसा धर्म प्रजापालन करने में नियत किया है, वैसा और काम में नहीं किया है १४ राजा को प्रजा की रक्षा करना अवश्य उचित है इससे तुमको भी प्रजा की रक्षा करनी चाहिये । देखो, हे राजन् ! मैं भय के कारण से तपस्या नहीं कर सक्ता हूं १५ मेरे आश्रम के पास मरुधन्वनामी

समभूमिदेशों में बालू से भरा हुआ उज्जालकनामी समुद्र है १६ वह बहुत योजन लम्बा और चौड़ा है। वहां मधुकैटभ दैत्यों का पुत्र धुन्धुनामी बड़ा भयानक और महापराक्रमी, पृथ्वी के भीतर रहता है १७ । १८ हे महाराज! उसने देवता और सबलोकों को नाश करने की कामना से बड़ी उग्र तपस्या करके ब्रह्माजी से वरदान लिया है इससे उसे देवता, दैत्य, राक्षस, यक्ष और गन्धर्व आदि कोई नहीं मार सकता है, तुम उसको मारकर वन को जाना। ऐसा करने से तुम्हारी बड़ी अचल कीर्ति संसार में रहेगी १९ । २२ उस क्रूरकर्मी राक्षस को जब बालुका के भीतर सोते सोते एक वर्ष व्यतीत हो जाता है तब उसका श्वास बढ़ने लगता है २३ उससे पृथ्वी, वन और पर्वतोंसहित कांपने लगती है और ऐसी धूल उड़ती है कि सूर्यतक पहुँचकर सूर्य के मार्ग में भी उड़ती हुई दिखाई देती है। यह भूकंप सात दिनतक रहता है। इससे हे राजन्! मैं आश्रम में रह नहीं सकता हूं। तुम संसार की भलाई के हित से उस दैत्य को मारो २४ । २६ मेरी समझ से तुम्हीं उसको मार मकने हो, उसके मारे जाने पर सब लोकों में स्वस्थता हो जायगी २७ हे महीपते! तुम्हारे तेज को विष्णुभगवान् अपने तेज से बढ़ावेंगे। मुझको उन्होंने यह वरदान आगे दिया था २८ कि जो राजा इस दैत्य को मारेगा, उसके शरीर में वैष्णवी तेज प्रवेश करेगा २९ इससे हे राजेन्द्र! तुम उस दुस्सह वैष्णवी तेज को धारण करके उस पराक्रमी और भयानक दैत्य का वध करो ३० हे पृथ्वीपाल! अल्प तेजस्वी मनुष्य उसको सैकड़ों वर्ष में भी दग्ध नहीं कर सकता है ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

दोसौदो का अध्याय।

धुन्धुदैत्य के पिता मधुकैटभ दैत्यों का उत्पन्न होना और मारा जाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! राजऋषि बृहदश्व उत्तङ्क के उक्त वचनों को सुनकर हाथ जोड़कर बोला १ कि हे ब्रह्मन्! आपका आना निष्फल नहीं है, मेरा कुबलाश्वनामी पुत्र आपके इस काम को करेगा। वह बड़ा बुद्धिमान्, अप्रमित पराक्रमी और शीघ्र काम करनेवाला है २ । ३ और ऐसे शूरवीर पुत्रों से युक्त है जिनकी भुजा परिघशस्त्र के समान है। हे ब्रह्मन्! मुझको अब जाने की आज्ञा दीजिये क्योंकि मैं अस्त्रों को त्याग चुका हूं ४ यह सुनकर उत्तङ्क ने कहा बहुत अच्छा, जाइये। तब बृहदश्व अपने पुत्र कुबलाश्व को उत्तङ्क

का प्रिय काम करने का उपदेश करके वन को चला गया ५ इतनी कथा सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा कि हे तपस्विन्, महाराज ! यह महापराक्रमी दैत्य कौन और किसका पुत्र और किसका पौत्र था। मैंने आजतक ऐसा पराक्रमी दैत्य कोई नहीं सुना इसके वृत्तान्त को मुझे विस्तारपूर्वक सुनाइये ६। ७ मार्कण्डेयजी बोले बहुत अच्छा, सुनिये। हे नरेश ! हम सब वृत्तान्त विस्तारसहित कहते हैं ८ हे भरतर्षभ ! जब महाप्रलय हो गया और सब जड़ चैतन्य जीव नाश होकर एकार्णव होगया तब श्रीविष्णु भगवान् जिनको बुद्धिमान् मुनि जगत् की उत्पत्ति का स्थान, सनातन, अव्यय और सबलोकों का ईश्वर बतलाते हैं, अमित तेजवस्वी शेषनाग के फण से इस पृथ्वी को व्याप्त करके आप जल के भीतर उसी फण पर सो गये ६।१२ उस समय विष्णु भगवान् की नाभि से एक कमल प्रकट हुआ जिसकी प्रभा सूर्य के सदृश थी। उस कमल में लोकगुरु ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और जिनके चारमुख, चारवेद १३। १५ अपने तेज से दुराधर्ष और बड़े पराक्रमी थे। कुछ काल में मधु और कैटभनामी दो दैत्य बड़े पराक्रमी प्रकट हुए और उन्होंने उस नागशय्या पर, जो कई योजन चौड़ी और लम्बी थी, उन विष्णु भगवान् को सोते हुए देखा जो किरीट, कौस्तुभमणि और पीताम्बर धारण किये हुए सहस्रसूर्यों के समान तेज से परम शोभित और दर्शनीय थे १६।१६ और उसी समय कमल पर कमललोचन ब्रह्माजी को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ २० और उन दोनों ने अपार बलशाली ब्रह्माजी को डराया उन के डर से ब्रह्माजी ने कमल को हिलाया जिसके कारण से विष्णुभगवान् जाग उठे और उन्होंने जगते ही उन दोनों दैत्यों को देखा २१।२२ और उनसे कहा कि हे महापराक्रमी, दैत्यो ! तुम दोनों अच्छे आये, मेरा चित्त तुमसे प्रीति करने और तुमको वरदान देने को चाहता है २३ वे गर्वसे भरे हुए दैत्य यह सुनकर हँसते हुए दोनों वीर मधुसूदनजी से कहने लगे २४ कि हे सुरोत्तम ! हम वरदाता हैं, तुमको जो इच्छा हो सो वरमांगो। हम तुम्हारी मनोकामना पूरी करेंगे २५ भगवान् बोले बहुत अच्छा तुम दोनों बड़े पराक्रमी हो तुम्हारे समान दूसरा नहीं है। मैं ही तुमसे यह वरदान मांगता हूं कि तुम दोनों मेरे हाथ से मारे जाओ। यह वरदान मैंने लोक के हित के लिये मांगा है २६।२७ मधुकैटभ बोले कि हे पुरुषोत्तम ! हम दोनों सत्यवादी हैं, हमने कभी स्वैरअवस्था में भी झूठ नहीं कहा है, अब भी हम अपनी बात को झूठ

नहीं कर सकते हैं । हमारे समान बल, रूप, शूरता, शम, तप, दान, शील और सत्य में दूसरा नहीं है । यह बड़ा उपद्रव हमको प्राप्त हुआ । परंतु जो हुआ सो हुआ निस्संदेह काल की मर्यादा को नांघना कठिन है । अब आप अपना काम कीजिये परन्तु हमारा वध अनावृत आकाश में कीजिये और हमको यह वरदान दीजिये कि हम दोनों आपके पुत्रभाव को पावें और जो कुछ हमने सुना है वह मिथ्या न होवे २८ । ३३ यह सुनकर भगवान् बोले कि बहुत अच्छा, मैं ऐसाही करूंगा । इसके पीछे गोविन्द, मधुसूदन भगवान् ने जब पृथ्वी और आकाश में कोई स्थान अनावृत नहीं देखा तब अपनी दोनों जङ्घाओं पर जो अनावृत थीं, उन दैत्यों के शिर रखकर तीक्ष्णचक्र से काट डाले ॥ ३४ । ३५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

दोसौतीन का अध्याय ।

धुन्धुदैत्य का वरदान पाना और राजा कुवलाश्व के हाथ से मारा जाना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे महाराज, युधिष्ठिर ! उन दोनों दैत्यों का धुन्धुनामी एक पुत्र महातेजस्वी, बड़ा बलवान् और पराक्रमी था । उसने एक पैर से बड़ी भारी तपस्या की यहां तक कि उसके शरीर में केवल धमनीमात्र रह गई । तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उस दैत्य से कहा कि वरदान मांग । उस दैत्य ने सर्वशक्तिमान् ब्रह्मा से कहा कि महाराज ! मुझको देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और राक्षस कोई न मार सकें यह वरदान दीजिये । ब्रह्माजी ने कहा अच्छा, हमने तुझको यही वरदान दिया, अब तू जा । यह सुनकर वह अपना मस्तक ब्रह्माजी के चरणों पर रखकर चल दिया १।४ और अपने बाप के वध को याद करता हुआ महाबलशाली शूरवीर वह दैत्य विष्णुभगवान् के पास पहुँचा ५ और सब देवता और गन्धर्वों को जीतकर देवता और विष्णुभगवान् को बारम्बार दुःख दिया ६ हे भरतर्षभ ! इसके पीछे वह दैत्य उज्जालकनामी बालू से भरे हुए समुद्र के देश में पहुँचा और उत्तङ्कऋषि के आश्रम के निकट पृथ्वी के भीतर बालू से छिपा हुआ संसार को नाश करने के लिये अपने तपोबल से रहने लगा । उसके श्वास के साथ अग्नि की ज्वाला निकलती थी, उसको मारने के लिये राजा कुबलाश्व जो कि नरनायक होकर वैरियों का विनाश करनेवाला था वह अपने इकीसों सहस्र पुत्र, सेना और वाहन सहित उत्तङ्कऋषि के साथ साथ वहां गया ७ । १२ उस समय सर्वशक्तिमान् विष्णु भगवान् ने उत्तङ्क की प्रेरणा और

संसार का हित करने के लिये अपने तेज से उस राजा के शरीर में प्रवेश किया १३ उस दुराधर्ष के चलने के समय स्वर्ग में बड़ाभारी शब्द होने लगा कि यह श्रीमान् राजा अब धुन्धुमारनाम से प्रसिद्ध होगा १४ देवताओं ने फूलों की वर्षा की और उनकी दुन्दुभी विना बजाये बजने लगी १५ वायु शीतल, मन्द और सुगन्धित होकर चलने लगी और धूलिरहित पृथ्वी को करते हुए इन्द्र ने पानी की वर्षा की १६ उस समय हे युधिष्ठिर! सब देवता अपने अपने विमानों पर चढ़े हुए उस स्थान पर आगये जहां वह महादानव धुन्धुदैत्य सोता था और महाऋषि और गन्धर्व भी देवताओं के पास कुबलाश्व और धुन्धुदैत्य का युद्ध देखने के लिये आगये १७। १८इसके अनन्तर हे कौरव्य! वह महाबली राजा नारायण के तेज से वृद्धि पाकर अपने पुत्रोंसहित दिशाओं को व्याप्त करता हुआ वहां आ पहुँचा और उस बालू के समुद्र को पुत्रों से खुदवाना प्रारम्भ किया। सातवें दिन उसने उस महापराक्रमी दैत्य को बालू के भीतर छिपा हुआ पाया। हे भरतर्षभ महाराज! उसका शरीर बड़ा लम्बा, चौड़ा और सूर्य के समान दीप्त था और वह पश्चिम दिशा को रोके हुए सो रहा था। कुबलाश्व के पुत्रों ने उस कालाग्नि के समान प्रभावान् दैत्य को चारों ओर से घेर लिया १९। २३ और उसपर तीक्ष्ण बाण, गदा, मुशल, पट्टिश, परिघ और खड्ग आदि शस्त्रों का प्रहार किया २४ उनके लगने से वह दैत्य क्रोधित होकर खड़ा हो गया और उन राजपुत्रों के छोड़े हुए शस्त्रों को खागया २५ इसके पीछे उस दैत्य ने अपने मुख से महाप्रलय की संवर्तकनाम अग्नि के समान ज्वाला छोड़ी और उनसे उसने उन राजपुत्रों को एक क्षणभर में इस प्रकार से भस्म कर दिया जैसे पहिले कपिलमुनि ने राजा सगर के पुत्रों को क्रोधित होकर जला डाला था। यह बात एक आश्चर्य की सी हो गई। जब वे राजपुत्र भस्म हो गये तब महातेजस्वी राजा कुबलाश्व आप उस दूसरे कुम्भकर्ण के समान दैत्य के सम्मुख गया २६। २९ उस समय उस दैत्य के शरीर से बहुतसा जल झरने लगा। राजा ने उस जलरूपी तेज को पान कर लिया और योग से उस अग्नि को जल के द्वारा शान्त कर दिया और सबलोकों की भलाई के लिये उस क्रूर पराक्रमी दैत्य को ब्रह्मास्त्र से मारकर दग्ध करडाला। उस देवशत्रु महाअसुर को जलाकर वहां राजर्षि कुबलाश्व दूसरे इन्द्र के समान शोभित हो गया और धुन्धुमारनाम से संसार में विख्यात हुआ। उस समय

प्रसन्न हुए सब देवता और महाऋषियों ने उससे कहा कि तुमको जो इच्छा हो सो वर मांगो। यह सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर नम्रता से हाथ जोड़कर कहा ३१।३५ कि मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणों को धन दिया करूं, शत्रु मुझको जीत न सके, विष्णु भगवान् से मेरी मित्रता हो जाय, किसी जीव से द्रोह न करूं, धर्म में मेरी सदैव प्रीति रहे और मैं स्वर्ग में अक्षय वास पाऊं। यह सुनकर सब देवता, ऋषि, गन्धर्व और उत्तङ्क ने कहा कि ऐसा ही होगा। इसके पीछे सब देवता और महाऋषि उस राजा को अनेक प्रकार के आशीर्वाद देते हुए अपने अपने स्थानों को चले गये। हे युधिष्ठिर! युद्ध हो चुकने पर उस राजा के तीन पुत्र दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और चन्द्राश्व रह गये थे, उन्हीं तीनों से इक्ष्वाकु के वंश की परम्परा चली आती है। सो हे युधिष्ठिर! उक्त प्रकार से धुन्धुदैत्य मधुकैटभ दैत्यों का बेटा राजा कुबलाश्व के हाथ से मारा गया था और उसको मारने के कारण से उस राजा का नाम धुन्धुमार विख्यात हुआ था ३६।४२ यह धुन्धुमार उपाख्यान जो तुमने हमसे पूछा था, हमने कहा। जो कोई इस पवित्र और विष्णुकीर्तन के समान फल देनेवाले उपाख्यान को पर्वकाल में सुनेगा, वह पुत्रवान्, आयुष्मान् और ऐश्वर्यवान् होगा और किसी व्याधि से उसको भय न होगा॥४३।४५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०३॥

दोसौचार का अध्याय।

पतिव्रता का माहात्म्य और माता पिता की सेवा करने के फल का वर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त कथा के सुनने के पीछे राजा युधिष्ठिर ने महातेजस्वी मार्कण्डेयजी से यह धर्मप्रश्न पूछा कि हे भगवन्, महाराज! मैं आपके मुखारविन्द से स्त्रियों का उत्तम माहात्म्य और सूक्ष्मधर्म विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं १।२ हे विप्रर्षे! इस संसार में सूर्य, चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी और अग्नि प्रत्यक्ष दीखते हैं और पिता, माता, गुरु और जो कुछ देवताओं के रचे हुए पदार्थ हैं वे भी दृष्टि आते हैं सो जैसे ये सब बड़े माननीय हैं उसी प्रकार से एक पति रखनेवाली स्त्रियां भी आदर करने के योग्य हैं, परंतु पतिव्रता स्त्रियों की सेवा मुझको बड़ी कठिन दिखाई देती है ३।५ क्योंकि वे मन और इन्द्रियों को रोककर पति को देवता के समान ध्यान करती

हैं। मुझको उनका यह कर्म बहुत कठिन दिखाई देता है। इससे आप मुझको पतिव्रताओं का माहात्म्य सुनाइये ६। ७ हे द्विजवर्य ! मनुष्य को माता पिता की सेवा करना और स्त्री को पति की सेवा करना उचित है, परंतु स्त्रियों के कठिन धर्म से अति कठिन दूसरा धर्म मुझको दिखाई नहीं देता है ८ हे ब्रह्मन् ! साधु आचारवाली स्त्रियां जो जो काम करती हैं वे सब निस्संदेह बड़े कठिन हैं और इसी प्रकार से माता पिता की सेवा करना भी कठिन है परंतु स्त्रियां एक पति रखकर और सत्य बोलकर दश महीने कोखि में गर्भ धारण करती हैं। हे द्विजनायक ! बड़े बड़े दुःख उठाकर पुत्रों को उपजाकर बड़े स्नेह से पालती हैं। स्त्रियों का इससे और क्या अद्भुत कर्म होगा ६। १२ और जो जो बर्ताव क्रूरपुरुषों में होते हैं और निन्दित मनुष्य जैसे जैसे कर्म करते हैं वे भी मुझे बड़े कठिन दीखते हैं इससे मैं आपसे क्षत्रियधर्म के आचार का वृत्तान्त सुना चाहता हूं। कृपा करके जो कुछ मैंने पूछा है उसे वर्णन कीजिये। मैं विनयपूर्वक आपसे पूछता हूं १३। १५ मार्कण्डेयजी बोले हे भरतश्रेष्ठ ! बहुत अच्छा, हम तुम्हारे सब दुर्लभ प्रश्नों का उत्तर विस्तारपूर्वक देते हैं सुनो १६ कोई मनुष्य माता को और कोई पिता को अधिक जानते हैं परंतु दोनों की सेवा एकसी ही करना उचित है। देखो, माता बड़े बड़े कष्ट उठाकर पुत्र को पालती है और पिता भी तप और देवताओं की पूजा और क्षमा, अनुष्ठान आदि अनेक उपाय करके पुत्र का कल्याण चाहता रहता है। हे भरतवंशिन् ! माता पिता दोनों इस प्रकार से कष्ट सहकर इस आशा से पुत्र को पालकर बड़ा करते हैं कि वह यश, कीर्ति और ऐश्वर्य को बढ़ावेगा और प्रजा का पालन करेगा १७। २० सो हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर ! जो पुत्र अपने माता और पिता की उस आशा को सफल कर दिखाता है उसीको धर्म का जाननेवाला समझना चाहिये और जिस मनुष्य के माता और पिता सदैव प्रसन्न रहते हैं उसकी इस लोक और परलोक दोनों लोकों में कीर्ति रहती है। अब स्त्रियों की व्यवस्था सुनो। स्त्रियों को अपने पति की सेवा के सिवाय कोई यज्ञ, क्रिया, श्राद्ध और व्रत आदि करना उचित नहीं है। उसको पति की सेवा ही से स्वर्ग मिलता है। अब हम तुमसे पतिव्रताओं के धर्म का वृत्तान्त वर्णन करते हैं उसको भी सावधानता से सुनो॥ २१। २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०४॥

दोसौ पांचवाँ अध्याय।

कौशिक ब्राह्मण और एक पतिव्रता स्त्री का संवाद वर्णन।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! कौशिक नामी कोई एक बड़ा तपस्वी, वेदपाठी और धर्मशील ब्राह्मण था १ वह द्विजनायक वेदों को सब अङ्ग और उपनिषदों समेत पढ़ता था। एक दिन वह किसी पेड़ की जड़ पर बैठा हुआ वेद पाठ कर रहा था २ उस वृक्ष के ऊपर एक बलाका अर्थात् बगला पक्षिणी गुप्त बैठी हुई थी। उस पक्षिणी ने उस ब्राह्मण के ऊपर बीट कर दी ३ तब उस ब्राह्मण ने उस चिड़िया पर क्रोध करके शाप दिया और उसकी ओर अत्यन्त क्रोध से देखा। वह चिड़िया उस ब्राह्मण के शाप से निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसको देखकर वह ब्राह्मण दया से विचारने लगा कि क्रोध में मैंने यह बुरा काम किया जो इसके प्राण लिये ४। ६ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार से अनेक बातें विचारता और कहता हुआ वह विद्वान् ब्राह्मण भीख मांगने के लिये ग्राम में चला गया और पवित्र कुलजनों के घर जाकर भीख मांगने लगा। मांगते मांगते वह उस घर पर पहुँचा जहां से पहिले भी कभी भीख ले आया था और वहां यह कहकर घर के द्वारपर खड़ा होरहा कि भिक्षा दो। भीतर से एक स्त्री ने उसको उत्तर दिया कि थोड़ी देर ठहरो, मैं बर्तन धो रही हूं। इनको धोकर तुझे भिक्षा लाती हूं। इसी अवसर में उस स्त्री का पति जो उस समय बहुत भूखा था अकस्मात् आगया। हे भरतसत्तम! उसको देखकर वह श्यामनयनी साध्वी स्त्री उस ब्राह्मण को भीख डालना भूल गई और अपने पति को पाद्य, आचमन और आसन देकर उसकी सेवा करने लगी ७। ११ हे युधिष्ठिर! सुन्दर भोजन, मधुर व्यञ्जन और शीतल जल से उसे अच्छी तरह तृप्त किया और उसकी जूंठन को आप भोजन किया। इस प्रकार से वह स्त्री सदैव प्रीतिपूर्वक अपने पति को देव के समान जानकर उसके चित्त की वृत्ति के अनुसार सब काम करती थी और मन, वाणी और कर्म से अपने चित्त को पति के काम में अनन्य करके उसके समीप रहती थी १२। १३ आचार उस स्त्री के साधु थे और वह पति की सेवा प्रीतिपूर्वक सब भावों से करती थी और बड़ी चतुर, कुटुम्ब का हित चाहनेवाली, पति की आज्ञा पर चलनेवाली, जितेन्द्रिय तथा देवता, अतिथि और सासु-श्वशुर की सेवा करनेवाली थी। सो जब वह स्त्री अपने पति की सेवा सब प्रकार से कर चुकी तब उसको उस ब्राह्मण की

याद आई और वह लज्जित होती हुई भिक्षा लेकर शीघ्र बाहर निकली १४।१७ उसको देखकर वह ब्राह्मण बोला कि हे सुन्दरि! तूने मुझको भीख देने के लिये खड़ा करके इतना विलम्ब किस कारण से लगाया, मुझे बिदा क्यों नहीं कर दिया १८ मार्कण्डेयजी बोले कि हे मनुजेन्द्र! यह सुनकर और उस ब्राह्मण को क्रोध से संतप्त, तेज से प्रज्वलित देखकर वह स्त्री शान्तिपूर्वक बोली १९ कि हे महाराज! आप क्षमा कीजिये, मैं अपने पति को सबसे बड़ा देवता समझती हूं, इसलिये उस भूखे व थके हुए की सेवा करने लग गई और आपको भिक्षा डालने न आसकी २० ब्राह्मण बोला अच्छा, ब्राह्मण बड़े नहीं हैं। तूने अपने पति को बड़ा ठहराया है, तू गृहस्थी होकर ब्राह्मणों का अपमान करती है, तू यह नहीं जानती है कि ब्राह्मण को इन्द्र भी प्रणाम करता है फिर भूतल में संसारी मनुष्यों की किनमें गिनती है। तैंने अभी वृद्ध लोगों से उपदेश नहीं पाया है। अरी! ब्राह्मण अग्नि के समान हैं, अपने तेज से इस पृथ्वी को भी भस्म कर सक्के हैं २१। २२ यह सुनकर वह पतिव्रता स्त्री बोली कि हे तपस्विन्, महाराज! आप क्रोध छोड़ दीजिये इस क्रोध की दृष्टि से आप मेरा कुछ नहीं कर सक्के हैं। मैं कुछ बलाका पक्षिणी तो नहीं हूं जिसको आपने भस्म कर दिया था २३ हे विप्रजी! यह मेरा अपराध क्षमा करने के योग्य है। ब्राह्मण निःसंदेह मनस्वी होकर देवताओं के समान हैं, मैं उनका अपमान नहीं करती हूं और उन बुद्धिमान् ब्राह्मणों के तेज और माहात्म्य को भी जानती हूं २४। २५ ब्राह्मणों के क्रोध की अग्नि दण्डकवन में अभी तक नहीं बुझी है। ब्राह्मणों ने क्रोध से खारी समुद्र को पी लिया था और ब्राह्मणों का अपमान करने के ही कारण से अगस्त्यजी ने वातापी दैत्य को पचा डाला था सो मैंने महात्मा ब्राह्मणों के बड़े बड़े प्रभाव सुने हैं और मैं जानती भी हूं कि उनका प्रसाद और क्रोध बहुत बड़ा है। हे ब्रह्मन्! इस मेरे अत्याचार में आप क्षमा करने योग्य हैं २६। २९ परन्तु मैं पति को सब देवताओं में परमदेवता जानती हूं और उसी की सेवा करने का धर्म मुझको प्यारा लगता है। इससे हे द्विजोत्तम! मैं पति की सेवा के धर्म को पूरा पूरा करती हूं और उसके फल को आप प्रत्यक्ष देख लीजिये कि मुझको उस बलाका पक्षिणी का वृत्तान्त पूरा पूरा मालूम होगया जिसको आपने क्रोध से भस्म कर डाला था। इससे आपको मेरे ऊपर क्षमा करना उचित है। मनुष्य के शरीर में क्रोध शत्रुरूप होता है ३०।३२ जो कोई उसको

त्याग देता है और जो सत्यवादी, गुरुभक्त, शान्तस्वरूप, मारते हुए का न मारनेवाला, जितेन्द्रिय, धर्मतत्पर, वेदपाठी, पवित्र, काम और क्रोध को वश में करनेवाला, सबको अपनी आत्मा के समान समझनेवाला, धर्मप्रिय, वेद पढ़नेवाला, वेद पढ़ानेवाला, यज्ञ करनेवाला, यज्ञ करानेवाला, यथाशक्ति दान करनेवाला, ब्रह्मचारी और जप का करनेवाला होता है। देवता उसीको ब्राह्मण कहते हैं ३३।३८ सत्यवादी झूंठ कभी नहीं बोलना चाहते हैं और ब्राह्मणों की कुशल की बात कहना और वेदपाठ, इन्द्रियों का रोंकना और दम का आचार रखना ब्राह्मणों का सनातन धर्म है। धर्मज्ञ लोग सत्य, आर्जव अर्थात् कुटिलतारहित धर्म को परम धर्म कहते हैं। सनातन धर्म का जानना बहुत कठिन है, वह धर्म केवल सत्य में स्थित है। वृद्धलोग ऐसा उपदेश करते हैं कि जो धर्म किया जाय वह ऐसा न चाहिये कि उसका प्रमाण श्रुति में भी मिले ३६। ४१ क्योंकि बहुधा धर्म सूक्ष्म भी होता है। सो हे भगवन्! आप भी धर्मज्ञ, वेदपाठी और पवित्र हैं ४२ परंतु आप अभी धर्म को तत्त्वपूर्वक नहीं जानते हैं। हे विप्र! यदि परम धर्म को नहीं जानते हो तो ४३ आपको उचित है कि आप मिथिलापुरी में जाकर धर्मव्याध से परमधर्म पूछें। वह सत्यवादी जितेन्द्रिय और माता पिता की सेवा करनेवाला है। वह आपको सब धर्मों को बतावेगा ४४ अब आप इच्छापूर्वक वहां जाइये, आपका कल्याण हो और मेरे कहने सुनने को क्षमा कीजिये। धर्म जाननेवालों के निकट स्त्रियाँ सब से अवध्य हैं ४५। ४६ यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि हे शोभने! तेरा कल्याण और भला हो, मेरा सब क्रोध जाता रहा। मैं तुझपर बहुत प्रसन्न हूं और यद्यपि तैंने मुझसे अनेक निन्दा वचन कहे परंतु मैं उन सबको अपना कल्याण समझता हूं। अच्छा अब मैं जाता हूं और अपने कार्य को साधन करता हूं ४७ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह द्विजसत्तम कौशिक ब्राह्मण उस स्त्री से बिदा होकर अपनी आत्मा की निन्दा करता हुआ अपने घर को गया ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥

दोसौ छठाँ अध्याय।

कौशिक ब्राह्मण का मिथिलापुरी में जाकर धर्मव्याध के शिष्टाचार धर्म का वर्णन करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह ब्राह्मण उस स्त्री के कहे हुए आश्चर्यरूप वचनों को संपूर्णता से सुनकर चिन्ता करता हुआ अपनी आत्मा

की निन्दा करने लगा और ऐसा हो गया मानो अपराधी है १ और विचार करने लगा कि चिन्ता करने से मनुष्य धर्म की सूक्ष्मगति को जान सकता है इससे मुझे चाहिये कि मैं मिथिलापुरी को अभी जाऊं और वहां जो शुद्ध अन्तःकरण और धर्म का जाननेवाला व्याध रहता है, उससे धर्म की व्यवस्था पूछूं। ऐसा विचारकर वह ब्राह्मण बलाक़ा के भस्म होने का पता देने के कारण से उस स्त्री के धर्मरूपी वचनों में श्रद्धा करके मिथिलापुरी को चल दिया और अनेक वन, ग्राम और नगरों में घूमता हुआ राजा जनक की उस पुरी में जा पहुँचा। वहां के निवासी बड़े धर्मात्मा और पुष्ट थे और प्रसन्नतापूर्वक रहते थे। जहां तहां उस पुरी में यज्ञस्थान बने हुए थे और राजमन्दिर, गोपुर, अटारियां और प्राकार अर्थात् शहरपनाह से वह नगर परम सुशोभित होरहा था और अनेक प्रकार के रमणीक विमान, चौड़ी चौड़ी गलियां और घोड़े, हाथी और योद्धाओं से बड़ा रमणीक दीखता था और उसमें नित्य उत्सव हुआ करते थे। वह ब्राह्मण उस पुरी की शोभा को देखता हुआ भीतर गया और वहां उसने ब्राह्मणों से उस व्याध का घर पूछा, ब्राह्मणों ने उसे बता दिया कि वह घर है। तब वह वहां चला गया और उस व्याध को उसने मृग और भैंसों के मांस को वधस्थान में बेंचते हुए देखा परंतु गाहकों की भीड़ भाड़ के कारण से वह वहां नहीं गया किंतु एक एकान्तस्थान में खड़ा होरहा २।११ उसी समय वह व्याध उस ब्राह्मण के आने के वृत्तान्त को जानकर शीघ्र उठकर उसके पास चला आया और कहने लगा कि हे भगवन्, द्विजोत्तम, महाराज! आपका आना शुभ हो। मैं आपको दण्डवत् करता हूं और मैं ही व्याध हूं, कहिये मुझको क्या आज्ञा है १२। १३ आप जो यहां पतिव्रता स्त्री के कहने से आये हैं उस सब वृत्तान्त को मैं जानता हूं। यह सुनकर वह ब्राह्मण बड़े आश्चर्य में आगया और उस व्याध को भी पतिव्रता के समान त्रिकालदर्शी जानकर कहने लगा कि यह दूसरा आश्चर्य है। इसके पीछे उस व्याध ने यह विचारकर कि वह स्थान अच्छा नहीं है, उस ब्राह्मण से कहा कि हे भगवन्! जो तुम्हारी इच्छा हो तो घर चलो १४। १६ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! व्याध का वचन सुनकर वह ब्राह्मण प्रसन्न होकर बोला बहुत अच्छा चलिये। तब वह व्याध ब्राह्मण को आगे आगे करके अपने घर पर लिवा ले गया १७ और पाद्य, आचमन देकर उसे आसन पर बड़े आदर से बैठाया १८ इसके उपरान्त सुखपूर्वक बैठने पर उस ब्राह्मण ने

व्याध से कहा कि आपका कर्म मुझे आपके योग्य नहीं दीखता है इससे मुझे बड़ा दुःख है। व्याध बोला कि महाराज! यह कर्म हमारे कुल का आचरण और बापदादों का पद है। हम अपने धर्म पर चलते हैं इससे आप इस बात का दुःख न मानिये १९।२० हे द्विजोत्तम! विधाता ने पूर्वकाल से हमारे लिये जो कर्म रचा है उसको और अपने वृद्ध माता, पिता की सेवा में तत्पर रहताहूं २१ सत्य कहता हूं। कि मैं दूसरों के गुणों में दोष नहीं लगाता हूं, यथाशक्ति दान भी देता हूं और जो अन्न देवता, भृत्य और अतिथि आदि को देकर शेष रहता है, उसीमें अपना निर्वाह कर लेता हूं २२ इसके सिवाय मैं किसीमें कोई दोष हो तो भी नहीं कहता हूं और मिथ्या दोष तो कभी लगाता ही नहीं। हे महाराज! पूर्वजन्म में किया हुआ कर्म बड़ा बलवान् होता है और करनेवाले के पीछे चलता है २३ संसार में जीविका उत्पन्न करने के लिये खेती, गोरक्षा, वाणिज्य, दण्डनीति और तीनों विद्याओं का जानना है, सो सब वर्णों के मनुष्य अपने अपने वर्ण के अनुसार कर्म करके जीविका उत्पन्न करते हैं अर्थात् शूद्र सेवा से, वैश्य खेती से, क्षत्रिय संग्राम से और ब्राह्मण ब्रह्मचर्य, तप, मन्त्र और सत्य से जीविका उत्पन्न करते हैं। राजा इन चारों वर्णों पर शासन करता है और इनमें से जो मनुष्य कोई कर्म नहीं करता है उसको कर्म से युक्त करता है २४।२६ मनुष्य को राजा से भय करना अवश्य है क्योंकि वह विपरीत कर्म करनेवाली प्रजा को उस कर्म करने से रोकता है। हे द्विजोत्तम! देखिये, यहां राजा जनक का राज्य है। कोई मनुष्य इस राज्य में विपरीत कर्म नहीं करता है किंतु सब वर्णों के मनुष्य अपना अपना कर्म ही करते हैं २७।२८ कारण यह है कि यह राजा धर्मात्माओं से ग्लानि नहीं करता है और खोटा काम करनेवाले को उसका पुत्र भी हो तो भी विना दण्ड दिये नहीं रहता है २९ और राज्यदण्ड और लक्ष्मी आदि सब राजधर्मों को धर्मपूर्वक करता है और अपनी लक्ष्मी को धर्म से ही बढ़ाना चाहता है और चारों वर्णों की रक्षा करता है ३०।३१ और मैं उन वाराह, मृग और भैंसों के मांस को बेचता हूं जो दूसरे मनुष्य मारकर लाते हैं, कुछ अपने आप मैं इनका वध नहीं करता हूं ३२ इसके सिवाय मैं मांस खाता भी नहीं हूं और स्त्री के पास भी ऋतुकाल पर ही जाता हूं और व्रत भी करता हूं और रात्रि के समय भोजन किया करता हूं ३३ अशीलवान् पुरुष शीलवान् और हिंसक धार्मिक हो जाया करते हैं ३४ जब राजाओं का आचार खोटा हो जाता है तब

धर्म कम हो जाता है और अधर्म अधिक होने लगता है। उस अधर्म से प्रजा का नाश हो जाता है और प्रजा के मनुष्य कोई भयानक, कोई कुबड़ा, कोई मोटा, कोई पतला, कोई नपुंसक, कोई अन्धा, कोई बहिरा और कोई स्तब्धलोचन होने लगते हैं, परंतु यह हमारा राजा जनक सब प्रजा को बड़े धर्म से पालन करता है ३५। ३७ और आप भी धर्म पर चलकर प्रजा पर अनुग्रह रखता है। प्रायः बहुत से मनुष्य मेरी निन्दा और बहुत से प्रशंसा किया करते हैं ३८ परंतु मैं उन दोनों को अपने साधु कर्मों से प्रसन्न रखता हूं। राजा वही है जो अपनी सेना के लिये स्थान बनवाता है और अपने व्यय के लिये धर्म से धन उत्पन्न करता है ३६ और जो राजा जितेन्द्रिय और उत्थानशील अर्थात् उद्यमी होता है वह सिवाय धर्म के और प्रकार से जीविका उपार्जन नहीं करता है और यथाशक्ति सदैव अन्नदान देना, क्षमा रखना, धर्म पर सदैव चलना और प्राणियों की सब अवस्थाओं में यथायोग्य पूजा करना। ये गुण मनुष्य में संसारी भोगों को विना त्यागे नहीं आसक्ते हैं ४०। ४१ मनुष्य को उचित है कि मिथ्या बोलना छोड़ दे, जो कोई किसी काम को कहे उसका वह काम कर दे और काम, द्वेष और भय के कारण से धर्म को कभी न छोड़े ४२ जो कोई काम अपनी इच्छा के अनुकूल हो तो प्रसन्न न होवे और विपरीत काम होने से चित्त म्लान न करे और जो अर्थ के साधन में कोई कष्ट आन पड़े तो उस कष्ट से मोहित होकर धर्म को न छोड़े ४३ जो काम विपरीत हो उसको दुबारा न करे और जिस काम में अपना और दूसरे का कल्याण दीखे उसे अवश्य करे ४४ पापियों की संगति में जाकर आप भी पापी न हो जाय किन्तु साधु ही रहे क्योंकि पापी अपने आप ही नष्ट हो जाता है ४५ और जो लोग पवित्र पुरुषों से यह कह कर हँसते हैं कि यह कर्म असाधु और व्यसनी पुरुषों का है, धर्म नहीं है और धर्म में किंचित्‌मात्र भी श्रद्धा नहीं करते हैं वे निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं। हे महाराज ! आप पापी मनुष्यों को इस प्रकार से निःसार समझिये जैसे वायु भरी हुई चर्म की धौंकनी अर्थात् वायु के निकलने पर फिर फूली हुई नहीं रहती है ४६। ४७ मूढ़ और घमण्डी मनुष्यों के विचार में कोई सारांश नहीं होता है। यह बात तुमको अन्तरात्मा से इस प्रकार से प्रतीत हो सकती है जैसे सूर्य से दिन प्रतीत होता है ४८ मूर्ख केवल अपनी प्रशंसा आप करने से शोभा नहीं पाता है और पण्डित

मलिन होने पर भी अपनी विद्या का प्रकाश करता है ४९ हमने इस पृथ्वी पर किसी मूर्ख को जो पराई निन्दा और अपनी स्तुति करता है, गुणवान् नहीं देखा ५० जो मनुष्य किसी पाप कर्म को करता है और करके उसका पश्चात्ताप करता है, वह पिछले किये हुए पाप से छूट जाता है और जो यह संकल्प करता है कि फिर ऐसा पाप न करूंगा वह उस किये हुए पाप का फल नहीं भोगता है ५१ हे द्विजवरोत्तम! ऐसी भी श्रुति है कि मनुष्य जप, तप आदि और उपायों से भी पाप से छूट जाता है। जो मनुष्य धार्मिक होकर अज्ञान से हिंसा आदि पाप कर्म करता है वह प्रमाद से किये जाने पर मनुष्य के धर्म को नाश कर देता है ५२ । ५३ और जो मनुष्य पाप कर्म करके ऐसा मानता है कि उस पाप का करनेवाला मैं नहीं हूं दूसरा है, उसको उसके भीतर रहनेवाले देवता मारते हैं और जो पुरुष श्रद्धावान् होता है और दूसरे के गुणों में दोष नहीं लगाता है और साधुओं के छिद्र को वस्त्र के समान ढकने का उपाय करता है, उसका कल्याण होता है और जो मनुष्य पाप करके उससे छूटने का उपाय करता है; उसका वह पाप इस प्रकार से दूर हो जाता है जैसे बादल में छिपा हुआ चन्द्रमा बादल के हट जाने से निर्मल निकल आता है ५४ । ५६ और जैसे सूर्य के उदय होने से अँधेरा दूर होजाता है, उसी प्रकार से मोक्ष का उपाय करनेवाले मनुष्य के सब पाप दूर होजाते हैं ५७ हे महाराज! पाप का मूल लोभ है, लोभी और शास्त्र को न जाननेवाले मनुष्य निश्चय पाप करते हैं ५८ अधर्मी मनुष्य पाखण्डरूपी धर्म से इस प्रकार से भरे हुए होते हैं जैसे घास फूस से भरा हुआ कूप। वे लोग बाहर की इन्द्रियों को रोकना और स्नान आदि धर्मसम्बन्धी वार्त्ता करते हैं, परंतु शिष्टाचार बड़ा दुर्लभ पदार्थ है वह उनमें नहीं होता है ५९ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! उक्त कथा को सुनकर उस ब्राह्मण ने धर्मव्याध से पूछा कि हे धर्मविदांवर, व्याध! मैं शिष्टाचार को कैसे जान सक्ता हूं, आप कृपा करके इस वृत्तान्त को मुझे यथावत् सुनाइये ६०।६१ व्याध बोला कि महाराज! यज्ञ, तप, दान, वेद और सत्य ये पांचों पवित्र कर्म शिष्टाचार में सदैव गिने जाते हैं ६२ जो मनुष्य काम, क्रोध, दम्भ, लोभ और कुटिलता को त्यागकर धर्म में परायण रहते हैं, वे ही शिष्टसंमत होकर शिष्टपुरुष हैं ६३ ऐसे लोग स्वभाव ही से जप और यज्ञ करते रहते हैं और कोई धर्म अपनी कल्पना से नहीं करते हैं। आचार का पालन भी शिष्ट होने का दूसरा लक्षण है ६४ सो

जो शिष्टाचारवान् पुरुष हैं उनकी वृत्ति सदैव गुरु सेवा, सत्य, दान और क्रोध के त्याग में रहती है ६५ विना इनके किये शिष्टाचार में मन रखनेवाले मनुष्य को शिष्टवृत्ति पाना दुर्लभ है ६६ वेद का सार सत्य है और सत्य का सार दम अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से रोकना है और दम का सार त्याग है, यही सार शिष्टाचार में सदा गिना जाता है ६७ जो मनुष्य बुद्धिमान् होकर मोह के कारण से धर्म की निन्दा करते हैं, उनके बर्ताव पर चलनेवाला मनुष्य बहुत क्लेश पाता है ६८ और जो मनुष्य शिष्टकर्म में निरत होकर श्रुति, त्याग और सत्यपरायण तथा धर्मात्मा होते हैं, वे धर्मार्थदर्शी उपाध्याय के मत के अनुसार कर्म करके परबुद्धि अर्थात् जो पदार्थ सबसे परे है उसको प्राप्त करते हैं ६९ । ७० सो हे ब्राह्मण ! तुम नास्तिक, क्रूरकर्मी, पापी और मर्यादा को छोड़कर चलनेवाले पुरुषों को त्याग कर और ज्ञान में आश्रित होकर धर्मात्माओं का सत्संग करो ७१ और इस जन्म-मरणरूपी नदी को, जिसमें काम और लोभरूपी बड़े बड़े ग्राह हैं और पांचों इन्द्रियरूपी जल भरा हुआ है, धृतिरूपी नाव पर चढ़कर उतर जावो ७२ जैसे श्वेत वस्त्र पर सब रंग सुगमता से चढ़ जाते हैं, उसी प्रकार से शिष्टाचार रखनेवाले मनुष्य के हृदय में क्रम से इकट्ठा किया हुआ ज्ञान-योगरूपी धर्म विना परिश्रम दृढ़ हो जाता है ७३ हिंसा न करना परमधर्म और प्राणियों का बड़ा हित है, वह अहिंसा का धर्म सत्य से केवल हो सकता है, इससे सत्य में स्थिर होने से सब सुकर्मों में प्रवृत्ति हो जाती है ७४ और शिष्टाचारों में सत्यही सबसे भारी है और आचार सत्पुरुषों का धर्म और सन्तों का लक्षण है ७५ जिस जीव का जैसा स्वभाव होता है, उसका वैसा ही स्वभाव बना रहता है और जिस मनुष्य का चित्त अपने वश में नहीं होता है, वह पापी काम और क्रोध आदि दोषों को शीघ्र ग्रहण कर लेता है ७६ जिस कर्म का आरम्भ न्याय के अनुसार है, उसीका नाम धर्म है और जो अनाचार है वही अधर्म है और जो मनुष्य क्रोधहीन, दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला, अहंकार और मत्सरता-रहित, सीधा, समदर्शी, वेदपाठी, पवित्र, वृत्तिमान्, मनस्वी, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय है वही शिष्टाचार रखनेवाला है ७७ । ७९ ऐसे कठिन-कर्मी, सत्कृती, ज्ञानी और शिष्टाचारवान् मनुष्यों के हिंसात्मक कर्म अर्थात् पाप नाश हो जाते हैं और वे आश्चर्यरूप, अनादि, अनवच्छिन्न और नित्य धर्म को धर्म से बर्तते हुए स्वर्ग प्राप्त करते हैं ८० । ८१ जो सन्त आस्तिक बुद्धि रखनेवाले, मानहीन,

ब्राह्मणों के पूजक और वेदविहित मार्ग पर चलनेवाले हैं वे निस्संदेह स्वर्गवासी हैं ८२ धर्म के लक्षण तीन हैं। वेदोक्त धर्म १ शास्त्रोक्त धर्म २ और शिष्टपुरुषों का शिष्टाचार ३ और विद्याओं की समाप्ति, तीर्थस्नान, क्षमा, सत्य, सीधापन और शौच यह सत्पुरुषों का आचारदर्शन है और सब जीवों पर दया करना, अहिंसा और ब्राह्मणों से प्रीति रखना, कठोर वचन न बोलना और शुभ-अशुभ कर्मों के संचय में विपाक अर्थात् पाप पुण्य की क्षय को जानना और न्यायपूर्वक सबपर एकदृष्टि रखना, ये लक्षण शिष्टपुरुष और संसारका हित चाहनेवालों के हैं ८३।८६ और हिंसा न करना, धर्म रखना, ब्रह्मके मार्ग का चिन्तन करना, दान करना, दीनों पर अनुग्रह करना, सबका पूज्यहोना, वेदरूपीधन रखना, तपकरना, सबपर दया करना ये भी स्वर्ग को जीतनेवाले शिष्टपुरुषों के आचार हैं ८७।८८ ऐसे दान में निष्ठा रखनेवाले पुरुष इस लोक में लक्ष्मी और परलोक में सुखपाते हैं और सत्पुरुषों की संगति करनेवाले सन्तलोग स्त्री और भृत्योंको दुःख होने पर भी यथाशक्ति दान करते हैं और अपने हित और इस लोक के धर्म को देखकर अपने कर्म पर आरूढ़ रहकर सदैव वृद्धि पाते रहते हैं और अहिंसा, सत्य वचन, दया, सीधापन, द्रोह न करना, अभिमान को त्यागना, लज्जा, क्षमा और इन्द्रियोंको जीतना ये उन सन्तलोगों के गुण होतेहैं जो सन्त बुद्धिमान्, धृतिमान्, दयावान् और कामद्वेषरहित हैं, उनकी गणना लोकसाक्षियों में है। उत्तम पुरुषों के तीन पद हैं ८६। ९३ द्रोह न करना १ दान करना २ और सदैव सत्य बोलना ३ दयावान् सन्तलोग इस लोक में संतुष्ट रहकर धर्मसम्बन्धी उत्तम गति पाते हैं और जो महात्मा शिष्टाचारी हैं और जिन्होंने धर्म का निश्चय अच्छे प्रकार से किया है ९४।९५ उनके आचरण ये हैं कि दूसरे के गुणों में दोष न लगाना, क्षमाकरना, शान्तस्वरूप रहना, संतोष होना, प्रिय बोलना और काम, क्रोध को त्यागना ९६ शिष्टाचार शास्त्रविहित सत्पुरुषों का उत्तम स्वर्ग है, धर्म में प्रीति रखनेवाले मनुष्य सदैव इसी मार्गपर चलते हैं ९७ और ज्ञानरूपी मन्दिरपर चढ़कर इससंसार के नानाप्रकार के वृत्तान्तों को देखकर बड़े भय से छूटजाते हैं और सब पुण्य और पापों से निश्चिन्त होकर मोक्ष पाते हैं। हे ब्राह्मण, महाराज! आपके पूछने के अनुसार मैंने अपनी बुद्धि और शास्त्र के अनुसार शिष्टाचार के गुण कहे॥ ९८।९९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०६॥

दोसौसातवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का कौशिक से पूर्वजन्म के कर्मों की प्रबलता कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! उक्त कथा को कहने के उपरान्त उस धर्मव्याध ने उस ब्राह्मण से फिर कहा कि महाराज! होनहार बड़ी बलवान् है और पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। देखिये, यह पूर्वजन्म के पापों का ही फल है जो मैं इस वधिक के घोरकर्म को करता हूं और यत्न करने पर भी अपने इस दोष को दूर नहीं करसक्ता हूं १ । २ हे द्विजोत्तम! मैं इस कर्म के करने में केवल निमित्तमात्र हूं क्योंकि जिन मारे हुए जीवों का मांस मैं बेचता हूं उनके मांस को भक्षण करने में धर्म होता है और उस मांस से देवता, अतिथि, भृत्य और पितरों का पूजन भी होता है ४ । ५ वेद की यह श्रुति सुनी जाती है कि औषध, पशु, मृग, पक्षी और अन्न ये सब पदार्थ मनुष्य के भोजन के लिये निर्मित हैं ६ देखो, उशीनर के पुत्र राजा शिबि ने अपना मांस दान करने से स्वर्गलोक पाया था ७ और पूर्वकाल में राजा रन्तिदेव के रसोई के घर में दो सहस्र पशु नित्य मारे जाते थे ८ और मांससहित अन्नदान करने के कारण से उस राजा रन्तिदेव की बड़ी कीर्ति संसार में हुई थी और उसके यहां चातुर्मास में नित्य पशु मारे जाते थे ९ । १० यह भी श्रुति सुनी जाती है कि अग्नि भी मांस ही चाहती है। देखो, यज्ञों में ब्राह्मणलोग पशुओं को मन्त्रों से संस्कृत करके सदैव मारा करते थे । उन्होंने भी स्वर्ग पाया था ११ हे द्विजोत्तम! जो पूर्वकाल में अग्निदेव मांस की इच्छा न करते तो मांस कोई नहीं खाता १२ । १३ और मुनिलोगों ने अब भी मांस भक्षण करने की यह विधि कही है कि जो पुरुष विधि और श्राद्ध के अनुसार देवता और पितरों को देकर मांस खाता है उसको मांस भक्षण करने का दोष नहीं होता है १४ और श्रुति भी ऐसी सुनी जाती है कि उक्त प्रकार से मांस खाना मांसभक्षण में नहीं गिना जाता है और जो ब्राह्मण स्त्री के पास ऋतुकाल में जाता है और अन्य समय नहीं जाता है वह ब्रह्मचारी है १५ सत्यज्ञान के मार्ग का विचार करके मांस का भक्षण कहा गया है । देखो, राजा सौदास ने शाप से अभिभूत होकर बहुत से मनुष्यों को मारकर उनका मांस भक्षण किया था । ऐसी अवस्था में मैं यह विचार कर कि यह हमारा धर्म है, इस कर्म को नहीं छोड़ता हूं और इसको अपने पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का फल जान

कर मांस बेचकर अपना पेट पालता हूं १६ । १७ अपने धर्म को छोड़ना बड़ा अधर्म है, इससे अपने कर्म में रत रहना ही धर्म है १८ कर्म के निर्णय करने में ईश्वरकी यह विधि बहुधा देखी गई है कि पूर्वजन्म में कियेहुए कर्म का फल देहधारी को अवश्य मिलता है १९ क्रूरकर्मी पुरुष को अपनी बुद्धि से यह बात विचारना उचित है कि मैं शुभकर्म किस प्रकार से करूं जिससे पराभव से छूटजाऊं २० ऐसा विचार करने पर उसको उस कर्म के निर्णय करने में बहुत प्रकारकी बातें दीखेंगी और तब वह कहेगा कि मैं दान देताहूं, सत्य बोलताहूं, गुरु की सेवा करता हूं, ब्राह्मणों का पूजन करताहूं, धर्म में निरत रहता हूं और अभिमान और अतिवाद नहीं करता हूं २१ । २२ परंतु उपजीवन के लिये क्या कर्म किया जाय ? बहुत से मनुष्य कहते हैं कि खेती से जीविका उत्पन्न करना बहुत श्रेष्ठ है परंतु उसमें बड़ी हिंसा होती है; क्योंकि हल चलाने और पृथ्वी पर सोने से बहुत से जीव मारेजाते हैं २३ इसके सिवाय चावल आदि धान्य और बीज जो खाये जाते हैं वे भी तो जीव ही हैं सो जैसे उनको काटकर खाते हैं उसी प्रकार से पशुओं को भी मारकर भक्षण करते हैं और मनुष्य, वृक्ष और औषधियों को भी काटते हैं उनमें भी बहुत से जीव रहते हैं और जल भी जीवों से भरा हुआ है ऐसी अवस्था में तुम क्या विचार करोगे; सिवाय इसके कुछ नहीं कि इस जगत् में सब जीव एक दूसरे का आहार हैं २४ । २७ देखो, मछली मछली को खालेती है और बहुत से और जीव ऐसे हैं जिनका भक्ष्य सिवाय दूसरे जीव के और कुछ नहीं है इससे सिवाय इस बात के और क्या जाना जा सकता है कि एक प्राणी दूसरे प्राणी को भक्षण करनेवाला है। पृथ्वी और आकाश में कोई स्थान ऐसा नहीं है जो जीवों से खाली हो सो मनुष्य चलते, फिरते, उठते, बैठते और सोते में अनेक जीवों को मार डालते हैं इससे यह विदित होता है कि मनुष्य हिंसा से बच नहीं सकता है और संसार में कोई जीव अहिंसक नहीं है। पूर्वकाल में यह अहिंसा का शब्द केवल विस्मित मनुष्यों ने कहा है २८ । ३३ हे द्विजसत्तम ! यतीलोग भी हिंसा से बचे हुए नहीं हैं। वे भी हिंसा करते हैं परंतु हां, यत्न करने से हिंसा कम हो सकती है ३४ देखो, जो लोग अच्छे कुलों में उत्पन्न होते हैं और गुणवान् होते हैं वे भी घोरकर्म करते हैं और उन कर्मों के करने पर लज्जा नहीं करते हैं ३५ देखो, मित्र मित्र को और शत्रु शत्रु को अच्छे मार्ग में प्रवृत्त देखकर देख नहीं सकते हैं और एक भाई दूसरे को बढ़ा

हुआ देखकर प्रसन्न नहीं होता है उसी प्रकार से परिडताई के अभिमान से अज्ञानीलोग गुरुओं की भी निन्दा करते हैं इस प्रकार से इस संसार में धर्म और अधर्म से युक्त बहुत सी बातें दीखती हैं। उनमें धर्म और अधर्म का विचार करके कोई पार नहीं पासकता है इससे जो मनुष्य अपने धर्म और कर्म में निरत रहता है वही सुयश पाता है॥ ३६। ३९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०७॥

दोसौआठवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का कौशिक से धर्म की सूक्ष्मगति और कर्मानुसार फल का कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! इस के उपरान्त उस धर्मव्याध ने उस श्रेष्ठ ब्राह्मण से फिर कहा १ कि महाराज! धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म, अनेक शाखा रखनेवाली और अनन्त है और वेद में उसका प्रमाण और वृद्धों का उपदेश इस प्रकार से है कि प्राणों के मारे जाने और विवाह के समय झूंठ बोलना सत्य के समान है, झूंठ नहीं है २। ३ और जिस विपरीत कर्म से जीवों का परमहित होता हो वह कर्म भी निश्चय सत्य है। इसीमें धर्म की सूक्ष्म गति को देखलो ४ मनुष्य को शुभ और अशुभ कर्मों का फल निश्चय मिलता है, उसमें जो परिडत नहीं होता है वह अपने कर्म के दोष को न जानकर दुःख पाने पर देवताओं की निन्दा करता है ५। ६ हे द्विजोत्तम! अज्ञानी, कपटी और चपल पुरुषों को दुःख और सुख का विपर्यास सदैव होता रहता है ७ उसको बुद्धि, गुरु, शिक्षा और पौरुष रोक नहीं सकते हैं और जो पौरुष का फल दूसरे के आधीन न होता तो मनुष्य जिस कामना को चाहता वही पूरी होती। देखो, सन्तलोग जो सावधान, चतुर, बुद्धिमान् और उपाधि रहित हैं कोई कर्म नहीं करते हैं। बहुत से मनुष्य निरन्तर प्राणियों की हिंसा करने में लगे रहते हैं ८। १० बहुत से जगत् को ठगते फिरते हैं और सुख से रहते हैं और बहुत से कोई काम नहीं करते हैं और लक्ष्मीवान् होते हैं ११ बहुत से ऐसे भी हैं कि अनेक कर्म करते हैं परंतु उनकी कामना पूरी नहीं होती है, बहुत से मनुष्य पुत्र के लिये देवताओं की पूजा और तप करते हैं और फिर दश महीने गर्भ धारण करने पर उनके कुलकलङ्की पुत्र उत्पन्न होता है और बहुत से मङ्गल के साथ उत्पन्न होते हैं और बाप दादे के इकट्ठा किए हुए ऐश्वर्य को भोगते हैं और मनुष्य के जो रोग उत्पन्न होते हैं वे निस्संदेह

कर्म ही से उत्पन्न होते हैं और मनुष्य को उन रोगों से इस प्रकार से पीड़ा होती है जैसे व्याधाओं से मृग पीड़ित होते हैं। उन रोगों को कुशल वैद्य औषधियों से दूर कर देते हैं। बहुत से ऐसे भी हैं कि उनके पास सब उत्तम पदार्थ भोगने को हैं परंतु उनको ऐसे रोग लगे हुए हैं कि वे उन पदार्थों को भोग नहीं सक्ते हैं और बहुत से भुजा का बल रखने पर भी क्लेश पाते हैं १२। १७ यहां तक कि भोजन भी दुःख से मिलता है इस प्रकार से यह सहायहीन संसार पूर्वकर्मों के कारण से मोह, शोक, आधि और व्याधि से व्याप्त है परंतु वशित्व के होने से मनुष्य न मरता है, न वृद्ध होता है और न अप्रिय प्राप्त करता है किन्तु उसकी सब कामना पूरी होती है और उसकी इच्छा सब लोकों के ऊपर ऊपर जाने की रहती है १८। २० हां, जो लोग अपनी शक्ति के अनुसार यत्न करते हैं उनको वैसा नहीं होता है। बहुत से मनुष्यों के नक्षत्र और मङ्गलीय ग्रह एक से होते हैं परंतु उनके कर्मसंधि से फल एकसा नहीं मिलता है हे ब्रह्मन्! कोई मनुष्य अपने आप मिली हुई वस्तु का स्वामी नहीं है अर्थात् विना यत्न कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती है इससे संसार में कार्य की सिद्धि विना कर्म किये नहीं होती है २१। २२ वेद के अनुसार मनुष्य का शरीर नाशवान् और जीव सनातन है २३ सो मरने पर मनुष्य के शरीर का तो नाश हो जाता है परंतु जीवात्मा कर्म के बन्धन से बँधा हुआ दूसरी योनि में जाकर जन्म ले लेता है २४ यह सुनकर ब्राह्मण बोला कि हे कर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! जीव किस प्रकार से सनातन है मैं इस बात को तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूं २५ व्याध बोला कि अज्ञानी लोग जो यह कहते हैं कि फलाना मरगया, यह मिथ्या है, जीव का नाश कभी नहीं होता है किंतु वह देहान्तर में चला जाताहै सो जीव के देह बदलने का ही नाम पञ्चत्व है २६ इस संसार में कर्म का नाश नहीं होता है और उसको कर्त्ता के सिवाय और कोई नहीं भोगता है २७ इससे जब मनुष्य अपने कर्मानुसार दूसरा जन्म लेता है तब पापी, नीचकर्मी और पुण्यात्मा पुण्यकर्मी होता है २८ ब्राह्मण बोला कि वह जीव योनि में किस प्रकार से जन्म लेता है और पुण्य पाप के अनुसार पवित्र और अपवित्र जाति में कैसे प्राप्त होता है २९ व्याध बोला कि यह कर्म गर्भाधान से सम्बन्ध रखता हुआ जान पड़ता है, इसका वृत्तान्त संक्षेप रीति से इस प्रकार से है कि जब जीव जन्म लेने को होता है तब कर्म के अनुसार पापी

पापयोनि में और पुण्यात्मा पुण्ययोनि में उत्पन्न होता है ३० । ३१ जो केवल पुण्यकर्म ही करनेवाला है उसको देवभाव मिलता है और जो पाप और पुण्य दोनों का कर्त्ता है वह मनुष्ययोनि में जन्म लेता है और जिसने केवल तामस कर्म ही किये हैं वह नीच योनियों में उत्पन्न होकर नरकगामी और पापी होता है ३२ और कर्म के बन्धन से बँधा हुआ होने के कारण से जन्म-मृत्यु और बुढ़ापे के दुःखों को उठाता हुआ पशु, पक्षी और कीड़े मकोड़ों की अनेक योनियों में जन्म ले लेकर नरक भोगता हुआ चक्कर खाया करता है ३३ । ३४ अर्थात् यह जीव कर्मानुसार अपवित्रयोनि में जन्म लेकर दुःख भोगकर जब दूसरा जन्म लेता है तब उस जन्म में नवीन कर्मों को करके इस प्रकार से उन कर्मों से जन्म जन्मान्तरों में पीड़ा पाता है जैसे रोगी कुपथ्य खाकर रोग को बढ़ाकर दुःखी होता है ३५ । ३७ और निरन्तर दुःख पाने पर भी अपने को दुःखरहित और सुखी मानता है । इस प्रकार से वह कर्मों से शुद्ध होने पर भी बन्धन से नहीं छूटता है और दुःखी होकर इस संसार में चक्र के समान घूमा करता है ३८ । ३९ और जब वही मनुष्य कर्मों से शुद्ध होकर बन्धन से छूट जाता है तब तपस्या आदि कर्म करता है और उन कर्मों के प्रभाव से बन्धन से छूट कर शुद्ध होकर उन लोकों को पाता है जिनमें शुभकर्मी मनुष्य जाते हैं और वहां चिन्तारहित होकर सुख भोगते हैं ४० । ४१ पापी मनुष्य पापकर्म को करते करते उस पाप का अन्त नहीं पासकता है इससे मनुष्य को पापकर्म त्यागकर पुण्यकर्म करना उचित है जो मनुष्य दूसरे के गुणों में दोष नहीं लगाता है और कृतज्ञ होता है उसका सर्वथा कल्याण होता है ४२ और वह सुख, धर्म, अर्थ और स्वर्गलोग पाता है और जिस मनुष्य ने संस्कारों से इन्द्रियों को जीत लिया है और शौच आदि कर्म किये हैं और मन को वश में कर लिया है वह ज्ञानी इसलोक और परलोक दोनों में सुख पाताहै ४३ इससे हे द्विज! मनुष्य को उचित है कि सत्पुरुषों के धर्म पर चले, शिष्टलोगों की की हुई क्रियाओं को करे और अपनी आजीविका विना किसी को क्लेश दिये उपार्जन करे ४४ उपदेशकर्ता ऐसे होने चाहियें जो शास्त्र में विज्ञानी और विचक्षण हों और उचित आचार से कोई क्रिया करने से धर्म नष्ट नहीं होता है ४५ हे द्विजसत्तम । ज्ञानीलोग केवल धर्म ही करते हैं और धर्म ही से अपनी जीविका उत्पन्न करते हैं और उस धर्म से उत्पन्न किये हुये धन से भी दान आदि कर्मों के द्वारा धर्म की ही जड़

को सींचते हैं और फिर उस धर्म के गुण को देखते हैं। इस प्रकार से धर्म करनेवाले का चित्त प्रसन्न रहता है और इसलोक में उसका चित्त मित्रवर्गों में संतुष्ट और परलोक में सुख पाता है और उसको प्रभुता भी मिलती है, धर्म का यही फलहै। धर्मात्मा उस फल को पाकर संतोष नहीं करते हैं अर्थात् धर्म से तृप्त न होकर फिर धर्म ही करते हैं और धर्म से तृप्त न होने के कारण से वैराग्य उत्पन्न होजाता है, उस वैराग्य के कारण से फिर वह राग और द्वेष आदि दोषों के वश में नहीं हो सकता है ४६ । ५० और धर्म को न छोड़कर वैराग्य में तत्पर रहता है और संसार को नाशवान् जानकर सब पदार्थों के त्याग करने का यत्न करताहै ५१ और केवलदैव के आश्रयपर न रहकर मोक्ष पानेका यत्न करता है। इसप्रकार से मनुष्य पापकर्मों को छोड़कर वैरागी हो जाता है ५२ और धार्मिक होकर मोक्ष पाता है सो मोक्ष का साधन जीव का तप अर्थात् ज्ञान है और ज्ञान का मूल इन्द्रियों को वश में करना है जिसको शम और दम कहते हैं ५३ यह इन्द्रियों का निरोध और सत्य, दम ऐसे धर्म हैं कि इनसे मनुष्य को परमपद जिसको 'ब्रह्मपद' कहते हैं मिलता है और मनुष्य की सब कामना पूरी होती हैं ५४ यह सुनकर ब्राह्मण ने उस व्याध से पूछा कि श्रेष्ठधर्मी इन्द्रिय क्या पदार्थ हैं, उनका निग्रह क्यों कर होता है और उस निग्रह का क्या फल है और वह फल कैसे मिलता है कृपा करके यह सब तत्त्वपूर्वक कहिये मैं भी इसको जानना चाहता हूं ॥५५।५६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

दोसौनववाँ अध्याय ।

धर्मव्याध का कौशिक ब्राह्मण से इन्द्रियों के स्वरूप, विषय और विषयों का फल कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! ब्राह्मण के उक्त प्रकार से पूछनेपर धर्मव्याधने जो उत्तर दिया उसको सुनो। धर्मव्याध बोला कि हे विप्र ! मनुष्यों का मन पहिले विज्ञान के लिये प्रवृत्त होता है, जब ज्ञान हो जाता है तब काम और क्रोध आकर वर्त्तमान हो जाते हैं, उनसे उसे अर्थ के लिये यत्न करना पड़ताहै और वह बड़े बड़े कामोंको प्रारम्भ कर देताहै और गन्ध आदि अनेक इष्टपदार्थों का अभ्यासी हो जाता है १ । ३ इष्ट पदार्थों का अभ्यासी होने से राग उत्पन्न हो जाता है और उस राग से द्वेष द्वेष से लोभ और लोभ से मोह प्रकट हो जाते हैं ४ इस प्रकार से जब मनुष्य की बुद्धि लोभ से अभिभूत और राग द्वेष से हत हो जाती है तब मनुष्य दम्भ से धर्म करने लगता है ५ इससे फिर उसकी रुचि

दम्भ ही से धन उत्पन्न करने की हो जाती है और दम्भ के उपायों से धन मिलने पर उसको दम्भ ही अच्छा लगता है और वह सुहृद् और पण्डितों से रोके जाने पर भी पाप ही करना चाहता है ६ । ७ और सबको वेद का प्रमाण देकर उत्तर देता है और अपना बर्त्ताव उसपर नहीं रखताहै फिर वह राग और द्वेषसे उत्पन्न हुए तीनप्रकार के अधर्मों पर चलने लगता है ८ पापकर्म का शोचना १ पापकर्म की ही बातचीत करना २ और पाप ही करना ३ इन अधर्मों में प्रवृत्त होने पर उस मनुष्य के सब साधु गुण नष्ट होजाते हैं ९ जो पापकर्मी मनुष्य तुल्य शीलवान् पुरुषों से मित्रता करते हैं वे भी दुःखपाते हैं और परलोक में आपत्ति भोगते हैं १० यह तो पापियों की गति है। अब धर्मात्माओं का वृत्तान्त सुनो जो मनुष्य पहिले ही से उक्त दोषों को जानकर त्याग कर देता है और उन दोषों के सुख दुःखको समझकर साधुओं की संगति करताहै उसकी बुद्धिधर्म से विपरीत नहीं होती है और वह जो कुछ काम प्रारम्भ करता है वह सब अच्छा ही होता है ११।१२ यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि हे व्याध! तुम्हारे वाक्य बड़े प्यारे और धर्मयुक्त हैं, मेरी समझ में तुम्हारे समान वक्ता नहीं है इससे मैं जानता हूं कि तुम दिव्य प्रभाव रखनेवाले महाऋषि हो १३ व्याध बोला कि महाराज! महाभाग ब्राह्मण और पितर सबसे प्रथम भोजन करते हैं इससे ज्ञानी मनुष्य को अपने सर्व शरीर से उन दोनों का प्रिय करना उचित है १४ उस प्रियको मैं तुमसे ब्राह्मणों को नमस्कारकरके कहताहूं उसका नाम ब्राह्मीविद्या है सुनो १५ यह विश्व जगत् ही सर्वरूप और कर्म से अलभ्य है और यही महाभूतात्मक ब्रह्म है जिससे परे कोई नहीं है १६ और पांच महाभूत हैं अर्थात् आकाश १ वायु २ अग्नि ३ जल ४ और पृथ्वी ५ और उन पांचों के पांच गुण हैं अर्थात् शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गन्ध ५ और छठा चैतन्यस्वरूप मन, सातवीं बुद्धि, आठवाँ अहंकार और नवीं, दशवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं पांचों इन्द्रियाँ, चौदहवाँ जीवात्मा पन्द्रहवाँ सतोगुण, सोलहवाँ रजोगुण और सत्रहवाँ तमोगुण इन सत्रहों की अव्यक्त संज्ञा है। ये सब व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप इन्द्रियार्थ हैं अर्थात् बाहर और भीतर की इन्द्रियों के ग्राह्य हैं और इनमें व्यक्त और अव्यक्तमय चौबीस गुण हैं अर्थात् उक्त अव्यक्तसंज्ञक सत्रह नामोंकी राशि में से जो बाहरकी इन्द्रियों के ग्रहण योग्य हैं और जो भीतर की इन्द्रियों के ग्राह्य हैं उन दोनों में २४ गुण हैं और इनसे जो विविक्तहै उसीका नाम ब्रह्म है। हे ब्राह्मण! जो कुछ तुमने

पूछा था वह सब हम सुना चुके। अब और क्या सुनना चाहते हो ॥ १७ । २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥

दोसौदशवाँ अध्याय।

पञ्चमहाभूतों के पृथक् पृथक् गुण और इन्द्रियों के निरोधन करने और न करने का फल।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! धर्मव्याध के उक्त वचनों को सुनकर उस ब्राह्मण ने पूछा कि हे श्रेष्ठधर्मिन् ! मैं पांचों महाभूतों के गुणों को पृथक्पृथक् सुना चाहता हूं, कृपा करके वर्णन कीजिये १ । २ व्याध बोला कि हे द्विजोत्तम ! बहुत श्रेष्ठ, सुनिये । पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांचों को पञ्चमहाभूत कहते हैं गुण उनके ये हैं ३ शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ और गन्ध ५ ये पांच गुण पृथ्वी में हैं और शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ और रस ४ ये गुण जल में हैं और शब्द १ स्पर्श २ और रूप ३ ये तीनों अग्नि के गुण हैं और वायु में दोही गुण हैं । शब्द १ और स्पर्श २ तथा आकाश में केवल एक ही गुण है अर्थात् शब्द ४ । ७ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार से पांचों भूतों में सब पन्द्रह गुण हैं और ये पन्द्रहों गुण सब संसारी जीवों के शरीरों में बसते हैं जिसके कारण से यह संसार स्थित है ८ और एक दूसरे के विना रह नहीं सकते हैं और जब जीवात्मा इनको त्याग देता है तब शरीर का नाश हो जाता है और जीवात्मा काल से दूसरी देह धारण कर लेता है इस प्रकार से इस संसार में क्रमपूर्वक जीवन और मरण हुआ करता है ९ । १० और जहां देखिये तहां ही वीर्य आदि पञ्चतत्त्व से उत्पन्न हुई धातु दीखती हैं जिनसे यह चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है ११ जो कर्म इन्द्रियों से किये जाते हैं उन को व्यक्त कहते हैं और जिनको इन्द्रियां नहीं करती हैं किन्तु लिङ्ग शरीर से ग्रहण किये जाते हैं वे अव्यक्त कहलाते हैं १२ जब मनुष्य शब्दादि वियोगों को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियों को रोक कर तपस्या करताहै तब उसको आत्मा लोकमें व्याप्त और लोक आत्मा में व्याप्त दिखाई देने लगता है और ब्रह्मज्ञानी होने के कारण से उसे कर्म करने पर भी सब भूत दिखाई देते हैं १३।१४ और फिर उस सदा और सब अवस्थाओं में सब प्राणियों को देखनेवाले ब्रह्मरूप पुरुष को पाप और पुण्य का फल नहीं होता है १५ क्लेश का मूल अविद्या है इससे मनुष्य को ज्ञानमार्ग में विद्या का वश करना अवश्य है । भगवान् ने जीवन्मुक्त आत्मा को आदि अन्तरहित, आत्मयोनि, अविनाशी, अमूर्ति और

उपमाहीन कहा है १६ । १७ सो हे ब्राह्मण ! इस सबकी जड़ तपस्या है और तपस्या विना इन्द्रियों को वश में किये नहीं हो सकती है १८ इन्द्रियां ही स्वर्ग और नरक को लेजानेवाली हैं क्योंकि इन्द्रियों का निरोध करके तप करने से स्वर्ग और इन्द्रियों को विषयों में लिप्त करने से नरक प्राप्त होता है १९ यह सब योग की विधि हैं तप, स्वर्ग और नरक सबकी मूल इन्द्रियां ही हैं २० इन का प्रसंग करने से निस्संदेह दोष उत्पन्न होजाते हैं और इनके निरोध से परम सिद्धि प्राप्त होती है २१ जो कोई शरीर की छः इन्द्रियों को जीत कर अपने वश में कर लेता है वह पाप और अनर्थ के फल को नहीं भोगता है २२ हे ब्राह्मण! तुम इस शरीर को रथ समझो और आत्मा को रथी और इन्द्रियों को रथ के घोड़े जानो, सो जो मनुष्य सावधान, धैर्यधारी और कुशली होता है वह रथी के समान उस रथ के घोड़ों को शुद्धमार्ग में हांकता हुआ सुखपूर्वक जाता है २३ और जिसको बुद्धि में युक्त अश्वरूपी छः चञ्चल इन्द्रियों की बागडोर थांभना आता है वही इस शरीररूपी रथ का उत्तम सारथी है २४ प्रयोजन यह है कि जैसे रथ के घोड़ों को हांकने पर जो मनुष्य उनको जहां चाहे तहां रोक सकता है और जिधर चाहे उधर मोड़ सकताहै उसीको समझना चाहिये कि यह घोड़ों को वश में करसकता है। इसी प्रकार से अश्वरूपी इन्द्रियों को भी जो रोक सकता है वही उनको जीत सकता है २५ और जिस पुरुष का मन इन घूमनेवाली इन्द्रियों के पीछे पीछे लगा फिरता है उसकी बुद्धि इसप्रकार से नष्ट हो जाती है जैसे जलमें वायु से नाव बही चली जाती है २६ रागी मनुष्य शब्द आदि इन्द्रियों के छः विषयों को अच्छा जानकर उनमें लिप्त होकर दुःखपाता है और विरागी उन्हीं विषयों को सिद्धान्तपूर्वक त्याग कर आत्मा को जगन्मय और जगत् को आत्मामय समझकर अपनी ज्ञानदृष्टि के द्वारा सर्वव्यापी ब्रह्म को ध्यान करने के कारण से परमपद पाता है ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

दोसौग्यारहवाँ अध्याय।

सतोगुण आदि तीनों गुणों का वृत्तान्त और तीनों गुण रखनेवाले पुरुषों का लक्षण।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! जब वह धर्मव्याध उक्त प्रकार से सूक्ष्म ब्रह्म का वृत्तान्त कह चुका तब उस ब्राह्मण ने फिर सूक्ष्म ब्रह्म ही का हाल पूछा और कहा कि आप कृपा करके सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों

गुणों का वृत्तान्त तत्त्वपूर्वक कथन कीजिये १ । २ व्याध बोला बहुत श्रेष्ठ, सुनिये । मैं तीनों गुणों को पृथक् पृथक् कहता हूं ३ इन तीनों में तमोगुण मोहरूपी है, रजोगुण मोह में प्रवृत्त करनेवाला है और सतोगुण प्रकाशमान और श्रेष्ठ है ४ शील स्वभाव का स्वप्नवत् होना, अविद्या का बहुत होना, ज्ञान का नाम न जानना, किसी बात का चेत न रखना, इन्द्रियों को खोटे मार्गों में लगाना और क्रोध बहुत करना ये तामसी मनुष्य के लक्षण हैं और अपनी बात को प्रवृत्त करना, मन्त्री होना, दूसरे के दोष को न देखना, तृष्णा बहुत रखना, किसी को नमस्कार आदि न करना और अभिमान बहुत करना रजोगुणी अर्थात् राजसी मनुष्य के लक्षण हैं ५ । ६ और ज्ञान को बहुत प्रकार से जानना, धैर्य रखना, लोभ न करना, दूसरे के दोष को न देखना, क्रोध न करना और इन्द्रियों को जीतना ये सतोगुणी अर्थात् सात्त्विकी पुरुषों के लक्षण हैं ७ सात्त्विकी मनुष्य को हृदय में ज्ञान के आने पर लोकवृत्त से क्लेश होता है परन्तु जब वह ब्रह्मको जान लेताहै तब लोकवृत्त की निन्दा करने लगताहै ८ और उसका अहंकार मृदु और अकौटिल्य शुद्ध हो जाता है और उसके हृदय में विरागी के लक्षण पहिले से ही आकर वर्तमान हो जाते हैं ९ और उसको फिर द्वन्द्व अर्थात् मान और अपमान होने का विचार नहीं रहता है और न किसी बात का संशय होताहै १० सद्गुणों को ग्रहण करने से शूद्रभी वैश्य और क्षत्री हो सकता है और आर्जवपर चलनेवाले को ब्रह्मज्ञान प्राप्त होताहै । हे ब्राह्मण ! ये सब गुण हम तुमसे कह चुके अब और क्या सुना चाहते हो ॥ ११।१२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

दोसौबारहवाँ अध्याय ।

धर्मव्याध का कौशिक ब्राह्मण से प्राणादि वायु, अग्नि और जीवात्मा का हाल कहना ।

ब्राह्मण बोला कि हे व्याध ! अब मैं यह सुना चाहता हूं कि अग्नि पृथ्वी सम्बन्धी धातु में प्राप्त होकर शरीर की अभिमानिनी क्योंकर होती है और शरीर को नाड़ियों के मार्ग से किस प्रकार से चेष्टित करती है । मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! उक्त प्रश्न को सुनकर व्याध कहने लगा कि अग्नि मूर्द्धा में बसकर देह का पालन करती है और प्राणअग्नि मूर्द्धा में रहकर चेष्टित रहती है १ । २ भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों प्राण में ही स्थित हैं । सबभूतों में प्राण ही श्रेष्ठ है, उसी ब्रह्मयोनि प्राण की हम उपासना करते हैं वही सब भूतों का कार्य कारण

रूप आत्मा है, वही सनातन पुरुष है, वही महाबुद्धि अहंकार और प्राणियों का विषय है और देह के भीतर बाहर की इन्द्रियों का पालन करनेवाला है अर्थात् इन्द्रियां उसी के प्रभाव से चैतन्य हैं ४। ६ और बस्ति, नाभि और गुदा की अग्नि में आश्रित होकर अपाननाम वायु रहती है, वही मूत्र और विष्ठा को बाहर निकाल देती है ७ और कण्ठ में उदानवायु रहती है उसका काम चलना, फिरना, बोझ उठाना और यत्न करना है ८ और सर्वाङ्ग की संधि संधि में व्याननाम वायु है जो वायु अग्नि और धातुगत है उसका नाम समान है, वह अन्न आदि रस और त्वचा आदि धातु और पित्त आदि दोषों को परिणाम देती हुई घूमा करती है ९। १० और छहों वायुओं के आपस में मिलने से एक ऊष्मा उत्पन्न होती है उसको जठराग्नि कहते हैं। वही प्राणियों के भोजन को पचाती है ११ और जब प्राण और अपान वायु समान और उदानवायु में आ मिलती हैं तब अग्नि उनसे युक्त होकर इस शरीर को वृद्धावस्था आदि परिणामों को पहुंचाती है १२ और वायु से उत्पन्न अग्नि अपानवायु से मिलकर पचेहुये अन्न को गिरा देती है और अग्नि के वेग को लेजानेवाली प्राणवायु गुदा में प्रवेश होकर अपानवायु को ताड़ित करती है और फिर ऊपर को उछल कर अग्नि में आ मिलती है १३। १४ नाभि के नीचे पक्व अन्न का स्थान और ऊपर आमाशय अर्थात् अपक्व अन्न का आशय है और बीच में प्राण आदि सब वायुओं के रहने का स्थान है १५ और तिरछी, ऊंची और नीची नाड़ियां जो देह में फैली हुई हैं वे उस पके हुये अन्न के रस को प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, कूर्म, कृकल, नाग, देवदत्त और धनंजयनामी दशों वायुओं के द्वारा शरीर के सब स्थानों में पहुँचाती हैं १६ यह योगियों का मार्ग है। इसीके द्वारा समदर्शी और धीर योगीलोग परब्रह्म को प्राप्त होते हैं और प्राणों को मूर्द्धा में चढ़ा लेते हैं। इस प्रकार से प्राण और अपानवायु सब शरीर में व्याप्त हैं १७ इस स्थूल शरीर में ग्यारह विकार अर्थात् दश इन्द्रियां, एक मन, सोलह कला और संभार अर्थात् श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोक हैं और उसमें जो अग्नि सदा स्थित रहती है वही आत्मा है। योगी लोग उसी को जीतकर वश में करते हैं १८। १९ और उस स्थूल शरीर को प्रकाश करनेवाली अग्नि में जो देवता इस प्रकार से रहता है जैसे कमल पर जल की बूंद। वही सतोगुण, रजोगुण और तमोगुणयुक्त

क्षेत्रज्ञ जीव है और जो निर्गुण है अर्थात् जिसमें उक्त तीनों गुणों में से कोई गुण नहीं हैं वह परमात्मा है। जीव और परमात्मा बिम्ब और प्रतिबिम्ब के समान हैं। जीव चैतन्य और गुणमय सबको चेष्टित करनेवाला है और जो उससे परे है उसको क्षेत्र के जाननेवाले सातों भुवनों का रचनेवाला कहते हैं २०।२२ इस प्रकार से वह भूतात्मा सब भूतों में अपना प्रकाश कर रहा है और ज्ञानी लोग उसको अपनी सूक्ष्म और उत्तम बुद्धि से देखते हैं २३ जो मनुष्य चित्त को शुद्ध करके सब शुभ और अशुभ कर्मों को छोड़ देता है वह प्रसन्नता से आत्मा में स्थित होकर मोक्ष पाता है २४ जिस प्रकार मनुष्य तृप्त होकर सुखपूर्वक सोता है और जैसे निर्वातस्थान में जलाया हुआ दीपक अच्छा प्रकाश करता है उसीप्रकार से जो थोड़ा आहार करनेवाला मनुष्य अपने चित्त को शुद्ध करके पिछली और अगली रात्रि में मन लगाकर अपने हृदय में ब्रह्म का ध्यान करता है वह मन-रूपी दीपक से निर्गुण आत्मा को अपने शरीर में निरन्तर देखता है और संसार से मुक्त होजाता है २५।२७ लोभ और क्रोध को वश में करना सब उपायों से उत्तम तप है और संसार से उद्धार करने के लिये बड़ा सुन्दर मार्ग है २८ तप को क्रोध से, धर्म को मत्सरता से, विद्या को मान और अपमान से और आत्मा को प्रमाद से रक्षित करना अवश्य उचित है २९ अहिंसा बड़ा धर्म, क्षमा बड़ा बल, आत्मज्ञान परमज्ञान और सत्य बड़ा व्रत है ३० सत्य बोलना बड़ा उत्तम पदार्थ कल्याणकारी और हितकारी है ३१ जो मनुष्य किसी क्रिया का आरम्भ विना आशा और बन्धन के करता है और जो होम इत्यादि विना फल चाहे करता है वह बड़ा त्यागी और बुद्धिमान् है ३२ इससे इस योग को सुनावै नहीं किन्तु इसके सिद्ध करने का यत्न करे और चित्त के योग और वियोग को ब्रह्मयोग जाने ३३ मनुष्य को उचित है कि हिंसा न करे, किसी से वैर न करे और सबसे मित्रता रक्खे ३४ अपने पास कुछ न रखना, संतोष करना, निराशित्व होना, चपलता न करना, यही परमज्ञान और उत्तम आत्मज्ञान है ३५ सब संगतों को छोड़कर यतव्रत होकर रहने से मनुष्य को परलोक में शोकरहित और निश्चल स्थान मिलता है ३६ तपस्वी, जितेन्द्रिय, शुद्ध अन्तःकरण, सत्संगी, ज्ञानी और अजित के जीतने की इच्छा रखनेवाले को इस ज्ञान की भावना करना उचित है ३७ गुण को अगुण जानना, किसी का संग न रखना, एक ही कार्य अर्थात् ब्रह्म का चिन्तन करना और अन्तर न रखना यह ब्रह्मज्ञान की वृत्ति का

एक पद सुख है ३८ जो पुरुष सुख दुःख और संग को छोड़ देता है वह परब्रह्म को प्राप्त होता है ३९ हे कौशिक! जो कुछ ज्ञान मैंने सुना था वह सब तुमसे कह सुनाया। अब तुम्हारी इच्छा और क्या सुनने की है ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥

दोसौतेरहवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का कौशिक को अपने घर ले जाना और माता-पिता की सेवा का महत्त्व बताना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जब वह धर्मव्याध उक्त प्रकार से मोक्षधर्म वर्णन कर चुका तब कौशिक ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर उस धर्मव्याध से कहा कि हे व्याध! तुमने जितनी बातें कही हैं वह सब न्याययुक्त हैं। मैं जानता हूं कि संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसको तुम न जानते हो १।२ यह सुनकर व्याध बोला कि महाराज! मैं जो धर्म करता हूं और जिस धर्म से मैंने यह सिद्धि पाई है, उसे मैं आपको प्रत्यक्ष दिखाता हूं ३ हे भगवन्! उठिये, मेरे साथ घर के भीतर चलिये और मेरे माता पिता को देखिये ४ यह सुनकर वह ब्राह्मण व्याध के साथ भीतर गया और वहां उसने एक बड़ा रमणीक और मनोहर स्थान देखा जिसमें चार कोठे बने हुए थे ५ और देवमन्दिर के तुल्य शोभायमान था, वहां उत्तम गन्ध आरही थी और बहुतसे बैठने को आसन और सोने को शयन अर्थात् सुन्दर सुन्दर चारपाई आदि रक्खीहुई थीं ६ वहीं उस व्याधके माता और पिता श्वेतवस्त्र पहिरेहुए सुन्दर आसनों पर भोजन आदि से संतुष्ट बैठेहुए थे ७ उन दोनों को देखकर धर्मव्याधने अपना मस्तक उनके चरणों पर रख दिया तब वे दोनों वृद्ध बोले हे धर्मज्ञ, पुत्र! उठ हम, तेरे शौच से प्रसन्न हैं परमेश्वर करे तेरी बड़ी उमर हो और धर्म तेरी सब प्रकार से रक्षा करे ८ तेरी इच्छा के अनुसार तुझे ज्ञानदृष्टि हो और मेधानाम की श्रेष्ठ बुद्धि तेरे हृदय में रहे। हे सुपुत्र! तू हमारी पूजा समय समयपर बहुत अच्छी तरह से करता है ९ और हमारे समान किसी देवता को भी देवता नहीं जानता है, ब्राह्मणों में जो शम और दम अर्थात् इन्द्रिय आदि को वश में करना गुण होते हैं वेभी तुझमें स्थित हैं उन गुणों से और हम दोनों के पूजन से तेरे पितामह और प्रपितामह भी तुझसे बहुत प्रसन्न हैं। तू सेवा करने में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं करता है किंतु मन, वाणी और कर्म से हमारी सेवा करता है और इससमय तेरी बुद्धि भी और प्रकार की नहीं देख पड़ती है १०। १२ हे पुत्र!

तैंने हमारी सेवा जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी से भी अधिक की है। परशुरामजी ने भी अपने माता पिता की ऐसी ही सेवा की थी १३ इसके उपरान्त उसधर्म व्याध ने उन दोनों से कौशिक ब्राह्मण के आने का वृत्तान्त कहा तब उन दोनों ने उस ब्राह्मणसे कुशल पूछकर उसका पूजन किया। उस ब्राह्मणने उन दोनोंके पूजन को बड़े आदर से लिया और उनसे पूछा कि आप अपने पुत्र और भृत्य अर्थात् नौकर चाकरों सहित प्रसन्न और आरोग्य हैं १४। १५ यह सुनकर वे वृद्ध बोले कि हां महाराज आपकी कृपा से हम और हमारे सब नौकर चाकर प्रसन्न हैं और आपभी निर्विघ्नतासे आये हैं १६ मार्कण्डेयजी बोले कि हे धर्मराज ! यह सुनकर उस ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर कहा कि बहुत श्रेष्ठ है यही चाहिये। तदनन्तर धर्मव्याध बोला महाराज ! ये दोनों मेरे माता पिता हैं इन्हींको मैं अपना परमदेवता जानता हूं और जो कुछ पूजन आदि देवताओं के निमित्त करना योग्य है वह सब मैं इनके ही अर्थ करता हूं १७। १८ और ये दोनों वृद्ध मेरे पूज्य इस प्रकार से हैं जैसे इन्द्रादिक तेंतीसों देवता सब संसार के पूज्य हैं १९ और जैसे ब्राह्मणलोग धन संग्रह करके देवताओं को भेंट कर देते हैं उसी प्रकार से मैं भी निरालस होकर इन दोनों को अपना कमाया हुआ धन अर्पण कर देता हूं २० हे ब्रह्मन् ! ये ही मेरे परम देवता हैं, मैं इनको सदैव फल, पुष्प और रत्नों से संतुष्ट करता रहता हूँ २१ इन्हीं को मैं अग्नि समझता हूं, इन्हींको मैं चारों वेद जानता हूं, ये ही मेरे यज्ञ हैं और येही सब कुछ हैं २२ प्राण, धन, स्त्री, पुत्र और सुहृद आदि जो कुछ मेरे पास हैं सब इन्हींके निमित्त हैं। इनकी पूजा मैं नित्य अपनी स्त्री और पुत्रोंसहित करता हूँ २३ हे द्विजसत्तम ! मैं आप इनको स्नान कराता हूं और इनके चरण धोताहूं और आप ही भोजन कराताहूं २४ कोई बात कभी इनके प्रतिकूल होकर नहीं करता हूं किन्तु सदैव अनुकूल ही रहता हूं और इनका प्रिय काम करने में अधर्म भी हो तो भी अन्यथा नहीं करता हूं इन्हींकी इच्छा के अनुसार करता हूं २५ इनका कैसा ही काम हो मैं उसको धर्म ही समझकर करता हूं और इनकी सेवा आलस्य छोड़कर करता हूं २६ हे महाराज ! ऐश्वर्य चाहनेवाले मनुष्य के बड़े पांच ही हैं पिता १ माता २ अग्नि ३ आत्मा ४ और गुरु ५। हे द्विजोत्तम ! जो कोई इन पांचों को प्रसन्न रखता है उससे सब अग्नियां तृप्त रहती हैं, गृहस्थी के लिये यह धर्म सनातन है ॥ २७। २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥

दोसौचौदहवाँ अध्याय ।

धर्मव्याधका ब्राह्मण को मातापिता की सेवा का उपदेश देना और अपने पूर्वजन्म की कथा कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! वह धर्मव्याध उक्त प्रकार से माता और पिता की सेवा का हाल कहकर उस ब्राह्मण से बोला कि महाराज ! आपसे जो उस पतिव्रता, जितेन्द्रिय और सत्यशीला स्त्री ने कहा था कि तुम मिथिलापुरी में धर्मव्याध के पास जाओ, वह तुमको ज्ञान उपदेश करेगा । वह सब वृत्तान्त मुझको दिव्य दृष्टि से विदित हो गया था । यह प्रभाव माता पिता की सेवारूपी तप का ही है १ । ३ ब्राह्मण बोला कि हे धर्मज्ञ ! मैं उस सत्यवती पतिव्रता के वचन को याद करके अपने मन से तुमको बड़ा गुणधाम समझता हूं ४ व्याध बोला कि आप सत्य कहते हैं उस पतिव्रता ने मेरा संपूर्ण वृत्तान्त जानकर आपसे मेरे पास आने को कहा था ५ और आपके अनुग्रह से मैंने भी उसका सब वृत्तान्त जान लिया । अब मैं आपके हितकी बात कहता हूं उसको आप सुनिये ६ आपने यह बड़ा अनुचित किया है जो आप अपने माता पिता का अपमान करके उनकी विना आज्ञा वेद पढ़ने के लिये घर से निकल कर चले आये हैं । आपके शोक में वे दोनों प्राणी अन्धे हो गये हैं ७ । ८ इससे अब तुम शीघ्र जाकर उनको अपनी सेवा से प्रसन्न करो तुम तपस्वी महात्मा और धर्मात्मा हो, तुमको इस धर्म का उल्लंघन करना उचित नहीं है ९ विना माता पिता की सेवा तुम्हारा यह सब करना निरर्थक है इससे हे विप्रर्षे ! तुम मेरे वचनको मानकर अब शीघ्र अपने घरको जाओ और उन दोनों को प्रसन्न करो, इसके विपरीत करना तुमको योग्य नहीं है । यह बात तुम्हारे कल्याण की है १० यह सुनकर ब्राह्मण बोला तुम्हारा कहना निस्संदेह सत्य है, तुम धर्मचारी होकर गुणवान् हो, मैं तुमपर प्रसन्न हूं ११ व्याध बोला कि हे ब्राह्मण ! तुम देवता के तुल्य हो क्योंकि जिस धर्म को तुम करते हो वह पुण्यमय सनातन और दिव्य है जो कि अशुद्ध अन्तःकरणवाले मनुष्यों को दुःख से प्राप्त हो सकता है १२ अब तुम आलस्य छोड़कर शीघ्र अपने माता पिता के पास जाओ और उनकी पूजा करो । मेरी समझ में इससे श्रेष्ठ दूसरा धर्म नहीं है १३ ब्राह्मण बोला कि मेरा बड़ा प्रारब्ध था जो मैं यहां आया और आपसे मेरा मिलाप हुआ । आप ऐसे धर्मदर्शी मनुष्य संसार में दुर्लभ हैं १४ कहीं सहस्रों में एक मनुष्य धर्मात्मा होता है और नहीं भी होता है ।

करनेवाले हो इससे तुम शीघ्र अपना स्थान प्राप्त करो १२ । १४ यह सुनकर अग्नि बोले कि अब मेरी कीर्त्ति नष्ट हो गई है, आप अग्नि उत्पन्न हुए हैं, आपको ही सब कोई अग्नि कहेगा, मुझको कोई अग्नि न जानेगा १५ इससे मैं अपने अग्नित्व को त्यागे देता हूं, आप ही प्रथम अग्नि हो जाइये । मैं दूसरी अग्नि होकर रहूंगा १६ यह सुनकर अङ्गिरा बोले कि तुम ही हव्य ग्रहण करो और प्रजा को स्वर्ग देनेवाले और अँधेरे को दूर करनेवाले अग्निरूप से रहो और मुझको अपना बड़ा पुत्र बना लो १७ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! यह सुनकर अग्नि ने अङ्गिराऋषि को अपना पुत्र बना लिया और अङ्गिरा ऋषि के बृहस्पतिनामी पुत्र उत्पन्न हुआ १८ देवता उस अग्नि और आङ्गिरस पुत्र बृहस्पति के उत्पन्न होने के वृत्तान्त को जानकर बृहस्पति के पास आये और उससे उन्होंने उसके उत्पन्न होने का कारण पूछा ! बृहस्पतिजी ने सब कारण कह सुनाया । उसको सुनकर सब देवताओं ने बृहस्पतिजी के वचन को अङ्गीकार किया अर्थात् उनको अपना गुरु माना १६ । २० हे युधिष्ठिर ! अब मैं ब्राह्मणों के अनेक कर्मों के कारण से अग्नि के अनेक रूप होने का वृत्तान्त कहता हूं ॥ २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

दोसौ सत्रहवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अङ्गिरा की संतान का वृत्तान्त कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! अब हम तुमसे अङ्गिरा की संतान का वृत्तान्त कहते हैं । अङ्गिरा ब्रह्मा से तीसरे पुत्र थे और उनकी स्त्री का नाम सुभा था । उनका प्रथमपुत्र बृहस्पति हुआ जो बड़ा तेजस्वी, यशस्वी, वेदपाठी, तत्त्ववेत्ता, स्फूर्तिमान् और विचारवान् था १ । २ फिर भानमती नाम एक कन्या हुई । यह कन्या अङ्गिरा की पहिली पुत्री थी और स्वरूप में अपने सब भाई और बहिनों से असदृशी थी ३ इसके पीछे दूसरी कन्या हुई, वह सब प्राणियों को प्यारी थी इस कारण से उसका नाम रागा हुआ ४ फिर तीसरी कन्या सिनीबाली नाम उत्पन्न हुई । उसका स्वरूप दृश्य और अदृश्य चन्द्रकला के समान था और प्राणियों ने उसे कपर्दिसुता नाम से भी विख्यात किया ५ चौथी पुत्री अर्चिष्मती नाम हुई जिसकी प्रभा से मनुष्य रात्रि में देख सके हैं और पाँचवीं हविष्मती नाम कन्या हुई जिसमें हवन करने से देवता तृप्त होते

हैं। अङ्गिरा की छठी कन्या का नाम माहिष्मती, सातवीं का महामती और आठवीं का कुहू था। कुहू नाम होने का कारण यह है कि मनुष्य उसे देखकर चकित से हो जाते थे ॥ ६ । ८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥

दोसौ अठारहवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से बृहस्पति की संतान का वृत्तान्त कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! बृहस्पतिजी की भार्या का नाम चान्द्रमसी था। उसके छह अग्नि और एक पुत्री उत्पन्न हुई १ उनमें से पहले पुत्र का नाम शंयुनाम अग्नि है जिसको हवन में पहिली आहुति दी जाती है। यह अग्नि चातुर्मास में पूजने योग्य है और अश्वमेध यज्ञ में जो पहिले ही पहिल पशुवध किया जाता है उसका हवन इसी अग्नि में होता है २ । ३ इस शंयु अग्नि का विवाह धर्मराज की सत्यानाम कन्या से हुआ जो स्वरूप में असदृशी और पतिव्रता थी। उसके दीप्तअग्नि नामक एक पुत्र और तीन कन्यायें बड़ी सुव्रता हुईं ४ दीप्त अग्नि भरद्वाज नाम से प्रसिद्ध है और शंयु का पहिला पुत्र है और यज्ञ में उसकी पूजा पहिले घृत से होती है ५ शंयु के दूसरे पुत्र का नाम भरत अग्नि है इसमें सब पौर्णमास्य अर्थात् पशु और सोमनाम यज्ञों में हविषआज्य की आहुति दी जाती है ६ शंयु की तीन कन्या और थीं जिनका पति भरत हुआ उस भरत के भरतनामी एक पुत्र और भरतिनामी एक कन्या उत्पन्न हुई ७ इस भरत प्रजापति के पावकनामी पुत्र हुआ और महाफल देने के महत्त्व से वह महान्नाम से भी विख्यात हुआ ८ और भारद्वाज अग्नि की स्त्री का नाम वीरा था; उससे वीरनामी अग्नि उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण लोग उसकी पूजा सोमयज्ञ में घृत से करते हैं ९ और जिस अग्नि की पूजा सोम सहित हविष की दूसरी आहुति से होती है वह रथप्रभूरथाध्वान और कुम्भरेता नाम से प्रसिद्ध है १० इस अग्नि की स्त्री शरयूनाम हुई उससे सिद्धनामी एक पुत्र हुआ जिसने अपनी तीव्रप्रभा से सूर्य को भी ढक दिया था। यह सिद्ध अग्नि आग्नेय यज्ञ में आह्वान करने से शीघ्र प्रकट हो जाता है ११ बृहस्पतिजी के दूसरे पुत्र का नाम निश्च्यवन है जिसका यश, तेज और लक्ष्मी कभी कम नहीं होती है। यह निश्च्यवन सदा पृथ्वी की स्तुति किया करता है १२ और इसके पुत्र का नाम सत्य है यह सत्य अग्नि निष्पाप तेज से प्रज्वलित और विशुद्ध है और यही

अग्नि शापित जीवों की निष्कृति अर्थात् शुद्ध करता है इससे इसका नाम निष्कृति अग्नि भी है और वह गृह और आराम आदि स्थानों में व्याप्त है १३।१४ इस सत्य अग्नि के पुत्र का नाम स्वन है जिसके कारण से मनुष्य पीड़ित होकर दुःख से पुकारते हैं १५ बृहस्पति के तीसरे पुत्र का नाम विश्वजित् अग्नि है। यह अग्नि सब जगत् की बुद्धि में स्थित रहता है १६ चौथे पुत्र का नाम विश्वभुक् है, यह अग्नि सब देहधारियों के शरीर में रहकर भोजन पचाता है १७ पांचवें पुत्र का नाम बड़वाग्नि है जो जल को सुखा देता है और दारुण ऊर्ध्वगति अर्थात् उदानवायु और प्राणवायु में रहता है । ब्रह्मचारी, व्रती और मन को जीतनेवाले ब्राह्मण इस अग्नि की पूजा पाकयज्ञों में अर्थात् स्मार्तकर्मों में करते हैं, नरक से तारनेवाली गोमती इसी अग्नि की प्रिया हुई थी और इसी अग्नि में धर्मात्मा लोग गृह्यकर्म करते हैं १८।२० बृहस्पति के छठे पुत्र का नाम स्विष्टकृत् अग्नि है जिसकी हवि जलद्वारा गृह में नित्य दी जाती है और उससे घृतस्विष्ट हो जाता है २१ इस प्रकार से बृहस्पति के पुत्रों का वृत्तान्त समाप्त हुआ। अब उनकी स्वाहा नाम कन्या की संतान का वर्णन करते हैं जो बड़ी भयानक क्रूर और सब प्राणियों में स्थित है। उसकी उत्पत्ति सब प्राणियों के उस पसीने से है जो शान्तरूप जीवों की देह में क्रोधरूपी अग्नि के तेज से निकल आता है। इस स्वाहा का स्वरूप ऐसा सुन्दर है कि इसके सदृश स्वर्ग में दूसरी स्त्री स्वरूपवती नहीं है और इसी कारण से उसके पुत्र का नाम कामाग्नि है २२।२३ दूसरा पुत्र इसका अमोघनामी है जो क्रोध को लिए हुये धनुष और माला धारण किये रथ में बैठकर शत्रुओं को मारता है २४ इसके तीसरे पुत्र का नाम उक्थ अर्थात् मोक्ष के देनेवाले यज्ञ की अग्नि है। यह उक्थ तीन उक्थों से अभिष्टुत अर्थात् स्तूयमान एक शरीर जो कर्मों को करने से उक्थ है, दूसरा प्राण जो शरीर को धारण करने के कारण से उक्थ है और तीसरा परमात्मा जो प्राणों को धारण करने से उक्थ है इस उक्थ अग्नि के पुत्र का नाम महावाच है जिसको वेद के आचार्य विश्राम देनेवाला अर्थात् मोक्ष का कारण कहते हैं॥२५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥

दोसौ उन्नीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से उक्थ अग्नि के पुत्रों का वृत्तान्त कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह उक्थ अग्नि बड़ा तेजस्वी है

और प्राण, प्राण का पुत्र, काश्यप, वाशिष्ठ, अग्नि, आङ्गिरस और च्यवन नाम से प्रसिद्ध है। उसने इस प्रयोजन से बहुत वर्षों तक उग्र तपस्या की थी कि मेरे एक पुत्र ब्रह्माजी के तुल्य यशस्वी और धर्मिष्ठ होवे १।२ उससे वह महा प्रज्वलित तेज उत्पन्न हुआ जिसको पांचों महाव्याहृति ध्यान करती हैं और जो सृष्टि का कर्ता और पांच वर्ण रखनेवाला है ३ अर्थात् उसका शिर प्रज्वलित अग्नि है दोनों भुजायें सूर्य के सदृश हैं त्वचा और नेत्र सुवर्ण के समान हैं और दोनों जांघें काली हैं ४ उसके ये पांचों वर्ण तप के कारण से हुए थे और इसीसे उसका नाम पाञ्चजन्य रक्खा गया और उसके पांच वंश उत्पन्न हुए ५ इस पाञ्चजन्य ने सहस्रवर्ष तक बड़ी उग्र तपस्या की और उससे पितरों की घोर अग्नि दक्षिणाग्निनामी उत्पन्न हुई ६ और उसके मुख से बृहद्रथन्तर और मूर्द्धा जो आयु आदि के हरनेवाले उत्पन्न हुए नाभि से शिव, बल से इन्द्र, प्राण से वायु और अग्नि और भुजाओं से उदात्त और अनुदात्त नाम वेद के स्वर और विश्वेभूत उत्पन्न हुए। इनके पीछे उसने पितरों के पांच पुत्र उत्पन्न किये ७।८ वे ये हैं प्रणधी १ जो बृहद्रथ का पुत्र है, महत्तर २ जो कश्यप का पुत्र है, भानु ३ जो अङ्गिरा का पुत्र है, सौभर ४ जो सुवर्चस का पुत्र है और अनुदात्त ५ जो प्राण का पुत्र है। ये पांचों पचीस करके विख्यात हैं। इसके उपरान्त पाञ्चजन्य ने जिसका नाम तप भी है क्योंकि वह तप से उत्पन्न हुआ था, यज्ञ चुरानेवाले पन्द्रह देवता उत्पन्न किये। नाम उनके ये हैं सुभीम १ अतिभीम २ भीम ३ भीमबल ४ अबल ५ सुमित्र ६ मित्रवन्त ७ मित्रज्ञ ८ मित्रवर्द्धन ९ मित्रधर्मा १० सुर ११ प्रवीर १२ वीर १३ सुरेश १४ और सुवर्चस १५ इनमें से पांच पिछले देवताओं के मारनेवाले हैं और पन्द्रहों पांच पांच करके तीनविधि से स्थित हैं और इस लोक में रहकर यज्ञ करनेवालों की स्वर्गता को चुरा लेते हैं ९। १४ और उनके अभीष्ट को पूरा नहीं होने देते और यज्ञ की अग्नियों से ईर्ष्या मानकर यज्ञ के हव्य को नष्ट कर डालते हैं और हर लेजाते हैं १५ इसी कारण से कुशल पुरुषों ने यज्ञ की वेदी से बाहिर इनका भाग यज्ञ में प्रवृत्त कर दिया है ऐसा करने से फिर ये अग्नि के समीप नहीं आते हैं १६ नहीं तो यज्ञ के प्रारम्भ होने पर ये देवता यजमान के होमे हुए घृत को अपने पंखों से ऊपर ही ऊपर चुरा ले जाते हैं परंतु जब मन्त्रों से इनको शान्त कर दिया जाता है तब ऐसा नहीं करते हैं १७ इन पन्द्रह देवताओं के उत्पन्न होने के पीछे तप अर्थात्

मैं आपके सत्य से बहुत प्रसन्न हुआ, ईश्वर करे आपका कल्याण हो १५ आपने मुझ नरक में गिरे हुए का उद्धार किया है, यह कुछ भवितव्य ही था जो मुझको आपके दर्शन हुए १६ आपने मुझ ब्राह्मण को इस प्रकार से तारा है जैसे स्वर्ग से गिरे हुए राजा ययाति को उसके सत्पुरुष देवताओं ने तारा था १७ अब मैं आपके कहने के अनुसार माता-पिता की सेवा करूंगा, जिन मनुष्यों का अन्तःकरण अशुद्ध होता है वे धर्म और अधर्म का निश्चय नहीं कर सकते हैं १८ और शूद्र को सनातन धर्म का ऐसा ज्ञान होना जैसा आपको है बहुत दुर्लभ है इससे मैं जानता हूं कि आप शूद्र नहीं हैं, कृपा करके अपने शूद्र होने का वृत्तान्त तत्त्वपूर्वक कहिये, मैं उस सब सत्य वृत्तान्त को सुना चाहता हूं। यह सुनकर व्याध बोला कि बहुत श्रेष्ठ मेरे पूर्वजन्म के वृत्तान्त को सुनिये मैं ब्राह्मणों के वचन को निस्संदेह उल्लंघन नहीं करता हूं १९। २१ पूर्वजन्म में मैं ब्राह्मण था और वेदपाठियों में बड़ा प्रवीण और वेद के अङ्गों का पारगामी था २२ परंतु अपने अपराध के कारण से मैंने यह देह पाई है। वह यह है कि एक धनुषविद्या का जाननेवाला राजा मेरा मित्र था २३ उसके सत्संग में मैंने भी धनुषविद्या परिश्रम करके सीख ली। एकदिन वह राजा मुझको और अपने योद्धाओं समेत मन्त्रियों को साथ लेकर अहेर खेलने को गया और वन में एक आश्रम के निकट उसने बहुत से मृग मारे २४। २५ उसी समय मैंने भी एक बाण एक मृग पर चलाया और वह बाण उस आश्रम में रहनेवाले ऋषि के जा लगा २६ हे ब्रह्मन्! उसके लगते ही वह ऋषि गिर पड़ा और दुःख से पुकार कर कहने लगा कि मैंने कुछ अपराध नहीं किया मुझको मारकर यह किसने अपने ऊपर अपराध लिया है २७ इसके पीछे मैं उसको मृग जानकर उसके पास गया और पृथ्वी पर पीड़ा से पड़े हुए और चिल्लाते हुए उस तपस्वी ब्राह्मण को अपने बाण से बिंधा हुआ देखकर महा दुःखी हुआ और मैंने उससे विनय की कि महाराज! यह अपराध विना जाने मुझसे हुआ है, कृपा करके क्षमा कीजिये २८। ३० हे द्विज! तब उस ऋषि ने महाक्रोधित होकर मुझको शाप दिया कि तू इस क्रूरकर्म के करने से शूद्रयोनि पाकर व्याध होगा ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥

दोसौ पन्द्रहवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का अपना पूर्वजन्म कहना तथा ब्राह्मण का माता पिता की सेवा करना।

व्याध बोला कि हे कौशिक ! जब मुझको उस ऋषि ने उक्त प्रकार से शाप दिया तब मैंने अपनी वाणी से उस ऋषि को प्रसन्न करके विनय की कि महाराज ! मेरी रक्षा कीजिये १ हे भगवन् ! यह अपराध मुझसे अनजान में बन पड़ा है आप अपनी कृपा से इसको क्षमा कीजिये और मुझपर प्रसन्न हूजिये २ तब उस ऋषि ने मुझसे कहा कि हमारा शाप तो अन्यथा नहीं हो सकता है परंतु मैं तुझ पर अनुग्रह करके यह वरदान देता हूं कि शूद्रयोनि पानेपर भी तू धर्मज्ञ रहेगा और अपने माता पिता की सेवा करेगा उस सेवा से तुझको बड़ी सिद्धि प्राप्त होगी और पूर्वजन्म का हाल भी तुझको याद रहेगा और देहान्त होने पर स्वर्गलोक पावेगा ३।५ और शाप के निवृत्त होने पर फिर तू ब्राह्मण ही हो जायगा सो हे कौशिक ! उस ऋषि ने मुझको उक्त प्रकार से शाप दिया और मेरे ऊपर कृपा भी की इसके उपरान्त मैंने उसके शरीर में से बाण खींच लिया ६।७ और उसको उसके आश्रम में ले गया परंतु वह जीता न बचा। हे कौशिक! मेरे पूर्वजन्म का यही वृत्तान्त है। अब मुझको शीघ्र स्वर्ग को जाना है ८।९ ब्राह्मण बोला हे बुद्धिमन् ! संसार में सुख दुःख पाते ही हैं, आप उत्कण्ठा न कीजिये, तुम तत्त्व के ज्ञाता और धर्मपरायण हो, तुमने बड़ा दुष्कृत कर्म किया है, यह जो कर्म तुम करते हो उसको कोई दोष जाति के कारण से नहीं है। अब तुम कुछकाल वास करो, उपरान्त तुमको ब्राह्मणदेह मिलेगी १०।१२ अब से मैं तुमको निश्चय ब्राह्मण मानता हूं क्योंकि जो ब्राह्मण ज्ञानी है परंतु कर्म उसके विपरीत और खोटे हैं और वह मानी, पाखण्डी और कुकर्मी भी है तो वह शूद्र ही के समान है और जो शूद्र जितेन्द्रिय, सत्यवादी और धर्मात्मा है उसको मैं ब्राह्मण ही जानता हूं क्योंकि कर्म ही शूद्र और ब्राह्मण है। खोटे कर्म करने से सबको ही दुर्गति मिलती है १३।१५ मेरी समझमें तुम सब प्रकार से दोषरहित हो इससे तुमको किसी प्रकार का शोक करना उचित नहीं है। तुमसे धर्मात्मा जो संसारी और परलोकसम्बन्धी धर्म के ज्ञाता हैं, कभी विषाद नहीं करते हैं १६ यह सुनकर व्याध बोला कि विज्ञानीलोग मन के दुःख को ज्ञान से और शरीर की पीड़ा को औषधि से दूर कर देते हैं और जो अल्पबुद्धि होते हैं वे अनिष्ट के आने और

प्रिय के चले जाने से मानसी दुःख उठाते हैं १७। १८ सो यह सुख दुःख अथवा वियोग का मिलना न मिलना एक ही के साथ नहीं है किंतु सब प्राणियों के साथ लगा हुआ है इससे सोच करने से दुःख के सिवाय कुछ नहीं मिलता है। जो लोग सुख और दुःख दोनों को त्याग देते हैं वे ही बुद्धिमान् और ज्ञानी हैं और उन्हीं की वृद्धि होती है। संतोष न करना अज्ञानियों का काम है, पण्डित सदैव संतोष करके रहता है १९। २२ संतोष में बड़ा सुख है और असंतोष का अन्त नहीं है इससे ज्ञानी लोग परमगति को देखकर सोच कभी नहीं करते हैं २३ और मनुष्य को विषाद करना भी उचित नहीं है, यह विषाद बड़ा तीव्र विष है। वह ज्ञानी को इस प्रकार से मार डालता है जैसे क्रोधित सर्प बालक को नहीं छोड़ता है २४ जो मनुष्य पराक्रम करने के समय विषाद करता है वह तेजहीन हो जाता है और उसके शरीर में पुरुषार्थ नहीं रहता है २५ और किये हुए कर्मों का फल अवश्य मिलता है। वैराग लेने से कुछ नहीं होता है २६ इससे मनुष्य को उचित है कि दुःख को दूर करने का उपाय करे, शोच न करे, शुभ कर्म करे और किसी बात का व्यसन न रक्खे २७ और जो मनुष्य सब प्राणियों में किसी प्रकार का भाव न रखकर तत्त्वज्ञान से परमब्रह्म को प्राप्त हो गया है वह अपना चित्त परमगति में लगाकर किसी बात का सोच नहीं करता है २८ इससे हे ब्राह्मण ! मैं किसी बात का सोच नहीं करता हूं किंतु समय देख रहा हूं। मुझको किसी बात की पीड़ा नहीं होती है २९ यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि हे व्याध ! तुम बड़े ज्ञानी और बुद्धिमान् हो। अब मुझको तुम्हारी ओर का कुछ सोच नहीं है, तुम बड़े धर्मज्ञ हो। मुझको अब आज्ञा दो मैं जाना चाहता हूं, तुम्हारा कल्याण हो और धर्म तुम्हारी रक्षा करे ३०। ३१ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! यह सुनकर उस व्याध ने हाथ जोड़कर कहा कि बहुत अच्छा जाइये, तब वह ब्राह्मण उसकी परिक्रमा करके चल दिया ३२ और अच्छा उपदेश पाने के कारण से उसने घर पहुँचकर अपने माता और पिता की सेवा करना आरम्भ कर दिया ३३ हे धर्मपुत्र, युधिष्ठिर ! यह सब धर्मकथा जो तुमने हमसे पूछी थी वह हमने वर्णन की जिसमें पतिव्रता और ब्राह्मण का माहात्म्य और माता पिता की सेवा करने का फल कथन किया है ३४। ३५ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि हे मुनिसत्तम ! हे ब्रह्मन् ! आपने यह बड़ी अद्भुत धर्मकथा कही इससे उत्तम दूसरी

कथा मैं नहीं जानता हूं २६ हे भगवन् ! इसको सुनते सुनते इतना समय मुझको एक मुहूर्त के समान जान पड़ता है और धर्म की उत्तम उत्तम बातों को सुनने से मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥

दोसौ सोलहवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अङ्गिराऋषि के अग्निरूप होजाने का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर जब महर्षि मार्कण्डेयजी से उक्त कथा सुन चुका, तब उसने मार्कण्डेयजी से फिर पूछा कि महाराज ! अगले समय में अग्निदेव किस प्रकार से जल में घुस गये थे और अग्नि के नष्ट होजाने पर महातेजस्वी अङ्गिराऋषि ने अग्नि होकर हव्य किस प्रकार से ग्रहण की थी १ । २ अग्नि तो एक ही है परंतु कर्म में इसके अनेक रूप कैसे हो जाते हैं ? इसके सिवाय यह भी कथन कीजिये कि कार्त्तिकेयजी का जन्म कैसे हुआ और वह कैसे अग्निपुत्र कहलाये और कृत्तिका और गङ्गाजी में रुद्र भगवान् से कैसे उत्पन्न हुए ३।४ हे भार्गवसत्तम ! इस कथा को मैं ठीक ठीक सुना चाहता हूं मुझको बड़ा आश्चर्य है ५ यह सुनकर मार्कण्डेयजी बोले बहुत श्रेष्ठ, इस पुरातन इतिहास को सुनिये। अग्निदेव जल में तपस्या करने को प्रवेश किये हुए थे और उन्होंने ही अपना अङ्गिरारूप धारण किया था जिसकी प्रभा से संपूर्ण अंधकार दूर हो गया था। वृत्तान्त उसका इस प्रकार से है ६ । ७ कि हे महाबाहो ! अगले समय में महाभागी अङ्गिराऋषि ने बड़ा भारी तप किया था, उस तपसे उनका तेज ऐसा हो गया कि उसके सम्मुख अग्नि का तेज भी मन्द और उससे सब जगत् प्रकाशित हो गया ८ तब अग्निदेव ने अङ्गिराऋषि के तेज से संतप्त होकर बड़ी ग्लानि मानी और यह चिन्ता की कि ब्रह्माजी ने अब संसार के लिये दूसरी अग्नि उत्पन्न की है ९।१० तपस्या करते हुए मेरा अग्नित्व अर्थात् अग्नि होने का भाव निश्चय नष्ट हो गया। अब मैं क्या उपाय करूं ? जिससे फिर अग्नि मैं ही रहूं ११ अग्नि यही चिन्ता कर रहे थे कि इतने में उसने महामुनि अङ्गिराऋषि को देखा उनको देखते ही अग्नि भयभीत होकर धीरे से हट गये तब अङ्गिराऋषि ने अग्नि से कहा कि तुम लोकभावन फिर अग्नि होजाओ क्योंकि तुम लोकों में विज्ञात हो, तुमको ही ब्रह्माजी ने प्रथम उत्पन्न किया है, तुम अन्धकार दूर

पाञ्चजन्य के बृहदुक्थनामी पुत्र हुआ । वह पृथ्वी में उपाश्रित हो गया। सत्पुरुष हवन करने के समय उसकी पूजा पृथ्वी में करते हैं १८ और रथन्तर अग्नि भी तप का पुत्र कहलाता है अध्वर्यु अर्थात् यजुर्वेद के ऋत्विज् इसी अग्नि में हवन करने से विराट् की प्राप्ति समझते हैं। इस प्रकार से वह महायशा पाञ्चजन्य उक्त पुत्रों को पाकर परम प्रसन्न हुआ ॥ १९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥

दोसौ बीसवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अग्नियों की उत्पत्ति आदि का वृत्तान्त कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! शंयुअग्नि का भरत अग्निनाम पौत्र बड़े नियम से उत्पन्न हुआ था और सब प्रजा को पालन करने के कारण से उसका भरत नाम रक्खा गया था और वही पुष्टिमतिनामी अग्नि भी है जो प्रसन्न होने पर पुष्टि देता है १ और तप अर्थात् पाञ्चजन्य का जो तीसरा पुत्र शिवनामी है वह शक्तिपूजा से तृप्त होता है और सब दुःखी जीवों को कल्याण का देनेवाला और आप भी कल्याणरूप है २ और पुरन्दरनामी पुत्र भी बड़ी तपस्या करने की इच्छा से तपनाम अग्नि के बढ़े हुए ऐश्वर्य को देखकर तपही से उत्पन्न हुआ था और उष्मानाम अग्नि भी तप से ही उत्पन्न हुआ था। यह अग्नि सब प्राणियों में व्यापक है और मनु नाम अग्नि को प्रजापति का अधिकार हुआ था ३ । ४ वेदपारग ब्राह्मण कहते हैं कि इसके पीछे शंभु और आवसथ्यनामी अग्नि भी उत्पन्न हुआ ५ इनके उत्पन्न होने के पीछे तप अग्नि ने पञ्चयज्ञ अग्नियों को उत्पन्न किया जिनकी प्रभा सुवर्ण के तुल्य है ६ और किरणधारी सूर्य अग्नि ने अस्त होने के समय घोर असुर और ऐसे मनुष्य जिनकी क्रिया और और मनुष्यों से पृथक् थीं उत्पन्न किये ७ और अङ्गिराके वंश में तप अग्निका मनुनामी पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसको वेदपारग ब्राह्मण बृहद्भानु नाम से कहते हैं ८ इस बृहद्भानु अग्नि की दो स्त्रियां थीं सुप्रजा १ और बृहद्भासा २ ये दोनों सूर्य की पुत्री थीं और इनके छह पुत्र उत्पन्न हुए। उनकी वंशावली इस प्रकार से है ९ पहिला पुत्र तो बलदनामी था जो दुर्बल प्राणियों के प्राण को देता है और दूसरे पुत्र का नाम मन्यु है जो प्राणियों में दारुण क्रोधरूप से रहता है। दर्श और पौर्णमास यज्ञों में इसी अग्नि में होम किया जाता है और जो अग्नि विष्णुनाम से प्रसिद्ध है वह धृतिमान्नामी अङ्गिरा-

वंशी है १०। १२ दोनों उक्त पुत्र तो भानु के सुप्रजा स्त्री से हुए थे। अब शेष तीन पुत्र जो बृहद्भासा से उत्पन्न हुए उनके नाम इस प्रकार से हैं। पहिला पुत्र आग्रयणनामी है, हवन में उसको इन्द्र के साथ आहुति मिलती है। दूसरा निग्रह है जो चातुर्मास के पर्वों में अष्टहवियों का उद्भव स्थान है और तीसरे का नाम अग्निस्तुभ है १३। १४ इसके अनन्तर भानु का विवाह निशानाम स्त्री से हुआ, उससे एक कन्या और पांच अग्नि उत्पन्न हुए। उनके नाम अग्नीषोम आदि हैं १५ और जिस अग्नि की पूजा चातुर्मास के पर्वों में सुन्दर हवि से इन्द्र के साथ होती है उसका नाम वैश्वानर अग्नि है १६ और जो अग्नि जीवों के शरीर में रहकर आहार को पचाता है उसका नाम विश्वपति है और वह मनु अग्नि का दूसरा पुत्र है १७ और जो स्विष्टकृतनाम अग्नि है उससे घृतास्विष्ट हो जाता है और जो कन्या इस अग्नि की कर्म से भार्या हुई थी उसका नाम रोहिणी है और वह हिरण्यकशिपु की पुत्री है और जो अग्नि शब्द रूप का साधन है अर्थात् जिससे योगीलोग शब्द का साधन करते हैं और जो जीवों के प्राणों में आश्रय करके शरीर को अनेक कर्मों में युक्त करती है उसका नाम सन्निहित अग्नि है और वही प्रजापति भी है और संन्यासी लोग जिसको कपिलनामी महाऋषि कहते हैं वह कपिलनामी अग्नि है जो सांख्ययोग का प्रवर्तक है १८। २१ और संसार में प्राणीलोग जिस अग्नि में मनुजी का भाग हवन करते हैं उसका नाम अग्रणी अग्नि है २२ हे युधिष्ठिर! इन उक्त अग्नियों के सिवाय और और भी अग्नि अग्निहोत्र के प्रायश्चित्त के दूर करने के लिये उत्पन्न की गई हैं २३ सो जब कभी ऐसा हो कि दो अग्नि वायु से परस्पर स्पर्श हो जायँ अथवा दक्षिणाग्नि का संसर्ग दूसरी अग्नि से हो जाय या अग्निहोत्र की अग्नि असंस्कृत घर की अग्नि से छूजाय तो अग्नि को शुद्ध करने के लिये अष्टाकपाल हवि से अर्थात् उस हवि से जो आठ कपालों में बनाई गई हो, हवन करना चाहिये २४। २६ और जो अग्निहोत्र की अग्नि को रजस्वला स्त्री छूले तो वसुमान् अग्नि को स्थापित करके अष्टाकपाल हवि से हवन करना उचित है २७ और जब किसी जीव का मरना सुनने में आवे अथवा कोई पशु मरजाय तब सुरमति अग्नि को स्थापित करके अष्टाकपाल हवि से हवन करना उचित है २८ और जो ब्राह्मण किसी प्रकार से दुःखी होकर तीन दिन अग्निहोत्र न करसके तो

उत्तर अग्नि को स्थापित करके उक्त हवि से हवन करे २९ और जो कोई मनुष्य दर्श अथवा पौर्णमास नाम यज्ञों की प्रतिष्ठा करे परंतु पीछे वे यज्ञ किसी कारण से बन्द होजायँ तो पथिकृत् अग्नि की स्थापना करके उक्त हवि से हवन करे ३० और जब सूतक की अग्नि का अग्निहोत्र की अग्नि से स्पर्श होजाय तो अग्नितम नाम अग्नि को स्थापित करके उक्त हवि से हवन करना उचित है ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥

दोसौ इक्कीसवाँ अध्याय ।

अग्नि की वंशावली और उसका जल में प्रविष्ट होकर फिर प्रकट होना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! जल में जो सहनाम अग्नि है जिसको भूपति और भुवभर्त्ता कहते हैं, उसकी प्यारी स्त्री का नाम मुदिता था। उससे परम अद्भुत अग्नि उत्पन्न हुई १ ब्राह्मणलोग इसी अग्नि को प्राणियों का स्वामी, आत्मा और भुवनभर्त्ता कहते हैं २ यही अग्नि आकाश आदि भूत और ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, लक्ष्मी, वैराग्य और धर्म का स्वामी है और महातेजस्वी है ३ और जिस अग्निका नाम गृहपति है उसकी यज्ञ में सदैव पूजा होती है और वही यज्ञ में होमी हुई हव्य को धारण करता है ४ और जो पावक जल से सम्बन्ध रखनेवाले सहनाम अग्नि का पुत्र है, वह महाभाग तीनों लोकों का हर्ता, बड़ा अद्भुत भूपति, भुवभर्ता और महातत्त्व का स्वामी है ५ उस अग्नि का नाम जो आकाश आदि जड़रूपी महाभूतों का धारण करनेवाला और जल को सुखानेवाला है भरत प्रसिद्ध हुआ। यही भरत अग्नि अग्निष्टोमयज्ञ में स्थापन किया जाता है ६ और देवता लोग इसीकी स्तुति करते हैं। एक समय भृगुजी के शापरूपी दोष को अपने निकट आते हुए देखकर वह अग्नि भयभीत होकर समुद्र में घुस गया ७ तब देवता उसको ढूंढ़ने लगे और उन्होंने उसको पाया तब उसने अपने निकट अङ्गिराऋषि को देखकर कहा ८ कि हे वीर! तुम देवताओं की हव्य को धारण करो और अग्निभाव को प्राप्त हो जाओ, यह मेरा प्रिय काम है। तुम इसको अवश्य करो ९ ऐसा कहकर अग्नि कहीं अन्य देश को चला गया। उस समय इस भेद को मछलियों ने प्रकट कर दिया तब अग्नि ने क्रोधित होकर उनको शाप दिया कि देहधारी तुमको नानाप्रकार

से भक्षण किया करेंगे और अङ्गिराऋषि से भी सब वृत्तान्त कह दिया १०।११ उस समय देवताओं ने अनेक हित की बातें कहकर अग्नि को समझाया परंतु अग्नि ने हव्य धारण करने की इच्छा नहीं की किन्तु अपना शरीर भी त्याग दिया १२ और पृथ्वी में प्रवेश होकर अनेक प्रकार की धातुओं को उत्पन्न किया १३ उसके यूप अर्थात् यज्ञस्तम्भ से गन्धसहित तेज, हाड़ों से देवदारु, श्लेष्मा से स्फटिक, पित्त से मरकत मणि, यकृत् से लोहा और अन्य अङ्गों से नाना प्रकार की धातु उत्पन्न हुईं और प्रजा को काष्ठ, पाषाण और लोह आदि अनेक वस्तुओं से सम्पन्न कर दिया और उसके नखपटल और शिर के बाल विद्रुमरूप हो गये । इस प्रकार से अग्नि अपने शरीर को त्यागकर और उससे उक्त पदार्थों को उत्पन्न करके तपस्या करने लगा १४ । १६ उससे वह बहुत ही प्रज्वलित स्वरूप हो गया परंतु भृगु और अङ्गिरा आदि ऋषियों ने अपने तीव्रतप से अग्नि को भयभीत करदिया और वह डरकर समुद्र में घुस गया । उसके नष्ट होजाने से संसार महाभयभीत होकर अङ्गिराऋषि के पास आश्रित हो गया और देवता आदि सबने अङ्गिराऋषि की पूजा की १७ । १८ उस समय अङ्गिराऋषि ने सबके देखते देखते समुद्र को मथ डाला और उसमें से अग्नि को निकालकर सब लोकों की रचना की १९ इस प्रकार से पूर्वकाल में अग्नि नष्ट हो गया था और उसको अङ्गिराऋषि ने फिर आह्वान किया था । वही अग्नि सब प्राणियों के हव्य को धारण करता है २० हे भरतवंशिन् ! उसीने अनेक देशों में भ्रमण करके अनेक प्रकार के वेदोक्तस्थान उत्पन्न किये २१ सिन्धुनद, पञ्चनद, देविका, सरस्वती, गङ्गा, शतकुम्भा, सरयू, गण्डकी, चर्मण्वती, महीमेध्या, मेधातिथि, ताम्रावती, वेत्रवती, कौशिकी, तमसा, नर्मदा, गोदावरी, वेणा, उपवेणा, भीमा, बड़वा, भारती, सुप्रयोगा, कावेरी, मुर्मरा, तुङ्गवेणा, कृष्णवेणा, कपिला और शोण आदि नदियां उन स्थानों की माता हैं २२ । २६ और जो ऊपर अद्भुतनाम अग्नि कह आये हैं उसकी भार्या का नाम प्रिया था और उससे विभूरसिनामी पुत्र उत्पन्न हुआ । इसको आदिले जितने अग्नि हमने कहे हैं उतने ही सोमयाग हैं २७ अत्रिऋषि के भी मानसी सात पुत्र उत्पन्न हुए थे सो जिस समय अत्रि ने पुत्रों को उत्पन्न करने की इच्छा की उस समय उन्होंने अपने चित्त में अग्नियों को धारण कर लिया २८ उससे उनके शरीर से अनेक अग्नियां

निकलीं । हे युधिष्ठिर ! तिमिरनाशक और श्रीमान् अग्नि के उत्पन्न होने का वृत्तान्त उक्त प्रकार से था । वेद में जो माहात्म्य अग्नि का लिखा है वही सब अग्नियों का माहात्म्य समझो क्योंकि सब अग्नि एक ही स्वरूप हैं अर्थात् सबको एक प्रथम अग्नि अङ्गिरा ही समझना चाहिये २९ । ३१ उसीके शरीर से सब अग्नियां ज्योतिष्टोम अग्नि के समान निकली हैं । अब अग्नि की वंशावली हो चुकी । यही अग्नि नानाप्रकार के मन्त्रों से पूजित होकर देहधारियों के हव्य को धारण करता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

दोसौ बाईसवाँ अध्याय ।

कार्त्तिकेय के जन्म की कथा और इन्द्र का एक स्त्री को केशीदैत्य से बचाना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! हम तुमसे अग्नियों के नाना प्रकार के वंशों का वृत्तान्त कह चुके । अब बुद्धिमान् कार्त्तिकेय के जन्म की कथा सुनो १ कार्त्तिकेय ब्रह्मऋषियों की स्त्रियों से उत्पन्न हुए थे और अद्भुत अग्नि के पुत्र बड़े तेजस्वी, कीर्त्तिमान् और ब्रह्मण्य थे २ कथा उनके जन्म की इस प्रकार से है कि अगले समयों में एक समय देवता और दानवों का युद्ध हुआ था । दानव देवताओं को सदैव जीतते ही हैं सो दानवों ने देवताओं की बहुत सी सेना शस्त्रों से मार डाली । उसको देखकर इन्द्र ने विचार किया कि किसी को सेनापति करना चाहिये ३ । ४ परंतु वह सेनापति ऐसा बली हो कि दानवों से सेना की रक्षा कर सके ५ इन्द्र मानसपर्वत पर इसी अर्थ को ध्यान लगाये हुए विचार कर रहा था कि इतने में उसने एक स्त्री का करुणाशब्द सुना ६ जो आर्तवाणी से यह पुकारकर कह रही थी कि कोई यहां आकर मुझे बचाओ, मैं बचानेवाले की भार्या होकर रहूँगी अथवा वह जिस किसी दूसरे को मुझे दे देगा उसीको मैं अपना पति कर लूंगी ७ यह सुनकर इन्द्र उस स्त्री के पास गया और देखता क्या है कि केशी नाम दैत्य माथे पर किरीट बांधे, हाथों में गदा लिये, पहाड़सी देह बनाये उस स्त्री का हाथ पकड़े हुए खड़ा हुआ है । इन्द्र ने यह देखकर उस स्त्री को धैर्य दिया कि अब तू मत डरे, मैं आगया हूं और उस दैत्य से कहा कि अरे नीच ! तू इस कन्या को किसलिये हरना चाहता है, हट अलग हो, मैं वज्रधारी इन्द्र हूं । मेरे होते हुए तू इसको बाधा नहीं कर सकता है ८ । १० केशी बोला कि हे इन्द्र ! इस स्त्री को मैं चाहता

हूं इससे जो तुमको अपने प्राण रखने हों तो इसको छोड़कर शीघ्र अपने स्थान को चले जाओ ११ यह कहकर केशी ने इन्द्र को मारने की इच्छा से गदा चलाई, इन्द्र ने उसको अपने वज्र से मारकर बीच में से दो टूक कर दिया १२ तब केशी ने एक पर्वत के शिखर को उठाकर इन्द्र के ऊपर फेंका। इन्द्र ने उसको भी वज्र से गिरा दिया और वह खंड खंड होकर केशी के ऊपर जा पड़ा। केशी उससे ताड़ित और पीड़ित होकर कन्या को छोड़कर भागा। जब वह दूर निकल गया तब इन्द्र ने उससे पूछा कि हे सुन्दरि! तू कौन है, किसकी बेटी है और यहां क्या कर रही है? ॥ १३ । १५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥

दोसौ तेईसवाँ अध्याय ।

इन्द्र का ब्रह्माजी से देवसेना का पति पूछना, अग्नि का सप्तऋषियों की स्त्रियों पर कामासक्त होना ।

इन्द्र की बात को सुनकर उस कन्या ने उत्तर दिया कि हे देवेन्द्र! मैं प्रजापति की बेटी हूं, नाम मेरा देवसेना है और दैत्यसेनानामी मेरी एक बहिन थी, उसको यह केशी दैत्य पहिले इस प्रकार से हरकर ले गया कि हम दोनों बहिन पिता की आज्ञा लेकर सखियों के साथ साथ विहार करने की इच्छा से इस मानसपर्वत पर आई थीं। यह केशी दैत्य बहुत दिनों से हम दोनों को हरना चाहता था, आज इसका दाँव लग गया सो मेरी उस बहिन को तो हरकर ले गया जो इस दैत्य को चाहती भी थी और मैं तुम्हारी कृपा से बच गई। अब मैं चाहती हूं तुम मुझे कोई दुर्जयपति बतलाओ १ । ४ यह सुनकर इन्द्र बोला तू मेरी मौसी है क्योंकि मेरी भाभी दाक्षायणी है इससे तू पहले अपने पराक्रम का वर्णन कर ५ कन्या बोली कि हे महाबाहो! मैं तो अबला हूं परंतु मेरा पति पिता के वरदान से महाबली जिसको देवता और असुर दोनों नमस्कार करेंगे होनेवाला है ६ इन्द्र ने पूछा भला हे देवि! उस तेरे पति में कैसा बल होगा मैं भी जानना चाहता हूं ७ कन्या बोली कि वह अत्यन्तपराक्रमी महाबलशाली तुम सब देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस और दुष्ट दैत्यों का जीतनेवाला और बड़ा ब्रह्मण्य होकर कीर्तिवर्धक होगा ८ । ९ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! उस कन्या की उक्त बात को सुनकर इन्द्र दुःखी होकर चिन्ता करने लगा कि इस देवी को इसकी रुचि के अनुकूल पति मिलना दुर्लभ है १०

उसी अवसर में इन्द्र देखता क्या है कि उदयाचल पहाड़ पर चन्द्रमा सूर्य में मिल गया और अमावास्या प्रवृत्त होगई और रौद्रमुहूर्त्त में देवता और असुरों का संग्राम उदयाचल पर होने लगा । बादल लाल लाल होगये, समुद्र का पानी भी रक्तवर्ण होगया; अग्नि, भृगु और अंगिरा ऋषियों के मन्त्रों से होमे हुए हव्य को ग्रहण करके सूर्य में लय होगई और चौबिसों पर्व सूर्य के पास स्थित होगये । इस प्रकार से सूर्य चन्द्रमा की एकता और रौद्रसम वायु को देख कर इन्द्र चिन्ता करने लगा और कहने लगा कि इस सूर्य और चन्द्रमा के घोर परिवेषण से यह सूचित होता है कि आज ही रात्रि के अन्त पर बड़ा भारी युद्ध होगा ११ । १७ नदी और समुद्र के लाल हो जाने से हम जानते हैं कि बहुत रक्त बहेगा, इनका पानी पीने के योग्य नहीं रहा और शृगालिनी सूर्य की ओर मुख करके बोल रही है और सूर्य और चन्द्रमा का यह मिलाप भी बड़ा अद्भुत है इससे जो चन्द्रमा के अथवा अग्नि के पुत्र उत्पन्न हो तो वह निःसंदेह इस देवी के योग्य पति होगा । यह विचारकर इन्द्र देवसेना को साथ लिये हुए ब्रह्मलोक को चला गया १८ । २१ और ब्रह्माजी के पास जाकर नमस्कार किया और कहा कि महाराज ! आप इस कन्या के योग्य पति बतलाइये २२ ब्रह्माजी बोले कि हे देवेन्द्र ! तुमने अपने मन में जैसा विचारा है वैसा ही पराक्रमी बालक उत्पन्न होगा । उसका विवाह इस देवी से होगा और वही देवताओं की सेना का सेनापति होगा २३ । २४ यह सुनकर इन्द्र ब्रह्माजी को नमस्कार करके उस कन्यासहित वहां से चला आया और सब देवताओंसहित सोमपान करने और यज्ञ में भाग लेने की इच्छा से वहां गया जहां वशिष्ठ आदि बड़े बड़े देवऋषि अग्नि को प्रज्वलित करके यज्ञ कर रहेथे । इन्द्रादिक देवताओं के वहां पहुँचने पर ऋषियों ने अग्नि का आवाहन करके हव्य होमना प्रारम्भ किया, उसी समय अद्भुतनाम अग्नि सूर्य से निकल कर वहां चले आये और ऋषियों के हाथ से मन्त्रों से होमे हुए अनेक प्रकार के हव्य को ले लेकर देवताओं को देने लगे २५ । ३० जब यज्ञ समाप्त होगया और अग्नि होत्रशाला से अपने लोक को जाने लगा तब उसने उस स्थान में उन महात्मा ऋषियों की स्त्रियों को जो सुवर्ण की सी कान्ति, चन्द्रमा की सी निर्मलता, अग्नि की ज्वाला के सदृश प्रभा और तारागणों की सी छवि रखनेवाली अपने आश्रम में सुखपूर्वक बैठी और सो रही थीं देखा ३१ । ३२ उनके

स्वरूप को देखते ही अग्नि कामासक्त होगया और उसकी सब इन्द्रियां शिथिल पड़गईं, तब वह विचार करने लगा कि मुझको इस प्रकार से क्षोभ करना उचित नहीं है क्योंकि ये ऋषियों की स्त्रियां साध्वी हैं, मुझे विना कारण इनकी ओर देखना अथवा इनसे बातचीत करना उचित नहीं है इससे यह बात अच्छी है कि मैं होम के स्थान में रहकर इन स्त्रियों को निरन्तर देखा करूं ३३। ३५ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! अग्नि ऐसा विचार करके होत्रशाला में चला गया और अपनी लपटों से उन स्त्रियों को स्पर्श करके वहां रहने लगा और उनके स्वरूप पर मोहित होकर दिनरात उनको देखने लगा। इस प्रकार से जब बहुत दिन व्यतीत होगये तब अग्नि कामदेव से संतप्त होकर, ब्राह्मणों की स्त्रियों का मिलना असंभव जानकर, देहत्याग करने के लिये वन में चला गया ३६। ३८ वहां उसको अकेला देखकर दक्ष की पुत्री स्वाहा जो अग्नि को बहुत दिनों से चाहती थी और अपना अवसर देख रही थी, विचार करने लगी कि इस समय अग्नि वन में अकेला और कामाग्नि से पीड़ित है, यदि इस समय में मैं ऋषियों की स्त्रियों का स्वरूप धारण करके अग्नि के पास जाऊं तो उसको अपने वश में करके अपने मनोरथ को सिद्ध कर लूं ॥ ३९। ४२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥

दोसौ चौबीसवाँ अध्याय।

स्वाहा का अग्नि के साथ विहार करना और उससे कार्त्तिकेय का जन्म होना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! स्वाहा ने उक्त प्रकार से विचारकर अंगिरा की स्त्री शिवानाम का रूप धारण किया जो बड़ी स्वरूपवती थी और वन में अग्नि के पास जाकर कहने लगी कि हे अग्नि ! मैं कामदेव से बहुत दुःखी हूं तुमको मुझे चाहना उचित है १। २ मैं अंगिराऋषि की शिवानामी भार्या हूं, मुझे श्रेष्ठ स्त्रियों ने तुम्हारे पास भेजा है, जो तुम मुझसे प्रीति न करोगे तो मुझे मरी हुई पावोगे ३ यह सुनकर अग्नि बोला कि हे सुन्दरि ! तैंने और उन सप्तऋषियों की दूसरी स्त्रियों ने जिन्होंने तुझे भेजा है मुझको कामाग्नि से पीड़ित कैसे जान लिया ४ शिवा बोली हम सदैव से तुमको चाहती थीं, परंतु डरती थीं। अब तुम्हारी चेष्टा से तुम्हारी चित्त की वृत्ति को जानकर मेरी उन सब बहिनों ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। वे मेरी बाट देख रही होंगी इससे तुम शीघ्र मेरे साथ कामकलोल करो, मैं एतदर्थ ही तुम्हारे पास आई हूं ५। ६

मार्कण्डेयजीबोले हे युधिष्ठिर! इसके उपरान्त अग्निने उस शिवारूपी स्वाहा के साथ विहार किया। जब विहार कर चुके तब स्वाहा ने अग्नि का वीर्य हाथ में ले लिया और विचार किया कि जो कोई मुझको इस रूप से वन में देखेगा वह ब्राह्मणियों को लाञ्छन लगावेगा। इससे यह बात उत्तम है कि मैं गरुड़ी पक्षी का स्वरूप धारण करके इस वीर्य की रक्षा करती हुई निकल चलूं। मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! ऐसा विचार कर उसने शीघ्र अपना स्वरूप गरुड़ी पक्षी का बना लिया और वहां से वीर्य को लिये हुए श्वेतपर्वत की पृष्ठ पर पहुँची जहां जाना बड़ा कठिन है और जहां राक्षस, पिशाच, राक्षसी बड़े बड़े भयानक भूत और दृष्टि में विष और सात शिर रखनेवाले सर्प रहते हैं ७। १२ वहां वह उस वीर्य को एक सुनहले कुण्ड में डालकर शीघ्र दूसरे ऋषि की स्त्री का स्वरूप धरकर अग्नि के पास पहुँची और फिर उक्त प्रकार से विहार करके वीर्य को लेकर सुवर्णकुण्ड में डाल गई। इस प्रकार से स्वाहा ने उस प्रतिपदा के दिन छह बार छह ऋषियों की स्त्रियों का स्वरूप बारी बारी से धारण करके अग्नि के साथ काम-कलोल की और प्रति वार वीर्य को ले लेकर उसी कुण्डमें डाल डाल गई परंतु सातवीं बार अरुन्धती का रूप धारण न कर सकी क्योंकि वह बड़ी तपस्विनी और पतिव्रता थी। अग्नि के उस तेजयुक्त वीर्य से द्वितीया के दिन एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके छह शिर, बारह कान, बारह भुजा, एक ग्रीवा और एक पेट था और वह तृतीया को बालकरूप रहा १३। १८ चौथ को उस बालक के सब अङ्ग पूरे होगये और वह ऐसा दीखने लगा मानों बादलों में उदय हुआ प्रातःकाल का लाल लाल सूर्य है। तब उस स्कन्दनामी कुमार ने अपने हाथ में वह धनुष ले लिया जिसको देखकर संसारी जीवों के रोम खड़े होगये थे और पहले समय में महादेवजी ने जिससे असुरों को मारा था और महामेघों के सदृश गर्जने लगा जिससे सब संसारी जीव मोहित होगये और चित्र और ऐरावतनामी सर्प आकाशमार्ग से वहां आन पहुँचे। उस बालक ने उनको दो हाथों से पकड़ लिया और तीसरे से शक्ति, चौथेसे ताम्रचूड़ और पांचवें हाथसे कुक्कुट को ग्रहण करके भयानक शब्द से गर्जने और क्रीड़ा करने लगा १९।२५ इसके पीछे उस दृढ़पराक्रमी कुमार ने अपने दो हाथों में उत्तम शंख लेकर धमाया और दो हाथों से आकाश को अनेक प्रकार से मथा। उस समय वह अमेय आत्मा और अद्भुत पराक्रमी कुमार उस पहाड़ के शिखर पर बैठा

हुआ और अपने छहों मुखों से दिशाओं को देखता हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो उदयाचल पर सूर्य उदय हुआ है और लोकों को अपने मुखों से ग्रसना चाहता है। उसी समय कुमार ने फिर भयानक शब्द किया उसको सुनकर बहुत से मनुष्य गिर पड़े और बहुत से भय से कांपते हुए उसकी शरण गये २६।३० उस कुमार ने उन शरणागत ब्राह्मणों को अपना पार्षद बनाया और उठकर उनको धैर्य देकर धनुष को चढ़ाकर उस श्वेतपर्वत पर बाण छोड़े, उन बाणों ने हिमालय के पुत्र क्रौंचपर्वत को भेदन किया और वह पहाड़ खण्ड-खण्ड होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और पीड़ित होकर चिल्लाने लगा। उसके गिरने से दूसरे पर्वत भी भय से आर्त शब्द करने लगे और उसके ऊपर रहनेवाले हंस और गृध्र आदि पक्षी उड़ उड़कर मेरु पर्वत पर चले गये ३१।३४ वह श्रेष्ठ बली उन पर्वतों के आर्त शब्द को सुनकर दुःखी नहीं हुआ किंतु अपनी शक्ति को उठाकर गर्जने लगा और उस शक्ति को श्वेतपर्वत के बड़े शिखर में मारा उससे वह पर्वत फट गया और भयभीत होकर दूसरे पर्वतों सहित उछल कर आकाश में चला गया। उस समय पृथ्वी चारों ओर से फट गई और महादुःखी होकर उस स्कन्दनामी कुमार की शरण आई और उससे आश्वासित होकर फिर ज्यों की त्यों स्थित हो गई और पहाड़ भी उसको नमस्कार कर फिर पृथ्वी पर जहां के तहां जम गये। इसके उपरान्त शुक्लपक्ष की पञ्चमी को सब जगत् ने स्कन्द नाम कुमार का भजन किया॥ ३५।३६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२४॥

दोसौ पचीसवाँ अध्याय।

स्कन्द की उत्पत्ति से उत्पातों का होना, सप्तऋषियों का अपनी स्त्रियों को त्यागना, देवताओं का स्कन्द के मारने के लिये लोकमाताओं का भेजना, उनका स्कन्द की शरण में जाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! उस महापराक्रमी कुमार के उत्पन्न होने से पृथ्वी पर अनेकानेक बड़े बड़े घोररूप उत्पात उठे १ स्त्री-पुरुष आपस में वैरभाव मानने लगे। ग्रह दिशा और आकाश दीप्त होगये और पृथ्वी बड़ा शब्द करने लगी तब ऋषियों ने इन उत्पातों को देखकर लोकों की शान्ति की २।३ इसके पीछे उस चैत्ररथ वन में रहनेवाले मनुष्य आपस में कहने लगे कि अग्नि ने सप्त ऋषियों की स्त्रियों के साथ समागम करके बड़ा अनर्थ

किया । वे लोग यह नहीं जानते थे कि यह कर्म स्वाहा का किया हुआ है क्योंकि उन्होंने केवल सप्तऋषियों की स्त्रियों के ही रूप से स्वाहा को जाते हुए देखा था और उनमें से बहुत से पुरुषों ने जिन्होंने स्वाहा को गरुड़ी पक्षी के स्वरूप में देखा था, गरुड़ी से कहा कि इस अनर्थ की उत्पन्न करनेवाली तू है । यह सुनकर गरुड़ी अपने आश्रम को चली गई और वहां जाकर उसने स्कन्दनामी कुमार से कहा कि मैं तेरी माता हूं ४ । ७ इसके पीछे सप्तऋषियों ने वनवासी मनुष्यों से यह सुनकर कि वह तेजस्वी पुत्र हमारी छह स्त्रियों से उत्पन्न हुआ है, अरुन्धती को छोड़ सब स्त्रियों को त्याग कर दिया । यह हाल स्वाहा सुनकर सप्तऋषियों के पास गई और बोली कि यह वृत्तान्त मेरा जाना हुआ है, यह कुमार मेरा पुत्र है, आप इन स्त्रियों को न त्यागिये परंतु सप्तऋषियों ने उसकी बात को न माना । इस वृत्तान्त को विश्वामित्र पूरा पूरा जानते थे क्योंकि उन्होंने यज्ञशाला में अग्नि को काम के वशीभूत देखा था और वन में भी अग्नि के पीछे पीछे जाकर स्वाहा का संपूर्ण चरित्र देखा था ८ । ११ सो जब वह कुमार उत्पन्न होगया तब विश्वामित्र ने उसके पास जाकर उसके जातकर्म आदि सब संस्कार किये और उसकी स्तुति, माहात्म्य, कुक्कुट, शक्ति और पार्षदों के साधन करने की विधि संसार के हित के लिये रची, तब से विश्वामित्र उस कुमार के परमप्रिय होगये १२ । १५ इसके पीछे विश्वामित्र ने सप्तऋषियों से आकर स्वाहा का सब वृत्तान्त कहा और उपदेश किया कि तुम्हारी स्त्रियां निरपराध हैं तुम उनको मत त्यागो परंतु उन ऋषियोंने लोकापवाद के भयसे उन स्त्रियोंको ग्रहण नहीं किया किंतु त्याग ही कर दिया १६ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! इसके अनन्तर देवता उस स्कन्द के उत्पन्न होने का हाल सुनकर इन्द्र से बोले कि इस कुमार का पराक्रम असह्य है इससे इसके मारने का शीघ्र यत्न कीजिये नहीं तो यह सब लोकों को जीतकर हम सबको अपने वश में कर लेगा और आप इन्द्र हो जायगा १७ । १८ यह सुनकर इन्द्र बोला कि वह बालक बड़ा पराक्रमी है, अपने बल से इस संसार को उत्पन्न करनेवाले का भी नाश कर सकता है इससे मैं उसके मारने के यत्न करने में प्रसन्न नहीं हूं । देवता बोले कि तुममें इतना पराक्रम नहीं है जो उसे मार सको इससे ऐसी बातें कह रहे हो । अच्छा, सब लोकमाताएँ जो अपने पास कामरूपी बड़ा बल रखती हैं वे

जायँ और उस बालक का वध करें। यह सुन कर सब लोकमाताएँ 'तथास्तु' कहकर चल दीं। जब वहां पहुँचीं जहां वह कुमार था तब वे उस कुमार के अपरमित बल को देखकर व्याकुल होगईं और कहने लगीं कि इसको बल से वशमें करना दुर्लभहै ऐसा कहकर उन सबने उसी कुमार की शरण ली १६।२२ और वे सब उससे बोलीं कि हे महाबलशालिन्! तू हमारा पुत्र है, हम सब स्नेह से तेरे पास आई हैं, तू हम सबको पुत्रभाव से प्रसन्न कर २३ यह सुनकर उस कुमार ने स्तन पीने की इच्छा से उन सबकी पूजा की और उनके मनोरथ को पूरा किया इतनेही में वहां उस कुमार का पिता अग्नि भी जा पहुँचा। कुमार ने उसका आदर किया और वह सब लोकमाताओं सहित सत्कार पाकर उस कुमार को अपनी गोद में लेकर बैठ गया, उसकी रक्षा करने लगा और क्रोध समुद्भवनाम की धात्री ने जिसके हाथ में शूल रहताहै उसकी रक्षा पुत्रके समान की और रक्तसमुद्रकी कन्या ने जो बड़ी क्रूर और रक्त पीनेवालीथी उस कुमारमें पुत्रभाव मानकर बड़ी प्रीति से उसकी रक्षा की और नैगमेयनाम अग्नि ने छागमुख बनकर उस कुमार को इस प्रकार से खिलाया जैसे कोई बालक को खिलौनों से खिलाता है ॥ २४ । २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥

दोसौ छब्बीसवाँ अध्याय।

इन्द्रका स्कन्द से युद्ध में हारकर स्कन्द की शरण जाना, स्कन्द का इन्द्र को अभय कर देना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! जब उक्त प्रकार से सब ग्रह, उपग्रह, ऋषि, देव, माता और अग्नि आदि पार्षद और अन्य स्वर्गवासी माताएँ उस स्कन्द को घेरकर वहां स्थित होगईं तब इन्द्र अपने विजय को संदिग्ध देखकर विजय की इच्छा से ऐरावत हाथी पर चढ़कर वज्र लिये हुए सब देवताओं सहित स्कन्द को मारने के लिये वहां गया १।४ स्कन्द उस बड़ी दारुण देवसेना को जो अनेक प्रकार की ध्वजा, वाहन, धनुष और अनेक प्रकार के वस्त्रों से अलंकृत होकर शोभित थी बड़ा शब्द करती हुई अपने मारने को आती हुई देखकर इन्द्र से युद्ध करने के लिये चलदिया और इन्द्र भी मुख्य देवता और महाऋषियों सहित देवताओं की सेना को लिये हुए उसके निकट जा पहुँचा ५।८ और वहां उसने और सब देवताओं ने सिंहनाद किया। उसको सुनकर स्कन्द भी सागर के समान गर्जा उसकी गर्जन में वह सब देवताओं की

सेना अचेतसी होकर उसको मारने की इच्छा से इधर उधर घूमने लगी। स्कन्द ने उस सेना को अपने मारने का यत्न करने में तत्पर देखकर अपने मुख से बड़ी भारी ज्वाला छोड़ी ६। ११ देवता अपने आयुध और वाहनों सहित उस ज्वाला से कम्पित और अस्त हुए तारागणों के सदृश निष्प्रभ होकर गिर पड़े और सबने इन्द्र को त्यागकर उस अग्निपुत्र स्कन्द की शरण ली तब वह ज्वाला नष्ट होगई और देवताओं का दुःख दूर हो गया। यह देखकर इन्द्र ने स्कन्द के दाहिनी बग़ल में वज्र मारा। वह वज्र स्कन्द की देह को फोड़ कर पार हो गया और उसके शरीर से एक दूसरा पुरुष निकला जो सुनहरी कवच, शक्ति और दिव्य कुण्डल धारण किये हुए था, नाम उसका विशाख था क्योंकि वह स्कन्द की देह में वज्र के प्रवेश होने से उत्पन्न हुआ था। इन्द्र उस काल अग्नि के सदृश दूसरे पुरुष को देखकर भयभीत होगया और उसने भी स्कन्द की शरण ली। तब स्कन्द ने इन्द्र को देवताओं सहित अभय कर दिया और देवता उस समय प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे॥ १२।१८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षड्त्रिंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२६ ॥

दोसौ सत्ताईसवाँ अध्याय।

स्कन्द के कुमार और कन्याओं के उत्पन्न होने और माताओं का लोक में पूज्य होने का वृत्तान्त।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! अब हम तुमसे स्कन्द के उन अद्भुत दर्शन कुमारों का वृत्तान्त कहते हैं जो वज्र का प्रहार होने पर स्कन्द के पास गये थे। ये सब कुमार बड़े भयानक हैं और गर्भ में जन्म लेनेवाले बालकों के प्राण हर ले जाते हैं। वज्र के प्रहार से बहुत से कुमार और बड़ी बलवान् कन्या उत्पन्न हुई थीं, उन सब कुमार और कन्याओं ने विशाख को अपना पिता करके माना। उस समय उनकी रक्षा के लिये विशाख ने अपना मुख छाग अर्थात् बकरी का-सा बना लिया। इस प्रकार से वह भद्रशाख अर्थात् स्कन्द उन सब माताओं के देखते देखते पुत्र और पुत्रियों से युक्त होगया। तदनन्तर लोग पृथ्वीपर स्कन्दकुमारको उन सब कुमारोंका पिता और अग्नि को रुद्र और स्वाहा को उमादेवी कहने लगे १।५ जो मनुष्य पुत्रवान् हैं अथवा जिनको पुत्र होने की इच्छा है वे उक्त कुमारों की सदैव पूजा करते हैं। इसके पीछे जो कन्याएँ तपनाम अग्नि से उत्पन्न हुई थीं वे सब स्कन्द के पास आईं और कहने लगीं कि हम सब अब क्या करें, हमारी इच्छा है कि हम सब

लोकों की माता और पूज्य होजावें। यह सुनकर स्कन्द बोला कि बहुत अच्छा तुम सब अपना अपना रूप पृथक् पृथक् करके लोकों का कल्याण और अकल्याणरूप माता होजाओ ६।८ यह सुनकर वे सब माता स्कन्द को पुत्रभाव से मानकर चली गईं। नाम उनके ये हैं काकी १ हलिमा २ मालिनी ३ बृंहिता ४ आर्या ५ पलाला ६ और वैमित्रा ७ ये सब बालकों की माताएँ कहलाती हैं। स्कन्द की कृपा से इन सातों के शिशुनामी बड़ा भयंकर और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ था। हे युधिष्ठिर! इस वृत्तान्त का नाम स्कन्दमातोद्भववीराष्टक है और छागमुख को भी गिनने से नवक भी अर्थात् नव वीरों का वृत्तान्त रखनेवाला कहलाता है। यह छागमुख स्कन्द ही का है और उसके छह शिरों के बीच में है। माताओं के गण इसी मुख की पूजा करते हैं और यही मुख स्कन्द के छहों मुखों में श्रेष्ठ गिना जाता है और स्कन्द का नाम भद्रशाख दिव्यशक्ति छोड़ने के कारण से हुआ था ६।१४ यह सब उक्त वृत्तान्त शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को हुआ था और छठ को बड़ा घोरयुद्ध वर्त्तमान हुआ॥ १५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२७॥

दोसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय।

स्कन्द का सेनापति होने का अभिषेक होना और देवसेना से विवाह होना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! जिस समय उस श्वेत पर्वत पर स्कन्द सुनहरी कवच, सुनहरी माला, सुनहरी चूड़, मुकुट और रक्तवस्त्र धारण किये हुए विराजमान थे और सुवर्ण वर्ण नेत्र अत्यन्त प्रभा और उज्ज्वल कुण्डलों से सुशोभित थे उस समय उस वरदाता, शूरवीर, युवान सब लक्षणों से युक्त स्कन्द की लक्ष्मी ने अपने साक्षात् स्वरूप से वहां आकर सेवा करी और वह लक्ष्मी से युक्त होने पर ऐसा दीखने लगा मानो पौर्णमासी का चन्द्रमा उदय हुआ है १।४ उसी समय वहां महाऋषियों ने आकर उस महाबलशाली की पूजा की और उससे यह कहा कि ५ हे हिरण्यगर्भ! तेरा कल्याण हो, तू लोकों में आनन्द करता है और तैंने अपनी छह रात्रि की आयु में ही सब लोकों को अपने वश में कर लिया है ६ तैंने ही तीनों लोकों को अभय किया है इससे अब तू इन्द्र का अधिकार ग्रहण कर ले ७ यह सुनकर स्कन्द बोला हे तपोधन, ऋषियो! देवेन्द्र सब लोकों का क्या काम करता है और देवताओं की रक्षा किस प्रकार से करता है ८ ऋषि बोले, देवेन्द्र

प्राणियों के बल, तेज और सन्तान को धारण करता है और प्रसन्न होने पर प्राणियों की सब मनोकामनाओं को पूर्ण करता है ९ सबको आज्ञा देना भी उसी का काम है, वही दुर्वृत्त जीवों को मार डालता है और वृत्तस्थ पुरुषों को इच्छानुसार भोग्य पदार्थ देता है १० जहां सूर्य नहीं है वहां वही सूर्य हो जाता है और जहां चन्द्रमा नहीं है वहां वही चन्द्रमा का काम देताहै और कारण पाकर अग्नि, पृथ्वी, जल और वायुरूप भी धारण करता है ११ वह बड़ा बली है, वही ये सब काम करता है। तू भी बलवानों में श्रेष्ठ है इससे तू हम सबों का इन्द्र हो १२ यह सुनकर इन्द्र ने भी स्कन्द से कहा कि तू हम सबको सुख देनेवाला है और इन्द्रपदवी पाने के योग्य है इससे चल अब तेरा अभिषेक करें १३ स्कन्द बोला कि हे इन्द्र! मैं इन्द्रपदवी नहीं चाहता हूं, तू ही अव्यग्रचित्त होकर तीनों लोकों के राज्य का शासनकर, मैं तेरा किंकर होकर रहूंगा १४ इन्द्र बोला कि हे वीर! तेरा पराक्रम बड़ा अद्भुत है तू उस पराक्रम से देवशत्रुओं का वध कीजियो, संसार तेरी सबलता और मेरी अबलता और इन्द्रासनपर बैठने की अयोग्यता को देखकर मेरा अपमानकरेगा और हम दोनों में परस्पर भेद करादेगा उस भेद से लोककी दो अवस्थाएँ हो जायँगी और दो अवस्थाएँ होनेसे आपस में शत्रुता होजायगा, उस शत्रुतासे हम दोनोंमें विग्रह होगा और उस विग्रह में तू अपने बलसे मुझे जीत लेगा इससे तू ही विना विचार किये इन्द्रासन पर बैठ १५।१८ स्कन्द बोला हे इन्द्र! तेरा कल्याण हो, तू ही मेरा और सब लोकों का राजा है। जो तू मुझको आज्ञा दे, सो मैं करूं १९ इन्द्र बोला कि हे महाबल! जो तू निश्चय करके सत्य सत्य कहता है तो मैं तेरे वाक्य के अनुसार इन्द्रपदवी पर रह सकता हूं २० और जो तू मुझसे आज्ञा पूछता है कि मैं क्या करूं तो मेरी यह आज्ञा है कि तू देवताओं की सेना का सेनापति होकर रह २१ यह सुनकर स्कन्द बोला बहुत श्रेष्ठ; अब तू दानवों के मारने, देवताओं का काम करने और गो-ब्राह्मण का हित करने के लिये सेनापति होने का मेरा अभिषेक कर दे २२ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! सब देवताओं समेत इन्द्र ने यह सुनकर उसका अभिषेक कर दिया और वह सेनापति का अभिषेक पाकर और ऋषियों से पूजित होकर अत्यन्त सुशोभित हो गया २३ और सुनहरी छत्र के नीचे बैठा हुआ ऐसा दीखने लगा मानो अग्निमण्डल में सूर्य विराजमान है २४ उस समय शिवजी ने स्वयं वहां आकर विश्वकर्मा की बनाई

हुई सुनहरी माला उसके गले में बांध दी २५ और पार्वती सहित बड़ी प्रसन्नता से उसकी पूजा की २६ शिवजी को ब्राह्मणों ने अग्निरूप भी कहा है इससे स्कन्द शिवजी का पुत्र कहलाया। शिवजी ने एक समय अपना वीर्य छोड़ दिया था, वही वीर्य श्वेत पर्वत हो गया और उसपर कृत्तिकाओं ने अग्नि की इन्द्रिय निर्माण की थी और शिवजी अग्नि में प्रवेश हो गये थे इससे वह स्कन्द शिवजी, अग्नि, स्वाहा और छह स्त्रियों से उत्पन्न होने के कारण से रुद्रपुत्र कहलाया २७।३० हे भरतवंशिन्! उस समय लाल वस्त्रों के धारण करने से उस अग्निपुत्र की ऐसी छवि दीखने लगी मानो दो लाल बादलों में सूर्य प्रकाश कर रहा है ३१ अग्नि ने उसी समय उसको एक कुक्कुट का चिह्न रखनेवाली ऊंची और लाल ध्वजा दी जो उसके रथ में कालाग्नि के समान अलंकृत दीखती है ३२ जीवों में चेष्टा, बल, शान्ति और प्रभा होना, उस शक्ति का कारण है जो देवताओं के जय की बढ़ानेवाली और स्कन्द के आगे चलनेवाली है ३३ और स्कन्द की देह के साथ एक कवच भी उत्पन्न हुआ था, वह कवच उसकी देह में प्रवेश हो गया। जब स्कन्द युद्ध करना चाहता है तब वह कवच देह से निकलकर प्रकट हो जाता है ३४ यह स्कन्द बड़ा गुणवान् था। शक्ति, धर्म, बल, तेज, कान्ति, सत्य, ब्रह्मण्य, असंमोह, भक्तों की रक्षा करना, शत्रुओं को मारना और संसार की रक्षा करना ये गुण उसकी देह के ही साथ उत्पन्न हुए थे ३५।३७ अभिषेक होने के पीछे स्कन्द के मुखारविन्द की छवि पूर्णचन्द्रमा की-सी हो गई और वेदध्वनि, देवताओं के बाजे, गन्धर्वों के गीत, अप्सराओं के नाच, पिशाच और हृष्ट-पुष्ट देवताओं के वहां इकट्ठा होने से उस स्थान की बड़ी अद्भुत शोभा होगई। उन सबके बीच में स्कन्द बैठा हुआ ऐसा दीखता था मानों अन्धकार दूर करनेवाला दूसरा सूर्य है। इसके पीछे सब देवताओं की संपूर्ण सेना जिसकी संख्या सहस्रों की थी, यह कहती हुई स्कन्दजी के सम्मुख आई कि आप हमारे स्वामी हैं। स्कन्द उस सेना को पाकर और उससे पूजित होकर प्रसन्न हुआ और उसने सब सेनाओं के देवताओं को सान्त्वना दी ३८।४४ इसके उपरान्त इन्द्र ने उस देवसेना कन्या को याद किया जिसको उसने केशी दैत्य से छुटाया था और यह विचारकर कि ब्रह्माजी ने उस कन्या का पति यही स्कन्द रचा है, उसने उस कन्या

को बुलवाकर स्कन्द से कहा कि यह कन्या है, तेरे उत्पन्न होने से पहिले ही ब्रह्माजी ने कहा था कि यह स्कन्द की पत्नी होगी । इससे तू विधिवत् इसके दाहिने हाथ को अपने हस्तकमल से ग्रहण कर । यह सुनकर स्कन्द ने विधिपूर्वक उस कन्या का पाणिग्रहण किया और बृहस्पतिजी ने पाणिग्रहण कराया और होम किया इस प्रकार से मनुष्यों को वह देवसेना स्कन्द की पटरानी विदित हुई ४५ । ४६ यह पाणिग्रहण षष्ठी के दिन हुआ था, ब्राह्मण लोग इसी षष्ठी को सुख और लक्ष्मी की दात्री कहते हैं और सिनीवाली, कुहू, सद्वृत्त और अपराजित नाम से प्रसिद्ध करते हैं । देवसेना स्कन्द को पति पाकर सेवा में युक्त होकर रहने लगी । वह पञ्चमी तिथि जिसमें लक्ष्मी ने स्कन्दजी की सेवा की थी, श्रीपंचमी नाम से विख्यात हुई और वह षष्ठी जिसको स्कन्द का अभिषेक और विवाह हुआ बड़ी तिथि गिनी जाती है ५० । ५२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥

दोसौ उन्तीसवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से स्कन्दरूपी बाल ग्रहों का वृत्तान्त कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! इसके अनन्तर सप्तऋषियों की छहों स्त्रियां जो धर्मयुक्त और महाव्रता थीं उस श्रीयुक्त कुमार का वृत्तान्त सुनकर उसके पास आईं और उससे कहने लगीं कि हे पुत्र ! हमारे देवसदृश पतियों ने हमको क्रोध से विना कारण त्याग दिया है इससे हम सब पुण्यस्थान से गिर गई हैं । त्याग करने का कारण यह था कि किसीने उनसे यह जाकर कह दिया कि तू हम सबसे उत्पन्न हुआ है इससे हे स्कन्द ! तुझको हम सबकी रक्षा करना उचित है १ । ४ हे सर्वकर्मसमर्थ ! हम चाहती हैं कि तेरी कृपा से हमको स्वर्ग में अक्षय वास मिले । तू हमारा पुत्र है, हमको तुझसे बड़ी प्रीति है इससे तू अब हमारा उक्त काम करके हमसे अनृण हो जा ५ यह सुनकर स्कन्द बोला कि तुम सब मेरी माता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूं, तुम्हारी इच्छा सब पूरी होगी ६ मार्कण्डेयजी बोले इसके पीछे इन्द्र ने कुछ कहना चाहा परंतु कहते कहते चुप हो रहा तब स्कन्द ने इन्द्र से कहा कि क्या कार्य है, कहते क्यों नहीं हो ? इन्द्र बोला ७ कि जो अभिजित् नक्षत्र रोहिणी नक्षत्र की छोटी बहिन है वह अपनी बड़ी बहिन अर्थात् रोहिणी से ईर्ष्या करके बड़ी बनने के लिये वन में तपस्या करने को चली गई है । उसके आकाश में से चले जाने के

कारण मैं नहीं जानता हूं कि नक्षत्रोंकी गणना काल के अनुसार क्योंकर की जावे। आप और ब्रह्माजी विचार कीजिये कि अब किस नक्षत्र का काल समझा जावे ८। ९ यह सुनकर कृत्तिका स्वर्ग को चली गई जिसका देवता अग्नि है और जो आकाश में सात शिर से प्रकाश करती है। तब ब्रह्माजी ने काल की कल्पना इस प्रकार से की कि उस काल के आगे में धनिष्ठा थी अब रोहिणी पूर्व हो गई १०। ११ इसके पीछे गरुड़ी ने स्कंद से आकर कहा कि तू मेरा पिण्डदाता पुत्र है, मैं तेरे साथ रहना चाहती हूं १२ स्कन्द बोला कि हे देवि! तू निःसंदेह मेरी माता है, मैं तुझको नमस्कार करता हूँ। तू अपनी पुत्रवधू के साथ रह और पुत्रस्नेह से जो तेरी इच्छा में हो सो मुझे आज्ञा कर १३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे सब माताओं ने वहां आकर स्कन्द से कहा कि पण्डितलोग हम सबको लोकमाता नाम से स्तुति करते हैं, इससे हम तेरी माता होना चाहती हैं, तू हमारी पूजा कर। यह सुनकर स्कन्द बोला कि तुम मेरी माता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूं। जो कुछ तुम्हारे मन में काम हो और वह मुझसे होसकता हो उसको कहो १४। १५ माता बोलीं कि इसलोक की जो पहिली माताएँ हैं उनका स्थान हम पावें और सब लोकों में हमारी पूजा होवे और उनको कोई न पूजे और उन माताओं ने जो सन्तान हमारी हर ली है वह भी हमको मिल जाय १६।१७ यह सुनकर स्कन्द बोला कि मेरी दीहुई प्रजाका सेवन करना तुमको उचित नहीं है, फिर मैं तुमको कौन सी प्रजा दूं जिसको तुम भी चाहती हो १८ यह सुनकर माता बोलीं कि हम यह चाहती हैं कि पहिली माताओं की सन्तान और उनके स्वामियों को भक्षणकरें १९ स्कन्द बोला कि यह बात तो तुमने बड़ी कठिन कही, परंतु लो मैं तुमको प्रजा देता हूं, साधुलोग तुमको नमस्कार करेंगे और तुम प्रजाकी रक्षा करना २० माता बोलीं कि हे स्कन्द! तेरा कल्याण हो, हम तेरे कहने के अनुसार प्रजा की रक्षा चारोंओर से करेंगी परंतु हम सब तेरे साथ बहुत दिनों तक बसना चाहती हैं २१ स्कन्द बोला कि जबतक मनुष्य के पुत्रोंकी आयु सोलह वर्षकी न हो जाय तबतक तुम अनेक प्रकारके रूप धारणकरके उनको बाधा करो २२ मैं तुमको रौद्र तेज देता हूं उसको धारणकरके तुम संसार में पूजितहोकर सुख से वास करो २३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे स्कन्द के शरीर से अग्नि के समान प्रकाशित मनुष्य की संतानको भक्षण करनेके लिये एक पुरुष

निकला २४ और क्षुधा से पीड़ित होने के कारण से वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा और स्कन्द की आज्ञा से वह रौद्ररूप हो गया । ब्राह्मण लोग उसको स्कन्दापस्मार ग्रह कहते हैं और गरुड़ी शकुनिनामी ग्रह विख्यातहुआ २५।२६ और जो पूतनानाम राक्षसीथी वह पूतनानामी ग्रह समझो। यह निशाचरी बड़ी घोररूपा और दुःखदायिकाहै। यह शीत पूतनानाम से भी प्रसिद्ध है और स्त्रियों के गर्भ को बाधा करती है २७। २८ और रेवती को अदितिनाम से भी कहते हैं। उसका रैवतनामी ग्रह हुआ। यह ग्रह भी बालकों को बाधा करता है २९ और जो दितिनामी दैत्योंकी माताहै उसको मुखमुण्डिकानामी ग्रह कहते हैं, यह ग्रह बालकों के मांस से सदैव प्रसन्न रहता है ३० और जो स्कन्द के कुमार और कुमारियां कहआये हैं वे भी बड़े बड़े ग्रह हैं और स्त्रियों के गर्भको भक्षण करते हैं ३१ और जो उन कुमारी स्त्रियों के पति हैं वे बड़े रौद्रकर्मी हैं, वे बालकों को तुरंत ग्रहण कर लेते हैं ३२ और जो गौओं की माता सुरभि विख्यात है उसपर चढ़कर शकुनिनामी ग्रह बालकों को भक्षण करता है ३३ हे जनाधिप ! सरमानाम देवी जो कुत्तों की माता है स्त्रियों के गर्भ को हरकर ले जाती है ३४ और जो करञ्जनिलयानामी वृक्षों की माता है वह बड़ी सौम्य और वरदात्री है और प्राणियों पर दया भी करती है। मनुष्य पुत्र की कामना से उसकी पूजा करञ्ज के वृक्षपर करते हैं। इन अठारहों ग्रहों को मधु और मांस बड़ा प्रिय है और ये दश दिन तक बालक उत्पन्न होने के स्थान में रहते हैं और कद्रू माता गर्भिणी स्त्री के गर्भ में सूक्ष्मरूप से प्रवेश होजाती है ३५। ३७ और उस गर्भ को भक्षण करके उसके बदले में सर्प उत्पन्न कर देती है। और गन्धर्वोंकी माता स्त्रियोंके गर्भको निकालकर लेजाती है और तब वह स्त्री गर्भ धारणकरके शून्यगर्भ होजाती है और अप्सराओं की माता गर्भ को पकड़कर बैठ रहती है तब संसार में लोग उस गर्भ को उपनष्ट कहते हैं और जो माता लाल समुद्र की कन्या है वह स्कन्द की धात्री है ३८। ४० नाम उसका लोहितायनहै, उसकी पूजा कदम्बके वृक्ष में होती है और जैसे पुरुषो में रुद्रहैं उसी प्रकारसे स्त्रियों में आर्या देवी है ४१ वह लड़कोंकी माताहै, पृथक् पृथक् कामनाओं से उसकी पूजा पृथक् पृथक् विधि से होती है। हे युधिष्ठिर ! ये सब ग्रह हमने वर्णन किये। जब तक बालकों की सोलह वर्ष की आयु नहीं होती है तब तक ये सब ग्रह बालकों को बाधा करते हैं। जितनी माताओं के नाम और पुरुषग्रह हमने ऊपर कहेहैं वे सब स्कन्दग्रह नामसे प्रसिद्ध हैं। देहधारियोंको इन ग्रहोंका जानना

अवश्यहै। स्नान कराने, धूपदेने, पूजा करने, बलि देने और भेंट चढ़ाने से येसब ग्रह शान्त हो जाते हैं। विशेष करके स्कन्द की पूजा करना अति उत्तम है। ऐसा करने से ये ग्रह मनुष्य का कल्याण करते हैं ४२ । ४५ और पूजा आदि पाकर आयु और बल देते हैं। अब मैं महेश्वर को नमस्कार करके उन ग्रहों का वृत्तान्त कहता हूं जो सोलहवर्ष के पीछे मनुष्य को बाधा करते हैं ४६ जो मनुष्य जागते अथवा सोते में किसी देवता के स्वरूप को देखकर बावला होजाता है वह देवग्रह का कारण है ४७ और जो मनुष्य अपने किसी पितृ के स्वरूप को सोते अथवा जागते में देखकर उन्मत्त होजाता है उसको पितृग्रह का दोष समझना चाहिये ४८ और जो मनुष्य किसी सिद्धपुरुष का अपमान करता है और उसके शाप से बावला होजाता है वह सिद्धग्रह का दोष है ४९ और जो पुरुष अच्छी सुगन्धित वस्तुओं को सूंघकर अथवा स्वादिष्ठ रसों को चाखकर बावला हो जाता है उसको राक्षसग्रह का दोष समझना चाहिये ५० और जो मनुष्य गन्धर्वों के शरीर में प्रवेश करने से उन्मत्त होजाता है वह गान्धर्व ग्रह का दोषहै ५१ और जो पुरुष पिशाच के लगने से सिड़ी हो जाता है उसका कारण पैशाचग्रह है ५२ और जिस मनुष्य के शरीर में यक्ष प्रवेश होकर मनुष्य को बावला सा कर देते हैं उसको यक्षग्रह का कारण समझना उचित है ५३ और जिस मनुष्य का चित्त वात, पित्त और कफ के दोष से तथा क्रोध से मोहित हो जाता है और उसको उन्माद होजाता है उसका उपाय शास्त्र की रीति से करना उचित है ५४ और जो मनुष्य घोरस्वरूप को देखकर भय से उन्मत्त होजाता है उसका उपाय सान्त्वन अर्थात् धैर्य देना है ५५ सब ग्रह तीन प्रकार के हैं। कोई भोजन चाहते हैं, कोई क्रीड़ा करना चाहते हैं और कोई को भोग-विलास करने की इच्छा रहती है ५६ ये ग्रह मनुष्य को सत्तरवर्ष तक की आयु तक बाधा करते हैं, उपरान्त बुढ़ापे का ज्वरही ग्रहरूपी होता है ५७ जो मनुष्य जितेन्द्रिय, पवित्र, आस्तिक और श्रद्धावान् होता है उसको ये ग्रह कभी बाधा नहीं करते हैं ५८ और देवभक्त और शिवजी की पूजा करनेवाले मनुष्यों के निकट ये ग्रह कभी नहीं जाते हैं । हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार से यह मनुष्यों के ग्रहों की कथा पूरी हुई ॥ ५९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥

दोसौ तीसवां अध्याय।

स्वाहा और स्कन्द का संवाद होना, स्कन्द से दानवों का युद्ध में हार जाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जब स्कन्द ने उक्तप्रकार से सब माताओं का उपकार किया तब स्वाहा ने उसके पास आकर कहा कि हे स्कन्द! तू मेरा औरस पुत्र है १ मैं चाहती हूं कि तू मुझसे ऐसी प्रीतिकर जैसी औरस पुत्र की माता से प्रीति होती है। यह सुनकर स्कन्द बोला कि तू कैसी प्रीति चाहती है २ स्वाहा बोली कि मैं दक्ष की प्यारी पुत्री हूं, नाम मेरा स्वाहा है, बालापन से मेरा मन अग्नि की ओर लगा हुआ था परंतु अग्नि मुझ कामिनी को अभी तक नहीं जानते हैं। मैं अग्नि के साथ सदैव वास करना चाहती हूं ३। ४ यह सुनकर स्कन्द बोला कि अब से जो कुछ हव्य अथवा कव्य ब्राह्मण लोग अग्नि में होमा करेंगे वह तेरा नाम लेकर अर्थात् स्वाहा कहकर होमेंगे। इस प्रकार से अग्नि सदैव तेरे साथ रहेंगे ५। ६ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! स्कन्द के उक्त प्रकार से कहने पर स्वाहा प्रसन्न होकर अपने पति अग्नि से युक्त हो गई और उसने स्कन्द की पूजा की ७ इसके पीछे ब्रह्माजी ने स्कन्द से कहा कि अब तुम अपने पिता महादेवजी के पास भी हो आवो ८ उन्होंने ही उमा-सहित अग्नि और स्वाहा में प्रवेश होकर संसार के हित के लिये तुमको उत्पन्न किया है ९ महादेवजी ने पहिले उमादेवी की योनि में वीर्य स्थापन किया था उस वीर्य में से कुछ तो इस पर्वत पर गिरपड़ा जिससे मिञ्जिकानाम स्त्री और मिञ्जकनामी पुरुष उत्पन्न हुआ था और कुछ वीर्य लालसमुद्र में, कुछ सूर्य की किरणों पर, कुछ पृथ्वी पर और कुछ वृक्षों पर भी गिरा था। इस प्रकार से वह वीर्य पांच युक्त स्थानों पर गिरा था और उससे नानाप्रकार के गुण उत्पन्न हुए थे १०।१२ वे ही घोररूप और मांसभक्षी गण तुम्हारे पार्षद हैं। यह सुनकर वह पितृवत्सल स्कन्द महादेवजी के पास गया और उसने पार्वती सहित महादेवजी की पूजा की १३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य किसी व्याधि की शान्ति अथवा धन चाहे, उसको उक्त पांच स्थानों से उत्पन्न हुए गणों की पूजा आकके फूलों से करनी चाहिये १४ और जो मनुष्य बालकों का हित चाहे, उसे महादेवजी से उत्पन्न हुए मिञ्जिका स्त्री और मिञ्जकनाम पुरुषों को नमस्कार करना उचित है १५ और जो वृद्धिका नाम स्त्रियां वृक्षों पर वीर्य गिरने से उत्पन्नहुई थीं उनकी पूजा संतान चाहनेवाले पुरुषों को करना उचित है १६ इसप्रकार से पिशाचों के

असंख्य गण हैं। अब स्कन्दको पताका और घण्टा मिलनेका वृत्तान्त सुनो १७ ऐरावत हाथी के दो घण्टे थे, नाम उनका वैजयन्त था। इन्द्र ने उनमें से एक घण्टा स्कन्द को और एक विशाख को दिया और उन दोनों के रथों की पताका लालरंग की थीं १८।१९ और देवताओं ने जो खिलौने दिये थे उनसे स्कन्द क्रीड़ा किया करता और उस सुनहले पर्वतपर देवता और पिशाचों के गणों से संवृत और लक्ष्मी से युक्त होकर परम शोभा को प्राप्त था २०। २१ और वह पर्वत भी उस वीर से ऐसा सुशोभित हो गया था मानो अंशुमान् सूर्य मन्दराचल पर्वतपर प्रकाश कर रहा है २२ उस श्वेत पर्वत पर फूले फले हुए संतानक, करवीर, पारिजात, अशोक और कदम्ब आदि अनेक वृक्षों के पृथक् पृथक् वन थे। उनमें अनेक प्रकार के मृग और पक्षी रहते थे २३। २४ और वह देवऋषि और देवताओं के गण के गण जिनके बोलनेका शब्द बादल की गर्जन और तूर्यबाजे की लय के समान होता था, वहां विहार किया करते थे और गन्धर्व बड़ी मधुरवाणी से गाते थे और अप्सराएँ अनेक भाव बताकर नाचती थीं, जितने जीव वहां थे सब प्रसन्न थे। इस प्रकार से उस श्वेतपर्वत पर उस समय इन्द्रसहित सब जगत् रहता था और स्कन्द को देखकर सब प्रसन्न होते थे और कोई किसी प्रकार की ग्लानि नहीं मानता था २५। २७ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! स्कन्द का सेनापति के अधिकार पर अभिषेक होजाने पर महादेवजी पार्वतीसहित सूर्यवर्ण रथ में बैठकर भद्रवट की ओर चले। उस रथ में सहस्रसिंह जुते हुए थे २८। २९ जब वह रथ हांका गया तब वे सुन्दर केसरी सिंह सबको डराते और गर्जते हुए रथ को लेकर आकाशमार्ग से चलने लगे। उस समय उस रथ में शिवजी पार्वतीसहित बैठे हुए ऐसे दीखते थे मानो इन्द्र धनुषयुक्त बादल में बिजली सहित सूर्य प्रकाश कर रहा है। उस समय कुबेरजी पुष्पक विमान में बैठकर गुह्यकों को साथ में लिये हुए शिवजी के आगे आगे होलिये। इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर देवताओं को साथ में लिये हुए पीछे पीछे चला और अमोघनामी यक्ष जृम्भक, ग्रह और यक्ष राक्षसों को लिए हुए दाहिनी ओर शिवजी के साथ साथ हो लिया। उसकी दाहिनी ओर बहुत से चित्रयोद्धी देवता और अष्टवसु थे। इसी प्रकार से यमराज भी मृत्यु और सब व्याधियों को संग लिये हुए उनके साथ में हो लिये और यमराज के पीछे पीछे तीन फल रखनेवाला

शिवजी का शूल हो लिया। उसके साथ में जल के ईश्वर वरुण नानाप्रकार के जलजीवों को साथ लिये हुए जा रहे थे और उस विजयशूल के पीछे पीछे शिवजी का पट्टिश चला जाता था ३०।३९ और वह गदा मुसल और शक्ति आदि उत्तम शस्त्रों से युक्त था। उसके पीछे पीछे शिवजी का छत्र था जिसकी प्रभा बड़ी उत्तम थी ४० उसके पीछे कमण्डलु भी महाऋषियों को साथ में लिये हुए था और कमण्डलु की दाहिनी ओर दण्ड जाता था। इन सबके पीछे शिवजी का उत्तम रथ था। उनके साथ में भृगु और अङ्गिरा आदि ऋषि थे और अपने तेज से सब देवताओं को प्रसन्न करते हुए चले जाते थे और ऋषि, देवता, गन्धर्ब, सर्प, नदी, ह्रद, समुद्र, अप्सरा, नक्षत्र, ग्रह, देवताओं के कुमार और अनेक सुन्दर स्त्रियां उनके पीछे पीछे फूलों की वर्षा करती हुई जाती थीं ४१।४५ और पर्जन्यदेवता भी शिवजी को नमस्कार करके उनके साथ साथ हो लिये। उस समय चन्द्रमा ने पाण्डुर वर्ण छत्र शिवजी के ऊपर लगा लिया, वायु अग्नि चमर डुराने लगे, इन्द्र पीछे से राजऋषियों सहित उनकी स्तुति करने लगा और गौरी, विद्या, गान्धारी, केशिनी, मित्रा और सावित्री आदि सब माताएँ पार्वतीजी के पीछे पीछे जाती थीं, इन्द्रादिक देवता सेना के मुखपर रहकर शिवजी की आज्ञा का पालन करते थे और राक्षसग्रह पताका लिये हुए सेना के आगे आगे जाते थे ४६।५० और उस सेना के साथ में शिवजी का सखा पिङ्गलनामी यक्षों का राजा भी था जो सदैव श्मशान में रहता है। इस प्रकार से शिवजी जिनको ईश, रुद्र और पितामह भी कहते हैं और सब संसारी जीव अनेक भावों से पूजते हैं, संपूर्ण देबताओं की सेना को लिये हुए जा रहे थे और उनके पीछे पीछे स्कन्दजी देवसेनासहित थे। उस समय शिवजी ने स्कन्द से कहा कि तुम आलस्य छोड़कर देवताओं की सातवें समुदाय की रक्षा करना। स्कन्द बोला बहुत श्रेष्ठ, ऐसा ही करूंगा और जो कुछ आज्ञा हो सो भी कहिये विलम्ब मत कीजिये ५१।५६ शिवजी बोले कि हे पुत्र! तुझको मुझे सबकामोंमें देखना उचितहै मेरेदर्शन और मेरी भक्ति से तेरा कल्याण होगा५७ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! शिवजीने उक्तप्रकार से कहकर स्कन्द को बिदा कर दिया। उसके चले जाने के पीछे बहुत से उत्पात होने लगे ५८ आकाश नक्षत्रोंसहित अकस्मात् प्रज्वलित होगया, पृथ्वी बजने और हिलनेलगी, जगत् का स्वरूप अन्धकार के सदृश होगया। इन उत्पातों को देखकर शिवजी,पार्वती

और सब देव, दानव और महाऋषि मोहित और भयभीत हो गये। उसी समय उन सबोंने अपने सम्मुख पहाड़ और बादलों के समान बड़ी भारी असंख्य सेना उमड़ती हुई आती देखा। उस सेना के राक्षस अनेक प्रकार के शस्त्र लिये हुए थे और गर्जते हुए सम्मुख चले आ रहे थे ५६। ६२ थोड़ी देर में वह सेना निकट आगई और उसके राक्षसों ने बाण, पर्वत, शतघ्नी, खड्ग, परिघ और गदा आदि अनेक शस्त्रों की वर्षा शिवजी और देवताओं के ऊपर की। उससे देवताओं की सेना के घोड़े, हाथी, आयुध और रथ सब नष्ट होगये और वह सेना दानवों से पीड़ित होकर विमुख होगई और भागने लगी। उस समय देवताओं को कोई सहायक न दीखा और वे दैत्यों के शस्त्रों से मर मरकर इस प्रकार से गिर गये जैसे अग्नि लग जानेसे सब वन नष्ट हो जाता है। उस समय इन्द्र ने देवताओं को धैर्य दिया और कहा कि तुम शूरवीर हो, भय मत करो और अपने-अपने हथियार ले लो ६३। ६६ और अपनी अपनी शक्ति के अनुसार पराक्रम करो और इन दुर्वृत्त घोर दर्शनवाले दानवों को जीतलो, तुमको कौन व्यथा दे सकता है ७० तुम हमारे साथ दैत्यों के सम्मुख चलो। मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! देवता इन्द्र की उक्त बात को सुनकर इन्द्र का आश्रय लेकर दानवों से युद्ध करने लगे और मरुत्, साध्यगण और अष्ट वसुओं को साथ लेकर दैत्यों के सम्मुख गये और अस्त्र, शस्त्र और बाण छोड़ने लगे। उस समय देवताओं के बाणों ने दैत्यों के शरीरों को छेद छेदकर चलनी कर दिया और वे बाण उनका रुधिर पी पीकर पृथ्वी पर सर्पों के समान गिरने लगे। तब बहुत से दैत्यों के उक्त प्रकार से मारे जाने और रणभूमि पर गिरने पर दैत्यों की सेना भयभीत होकर विमुख हो गई और देवता प्रसन्न होकर हथियार उठा, उठाकर शब्द करने और बाजे बजाने लगे। इस प्रकार से उन दोनों का बड़ा दारुण युद्ध हुआ और परस्पर देवता और दैत्यों के मारे जाने से रुधिर और मांस की कीचड़ हो गई। कभी देवता प्रबल होकर दैत्यों को मारते थे और कभी दानव उग्ररूप होकर देवताओं के साथ अनीति करते थे और दोनों ओर योद्धा लोग भेरी आदि बाजों को बजाते और सिंहनाद करते थे। इसके पीछे महिष नाम दानव हाथमें पर्वत लिये हुए दैत्यों की सेना से आवृत वहां आया। उसको देखकर देवता भयभीत होकर भागने लगे परंतु उस दैत्य ने उस पर्वत को देवताओं के ऊपर फेंक दिया, उससे दशसहस्र देवता दबकर पृथ्वी पर गिर पड़े ७१।८४

तदनन्तर वह महिष दैत्य दानवों को साथ लिये हुए रणभूमि में इस प्रकार से देवताओं को डराने लगा जैसे सिंह किसी छोटे से मृग को भयभीत करे ८५ उसको देखकर इन्द्रादिक सब देवता अपने २ शस्त्र और अपनी २ ध्वजा छोड़ छोड़कर भागे ८६ तब वह दैत्य शीघ्रता से शिवजी के रथ के समीप चला गया और उसने रथ का कूबर पकड़ लिया ८७ उस समय पृथ्वी और आकाश में से भय का शब्द होने लगा और सब महाऋषि मोहित हो गये ८८ और दैत्य अपनी विजय जानकर प्रसन्नता से गर्जने लगे ८९ तब शिवजी ने उस दैत्य पर प्रहार किया और उसकी मृत्यु स्कन्द को याद किया । उस समय महिष शिवजी के रथ को पकड़े हुए देवताओं को डराने और दैत्यों को प्रसन्न करने के लिये गर्जने लगा । उसी समय वहां स्कन्दजी लाल वस्त्र, लाल माला, लाल भूषण और सुनहरी कवच धारण किये हुए सूर्य के तुल्य रथ में बैठकर आ पहुँचे । उनका मुखारविन्द क्रोध की ज्वाला से सूर्य के सदृश प्रकाशमान था, उनको देखते ही दैत्यों की सब सेना अकस्मात् भागी ९०।९४ तब स्कन्दजी ने अपनी प्रज्वलित शक्ति लेकर महिष दैत्य के मारी उससे उस दैत्य का शिर धड़ से अलग हो गया और वह दैत्य निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा ९५।९६ उसके शिर के गिरने से सोलह योजन तक राह न रही परंतु अब उत्तर कुरुदेशी मनुष्य उस मार्ग से सुखपूर्वक जा सकते हैं । स्कन्दजी की शक्ति उन दैत्यों को मारकर फिर स्कन्दजी के हाथ में ही आजाती थी । इस प्रकार से स्कन्दजी ने सहस्रों दैत्यों को क्षणभर में मारकर गिरा दिया । बहुत से दानवों को महादेवजी ने बाणों से मार डाला और शेष बचे हुए दैत्यों को स्कन्दजी के भयानक पार्षदों ने मार मारकर खा लिया और प्रसन्नता से उनका रुधिर पी पीकर रणभूमि पर दैत्यों का नाम न रहने दिया । इस प्रकार से स्कन्दजी ने क्षणभर में सब दैत्यों को ऐसे नाश कर दिया जैसे सूर्य अन्धकार को, अग्नि वृक्षों को और वायु बादलों को विनष्ट कर देता है ९७।२ उस समय स्कन्दजी शिवजी को दण्डवत् करके, देवताओं से पूजित होकर, इस प्रकार से शोभित दीखते थे मानो सूर्य अपनी किरणों को फैलाये हुए प्रकाश कर रहा है ३ उसी काल में इन्द्र ने शिवजी के समीप स्कन्दजी से कहा कि हे महाबाहो ! आज तेरे हाथ से यह महिषासुर दैत्य जो ब्रह्माजी से वरदान पाकर देवताओं को तृणवत् समझता था और जिससे हम सब महादुःखी थे मारा गया और इसके तुल्य पराक्रमी और

भी सौ दैत्य तेरे हाथ से बध हुए और तेरे पार्षदों ने सैकड़ों दैत्यों के समूहों को भक्षण कर लिया, तू भी उमापतिजी के समान रण में अजेय है। यह तेरा पहिला कर्म संसार में विख्यात होगा ४। ८ और तीनों लोकों में तेरी कीर्ति बनी रहेगी और सब देवता तेरी आज्ञा में रहेंगे ६ इन्द्र इस प्रकार से कहकर शिवजी से आज्ञा लेकर देवताओं सहित अपने स्थान को लौट गया १० और शिवजी भद्रवट को चले गये और चलते समय सब देवताओं से कह गये कि स्कन्द को मेरे सदृश ही समझना ११ महाऋषियों ने उस समय स्कन्दजी की पूजा की, इसप्रकार से उस अग्निनन्दन स्कन्द ने एक ही दिन में त्रिलोकी को जीत लिया १२ जो ब्राह्मण स्कन्दजी की इस कथा को पाठ करेगा वह इस लोक में आनन्दपूर्वक रहकर अन्त में स्कन्दजी के लोक में जायगा ॥ ११३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३० ॥

दोसौ इकतीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से स्कन्दजी के नाम कहना और स्कन्दजी की स्तुति करना।

उक्त कथा को सुनकर युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से पूछा कि हे भगवन्, महाराज! मैं महात्मा स्कन्दजी के नाम सुना चाहता हूँ जो तीनों लोकों में विख्यात हैं १ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! महातपस्वी मार्कण्डेयजी उक्त प्रश्न को सुनकर स्कन्दजी के नामों को इस प्रकार से कहने लगे २ ॥

आग्नेयश्चैव स्कन्दश्च दीप्तिकीर्तिरनामयः। मयूरकेतुर्धर्मात्मा भूनेशो महिषार्दनः ॥ ३ ॥
कामजित् कामदः कान्तः सत्यवाग्भुवनेश्वरः। शिशुः शीघ्रः शुचिश्चण्डो दीप्तिवर्णः शुभाननः॥ ४ ॥
अमोघस्त्वनघो रौद्रः प्रियश्चन्द्राननस्तथा। दीप्तशक्तिः प्रशान्तात्मा भद्रकृत् कूटमोहनः ॥५॥
षष्ठीप्रियश्च धर्मात्मा पवित्रो मातृवत्सलः। कन्याभर्त्ता विभक्तश्च स्वाहेयो रेवतीसुतः ॥६॥
प्रभुर्नेता विशाखश्च नैगमेयः सुदुश्चरः। सुव्रतो ललितश्चैव बालक्रीडनकप्रियः ॥ ७ ॥
खचारी ब्रह्मचारी च शूरः शरवणोद्भवः। विश्वामित्रप्रियश्चैव देवसेनाप्रियस्तथा ॥ ८ ॥
वासुदेवप्रियश्चैव प्रियः प्रियकृदेव तु। नामान्येतानि दिव्यानि कार्त्तिकेयस्य यः पठेत् ॥
स्वर्गं कीर्तिं धनं चैव स लभेन्नात्र संशयः ॥ ९ ॥

इन नामों को पाठ करनेवाले मनुष्य को स्वर्ग, कीर्ति और धन अवश्य मिलता है। इसके उपरान्त मार्कण्डेयजी बोले कि अब मैं अपनी शक्ति के अनुसार स्कन्दजी की स्तुति करता हूँ तुम भी उसको सुनो। हे स्कन्द! तुम ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों में साधु और ब्रह्मज अर्थात् वेदोक्त गर्भाधान आदि कर्मों से उत्पन्न होनेवाले हो, तुम्हीं ब्रह्मवित् अर्थात् वेदार्थ के जाननेवाले हो, तुम्हीं ब्रह्मेश अर्थात् ब्रह्मकर्म में निष्ठावान् हो, तुम्हीं ब्रह्मवतांवरिष्ठ अर्थात् ज्ञानियोंमें

श्रेष्ठ हो, तुम्हीं ब्रह्मप्रिय अर्थात् कर्म-उपासना में तत्पर हो, तुम्हीं ब्राह्मणव्रती अर्थात् ब्राह्मणों का व्रत रखनेवाले हो, तुम्हीं ब्रह्मज्ञ अर्थात् शुद्ध ब्रह्म के जाननेवाले हो, तुम्हीं ब्राह्मणों के नेता अर्थात् ब्रह्मपद प्राप्त करानेवाले हो १० । ११ तुम्हीं स्वाहा हो, तुम्हीं स्वधा हो, तुम्हीं पवित्र हो, मन्त्रों से तुम्हारी ही स्तुति की जाती है, छह जिह्वा भी तुम्हारे ही हैं, तुम्हीं वर्ष हो, तुम्हीं छह ऋतु हो, दोनों पक्ष और सब दिशाएँ भी तुम्हाराही स्वरूप हैं १२ तुम्हारे नेत्र और मुख कमलके सदृश हैं, तुम्हारे ही सहस्रभुजा और सहस्रमुख हैं, लोकपाल भी तुम्हीं हो, तुम्हीं परम हवि हो, तुम्हीं देवता और असुरों को उत्पन्न करनेवाले हो १३ तुम्हीं सेना के अधिपति हो, तुम्हीं प्रचण्ड हो, तुम्हीं प्रभु हो, तुम्हीं विभु हो, तुम्हीं शत्रु को जीतनेवाले हो, तुम्हारे सहस्रों स्वरूप हैं, पृथ्वी भी तुम्हीं हो और सहस्र तुष्टि और सहस्रों रूप धारण करके संसारी पदार्थों को भोगनेवाले भी तुम्हीं हो १४ तुम्हारे सहस्रों स्वरूप हैं और सहस्र शिर हैं, सहस्रों ही तुम्हारे पैर हैं, तुम्हीं शक्तिधारी और गङ्गा, स्वाहा, पृथ्वी और कृत्तिका के पुत्र हो १५ तुम्हीं षडानन हो और अपनी इच्छा के अनुसार नानाप्रकारके रूप धारण कर सकते हो, तुम्हीं कुक्कुट के साथ क्रीड़ा करते हो, तुम्हीं दक्ष हो, तुम्हीं चन्द्रमा हो, तुम्हीं मरुत् हो तुम्हीं धर्म हो, हिमालय और इन्द्र भी तुम्हीं हो १६ तुम सनातन पुरुषों के भी सनातन हो, प्रभुओं के प्रभु हो, उग्र धनुर्द्धारी हो, मोक्षकर्त्ता, दैत्यों के प्राणहर्त्ता और देवताओं के श्रेष्ठ शत्रुओं को जीतनेवाले हो १७ संसार में जिसको सूक्ष्मरूपी और परमतप कहते हैं वह भी तुम्हीं हो, तुम्हीं सगुण और निर्गुण ब्रह्म के जाननेवाले हो, तुम्हीं सगुण और निर्गुण ब्रह्म हो, चारों पदार्थों के देनेवाले भी तुम्हीं हो, यह जगत् तुम्हारे ही तेज से व्याप्त हो रहा है और तुम्हीं लोकों के नाथ हो । हे प्रभो ! हे द्वादशनेत्र ! हे द्वादशभुजा रखनेवाले ! मैंने तुम्हारी यह स्तुति अपनी शक्ति के अनुसार की है, इससे आगे आपके भेद को जानने की मेरी शक्ति नहीं है १८ । १९ जो मनुष्य स्कन्दजी के जन्म की कथा को सावधानी से पढ़ेगा अथवा ब्राह्मणों को सुनावेगा या आप ब्राह्मणों से सुनेगा वह इस लोक में धन, आयु, यश, शत्रु से जय, पुष्टि, तुष्टि और पुत्रादिकों को पावेगा और अन्त समय में स्कन्दजी के लोक को जावेगा ॥ २० । २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

दोसौ बत्तीसवाँ अध्याय।

पति के वश करने का प्रश्न और पति की सेवा का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जहां पर महात्मा पाण्डव और वेदपाठी ब्राह्मण बैठे हुए उक्त संवाद सुन रहे थे वहां से सत्यभामा और द्रौपदी उठकर एकान्त में चली गईं और बहुत दिनों के पीछे मिलने के कारण से एक दूसरी से मधुरवाणी से बोलती और हँसती हुई बड़ी प्रसन्नता से पास पास बैठ गईं १। २ और मधुवंशी और कौरवों की कथा परस्पर कहने लगीं। इसके पीछे श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा ने जो सत्राजित की बेटी थी द्रौपदी से कहा कि तुम इन पाण्डवों के पास किस प्रकार से रहती हो ३। ४ ये पाण्डव जवान और बड़े वीर और दृढ़ शरीर हैं, मूर्ति इनकी कामदेव की-सी है परन्तु ये तुम्हारे वश में रहकर कोप नहीं करते हैं किन्तु तेरे चन्द्रमा से मुख को चकोर की भाँति निरन्तर देखा करते हैं इससे मैं जानना चाहती हूँ कि तुम कौन से व्रत, तप, स्नान, मन्त्र, औषधि, विद्या, जप, होम अथवा अञ्जन का साधन करती हो जिससे ये वीर तेरे वशीभूत हो रहे हैं ५। ७ मैं भी श्रीकृष्णजी को अपने वश में करने के लिये उस सौभाग्य के बढ़ानेवाले यत्न को करना चाहती हूँ ८ इस प्रकार से कहकर यशस्विनी सत्यभामा चुप हो रही तब बड़भागिनी पतिव्रता द्रौपदी बोली ९ कि हे सत्यभामे! कृष्ण की प्यारी पटरानी होकर तुमको ऐसी नीच स्त्रियों की सी बातें पूछना उचित नहीं है, ये बातें खोटी स्त्रियां ही करती हैं उसका उत्तर मैं तुमको क्या दूं १०। ११ जिस समय पति को यह जान पड़ा कि यह स्त्री हमारे लिये मन्त्र से उपाय कर रही है उसी समय से वह उस स्त्री से अप्रसन्न हो जाता है और उसके प्रसन्न न रहने से स्त्री के चित्त को उसकी ओर से ऐसा भय रहता है जैसा घर में रहनेवाले सर्प से डर बना रहता है १२ भय के होने पर चित्त स्वस्थ नहीं रहता और चित्त के स्वस्थ न रहने से सुख नहीं हो सकता है इससे तुम निश्चय जानो कि पति को स्त्री मन्त्र आदि उपायों से कभी अपने वश में नहीं कर सकती है १३ बहुतसी स्त्रियां बड़ी पापिनी और दुष्टा होती हैं, वे पति को मार डालने की इच्छा से विष दे देती हैं और ऐसी औषधियां और चूर्ण आदि देती हैं जिनको खाने अथवा लगानें से ही पति के शरीर में रोग उत्पन्न होजाते हैं और उन रोगों से वे मर जाते हैं। बहुधा पापिनी स्त्रियों ने अपने पति को अन्धे, बहिरे, नपुंसक, जड़,

कोढ़ी, पतित, रोगी और जलोदर के रोगी कर डाले हैं १५ । १६ और उनको अनेक दूषण लगाये हैं परन्तु स्त्री को अपने पति का अप्रिय करना किसी अवस्था में उचित नहीं है १७ अब जो बर्त्ताव मैं पाण्डवों के साथ में करती हूं उसको सुनो । हे सत्यभामे ! मैं काम, क्रोध और अहंकार को छोड़कर सावधानी से पाण्डवों की सेवा करती हूं और अपनी सवति के होने से बुरा न मानकर सेवा में तत्पर रहती हूं १८ । १६ और ईर्ष्या और अभिमान को त्यागकर चित्त लगाकर उनकी सेवा करने के लिये तैयार रहती हूं और वही काम करती हूं जिसको वे चाहते हैं २० खोटा वचन कभी नहीं बोलती हूं, न खोटी दृष्टि से देखती हूं और खोटी संगति में भी नहीं बैठती हूं किंतु इन महारथी और उग्र पराक्रमी पाण्डवों की सेवा सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा के तुल्य जानकर करती हूं और सदा अपने हृदय के भाव से मर्यादापूर्वक वचन बोलती हूं २१ । २२ और सिवाय इनके किसी दूसरे देवता, गन्धर्व अथवा किसी युवा, धनवान्, सुन्दर और अलंकृत मनुष्य को पुरुष नहीं जानती हूं २३ और पाण्डवों को स्नान, भोजन और शयन कराकर सेवकों को भोजन कराती हूं और सबके पीछे मैं भोजन करती हूं और सोती हूं २४ जब मेरे पति किसी ग्राम से अथवा कहीं बाहर से घर में आते हैं तब मैं उनको जल और आसन देकर प्रसन्न करती हूं २५ अपने घर को शुद्ध रखती हूं और कूड़ा करकट नहीं रहने देती हूं और पति के लिये सुन्दर स्वादिष्ठ भोजन समय पर बनाकर भोजन कराती हूं २६ अपने मुख से तिरस्कार के योग्य वचन कभी नहीं निकालती हूं, दुष्ट स्त्रियों के पास नहीं बैठती हूं और आलस्य छोड़कर नित्य पति की आज्ञा के अनुसार चलती हूं २७ और विना हँसी के कभी नहीं हँसती हूं, घर के द्वार पर भी सदैव खड़ी नहीं रहती हूं और न घर के आरामों में देर तक रहती हूं २८ बहुत हँसना और अति क्रोध करना मैंने सदैव से छोड़ रक्खा है, केवल एक पति की सेवा करने ही में निरत रहती हूं २६ और मैं कभी किसी अवस्था में यह नहीं चाहती हूं कि पति से अलग होकर रहूं और जब कभी पति कुटुम्ब के किसी काम के लिये परदेश भी जाता है ३० तब मैं गन्ध लगाना और फूलों के हार पहिरना छोड़कर व्रत किया करती हूं और जिस पदार्थ को पति खाता या पीता नहीं है उसको मैं भी छोड़ देती हूं ३१ और अपने को अलंकृत करके और पति के प्रियहित में अपना चित्त लगाकर

जितेन्द्रिय होकर वही काम करती हूं जिसके करने की पति की आज्ञा होती है ३२ पहले समय में मेरी सासु ने मुझसे बलि, श्राद्ध पर्वों में स्थालीपाक, मान्यों का मान करना और कुटुम्ब-धर्मों को करने की शिक्षा की थी, मैं उन सब धर्मों को आलस्य छोड़कर करती हूं ३३। ३४ और अपनी आत्मा से नीति और नियममें आश्रित रहकर इन सत्पुरुष, सत्यशील, सत्यधर्म के पालन करनेवाले और सर्प के सदृश क्रोध करनेवाले पतियों की सेवा करती हूं। स्त्री का आश्रय केवल पति है, उसकी सेवा करना सनातन धर्म है और उसी धर्मपर मैं बर्त्ताव करती हूं ३५। ३६ स्त्री का देवता पति ही है, वही स्त्री की गति है, ऐसे पति की कौन अभागी स्त्री अवज्ञा करेगी। हे सत्यभामे! मैं तो अपने पतियों की किसी बात का भी उल्लंघन नहीं करती हूं, न उनसे पहले भोजन करती हूं और न उनसे अधिक अपना शृंगार करती हूं, ३७ और अपनी सासु कुन्ती की कभी निन्दा नहीं करती हूं, इस कारण से मेरे पति मेरे वशीभूत रहते हैं और जो मेरी सत्यवादिनी आर्या कुन्ती सासु है उसकी भी सेवा मैं स्वयं सब प्रकारसे करतीहूं, उसकी कभी निन्दा नहीं करती हूं और उसको विना भोजन कराये भोजन नहीं करती हूं, बिना पिलाये कुछ आप नहीं पीती हूं, और उसको विना पहिराये वस्त्र भी नहीं पहिरती हूं ३८। ४१ आगे राजा युधिष्ठिर के यहां आठ सहस्र ब्राह्मण सुनहरे पात्रों में नित्य भोजन किया करते थे ४२ और अट्ठासी सहस्र स्नातक और गृहस्थी ब्राह्मणों का और भी पालन होता था जिन प्रत्येक की सेवा के लिये तीस तीस दासी नियत कर दी गई थीं और दशसहस्र ऊर्ध्वरेता संन्यासी भी रहते थे जिनको सुनहरे पात्रों से भोजन परोसा जाता था। मैं उन सबको वैश्वदैविक कर्म हो जाने के पीछे नित्य सबसे पहिले अन्न, वस्त्र, पान और जो कुछ और देने के योग्य पदार्थ होता था देती थी ४३। ४५ इसके सिवाय महात्मा युधिष्ठिर के यहां एकलक्ष दासी परमसुन्दरी, नाचने गाने में निपुण, उत्तम उत्तम वस्त्र और मणिजटित कम्बुकेयूर आदि गहने पहिरे हुए रहतीथीं, मैं अकेली उन सबके नाम, स्वरूप, भोजन, वस्त्र और करने न करने के कृत्यों को जाने रहती थी ४६। ४८ वे दासियां दिन रात हाथ में पात्र लिये हुए अतिथियों को भोजन कराया करती थीं ४९ और जो एकलाख घोड़े और एकलाख हाथी युधिष्ठिर के पीछे चला करते थे उनकी संख्या और खर्च आदि का हिसाब भी मैं ही रखती थी और गोपाल

से लेकर जितने महलों के सेवक थे उन सबके किये और विना किये कामों को जाने रहती थी ५०।५२ और राज्य का जो कुछ लाभ और व्यय होता था उसको भी मैं ही समझती थी ५३ इसप्रकार से पाण्डवों ने सब कुटुम्ब का भार मेरेही ऊपर रख दिया था परन्तु मैं सब सुखों को त्यागकर उस बोझ को दिनरात लिये रहती थी ५४।५५ और अपने पतियों के समुद्ररूपी भण्डारको केवल मैं ही जानती थी ५६ बहुधा मैं भूखी और प्यासी रहती थी और पाण्डवों की सेवा करती थी इसप्रकार से मुझको दिन और रात एकसे ही थे । सो हे सत्यभामे ! पति के मन को पहचानकर काम करना और खोटी स्त्रियों के आचरणों को न करना, न उनके करने की इच्छा करना, इनके सिवाय मुझको और वशीकरण नहीं आता है । पति को वशीभूत करने का यही बड़ा यत्न है ५७।५८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! सत्यभामा द्रौपदी की उक्त धर्मयुक्त बातों को सुनकर सत्कारपूर्वक द्रौपदी से कहने लगी ६० कि द्रौपदि ! मैं तुमसे प्रार्थना करके कहती हूं कि तुम मेरा अपराध क्षमा करो और मेरे प्रश्न को सखियों का हास्य समझो, मैंने केवल हँसी से ही यह बात पूछी थी ॥ ६१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

दोसौ तेंतीसवाँ अध्याय।

द्रौपदी का सत्यभामा से पति को वश में करने का उपाय बतलाना ।

द्रौपदी बोली हे सखि ! अब मैं पति के चित्त को अपने हाथ में ले लेने का उपाय कहती हूं, जो तू भी उस उपाय को करेगी तो निःसंदेह कृष्ण को अपनी सौतों से छीन लेगी अर्थात् कृष्ण तेरेही वश में रहेंगे १ हे सखि ! सब देवताओं में पति के समान दूसरा देवता नहीं है, उसको प्रसन्न करने तथा उसकी कृपा से सब मनोकामनाएँ स्त्री की पूरी होती हैं और जो वह पति अप्रसन्न रहे तो निस्संदेह स्त्री का नाश हो जाता है २ संतान का होना, नानाप्रकार के भोग भोगना, अच्छी सेज पर सोना, अच्छे अच्छे आसनों पर बैठना, उत्तम उत्तम वस्त्र पहिरना, सुन्दर सुन्दर माला गले में डाले रहना, सुगन्धित गन्ध अंग में लगाना और संसार में कीर्त्ति और अन्त समय पर स्वर्गलोक मिलना केवल पति की सेवा ही से स्त्री को प्राप्त हो सकते हैं ३ हे सखि ! सुख से सुख मिलना बहुत कठिन है; हां, दुःख से सुख प्राप्त हो सकता है इससे तू प्रेमपूर्वक अपनी देह को क्लेश देकर श्रीकृष्णजी की सेवा कर ४ और

स्वादिष्ठ भोजन, सुन्दर माला, सुगन्धित गन्ध और चतुराई के और और कामों से उनको प्रसन्न कर जिससे उनको यह निश्चय हो जाय कि यह मेरे सिवाय दूसरे को नहीं चाहती है। ऐसा निश्चय करने पर वे सिवाय तेरे, तेरी दूसरी सौति के पास न जायँगे ५ जिससमय तुझको श्रीकृष्ण के घर में आने का शब्द सुनाई दे उसी समय तू उठकर खड़ी हो जाया कर और जब वे भीतर घर के आजायँ तब शीघ्रता से उनको पाद्य और आसन देकर उनकी पूजा किया कर ६ हे सत्यभामे! जब कभी वे दासी को किसी काम की आज्ञा दें तब भी तू उठकर आपही उस काम को कर दिया कर, ऐसा करने से श्रीकृष्ण को यह प्रतीत हो जायगा कि यह मुझको मन से चाहती है ७ और श्रीकृष्ण तेरे पास बैठकर जो कुछ बात कहा करें उसको प्रकट कभी न किया कर, चाहे वह प्रकट ही करने के योग्य हो और जो तेरी कोई सौत श्रीकृष्ण से तेरी कोई भलाई अथवा बुराई कह दे तो तू उसपर कुछ ध्यान न किया कर ८ और जो मनुष्य तेरे पति के मित्र अथवा प्रिय और हितकारी हों उनको किसी न किसी उपायसे भोजन करादियाकर और जो तेरे पतिके शत्रु अथवा अहितकारी हों उनसे कभी बोला भी मत करे ९ और मद प्रमाद को छोड़कर चित्त को रोककर, मौन रहाकर और अकेले में और पुरुष की तो क्या गणना है प्रद्युम्न और साम्ब आदि कुमारों के साथभी कभी मत बैठाकर १० और क्रूर, बहुत भोजन करनेवाली, चोर, दुष्ट और चपल स्त्रियों की संगति को त्यागकर ऐसी स्त्रियों के पास बैठाकर जो कुलीन, पापरहित और सती होवें ११ हे सत्यभामे! यह व्रत यश का दाता, सौभाग्य का प्रकाशकर्त्ता, स्वर्ग का देनेवाला और शत्रुओं का नाश करनेवाला है। तू भी बहुमूल्यवाले आभरण और गन्ध आदि धारण करके इस व्रत को करके अपने पति की सेवा कर॥ १२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३३ ॥

दोसौ चौंतीसवाँ अध्याय।

द्रौपदी और सत्यभामा का परस्पर संवाद व श्रीकृष्णजी का द्वारका-गमन।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! श्रीकृष्णजी पाण्डवों सहित मार्कण्डेयजी की कही हुई कथाओं को सुनकर, सब महात्मा ब्राह्मण और पाण्डवों से बातचीत करके, बिदा होकर जब रथपर सवार होने लगे तब उन्होंने सत्यभामा को बुलाया १। २ उस समय सत्यभामा द्रौपदी से प्रीतिपूर्वक

मिलकर अपने हृदय के प्रियभाव से द्रौपदी से बोली ३ कि हे द्रौपदि ! तू चिंता मतकर और न अपने चित्त में किसी प्रकार का दुःख मान । थोड़े ही दिनों में तेरे देवतातुल्य पति पृथ्वी को अपने पराक्रम से जीत लेंगे और तू उनके साथ आनन्द से सुन्दर भोग भोगेगी ४ हे श्यामलोचने ! तेरे समान शीलवती और उत्तम लक्षणों से युक्त स्त्रियां बहुत दिनों तक क्लेश नहीं पाती हैं ५ मैंने सुना है कि तू अपने पतियों के साथ इस पृथ्वी को निष्कण्टक होकर भोगेगी ६ हे द्रौपदि ! तू देखेगी कि युधिष्ठिर दुर्योधन को मारकर और वैर का बदला लेकर इस पृथ्वी को फिर प्राप्त करेगा ७ और जो कौरवकुल की स्त्रियां घमण्ड से तुझे वनवासिनी जानकर हँसी थीं उनको तू शीघ्र ही नष्टसंकल्प देखेगी ८ हे द्रौपदि ! जैसा जिसने तेरा अप्रिय किया है वे सब मरकर यमलोक को जायँगे और प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन आदि तेरे पांचों पुत्र कुशल हैं, सबने अस्त्रविद्या अच्छी तरह सीख ली है और सब अभिमन्युके समान प्रसन्न हैं और सुभद्रा उन पर तेरे ही समान प्रीति करती है९।१२और तेरे स्नेह में तेरे बालकों को देख देखकर ज्वरहीन रहती है और उनके दुःख से दुःखी और सुखसे सुखी अपने को समझती है १३ और प्रद्युम्न की माता रुक्मिणी भी उनको अपने मन से चाहती है और श्रीकृष्णजी भी उनपर भानु आदि पुत्रों से विशेष हित रखते हैं १४ और मेरे श्वसुर सदा उनके भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध रखते हैं और बलदेवजी से आदि लेकर सब वृष्णि और अन्धकवंशी क्षत्री उनपर प्रीति रखते हैं १५ हे भामिनि ! सबका स्नेह तेरे पुत्रों से प्रद्युम्न के समान है । इस प्रकार से सत्यभामा द्रौपदी से प्रीतिपूर्वक बातचीत कर, उसकी परिक्रमा कर, श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ रथपर सवार हो गई और श्रीकृष्णचन्द्रजी पाण्डवों से मिलकर और द्रौपदी को धैर्य देकर, शीघ्रगामी रथ के घोड़ों को हांककर अपने नगर की ओर चल दिये ॥ १६ । १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥

दोसौ पैंतीसवाँ अध्याय ।

ब्राह्मण द्वारा पाण्डवों का वृत्तान्त सुन धृतराष्ट्र का दुःखी होना ।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि महाराज ! पाण्डव जब वन की गरमी, सरदी और वायु को सहते हुए काम्यकवन में उस सरोवर के किनारे आकर टिके तब उन्होंने क्या किया १ वैशंपा-

यनजी बोले कि पाण्डव मार्कण्डेय आदि सब महात्माओं को सरोवर के तटसे बिदा करके जब उस रमणीक वन,पर्वत और नदियों के तट के स्थानों में विहार करने लगे उस समय में उनके पास अनेक पुण्यात्मा और वेदपाठी ऋषि आये। पाण्डवों ने उन सबका यथायोग्य आदर सत्कार किया २। ३ उनमें से एक ब्राह्मण जो कथा कहने में बड़ा निपुण था, देशाटन करता हुआ कौरवों के पास पहुँचा और राजा धृतराष्ट्र से भी मिला। राजा ने उसका सत्कार करके उसे आसन पर बैठाया। उस समय उस ब्राह्मण ने राजा धृतराष्ट्र से पाण्डव और द्रौपदी के वन में दुःखी रहने और गरमी, सरदी और वायु से पीड़ित होनेका सब वृत्तान्त कहा ४। ६ उसको सुनकर राजा दयालु होकर दुःखी हुआ और यह सुनकर कि वे वीर उस वन में दुःखरूपी नदी में भी पड़े हुए प्रसन्न रहते हैं शोक में मग्न होकर श्वास लेने लगा परंतु फिर अपने चित्त को किसी प्रकार से स्वस्थ करके और उन वीरों के दुःख का कारण अपने को समझकर कहने लगा ७। ८ कि न जाने मेरा पवित्र और सत्यवादी ज्येष्ठपुत्र युधिष्ठिर जो सदैव श्रेष्ठ शय्या पर सोता था अब पृथ्वीपर कैसे सोता होगा ? देखो, जब वह यहां था तब उसको मागध और सूतों के समूह जगाया करते थे, अब वह पिछली रात्रि में पक्षियों के शब्द को सुनकर जगता होगा ९। १० और भीमसेन वन की धूप और वायु से पीड़ित होकर द्रौपदी के सामने भूमि पर कैसे सोता होगा ११ मैं जानता हूं कि सुकुमार अर्जुन युधिष्ठिर का आज्ञानुसारी है, वह दुःखी होकर क्रोध के कारण से रात्रि को सोता नहीं होगा १२ और अपने भाइयों सहित द्रौपदी को दुःखी देखकर उसे रोष के कारण कभी निद्रा न आती होगी किन्तु सर्प के समान श्वास लेता होगा १३ नकुल और सहदेव भी जो सुख के योग्य हैं और अश्विनीकुमारों के सदृश स्वरूपवान् हैं, शान्त न होंगे परंतु धर्म और सत्यपर स्थित होने के कारण चुपके होंगे १४ और वायुपुत्र भीमसेन भी जो वायु के तुल्य पराक्रमी है, अपने बड़े भाई के कारण धर्मरूपी पाश में बँधकर ऊपर को श्वास ले लेकर क्रोध को सहता होगा १५ मैं जानता हूं कि वह रण में सबसे अधिक योद्धा है परंतु अब धर्म के कारण अपने बल को रोककर मेरे पुत्रों को मारने की इच्छा से समय आनेकी बाट देखता होगा १६ और युधिष्ठिर के छल से जीते जाने पर दुःशासन ने जो जो कुवाक्य कहे थे वह उसके चित्त में अवश्य खटकते होंगे और

उसके शरीर को इस प्रकार से जला रहे होंगे जैसे सूखे हुए वन को अग्नि भस्म करता है १७ हां, युधिष्ठिर की इच्छा पाप करने की कभी नहीं रहती है और अर्जुन भी तदनुगामी है परंतु वनवास के कारण भीमसेन का क्रोध तो अवश्य इस प्रकार होगा जैसे वायु से अग्नि १८ उससे वह दग्धचित्त होकर अवश्य अपने हाथ से हाथ मलता होगा और मेरे पुत्र और पौत्रों को उस क्रोध की अग्नि में भस्म करने की इच्छा से बड़े बड़े और गरम गरम श्वास लेता होगा १९ जिस समय अर्जुन गाण्डीव धनुष् को लेकर काल-तुल्य भीमसेन और वज्ररूपी बाण मारनेवाले नकुल और सहदेव सहित रण में खड़ा होगा उस समय शत्रु की सेना कभी शेष नहीं रह सकती है २० ये दुर्योधन शकुनि और दुःशासन आदि बड़े मन्दबुद्धि हैं क्योंकि ये मधु अर्थात् लोभ को तो चाहते हैं परंतु मधु का प्रपात अर्थात् लाभ करने की घात को नहीं जानते हैं। देखो, इन्होंने जूआ खेलकर राज्य लिया २१ मनुष्य को शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य मिलता है इसमें अशुभ कर्म करके मोक्ष मिलना कठिन है २२ देखो, मनुष्य खेत जोतता और बोता है और वर्षा भी ऋतु के अनुसार होती है परंतु खेती में कम अथवा अधिक फल का उत्पन्न होना दैव के आधीन है २३ शकुनि ने तो अशुभ कर्म यह किया कि पाण्डवों की लक्ष्मी छल से जीती और पाण्डवों ने शुभ किया कि उन सबको मारा नहीं परंतु सब खोटे कर्मों का मूल मैं हूं जिसके कारण अब कौरवों का अन्त समय आगया २४ वायु बन्द हो जाती है परंतु फिर भी चलती है, गर्भवती स्त्री के सन्तान अवश्य उत्पन्न होती है और रात्रि के पीछे दिन और दिन के पीछे रात्रि भी अवश्य होती है। इससे कौरवों का होनहार नाश भी अवश्य होगा २५ मनुष्य के हाथ में यह बात नहीं है कि धन को इकट्ठा कर ले अथवा धन उत्पन्न करने का कोई साधन करे या धन किसी को दे नहीं क्योंकि जो धन के उत्पन्न करने के समय में कोई अनर्थ हो जाय तो धन कहां से और क्योंकर इकट्ठा हो सकता है २६ परंतु यह धन बांटा नहीं जा सकता है और गिर जाने अथवा व्यर्थ जाने के भय से इसकी रक्षा भी की जाती है विना रक्षा किये यह अनेक मार्गों से निकल जाता है। ये सब बातें हैं परंतु फिर भी भावी होकर ही रहती है २७ अर्जुन के पराक्रम को देखो कि वह स्वर्गलोक को गया और वहां से चार प्रकार के अस्त्र सीखकर फिर लौट आया २८ सिवाय अर्जुन के और कौन ऐसा होगा जो सदेह स्वर्ग में

जाकर फिर यहां लौटकर आने की इच्छा करे। वह वीर स्वर्ग में बहुत से कुरुवंशियों को देखकर यहां काल से मरे हुए मनुष्यों को मारने आया है २९ वह अर्जुन बड़ा धनुर्धारी है, जैसा वह है वैसा ही उसका धनुष् और उसीप्रकार के उसके पास अस्त्र हैं। इन तीनों के तेज को संसार में कौन सह सकता है ३० यह सब वृत्तान्त शकुनि ने सुनकर दुर्योधन और कर्ण से जा कहा, दुर्योधन उस वृत्तान्त को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

दोसौ छत्तीसवाँ अध्याय ।

दुर्योधनसे कर्ण, शकुनि का पाण्डवों को अपना वैभव दिखा, उनको दुःखित करने के लिये कहना ।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! शकुनि ने पूर्व वृत्तान्त को सुनकर दुर्योधन और कर्ण से इस प्रकार आकर कहा कि हे दुर्योधन! तुमने अपने पराक्रम से पाण्डवों को वनवास दिया है, अब तुम इस पृथ्वी को इसप्रकार से भोगो जैसे स्वर्ग में इन्द्र राज्य भोगता है १।२ हे नरनायक! चारों दिशाओं के राजा तुम्हारे वशीभूत हैं और तुमको कर देते हैं ३ और जो ऐश्वर्य प्रथम पाण्डवों के पास था वह तुमने अपने भाइयों सहित सब प्राप्त कर लिया ४ और जो कुछ वैभव इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर के पास था वह सब अब तुम्हारे पास है ५ और तुम्हारे शत्रु शोकग्रस्त हैं, उनकी सब लक्ष्मी तुमने बुद्धिबल से ले ली है और वह अब तुम्हारेपास प्रकाश कररही है और इसीप्रकारसे सब राजालोगभी तुम्हारी आज्ञा में चलते हैं और सदैव यह कहा करते हैं कि हमारे लिये क्या आज्ञा है और सम्पूर्ण पृथ्वी वन, पर्वत, ग्राम और नगरों सहित तेरी आज्ञा का पालन करती है और हम लोग भी तुम्हारे ही वश में हैं। अब ब्राह्मणों से वन्दित और राजाओं से पूजित होकर तुम्हारी शोभा ऐसी दीखती है जैसे स्वर्ग में देवताओं के बीच में सूर्य प्रकाश करता है ६।१० और कौरवों से इसप्रकार से युक्त हो जैसे रुद्रों से यमराज, मरुद्गणों से इन्द्र और नक्षत्रों से चन्द्रमा युक्त है ११ एक पाण्डवों ने ही तुम्हारी आज्ञा नहीं मानी, सो हमने सुना है कि हे महाराज! वे लक्ष्मीहीन और दीनस्वरूप द्वैतवन में एक सरोवर के किनारे वनवासी ब्राह्मणों सहित रहते हैं १२।१३ इससे हमारी इच्छा है, तुम यहां से बड़े वैभव के साथ उन राज्य और लक्ष्मीहीन पाण्डवों को देखने के लिये चलो और उनको अपने सूर्यतुल्य तेज से तपाओ और उनको ऐसा वैभव दिखाओ जिससे वे तुमको कुटुम्बसहित

देखकर यह जानें कि तुम राजा ययाति की सदृश हो १४।१६ मित्र और शत्रु का भाव यही होता है कि मित्र लक्ष्मी को देखकर प्रसन्न होता है और शत्रु को दारुण दुःख होता है १७ संसार में इससे बढ़कर दूसरा सुख नहीं है जो सुखी मनुष्य अपने दुःखी शत्रुओं को इसप्रकार से देखे जैसे पर्वत के ऊपर का मनुष्य पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्य को देखे १८ और जैसा सुख शत्रु को दुःखी देखकर होता है वैसा पुत्र होने अथवा धन मिलने या राज्य पाने से नहीं होता है १६ भला, उस मनुष्य को क्या सुख न होगा जो इस समय में अर्जुन को ऐसी दीन अवस्था में देखे कि वह वृक्षों की छाल और मृगों के चर्म के वस्त्र पहिरे हुए है २० और तुम अपनी स्त्री को भी सुन्दर वस्त्र आदि से अलंकृत करके ले चलो, जिससे मृगों के चर्म धारण करनेवाली द्रौपदी उसे देखकर दुःखी होवे और संसार में जीने की इच्छा न करे २१ और अपने को निर्धन देखकर अपने जीवन को धिक्कार दे। सभा में उसको जैसा दुःख हुआ था उससे अधिक दुःख अब उसे तुम्हारी अलंकृत स्त्री को देखने से होगा २२ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! कर्ण और शकुनि उक्त प्रकार दुर्योधन से कहकर चुप हो रहे॥ २३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३६॥

दोसौ सैंतीसवां अध्याय।

दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन का आपस में सलाह कर द्वैतवन में जाने का बहाना सोचना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! दुर्योधन कर्ण और शकुनि के उक्त वचनों को सुनकर प्रसन्न हुआ परन्तु दीन होकर यह कहने लगा १ कि हे कर्ण! जो बातें इस समय तुमने कही हैं वे सब मेरे भी चित्त में हैं परंतु पाण्डवों के पास जाने को मुझे आज्ञा न मिलेगी २ क्योंकि राजा धृतराष्ट्र विलाप किया करते हैं और तप के कारण से पाण्डवों को हमसे अधिक जानते हैं ३ और जो राजा को हमारे वहां जाने का प्रयोजन विदित हो जावेगा तो वह हमको कभी जाने की आज्ञा न देगा ४ क्योंकि वह यह जानेगा कि द्वैतवन में हम सब पाण्डवों को मारने की इच्छा से जाना चाहते हैं ५ इसके सिवाय तुमको याद होगा कि जब जूआ हुआ था तब विदुरजी ने हमसे और तुमसे क्या क्या बातें कही थीं, उन बातों और उस विलाप को विचार कर मैं जाने और न जाने का निश्चय नहीं कर सकता हूँ ६। ७ परन्तु जो मैं किसी यत्न से वन में भीमसेन, अर्जुन और द्रौपदी को दीन अवस्था में देख सकूंगा तो बहुत प्रसन्न होऊँगा ८ और मुझ-

को ऐसा हर्ष इस पृथ्वी के पाने का नहीं हुआ था जैसे वृक्षों की छाल और मृगों के चर्म के वस्त्र पहिरे हुए पाण्डवों को देखकर होगा ९ और जो सुख मुझको उसी अवस्था में द्रौपदी को देखकर होगा उससे बढ़कर मैं दूसरा सुख नहीं समझता हूँ १० जो युधिष्ठिर और भीमसेन मुझको वैभव के साथ देख लें तो मेरा जीना सफल होजाय ११ परंतु मैं क्या करूं, मुझको कोई उपाय ऐसा नहीं दीखता है जिसके बहाने से मैं वहां जाऊं और राजा मुझे वहां जाने की आज्ञा दे दें १२ सो तुम तीनों अर्थात् कर्ण, शकुनि और दुःशासन सलाह करके कोई ऐसा उपाय विचारो जिसके बहाने से हम सब वहां जा सकें १३ और मैं भी प्रातःकाल जाने और न जानेका निश्चय करने की इच्छासे राजा के पास जाऊंगा १४ सो जब मैं वहां बैठ जाऊंगा और भीष्मजी भी वहां आजायँ तब जो कुछ उपाय तुमने विचारा हो उसको कहना १५ उस समय भीष्मजी और पिता के उत्तर को सुनकर उनको समझाऊँगा और द्वैतवन के चलने का निश्चय करूंगा १६ यह सुनकर कर्ण, शकुनि और दुःशासन तीनों अपने-अपने स्थानों को चले गये। जब रात्रि व्यतीत होगई तब कर्ण दुर्योधन के पास आया और हँसकर बोला कि हमने यह उपाय विचारा है कि द्वैतवन में जो घोष अर्थात् घोसी रहते हैं वे सदैव तुम्हारे आने की बाट देखा करते हैं और घोषयात्रा करना अर्थात् घोसियों के ग्रामों में जाना भी राजा को अवश्य उचित है इससे यह बहाना करना कि हम घोषयात्रा को जाते हैं बहुत अच्छा है। इसको सुनकर राजा तुमको अवश्य आज्ञा दे देंगे। यह सुन शकुनि हँसकर बोला कि वाह वाह बहुत अच्छा उपाय सोचा, इस बहाने से राजा अवश्य आज्ञा दे देंगे और जो आज्ञा नहीं देंगे तो उनको समझाकर आज्ञा ले लेंगे। इसके उपरान्त वे सब बहुत प्रसन्न होकर हँसे और आपस में हाथ मिलाकर राजा धृतराष्ट्र के पास जाने को उठचले॥ १७। २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३७॥

दोसौ अड़तीसवाँ अध्याय।

दुर्योधन का राजा धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर बड़े वैभव और समाज के साथ द्वैतवन को जाना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! उक्तप्रकार से सलाह करके वे सब राजा धृतराष्ट्र के समीप गये और सबने राजा से पूछा कि महाराज! आप आनन्द से हैं? राजा ने उनको यथायोग्य उत्तर देकर उनसे कुशल पूछी, तब वे

राजा के समीप बैठगये। उसी समय दुर्योधन आदि के नियम किये हुए समङ्ग नामी बल्लव ने राजा से जाकर निवेदन किया कि महाराज! गौयें समीप आ पहुँची हैं, उनको देखने को किसी को आज्ञा दीजिये । हे मनुजाधिप! कर्ण और दुःशासन ने राजा से कहा कि महाराज! इन गौओं के देखने और संख्या करने और बछड़ों पर चिह्न लगाने के लिये दुर्योधन जाना चाहता है और उसकी इच्छा उस रमणीक देश में अहेर खेलने की भी है इससे आप उसको वहां जाने की आज्ञा दीजिये १ । ५ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि हे तात, कर्ण! अहेर खेलना और गौओं की गिनती करना तो अच्छा है परंतु बल्लवों का कुछ विश्वास नहीं है, मैंने सुना है कि वे नरोत्तम पाण्डव भी उसी स्थान के समीप हैं। हम लोगों ने उन महारथियों को कपट से जीता है और हमारे कारण से वे वहां दुःखी रहते हैं और तपस्या करते हैं। उनमें युधिष्ठिर तो क्रोधी नहीं है परंतु भीमसेन बड़ा अमर्षी है और द्रौपदी अग्नि के सदृश है और तुम सब गर्व और मोह के वश हो रहे हो। कदाचित् तुम लोग उनका कुछ अपराध करो और वे तुमको अपने तेज से भस्म कर दें अथवा शस्त्रों से मार डालें तो आश्चर्य नहीं है और जो यह माना जाय कि तुमलोग बहुत से हो, तुम्हीं उनको मार डालोगे तो प्रथम तो यह बात असम्भव है और दूसरे कदाचित् ऐसा हो भी जाय तो बड़ी ही नीचता हम सबों की गिनी जायगी। देखो, अर्जुन इन्द्रलोक में बसकर सब अस्त्र सीखकर फिर वनको लौटकर आगया है। पहिले उसने विना अस्त्र पाये सब पृथ्वी को जीत लिया था, अब अस्त्र पाकर वह अवश्य तुम सबको मार डालेगा और जो तुम सबलोग मेरी बात का विश्वास करके वहां सावधानी से रहोगे तो भी तुम्हारा रहना दुःख और भय से युक्त होगा और इन सबके सिवाय ऐसा भी हो तो क्या आश्चर्य है कि कोई सेना का मनुष्य वहां जाकर पाण्डवों का कुछ अपकार करे और उससे दोष खड़ा होजाय। इससे मैं दुर्योधन का स्वयं वहां जाना अच्छा नहीं समझता हूँ, किसी दूसरे मनुष्य को गौओं की संख्या आदि करने को भेज दो ९।१७ यह सुनकर शकुनि बोला कि महाराज! राजा युधिष्ठिर बड़ा धर्मात्मा है, वह अपनी सभा में की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्ष तक वनवास के सिवाय कुछ न करेगा और न हम पर क्रोध करेगा और उसके सब छोटे भाई भी धर्मज्ञ और उसकी आज्ञा में चलनेवाले हैं १८। १९ इसके सियाय हम लोग

तो अहेर करने और गौओं की संख्या करने और बछड़ों को अङ्कित करने जाते हैं, हमको पाण्डवोंसे क्या प्रयोजनहै। इससे आप किसी बातकी चिन्ता न कीजिये; हम उनके स्थान के निकट भी न जायँगे और न कोई नीच पुरुषों का सा काम करेंगे २०।२१ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! शकुनि के उक्त वचनों को सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने बेचैनहोकर दुर्योधन को जाने की आज्ञा देदी २२ और उनसे आज्ञा पाकर आठसहस्र रथ, तीस सहस्र हाथी, नौ सहस्र घोड़े और बहुत सहस्र पैदल मनुष्यों को सजवाया और कर्ण, दुःशासन, शकुनि, सब छोटे भाई, सहस्रों स्त्री, अनेक पुरवासी, स्त्री, पुरुष, छकड़े, दूकानें, डेरे, व्यापारी, वन्दीजन और सहस्रों अहेर खेलने में निपुण मनुष्यों को साथ लेकर नगर के बाहर निकला और दो कोसपर जाकर वास अर्थात् मुकाम किया। उसके चलते समय ऐसा शब्द हुआ जैसा वर्षाकाल में प्रचण्ड वायु के चलने का शब्द होता है। उसने वहां उस रात्रि को बसकर दूसरे दिन सब समाज अर्थात् लश्करसहित द्वैतवन को गमन अर्थात् कूच किया॥ २३। २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३८॥

दोसौ उन्तालीसवाँ अध्याय।

दुर्योधन का घोषग्रामों में जा, गौओं की संख्या कर वहां से चलकर द्वैतवन में पहुँचना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! इसके उपरान्त राजा दुर्योधन कुछ काल में कूच मुकाम करता हुआ घोषग्रामों के निकट जा पहुँचा। वहां मनुष्योंने पहिले से जाने हुए उत्तम जल और छाया के स्थानों में दुर्योधन आदि सब भाई और कर्ण के पृथक् पृथक् डेरे खड़े किये। उन लोगोंने वहां वास किया और वहां रहकर दुर्योधन ने गौओं की संख्या की और पहिले वर्ष के अङ्कित बछड़ों को गिना, उपरान्त नये बछड़ों को अङ्कित करके और पुरानों में चलने वाले और न चलनेवालों को लिखकर जो बछड़े तीन वर्षके थे और जिन गौओं के नीचे छोटे छोटे बछड़े थे उन सबों को भी काग़ज़ पर चढ़ाकर, गौओं के सब काम से निवृत्त होकर, वहां विहार करने लगा और सब पुरवासी और सेना के लोग अपनी अपनी रुचि के अनुसार उस वन में देवताओं के तुल्य क्रीड़ा करने लगे १। ७ इसके उपरान्त गाने, बजाने और नाचने में निपुण गोपलोग और सुन्दर सुन्दर शृङ्गार किये हुए अनेक कन्याएँ दुर्योधन के समीप आईं, उसने उन सबको यथायोग्य अन्न पान और धन देकर बिदा किया ८। ६ इसके पीछे

दुर्योधन ने उस वन में अहेर खेली और अनेक व्याघ्र, भैंसा, रीछ, मृग, वाराह और हाथियों को बाणों से मारकर अनेक प्रकार के मृगों को पकड़वाया १०।११ इस प्रकार से वह गोरस आदि का भोजन करता और उन वन, उपवनों को जो मतवाले भौंरों और मोरों से सुशोभित हो रहा था देखता हुआ क्रम-पूर्वक द्वैतवन के सरोवर पर जा पहुँचा १२।१३ जो मतवाले भौंरों की गुंजार, नीलकण्ठ की पुकार और सप्तच्छद, बकुल, पुन्नाग नामी वृक्षों से परम शोभित हो रहा था १४ उस समय हे मनुजाधिप ! दुर्योधन का वैभव इन्द्र के समान था और दैव इच्छा से उसी समय राजा युधिष्ठिर द्रौपदी-सहित उसी सरोवर के तट पर वन के फलों से साद्यस्कनामी यज्ञ करने को दीक्षित हुआ था १५।१७ वहां पहुँचकर राजा दुर्योधन ने सहस्रों मनुष्यों को सरोवर के किनारे क्रीड़ा करने के स्थानों को बनाने की आज्ञा दी। वे सब उस आज्ञा को सुनकर 'तथास्तु' कहकर चल दिये और उस सरोवर के निकट द्वैतवन में आ पहुँचे १८।१९ उस समय वहां गन्धर्वों का राजा भी कुबेरभवन से अप्सराओं के गण और देवकुमारों-सहित क्रीड़ा करने को आया था। उसके नौकरों ने दुर्योधन के सैनिकों को द्वैतवन के द्वार पर रोक दिया तब वे उस सरोवर को गन्धर्वों से युक्त देखकर लौट गये और दुर्योधन से सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसको सुनकर दुर्योधन ने सेना के दुर्मद योद्धाओं को आज्ञा दी कि तुम जाकर गन्धर्वों को सरोवर के तट से हटा दो २०।२४ उसकी आज्ञा को सुनकर योद्धालोग सरोवर के तट पर गन्धर्वों के समीप गये और बोले २५ कि राजा धृतराष्ट्र का पुत्र राजा दुर्योधन यहां विहार करने को आता है, तुमलोग यहां से हट जाओ २६ यह सुनकर गन्धर्वों ने हँसकर कहा कि तुम्हारा राजा मन्दबुद्धि है जो हम स्वर्गवासियों को इस प्रकार से आज्ञा देता है जैसे कोई बनिये को आज्ञा दे २७।२८ और तुम भी मन्दबुद्धि और मरनहार दिखाई देते हो जो अज्ञान से उसके कहने से हमलोगों से ऐसा कहते हो २९ जाओ जल्दी दुर्योधन के पास चले जाओ, नहीं तो अभी सब मारे जाओगे ३० यह सुनकर वे योद्धालोग दुर्योधन के पास लौटकर चले आये ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभारते वनपर्वणि नवत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥

दोसौ चालीसवाँ अध्याय।

दुर्योधन का गन्धर्वों से युद्ध और रण-क्षेत्र से विरथ हो कर्ण का भागना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय ! उन मनुष्योंने दुर्योधन के पास

जाकर जो कुछ गन्धर्वों ने कहा था, वह सब कह सुनाया। दुर्योधन ने उसको सुनकर बड़े क्रोध से सेना के मनुष्यों को आज्ञा दी कि ये गन्धर्व अधर्मी और मेरा अप्रिय करनेवाले हैं। जाओ जो इन्द्र भी देवताओं-सहित क्रीड़ा करता हो तो उनको दण्ड दो १।३ यह सुनकर धृतराष्ट्र के सब पुत्र और सब योद्धा लोग युद्ध के लिये सन्नद्ध होगये और चारों दिशाओं को अपनी गर्जना से पूर्ण करते हुए उस वन के द्वार पर पहुँचे और गन्धर्वों को मारकर उस वन में आगे बढ़ चले ४।५ थोड़ी दूर जाने पर गन्धर्वों की दूसरी समाज ने उनको रोका परंतु उन्होंने उनकी बात की कुछ कान न की और ठट्ठे में उस बातको उड़ाते हुए आगे बढ़ चले। जब किसी उपाय से वे लोग दुर्योधन सहित न ठहरे तब गन्धर्वों ने जाकर अपने राजा चित्रसेन से कहा। उसने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि इन नीचों को अभी जाकर दण्ड दो। यह सुनकर गन्धर्वों की सेना शस्त्र लिये हुए तुरन्त धृतराष्ट्र के पुत्रोंके सम्मुख आ पहुँची। उनको शीघ्रता से आते हुए देखकर सब कौरवी सेना दुर्योधन के देखते हुए भाग चली। उनको विमुख देखकर कर्ण विमुख नहीं हुआ, किन्तु वहीं खड़े होकर उसने क्षुरप्र, विशिख, भल्ल और वत्सदन्त आदि लोहे के बाणों की वर्षा करके उस गन्धर्वों की बड़ी सेना को रोक दिया और अपने बाण चलाने की शीघ्रता से सैकड़ों गन्धर्वों के शिर काटकाटकर पृथ्वी पर गिरा दिये ६।१४ और एक क्षणभर में सब सेना को हटादिया। इसके पीछे मारे जानेपर भी और सहस्रों गन्धर्व उसके सम्मुख आये और उनसे क्षणभर में वह पृथ्वी फिर पूर्ण हो गई। उस समय राजा दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन, विकर्ण आदि धृतराष्ट्र के अन्य पुत्र भी रथों को धड़धड़ाते हुए वहां आगये और कर्ण के रथ को आगे करके गन्धर्वों से युद्ध करने लगे और गन्धर्व भी उनसे भिड़ गये। उस समय कौरवों ने अपने बाणों से गन्धर्वों को ढक दिया १५।२० और थोड़ी देर तुमुल शब्द और रोमहर्षण युद्ध होने के पीछे गन्धर्व ढीले पड़ गये। उनको पीड़ित देखकर कौरव बड़ा शब्द करने लगे और उनका राजा चित्रसेन उनको भयभीत देखकर कौरवों का वध करने के लिये आसन से उठ खड़ा हुआ और चित्रमार्ग से मायास्त्र का प्रयोग करके युद्ध करने लगा २१।२२ उससे सब कौरव मोहित हो गये और उन प्रत्येक को दश दश गन्धर्वों ने घेर लिया। उस समय सब कौरव और उनकी सेना के लोग अपना अपना जी बचाकर भाग गये परंतु हे राजा जनमेजय! सूर्यपुत्र कर्ण पहाड़ के तुल्य

अचल खड़ा रहा २४। २६ और दुर्योधन और शकुनि भी उसके साथ रह गये। इन तीनों ने अत्यन्त घायल होने पर भी गन्धर्वों से बड़ा युद्ध किया २७ इसके उपरान्त कर्ण को मारने की इच्छा से सहस्रों गन्धर्व कर्ण के सम्मुख गये और उन्होंने खड्ग, पट्टिश, शूल और गदा आदि शस्त्रों से उसको चारों ओर से ढक दिया २८। २९ और उसके रथ को चारों ओर से घेरकर उसके सारथी और रथ के घोड़ों को मार डाला। रथ के सब अङ्गों को उखाड़ उखाड़ कर तिल के समान चूर्ण कर डाला तब कर्ण ढाल तलवार लेकर रथ से कूद पड़ा और विकर्ण के रथ पर बैठकर रण से भाग गया॥ ३०। ३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२४०॥

दोसौ इकतालीसवाँ अध्याय।

कौरवों का गन्धर्वों के बन्धन में आना व सैनिकों का पाण्डवों की शरण जाना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! महारथी कर्ण के भागने पर कौरवों की सब सेना दुर्योधन के देखते हुए भाग गई और दुर्योधन के सब भाई भी विमुख हो गये परंतु दुर्योधन रण से नहीं भागा और उसने धनुष् चढ़ाकर गन्धर्वों की सेना पर बाणों की झड़ी लगा दी और गन्धर्वों ने उस बाणवर्षा को कुछ न समझकर दुर्योधन को मारनेकी इच्छा से उसके रथ को चारों ओर से घेर लिया १। ४ और बाणों से उसके रथ के घोड़े और सारथी को मारकर ध्वजा आदि सब रथ के अङ्गों को काट काटकर तिल के समान टुकड़े कर डाला ५ इसके पीछे चित्रसेन ने दुर्योधन को जो विरथ होकर पृथ्वी पर पड़ा था, जीता हुआ पकड़ लिया और अन्य गन्धर्व, दुःशासन, विविंशति, चित्रबिन्द, अनुबिंद और सब स्त्रियों को पकड़कर ले गये ६। ८ उस समय सेना के भागे हुए मनुष्य और छकड़े हांकनेवाले, दुकानदार, रथ हांकनेवाले और दुर्योधन के वृद्धमन्त्री दुःखी होकर चिल्लाते पुकारते हुए पाण्डवों की शरण गये और उनसे बोले कि हे पाण्डवो! गन्धर्वलोग दुर्योधन, दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख और दुर्जय आदि तुम्हारे भाइयों और सब स्त्रियों को पकड़ कर लिये जाते हैं। हम सब तुम्हारी शरण हैं, जल्दी उठो और उनको गन्धर्वों से छुटाओ ९। १३ यह सुनकर भीमसेन ने उन दुःखी और युधिष्ठिर से, भिक्षा मांगनेवाले बूढ़े मंत्रियों से कहा कि जो बात हमको घोड़े और हाथियों सहित तैयार होकर यत्नपूर्वक करनी थी वह गन्धर्वों ने कर डाली १४। १५ जुआ

खेलनेवालों ने अन्यथा कार्य करने के लिये दुष्टमन्त्र करके जो काम अन्यथा किया था वह काम आज हो गया और हमने जो यह सुना था कि असमर्थ पुरुष के शत्रु को मारनेवाला दूसरा होता है वह भी आज गन्धर्वों ने सत्य करके दिखा दिया । हमारे प्रारब्ध से हमारा हित चाहनेवाला कोई दूसरा पुरुष है जिसने हमारे शिर से यह बोझा बैठे बैठे उतार दिया १६ । १८ देखो, हम तो सरदी, गरमी और वायु को वर्षों से सहने के कारण से कृश हो गये हैं और दुःखी हैं तथा वह दुष्ट दुर्योधन ऐसे समय में हम लोगों को अपना वैभव दिखाना चाहता था, उस दुरात्मा के जो जो अधर्मी साथी होंगे उनका अवश्य नाश होगा १६ । २० सो हे मन्त्रियो ! जिस किसीने तुमसे यह कहा है कि कुन्ती के पुत्र दयावान् हैं, वे रक्षा करेंगे, उसने अधर्म किया २१ यह सुनकर युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि भाई ! यह समय परुष वचन बोलने का नहीं है ॥ २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥

दोसौ बयालीसवाँ अध्याय ।

गन्धर्वों से दुर्योधन को छुटाने के लिये भाइयों के प्रति युधिष्ठिर का आदेश ।

युधिष्ठिर बोले हे तात, वृकोदर, भीमसेन ! तुमको इन भयभीत और दुःखी होकर शरण आये हुए कौरवों से ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि जाति में अनेक भेद, अनेक कलह और अनेक वैर आपस में पड़ जाते हैं परंतु कुल का धर्म किसी का नष्ट नहीं होता है १ । २ जब कोई बाहर का मनुष्य अपने किसी कुल के मनुष्य को तिरस्कार करता है तब सन्त लोग वैर होने पर भी अपने कुल के मनुष्य का तिरस्कृत होना नहीं देख सकते हैं ३ यह गन्धर्व बड़ा दुर्बुद्धि है जिसने हम सबको बहुत दिनों से यहां बसा हुआ जानने पर भी हमारा अनादर करके यह अप्रिय किया है । हे भीमसेन ! दुर्योधन के पकड़े जाने और कुल की स्त्रियों के दूसरे पुरुषों के वश में प्राप्त होने से हमारे कुल की बड़ी निन्दा होगी और हमारा कुल नष्ट गिना जायगा । इससे हे वीर, पाण्डवो ! शीघ्र उठकर तैयार होजाओ और अपने कुल की मर्याद और शरणागतों की रक्षा करो ४ । ६ और तुम चारों भाई मिलकर दुर्योधन को छुटा लाओ । ये रथ धृतराष्ट्र के पुत्रों के खड़े हुए हैं, सुनहरी ध्वजा और शस्त्र आदि सब युद्ध की सामग्री भी इनमें रक्खी हुई है, तुम इन्हीं रथों को इन्द्रसेन आदि कुशल सारथियों से जुतवाकर

लेजाओ और इनपर चढ़कर दुर्योधन को छुटाने के लिये गन्धर्वों से युद्ध करने का यत्न करो ७। १० हे भीमसेन ! ऐसा कौनसा क्षत्री होगा जो इस प्रकार से शरण आये हुए क्षत्री की रक्षा अपनी शक्ति से न करे। तुमको उस क्षत्रियधर्म के करने में क्या संदिग्धता है? ११ यह तो समझो कि जो शत्रु भी हाथ जोड़कर अपनी शरण में आवे तो उसकी भी रक्षा करना उचित है और रक्षा भी वही कर सकता है जो श्रेष्ठ होता है १२ हे पाण्डवो ! वरदान मिलना, राज्य पाना, पुत्र का जन्म होना और शत्रु को क्लेश से छुटाना चारों एक ही से हैं अर्थात् चारों से एकसा ही सुख होता है १३ इससे बढ़कर और क्या सुख होगा जो दुर्योधन विपत्ति में पड़कर तुम्हारे बाहुबल का आसरा लेकर अपना जीवन चाहता है १४ मैं भी चलता परंतु अब यज्ञ प्रारम्भ हो चुका है इससे यज्ञभंग होने के कारण से मेरा विचार जाने का नहीं है १५ सो हे भीमसेन ! अब तुम जल्दी से जाकर साम उपाय करके दुर्योधन को छुटा लाओ १६ और जो वह गन्धर्वराज साम उपाय से न माने तो थोड़ा पराक्रम करके छुटाना और इसपर भी वह न छोड़े तो दण्ड आदि जिस उपाय से हो सके, कौरवों को छुटाकर ले आओ १७। १८ अब मैं तुमसे कुछ विशेष नहीं कह सकता हूँ क्योंकि यज्ञ का प्रारम्भ हो गया है। मेरा इतना ही कहना बहुत है १९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उक्त बातों को सुनकर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि "जो गन्धर्व साम वचनों से धृतराष्ट्र के पुत्रों को न छोड़ेंगे तो उनके रुधिर को पृथ्वी पीवेगी।" तब कौरवों का चित्त उस सत्यवादी अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुनकर स्थिर हुआ ॥ २० । २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥

दोसौ तेंतालीसवाँ अध्याय।

भीमादिक पाण्डवों का युधिष्ठिर की आज्ञा से गन्धर्वों से युद्ध करने जाना और युद्ध का प्रारम्भ होना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिर की बातों को सुनकर नरनायक भीमसेन आदि चारों भाई प्रसन्नमुख होकर खड़े होगये और सबने जाम्बूनद के सुवर्ण के अभेद्य कवच और अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र धारण कर लिये और शीघ्रगामी घोड़े और चतुर सारथियों से युक्त रथों पर बैठकर शीघ्र चल दिये। उस समय वे चारों भाई रथों में बैठे हुए ऐसे दीखते थे मानो

जलती हुई अग्नि है। उनको देखकर कौरवी सेना गर्जने लगी १। ५ और सब महारथी गन्धर्व निर्भय होकर युद्ध करने के लिये खड़े होगये और पाण्डवों को लोकपालों के समान रण के लिये उद्यत देखकर अपनी सेना की व्यूह-रचना करने लगे। इसके पीछे पाण्डव वहां पहुँचकर युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार उन गन्धर्वों से मृदुता के साथ युद्ध करने लगे ६। १० परंतु उन आकाशचारियों ने उस मृदु युद्ध को कुछ न गिना तब अर्जुनने उनसे सान्त्वनापूर्वक पुकारकर कहा कि हमारे भाई राजा दुर्योधन को छोड़ दो। यह सुनकर गन्धर्वों ने हँसकर कहा कि हमको आज्ञा देनेवाला केवल एक इन्द्र है, उसीकी आज्ञा हम लोग मानते हैं और उसीके बल पर हमलोग निर्भय घूमते हैं सो उस सुरेश्वर ने जैसी आज्ञा हमको दी है वैसा ही हमने किया है। तुम्हारे कहने से हम अन्यथा नहीं कर सकते हैं ११। १५ यह सुनकर अर्जुन बोला कि गन्धर्वों के राजा को ऐसा निन्दित कर्म करना योग्य न था कि वह दूसरे की स्त्रियों को हर ले गया और मनुष्यों से उसने समागम किया, इससे या तो तुमलोग युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को और उनकी स्त्रियों को छोड़ दो, नहीं तो मुझे अपने पराक्रम से तुमसे इनको छुटाना पड़ेगा १६। १६ हे भरतवंशिन्! यह कहकर कुन्तीनन्दन सव्यसाची अर्जुन आकाशचारी गन्धर्वों पर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा और गन्धर्व भी बाणों की वर्षा करते हुए पाण्डवों के सम्मुख हो गये और उन दोनों में बड़ा तुमुल युद्ध होने लगा॥ २०। २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४३॥

दोसौ चवालीसवाँ अध्याय।

पाण्डवों का गन्धर्वों से युद्ध होना और गन्धर्वों के राजा चित्रसेन
का अर्जुन के पास आना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! थोड़ी देर पीछे दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता सहस्रों गन्धर्व जो सुवर्ण की माला पहिरे हुए थे दिव्य बाणों की वर्षा करते हुए चले आये और चारों पाण्डवों से भिड़ गये। उस समय एक आश्चर्य सा जान पड़ा। फिर गन्धर्वों ने चारों पाण्डवों को चारों ओर से घेर लिया और चाहा कि जैसे कर्ण और दुर्योधन के रथों के टुकड़े टुकड़े कर डाला था उसी प्रकार से पाण्डवों के रथोंको भी भङ्ग कर दें परंतु पाण्डवों ने उस समय ऐसी बाणवर्षा

की कि गन्धर्व इनके रथ के निकट न आ सके, किन्तु आकाश में चारों ओर फैले हुए स्थित रहे ४ । ५ उस समय बलवान् अर्जुन ने क्रोधित होकर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया और आग्नेय अस्त्र के प्रहार से लाखों गन्धर्वों को मार कर यमलोक में पहुँचा दिया ६ । ७ हे राजन् ! समर में महाबलशाली भीमसेन ने तीक्ष्णबाणों से सैकड़ों गन्धर्व मारकर पृथ्वी पर डाल दिये ८ और नकुल तथा सहदेव ने भी अति कर्कश युद्ध करके गन्धर्वों को रोका और सैकड़ों को मार डाला ९ इस प्रकार दिव्यास्त्रों से मारे जाने पर गन्धर्व धृतराष्ट्र के पुत्रों को लेकर आकाशमार्ग से जाने लगे १० तब अर्जुन ने उनके ऊपर पिंजरे के समान बाणों का ऐसा जाल रच दिया कि वे गन्धर्व ऊपर को आगे न जा सके और क्रोधित होकर अर्जुन पर गदा, शक्ति और खड्ग आदि अस्त्रों की वर्षा करने लगे ११ । १२ तब परमास्त्रवेत्ता अर्जुन उन शस्त्रों को अपने बाणों से काट कर गन्धर्वों के अङ्गों को भल्लों से छेदने लगा १३ और उनसे गन्धर्वों के शिर, भुजा और पैर कट कटकर इस प्रकार से गिरने लगे मानो पत्थर वर्षते हैं । उनको देखकर दूसरे मनुष्य भय करने लगे १४ तब महात्मा पाण्डव से पीड्यमान होते हुए गन्धर्वों ने आकाश से बाणों की वर्षा करके अर्जुन को ढक दिया १५ फिर तेजस्वी शत्रुसंतापदायी पाण्डुवंशीय अर्जुन ने अपने बाणों से उस बाणवर्षा को रोककर स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल, सौर, आग्नेय और सौम्य अस्त्रों का प्रयोग किया १६ । १७ और उनसे वे गन्धर्व इस प्रकार से पीड़ित हुए जैसे इन्द्र से युद्ध करने में दैत्य पीड़ा पाते हैं १८ जब ऊपर को भागते थे तब बाणजाल के कारण से नहीं जाने पाते थे और जब नीचे कों आते थे तब अर्जुन के मारे हुए भल्लों से व्याकुल होजाते थे । इस प्रकार से उनको भयभीत देखकर चित्रसेन भारी गदा लेकर अर्जुनकी ओर दौड़ा १९ । २० अर्जुन ने उसे गदा लिये आते हुए देखकर उसकी गदा के बाणों से सात टुकड़े कर डाले २१ यह देखकर चित्रसेन अर्जुन से गन्धर्वविद्या से अर्थात् अदर्शनशक्ति से युद्ध करने लगा २२ अर्जुन ने उसके चलाये हुए अस्त्रों को अपने दिव्य अस्त्रों से रोंक दिया तब वह बलवान् गन्धर्व अस्त्रों के रुक जाने के कारण से माया करके अन्तर्धान हो गया २३ । २४ और अर्जुन पर प्रहार करने लगा । तब अर्जुन ने दिव्य अस्त्रों से आकाशचारी बाणों को अभिमन्त्रित किया और उनसे उसको मारने लगा और फिर शब्दबेधी बाण

मारकर अर्जुन ने उसकी अन्तर्धान शक्ति को दूर कर दिया २५। २६ तब चित्रसेन अर्जुन के अस्त्रों से ताड़ित होकर अर्जुन के सम्मुख चला आया और बोला कि मैं तुम्हारा सखा चित्रसेननामी गन्धर्व हूं। यह सुनकर और युद्ध में अपने दुर्बल सखा को देखकर, अर्जुन ने अपने प्रयोग किये हुए अस्त्रों का संहार कर लिया और अर्जुन को अस्त्र लौटाते हुए देखकर और सब भीमादिक योद्धाओं ने भी अपने अपने रथ के घोड़ों को रोककर बाण चलाना बन्द कर दिया और चित्रसेन, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव अपने अपने रथों पर बैठे हुए एक दूसरे की कुशल पूछने लगे॥ २७। ३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४४॥

दोसौ पैंतालीसवाँ अध्याय।

चित्रसेन-पाण्डव-संवाद तथा दुर्योधन का छूटना व लज्जित होना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे अर्जुन ने हँसकर चित्रसेन से सब गन्धर्वों की सेना के बीच में पूछा कि हे वीर! तैंने दुर्योधन को स्त्रियों सहित क्यों पकड़ा है और इसके छोड़ने में तेरा क्या निश्चय है १। २ यह सुनकर चित्रसेन बोला कि दुरात्मा दुर्योधन और कर्ण घर से यह सलाह करके चले थे कि हमलोग उन अनाथ के तुल्य और वनवासी पाण्डवों को चल कर अपना वैभव दिखावें और तुम्हारी और यशस्विनी द्रौपदी की हँसी करें। इन्द्र को इन लोगों का यह अभिप्राय विदित हो गया इससे उसने मुझको आज्ञा दी कि तू अभी जाकर दुर्योधन को मन्त्री सहित बांधकर ले आ और युद्ध में अर्जुन की भाइयों सहित रक्षा कीजियो ३। ६ अर्जुन तेरा प्रिय सखा और शिष्य भी है। यह सुनकर हे पाण्डव! मैं शीघ्र यहां चला आया। अब इस दुरात्मा को इन्द्र की आज्ञा के अनुसार बांधकर स्वर्ग में ले जाऊंगा ७। ८ यह सुनकर अर्जुन बोला कि जो तुमको मेरा प्रिय करना है तो युधिष्ठिर के कहने के अनुसार दुर्योधन को छोड़ दो, यह हमारा भाई है ९ चित्रसेन बोला कि हे धनंजय! यह पापी जो कि सदैव मतवाला रहता है वह युधिष्ठिर और द्रौपदी का ठगनेवाला है अतः छोड़ने के योग्य नहीं है १० युधिष्ठिर को इसके आने का प्रयोजन विदित नहीं है इससे उसने इसके छुड़ाने की आज्ञा दी है। अब वहां चलकर उससे भी सब हाल कह दो फिर जैसा वह कहे वैसा कहना ११ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे वे सब युधिष्ठिर के

पास गये और युधिष्ठिर से सब वृत्तान्त कह सुनाया १२ उसको सुनकर युधिष्ठिर ने गन्धर्वों की प्रशंसा की और दुर्योधन को छोड़ने की आज्ञा दी १३ । १४ और गन्धर्वों को यह कहकर बिदा किया कि हे तात ! यह दुरात्मा दुर्योधन मन्त्री और भाइयों सहित प्रारब्ध से आप ऐसे समर्थों के हाथ से मारा नहीं गया और आपने मेरे ऊपर यह बड़ा उपकार किया कि इस दुरात्मा को छोड़ दिया, नहीं तो संसार में हमारे कुल का निरादर हो जाता १५ हम आपके दर्शन पाकर बहुत प्रसन्न हुए अब जो कुछ आपकी कामना हो उसे कहिये और उसको पाकर अपने स्थान को जाइये । यह सुनकर सब गन्धर्व प्रसन्न होकर चले गये और इन्द्र ने अमृत वर्षाकर कौरवों के हाथ से मरे हुए गन्धर्वों को जिला दिया १६ । १८ और पाण्डव उस कठिन कर्म अर्थात् अपने स्वजातीय मनुष्य और स्त्रियों को छुटाकर प्रसन्न हुए १९ और कौरवों की स्त्रियों और लड़कों से पूजित होकर ऐसे सुशोभित हो गये मानो यज्ञ में अग्नि स्थापित की गई है २० इसके पीछे युधिष्ठिर ने नम्रता से दुर्योधन और उसके भाइयों से कहा कि हे तात ! फिर ऐसा साहस कभी न करना, विना बिचारे हुए काम करनेवाले मनुष्य वृद्धि नहीं पाते हैं २१ । २२ अब तुम कुशलपूर्वक सब भाइयों सहित जहां इच्छा हो वहां जावो और वैर को छोड़ दो २३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! दुर्योधन युधिष्ठिर से आज्ञा पाकर रोगी के तुल्य गतेन्द्रिय, लज्जित और म्लानचित्त होकर युधिष्ठिर को प्रणाम करके अपने नगर की ओर चला गया और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर भाइयों सहित ब्राह्मणों से पूजित होकर इस प्रकार से तपस्वी ऋषियों से युक्त हुआ मानो देवताओं से युक्त इन्द्र विराजमान है और वहीं रहकर उस द्वैतवन में विहार करने लगा ॥ २४ । २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४५॥

दोसौ छियालीसवाँ अध्याय ।

दुर्योधन का युधिष्ठिर से बिदा होकर राह में ठहरना और वहां आकर कर्ण का मिलना ।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि महाराज ! मैं जानता हूँ कि वह मानी, दुरात्मा, घमंडी, अपनी बड़ाई आप करनेवाला, हर प्रकार से पाण्डवों का अपमान करनेवाला, पापी, अहंकारी और दुष्ट दुर्योधन शत्रुओं से पकड़े जाने और पाण्डवों के छुटाने पर लज्जा और शोक के कारण से बड़ी कठिनता से अपने नगर को गया होगा; कृपा करके

उसके हस्तिनापुर में जाने का हाल वर्णन कीजिये १। ४ वैशंपायनजी बोले बहुत श्रेष्ठ, सुनिये। राजा दुर्योधन युधिष्ठिर से बिदा होकर लज्जा से नीचे को मुख किये हुए नष्टबुद्धि होकर बड़े दुःख और पीड़ा से अपने पराभव की चिन्ता करता हुआ अपने नगर की ओर चल दिया और उसकी चतुरङ्गिणी सेना उसके पीछे-पीछे हो ली ५। ६ मार्ग में उसने एक स्थानपर जहाँ जल और घास का सुपास था यान अर्थात् सवारी को छोड़ दिया और अपनी इच्छा के अनुसार एक रमणीक भूमिभाग में उतर पड़ा ७ वहां उसने हाथी, घोड़ों और प्यादों को यथायोग्य स्थान पर ठहरवा दिया और आप एक पर्यंक पर जा बैठा। जब रात्रि थोड़ी रहगई तब उसके पास कर्ण आया और उसने उसे राहु से ग्रसित चन्द्रमा के तुल्य बैठा हुआ देखकर कहा कि हे गान्धारीनन्दन! हमारा बड़ा प्रारब्ध है जो तुम हम जीते हुए फिर आन मिले और तुमने कामरूपी गन्धर्वों को विजय कर लिया ८। १० और यह भी प्रारब्ध की बात है जो तुम्हारे महारथी और शत्रुओं को जीतनेवाले भाई भी विद्यमान हैं ११ मैं तुम्हारे देखते हुए गन्धर्वों से युद्ध करने गया था परंतु भागती हुई सेना को रोक न सका और आप भी बाणों से घायल होकर भाग गया परंतु मैं इस बात को बड़ी ही अद्भुत समझता हूँ कि तुम उस अमानुष युद्ध में से स्त्री, सेना और वाहनों सहित अक्षय और निर्विघ्न होकर चले आये १२। १४ जो काम आज तुमने और तुम्हारे भाइयों ने युद्ध में किया है उसका करनेवाला दूसरा मनुष्य संसार में नहीं है १५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर दुर्योधन गद्गद हो गया और कर्ण से विलख कर कहने लगा॥ १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४६॥

दोसौ सैंतालीसवाँ अध्याय।

दुर्योधन का कर्ण से अपने पकड़े जाने और पाण्डवों के युद्ध करने का वृत्तान्त कहना।

दुर्योधन बोला हे कर्ण! मैं तेरी बात की इस कारण से निन्दा नहीं करता हूं कि तू न जानने के कारण से यह समझ रहा है कि मैंने गन्धर्वों को विजय किया है १ परंतु इसका वृत्तान्त इस प्रकार से है कि मैं और मेरे भाई बहुत देर तक गन्धर्वों से युद्ध किया किये और दोनों ओर के योद्धा मारे गये परन्तु जब वे शूरवीर गन्धर्व आकाश में स्थित होकर माया से युद्ध करने लगे तब हमारा

उनका युद्ध तुल्य नहीं रहा और गन्धर्व मुझको भृत्य, अमात्य, पुत्र, स्त्री, सेना और वाहनों सहित पराजय करके बांध ले गये और आकाश में स्थित हो गये। हमको वहां बड़ा कष्ट रहा। इसी अवसर में हमारी सेना के कुछ मनुष्य और हमारे मन्त्री दुःखी होकर शरण देनेवाले पाण्डवों के समीप गये और उन्होंने उनसे विनयपूर्वक कहा कि गन्धर्वलोग राजा धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन को पुत्र, स्त्री और छोटे भाइयों सहित बांधकर आकाशमार्ग से लिये जाते हैं, तुमलोग जल्दी जाकर उनको छुटाओ जिससे कुरुकुल की स्त्रियों का परामर्श न होने पावे। यह सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाइयों को प्रसन्न करके हम सबको छुटाने की आज्ञा दी। उसकी आज्ञा से वे पुरुषोत्तम पाण्डव वहां चले आये २। ६ और समर्थ होने पर भी गन्धर्वों से याचना की कि इनको छोड़ दो परंतु गन्धर्वों ने हमको नहीं छोड़ा तब उन बलोन्मत्त भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने गन्धर्वों के ऊपर बाणों की वर्षा की १०। ११ तब हर्षित मनवाले गन्धर्वलोग रण छोड़कर हमलोगों को खींचकर आकाश में ले गये। वहां हमने आकाश को बाणों के जालों से ढका हुआ और अर्जुन को अस्त्रों का प्रयोग करता हुआ देखा १२। १३ उस समय गन्धर्वों का राजा चित्रसेन सब दिशाओं को अर्जुन के तीक्ष्णबाणों से घिरी हुई देखकर अर्जुन के समीप चला गया। वह अर्जुन का सखा था इससे उसने अर्जुन आदि पाण्डवों से और पाण्डवों ने उससे क्षेमकुशल पूछी। उपरान्त वे आपस में एक दूसरे से मिले और कवच उतारकर सब गन्धर्व पाण्डव वीरों के साथ जा मिले। उस समय अर्जुन ने चित्रसेन की पूजा की और चित्रसेन ने अर्जुन को पूजा ॥ १४। १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४७ ॥

दोसौ अड़तालीसवाँ अध्याय।

दुश्शासन को राज्य देकर मरने पर उतारू दुर्योधन को कर्ण का समझाना।

दुर्योधन बोला हे कर्ण! इसके पीछे अर्जुन चित्रसेन से मिलकर हँसता हुआ वीरता के साथ बोला १ कि हे गन्धर्वराज! तुमको उचित है कि हमारे भाइयों को छोड़ दो, पाण्डवों के जीते हुए ये धर्षणा के योग्य नहीं हैं २ यह सुनकर गन्धर्वों के राजा चित्रसेन ने अर्जुन से वह बात कही जो हम तुम सलाह करके घर से चले थे कि हम चलकर दुःखी पाण्डवों को अपना वैभव

दिखावेंगे । उस बात को सुनकर मुझको ऐसी लज्जा आई कि मैंने यह चाहा कि जो पृथ्वी में कोई बिल भी होता तो उसी में मैं घुस जाता । इसके पीछे गन्धर्व हम सबको बँधा हुआ युधिष्ठिर के पास ले गये और उससे भी हमारे दुर्मन्त्र का हाल कहा । हाय ! मैं दीन स्वरूप से बँधुआ के सदृश स्त्री के सामने युधिष्ठिर के समीप लाया गया । अब इससे अधिक और क्या दुःख होगा कि जिनका मैंने सदैव निरादर किया और जिनका मैं परमशत्रु हूँ उन्हों ने ही मुझको छुटाया और जीवदान दिया, इससे तो मैं युद्ध में मारा जाता तो अच्छा होता क्योंकि गन्धर्वों के हाथ से मारे जाने पर संसार में मेरा यश होता और इन्द्रलोक में मुझे अक्षयलोक मिलते । अब इस अवस्था में मेरा जीना अच्छा नहीं है, इससे जो निश्चय अब मैंने अपने मन में किया है हे नरोत्तमो ! उसको सुनो ९ । १० मैं शरीर के त्याग होने तक यहीं रहकर विना अन्न जल के व्रत करूंगा और शत्रुओं से निराकृत होकर नगर को नहीं जाऊंगा क्योंकि मैं शत्रुओं का मानखण्डन और मित्रों का मानमण्डन करनेवाला हूं । तुम सबलोग और कर्ण आदि मित्र और भाई दुश्शासन को आगे करके नगर को लौट जावो ११ । १३ मैं शत्रुओं का हर्ष बढ़ानेवाला और मित्रों का दुःखदायी कहलाकर, हस्तिनापुर में पहुँचकर, राजा से क्या कहूंगा १४ और भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, संजय, बाह्लीक, सौमदत्ति और अन्य अन्य वृद्धलोग, ब्राह्मण और श्रेष्ठ, मुख्य और उदासीन पुरवासी मुझसे क्या कहेंगे और मैं उनको क्या उत्तर दूंगा १५ । १६ और मैंने शत्रुओं के शिर पर स्थित होकर और उनकी छाती पर पांव धरकर इस समय में अपने दोष से आपही नीचा देखा, इसका उत्तर मैं नगर में जाकर क्या दूंगा १७ जो लोग दुर्वृत्त होते हैं वे लक्ष्मी और विद्या पाकर मुझ घमंडी के समान ऐश्वर्य को बहुत दिनोंतक नहीं भोग सकते हैं १८ मैं बड़ा दुर्बुद्धि हूं, यह अयोग्य और नीच कर्म करके मैंने अपने आप अपने को दुःख में डाला है १९ इससे मैं अपने प्राणों को रख नहीं सकता हूं, अब मैं प्राण त्याग करने का ही नियम करूंगा । मुझसा अभिमानी मनुष्य असामर्थ्यता में अपने शत्रु पाण्डवों से छुटाये जाने और अपमान की दृष्टि से देखे और हँसे जाने पर क्योंकर जीने की इच्छा करे २० । २१ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उक्त प्रकार से कहने के उपरान्त दुर्योधन दुश्शासन से बोला हे भाई ! सुन २२

में तेरा राज्याभिषेक करता हूं, तू राज्य को ले और कर्ण और शकुनि की सहायता से पृथ्वी का राज्य कर २३ और जैसे इन्द्र मरुद्गणों का पालन करता और देवताओं को जीविका देता है इसी प्रकार से तू भी अपने भाइयों को पालियो और जीविका दीजियो २४ । २५ और प्रमाद को छोड़कर ब्राह्मणों की सेवा करियो और भाई, बन्धु, सुहृद्, स्वजातीय और गुरु आदि सबका पालन यथायोग्य करियो और सबको प्रसन्न रखियो । यह कहकर दुर्योधन ने दुश्शासन को कण्ठ से लगा लिया और आज्ञा दी कि जाओ राज्य करो २६ । २७ यह सुनकर दुश्शासन ने बड़े भाई को दण्डवत् की और आंखों में आंसूभर दीन होकर और हाथ जोड़कर गद्गद वाणी से कहने लगा भाई प्रसन्न होवो, यह कह कर और दुःखी होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा २८। २९ और अपने आंसुओं से बड़े भाई के चरणों को धोकर बोला मुझसे यह नहीं होगा ३० हे भाई ! चाहे पृथ्वी फटजाय, आकाश के दो टूक होजायँ, सूर्य की प्रभा जाती रहे, चन्द्रमा की शीतलता नष्ट हो जाय, वायु का वेग बन्द होजाय, हिमालय पहाड़ अपनी जगह को छोड़ दे, समुद्र का जल सूख जाय और अग्नि की उष्णता जाती रहे परंतु आपके विना मैं पृथ्वी का राज्य नहीं करूंगा । हे भाई ! प्रसन्न हो प्रसन्न हो ३१ । ३२ हमारे कुल में आप सौ वर्ष तक राज्य करें इस प्रकार से कहकर दुश्शासन डकराकर रोने लगा ३४ इस प्रकार उन दोनों भाइयों को दुःखी देखकर कर्ण ने खिन्नचित्त होकर कहा कि तुम दोनों जने प्राकृतपुरुषों की भांति अज्ञानता से क्यों इतना विषाद करते हो ३५। ३६ जो मनुष्य शोक की चिन्ता रखता है उसका विषाद कभी दूर नहीं होता है । हां, शोक करना उस अवस्था में ठीक है जब उस शोक से दुःख दूर होता हो ३७ ऐसी अवस्था में तुम दोनों क्या तात्पर्य विचार कर शोक कर रहे हो । भाइयो ! धैर्य धारण करो, शोक करने से तुम्हारे शत्रु और प्रसन्न होंगे ३८ पाण्डवों ने जो तुमको छुटाया सो कोई अयोग्य बात नहीं की । राजा का प्रिय करना देशनिवासियों का धर्म है ३९ वे तुम्हारे राज्य में सुखपूर्वक रहते हैं और तुमसे पालित हैं, ऐसी अवस्था में प्राकृत मनुष्यों की भांति शोक करना तुमको अयोग्य है ४० हे दुर्योधन ! तुम्हारे शरीर त्याग के नियम को सुनकर तुम्हारे सब भाई व्याकुल हैं । उठो, चलो और अपने भाइयों को धैर्य दो ॥४१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४८ ॥

दोसौ उंचासवाँ अध्याय।

कर्ण का दुर्योधन को समझाना और दुर्योधन का देह त्याग करने से अपना मन न हटाना।

कर्ण बोला कि हे राजा दुर्योधन! मैं जानता हूं कि इस समय तुम्हारी बुद्धि न्यून हो गई है। पाण्डवों ने क्या आश्चर्य किया जो शत्रुओं से तुमको छुटाया। देशवासी और सेना के लोगों का यह परम धर्म है कि जाने अथवा विना जाने राजा का प्रिय काम करें। बहुधा ऐसा होता है कि सेना के प्रधान लोग शत्रु की सेना को डराते हैं सेना के मनुष्य उनको पकड़ भी लेते हैं और सेना के लोग उनको छुटाते भी हैं। सो देशवासी और सेनाजीवी मनुष्यों का तो यह धर्म ही है कि राजा के हित के लिये ठीक यत्न करें। इस कारण से जो दैवइच्छा से आपके देश में रहनेवाले पाण्डवों ने तुमको गन्धर्वों से छुटाया भी तो उसमें तुमको क्या रोना है। वे कुछ तुम्हारे पीछे चढ़ाई करके तो आयेही न थे। हां, यह सत्य है कि वे बड़े शूरवीर और युद्ध में भागनेवाले नहीं हैं और उन्होंने तुम्हारी सहायता की परंतु वे पहिले तुम्हारे दास हो चुके हैं और जो तुम ऐसाही जानते हो तो उनके रत्नों को क्यों भोगते हो १।८ देखो, पाण्डवों ने कभी देहत्याग करने का नियम नहीं किया। यह समझकर अब तुम उठ खड़े हो देर मत करो, तुमको शोक करना किसी अवस्था में योग्य नहीं है ९ देशवासियों को राजा का प्रिय करना अवश्य उचित है। उसमें तुम्हारे रोने की कोई बात नहीं है १० हे राजेन्द्र! जो तुम मेरा कहना न मानोगे तो मैं तुम्हारे चरणों में यहीं पड़ा रहूंगा और तुम्हारे विना कभी अपने प्राणों को नहीं रक्खूंगा। परन्तु हे नरपाल! तुम्हारे शरीर त्याग करने के नियम को सुनकर सब राजा तुम्हारी हँसी करेंगे ११।१२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इस प्रकार से कर्ण ने बहुत कुछ कहा परंतु दुर्योधन ने स्वर्ग जाने की इच्छा से अपना मन नहीं फेरा॥ १३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४९॥

दोसौ पचासवाँ अध्याय।

दैत्यों का यज्ञ की कृत्या के द्वारा दुर्योधन को पाताललोक में बुलवाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे उस अन्न-जल विना मरने पर उतारू, दुःखी और क्रोधी राजा दुर्योधन को शान्त करने के लिये सुबल के पुत्र शकुनि ने कहा १ कि हे दुर्योधन! कर्ण ने बहुत अच्छा

कहा है, उसे सुनकर तुमको मानना उचित है और मेरी हरी हुई लक्ष्मी को मोह से छोड़कर अज्ञान से शरीर त्याग करना उचित नहीं है। मैं जानता हूं कि अभी तुमने बड़ों का सत्संग नहीं किया २ । ३ जो मनुष्य अकस्मात् उठे हुए हर्ष या शोक को नहीं रोकता है उसकी लक्ष्मी इस प्रकार से नष्ट हो जाती है जैसे जल में डालने से कच्चा घड़ा टूट जाता है ४ और जो राजा डरपोक, क्लीब, दीर्घसूत्री, हठी और व्यसनी होता है उसको प्रजा नहीं चाहती है ५ इससे हे दुर्योधन ! तुमको विपरीत अवस्था में शोक करना उचित नहीं है। पाण्डवों ने अपना धर्म ही निबाहा है, तुमको उसे अन्यथा जानकर अपना शरीर नष्ट करना न चाहिये ६ हे राजेन्द्र! यह अवस्था ऐसी है कि तुम प्रसन्न होकर पाण्डवों का सत्कार करो परंतु तुम और उलटा शोक करते हो ७ इससे प्रसन्न होकर उठ खड़े हो और अपने शरीर को मत त्यागो और सुकृत को जानकर पाण्डवों का राज्य पाण्डवों को दे दो। इसमें तुम्हारा धर्म और यश होगा ८ और कृतज्ञ कहलाओगे । पाण्डवों के साथ सुभ्रातृता करने और उनको स्थापन करके उनके पिता का राज्य उनको देने से तुमको बड़ा सुख होगा ९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त बातों को सुनकर दुर्योधन ने अपने चरणों पर पड़े हुए दुःशासन को अपनी दोनों भुजाओं से उठाकर प्रीति से अपने हृदय में लगा लिया १० । ११ और कर्ण तथा शकुनि के उपदेश करनेपर भी वह राज्य से अपने चित्त को वैराग्याविष्ट करके अपने सुहृदों से कहने लगा १२ । १३ कि अब मुझे धर्म, धन, सुख, ऐश्वर्य, आज्ञा और भोगों से कुछ काम नहीं है। तुम लोग मेरे संकल्प को नष्ट न करो १४ मैंने अपनी मति को प्रायोपवेशन में दृढ़ कर लिया है। तुम लोग सब घर को चले जाओ और जो मेरे गुरु हैं उनकी सेवा करो १५ यह सुनकर सब लोगों ने उत्तर दिया कि जो तुम्हारी गति है, वही हमारी भी है। हमलोग तुम्हारे विना नगर में क्योंकर घुस सकते हैं १६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार से राजा दुर्योधन को भाई और सुहृदों ने अनेक प्रकार से समझाया परंतु वह अपने निश्चय से नहीं हटा किन्तु कुशासन बिछाकर और जलको स्पर्श करके पवित्रता से पृथ्वी पर बैठ गया और स्वर्ग मिलने की इच्छा से नियमपूर्वक मौनव्रत धारण कर लिया और मन से अपने समीप चिता बनाकर सब क्रियाओं को त्याग कर दिया। उस समय उसके मन के निश्चय को जानकर

पातालवासी रौद्र दानवों ने, जिनको पहिले देवताओं ने जीत लिया था, अपने पक्ष की क्षय जानकर दुर्योधन को बुलाने के लिये अग्निविस्तार और नवकुंड आदि यज्ञ की रचना की और उपनिषदों की क्रियाओं के अनुसार बृहस्पति और शुक्र के उपदेश किये हुए अथर्वणवेद के मन्त्रों से यज्ञ में हवन और जप करना प्रारम्भ कर दिया और वेदवेदाङ्ग के जाननेवाले ब्राह्मण दूध की बनी हुई हव्य को होमने लगे १७। २४ जब यज्ञ समाप्त होगया तब अग्निकुंड से परजृम्भनामी एक कृत्या निकली और वह बोली मुझे क्या आज्ञा है २५ यह सुनकर दैत्यों ने प्रसन्न होकर उस कृत्या से कहा कि राजा दुर्योधन को जो प्रायोपविष्ट है यहां ले आ। यह सुनकर वह बोली कि बहुत श्रेष्ठ, यह कह कर वह एक घड़ी में वहां जापहुँची जहां दुर्योधन था और उसे रसातल को ले जाकर दो घड़ी में दैत्यों के सामने खड़ा कर दिया २६। २८ वह समय रात्रि का था दानव उस समय में दुर्योधन को देखकर प्रसन्न हुए और प्रफुल्लनेत्र होकर अभिमान-सहित कहने लगे ॥ २९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥

दोसौ इक्यावनवाँ अध्याय ।

दुर्योधन को समझाकर, दैत्यों का उसके स्थानपर भिजवा देना ।

दानव बोले हे दुर्योधन ! तैंने शूरवीर और महात्माओं से युक्त होने पर प्रायोपवेशन का साहस किस कारण से किया है। जो पुरुष अपना शरीर त्याग करता है वह निन्दित और नरकगामी होता है १।२ तुमसे बुद्धिमान् को ऐसा विरुद्ध कर्म करना उचित नहीं है जो जड़ को काटनेवाला और पापमय है ३ इससे हे राजन् ! तुम अपनी इस बुद्धि को त्याग दो। यह बुद्धि धर्म, अर्थ और सुख का नाश करनेवाली; यश प्रताप और पराक्रम को नष्ट करनेवाली और शत्रुओंका हर्ष बढ़ानेवाली है ४ अब तुम अपने शरीर के दिव्य होने और निर्माण होने का वृत्तान्त हमसे सुनकर धैर्य करो ५ तुमको हमलोगों ने पूर्वकाल में शिवजी की तपस्या करके पाया था। तेरे ऊपर का आधा धड़ वज्र का बनाया गया है, उसमें अस्त्र-शस्त्र कुछ प्रवेश नहीं हो सकता है और नीचे का धड़ पुष्पमय ऐसा सुन्दर रचा गया है कि उसको देखकर स्त्री मोहित होजाय ६। ७ इससे तुम्हारा यह शरीर दिव्य है मानुषी नहीं है और देवी और महेश्वर से संयुक्त है ८ और भगदत्त आदि बड़े बड़े शूरवीर क्षत्रिय जो सब दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता हैं

तुम्हारे शत्रुओं को मारेंगे ९ इससे तुम किसी प्रकार का विषाद मत करो, तुमको किसी प्रकार का भय नहीं है। तुम्हारी सहायता के लिये बड़े बड़े वीर दानवों ने पृथ्वी पर जन्म लिया है १० और भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि शूरवीरों के शरीरों में भी दूर से दानव प्रवेश करेंगे। उनके कारण से वे पाण्डवों पर कृपा छोड़ कर तुम्हारी ओर से तुम्हारे वैरियों से युद्ध करेंगे ११ और दानवों से आविष्ट और विमूढ़चित्त एवं निर्दयी होकर पुत्र, भाई, पिता, बान्धव, शिष्य, स्वजातीय, बालक और वृद्धों पर परस्पर में यह शब्द कह कहकर शस्त्र-प्रहार करेंगे कि मेरे जीते तू बच नहीं सकता है। अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करके सब मनुष्यों को मार डालेंगे और महात्मा पाण्डव भी युद्ध करेंगे १२। १६ परंतु जिन महाबली दैत्यों ने क्षत्रियों के यहां जन्म लिया है वे उन भीष्मादिकों का वध कर डालेंगे १७ और तुम्हारे शत्रुओं से गदा, मुशल, शूल और और अनेक प्रकार के अस्त्र ले लेकर युद्ध करेंगे १८ और जो तुम्हारे चित्त में अर्जुन की ओर से भय लगा हुआ है उसका उपाय हमने यह रचा है १९ कि मरे हुए नरकासुर की आत्मा को हमने कर्ण की मूर्त्ति में उपाश्रित कर दिया है, वह अपने पिछले वैर को याद करके अर्जुन और श्रीकृष्ण से युद्ध करेगा २० वह महारथी और बड़ा प्रहार करनेवाला है, तेरे सब शत्रु और अर्जुन को वही रण में मारकर विजय करेगा २१ इसी बात को जानकर इन्द्र अर्जुन की रक्षा के लिये छल से कर्ण का कवच और कर्ण के कुण्डल हरकर ले जायगा परंतु हमने भी सहस्रों दैत्य और राक्षसों को आज्ञा दे दी है। उन्होंने पृथ्वी पर जन्म ले लिया है और वे संसप्तक नाम से प्रसिद्ध हैं। वे अर्जुन को मारेंगे इससे तुम शोक मत करो। तुम इस पृथ्वी को शत्रु रहित शासन करोगे। तुमको विषाद करना उचित नहीं है। तुम्हारे नष्ट हो जाने पर हमारा पक्षक्षय हो जायगा २२। २५ इससे हे वीर! अब तुम जाओ और दूसरी बुद्धि को अपने हृदय में न आने दो। पाण्डव देवताओं की गति और तुम सर्वदा हमारी गति हो २६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वे दैत्य उक्त प्रकार से कहकर दुर्योधन से पुत्रभाव से मिले और उन्होंने उसे धैर्य देकर और उसकी बुद्धि को स्थिर करके उसे जाने की आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया कि तेरी जय होवे २७। २८ इसके पीछे कृत्या ने उसको फिर उसी स्थान पर पहुँचा दिया जहां उसने शरीर त्याग करने का नियम

लिया था २६ और वहां वह उसे बैठाकर आशीर्वाद देकर, दुर्योधन से अनुज्ञात हो, वहीं अन्तर्धान हो गई ३० उसके चले जाने पर दुर्योधन ने अपने शोक के संपूर्ण कारणों को स्वप्नवत् जाना और उसकी बुद्धि में यह निश्चय हो गया कि मैं पाण्डवों को विजय करूँगा और तब से कर्ण और संसप्तकों को यह समझने लगा कि ये अर्जुन का वध करेंगे। इस प्रकार से उस दुर्मति की पाण्डवों के विजय करने की आशा दृढ़ हो गई और नरकासुर के अन्तरात्मा से आविष्ट होनेके कारण से कर्ण की बुद्धि भी अर्जुन के वध करने में क्रूर हो गई और संसप्तक भी राक्षसों से नष्टचित्त होकर अर्जुन को मारने की इच्छा करने लगे और भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि भी दानवों से मूढ़चित्त होकर पाण्डवों पर पहिले की समान प्रीति न रखने लगे। दुर्योधन ने इस वृत्तान्त को किसी से नहीं कहा किन्तु गुप्त ही रक्खा ३१। ३७ इसके पीछे जब रात्रि कुछ थोड़ी-सी रह गई तब कर्ण दुर्योधन के पास आया और हाथ जोड़कर बोला कि हे कौरव ! मनुष्य मरने पर शत्रु को किसी प्रकार से नहीं जीत सकता है और जीवते मनुष्य का कल्याण होता है । मरने पर न जय मिलती है, न कल्याण मिलता है इससे यह समय विषाद अथवा भय करने या मरने का नहीं है। यह कहकर कर्ण ने दुर्योधन का हाथ पकड़ लिया और बोला कि उठो क्या सोते हो और किस कारण से शोच कर रहे हो ? तुम अपने पराक्रम से शत्रुओं को तपाकर अब अपनी मृत्यु चाहते हो ३८। ४१ तुमको अर्जुन का पराक्रम देखकर भय हुआ है इससे मैं अपने आयुधों को छूकर तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि तेरहवें वर्ष में युद्ध होने पर मैं अर्जुन को मारूंगा और पाण्डवों को तेरे वश में कर दूंगा ४२।४३ इस प्रकार से कर्ण के समझाने और दैत्यों के उपदेश करने से दुर्योधन उठ खड़ा हुआ और उसने अपनी बुद्धि को स्थिर करके सेना को तैयार कराया ४४। ४५ और वह सेना रथ, घोड़े और हाथियों सहित गङ्गाजी के प्रवाह के तुल्य वहां से चल दी ४६ और रथ आदि वाहन, श्वेत श्वेत छत्र, पताका और पाण्डुरवर्ण चामरों से बड़ी सुशोभित दीखने लगी ४७ उस सेना के आगे आगे राजा दुर्योधन सार्वभौम राजा युधिष्ठिर के तुल्य ब्राह्मणों के आशीर्वादों को लेता हुआ और अपनी कृपादृष्टि से मनुष्यों के नमस्कार और अंजलियों को अङ्गीकार करता हुआ चला ४८।४९ कर्ण और शकुनि उसके साथ साथ हो लिये और उसके सब भाई और भूरि-

श्रवा, सोमदत्त और बाह्लीक आदि कौरव रथ, घोड़े और हाथी आदि अनेक सवारियों पर बैठे हुए उसके पीछे पीछे चले । इस प्रकार से थोड़े ही काल में दुर्योधन अपने नगर में जा पहुँचा ॥ ५० । ५२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वण्येकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥

दोसौबावनवाँ अध्याय ।

भीष्मकृत निन्दा सुन, अपना पराक्रम दिखाने के लिये कर्ण का दिग्विजय प्रस्थान ।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि महाराज! पाण्डवों के वन में वास करने पर दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र और कर्ण, शकुनि, भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य ने क्या किया १ । २ वैशंपायनजी बोले कि जब दुर्योधन पाण्डवों के द्वारा गन्धर्वों से छूटकर, पाण्डवों से बिदा होकर हस्तिनापुर में आया तब भीष्मजी ने उससे कहा कि हे तात! हमने तुमसे पहिले ही, जब तुम तपोवन को जाने लगे थे, कहा था कि हमको तुम्हारा वहां जाना अच्छा नहीं दीखता है परंतु तुमने हमारा कहना न माना और वहां चले गये । इसी कारण से वहां तुमको बलवान् शत्रुओं ने बांध लिया और उनसे तुमको पाण्डवों ने छुटाया, तुमको लज्जा तो न आती होगी ? देखो तुम सबके पुकारने पर भी कर्ण तुम्हारी आँखों के सामने गन्धर्वों से डरकर भाग गया ३ । ७ अब तो तुमको इस सूतपुत्र कर्ण और महात्मा पाण्डवों का पराक्रम विदित हो गया । यह कर्ण धनुर्वेद, शूरवीरता और धर्म में पाण्डवों का चौथाई भी नहीं है ८ । ९ इससे हे दुर्योधन! मेरी समझ में उन महात्मा पाण्डवों से संधि कर लेना ही उचित है जिससे इस कुल की बढ़ोतरी होवे १० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर दुर्योधन हँसकर चुप हो रहा और शकुनि-सहित उठकर चल दिया ११ और कर्णसमेत दुःशासन भी उठकर उसके पीछे चले गये १२ भीष्मजी उनको गये हुए देखकर लज्जा से व्रीडित होकर अपने स्थान को चले आये १३ उनके चले जाने पर दुर्योधन फिर वहीं चला आया और अपने मन्त्रियों से पूछने लगा १४ कि किस काम के करने से हमारा कल्याण और सुकृत होगा इसको विचार कर कहो १५ तब कर्ण बोला कि भीष्मजी सदा मेरी निन्दा और पाण्डवों की बड़ाई किया करते हैं १६ और कारण उसका यह है कि तुमसे वे द्वेष रखते हैं और तुम्हारे कारण से हमसे भी द्वेष मानकर हमारी निन्दा पर उतरे हैं १७ सो हे दुर्योधन! मैं उस

वचन को सह नहीं सकता हूं। देखो, अभी उन्होंने तुम्हारे ही सामने पाण्डवों की बड़ाई और तुम्हारी निन्दा की। इससे अब तुम मुझको आज्ञा दो तो मैं सेना आदि लेकर इस पृथ्वी को जिसे चार पाण्डवों ने विजय किया था, पर्व्वत और वनों सहित अकेला जाकर विजय करूं जिससे यह अधम भीष्म, जो अनिन्दित की निन्दा और अयोग्यों की बड़ाई करता है, मेरे और तुम्हारे बल को देखे १८। २२ हे राजन्! मैं आयुधों को छूकर सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि तुम्हारी विजय होगी, तुम मुझको आज्ञा दो २३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर दुर्योधन ने बड़ी प्रसन्नता से कहा २४ कि मैं धन्य हूं, तुम मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह करते हो, जो सदैव मेरा हित चाहते हो। मेरा जन्म अब सफल है २५ और जब तुम्हारी इच्छा हो तभी तुम पृथ्वी के विजय करने को चले जाओ और जो कुछ मुझसे कहो सो मैं करूं २६ यह सुनकर कर्ण ने कहा कि हमारी यात्रा की सब सामग्री तैयार कर दो २७ दुर्योधन ने उसी प्रकार किया और सब सामग्री के इकट्ठा होने पर कर्ण शुभ नक्षत्र और शुभ तिथि को मङ्गलद्रव्य और सुगन्धित तैल से स्नान करके, ब्राह्मणों से पूजित होकर, अपनी प्रशंसा सुनता हुआ, रथ में बैठकर, रथ के शब्द से तीनों लोकों को शब्दित करता हुआ चल दिया॥ २८। २९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५२॥

दोसौतिरपनवाँ अध्याय।

कर्ण का सब पृथ्वी को जीतकर, सब राजाओं से कर लेकर, हस्तिनापुर को आना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! महाधनुर्धारी कर्ण ने बड़ी सेना को लेकर राजा द्रुपद का नगर जो बड़ा रमणीय था जा घेरा और बड़ा भारी युद्ध करके द्रुपद को अपने वश में कर लिया और उससे नाना प्रकार के रत्न और सोना चांदी लेकर उससे कर देने का नियम करलिया और उसके आज्ञाकारी राजाओं को भी वश में करके उनसे भी कर ठहरा लिया और वहां से उत्तर दिशा को चल दिया। उस दिशा में उसने राजा भगदत्त को जीता और अन्य अन्य समीपवर्ती राजाओं को विजय कर के हिमालय पहाड़ पर चढ़ गया और वहां के पर्वतीय सब राजाओं को भी जीतकर सबसे कर देने का नियम कर लिया १। ६ फिर पहाड़ से उतर कर पूर्व दिया को चल दिशा और अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, मण्डिक, मिथिल, मागध, कर्कखण्ड, आवशीर, योध्य, अहिच्छत्र, वत्सभूमि, केवली, मृत्तिकावती

मोहन, पत्तन, त्रिपुर और कोशल आदि देशों के सब राजाओं को विजय करके और सबसे कर लेकर दक्षिण दिशा को चल दिया और वहां के सब महारथी राजाओं को भी जीतकर दाक्षिणात्य देशों में पहुँचा और वहां उसने राजा रुक्मी से युद्ध किया ७। ११ रुक्मी ने सूतपुत्र कर्ण से तुमुल युद्ध करके कहा कि हे राजेन्द्र! मैं तेरे पराक्रम से बहुत प्रसन्न हुआ, अब मैं तेरा विघ्न करना नहीं चाहता हूं। मैंने यह युद्ध केवल प्रतिज्ञा पूरी करने को किया था १२। १३ अब मैं तुझको जितना तुझे चाहिये सुवर्ण देता हूं। यह सुनकर कर्ण उससे मिलाप करके पाण्ड्य और अन्य श्रीशैल देशों की ओर चला गया १४ और वहां के राजाओं को जीतकर केरल, नील और वेणुदारि के पुत्र आदि सब राजाओं को विजय किया और सब दक्षिणदेशीय राजाओं से कर देने का नियम कर लिया। वहां से चलकर उसने शिशुपाल के पुत्र और उसके देश के समीपवर्ती राजाओं को भी वश में कर लिया और अवन्तिदेशीय राजाओं को साम से और वृष्णिवंशियों को मिलाप से वश में करके पश्चिम दिशा को चला गया १५। १७ वहां उसने पवन और खर्बर आदि सब पश्चिमदेशीय राजाओं को विजय किया और सबसे कर देने का नियम कर लिया। इसके पीछे उसने म्लेच्छ, आटविक, पर्वतनिवासी, भद्र, रोहितक, आग्नेय, मालव, शशक, यवन और अग्निजित् आदि सब गणों को जीतकर अपने वश में कर लिया। इस प्रकार से कर्ण चारों दिशाओं के राजाओं को जीतकर और सब पृथ्वी को अपने वश में करके हस्तिनापुर को लौट आया १८। २२ दुर्योधन उसके आने का हाल सुनकर पिता, भाई और बान्धवों सहित आगे गया और उसकी पूजा करके उसे लिवा लाया और उसके विजय की डौंड़ी नगर में पिटवा दी। इसके पीछे दुर्योधन ने प्रसन्नता से कहा कि जो ऐश्वर्य मुझको तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुआ है वह भीष्म, द्रोणाचार्य और वाह्लीक से भी प्राप्त नहीं हुआ २३। २५ हे कर्ण! तुमसे बहुत क्या कहूं, मैं तुम ऐसे नाथ को पाकर सनाथ हूं २६ वे पाण्डव और दूसरे राजा लोग तेरी सोलहवीं कला के सदृश भी नहीं हैं २७ अब तुम चलकर धृतराष्ट्र और गान्धारी का दर्शन इस प्रकार से करो जैसे इन्द्र अदिति का दर्शन करता है २८ इसके पीछे नगर में बहुत हलहला शब्द और हाहाकार हुआ। बहुतों ने कर्ण और दुर्योधन की प्रशंसा की, बहुतों ने निन्दा की और बहुत से चुप हो रहे २९। ३१ हे राजा जनमेजय! इस प्रकार से

वह शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण पहाड़, वन, पत्तन, नगर, द्वीप और अनूप देशों से पूर्ण पृथ्वी को जीतकर और थोड़े ही काल में सब राजाओं को अपने वश में करके, अक्षय धन को लेकर, राजा के पास आया ३२। ३३ और दुर्योधन के साथ घर के भीतर गांधारी और धृतराष्ट्र के पास गया। वहां उसने धृतराष्ट्र के दोनों चरणों में पुत्र के समान वन्दना की और धृतराष्ट्र ने भी उसे प्रेम से मिलकर बिदा किया ३४। ३५ हे भरतवंशिन्! तब से राजा धृतराष्ट्र और शकुनि यह समझने लगे कि कर्ण ने पाण्डवों को युद्ध में जीत लिया॥ ३६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५३॥

दोसौ चौवनवाँ अध्याय।

दुर्योधन का वैष्णवयज्ञ करने के लिये शिल्पियों से सुवर्ण का हल बनवाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! सूतपुत्र कर्ण पृथ्वी को जीतकर राजा दुर्योधन से कहने लगा कि हे राजन्! अब में जो कुछ तुमसे कहूं उसे सुनो और समझो और उसीके अनुसार करो १। २ यह संपूर्ण पृथ्वी अब तुम्हारी है, शत्रु तुम्हारा अब कोई नहीं रहा। अब तुम इस पृथ्वी को इन्द्र के समान पालन करो ३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर राजा दुर्योधन बोला कि हे कर्ण। जिस मनुष्य के सहायक और हित में अनुरक्त तुमसे शूरवीर हैं उसको कोई बात दुर्लभ नहीं है। अब में और भी एक बात चाहता हूं उसको भी यथार्थता से सुनो ४। ५ हे सूतनन्दन, कर्ण! वह यह है कि पाण्डवों के श्रेष्ठ और बड़े राजसूययज्ञ को देखकर मेरी भी इच्छा यज्ञ करने की है, तुम्हारी इसमें क्या सलाह है ६ कर्ण यह सुनकर राजा से बोला कि हे नृपोत्तम! सब राजा इस समय तुम्हारे वश में हैं, तुम श्रेष्ठ ब्राह्मणों से पूछकर यज्ञ की सामग्री इकट्ठी करो और वेदपारग ऋत्विजों से विधिपूर्वक यज्ञ की रचना करावो, तुम्हारा यज्ञ अन्नपान से युक्त, समृद्ध, गुण रखनेवाला होगा ७। १० हे मनुजाधिप! यह सुनकर दुर्योधन ने पुरोहित को बुलाकर कहा ११ कि आप पूर्ण दक्षिणावाला श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ मुझको न्यायसहित विधिपूर्वक कराइये १२ यह सुनकर वह बोला कि हे नरपाल! जबतक राजा युधिष्ठिर जीता है तबतक तुम्हारे कुल में दूसरा मनुष्य राजसूय यज्ञ नहीं कर सकता है और इसके सिवाय तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र भी अभी विद्यमान हैं १३। १४ इससे भी

हे नृपोत्तम ! तुमको वह यज्ञ करना अनुचित है इससे राजसूय यज्ञ के समान दूसरा और यज्ञ है उसको तुम करो । उस यज्ञ की विधि इस प्रकार है कि जो जो राजा तुमको कर देते हैं उनसे कर में शुद्ध किया हुआ और विना शुद्ध किया हुआ सुवर्ण लेकर उसका हल बनवाओ और उस हल से यज्ञस्थान की पृथ्वी जोतकर वहां यज्ञ की सब सामग्री और बनाया हुआ अन्न रक्खो और वहीं यथाविधि यज्ञ करो १५ । १६ यह यज्ञ सत्पुरुषों के योग्य है, इस यज्ञ का नाम वैष्णवयज्ञ है, इसको सिवाय पुरातन विष्णुजी के आजतक और किसी ने नहीं किया है २० यह यज्ञ राजसूय यज्ञ के समान सब और यज्ञों में श्रेष्ठ यज्ञ है । हे भारत ! हमारी सलाह इसी कल्याणकारी यज्ञ के कराने की है । इसके करने से तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी और यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगा २१ यह सुनकर महीपति दुर्योधन कर्ण और अपने भाइयों से बोला कि मुझे तो जो कुछ ब्राह्मण कहें सब अङ्गीकार है परंतु अब जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो वह शीघ्र करो २२ । २३ यह सुनकर सबने उत्तर दिया कि आपका विचार अच्छा है । तब राजा ने क्रमानुसार शिल्पियों को हल बनाने की आज्ञा दी और उन्होंने आज्ञा के अनुसार विधिपूर्वक हल बनाकर तैयार कर दिया २४ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५४ ॥

दोसौ पचपनवाँ अध्याय ।

यज्ञ समाप्त होने पर सबका विदा होना और दुर्योधन का नगर में आना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके उपरान्त मन्त्री, शिल्पी और महाज्ञानी विदुरजी ने भी दुर्योधन से निवेदन किया कि हे राजन्, महाराज ! यज्ञ की सब सामग्री हो गई है, हल भी सुवर्ण का बनकर तैयार हो गया है और मुहूर्त भी यज्ञ करने का आ पहुँचा है १ । २ हे प्रजाधिप ! यह सुनकर राजाधिराज दुर्योधन ने यज्ञ के प्रारम्भ करने की आज्ञा दी और दुर्योधन के दीक्षित होने पर वह यज्ञ यथाविधि होने लगा ३ । ४ उस समय धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और यशस्विनी गान्धारी ने प्रसन्न होकर राजालोगों और ब्राह्मणों को न्यौता देने के लिए जल्दी चलनेवाले दूत जहां तहां भेज दिये ५ । ६ वे दूत आज्ञा और उपदेश के अनुसार न्यौता देने को चल दिये । उसी समय एक दूत से दुःशासन ने बुलाकर कहा कि तुम शीघ्र द्वैतवन को

चले जावो और वहां के ब्राह्मण और पापी पाण्डवों को विधिपूर्वक न्यौता दे आवो ७ । ८ यह सुनकर वह दूत पाण्डवों के पास गया और प्रणाम करके बोला कि महाराज, नृपोत्तम! राजा दुर्योधन ने अपने पराक्रम से धन जीतकर यज्ञ रचा है, उस यज्ञ में जहां तहां से राजा लोग और ब्राह्मण चले जा रहे हैं९।१० महात्मा कौरवों ने आपके पास मुझे निमन्त्रण करने के लिये भेजा है, सो आपभी चलकर उस यज्ञ को देखिये। यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि बड़े प्रारब्ध की बात है जो पिछले पुरखावों की कीर्त्ति का बढ़ानेवाला राजा दुर्योधन यज्ञ करता है। हम भी चलते परंतु अब हम क्योंकर चल सकते हैं, हमको तेरह वर्ष तक अपनी प्रतिज्ञा पालन करनी है ११ । १४ यह सुनकर भीमसेन बोला कि राजा युधिष्ठिर तो तेरह वर्ष बीतने पर युद्धरूपी यज्ञ में अस्त्र-शस्त्र की प्रज्वलित अग्नि में उन सबको होमने के लिये आवेंगे और जब युधिष्ठिर की क्रोधरूपी अग्नि बढ़ेगी और उस अग्नि में भस्म होते हुए धृतराष्ट्र के पुत्र जलने लगेंगे तब मैं भी क्रोधरूपी हवि को उनके ऊपर होमने को आऊंगा। तू दुर्योधन से जाकर ऐसे ही कहि दीजो १५ । १७ इसके पीछे पाण्डवों ने और कुछ नहीं कहा और उस दूत ने वहां से आकर सब हाल दुर्योधन को कह सुनाया १८ तदनन्तर देश देश के राजा और ब्राह्मण हस्तिनापुर में आकर इकट्ठे हुए१९ उन सबकी पूजा कौरवों ने शास्त्र की रीति से की और वे प्रसन्न होकर यज्ञ देखने लगे २० उस समय राजा धृतराष्ट्र ने विदुरजी को प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि तुम ऐसा प्रबन्ध करो कि यज्ञशाला में सब मनुष्य अन्न आदि से तृप्त और सुखी रहें २१ । २२ यह सुनकर धर्मवेत्ता, विद्वान् विदुरजी ने सब वर्णों के मनुष्यों का यथायोग्य आदर सत्कार किया और भक्ष्य अर्थात् खाने के पदार्थ, पेय अर्थात् पीने के पदार्थ, अन्न, गन्धमाला और अनेक प्रकार के वस्त्रों से सबको युक्त कर दिया २३ । २४ इस प्रकार से सब राजा लोग और सहस्रों ब्राह्मण यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त रहा किये, उपरान्त उन सबको नानाप्रकार का धन देकर बिदा किया और दुर्योधन ने सब भाइयों-सहित कर्ण और शकुनि के साथ नगर में प्रवेश किया ॥ २५ । २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥

दोसौ छप्पनवाँ अध्याय ।

कर्ण का अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा करना, उसे सुनकर युधिष्ठिर का शोच करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! नगर में प्रवेश करने के समय सूतलोग दुर्योधन की स्तुति करने लगे और मनुष्यों ने उस महाधनुर्धर राजसत्तम की प्रशंसा की १ इसके पीछे सब लोगों ने चन्दन से लिप्त खीलें मार्ग में बिछा दीं और कहने लगे कि हे नृप ! प्रारब्ध से तुम्हारा यह यज्ञ निर्विघ्नता से समाप्त हुआ २ उसी समय दूसरी जाति के मनुष्य जो कि उचित कहना नहीं जानते थे, उन्होंने कहा कि हे राजन् ! तुम्हारा यह यज्ञ राजा युधिष्ठिर के यज्ञ के सदृश तो कहां सोलहवीं कला के तुल्य भी नहीं है । ऐसा वहां कितेक वातिक लोगों ने उस जनाधिपति से कहा ३ । ४ और सुहृदों ने कहा कि यह यज्ञ सब यज्ञों से अधिक है । ययाति, नहुष, मान्धाता और भरत इसी यज्ञ को करके शुद्ध होकर स्वर्गलोक को गये थे । इस प्रकार से राजा दुर्योधन सुहृदों के कहे हुए शुभ वचनों को सुनता हुआ अपने घर में प्रविष्ट हुआ और माता पिता के चरणों में बन्दना करके भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और बुद्धिमान् विदुरजी को प्रणाम करके सुन्दर आसन पर बैठ गया । उसके भाइयों ने उसको नमस्कार किया और वे सब उसके चारों ओर बैठ गये । उस समय कर्ण ने उठकर उससे कहा कि हे भरतश्रेष्ठ ! प्रारब्ध से तुम्हारा यह वैष्णवयज्ञ समाप्त हुआ ५ । ६ अब जब युद्ध में पाण्डव मारे जायँगे और तुम राजसूययज्ञ कर लोगे तब मैं फिर तुम्हारी पूजा करूंगा १० यह सुनकर दुर्योधन बोला तुमने पाण्डवों के विषय में यह सत्य वार्ता कही कि उनके मारे जाने और मेरा राजसूययज्ञ करने पर फिर मैं इसी प्रकार से वृद्धि पाऊंगा । यह कहकर दुर्योधन कर्ण से मिला और राजसूययज्ञ करने की चिन्ता करने लगा ११ । १२ तब उसने सब पास बैठे हुए कौरवों से पूछा कि हे कौरवो ! मैं पाण्डवों को मारकर कब उससे श्रेष्ठ राजसूययज्ञ को करूंगा ? यह सुनकर कर्ण बोला कि सुनिये १४ । १५ जब तक मैं अर्जुन को न मार लूंगा तब तक अपने पैर किसी से न धुलाऊंगा और मांसभक्षण और सुरापान भी नहीं करूंगा १६ और जो कोई मुझसे कुछ मांगेगा उससे यह नहीं कहूंगा कि मैं तुझको वह नहीं दे सकता हूं । यह प्रतिज्ञा सुनकर धृतराष्ट्र के पुत्रों ने बड़े हर्ष से बड़ा कोलाहल किया और सबने यह समझ लिया कि पाण्डव जीत लिये गये १७ । १८ इसके पीछे हे राजेन्द्र ! दुर्यो-

धन ने कर्ण को बिदा किया और आप चैत्ररथ वन के समान अपने घर में चला गया १९ उसके चले जाने पर और सब लोग भी अपने अपने घरोंको चले गये और पाण्डव दूत की बात की चिन्ता में मग्न रहकर सुखपूर्वक नहीं बसे। इसके पीछे पाण्डवों ने दूत से सुना कि कर्ण ने अर्जुन के मारने की प्रतिज्ञा की है। उसको सुनकर राजा युधिष्ठिर बड़ा उद्विग्न हुआ और पिछले क्लेशों को याद करके और कर्ण को बड़ा पराक्रमी और अभेद्य कवचधारी जानकर उसको चैन नहीं पड़ा २०।२३ और उसी चिन्ता में उसको द्वैतवन का सरोवर जहां बहुत से व्याल और मृग रहते थे छोड़ना पड़ा २४ और राजा दुर्योधन यज्ञ करने के पीछे अपने वीर भाई और भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य सहित राज्यशासन करने लगा २५ और सूतपुत्र समरशोभी कर्ण से मिलकर राजाओं का प्रिय काम करने लगा २६ इसके पीछे उसने बहुत से यज्ञों में ब्राह्मणों की पूजा बहुत सी दक्षिणा से की और धन को यह समझकर कि इसके होने में दो ही प्रयोजन हैं, भोग करना और दान देना। उसने अपने भाइयों का भी आदर सत्कार किया ॥ २७। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥

दोसौ सत्तावनवाँ अध्याय।

द्वैतवन के मृगों का युधिष्ठिर से वनान्तर जाने की स्वप्न में प्रार्थना करना व उनका काम्यकवन में जाना।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि हे मुनिनायक! महाबलशाली पाण्डवों ने दुर्योधन को छुटाने के पीछे उस वन में क्या किया, वह मुझसे कहने योग्य हो १ वैशंपायनजी बोले कि हे राजन्! इसके पीछे एक दिन द्वैतवन में पाण्डव सो रहे थे, रात्रि के अन्त होने के समय युधिष्ठिर को द्वैतवन के मारने से बचे हुए मृगों ने स्वप्न में अपने दर्शन दिये २ उन कांपते हुए और हाथ जोड़े हुए मृगों को देखकर राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि तुम कौन हो और क्या चाहते हो? जो कुछ कहना चाहते हो सो कहो ३ यह सुनकर मृग बोले कि हे भरतवंशिन्, महाराज! हमलोग इस द्वैतवन के वासी मृग हैं, मरते मरते हमहीं बच रहे हैं। इससे हमलोगों की आप से प्रार्थना है कि आप अपने निवास को बदल दीजिये जिससे हम मारे न जावें ४। ५ आपके अस्त्रवेत्ता शूरवीर चारों भाइयों ने हम वनवासियों के कुलों के मृगों को मारते

मारते थोड़ा कर डाला है ६ सो हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर! हमलोग थोड़े से केवल बीजरूप बच रहे हैं, जो आप अपनी कृपा करें तो हम लोगों की फिर वृद्धि हो जायगी ७ उन भयभीत मृगों की उक्त बातों को सुनकर सब प्राणियों के हितकारी युधिष्ठिर ने दया विचारकर उनसे कहा कि बहुत अच्छा, अब हम ऐसा ही करेंगे ८। ९ इसके पीछे युधिष्ठिर की आंखें खुल गईं, तब उसने मृगों पर दया विचारकर सब भाइयों से कहा कि इस वन के मृगों ने आज स्वप्न में हम से प्रार्थना की है कि हमलोग थोड़े से रह गये हैं, हम पर दया कीजिये सो उन की प्रार्थना सत्य है। हमलोगों को इन वन के मृगों को खाते हुए एक वर्ष और आठ महीने हुए। अब हमको इन पर दया करना उचित है १०। १२ इससे मैं चाहता हूं कि हमलोग अब उससे रमणीक काम्यकवन को चले चलें जहां बहुत से मृग और वन, मरुभूमि के शिर पर तृणबिन्दु सरोवर के पास हैं १३ और वहां रहकर अपने शेष काल को व्यतीत करें। इसके उपरान्त पाण्डव इन्द्रसेन आदि सेवक और ब्राह्मणों सहित चल दिये और ऐसे मार्ग से जिसमें अन्न और जल का सुपास था, उस पवित्र काम्यकनामी तपोवन में जा पहुँचे और उसमें प्रवेश करते हुए ऐसे जान पड़े मानो सुकृती लोग स्वर्ग को जा रहे हैं॥ १४। १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५७॥

दोसौ अट्ठावनवाँ अध्याय।

व्यासजी का पाण्डवों को अनेक धर्मों का उपदेश तथा दान की प्रशंसा करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस वन में बसते बसते महात्मा पाण्डवों का ग्यारहवाँ वर्ष बड़े कष्ट से व्यतीत हो गया और उन वीरों ने आने वाले समय की प्रतीक्षा करके सब दुःख सहे और फल-मूल भोजन करते रहे १। २ ग्यारहवाँ वर्ष व्यतीत होने के पीछे राजा युधिष्ठिर के चित्त में अपने अपराध से प्राप्त हुए दुःख की चिन्ता व्याप्त हो गई और उसको उस चिन्ता के कारण से इस प्रकार से नींद नहीं आई जैसे उस मनुष्य को निद्रा नहीं आती है जिसके हृदय में भाले लगे हों और शकुनि आदि ज्वारियों की दुरात्मता और कर्ण के परुष वचनों को याद करके उसने श्वास ले लेकर चित्त में अग्निरूपी क्रोध धारण किया ३। ५ और अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और भीमसेन ने भी युधिष्ठिर के कारण से वन के महादुःखों को सहा परंतु जब प्रतिज्ञा

के समय के व्यतीत होने में थोड़े से दिन रह गये तब उन वीर पाण्डवों के स्वरूप उत्साह, क्रोध और चेष्टाओं से और ही प्रकार के हो गये। थोड़े दिनों के पीछे उसी काम्यक वन में महायोगी व्यासजी महाराज पाण्डवों को देखने की इच्छा से आये। उनको देखकर सब पाण्डव खड़े हो गये और दण्डवत् करके उनको आदरपूर्वक बैठाया। उस समय व्यासजी अपने उन पौत्रों को फल और फूल के भोजन करने से लटे हुए देखकर दया से पूर्णचित्त हो गये और गद्गद होकर कहने लगे कि हे युधिष्ठिर! ६। १२ तप न करनेवाले मनुष्यों को बड़ा सुख नहीं मिलता है संसार में पर्याय से सुख और दुःख दोनों भोगने पड़ते हैं परंतु हे पुरुषश्रेष्ठ! अनन्त सुख अर्थात् मोक्ष किसी को प्राप्त नहीं होता है। जो मनुष्य ब्रह्मविद्यायुक्त और ज्ञानी होता है और अपनी उत्पत्ति और लय के स्थान अर्थात् ब्रह्म को जानता है वह न शोच करता है, न हर्ष; किन्तु सुख के आने पर सुख भोगता है और दुःख के प्राप्त होने पर दुःख उठाता है १३। १५ ऐसे लोग उस काल की इस प्रकार से उपासना करते हैं जैसे किसान खेती को बोते हैं और आगे फल होनेकी आशा से उस खेतीकी नीठ करते रहते हैं। संसार में तप से बढ़कर कोई पदार्थ नहीं है और ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तप से न मिल सकती हो। यहां तक कि तप से मनुष्य ब्रह्म को भी पा सकता है और धर्मात्मा मनुष्यों में ये गुण होते हैं। सत्य १ सीधापन २ क्रोध न करना ३ अन्न आदि का भले प्रकार विभाग करना ४ भीतर और बाहर की इन्द्रियों को रोकना ५ दूसरे के गुण में दोष न लगाना ६ हिंसा न करना ७ शौच से रहना ८ और इन्द्रियों को वश में करना ६, १६। १८ और जो मनुष्य अधर्मी हैं वे पशु और पक्षियों की योनि में जन्म ले लेकर कष्ट पाते हैं, सुख उनको नाम को भी नहीं मिलता है १६ मनुष्य जो कर्म यहाँ करता है उसका फल उसको परलोक में भोगना पड़ता है इससे उसको चाहिए कि तप करें और नियम से रहे २० जब दान करने का समय आवे तब मनुष्य को उचित है कि झूंठ को त्यागकर प्रसन्न मन से यथाशक्ति दान दे और दान देनेवाले को प्रणाम करे और उसकी पूजा करे २१ सत्यवादी मनुष्यों की आयु बड़ी और प्रकृति सीधी होती है, वे सुखी रहते हैं और क्रोध न करनेवाले और दूसरे के गुण में दोष न लगानेवालों को परम सुख अर्थात् मोक्ष मिलता है २२ जो मनुष्य जितेन्द्रिय और मन को रोकनेवाला है वह क्लेश कभी नहीं पाता है और

जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है वह दूसरे की लक्ष्मी को देखकर दुःखी कभी नहीं होता है २३ जो पुरुष अन्न का विभाग भले प्रकार से करता है और दानी और अहिंसक होता है वह बड़ा भोगी और सुखिया होता है और शरीर उसका आरोग्य रहता है २४ जो कोई अपने मान्य को मानता है उसका जन्म बड़े कुल में होता है और जितेन्द्रिय मनुष्य स्त्री, मद्य आदि व्यसनों में प्रवृत्त नहीं होता है २५ और जिस मनुष्य की बुद्धि अच्छी होती है वह उस बुद्धि के योग से मरने पर जन्म लेकर कल्याण पाता है २६ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज ! दान, धर्म और तप इन तीनों में अधिक फल किसका है और वह क्या है जिसका करना बड़े दुःख से है २७ व्यासजी बोले कि पृथ्वी पर दान से दुष्कर पदार्थ कोई नहीं है क्योंकि धन आदि में सबकी बड़ी तृष्णा रहती है और वह पैदा भी दुःख से होता है २८ लोग धन के लिये अपने प्राणों को छोड़ छोड़कर समुद्र और पृथ्वी में प्रवेश हो जाते हैं और अनेक उपायों से धन उत्पन्न करते हैं, कोई खेती करता है, कोई गोरक्षा करता है और दूसरे अन्य अन्य उपायों से धन उपार्जन करते हैं २९ । ३० इससे दुःख से इकट्ठे किये हुए धन को त्यागना बड़ा कठिन है, इसी से दान करना बहुत कठिन बात है । मैं दान को ही बड़ा समझता हूं ३१ परंतु इतनी बात दान में विशेष है कि न्याय से इकट्ठा किया हुआ धन सुन्दर देश और शुभ काल में पात्र पुरुष को दिया हुआ मनुष्य के सब संकटों को दूर कर देता है और अन्याय से संचित किया हुआ धन दान करने पर बड़े भय से मनुष्य की रक्षा नहीं कर सकता है ३२ । ३३ हे युधिष्ठिर ! पवित्र धन थोड़ा सा भी शुभकाल में प्रसन्नता से पात्र को देने से मरने पर अनन्त फल देता है ३४ इस विषय में हम तुमको मुद्गल ब्राह्मण की कथा सुनाते हैं जिसने एक द्रोण धान दान करने से बड़ा फल पाया था ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥

दोसौ उनसठवाँ अध्याय ।

व्यासजी का युधिष्ठिर से मुद्गल ब्राह्मण के एक द्रोण धान के दान की कथा कहना ।

युधिष्ठिर बोला हे भगवन्, महामुने ! उस महात्मा मुद्गल ने एक द्रोण धान किस प्रकार से दान किये और किस विधि से किसको दिये जिससे राजाओं के धर्म को जाननेवाले ईश्वर प्रसन्न और तृप्त हो गये । मेरी समझ में उस

धर्मचारी का जन्म सफल हो गया १ । २ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! मुद्गल-नामी एक ब्राह्मण कुरुक्षेत्र का निवासी था और बड़ा जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, सत्यवादी और दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला था । उसकी वृत्ति शिलोञ्छ थी अर्थात् वह अपना पेट शिला बीनकर जो अन्न लाता था उससे भरता था ३ और क्रियावान्, तपस्वी और अतिथि की पूजा करनेवाला था और कपोतवृत्ति में स्थित होकर इष्टीकृत यज्ञ किया करता था ४ उसने अपनी स्त्री और पुत्रसहित पक्षभर में एक दिन भोजन करने का नियम ले लिया और इस प्रकार से उसने कपोतवृत्ति से अर्थात् कपोत की भांति एक द्रोण धान इकट्ठे कर लिये ५ वह ब्राह्मण मत्सरता से रहित था और दर्शपौर्णमास नाम यज्ञ करता था और जो कुछ अन्न देवता,अतिथियों को देने पर शेष रह जाता था उसी से अपना निर्वाह करता था ६ उसके दिये हुए अन्न को त्रिलोकीनाथ इन्द्र देवताओं सहित ग्रहण करता था ७ एक समय जब पर्वकाल आया तब उस ब्राह्मण ने बड़ी प्रसन्नता से अतिथियों को अन्न दान दिया और मत्सरता न होने के कारण से जो अन्न दान देने से शेष बच रहा वह अतिथियों के दर्शन से और बढ़ गया, इस प्रकार से सैकड़ों ज्ञानी ब्राह्मण भोजन कर गये और उसका अन्न बढ़ता ही चला गया ८ । ९ और कारण बढ़ने का यह था कि उस ब्राह्मण ने जो अन्न का त्याग कर दिया था वह त्याग विशुद्ध अर्थात् सच्चे मन से था । इसके पीछे उस ब्राह्मण का हाल दुर्वासा ऋषि ने सुना १० हे पाण्डव ! वे उसके पास दिगम्बर, उन्मत्त के समान अपूर्व रूप धारण करके अनेक प्रकार के परुष वचन बोलते हुए आये और उस वेदपाठी ब्राह्मण से बोले ११ । १२ कि हे द्विजसत्तम ! मैं अन्न के लिये तुम्हारे पास आया हूं । मुद्गल बोला कि आपका आना शुभ हो, आइये । यह कहकर उस ब्राह्मण ने दुर्वासा को बड़ी श्रद्धा से पाद्य और आचमन कराया और अन्न को तैयार करके उनके सामने परोस दिया । दुर्वासा भूख के कारण से उस अन्न को खागये तब उस अतिथि व्रती व धृतव्रती ब्राह्मण ने और अन्न परोसा, वह भी उन्होंने खा लिया । इस प्रकार से जितना अन्न उस ब्राह्मण ने बनाया था सब दुर्वासा ने खा लिया और जो जूंठन बची थी उसको अपने शरीर में लगाकर दुर्वासा चल दिये १३ । १७ उस पक्ष में वह ब्राह्मण निराहार रह गया और जब दूसरा पक्ष पूरा हुआ तब फिर दुर्वासा चले आये और उक्त प्रकारसे सब अन्न खा गये १८ इसी

प्रकार से दुर्वासाजी ने उस ब्राह्मण को क्षुधा से क्रियाहीन करने के लिये छह पक्ष तक ऐसा ही किया और उस ब्राह्मण को कुछ भोजन नहीं मिला परंतु दुर्वासा उसको क्रियाहीन न कर सके। वह अपनी स्त्री और अपने पुत्रसहित वही शिला बीन कर अन्न लाने की वृत्ति करता रहा। क्रोध, मत्सरता, अपमान और संभ्रम छह पक्ष तक भूखा रहने पर भी उस ब्राह्मण के निकट न जा सके १६। २१ तब दुर्वासा उसके मन को विकार-रहित, शुद्ध और निर्मल देखकर प्रसन्न हुए और बोले कि इस लोक में तेरे समान कोई मनुष्य दानी और मत्सरता-रहित नहीं है २२। २३ यह रसों के स्वाद को चाहनेवाली जीभ मनुष्य को रसों की ओर खींचती है और क्षुधा से मनुष्य का धैर्य जाता रहता है और प्राण अन्न के आश्रय रहता है और मन बड़ी कठिनता से वश में होता है और मन और इन्द्रियों को एकाग्र करना भी विना तप के दुर्लभ है और जो वस्तु श्रम से इकट्ठी की जाती है उसको त्यागने में भी मन को बड़ा कष्ट होता है। परंतु हे साधो! तुम में मैंने एक भी बात नहीं पाई। तुमने सबको अपने वश कर लिया है २४।२६ हम तुम से मिलकर बहुत प्रसन्न और अनुगृहीत हुए। तुम उत्तम पुरुष हो, इन्द्रियों को तुमने जीत लिया है और तुम बड़े धैर्यवान् अन्न का विभाग अच्छे प्रकार से करनेवाले, दयावान्, सत्यवादी और धर्मात्मा हो। तुमने अपने शुभ कर्मों से सब लोक जीत लिये। अब तुमको परमगति प्राप्त होगी २७। २८ स्वर्गवासी भी तुम्हारे महादान की प्रशंसा करते हैं। तुम सदेह स्वर्ग को जाओगे २६ मुनि दुर्वासा यह कह ही रहे थे कि इतने में देवदूत बड़ा दिव्य विमान जो कि हंस, सारसों के चित्रों से संयुक्त, किंकिणीजालों की मालाओं से विभूषित, कामगामी, आश्चर्यदायक होकर दिव्य गन्धवाला था उसे लेकर मुद्गल के पास आ पहुँचा और कहने लगा कि हे ब्रह्मर्षे! आप इस विमान पर सवार हूजिये, इसको आपने अपने कर्मों से जीत लिया। आप परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ३०। ३२ यह सुनकर मुद्गल बोला कि हे देवदूत! मैं आपको अपना मित्र बनाके पूछता हूं कि स्वर्गवासी लोग क्या तपस्या करते हैं और स्वर्ग में क्या क्या सुख मिलता है और क्या दोष है? कृपा करके सत्य सत्य जैसा वृत्तान्त हो कहिये। उसको सुनकर मैं अपने स्वर्ग जाने का निश्चय करूंगा॥ ३३। ३६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५९॥

दोसौ साठवाँ अध्याय।

देवदूत से स्वर्ग के दोष-गुण सुनकर मुद्गल का स्वर्ग को न जाकर निर्वाणपद को पाना।

देवदूत बोला हे महर्षे! आपकी बड़ी अच्छी बुद्धि है जो आप निर्बुद्धि के समान पूछते हैं कि स्वर्ग में क्या दोष और क्या सुख है? स्वर्ग का सुख माननीय और प्राप्त करने के योग्य है। वह स्वर्ग अर्थात् सुखलोक सबसे ऊंचा और सत्पथ है। हे मुद्गल! वहां सत्पुरुष देवयान मार्ग से जाते हैं अर्थात् विमान में बैठकर जाते हैं। झूंठे, नास्तिक तथा तपस्या और यज्ञ न करनेवाले मनुष्य वहां नहीं जा सकते हैं १। ३ वहां उन लोगों को वास मिलता है जो धर्मात्मा, चित्त को जीतनेवाले, शान्तस्वरूप, दान्तस्वरूप, मत्सरतारहित, दानी, धर्मपरायण, शूरता से युद्ध में मरनेवाले, शम और दम के अभ्यासी हैं। वहां देवता, साध्यगण, विश्वेदेवा, महाऋषि, यामाधामानाम गण और गन्धर्व, अप्सरा, पृथक् पृथक् शुभ लोक प्रकाशमान, तेजरूपी और सब पदार्थों से परिपूर्ण हैं। ये लोक उन मनुष्यों को मिलते हैं जो पुण्य और सत्पुरुषों के कर्म करते हैं ४। ७ वहीं तेंतिस सहस्रयोजन परिधि रखनेवाला सुनहरा पर्वत है और नन्दन-वन आदि देवताओं के विहार करने के वन हैं ८ हे महामुने! पुण्यात्मा लोग वहां जाकर विहार करते हैं और वहां के रहनेवालों को भूंख, प्यास, गरमी, सरदी और भय नहीं जान पड़ते हैं और ग्लानि भी कोई नहीं करता है और न किसी को कुछ अशुभ होता है। चारों ओर से वहां सुखदायी और मनोहर सुगन्ध चली आती है और ऐसे शब्द सुनाई देते हैं जिनसे मन प्रसन्न होता है और कानों को अच्छे लगते हैं और शोक, बुढ़ापा और विलाप किसी को नहीं सताते हैं ९। ११ उस लोक में इस लोक के किये हुए कर्मों का फल मिलता है। उन्हीं कर्मों से वहां मनुष्यों को ऐश्वर्य प्राप्त होता है १२ हे मुद्गल! वहां जानेवाले मनुष्यों के शरीर कर्मज और तैजस हो जाते हैं। माता पिता से उत्पन्न हुए शरीर नहीं रहते हैं १३ और शरीर में पसीना अथवा दुर्गन्ध नहीं आती है और न कोई वहां मूत्र और विष्ठा करता है और कपड़े भी वहां के रज से मैले नहीं होते हैं १४ और जो माला वहां पहिरी जाती है, वह कुम्हलाती नहीं है। सदैव उसमें सुगन्ध आया करती है और वहां जानेवालों को चढ़ने के लिये विमान मिलता है और वे लोग ईर्ष्या, शोक, श्रम, मोह और मत्सरतारहित होकर सुखपूर्वक बसते हैं १५। १६ इन लोकों के ऊपर और लोक हैं और उनके ऊपर भी दूसरे

लोक हैं। इस प्रकार से लोक के ऊपर लोक चले गये हैं और नीचे के लोक से ऊपर का लोक विशेष दिव्यगुण रखता है १७ हे ब्रह्मन्! पहिले ब्राह्मणों के लोक बड़े शुभ और तेजरूप हैं। पवित्र ऋषिलोग शुभ कर्म करके वहीं जाते हैं १८ और इन लोकों के ऊपर ऋभुनामी देवताओं के लोक हैं। इन देवताओं की पूजा स्वर्गवासी देवता करते हैं १९ ये लोक स्वयं प्रकाशमान, प्रभारूप और सब कामनाओं के देनेवाले हैं। इन लोकों में स्त्री का दुःख नहीं होता है और मत्सरता का नाम नहीं है २० वहां के उक्त देवता अपना निर्वाह आहुतियों से नहीं करते हैं और न अमृत भोजनकरते हैं। उनके शरीर दिव्य हैं, वहां विग्रह का नाम नहीं है २१ ये देवताओं के देवता सुख नहीं चाहते हैं और सनातन हैं, कल्प के परिवर्तन होने पर उनका नाश नहीं होता है २२ वे न बूढ़े होते हैं, न मरते हैं और उनको हर्ष, प्रीति, सुख, दुःख, राग और द्वेष भी कुछ नहीं होता है २३ उस परा गति को देवता भी चाहा करते हैं। काम्य-पुरुषों को उस गति का मिलना दुर्लभ और अगम्य है २४ ये देवता सब तेंतीस हैं। इनके लोक ज्ञानी मनुष्यों को श्रेष्ठ नियम के साधन और विधिपूर्वक दान करने से मिलते हैं। सो हे मुद्गल! तुम्हारे दान के कारण से यह संपत्ति तुमको सुखपूर्वक मिली है। अब तुम उस संपत्ति को भोगो २५। २६ स्वर्ग के सुख और अनेक लोकों के जो जो गुण थे वे हमने तुमसे कहे। अब उनमें से जो जो दोष हैं उनको भी सुनो २७ हे मुद्गल! स्वर्ग में मनुष्य अपने किये हुए कर्म का फल ही केवल भोगता है और कर्म नहीं कर सक्ता है इससे उस कर्म की दिन दिन जड़ कटती जाती है और जब कर्म का फल पूरा पूरा भोग चुकता है तब क्षीणपुण्य होने से पृथ्वी पर गिरा दिया जाता है। इसको मैं स्वर्ग का दोष समझता हूं २८। २९ क्योंकि नीचे स्थान पर रहनेवाले पुरुषों को जो दुःख परम ऐश्वर्यवान् मनुष्यों को देखकर होता है वह दुष्कर होता है ३० जब मनुष्य स्वर्ग से गिराया जाता है तब उसका ज्ञान मोह से नष्ट हो जाता है और माला के कुम्हलाने और स्वर्ग से गिरने के समय उसको भय होता है ३१ सो हे मुद्गल! ब्रह्मलोक से लेकर सब ऊपर के लोकों में यही एक दारुण दुःख है नहीं तो स्वर्ग आदि लोकों में अयुतों गुण ही गुण हैं ३२ और एक यह भी गुण है कि जब वह स्वर्ग से गिरा दिया जाता है तब पृथ्वी पर भी ऐसी जगह जन्म पाता है जहां उसको सब सुख प्राप्त होते हैं, परंतु जो

वह वहां ज्ञानी न होकर नीचकर्म करता है तो फिर उसको अधमगति प्राप्त होती है ३३ । ३४ हे ब्रह्मन् ! मनुष्य जो कुछ कर्म यहां करता है उसका फल परलोक में भोगता है अर्थात् यह लोक कर्मभूमि और स्वर्गलोक भोगभूमि है ३५ मुद्गल बोले कि हे देवदूत ! तुमने स्वर्लोक के ये बड़े भारी दोष कहे हैं । अब जो दूसरा लोक निर्दोष हो उसे कहिये ३६ देवदूत बोला कि ब्रह्मलोक से ऊपर श्रीविष्णुजी का परम धाम है जोकि शुद्ध, सनातन, ज्योतिस्स्वरूप है जिसे परब्रह्मरूप कहते हैं ३७ वहां दम्भी, लोभी, महाक्रोधी, मोही, द्रोही और विषयी पुरुष नहीं जाते हैं । वहां केवल वे ही मनुष्य वास पाते हैं जो ममता तथा अहंकार से रहित, निर्द्वन्द्व और जितेन्द्रिय होकर ध्यानयोग में परायण रहते हैं ३८ । ३९ यह सब वृत्तान्त हमने तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में कहा । अब चलिये, देर न करिये ४० व्यासजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! मुद्गल ने उक्त वृत्तान्त को सुनकर विचार करके देवदूत से कहा ४१ कि हे तात ! मैं तुमको नमस्कार करता हूं, तुम सुखपूर्वक जावो । मुझको सुख अथवा दोषयुक्त स्वर्ग से कुछ काम नहीं है ४२ क्योंकि स्वर्ग से गिरने के समय बड़ा दुःख और दारुण परिताप होता है और स्वर्गवासियों को इस लोक में फिर आना पड़ता है, इसी कारण से मेरी इच्छा स्वर्ग जाने की नहीं है ४३ अब मैं उसी शुद्ध और बड़े स्थान को प्राप्त करने का यत्न करूंगा जहां जाकर मनुष्य को शोक और पीड़ा नहीं होती है और जहां से फिर लौटकर मनुष्य नहीं आता है ४४ यह सुनकर मुद्गल ने देवदूत को विदा कर दिया और आप शिला बीनने की वृत्ति रखकर शम का अभ्यास करने लगा ४५ और निन्दा, स्तुति और ढेला, पत्थर और सुवर्ण को एकसा समझकर ज्ञानयोग से ध्यान में मग्न रहने लगा ४६ उस ध्यान योग से उसे बल अर्थात् परम वैराग्य और उत्तम बुद्धि अर्थात् ज्ञान हो गया और जिससे कि उसको सनातन और निर्वाणपद को देनेवाली सिद्धि प्राप्त हो गई ४७ इस कारण से हे युधिष्ठिर ! तुमभी समृद्ध राज्यके भ्रष्ट होने का शोच मत करो तपसे फिर तुमको राज्य मिलेगा ४८ मनुष्य को सुख के पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख, क्रमपूर्वक चक्र के आरों के समान मिला करता है ४९ सो हे अपार पराक्रमिन् ! तेरह वर्ष के व्यतीत होने पर तुमको फिर बाप दादे का राज्य मिलेगा । तुम किसी बात की चिन्ता मत करो ५० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भगवान् व्यासजी उक्त प्रकार से कहकर तप करने को अपने आश्रम को चले गये ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥

दोसौ एकसठवाँ अध्याय।

दुर्वासा ऋषि का शिष्यों सहित आना व दुर्योधन का उनकी सेवा कर उनसे वरदान पाना।

उक्त कथा को सुनकर जनमेजय बोला कि हे महामुने, वैशंपायनजी! जिस समय महात्मा पाण्डव उक्त प्रकार से वन में मुनियों की चित्र विचित्र कथायें सुनते थे और सूर्य के दिये हुए पात्र जिसमें बनाया हुआ अन्न द्रौपदी के भोजन करने के समय तक अक्षय बना रहता था और वन के मृगों के मांस से ब्राह्मणों को तृप्त करते थे, उस समय धृतराष्ट्र के पापी और दुरात्मा पुत्र, दुःशासन, कर्ण और शकुनि की सलाह में रहनेवाले दुर्योधन ने पाण्डवों के साथ कैसा बर्ताव किया। हे भगवन्! कृपा करके यह सब वृत्तान्त वर्णन कीजिये १।५ वैशंपायनजी बोले कि महाराज! बहुत अच्छा, सुनिये। दुर्योधन पाण्डवों की वृत्ति नगरवासियों की सी होने को सुनकर कर्ण और दुःशासन की सलाहपूर्वक पाण्डवों के साथ पाप करना विचारने लगा। इसी अवसर में उसके पास महातपस्वी और तेजस्वी दुर्वासाऋषि दशसहस्र शिष्यों को साथ लिये हुए आन पहुँचे। उन परम कोपशाली मुनि को देखकर ६।८ दुर्योधन ने भाइयों सहित बड़ी नम्रता से उनका निमन्त्रण किया और उनके समीप किंकर के समान रहकर उनकी सब प्रकार से पूजा की। दुर्वासाजी ने वहां कई दिन वास किया और दुर्योधन शाप के भय से निरालस्य होकर दिन रात्रि उनकी सेवा में बना रहा ६।११ वे महात्मा कभी यह कहकर स्नान करने को चले जाते थे कि मैं बहुत भूखा हूँ जल्दी अन्न लाओ और देर में लौटकर आते थे और कभी यह कहकर अन्तर्धान हो जाते थे कि अब मुझे क्षुधा नहीं है, मैं भोजन नहीं करूंगा और फिर अकस्मात् आकर कहने लगते थे कि हमारे लिये जल्दी भोजन लाओ और कभी आधीरात को उठ बैठते और पहिले के समान रसोई करवाते और भोजन न करते। इस प्रकार से दुर्वासाजी छल से परीक्षा करते रहे परंतु जब उन्होंने दुर्योधन के मन में किसी प्रकार का विकार अथवा क्रोध न पाया तब वे प्रसन्न हुए और दुर्योधन से बोले कि हे भरतवंशिन्! जो तेरी इच्छा हो सो मांग ले। मेरे प्रसन्न होने पर तुझे कोई पदार्थ अलभ्य नहीं रह सकता है १२।१६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! दुर्योधन ने दुर्वासाजी के उक्त वचनों को सुनकर अपने को जीता हुआ समझा और कर्ण, दुःशासन आदि की सलाह से जो उन्होंने पहिले ही से करली थी, उस दुर्बुद्धि ने

प्रसन्न होकर यह वरदान मांगा कि महाराज! जैसे आप शिष्यों सहित मेरे यहां अतिथि हुए हैं, उसी प्रकार से राजा युधिष्ठिर के यहां भी, जो हमारे कुल में बड़ा धर्मात्मा गुणी और शीलसंपन्न है और अपने भाइयों सहित वन में रहता है, उस समय जाकर अतिथि हूजिये जब राजपुत्री द्रौपदी अतिथियों को भोजन कराके और आप भी भोजन पाकर सुख से बैठी होवे १७। २२ यह सुनकर दुर्वासाजी यह कहकर चल दिये कि तेरी प्रीति के कारण से मैं ऐसा ही करूंगा। दुर्योधन उसको सुनकर अपने को सिद्धार्थ समझने लगा २३। २४ और कर्ण का हाथ अपने हाथ से पकड़कर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उस समय कर्ण ने भी आनन्द से उससे कहा २५ कि तेरी कामना प्रारब्ध से पूरी हुई, प्रारब्ध से तुम्हारी वृद्धि हुई और प्रारब्ध ही से तुम्हारे शत्रु दुस्तर व्यसनार्णव में डूबे २६ अब वे पाण्डव दुर्वासा की क्रोधरूपी अग्नि में पड़कर अपने पापों से दुस्तर नरक में पड़ेंगे २७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इस प्रकार से वे सब छली और पापी आपस में हँसते हुए दुर्योधन आदि अपने-अपने स्थानों को चले गये॥ २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६१॥

दोसौ बासठवाँ अध्याय।

दुर्वासा का पाण्डवों के पास जाना तथा श्रीकृष्णजी का पाण्डव-रक्षार्थ आना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे एक समय दुर्वासा ऋषि पाण्डवों को सुख से बैठे हुए और द्रौपदी को भोजन करके स्थित जानकर दश सहस्र शिष्य साथ लिये हुए काम्यकवन में जा पहुँचे। उनको देखकर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर उनको लिवा लाया और अच्छे आसन पर उनको बैठाकर और विधिवत् पूजा करके उनका निमन्त्रण किया और कहा कि महाराज! आह्निक कर्म अर्थात् स्नान संध्या आदि करके शीघ्र आ जाइये १।४ यह सुनकर दुर्वासा इस बात को विना शोचे विचारे कि यह मुझको शिष्यों सहित कैसे भोजन करावेगा, स्नान करने चले गये ५ और जल में स्नान करने लगे। उस समय पतिव्रता द्रौपदी अन्न के लिये बहुतसी चिन्ता करने लगी परंतु जब उसको अन्न मिलने की कोई राह न जान पड़ी तब वह कंस के मारनेवाले श्रीकृष्णजी का ध्यान करके विनय करनेलगी कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाबाहो! हे देवकीनन्दन! हे अविनाशिन्! ६। ८

हे वासुदेव! हे जगन्नाथ! हे भक्तार्तिनाशन, हे विश्वात्मन्, हे विश्वजनक, हे विश्वकर्त्तः, हे प्रभो, हे अव्यय, हे शरणागतपालक, हे गोपाल, हे प्रजापाल, हे परात्पर, हे चित्तवृत्तिप्रवर्त्तक! तुमको मैं नमस्कार करती हूं! ६। १० तुम श्रेष्ठ हो, वरदाता हो, अनन्त हो, अगतियों की गति हो, पुराणपुरुष हो, अचिन्त्य हो, अगोचर हो, सर्वाध्यक्ष हो, पराध्यक्ष हो, मैं तुम्हारी शरण हूं। हे शरणागतवत्सल! अपनी कृपा से मेरी रक्षा करो ११। १२ तुम्हारा वर्ण नीले कमल के समान है, नेत्र तुम्हारे कमलगर्भ के तुल्य अरुण हैं और तुम पीताम्बर और कौस्तुभमणि धारण किये हुए प्रकाशमान हो, सब जीवों के आदि, अन्त तुम्हीं हो, तुम्हीं जीवों के परायण और परसे भी परतर, ज्योतीरूप विश्वात्मा हो और सर्वतोमुख हो १३। १४ हे देवेश! तुम्हीं को जगत् का परमबीज और सब सम्पत्तियों का निधान कहते हैं। तुम ऐसे नाथ के होने से मुझको किसी आपत्ति से भय नहीं लगती है १५ हे नाथ! जैसे आपने पहिले मुझे दुःशासन के हाथ से सभा में छुटाया था उसी प्रकारसे अब भी मेरा उद्धार कीजिये १६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! द्रौपदी की उक्त स्तुति को सुनकर देवदेवेश भक्तवत्सल श्रीकृष्णजी उसके संकट को जानकर रुक्मिणीजी को जो उनके पास शय्या पर सो रही थी छोड़कर वहां चले आये १७। १८ द्रौपदी उनको देखकर बड़ी प्रसन्न हुई और उसने प्रणाम करके उनसे दुर्वासा ऋषि के आने का वृत्तान्त कहा १९ यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि हे द्रौपदि! मुझे भूख बहुत लगी हुई है, जल्दी से मुझे कुछ भोजन करने को दे, पीछे और काम कीजियो २० यह सुनकर द्रौपदी लज्जित होकर बोली कि महाराज! सूर्य की दी हुई स्थाली में उसी समयतक अन्न रहता है जबतक मैं भोजन नहीं कर लेती हूं २१ सो मैं भोजन करचुकी, अब अन्न का लेशमात्र नहीं है। तब श्रीकृष्णजी बोले कि अयि कृष्णे! मैं मार्गश्रम और क्षुधा से बहुत पीड़ित हूं, यह समय हँसी का नहीं है, जल्दी से उस स्थाली को मेरे पास लाकर मुझे दिखला २२। २३ इसके पीछे क्लेशविनाशक महाबाहु श्रीकृष्णजी ने हठ से वह स्थाली मँगवाई और उसके कण्ठ में जो कुछ शाक लगा हुआ था उसे खालिया। उस समय श्रीकृष्णजी ने कहा कि भक्तभयहारी, ईश्वर, विश्वात्मा, यज्ञभोक्ता पुरुष इस अन्न से प्रसन्न और तृप्त होजावें २४।२५ इसके उपरान्त श्रीकृष्णजी ने सहदेव से कहा कि तुम जाकर दुर्वासाजी को

भोजन करने के लिये शीघ्र बुला लाओ। यह सुनकर सहदेव उन मुनियों को बुलाने को चल दिये परंतु सहदेव के पहुँचने के पहिले जब वे मुनि नदी में जाकर स्नान करने लगे तब उनको अन्न के रस को साथ लिये हुए डकारें आने लगीं, वे उन डकारों को देखकर जल के बाहर निकल और परस्पर एक दूसरे को देखकर दुर्वासा से कहने लगे कि महाराज! आप अन्न तय्यार करने को कहकर स्नान करने को यहां आये हैं परंतु हमारा उदर कण्ठाग्र तक भरा हुआ है हमलोग क्या भोजन करेंगे? आपने वृथा भोजन तय्यार कराये हैं २६। ३० दुर्वासाजी बोले कि वृथा भोजन तय्यार कराने से हमने राजऋषि युधिष्ठिर का बड़ा अपराध किया, वह क्रूरदृष्टि से देखकर हमको भस्म कर डालेगा। हे शिष्यो! मुझको राजा अम्बरीष का वृत्तान्त याद है, इससे मैं हरि के पादाश्रित जनों से बहुत डरता हूं। ये पाण्डव भी बड़े महात्मा, धर्मात्मा, शूरवीर, विद्यावान्, व्रती, तपस्वी, सदाचारी और वासुदेवजी के परमभक्त हैं। निश्चय क्रोध करने पर वे हमलोगों को इस प्रकार से भस्म कर डालेंगे जैसे अग्नि रुई के ढेर को दग्ध कर डालती है। यह सुनकर दुर्वासा के सब शिष्य गुरुसहित भयभीत होकर पाण्डवों से विना कहे सुने भाग गये ३१। ३५ वैशंपायनजी बोले कि श्रीमान् गुरु मुनिनायक दुर्वासाजी से कहे हुए वे सब ब्राह्मणलोग पाण्डवों से अत्यन्त भयभीत होकर दशो दिशाओं को पलायित हो गये ३६ जब सहदेव वहां पहुँचा और उस देवनदी पर उसको दुर्वासाजी शिष्यों सहित न मिले तब वह उनको वहां ढूंढ़ने लगा ३७ परंतु उसको उनका कुछ पता नहीं मिला। इसके उपरान्त उस वन में रहनेवाले तपस्वियों ने उनके चलेजाने का वृत्तान्त सहदेव से कहा और उसने सब हाल युधिष्ठिर से आकर कह सुनाया ३८ उसको सुनकर पाण्डव कुछ कालतक उनके लौटने की बाट देखते रहे, उपरान्त कहने लगे कि दुर्वासाजी आधीरात के समय अकस्मात् हमलोगों को आकर छलेंगे, हमलोग इस दैवरचित कष्ट के पार कैसे जावें? इस प्रकार से पाण्डवों को श्वास ले लेकर चिन्ता करते हुए देखकर श्रीकृष्णजी ने प्रत्यक्ष होकर कहा ३९। ४१ कि हे पाण्डवो! मैं उस परमक्रोधी ऋषि के आने की आपत्ति को जानकर द्रौपदी का बुलाया हुआ शीघ्र यहां आया हूं ४२ तुम उस ऋषि से किंचित भय मत करो। वह तुम्हारे तेज से भयभीत होकर पहिले ही से भाग गया है ४३ सदा धर्म करनेवालों को कभी पीड़ा नहीं होती है। अब मैं जाया चाहता

हूं, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे ४४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पाण्डव द्रौपदीसहित श्रीकृष्णजी के वचन को सुनकर स्वस्थचित्त होगये और कहने लगे ४५ हे समर्थ! हे गोविन्द! तुम ऐसे नाथ के द्वारा हम इस बड़ी आपत्ति से इस प्रकार से बच गये जैसे समुद्र में डूबता हुआ मनुष्य नौका पाकर बच जाता है ४६ आपका कल्याण हो। इस प्रकार से श्रीकृष्णजी पाण्डवों से बिदा होकर चले गये और पाण्डव द्रौपदीसहित प्रसन्न होकर एक वन से दूसरे वन में विहार करने लगे। इस प्रकार से दुर्योधन आदि दुरात्माओं ने पाण्डवों से छल किया और वह छल उनका व्यर्थ हो गया। हे राजा जनमेजय! जो तुमने हमसे पूछा था वह उक्त प्रकार से हम कहचुके॥ ४७। ४८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६२॥

दोसौ तिरसठवाँ अध्याय।

पाण्डवों के स्थान में आकर राजा जयद्रथ का दूत द्वारा द्रौपदी का हाल पूछना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भरतसत्तम, महारथी, पाण्डव उस काम्यकवन में घूम घूमकर देवताओं के तुल्य विहार करने लगे। उस वन में मृग बहुत से थे, पाण्डव उनकी अहेर खेलते थे और ऋतुकाल के अनुसार फूले फले हुए वन की रम्य पंक्तियों को देखते हुए वन में विहार करते थे। इस प्रकार से पाण्डवों ने कुछ काल वास किया। उपरान्त वे पांचों भाई ब्राह्मणों के लिये अहेर मारने के लिये एक ही साथ चारों दिशाओं को चले गये और अपने पुरोहित धौम्यऋषि की आज्ञा से द्रौपदी को तृणबिन्दुऋषि के आश्रम में छोड़ गये १। ५ उनके चले जाने पर सिन्धुदेश का राजा जयद्रथ, जिसके बाप का नाम बृहद्रथ था और जो अपना विवाह करने के लिये शाल्वदेश को जाता था, बहुत से राजा और सेना आदि को साथ लिये हुए काम्यकवन में आ पहुँचा और उसने उस निर्जन वन में आश्रम के द्वार पर स्थित पाण्डवों की प्रियभार्या यशस्विनी द्रौपदी को देखा जो अपने प्रकाश और अत्यन्त सुन्दरस्वरूप से उस वन के उद्देश को इस प्रकार से प्रकाशित कर रही थी मानों श्यामघटा में बिजली चमक रही है। उसको देखकर सब लोग उसके हाथ जोड़कर विचारने लगे कि यह कोई अप्सरा है, अथवा देवकन्या है, या देवताओं की रची हुई माया है ६। १० इसके पीछे वह दुष्टचित्त राजा जयद्रथ उस निर्दोष अङ्गवाली बाला को देखकर कामासक्त हो गया और कोटिकास्य नामी क्षत्रिय को बुलाकर कहा

कि यह सुन्दरी किसकी कन्या अथवा भार्या है, मुझे तो यह मानुषी नहीं जान पड़ती है। जो यह सुन्दरी मुझको मिल जाय तो फिर मैं विवाह से कुछ प्रयोजन न रक्खूं इसीको लेकर अपनी राजधानी को चला जाऊँ ११ । १३ सो हे सौम्य, कोटिकास्य ! तुम जाकर इससे पूछो कि तू किसकी बेटी है, इस कण्टक वन में किस लिये और कहां से आई है १४ कदापि यह पतली कमर रखनेवाली सुन्दरी मुझको चाहे तो मैं इस श्रेष्ठ स्त्री को पाकर पूर्णकाम हो जाऊंगा। जाओ इसके स्वामी को पूछ आवो १५ । १६ यह सुनकर वह कुण्डलधारी कोटिकास्य रथ से उतरकर द्रौपदी के पास गया और उससे इस प्रकार से पूछने लगा मानों गीदड़ व्याघ्र की वधू से पूछता है ॥ १७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥

दोसौ चौंसठवाँ अध्याय ।

दूत का द्रौपदी के पास जाकर उसके पति और पिता का नाम पूछना ।

कोटिकास्य बोला हे सुन्दरि ! तू कौन है जो इस वन में अकेली कदम्ब की शाखा को नवाये हुए इस आश्रम को इस प्रकार से प्रकाशित कर रही है मानों रात्रि के समय में अत्यन्त जलती हुई अग्नि की शिखा वायु से कम्पित हो रही है १ तेरा स्वरूप बड़ा सुन्दर है, तुझको इस वन में अकेले में डर नहीं लगता है, सत्य कह तू कौन है। देवी है, या यक्षी है, या दानवी है, या अप्सरा है, या दैत्य की वरांगना है, या सर्पों के राजा की कन्या है, या वनचारी राक्षस की स्त्री है अथवा राजा वरुण, यमराज, चन्द्रमा, कुबेर, धाता, विधाता, सूर्य और विष्णु आदि किसी देवता की पत्नी है। हे भद्रे ! मैं न जानने के कारण से तेरा मान बड़ाकर तुझसे पुछता हूं कि तू किसकी बेटी है और तेरा स्वामी कौन है ? कृपा करके अपने बान्धव, पति और कुल का वृत्तान्त और यहां आने और रहने का प्रयोजन मुझसे कह २ । ५ मैं राजा सुरथ का पुत्र हूं, नाम मेरा कोटिकास्य है और वह जो सुनहरे रथ पर इस प्रकार से विराजमान है जैसे वेदी पर होमी हुई अग्नि, वह त्रिगर्त्त देश के राजा का बेटा है जिसके लोचन चौड़े कमलसम प्रतीत होते हैं। उसका नाम क्षेमकर है और उसके पास ही वह धनुष लिये हुए राजा कुलिन्द का पुत्र है ६ । ७ जिसकी आंखें लम्बी लम्बी हैं और तेरी ओर देख रहा है। यह सदैव फूले हुए पर्वत पर रहता है और जो वह श्यामवर्ण युवा पुरुष पुष्करिणी के पास खड़ा हुआ है वह

इक्ष्वाकुवंशी राजा सुबल का पुत्र है और जिसके पीछे अङ्गारक, कुञ्जर, गुप्तक, शत्रुञ्जय, संजय, सुप्रवृद्ध, भयङ्कर, भ्रमर, रवि, शूर, प्रताप और कुनह आदि बारह-सौ ध्वजाधारी वीरक राजपुत्र लाल घोड़ों के रथ में अग्नि के समान बैठकर चलते हैं और जिसके साथ छह सहस्र रथ, हाथी, घोड़े और पयादे हैं, वह जयद्रथनामी सौवीरदेश का राजा है। हे सुभगे! तुमने भी उसका नाम सुना होगा, उसके भाई बलाहक, अनीक और विदारण आदि हैं ८। १२ ये वीर भी राजा जयद्रथ के पीछे चलते हैं और राजा इनसे रक्षित होकर इस प्रकार से जाता है जैसे इन्द्र मरुद्गणों से रक्षित होकर गमन करता है। सो हे सुन्दरि! हम सब न जाननेवाले तेरे पति और पिता के नाम को जानना चाहते हैं॥ १३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६४॥

दोसौ पैंसठवाँ अध्याय।

द्रौपदी का कोटिकास्य दूत से अपने कुल का वृत्तान्त कह उन सबका निमन्त्रण करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजपुत्री द्रौपदी ने कोटिकास्य के उक्त वचनों को सुनकर उसकी ओर मन्द दृष्टि से देखा और शाखा छोड़कर कौशिक वस्त्र से अपने शरीर को ढककर श्वास लेकर बोली १ कि हे राजपुत्र! मैं बुद्धि से जानती हूं कि मुझको तुमसे बातचीत करना उचित नहीं है परंतु तेरे वाक्य का उत्तर देनेवाला यहां कोई स्त्री अथवा पुरुष नहीं है, मैं ही अकेली हूं इससे तुमसे इतना कहती हूं कि मैं अपने धर्म में निरत रहकर अकेली इस वन में तुम अकेले से क्यों कर बात करूं परंतु मैं जानती हूं कि तुम सुरथ के पुत्र हो और नाम तुम्हारा कोटिकास्य है, इससे मैं अपने बांधव और विख्यातकुल का वृत्तान्त तुमसे कहती हूं २। ४ हे शैब्य! सुनो, मैं राजा द्रुपद की बेटी हूं, नाम मेरा कृष्णा कहते हैं, मैंने अपना विवाह पांच पुरुषों से किया है जो खाण्डवप्रस्थ में रहते थे तुमने भी उनको सुना होगा। नाम उनके ये हैं युधिष्ठिर १ भीमसेन २ अर्जुन ३ नकुल ४ और सहदेव ५ वे पांचो पाण्डव अहेर खेलने को गये हैं और मुझे यहां छोड़ गये हैं ५। ६ युधिष्ठिर पूर्व दिशा को गये हैं, भीमसेन दक्षिण की ओर हैं और अर्जुन पश्चिम दिशा और नकुल, सहदेव उत्तर दिशा में अहेर खेलने गये हैं। मैं जानती हूं कि वे अब आने ही वाले हैं ७ तुम लोग अपनी अपनी सवारियों को खोलकर

यहां ठहर जावो। राजा युधिष्ठिर अतिथि का बड़ा आदर करते हैं, तुमको देखकर प्रसन्न होंगे सो तुम उनके आने पर सत्कार सहित जहां इच्छा हो चले जाना ८ यह कहकर चन्द्रमुखी द्रौपदी उन सबको अतिथि विचारकर पर्णशाला के भीतर चली गई॥ ९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६५॥

दोसौ छांछठवाँ अध्याय।

जयद्रथ का द्रौपदी के पास जाकर अपनी भार्या होने के लिये प्रार्थना करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे कोटिकास्य चला गया और उसने उन सब राजाओं से सब वृत्तान्त कहा उसको सुनकर जयद्रथ बोला कि हे कोटिकास्य! तू क्यों चला आया जिस समय वह सुन्दरी तुझसे बात कर रही थी उस समय मेरा मन उसमें रम गया उसको देखकर और स्त्रियां मुझे शाखामृगों की स्त्रियों के तुल्य दिखाई देती हैं, हे महाबाहो! यह तुमसे मैं सत्य कहता हूं, उस सुन्दरी ने मेरा मन दर्शनमात्र ही से हर लिया जो वह स्त्री मानुषी होय तो हे शैव्य! तू फिर जाकर उससे मेरा हाल कह यह सुनकर कोटिकास्य बोला कि यह यशस्विनी राजपुत्री द्रौपदी पांचों पाण्डवों की पटरानी है आप उसको लेकर सौवीरदेश को चले चलिये १। ६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर दुष्टचित्त जयद्रथ बोला कि मैं जाकर द्रौपदी को देखता हूं ७ यह कहकर वह अपने छहों भाइयों सहित वहां चला गया और सिंह-सभा में भेड़िया के समान उस पवित्र आश्रम के भीतर जाकर द्रौपदी से बोला ८ कि हे वरारोहे! तुम अपने पतियों सहित कुशल हो? द्रौपदी बोली कि हां, कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर और उसके भाई और मैं और जिस किसी और को तुम पूछते हो सब कुशल हैं कहो तुम्हारे राज्य, देश, कोष और सेना आदि में कुशल है? और तुम अकेले शिबि, आब्य, सौवीर, और सिन्धु आदि देशों को अच्छी तरह पालन करते हो? इस पाद्य को ग्रहण करके आसन पर बैठ जाओ, मैं तुमको प्रातःकाल भोजन करने के लिये पांच सौ मृग देती हूं, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर तुमको पृषत, न्यंकु, हरिण, शरभ, शश, ऋक्ष, रुरु, शंबर, गवय, वराह, महिष और अन्य अन्य जाति के जितने मृग हैं, देंगे ९। १५ यह सुनकर जयद्रथ बोला कि हमको प्रातःकाल के लिये भोजन की आवश्यकता नहीं है, तेरा दिया सब कुछ है, अब तू मेरे रथ पर सवार होकर मेरे साथ चली चल, और

सुन्दर सुख भोग १६ तुझको इन कृपण अचेत वनवासी लक्ष्मी और राज्य से हीन पाण्डवों के पास रहना उचित नहीं है १७ जो स्त्रियां ज्ञानी होती हैं, वे दरिद्री पति के पास नहीं रहती हैं, सेवा करना धनवान् की ही उचित है, अब तू पाण्डवों की भक्ति करके क्लेश मत सहे, ये पाण्डव राज्य और लक्ष्मी से भ्रष्ट होकर बहुत वर्षों से नष्ट होगये हैं इससे अब तू इनको छोड़कर मेरी भार्या हो जा और मेरे साथ सब सुख और सिन्धु और सौवीर देशों के राज्य को भोग १८।२० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! द्रौपदी जयद्रथ के हृदयकंपन वचनों को सुनकर भौंहें चढ़ाकर अलग जा बैठी और उसकी बात की निन्दा करके कहने लगी कि हे जयद्रथ ! ऐसी बात न कह, थोड़ी तो लज्जाकर २१।२२ इसके पीछे द्रौपदी ने अपने भर्ताओं से मिलने की इच्छा से उस अपने शत्रु जयद्रथ को बातों से लुभाया ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्षष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

दोसौ सरसठवाँ अध्याय ।

जयद्रथ का द्रौपदी को हर ले जाना और धौम्य पुरोहित का उसके पीछे पीछे जाना ।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे द्रौपदी ने क्रोध से लाल लाल नेत्र करके और भृकुटी को चढ़ाय फटकारकर जयद्रथ से कहा कि हे मूढ़ ! तुझको यशस्वी, महेन्द्रतुल्य, स्वकर्मनिरत, धर्मात्मा यक्ष राक्षसों के जीतनेवाले और महारथी पाण्डवों को निरादर कर ऐसी बात कहते लज्जा नहीं आती है, जो लोग सन्त, तपस्वी, विद्यावान्, गृहस्थी और वानप्रस्थ हैं वे स्तुतियोग्य मनुष्य के विषय में अपने मुख से कोई बुरी बात नहीं निकालते हैं। हां, तुझ से खोटे मनुष्य कुत्ते की भाँति भूँका ही करते हैं १ । ३ मैं जानती हूं कि क्षत्रियों की समाज में ऐसा कोई नहीं है जो तुझको हाथ पकड़कर मुख के बल गिरने से रोक सके ४ तू पहाड़ की शिखर के समान मतवाले हाथी को इस प्रकार से हटाना चाहता है जैसे कोई हाथ में दण्डा लेकर मनुष्यों के इतने बड़े२ झुंडों को हटावे जो धर्मराज को भी जीतने की इच्छा रखते हों ५ और महाबली सिंह को बालकपने से सोता हुआ जानकर उसके पलकों को अपने मुख से उखाड़ना चाहता है परंतु जब तू भीमसेन को देखेगा तब भाग जायगा ६ और मैं यह भी जानती हूं कि तू महावीर अर्जुन से लड़ना नहीं चाहता है किंतु पर्वत की कन्दरा में सोते हुए महा पराक्रमी और उग्ररूप सिंह के लात मारता है और

जो तेरी इच्छा दोनों छोटे पाण्डव अर्थात् नकुल और सहदेव से लड़ने की है, वे भी इस प्रकार से हैं जैसे कोई काल से प्रेरित होकर दो जीभ रखनेवाले काले सर्पों को अपने पांव से दबाना चाहता हो ७।८ और उन वीरों से रक्षित होने पर तू मुझको पकड़कर अपनी गति कर्कटी जलजीव की सी कराना चाहता है जो गर्भधारण करके मर जाती है और इस प्रकार से अपनी वृद्धि चाहता है जैसे बांस, केला और नल केवल अपना नाश करने के लिये फल देते हैं ९ यह सुनकर जयद्रथ बोला कि हे कृष्णे! मुझको सब विदित है मैं उन नरदेवपुत्रों को जैसे हैं जानता हूं मैं तेरे भयभीत वचनों से डरता नहीं हूं १० हम सब श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न हुए हैं और सत्रह गुण रखते हैं और पाण्डव छः गुण न रखने के कारण से हमसे न्यून और गुणहीन हैं ११ इससे तू जल्दी से मेरे साथ हाथी या रथ पर सवार होकर चली चल, केवल बातों से ही मैं तुझको नहीं छोड़ सकता हूं। हां, जो तू दीन वचनों से मेरी प्रार्थना करे और दया चाहे तो कदाचित् छोड़ भी दूं १२ द्रौपदी बोली कि तू बड़ा बल रखनेवाली मुझको दुर्बल समझ रहा है मैं आदर योग्य हूं अपने पकड़े जाने के भय से कभी तेरे सामने दीन वचन नहीं कहूंगी १३ क्योंकि जिसकी सहायता पर श्रीकृष्ण और अर्जुन एक रथ पर सवार हों उसको इन्द्र भी किसी प्रकार से हर नहीं सक्ता है दूसरे दीन मनुष्यों की किनमें गिनती है १४ वह किरीटधारी अर्जुन मेरे निमित्त रथ में बैठकर और तेरी सेना में घुसकर इस प्रकार से सबको मार कर नाश कर देगा जैसे गर्मी की ऋतु में अग्नि सूखे हुए वन में लगकर सबको भस्म कर देती है १५ और जब अन्धक और वृष्णिवंशियों को साथ लेकर श्रीकृष्णजी और कैकयदेश के राजपुत्र मुझको ढूंढ़ेंगे और अर्जुन के गाण्डीव धनुष् से बड़े भयानक और वेगवान् बाण बादल के समान संसनाहट का शब्द करते हुए पतङ्ग के समूहों के तुल्य छूटेंगे तब उनको देखकर तू अपनी बुद्धि की निन्दा करेगा १६।१८ और जब वह गाण्डीवधनुषधारी शंखध्वनि करके तेरी छाती में बारम्बार बाण मारेगा तब तेरी गति कैसी होगी १९ हे अधम! जब तू भीमसेन को हाथ में गदा लिये हुए और क्रोधरूपी विषको उगलते और चारों ओर दौड़ते हुए नकुल और सहदेव को देखेगा तब तुझको देर तक बड़ा दुःख रहेगा २० जो मेरे पातिव्रत्यधर्म मन, वाणी और कर्म से सत्य होगा, तो पाण्डव तुझको अपने वश

में करके खैंचेंगे और उस समय मैं तेरा स्वरूप देखूंगी २१ मुझको इसका कुछ भय नहीं है कि तू निर्दयी मुझको खींचकर ले जायगा क्योंकि मैं पाण्डवों से मिलने पर फिर काम्यक वन में ही आ जाऊंगी २२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे जब जयद्रथ आदि ने द्रौपदी को पकड़ना चाहा तब वह उनको घुड़ककर बोली कि मुझमें हाथ मत लगाओ और धौम्य पुरोहित को पुकारने लगी २३ तब जयद्रथ ने द्रौपदी का डुपट्टा पकड़ लिया। द्रौपदी ने उसे ऐसा धक्का दिया कि वह पापी निर्मूल हुए वृक्ष के सदृश गिर पड़ा २४ इसके पीछे जयद्रथ उसको पकड़कर खींच कर ले गया और वह धौम्य पुरोहित को दण्डवत् करके रथ पर सवार होगई २५ उस समय धौम्य पुरोहित ने कहा कि हे जयद्रथ ! तुझको क्षत्रियों के सनातन धर्म को विचारना उचित है, पाण्डवों को विना जीते इसे ले जाना क्षत्रियों के धर्म से विपरीत है २६ जिस समय युधिष्ठिर आदि वीर पाण्डव तुझको मिलेंगे उस समय निस्संदेह तुझको इस नीचकर्म करने का फल मिलेगा २७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह कहकर धौम्य ऋषि राजा जयद्रथ के पीछे पीछे पैदल मनुष्यों के साथ हो लिये ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

दोसौ अरसठवाँ अध्याय ।

अहेर से लौटते हुए पाण्डवों का द्रौपदी-हरण का हाल सुन जयद्रथ से युद्ध करने जाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे पाण्डव चारों दिशाओं में विहार करके और मृग, वाराह और भैंसाओं का अहेर करके इकट्ठे हुए उस समय युधिष्ठिर ने उस वन में मृग और पक्षियों के झुण्डों को इकट्ठा होकर बोलते हुए देखकर अपने भाइयों से कहा कि ये मृग पक्षी चारों दिशाओं में इकट्ठे हो होकर क्रूर वाणी बोलते हैं इससे यह जान पड़ता है कि इस वन में कोई शत्रु आया है और उससे कोई उग्र दुःख होनेवाला है १ । ३ इससे अब मृगों के अहेर से अपने को तृप्त मानकर लौट चलो मेरे मनको पीड़ा हो रही है और प्राण मेरा बुद्धि को मोहित करके कांपने लगा है ४ इस समय मुझको काम्यक वन ऐसा उजाड़ सा दीखता है जैसे वह सरोवर जिस पर से गरुड़जी सर्प को हर ले गये हों अथवा जैसा वह राज्य जिसमें कोई राजा न हो और जिसकी लक्ष्मी हर ली गई हो या जैसा वह कुम्भ जिसमें से हाथी पानी पी चुके हों ५

यह सुनकर वे वीर वायु के सदृश शीघ्रता से वहां से अपने आश्रम को लौट पड़े जो सिन्धुदेशी घोड़े और बड़े २ रथों से युक्त था ६ लौटते समय उनके बाईं ओर गीदड़ बड़े शब्द से बोला उसको सुनकर युधिष्ठिर ने भीमसेन और अर्जुन से कहा ७ कि इस कुशकुन से ऐसा जान पड़ता है कि पापी कुरुवंशियों ने हमारा अपमान करके कुछ बलात्कार किया है। आगे बढ़कर उनको द्रौपदी के दास की भार्या रोती हुई मिली, उसको देखकर इन्द्रसेन जल्दी से रथ से कूदकर उसके पास चला गया और उससे बोला ८। १० कि तू पृथ्वी पर पड़ी हुई क्यों रो रही है क्यों तेरा मुख मलीन हो गया है किसी दयाहीन पापी पुरुष ने राजपुत्री द्रौपदी का कुछ तिरस्कार तो नहीं किया ११ वह विशालनेत्रा और अचिन्त्यरूपा द्रौपदी पाण्डवों को प्राण के तुल्य प्यारी है इससे जो वह पृथ्वी अथवा स्वर्ग या समुद्र में भी चली गई होगी तो भी पाण्डव उसका खोज लगा लावेंगे उसीके कारण से युधिष्ठिर सन्ताप कर रहे हैं, इन अरिमर्दन और अपराजित पाण्डवों की प्राणप्यारी स्त्री को ऐसा कौन मूढ़ होगा, जो ले जाना चाहेगा क्योंकि मूढ़ पुरुष उत्तम रत्न को नहीं पा सकता है और जो किसी ने ऐसा किया भी होगा तो वह यह नहीं जानता होगा कि द्रौपदी के नाथ स्थित हैं और वह उनको ऐसी प्यारी है कि दो देह और एक प्राण है १२। १४ तू द्रौपदी का शोच मत करे सब बता, वह कौन है जिसके शरीर को फोड़कर पाण्डवों के बाण पृथ्वी में प्रवेश होंगे अभी द्रौपदी आई जाती है, पाण्डव शत्रुओं को मारकर उसको ले आवेंगे, यह सुन कर वह धात्रेयी अपने सुन्दर मुख को पोंछ कर इन्द्रसेन से बोली कि राजा जयद्रथ इन्द्र के समान पाण्डवों का निरादर करके बल से द्रौपदी को हरकर इस नवीन मार्ग से जिसमें आगे टूटा हुआ वृक्ष पड़ा है ले गया है १५। १७ अभी वह दूर नहीं गया होगा पाण्डवों से कह दो कि जल्दी से कवच धनुष् और बाणों को लेकर इसी ओर चले जायँ ऐसा न हो कि द्रौपदी भय और मोह से अपना शरीर किसी अयोग्य पुरुष को दे दे अथवा उस सुन्दरी चन्द्रमुखी को, कोई कुकर्मी पुरुष इस प्रकार से स्पर्श न करे, जैसे वेदपाठियों के मोहित हो जाने पर कुत्ता यज्ञ के अमृत को चाट जाता है और गीदड़ अहेर के समय कमलिनी को मँझाकर चला जाता है और श्मशान में जाने पर माला त्याग दी जाती है और वे कुकर्मी उस द्रौपदी के साथ कोई ऐसा अयोग्य कर्म न करें जैसे फूस की अग्नि में होम करना और

घृत से भरा हुआ पात्र धूलि में रखना अनुचित है पाण्डवों को शीघ्र ही भेज दो यहां काल गँवाना उचित नहीं है १८ । २२ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला हे धात्रि ! यहां से दूर हो और अपने मुख को बन्दकर हमारे सामने ऐसे परुष वचन मत कहे, ऐसे वचनों से बलवान् राजपुत्रों के चित्त की वृत्ति और ही हो जाती है २३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह कहकर पाण्डवों ने अपने रथ उसी ओर को हँकवा दिये और श्वास लेते हुए और धनुषों को टंकोरते हुए जयद्रथ के पीछे दौड़े, थोड़ी दूर चलकर उनको घोड़ों की टाप से उड़ी हुई धूलि दिखाई दी और आगे बढ़कर उन्होंने पैदल आदमियों के साथ जाते हुए धौम्य पुरोहित को देखा, जो यह पुकार रहे थे कि भीमसेन जल्दी से दौड़ कर आओ २४ । २५ उनको देखकर पाण्डवों ने कहा कि आप घबड़ाइये नहीं, यहीं ठहर जाइये यह कहकर पाण्डवों ने अपने रथ सेना के पीछे इस प्रकार से दौड़ाये जैसे मांस की इच्छा से श्येन अर्थात् बाज पक्षी दौड़कर जाता है २६ आगे बढ़कर उन्होंने जयद्रथ और द्रौपदी को रथ में बैठे हुए देखा, उनको देखकर और द्रौपदी के पराभव को विचारकर उन महा इन्द्र के तुल्य पराक्रमी पाण्डवों का क्रोध अग्नि के समान प्रज्वलित हो गया और उन्हों ने जयद्रथ को इस प्रकार से पुकारा जिससे शत्रु मोहित हो गये ॥ २७ । २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८॥

दोसौ उनहत्तरवाँ अध्याय ।

द्रौपदी का जयद्रथ से पांचों पाण्डवों का वृत्तान्त कहना और पाण्डवों का जयद्रथ की सेना को घेर लेना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जयद्रथ के साथी क्षत्रिय लोग अर्जुन और भीमसेन को देखकर क्रोध से बड़ा शब्द करने लगे और वह दुरात्मा और नष्टतेज जयद्रथ भी पाण्डवों की ध्वजा को देखकर तेजस्विनी द्रौपदी से कहने लगा १ । २ कि हे सुन्दरि ! ये जो पांचों महारथी आ रहे हैं, मैं जानता हूं यही तेरे पति हैं, मैं इनको जानता नहीं हूं, तू भिन्न भिन्न इनको मुझे बता ३ द्रौपदी बोली कि हे मूढ़! तैंने तो यह घोर कर्म करके मृत्यु का सरंजाम किया है; तुझको इन स्वजातीय धनुषधारियों से क्या प्रयोजन है, ये पांचों मेरे वीर पति इकट्ठे हो गये हैं अब युद्ध में यहां कोई जीता न बचेगा ४ तू मरना चाहता है इससे मेरा धर्म है कि मैं तेरे प्रश्न का उत्तर दूं अब भाइयों सहित युधिष्ठिर को देखकर मेरा सब दुःख और तेरी ओर का भय जाता रहा ५ जिसकी ध्वजा

के आगे नन्द और उपनन्द नामी मृदङ्ग बज रहे हैं और पीछे जिसके धर्म और अर्थ के निश्चय को जाननेवाले मनुष्य आ रहे हैं और वर्ण जिसका जाम्बूनद सुवर्ण के तुल्य आंखें बड़ी बड़ी नाक लम्बी और शरीर लटा हुआ है वह युधिष्ठिर नामी मेरा पति है ६ । ७ वह बड़ा धर्मात्मा और शरणागत शत्रु का प्राणदाता है जो तुझको अपना ऐश्वर्य रखना हो तो शीघ्रता से शस्त्र लेकर हाथ जोड़े हुए उसकी शरण जा ८ और जिसकी भुजा शाल के वृक्ष के समान भौंहें चढ़ी हुई और होठ फड़क रहे हैं, वह मेरा पति भीमसेन नामी है ९ उसके रथ में महा पराक्रमी और सुशिक्षित आजानेय प्रकार के घोड़े जुते हुए हैं काम उसके मनुष्यों के से नहीं हैं और नाम उसका भीम, भीम शब्द होने से पृथ्वी पर विख्यात हुआ है १० जो कोई इसका अपराध करता है वह जीता नहीं बचता है यह वैर को भूलता नहीं है और जबतक वैर का अन्त अर्थात् शत्रु को नहीं मार लेता है तबतक हटता भी नहीं है और अन्त करने पर भी यह शान्त नहीं होता है अर्थात् शत्रु को मारकर उसके पुत्र मित्रादिकों को भी शेष नहीं छोड़ता है ११ और वह जो दूसरा रथ में बैठा है वह युधिष्ठिर का छोटा भाई और शिष्य है और मेरा तीसरा पति है । यह बड़ा धनुषधारी धृतिमान्, यशस्वी, जितेन्द्रिय, वृद्धों की सेवा करनेवाला और शूरवीर है । काम, भय और लोभ से यह धर्म को कभी नहीं छोड़ता है न हिंसा करता है और अग्नि के समान तेजस्वी और शत्रुओं का नाश करनेवाला है १२ । १३ और वह नकुलनामी मेरा पति है जो भाइयों का आज्ञाकारी और प्राणों के समान प्यारा है और धर्म अर्थ के निश्चय को जाननेवाला भयभीत दुःखी मनुष्यों के भय का हर्ता बुद्धिमान् और बड़ा स्वरूपवान् है । वह दूसरा नकुल से छोटा सहदेव नामी मेरा पति है जो तलवार को अनेक प्रकार से जल्दी जल्दी चलाकर युद्ध करता है अब तुझको उसके युद्ध की निपुणता जान पड़ेगी उसका युद्ध ऐसा है जैसे इन्द्र का युद्ध दैत्य की सेना में हो और वह बुद्धिमान् अस्त्रों का ज्ञाता युधिष्ठिर का प्रिय करनेवाला सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजस्वी है सब भाई इस पर बड़ी प्रीति रखते हैं इसके सदृश बुद्धिमान् दूसरा मनुष्य नहीं है, यह सत्पुरुषों में बातचीत करता है और बात के निश्चय को तत्काल पहुँच जाता है महा शूरवीर क्रोधी और ज्ञानी है और धर्म पर इसका ऐसा निश्चय है कि यह चाहे प्राण छोड़ दे और अग्नि में प्रवेश हो जाय,

परंतु धर्म के विपरीत काम कभी नहीं करेगा १४ । १८ और क्षत्रियों के धर्म पर चलनेवाला और कुन्ती का प्राणों से भी अधिक प्यारा पुत्र है हे मूढ़ ! अब तू अपनी इस सेना को पाण्डवों के हाथ से क्षोभित की हुई इस प्रकार से देखेगा, जैसे समुद्र में मगर की पीठ पर आ जाने से नाव डिगमिगाती है, पाँचों पाण्डव ये ही हैं जिनका अपमान करके तूने मुझको हरण किया है जब तू इनके हाथ से बच जाय तब तू अपना दूसरा जन्म समझेगा १६ । २० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे इन्द्र के तुल्य पराक्रमी पाँचों पाण्डवों ने भयभीत और हाथ जोड़नेवाले पैदल मनुष्यों को छोड़कर जयद्रथ की सेना को घेर लिया और ऐसी बाण-वर्षा की कि अंधेरा हो गया ॥ २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

दोसौ सत्तरवाँ अध्याय ।

पाण्डवों के युद्ध से जयद्रथ का भागना व भीमसेन का उसका पीछा करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा जयद्रथ ने पाण्डवों को देखकर सब राजाओं से कहा कि पाण्डवों पर धावा करो और रण में ठहर कर प्रहार करो १ उस समय जयद्रथ की सेना के लोग पाण्डवों को देखकर बड़ा शब्द करने लगे २ और उन व्याघ्रतुल्य बल से मतवाले पुरुषोत्तमों के युद्ध को अवलोकन करके शिबि, सौवीर और सिन्धुदेशी राजपुत्र भी घबरा गये ३ उस समय भीमसेन ने सुवर्ण से चिती हुई लोहे की लम्बी और भारी गदा ले ली और वह जयद्रथ के सम्मुख दौड़ा ४ तब कोटिकास्य क्षत्री बहुत से रथों को लेकर जयद्रथ के आगे आ गया और उन रथों से भीमसेन को घेर लिया ५ परंतु भीमसेन उन वीर क्षत्रियों के मारे हुए नाराच, तोमर और शक्ति आदि शस्त्रों से ढक जाने पर भी कंपित नहीं हुआ ६ और उसने अपनी गदा से सेना के चौदह पियादे और एक हाथी को सवार-सहित उस ओर मारकर गिरा दिया जिधर राजा जयद्रथ का रथ था ७ और उसी समय सेना के मुख पर अर्जुन ने जयद्रथ को पकड़ने की इच्छा से पाँच-सौ महारथी और पहाड़ी प्रवीरों को मारकर यमलोक में पहुँचा दिया ८ और राजा युधिष्ठिर ने एक मिष में सौ शूरवीर मारकर गिरा दिये ९ और नकुल रथ से ढाल तलवार ले॰ कूद पड़ा और पैदल मनुष्यों के शिर को काट काटकर पृथ्वी पर बीज-सा बो॰ गा १० और सहदेव ने रथ पर बैठकर नाराच बाणों से हाथी पर बैठ

कर युद्ध करनेवाले योद्धाओं को इस प्रकार से मार मारकर गिरा दिया, जैसे कोई वृक्ष पर बैठे हुए मोरों को मारकर गिरा दे ११ इसके पीछे राजा त्रिगर्त रथ से उतरकर धनुष् हाथ में लिये हुए चला आया और उसने युधिष्ठिर के रथ के चारों घोड़े मार डाले १२ उस समय युधिष्ठिर ने उस राजा की छाती में एक अर्द्धचन्द्र बाण मारा १३ उससे वह राजा रुधिर की वमन करके युधिष्ठिर के सामने इस प्रकार से गिर पड़ा जैसे जड़ कटा हुआ वृक्ष आन पड़ता है १४ तब युधिष्ठिर अपने रथ पर से उतर कर इन्द्रसेन-सहित सहदेव के रथ पर चला गया १५ इसके पीछे क्षेमकर और महामुख बाण बर्षाते हुए नकुल के सम्मुख चले आये और दोनों नकुल को दोनों ओर से बाण मारने लगे १६ और तोमरों की वृष्टि बादल की वर्षा के समान करने लगे। नकुल ने उन दोनों को एक २ विपाटनामी बाण करके मार डाला १७ तब सुरथनामी त्रिगर्त देश के राजा ने जो नकुल के रथ के धुरे के पास हाथी पर सवार हो आगया था नकुल का रथ अपने हाथी से तुड़वा डाला १८ तब नकुल उस रथ से कूदकर ढाल तलवार लिये हुए पहाड़ के समान अचल और निर्भय खड़ा हो गया १९ तब सुरथ ने अपने हाथी को जो क्रोध से ऊँचे को सूँड़ किये हुए था नकुल के मारने को बढ़ाया २० नकुल ने उस हाथी की सूँड़ को दाँतों सहित तलवार से काट डाला २१ और वह हाथी चिग्घार कर मुँह के बल गिर पड़ा उसके गिरने से बहुत से सवार दब कर मर गये २२ उसको मारकर नकुल भीमसेन के रथ पर जा बैठा और प्रसन्न हुआ २३ इसी अवसर में राजा कोटिकास्य ने अपना रथ सारथी से भीमसेन की ओर बढ़वाया। भीमसेन ने उस सारथी का शिर क्षुरबाण से काट डाला २४ परंतु कोटिकास्य को उसके शिर कटने का हाल नहीं जान पड़ा और उसके रथ के घोड़े रथ को लिए हुए विना सारथी के जहाँ तहाँ घूमने लगे २५ उस समय भीमसेन उसके पास चला गया और उसको मुक्कों से मारकर गिरा दिया २६ उस युद्ध में अर्जुन ने सब बारह-सौ शूरवीरों के शिर और धनुष् भल्लों से काट काटकर गिरा दिये २७ और शिबि, त्रिगर्त, सिन्धुदेशी और इक्ष्वाकुवंशी जो जो राजा लोग उसके धनुष् की सीध पर आये उनको भी उसने मारा २८ और पताकासहित हाथी और ध्वजासहित रथ भी बहुत मार डाले और तोड़ डाले २९ वहाँ की पृथ्वी रुण्ड मुण्डों से ढक गई ऐसा मांस और रक्त से कुत्ते, गिद्ध, कंक, काकोल, भास, गीदड़ और काक आमिषाय,

ने अपना पेट भरा ३० । ३१ उन वीरों के मारे जाने पर जयद्रथ ने द्रौपदी को रथ से उतार दिया और आप वन की ओर भागा ३२ । ३३ युधिष्ठिर ने द्रौपदी को देखकर जिसके आगे धौम्य ऋषि थे नकुल सहित रथ पर चढ़ा लिया ३४ जयद्रथ के भागने पर उसकी सब सेना भाग चली, भीमसेन उस सेना को नाराच बाणों से अपना नाम सुना सुना कर मारने लगा। उस समय अर्जुन ने जयद्रथ को भागा हुआ जानकर भीमसेन को सेना के मनुष्यों को मारने से रोक दिया ३५ । ३६ और कहा कि जिसके कुकर्म से हम लोगों को यह क्लेश प्राप्त हुआ है, वह जयद्रथ यहाँ मुझको दिखाई नहीं देता है ३७ उसी को चलकर ढूँढ़िये, इन बिचारे योद्धाओं को मारने से हमारा क्या प्रयोजन निकलेगा, इनको अब मारना अनुचित है, आगे जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिये ३८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर भीमसेन ने युधिष्ठिर से कहा ३९ कि महाराज ! आप द्रौपदी को लेकर लौट जाइये अब इस सेना के सब अधिपति रण छोड़ छोड़कर भाग गये आप धौम्य, नकुल और सहदेव के साथ आश्रम में जाकर द्रौपदी को धैर्य दीजिये मेरे जीते हुए राजा जयद्रथ इन्द्र के सारथी होने और पाताल लोक में जाने पर भी जीता न बचेगा ४०।४२ तब युधिष्ठिर बोला कि हे भीमसेन ! दुःशला और गांधारी के स्मरण से जयद्रथ को जान से मारना उचित नहीं है ४३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर द्रौपदी ने लज्जित और व्याकुल होकर अर्जुन और भीमसेन से कहा कि जो तुम दोनों मेरा प्रिय करना चाहते हो तो उस नीच अधम पापी दुर्मति और कुलकलङ्की जयद्रथ को अवश्य मार डालना ४४ । ४५ क्योंकि जो शत्रु स्त्री अथवा राज्य को हर ले उसको याचना करने पर भी किसी रीति से छोड़ना उचित नहीं है ४६ यह सुनकर अर्जुन और भीमसेन जयद्रथ को ढूँढ़ने के लिये चल दिये और युधिष्ठिर, पुरोहित और नकुल सहदेव द्रौपदी के साथ अपने स्थान को लौट आया ४७ वहाँ पहुँचने पर उन्होंने उस आश्रम ं मार्कण्डेय आदि बहुत से ब्राह्मण बैठे हुए पाये ४८ युधिष्ठिर उन सब ब्राह्मणों जो द्रौपदी का शोच कर रहे थे यथायोग्य मिला और द्रौपदी सहित भाइयों मध्य में बैठ गया ४९ वे ब्राह्मण युधिष्ठिर को सिन्धु आदि देशों के राजा को तकर द्रौपदी को लाया हुआ देखकर प्रसन्न हुए ५० इसके पीछे युधिष्ठिर ब्राह्मणों में बैठा रहा और द्रौपदी, नकुल और सहदेव के साथ आश्रम के

भीतर चली गई ५१ और भीमसेन और अर्जुन यह सुनकर कि राजा जयद्रथ एक कोस रणभूमि से भागकर निकल गया अपने रथों के घोड़ों को हँकवाकर उसके पीछे दौड़े ५२ और अर्जुन ने उस समय यह अद्भुत कर्म किया कि जयद्रथ के रथ के घोड़ों को कोस भर की दूरी से मारकर गिरा दिया ५३ और उस अस्त्रज्ञ ने यह कर्म अनुमन्त्रित बाणों से किया, इसके पीछे वे दोनों वीर रथों को दौड़ाते हुए जयद्रथ के निकट जा पहुँचे जो भयभीत और व्याकुल हो रहा था। जयद्रथ उनको देखकर और अपने घोड़ों को मरा हुआ जानकर वन की ओर भागा उसको भागते हुए देखकर अर्जुन उसके पीछे पीछे हो लिया और बोला कि बस इसी बल भरोसे पर तुम पराई स्त्री को लेना चाहते थे ५४। ५८ लौट तुझको भागना उचित नहीं है तेरा वह पराक्रम अब कहाँ गया जो अपनी सेना को छोड़कर शत्रुओं के सम्मुख से भागा जाता है ५९ यह सुनकर भी जयद्रथ लौटा नहीं, तब भीमसेन यह कहता हुआ उसके पीछे दौड़ा, खड़ा रह, खड़ा रह, उस समय अर्जुन ने दया करके भीमसेन से कहा कि इसको जान से मत मारना ॥ ६० । ६१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७० ॥

दोसौ इकहत्तरवाँ अध्याय।

भीमग्रस्त जयद्रथ का युधिष्ठिर से निर्मुक्त होकर हरिद्वार में जा शिव से वरदान पाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा जयद्रथ अपनी जान बचाने के लिये अर्जुन और भीमसेन को देखकर बड़ा दुःखित होता हुआ सावधान होकर तुरन्त भागा उस समय महाबली भीमसेन क्रोधित होकर रथ से उतर पड़ा और उसने दौड़कर उसके बाल पकड़ लिये १। २ और उसे पृथ्वी पर डाल कर रगड़ने और उसका शिर पकड़कर मारने लगा ३ तब जयद्रथ विलाप करने लगा और महाबाहु भीमसेन ने उसके शिर पर एक लात मारी और जाँघ को अपने घोंटू से दबा दिया और घूँसे से मारा तब राजा जयद्रथ उस भारी प्रहार से मोहित होगया ४। ५ उस समय अर्जुन ने भीमसेन के क्रोध को यह कहकर रोक दिय कि भाई! तुमको वह बात याद करनी चाहिए जो राजा युधिष्ठिर ने दुःशला क कारण से कही थी ६ भीमसेन बोला कि यह पापी इस योग्य नहीं है, द्रौपदी को दुःख देकर इसका मेरे हाथ से बचना ठीक नहीं है ७ परंतु मैं क्या कर सक हूँ, राजा तो सदैव ही दयायुक्त रहता है और तुम्हारी भी बड़ी छोटी सी बु है

जिसके कारण से मुझको सदा पीड़ा होती है ८ यह कहकर भीमसेन ने अर्द्धचन्द्रबाण से जयद्रथ का शिर मूँड़कर पाँच चोटियाँ रख दीं और युधिष्ठिर के विषय में कठोर वचन कहकर जयद्रथ से बोला कि हे मूढ़! जो तू अपने को जीवित चाहता है तो यह बात अङ्गीकार कर कि सभ्य और सत्पुरुषों में मैं अपने को दास बताऊँगा ऐसा जो तू कहेगा तो मैं तुझे जीवदान देऊँगा यह विधि युद्ध जीतने की है ९।११ यह सुनकर राजा जयद्रथ उस समरशोभी, पुरुषसत्तम भीम से बोला कि बहुत अच्छा, मैं यही कहूँगा १२ इसके पीछे भीमसेन उस अचेत धूलि भरे जयद्रथ को रथ में बैठालकर अर्जुन-सहित युधिष्ठिर के पास चला आया १३।१४ और उसने जयद्रथ को राजा युधिष्ठिर को दिखलाया उसे देखकर युधिष्ठिर बहुत हँसा और बोला कि अब इसे छोड़ दो १५ भीमसेन बोला कि आप द्रौपदी से कह दीजिए कि यह पापी आज से पाण्डवों का दास होगया १६ युधिष्ठिर बोला कि जो तुझको हमारा कहना प्रमाण है, तो इस अधमाचारी को छोड़ दे १७ तब द्रौपदी युधिष्ठिर की ओर देखकर बोली कि तुम ने इसके पाँच चोटियाँ रख ही दी हैं यह आज से राजा का दास हुआ, अब तुम इसे छोड़ दो १८ हे राजन्! यह सुनकर भीमसेन ने उसे छोड़ दिया और उसने युधिष्ठिर को प्रणाम करके मुनियों को दण्डवत् की। उस समय धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिर ने दया करके उससे कहा कि जा, तू अदास और मुक्त हुआ, फिर ऐसा मत कीजियो तुझ परस्त्री चाहनेवाले को धिक्कार है, सिवाय तेरे और कौन ऐसा नीच अथवा नीचों का सत्सङ्गी होगा जो ऐसा खोटा काम करेगा, जैसा तूने किया है, अब हे जयद्रथ! तू कल्याणपूर्वक अपने घोड़े, हाथी और पैदल मनुष्यों-सहित जा, आज से अपना चित्त धर्म में रख और अधर्म के करने को कभी मन भी न कर। यह सुनकर जयद्रथ चुप होकर नीचे को मुख किये हुए १९।२४ लज्जा और दुःख से पीड़ित होकर चल दिया। हे भरतवंशिन्! वह घर को न जाकर हरिद्वार को चला गया और वहाँ जाकर उसने उमापति विरूपाक्ष देवता की बड़ी तपस्या की। उस तपस्या से वृषभध्वज, त्रिलोचन शिवजी सन्न हुए और उन्होंने उसके उपहार को ग्रहण करके उससे कहा कि तू हमसे वरदान माँग, तब जयद्रथ बोला कि महाराज! मैं चाहता हूँ कि पाण्डवों को युद्ध रथ-सहित जय करूँ। शिवजी बोले कि सिवाय अर्जुन के जो नरनामी देवता र देवताओं का ईश्वर और बदरिकाश्रम में तपस्या करनेवाले नारायण

को अपना सहायक रखता है, शेष सब पाण्डवों को तू विजय करेगा २५।२६ क्योंकि मैंने उस अर्जुन को अजित, दुरासद और अप्रतिम पाशुपतनामी दिव्य अस्त्र दिया है ३० और लोकपाल देवताओं से भी उसने वज्र आदि अस्त्र पाये हैं और उसके साथी नारायणजी देवताओं के देवता, अनन्त आत्मा, देवताओं के गुरु, प्रधान पुरुष, अव्यक्त, विश्वात्मा और विश्वमूर्ति हैं ३१ वे ही नारायण प्रलयकाल के प्राप्त होने पर कालाग्निरूप धारण करके नागलोक, पाताललोक, पृथ्वी, समुद्र और पर्वतवासी सब जीवों को भस्म कर डालते हैं। उनके भस्म हो जाने पर चारों ओर से बादलों की बड़ी बड़ी घटाएँ उठती हैं, बिजली बड़ी चञ्चलता से चमकती है और बादल बड़े शब्द से गरजते और बरसते हैं। उन बादलों के बरसाये हुए जल से वह कालाग्नि, जिसको संवर्तक अग्नि भी कहते हैं, बुझ जाती है और फिर मूसलाधार पानी पड़ने लगता है। उससे सब पृथ्वी आदि नष्ट होकर केवल जल ही जल रह जाता है ३२।३५ यह महाप्रलय सहस्र चौकड़ी युगों के व्यतीत होने के पीछे होता है। उस समय सब विश्व के एकरस होने और सब चराचर जीव और सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारा आदि के नष्ट होने पर वह नारायण जिसके सहस्र नेत्र, सहस्र चरण और सहस्र शिर होते हैं, उसी जल में शेषजी के ऊपर सो जाते हैं, जो अपने सहस्र फण और सहस्र सूर्यों के तुल्य प्रभा और चन्द्रमा, कुन्दपुष्प, मोती, गोदुग्ध और मृणाल कुमुद के समान उज्ज्वलता से अत्यन्त शोभायमान हैं। उनके सोने पर रात्रिरूप महा अन्धकार हो जाता है ३६। ४० उस देवता का नाम नारायण होने का यह कारण है कि नार नाम जल का है, वही जल उस देवता के रहने का स्थान है, इससे उसे नारायण कहते हैं। वह नारायण जब सत्त्वगुण के आविर्भाव से जगते हैं और लोक को शून्य देखते हैं, तब ध्यानमात्र से उनकी नाभि में एक कमल उत्पन्न हो जाता है। उस कमल से प्रजा को उत्पन्न करने के लिये चतुर्मुख ब्रह्माजी उत्पन्न हो जाते हैं और ब्रह्माज जगत् को शून्य देखकर मरीचि आदि नौ ऋषियों को उत्पन्न करते हैं फिर वे ऋषि सब जड़ चैतन्य जीव, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, उरग और मनुष्यों को उत्पन्न करते हैं ४१।४६ वही नारायण ब्रह्मारूप से जगत् को उत्पन्न करता है विष्णुरूप से सबकी रक्षा करता है और रुद्ररूप से जगत् का ना करताहै। ये तीनों अवस्थाएँ उसी प्रजापति नारायण की हैं ४७ हे जयद्रथ! तु

अभी उन कथाओं को नहीं सुना है जो वेदपारग ब्राह्मण और मुनि लोग विष्णु भगवान् के विषय में कहते हैं ४८ प्रथम जब महाप्रलय होने पर सब विश्व एकरस हो गया, तब जगत् को फिर रचने के लिये विष्णु भगवान् उस जल में पृथ्वी को इस प्रकार से घूम-घूमकर ढूँढ़ने लगे, जैसे वर्षाकाल में खद्योत फिरते हैं। जब पृथ्वी को उन्होंने जल में डूबी हुई देखा, तब विचार किया कि किस रूप से इस पृथ्वी को उठाकर जल के ऊपर ले जाऊँ। फिर अपनी दिव्य दृष्टि से जानकर उन्होंने वाराहरूप धारण किया, जिसको जल में क्रीड़ा करने से बड़ी प्रीति होती है। भगवान् का वह स्वरूप जो कि वेदमय होकर यज्ञरूप था, वह दश योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा था उसकी डाढ़ें बड़ी तीक्ष्ण और शरीर पर्वत के समान ऊँचा अति प्रभावान् और नीले बादल का सा वर्ण रखनेवाला था ४९।५४ उस स्वरूप को धारण करके भगवान् शूकरजी जल में घुस गये और उन्होंने पृथ्वी को एक डाढ़ पर उठाकर उसे अपने स्थान पर स्थापित कर दिया ५५ इसके पीछे उस महाबाहु सर्वशक्तिमान् भगवान् ने आश्चर्यदायक नृसिंहरूप धारण किया; जिनका आधा शरीर मनुष्य का-सा और आधा सिंह का-सा था। उसी स्वरूप से उस हिरण्यकशिपु नाम दैत्येन्द्र की सभा में चले गये जो दैत्यों का आदि पुरुष और देवताओं का वैरी तथा दिति का पुत्र था। वह उनके उस अद्भुत शरीर को देखकर चकित हो गया और क्रोध से, हाथ से हाथ मलकर और आँखें लाल लाल निकालकर मालाधारी शूल हाथ में लिये हुए मेघ के समान गरजता हुआ नृसिंहजी के सम्मुख दौड़ा ५६ । ५९ और उनसे जा भिड़ा। नृसिंहजी ने उसका पेट अपने नखों से फाड़ डाला ६० इसके उपरान्त भगवान् ने उस दैत्य को मारकर संसार के हित के लिये कश्यपजी के यहाँ अदिति के गर्भ में जन्म लिया और सहस्र वर्ष पीछे वामनरूप होकर गर्भ से प्रकट हुए। उस स्वरूप का वर्ण श्याम-
टा के सदृश था, आँखें दीप्त थीं, छाती पर श्रीवत्स का चिह्न था और जटा, यज्ञो-
ीत, दण्ड और कमण्डलु धारण किये हुए थे। भगवान् उस स्वरूप से बृह-
ीजी के साथ दैत्येन्द्र बलि के यज्ञ में गये। उन वामनजी को देखकर बलि
न्न होकर कहा ६१ । ६५ कि हे वेदपाठिन्! मैं आपसे प्रसन्न हूँ, कहिये
कै र क्या दूं? यह सुनकर वामन भगवान् ने मन्द मन्द मुसकराकर कहा कि
हे पते! हमको तीन पैग पृथ्वी दीजिए, आपका कल्याण होगा ६६।६७
बलि प्रसन्न होकर तीन पैग पृथ्वी अपार तेजस्वी विप्ररूपधारी वामनजी को

दान कर दी। तब पृथ्वी को नापने के समय वामनजी नें अपना स्वरूप बड़ा दिव्य और अद्भुत बना लिया और उस स्वरूप से तीन ही पैग में त्रिलोकी को नाप लिया और उन्होंने वे तीनों लोक इन्द्र को दे दिये। यह वामन अवतार की कथा है। इसी अवतार से संसार वैष्णव कहलाता है ६८।७० अब उसी विष्णु भगवान् ने धर्म की रक्षा और नीचों का निग्रह करने के लिये पृथ्वी पर यादवों के घर में जन्म लिया है और उसको सब लोग श्रीकृष्ण नाम से पुकारते हैं और ज्ञानी लोग उस अजन्मा आदि-अन्त-हीन प्रकाशमान और सर्वलोक-वन्दित प्रभु के चरित्रों को गाते हैं। वह श्रीकृष्ण शंख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीवत्सचिह्न और पीताम्बरधारी साक्षात् विष्णु अजित और अतुल पराक्रमी हैं। वे अर्जुन को रथ में बैठाकर उसकी सहायता युद्ध में करेंगे, इस कारण से उस अस्त्रज्ञ और असह्य अर्जुन को जीतना देवताओं को भी असंभव है, मनुष्य उसको क्योंकर जीत सकता है ७१। ७६ सो हे जयद्रथ! एक अर्जुन को छोड़कर तू सब पाण्डवों और युधिष्ठिर की सेना को एक दिन रोकेगा ७७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उमापतिजी जो सब पापों के हरनेवाले पशुपति और दक्ष के यज्ञ को विध्वंस कर त्रिपुर दैत्य के मारनेवाले हैं, जयद्रथ से यह कहकर पार्वती और उन अपने पार्षदों सहित, जो कुब्ज और विकट रूपी उग्र कान, उग्र स्वरूप और अनेक अस्त्र धारण किए हुए थे, वहीं अन्तर्धान होगये ७८। ८० और मन्दात्मा जयद्रथ अपने घर को चला आया और पाण्डव उसी काम्यक वन में रहा किए॥ ८१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७१॥

दोसौ बहत्तरवाँ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर का मार्कण्डेयजी से अपने मन्दभाग्य के विषय में पूछना।

उक्त कथा को सुनकर जनमेजय ने पूछा कि हे वैशंपायनजी! नरो पाण्डवों ने द्रौपदी के हरे जाने से महाक्लेश पाने के पीछे काम्यक वन में र क्या किया १ वैशंपायनजी बोले कि जयद्रथ को जीतने और द्रौपदी को छुटाने के पीछे युधिष्ठिर ने उन सब मुनियों के बीच में जो शोच-सा कर रहे थे मार्कण्डेयजी से पूछा २। ३ कि हे भगवन्, महाराज! आप देवऋषियों में सब भूत और भविष्य बातों के जाननेवाले हैं। कृपा करके आप मेरे इस के संदेह को दूर कीजिए ४ संदेह यह है कि यह द्रौपदी राजा द्रुपद की पुत्री

और महात्मा पाण्डु की पुत्रबधू है, और योनि से उत्पन्न नहीं हुई है किन्तु यज्ञ की अग्नि से प्रकट हुई है, सो मैं जानता हूं कि काल बड़ा समर्थ है और होनहार कर्म के आधीन और अवश्य भवितव्य है, क्योंकि जो ऐसा न होता तो इस धर्मज्ञ और हमारी धर्मचारिणी पत्नी को जिसने ब्राह्मणों की बड़ी सेवा की है, और आजतक कोई किसी प्रकार का पाप अथवा निन्दित कर्म नहीं किया है, ऐसा भाव क्योंकर प्राप्त होता। तथापि जो जयद्रथ इसको बल से हर ले गया और ऐसा करने के कारण से उसका शिर मूड़ा गया और उसका संग्राम में पराजय हुआ और हमलोगों ने उसकी सेना को मारा, यह सब हमको महा क्लेश प्राप्त हुआ। इससे वनवास में अहेर करके जीविका उत्पन्न करना बड़ा भारी दुःख है ५।११ और वन में रहकर वनवासी जीवों को मारना, देश से निकाला जाना और तपस्वियों का मिथ्या वेष धारण करके हिंसा करना बड़े मन्द भाग्य का कारण है, सो आप कृपा करके यह कहिये कि आपने भी कोई मुझसा मन्दभाग्य मनुष्य देखा या सुना है॥ १२। १३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७२॥

दोसौ तिहत्तरवाँ अध्याय।

रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और सीता तथा वैश्रवण के जन्म की कथा।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! श्रीरामचन्द्रजी ने भी महा दुःख पाया था। उनकी स्त्री जानकीजी को भी बली दुरात्मा राक्षसेन्द्र रावण संन्यास वेष धारणकर जटायु गृध्र को मारकर आश्रम से हर ले गया था १। २ उस समय रामचन्द्रजी सुग्रीव की सहायता से समुद्र पर सेतु बाँधकर और लङ्का को तीक्ष्ण बाणों से जलाकर सीता को लाये थे ३ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज! रामचन्द्रजी किस कुल में उत्पन्न हुए थे, पराक्रम और प्रभाव उनका कैसा था? और वह रावण किसका पुत्र था, और उससे और रामचन्द्र का वैर क्योंकर हुआ था, ४ कृपा करके यह सब कथा विस्तारपूर्वक कहिये, मैं अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र सुनना चाहता हूं ५ मार्कण्डेयजी बोले बहुत अच्छा, सुनिये। इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुआ एक अज नामी बड़ा राजा था। उसके पुत्र का नाम दशरथ था। वह बड़ा पवित्र और वेदपाठी था ६ उसके चार पुत्र बड़े पराक्रमी और अर्थ-धर्म में पण्डित थे। रामचन्द्र १, भरत २, लक्ष्मण ३ और शत्रुघ्न ४। इनमें से रामचन्द्र कौशल्या रानी से,

भरत कैकेयी रानी से और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न सुमित्रा से उत्पन्न हुए थे ७। ८ हे विभो ! विदेह देश के राजा जनक की पुत्री सीता नामी, जिसको प्रजापति ने आप उत्पन्न किया था, वह रामचन्द्रजी की प्यारी पटरानी थी ९ यह कथा तो रामचंद्र और सीता के उत्पन्न होने की है। अब रावण के जन्म का भी वृत्तान्त सुनो १० रावण के पितामह अर्थात् बाबा साक्षात् देवरूप ब्रह्माजी हैं, जो सब लोकों के उत्पन्न करनेवाले प्रजापति और स्वयंभू हैं ११ ब्रह्माजी के प्यारे पुलस्त्य नामी मानसी पुत्र उत्पन्न हुए और उनके गो नामी स्त्री से वैश्रवण नामी पुत्र उत्पन्न हुआ १२ हे राजन्! वह अपने पिता को छोड़कर ब्रह्माजी के पास रहने लगा, तब उसके पिता ने क्रोध से अपने आधे शरीर से विश्रवा नामी ब्राह्मण को वैश्रवण के दण्ड देने के लिये उत्पन्न किया १३ । १४ तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर वैश्रवण को अमर कर दिया और धन का ईश्वर बनाकर उसे लोकपाल की पदवी दे दी १५ और उसकी मित्रता रुद्रजी से कराकर उसे नलकूबर नामी पुत्र और रहने को लङ्का राजधानी दी जो कि राक्षसगणों से संयुक्त रहती थी १६ और वह पुष्पकविमान भी, जो इच्छा के अनुसार चल सकता है, देकर यक्षों का राजा बना दिया और उसे राजत्वपद भी दे दिया ॥ १७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

दोसौ चौहत्तरवाँ अध्याय।

रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, खर और शूर्पणखा का तपस्या करने और वरदान पाने की कथा।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! पुलस्त्यजी के क्रोध से जो आधी देह से विश्रवानामी मुनि हुआ था वह वैश्रवण अर्थात् कुबेर को क्रोधकी दृष्टि से देखने लगा १ तब कुबेरजी ने अपने पिता विश्रवा को अपने ऊपर क्रोधित जानकर उनको प्रसन्न करने के लिये लङ्का में पुष्पोत्कटा, मालिनी और राका नामी तीन राक्षसी, जो नाचने-गाने में बड़ी चतुर थीं, नियत करदीं और वे तीनों परस्पर ईर्ष्या करके अपना अपना कल्याण चाहने के लिये विश्रवाजी की सेवा करने लगीं। विश्रवाजी ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन प्रत्येक को वरदान दिया कि तुम्हारे तुम्हारी इच्छा के अनुसार लोकपालों के सदृश पुत्र उत्पन्न होंगे। उस वरदान के प्रभाव से पुष्पोत्कटा के दो पुत्र बड़े पराक्रमी और राक्षसों के ईश्वर उत्पन्न हुए जो रावण और कुम्भकर्ण नाम से विख्यात हैं २।७ और मालिनी के एक पुत्र विभीषण नामी हुआ और राका के खर नामी

एक पुत्र और शूर्पणखा नामी एक पुत्री उत्पन्न हुई ८ इनमें से विभीषण बड़ा स्वरूपवान्, महाभाग्यवान्, क्रियावान् और धर्म की रक्षा करनेवाला था ९ और रावण सब भाइयों में श्रेष्ठ, सब राक्षसों में उत्तम, महोत्साही, बड़ा बलवान् और बुद्धिमान् था १० और कुम्भकर्ण सब भाइयों में अधिक बलवान्, माया से युद्ध करने में निपुण और भयंकर था ११ और खर राक्षस धनुषविद्या में सबसे पराक्रमी, ब्रह्मकुल का द्रोही और मांसभक्षी था और उसकी बहिन शूर्पणखा सिद्धों का विघ्न करनेवाली और बड़ी रौद्ररूपा थी १२ इसके पीछे ये सब शूरवीर वेद पढ़कर पिता विश्रवाजी के साथ प्रीति रखकर गन्धमादन पर्वत पर रहने लगे १३ एक समय उन चारों भाइयों ने कुबेरजी को बड़े ऐश्वर्य के साथ अपने पिता के पास बैठा हुआ देखा। उनको देखकर वे बड़े क्रोध से ब्रह्माजी की उग्र तपस्या करने लगे। रावण ने वायुभक्षी हो एक पाँव से खड़े होकर पञ्चाग्नि तापकर बड़ी सावधानी से एक सहस्र वर्ष तक तपस्या की १४। १६ कुम्भकर्ण ने यताहार और यतव्रत होकर तप किया और शय्या पर सोना छोड़ दिया। उसी समय विभीषण भी एक शीर्ण पत्ते का भोजन करके उपवास सहित तीव्र तप करने लगा और खर और शूर्पणखा ये दोनों मन में प्रसन्न होकर अपने तीनों तपस्वी भाइयों की सेवा और रक्षा करते रहे १७। १९ जब रावण को तपस्या करते हुए सहस्र वर्ष व्यतीत होगये, तब उसने अपना शिर काटकर अग्नि में होम दिया। ब्रह्माजी उससे प्रसन्न हुए और उन्होंने उन तीनों को वरदान का लोभ देकर तप से निवृत्त कर दिया २०। २१ और उनसे यह कहा कि हे पुत्रो! मैं तुम पर प्रसन्न हूं सिवाय अमरत्व के और जिस वरदान की इच्छा हो, सो मांगलो २२ रावण श्रेष्ठ पद चाहने की इच्छा से अपने शिर काट-काट कर होमे हैं इससे उसके वे शिर उसकी इच्छा के अनुसार देह में हो जायँगे और उनसे उसका स्वरूप बुरा न दीखेगा और वह कामरूपधारी और शत्रुप्रहारी होगा। यह सुनकर रावण बोला कि मैं चाहता हूं कि देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्नर और भूत आदि कोई मुझको न मार सकें। ब्रह्माजी बोले कि अच्छा, ऐसाही हो, इनमें से कोई तुझको पीड़ा न दे सकेगा, परंतु मनुष्य से तुझे भय रहेगा, मैंने ऐसाही रचा है २३। २६ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! यह वरदान पाकर दशग्रीव रावण बड़ा प्रसन्न हुआ और मनुष्यों का अपमान करने लगा २७ इसके पीछे ब्रह्माजी ने कुम्भकर्ण

से वरदान मांगने को कहा। उस अज्ञानी ने कहा कि मुझे निद्रा बहुत आवे २८ ब्रह्माजी बोले, अच्छा, ऐसा ही होगा। फिर ब्रह्माजी ने विभीषण से कहा कि तू भी वरदान मांग, मैं तुझपर प्रसन्न हूं २६ विभीषण बोला कि हे भगवन्, महाराज! परम आपदा पड़ने पर भी मेरी बुद्धि अधर्म करने की इच्छा न करे और ब्रह्मअस्त्र मुझे विना सीखे हुए आजावे ३० ब्रह्माजी बोले कि हे अमित्रकर्शन! यद्यपि तू राक्षसकुल में उत्पन्न हुआ है परंतु अधर्म में बुद्धि न होने का वरदान मांगने के कारण से मैं तुझे अमर किये देता हूं ३१ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इस प्रकार से रावण ने वरदान पाकर कुबेरजी को युद्ध में जीत लिया और लङ्का से निकाल दिया ३२ तब भगवान् कुबेरजी गन्धर्व, यक्ष और किंपुरुषों सहित लङ्का छोड़कर गन्धमादन पर्वत पर आकर रहने लगे ३३ इसके पीछे रावण ने बल से कुबेरजी का पुष्पक विमान भी छीन लिया। तब कुबेरजी ने शाप दिया कि इस विमान में तू नहीं चढ़ने पावेगा, किन्तु इसमें वह सवार होगा जो तुझे मारेगा और तू मुझ गुरु का अपमान करने के कारण से शीघ्र माराजायगा ३४।३५ इसके उपरान्त विभीषण सत्पुरुषों के मार्ग पर चलने लगा और अपने भाई कुबेरजी के पास गया। कुबेरजी ने प्रसन्न होकर उसे यक्ष और राक्षसों की सेना के अधिपति का अधिकार दे दिया ३६।३७ तदनन्तर राक्षस और पिशाचों ने मिलकर रावणका राज्याभिषेक किया ३८ और उस बलोन्मत्त इच्छारूपी और आकाशचारी दशानन ने अपने बल से सब दैत्य और देवताओं के रत्न हर लिये ३६ उसका नाम रावण इस कारण से हुआ था कि उसने लोकों को वध आदि उपाधियों से रुलाया था। उसके इच्छानुसार बल होजाने को देखकर सब देवता भयभीत होगये ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥

दोसौ पचहत्तरवाँ अध्याय।

रावणार्दित देवताओं का ब्रह्माजी की आज्ञा से रीछ और वानरों में अवतार लेना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! इसके पीछे सब ब्रह्मऋषि, सिद्ध और देवऋषि, अग्निदेव को आगे करके ब्रह्माजी के पास गये और अग्नि ने उनसे कहा कि महाराज! आपने विश्रवा के पुत्र महाबली रावण को वरदान देकर अवध्य कर दिया है। वह अब सब प्रजाओं को बड़ा दुःख देरहा है, सो आपही उससे हमलोगों की रक्षा कीजिये आपके सिवाय दूसरा रक्षक नहीं है १।२

ब्रह्माजी बोले कि हे अग्ने! देवता और असुर उस रावण को विजय नहीं कर सक्ते हैं, इस हेतु से उसका निग्रह करने के लिये हमने और उपाय रचा है। वह यह है कि हमारी प्रेरणा से चतुर्भुज विष्णु ने अवतार लिया है, वे उसको मारेंगे। तुम लोग भी अपने अपने अंश से रीछ और वानरों में अवतार लेकर ऐसे पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करो जो विष्णु भगवान् की सहायता करें। यह सुनकर सब देवता, गन्धर्व और दानव पृथ्वी पर शीघ्र अवतार लेने का मन्त्र करने लगे ४।८ उसी समय ब्रह्माजी ने सब देवताओं के सामने दुन्दुभी नाम गन्धर्वी को आज्ञा दी कि तू भी कार्य सिद्ध करने के लिये पृथ्वी पर जाकर अवतार ले। वह यह सुनकर मनुष्यलोक में चली आई और मन्थरानाम कुबड़ी बनकर कैकेयी रानी के यहाँ दासी कर्म करने लगी ६।१० तब इन्द्रआदि देवताओं ने भी रीछ और वानरों की स्त्रियों के गर्भ में अपने अपने अंश से अवतार लिया और उन रीछनी और वानरियों के बड़े बलवान् पुत्र अपने अपने पिताओं के अनुरूप उत्पन्न हुए। वे रीछ और वानर ऐसे पराक्रमी थे कि पर्वतों की चोटियों को भी तोड़ सकते थे और शाल, तालवृक्ष और शलाका आदि आयुध रखते थे ११।१२ सबके अङ्ग वज्र के समान दृढ़ थे और सबके सब बड़े चतुर, दश दश सहस्र हाथियों का बल और वायुका सा वेग रखनेवाले होकर जहाँ इच्छा होती थी वहाँ रहते थे। इसके पीछे ब्रह्माजी ने मन्थरा को वे सब काम, जो उसे करने थे, बतादिये और वह मनके वेग के तुल्य इधर उधर डोलने फिरने और शत्रुता का मूल जमाने का यत्न करने लगी॥ १३। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७५॥

दोसौ छिहत्तरवाँ अध्याय।

राम-वनवास, भरतशोक, शूर्पणखा के कारण खर-दूषणादि वध।

उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से कहा कि हे ब्रह्मन्! महाराज आपने रामचन्द्र आदि के जन्म का वृत्तान्त तो कहा, परन्तु अब मैं रामचन्द्र, लक्ष्मण और यशस्विनी सीता के वनवास होने का कारण जानना चाहता हूं १।२ मार्कण्डेयजी बोले कि राजा दशरथ, जो क्रियावान् धर्मात्मा और वृद्धों की सेवा करनेवाले थे, पुत्रों के उत्पन्न होने से बहुत प्रसन्न हुए। वे पुत्र क्रमपूर्वक बड़े हुए और रहस्यों सहित वेद और धनुर्वेद में पारग होगये ३।४ इसके पीछे उन पुत्रों के विवाह हुए और जब वे ब्रह्मचर्य से निवृत्त हुए तब

राजा दशरथ उनको देखकर प्रसन्न हुए ५ इन चारों पुत्रों में रामचन्द्रजी सबसे बड़े थे। उन्होंने अपनी बुद्धिमानी और मनोहरता से सब प्रजाको आनन्दमङ्गल से युक्त करदिया ६ इसके पीछे राजा दशरथने अपनी आयु अधिक देखकर रामचन्द्रजी का यौवराज्य अभिषेक करने के लिये अपने मन्त्री और पुरोहित से सलाह की। उन सबोंने कहा कि महाराज! अब रामचन्द्रजी को युवराज करने का समय आगया है, अवश्य उनका अभिषेक कराइये ७। ८ हे कुरुनन्दन! रामचन्द्रजी बड़े गुणवान् और स्वरूपवान् थे। नेत्र उनके लाल लाल, चाल मतवाले हाथी कीसी, बाँहें लम्बी लम्बी, छाती चौड़ी और बाल नीले और घूँघरवाले थे। ऐसी शोभा से उनकी छवि बड़ी अद्भुत और दीप्यमान थी। इसके सिवा रामचन्द्रजी बड़े वीर, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी, सब विद्याओं के जाननेवाले, बुद्धि में बृहस्पति के समान, बड़े चतुर, सब प्रजा के प्यारे, जितेन्द्रिय, शत्रुओं की दृष्टि और मनको हरनेवाले, नीच पुरुषों को दण्ड देनेवाले, धर्मात्माओं के रक्षक, अपराजित, जयकर्ता और अनाधृष्य थे। उनको इन गुण और लक्षणों से युक्त देखकर राजा दशरथ उनपर बड़ी प्रीति करने लगे ९। १२ कुछ काल के पीछे उन्होंने प्रसन्न होकर अपने पुरोहित वशिष्ठजी से कहा कि आज रात्रि को पुष्य नक्षत्र पवित्र योग पर आवेगा, इससे आप सामग्री इकट्ठी करवाकर रामचन्द्रजी को यौवराज अभिषेक करा दीजिये १४। १५ उस समय कैकेयी रानीकी मन्थरा दासी ने राजा के वचनों को सुनकर समय पाकर कैकेयी से कहा १६ कि हे रानी! राजा ने कपट करके तेरा बड़ा दुर्भाग्य विचारा है, इससे तो तुझे कोई विषधर सर्प डसले तो अच्छा है १७ कौशल्या बड़ी भाग्यवान् है। आज उसके पुत्र राम का यौवराज अभिषेक होगा और तेरा भाग्य बड़ा मन्द है, जिससे तेरा पुत्र राज्य न पावेगा १८ यह सुनकर कैकेयी, जो बड़ी स्वरूपवान् थी, अपना शृङ्गार सब गहने और वस्त्रों से करके राजा के पास एकान्त में गई और बड़ी प्रीति प्रकाशित करके हँसकर मधुर बोली से राजा से कहने लगी १९। २० कि महाराज! आप सत्यप्रतिज्ञ हैं। आपने मुझ को एक वरदान देने को कहा था। अब वह वरदान मुझको दीजिये २१ राजा दशरथ बोले कि, अच्छा मैं वरदान देता हूं। मांग क्या मांगती है। जिसको कहे उसको मरवा डालूं और जिसको कहे छोड़ दूं २२ ब्राह्मणों के धन के सिवाय जो कुछ धन मेरे पास हैं, उसे जिसको तू कहे देदूं अथवा जिसका

धन तू कहे उसका हरलूं २३ आज मैं पृथ्वी पर सब राजाओं का राजा और चारों वर्णों का रक्षक हूं। जो कुछ तेरी इच्छा हो सो हे कल्याणि! शीघ्र मांग ले २४ यह सुनकर कैकेयी यह समझकर कि इस समय राजा मेरे वश में हैं, कहने लगी कि, मैं यह वरदान मांगती हूं कि रामचन्द्र को वनवास हो और भरत का यौवराज अभिषेक किया जाय २५। २६ हे भरतश्रेष्ठ! इस अप्रिय और दारुण वचन को सुनकर राजा दशरथ बड़े दुःखी हुए और उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया २७ इसके पीछे धर्मात्मा महा बलवान् रामचन्द्रजी ने सुना कि कैकेयी ने पिता से हमारे वनवास जाने का वरदान मांगा है। यह सुनकर वे इस प्रयोजन से वन को चल दिये कि हमारे पिता की प्रतिज्ञा झूठी न होवे २८ उनके साथ धनुषधारी लक्ष्मणजी और वैदेही सीताजी भी होलीं २६ उनके चले जाने पर राजा दशरथ ने अपने प्राण छोड़ दिये ३० इसके पीछे कैकेयी ने दशरथ को मरा हुआ और रामचन्द्रजी को वन में गया हुआ जानकर भरतजी को बुलाकर कहा ३१ कि राजा दशरथ तो स्वर्गवासी हुए और राम लक्ष्मण वन को चले गये, अब तू निष्कण्टक होकर राज्य कर ३२ यह सुनकर धर्मात्मा भरतजी ने कहा कि बड़े दुःख की बात है कि तैंने धन के लोभ से अपने पति को मारकर हमारा कुल नष्ट किया और हिंसात्मक कर्म के करने की भागी हुई ३३ तू मेरी माता है, परंतु कुलकलङ्किनी है। तैंने यह अयश मेरे माथे पर डाल कर अपने को सकाम हुआ माना है, यह कहकर भरतजी रोने लगे ३४ और उन्होंने चरित्र का शोधन किया अर्थात् प्रजाओं को यह प्रतीत कराया कि इस कर्म में मेरी सलाह नहीं थी, कैकेयी ने अपने ही मत से किया है। इसके उपरान्त भरतजी बहुत दुःखी होकर कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, शत्रुघ्न, वशिष्ठ, वामदेव और अन्य सहस्रों ब्राह्मण और पुरवासी और देशवासी मनुष्यों सहित रामचन्द्रजी को लौटाकर लाने की इच्छा से अनेक सवारियों में बैठकर वन में गये और उन्होंने चित्रकूट पर्वत पर जाकर धनुषधारी रामचन्द्रजी को तपस्वियों कासा वेष धारण किये हुए लक्ष्मण सहित देखा ३५।३८ वहां उन्होंने रामचन्द्रजी को लौटाने के लिये अनेक यत्न किये, परंतु रामचन्द्रजी पिता का वचन सत्य करने की इच्छा से वन से नहीं लौटे। तब भरतजी रामचन्द्रजी की पादुका लेकर लौट आये और नन्दिग्राम में बसकर पादुकाओं का पूजन करके राज्य करने लगे ३६ इसके पीछे रामचन्द्रजी

पुरवासी और देशवासियों के आने की शंका से चित्रकूट छोड़कर बड़े वन में चले गये और शरभङ्ग ऋषि के आश्रम में पहुँचे ४० वहां उन्होंने शरभङ्ग ऋषि का सत्कार किया और वहां से दण्डक वन में जाकर गोदावरी नदी के रमणीक तट पर रहने लगे ४१ वहां शूर्पणखा के कारण से खर नामी राक्षस से उनका बड़ा वैर होगया और उन्होंने तपस्वियों की रक्षा के लिये चौदह सहस्र राक्षसों का वध किया और महाबली खर और दूषण दैत्यों को भी मारकर वह वन क्षेमरूप कर दिया ४२।४४ उनके मारेजाने पर शूर्पणखा राक्षसी, जिसके कान और नाक काट लीगई थी; लङ्का में रावण के पास गई ४५ और दुःख से मूर्च्छित होकर उसके पैरों पर गिरपड़ी। रावण उसके कुरूप को देखकर क्रोध से मूर्च्छित सा होकर अपने दाँतों को पीसता हुआ आसन से उठ खड़ा हुआ ४६।४७ और अपने मन्त्रियों को हटाकर एकान्त में उससे पूछा कि मेरा भय न मानकर तेरा ऐसा स्वरूप किसने कर दिया है ४८ वह कौनहै जो तीक्ष्ण त्रिशूल को अपने हाथ से अपनी देह में मारकर अग्नि को शिर पर रखकर विश्वास के साथ सो रहा है और बड़े विषधर सर्पको पाँव से छूकर और सिंह की डाढ़को पकड़कर बैठा हुआ है ४९।५० उस समय रावण के शरीर के छिद्रों से क्रोध की ज्वाला ऐसी निकलने लगी मानों रात्रि में वृक्ष के गुद्दे जलरहे हैं ५१ तब शूर्पणखा ने रामचन्द्रजी के पराक्रम और खर दूषण के मारेजाने का वृत्तान्त रावण से कहा ५२ वह उसको सुनकर और कर्तव्य का निश्चय करके आकाशमार्गी हुआ और चलते समय अपनी बहिन को धैर्य देकर नगर की रक्षा का प्रबंध करगया ५३ लङ्का से चलकर रावण चित्रकूट और कालपर्वतों को नांघकर गंभीर जल रखनेवाले समुद्र के तटपर पहुँचा और वहां से समुद्र को नांघकर गोकर्णतीर्थमें गया जो शिवजी का प्रिय और अव्यग्र स्थान है ५४।५५ और वहां वह अपने पहले मन्त्री मारीच नामी के पास पहुँचा जो रामचन्द्रजी के भय से तपस्वियों का वेष धारण किये हुए रहता था ॥ ५६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

दोसौ सतहत्तरवाँ अध्याय ।

रावणप्रेरित कञ्चनमृगरूपधारी मारीच का वध और सीताहरण की कथा ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! मारीच ने रावण की फल मूल आदि से पूजा की और बड़ा सत्कार करके उससे पूछा कि आपका वर्ण आज स्वाभाविक

नहीं दीखता है कहिये क्या कारण है । प्रजालोग आपकी आज्ञा पूर्ववत् मानते हैं या नहीं और आपके घर में सब क्षेम कुशल से हैं । आपका यहां आना किस कारणसे हुआहै उस कामको मुझसे कहिये । यदि वह काम दुःख से करने के योग्य भी होगा तो भी आप उसे किया हुआ ही समझिये १ । ४ तब रावण ने क्रोध से रामचन्द्रजी का सब चेष्टित वृत्तान्त कहा और जो काम उसने करना विचारा था उसे भी संक्षेप करके कह सुनाया ५ उसको सुनकर मारीच बोला कि रामचन्द्रजी के पराक्रम को मैं अच्छी तरह से जानता हूं । आप उनके निकट न जाइये । उनके बाणवेग को कोई नहीं सह सकता है । मेरे भी तपस्वी हो जाने का कारण वही पुरुषोत्तम हैं ६ । ७ आपको यह नाश करनेवाला उपदेश किस दुरात्मा ने दिया है तब रावण क्रोधित होकर और मारीच को घुड़क कर बोला कि जो तू मेरी आज्ञा न मानेगा तो मैं तुझको मार डालूंगा । उस समय मारीच ने विचार किया कि श्रेष्ठ के हाथ से मरना अच्छा है । मरना तो अवश्य ही है इससे इसका काम भी कर दीजिये और श्रेष्ठ के हाथ से मरिये । यह विचार कर बोला ८ । १० कि कहिये मैं आपकी क्या सहायता करूं । रावण बोला कि तू मेरे साथ चल और अपना स्वरूप रत्नजटित सुवर्ण के मृग का सा बनाकर सीता को लुभा तेरे उस स्वरूप को देखकर सीता रामचन्द्र को मृग मारने की प्रेरणा करेगी । उस समय रामचन्द्र के चले जाने पर मैं सीता को हरकर दूर ले जाऊंगा तब वह दुर्बुद्धि रामचन्द्र भार्या के वियोग में दुःखी होकर मर जायगा । यह सहायता तू हमारी कर । यह सुनकर मारीच ने अपना ऊर्ध्वदैहिक कर्म किया और दुःखी होकर रावण के साथ हो लिया । वे दोनों वहां से चलकर रामचन्द्रजी के आश्रम के निकट पहुँचे और वहां रावण ने अपना स्वरूप दण्डकमण्डलुधारी यती का सा बना लिया और मारीच रत्नजटित सुवर्ण का मृग बन गया । इसके पीछे वे दोनों रामचन्द्रजी के आश्रम पर गये और मृगरूपी मारीच सीताजी के सम्मुख होकर निकला ११ । १७ दैव इच्छा से सीताजी ने उसे देखकर रामचन्द्रजी से उसे मारकर लाने को कहा । रामचन्द्रजी सीताजी का प्रिय करने की इच्छा से तरकस और तलवार लेकर और हाथों में गोधांगुलि त्राण अर्थात् चर्म के दस्ताने चढ़ाकर उस मृग के पीछे इस प्रकार से हो लिये जैसे मृग नक्षत्र के पीछे प्रजापति दौड़े थे और लक्ष्मण को सीताजी की रक्षा के लिये छोड़ गये । वह मृग भागता हुआ कभी

अन्तर्धान होता और कभी प्रकट होता, रामचन्द्रजी को दूर लेगया। तब बुद्धिमान् रामचन्द्रजी जान गये कि यह राक्षस है और उन्होंने अमोघ बाण उस राक्षस के मारा। उस बाण से पीड़ित होकर वह दैत्य रामचन्द्रजी की-सी बोली बनाकर बड़े ऊंचे स्वर से पुकारने लगा हा सीता! हा लक्ष्मण! उस करुणाविलाप को सुनकर सीताजी उस ओर दौड़ीं जिधर से वह रोने का शब्द आता था। उस समय लक्ष्मण ने सीता से कहा कि तुम क्यों शङ्का करती हो रामचन्द्रजी पर प्रहार करनेवाला कोई नहीं है १८। २४ अभी मुहूर्त्तमात्र में रामचन्द्रजी आते हैं। यह सुनकर सीता ने जो रो रही थी लक्ष्मण की ओर से शङ्का की २५ और स्त्रीस्वभाव से इस प्रकार से परुष वचन कहनेलगी कि हे मूढ़! तैंने जो कामना अपने मन में विचारी है वह किसी प्रकार से नहीं हो सकती है। मैं चाहे अपने को शस्त्र से काट डालूंगी अथवा पर्वत के शिखर से गिर कर मर जाऊंगी या अग्नि में गिरकर जल जाऊँगी पर अपने पति रामचन्द्र के सिवाय तुझ हीनगुण की सेवा नहीं करूंगी जैसे शार्दूली गीदड़ की सेवा कभी नहीं करती है। यह सुनकर लक्ष्मणजी २६। २९ अपने कानों को बन्द करके उसी राह से जिससे रामचन्द्र गये थे खोज देखते हुए और सीताजी की ओर भी दृष्टि करते हुए चल दिए। उनके चले जाने पर वह अशुचिरूप रावण अपने को संन्यासी के रूप में इस प्रकार से ढके हुए जैसे राख में अग्नि छिपी रहती है वहां आया ३०। ३२ उसको देखकर धर्मज्ञ सीता फल और मूल उसे देने लगी परंतु उसने उनको नहीं लिया और अपने राक्षसस्वरूप को प्रकट करके कहने लगा कि हे सीते! मैं रावणनामी राक्षसों का राजा हूं। मेरी पुरी लङ्कानामी महासमुद्र के पास है ३३। ३५ वहां तू मेरे साथ चली चल और मेरी भार्या होकर नर और नारियों के बीच में आनन्दपूर्वक रह और इस तपस्वी रामचन्द्र को छोड़ दे। यह सुनकर सीता ने अपने दोनों कानों को बन्द कर लिया और कहने लगी कि यह नहीं हो सकता है, चाहे स्वर्ग नक्षत्रों सहित गिर पड़े, पृथ्वी फटकर दो टूक होजाय और अग्नि ठण्ढी पड़ जाय परंतु मैं रामचन्द्रजी को नहीं छोड़ सकती हूं ३६। ३८ यह क्योंकर हो सकता है कि हथिनी कमलों के वन में विहार करनेवाले हाथी को छोड़कर शूकर की उपासना करे ३९ हां, ऐसा कर्म चाहे वह स्त्री करे जो मधुपुष्पों की बनाई हुई मद्य अथवा मधु या माधवी को पीकर कांजी पीना चाहे ४० यह कहकर सीता

जिसके होंठ और हाथ क्रोध से कांपने लगे थे आश्रम के भीतर चली गई ४१ तब रावण ने सीता के पास जाकर उसे आश्रम के भीतर जाने से रोका और उस अचेत हुई को घुड़क कर उसके शिर के बाल पकड़ लिये और आकाशमार्ग से चल दिया । उस समय उस राम २ पुकारती और रोती हुई सीता को जटायु नाम पर्वतनिवासी गृध्र ने देखा ॥ ४२ । ४३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥

दोसौ अठत्तरवाँ अध्याय ।

रावण-मारित जटायु से सीताहरण का हाल सुन लक्ष्मण-समेत राम का दक्षिण दिशा में जाकर कबन्ध को मारना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! वह महावीर गृध्रराज जटायु अरुण का पुत्र और सम्पाति गृध्र का सहोदर भाई था और राजा दशरथ से उसकी मित्रता थी १ वह गृध्र पुत्रवधू सीता को रावण की गोद में देखकर बड़ा क्रोधित हुआ और दौड़कर रावण के सम्मुख गया और कहने लगा २ कि हे निशाचर ! सीता को छोड़ दे २ मेरे जीते हुए तू इसे हरकर नहीं ले जासकता है ३ और जो तू इसे छोड़ेगा नहीं तो जीता न बचेगा । यह मेरी पुत्रवधू है । यह कहकर जटायु ने रावण को अपने तीक्ष्ण नखों से घायल कर दिया ४ और चोंच और पैरों के प्रहार से उसका शरीर जर्जर कर दिया । उससे रावण के शरीर से लोहू इस प्रकार से गिरने लगा जैसे पर्वत में झरना झरते हैं ५ तब रावण ने उस रामचन्द्र का हित चाहनेवाले गृध्र से वध्यमान होकर तलवार से उसके दोनों पर जो अभ्रक की शिखर के तुल्य थे काटकर गिरा दिये और सीता को फिर गोद में उठाकर आकाशमार्ग से चल दिया ६ । ७ सीताजी जहां जहां आश्रम, सरोवर अथवा नदी देखती थीं तहां तहां आभूषण गिराती जाती थीं ८ आगे जाकर सीता ने एक पहाड़ पर पांच श्रेष्ठ वानरों को बैठा हुआ देखा । वहां उसने अपना वस्त्र डाल दिया ९ और वह पीताम्बर वस्त्र बिजली के समान चमकता हुआ उन पांचों वानरों के बीच में आन पड़ा १० इसके पीछे रावण उस आकाशमार्ग से थोड़े ही काल में रमणीक लङ्कापुरी में आन पहुँचा जो विश्वकर्मा की बनाई हुई और बहुत से द्वार, कोट और दुर्गों से शोभित और दुर्गम थी ११ । १२ इसके उपरान्त रामचन्द्रजी उस सुवर्ण के मृग को मारकर लौटे और मार्ग में उनको लक्ष्मणजी मिले । उनको देखकर रामचन्द्रजी ने निन्दा

करके कहा कि तू इस राक्षसों से सेवित वन में सीता को अकेली छोड़कर क्यों चला आया है १३ । १४ यह कहकर रामचन्द्रजी अपने मृगरूपी राक्षस के पीछे दूर जाने और लक्ष्मण के चले आने को शोचकर दुःखी होगये और लक्ष्मणजी के पास जाकर बोले कि सीता न जाने जीती है या नहीं १५।१६ तब लक्ष्मण ने रामचन्द्रजी से सीता के कहे हुए सब अयोग्य वचन कहे १७ उसको सुनकर रामचन्द्रजी दुःखी होकर आश्रम की ओर शीघ्रता से चले। मार्ग में उन्होंने पर्वत के तुल्य पड़े हुए गृध्र को देखा १८ और उसे राक्षस अनुमान कर दोनों भाई धनुष् चढ़ाकर उसके सम्मुख दौड़े १९ उनको देखकर गृध्र बोला कि मैं गृध्रों का राजा और राजा दशरथ का सखा हूं २० उसको सुनकर उन्होंने अपने धनुष उतार लिये और कहने लगे कि यह कौन है, जिसने हमारे पिता का नाम लिया है२१ तब वे दोनों उस पर कटे हुए गृध्र के पास गये। उसने सीता के निमित्त रावण के हाथ से अपने मारे जाने का सब वृत्तान्त उन दोनों से कहा २२ तब रामचन्द्रजी ने उससे पूछा कि रावण किस दिशा को गया है। उसने शिर हिलाकर रामचन्द्रजी को उत्तर दिया और मर गया २३ रामचन्द्रजी उस संकेत से जान गये कि दक्षिण दिशा को गया है फिर रामचन्द्रजी ने उसे अपने पिता का सखा जानकर उसका संस्कार अर्थात् प्रेतक्रिया की और अपने आश्रम को शून्य देखकर, जिसमें सैकड़ों गीदड़ आन बैठे थे और आसन आदि तितर बितर पड़े हुए और घड़े टूटे पड़े थे, सीता के हरे जाने के दुःख और शोक से आविष्ट होकर दण्डकवन में दक्षिण दिशा को चल दिये २४ । २६ आगे बढ़कर उन दोनों ने मृगों के झुंडों को भागते हुए अपनी ओर आते देखा और वन के जीवों का महा घोर शब्द सुना जिससे यह प्रतीत होता था कि वन में दावाग्नि लगी है। थोड़ी देर में उनके सामने कबन्धनामी घोरदर्शन राक्षस आ निकला २७। २८ जिसका शरीर पर्वत के समान, कन्धे शाल वृक्ष के सदृश, भुजा बड़ी बड़ी छाती पर एक आंख और बड़े भारी पेट पर बड़ा सा मुख था २९ दैवइच्छा से उस राक्षस ने शीघ्र आकर लक्ष्मणजी का हाथ पकड़ लिया। लक्ष्मणजी को उससे बड़ा कष्ट हुआ ३० इसके पीछे जब उस राक्षस ने लक्ष्मणजी को अपने मुख की ओर भक्षण करने को खींचा, तब लक्ष्मणजी ने व्याकुल होकर रामचन्द्रजी से कहा कि मेरी इस अवस्था को देखिये ३१ क्या दैवयोग है कि इधर सीता हरी गई और मेरी यह दशा हुई और उधर आप राज्य

से भ्रष्ट हुए और पिताजी स्वर्गवासी हुए ३२ अब मुझको यह आशा नहीं है कि मैं आपका सीता से मिलाप और अयोध्या में लौटकर आपको बाप दादों के राज्य पर स्थित देखूँ ३३ वे लोग धन्य होंगे जो आपके चन्द्रमारूपी मुख को उस समय देखेंगे, जिससमय आपका राज्याभिषेक कुश और लाजा आदि सामग्री से किया जायगा ३४ इसप्रकार से लक्ष्मण ने विलाप करके अनेक बातें कहीं । तब रामचन्द्रजी, जिनको भय के स्थान पर भी भय नहीं लगता था, बोले ३५ कि तुम घबराओ मत, मेरे होते हुए यह राक्षस तुम्हारा कुछ नहीं करसक्ता है । मैं इसकी बाईं भुजा को काटे डालता हूँ । तुम दाहिनी बांह को काट डालो ३६ यह कहकर रामचन्द्रजी ने तीक्ष्ण तलवार से उस राक्षस की बाईं भुजा काट डाली । तब लक्ष्मणजी ने भी उसकी दाहिनी भुजा काटकर गिरा दी ३७।३८ और उसके पार्श्व पर एक तलवार मारी । उसके लगने से वह कबन्ध राक्षस निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ३९ और उसकी देह से एक दिव्य दर्शनीय पुरुष निकलकर सूर्य के समान चमकता हुआ आकाश में स्थित होगया ४० उसको देखकर रामचन्द्रजी ने पूछा कि तू कौन है और यह क्या अद्भुत बात है । तुझे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है ४१ वह बोला कि मैं विश्वावसु गन्धर्व हूं ब्राह्मण के शाप से राक्षस होगया था ४२ सीता को लङ्कावासी रावण हर ले गया है । तुम सुग्रीव के पास जाओ, वह तुम से मित्रता करेगा ४३ ऋष्यमूक पर्वत के पास पम्पानाम सरोवर बड़ा आनन्दरूपी जल रखनेवाला जहां हंस आदि पक्षी रहते हैं ४४ वहीं वानरों के राजा बालि का भाई सुग्रीवनामी सुवर्ण की माला पहिरे हुए अपने चारों मन्त्रियों सहित रहता है ४५ तुम उससे मिलो और अपना दुःख कहो । वह भी तुम्हारे ही समान शील स्वभाव रखनेवाला है । अवश्य तुम्हारी सहायता करेगा ४६ बस, हम इतना ही तुमसे कहते हैं कि तुम सीता से फिर मिलोगे । वह वानरों का राजा सुग्रीव रावण का स्थान जानता है ४७ यह कहकर वह पुरुष अन्तर्धान होगया और राम लक्ष्मण बड़ा आश्चर्य करने लगे ॥४८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥

दोसौ उनासीवाँ अध्याय ।

राम सुग्रीवकी मित्रता, बालिबध तथा त्रिजटा का स्वप्न सुनाकर सीता को धैर्य देना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे रामचन्द्रजी पम्पापुष्करिणी

के निकट पहुँचे, जो पासही थी, अनेक प्रकार के कमल उस पुष्करिणी में खिल रहे थे और अमृतरूपी सुगन्धित वायु बह रही थी, राजा रामचन्द्र उस शोभित और रमणीक वन को देखकर कामबाण से संतप्त होते हुए सीता के वियोग से विलाप करने लगे, उस समय लक्ष्मण ने उनको समझाया कि १। ३ हे मानदायक! आपको इस प्रकार का भाव कदापि स्पर्श नहीं कर सकता है, जैसे कि आत्मा के जाननेवाले और वृद्धों का-सा स्वभाव रखनेवाले पुरुष को व्याधियाँ नहीं सताती हैं ४ आपको रावण से सीता के हरे जाने का वृत्तान्त विदित हो ही गया है, उसके पास से सीता के लाने का उपाय बुद्धि से कीजिये ५ चलिये शैलस्थायी, कपीश सुग्रीव के पास चलें आप मुझे अपना दास और शिष्य जान कर मुझ पर विश्वास कीजिये ६ यह सुनकर रामचन्द्रजी का चित्त स्वस्थ हुआ और वे दोनों भाई पम्पापुष्करिणी में स्नान और तर्पण करके चल दिये ७। ८ और उस ऋष्यमूकपर्वत के समीप पहुँचकर, जिस पर बहुत से फूले-फले हुए वृक्ष लगे हुए थे, उन्होंने पांच वानर बैठे हुए देखे ९ तब सुग्रीव ने अपने हनुमान् नामी बुद्धिमान् मन्त्री को, जिसका शरीर हिमवान् पर्वत के समान था, उन दोनों के पास भेजा १० हे नृपाल! उन्होंने प्रथम हनुमान्जी से बातचीत की उपरान्त दोनों भाई सुग्रीव के पास गये और वहां जाकर रामचन्द्रजी ने वानरेश सुग्रीव से मित्रता की ११ इसके पीछे जब एक दूसरे ने अपना २ कार्य कहा तब सुग्रीव ने रामचन्द्रजी को वह वस्त्र दे दिया जो रावण से हरे जाने पर सीता ने फेंक दिया था १२ हे नरेश! उसको देखकर रामचन्द्रजी को सुग्रीव का विश्वास हुआ और उन्होंने बालि को मारकर उसे वानरों का राजा बनाने का प्रण किया। तब सुग्रीव ने भी सीता के फिर लाने की प्रतिज्ञा की १३। १४ इस प्रकार से सुग्रीव और रामचन्द्र दोनों एक दूसरे के साथ नियम करके और विश्वास देकर सब समाज सहित किष्किन्धा को युद्ध की इच्छा से गये १५ वहां जाकर सुग्रीव बड़े शब्द से गर्जा, उसका भाई बालि उसकी गर्जना को न सह सका और युद्ध करने को चलने लगा, तब उसकी स्त्री तारा ने उसे निषेध करके कहा कि आप युद्ध करने न जाइये। सुग्रीव बल पर नहीं गर्जता है, किन्तु दूसरे की सहायता पाकर आया है १६। १७ यह सुनकर उस वानरों में श्रेष्ठ बालि ने, जो सुवर्ण की माला पहिरे हुए था,

अपनी चन्द्रमुखी स्त्री तारा से कहा १८ कि तू सब प्राणियों की बोली जानती है, अपनी बुद्धि से विचार कर कह कि सुग्रीव किसके बल पर मुझसे लड़ने आया है १६ यह सुनकर उस चन्द्रमुखी ने एक मुहूर्त भर विचार करके कहा कि दशरथ के पुत्र रामचन्द्र से, जो बड़े धनुधारी हैं और जिनकी स्त्री को रावण हर ले गया है, उनसे सुग्रीव ने ऐसी मित्रता की है कि जिनके शत्रु मित्र परस्पर तुल्य हैं २० । २१ और रामचन्द्र का भाई लक्ष्मण, जो सुमित्रा से उत्पन्न है, जो महाबाहु बुद्धिमान् और अपराजित है, वह भी दोनों के काम को सिद्ध करने में तत्पर है २२ और मयंद, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान् नामी सुग्रीव के मन्त्री भी स्थित हैं । ये सब रामचन्द्रजी का बल पाकर तुमको मार सकते हैं २३ । २४ यह सुनकर उस ईर्षी कपीश्वर ने उसके वचन को न माना और समझा कि तारा का चित्त सुग्रीव में लगा हुआ है २५ यह समझकर वह गुफा से निकल कर तारा को परुष वचन कहता हुआ चला आया और अपने सम्मुख सुग्रीव को पर्वत के समान खड़ा हुआ देखकर बोला २६ कि पूर्वकाल में मैंने तुझको कई बार जीत जीत कर भाई जानकर छोड़ छोड़ दिया और तू भी अपना जीव बचाकर भाग भाग गया, अब मरने के लिये क्यों शीघ्रता कर रहा है २७ यह सुनकर सुग्रीव रामचन्द्रजी को सम्बोधन करके काल के अनुसार अपने भाई से बोला कि आपने मेरी स्त्री और राज्य हर लिया है, मुझे अब जीने से क्या है इस जीने से तो लड़ मरना ही अच्छा है २८ । २६ इस प्रकार से वे दोनों वीर अनेक बातें कहकर शाल और तालवृक्ष और शिला ले लेकर युद्ध करने लगे ३० कभी दोनों पृथ्वी पर लड़ते २ गिर पड़ते, कभी एक दूसरे पर प्रहार करने लगते कभी अद्भुत २ बातें करने लगते, और कभी परस्पर घूंसे लगा २ कर युद्ध करने लगते, ३१ थोड़ी देर में दोनों जने नख और दांतों के लगने से घायल होगये और उनके शरीर फूले हुए टेसू के वृक्ष के समान दीखने लगे ३२ जब उन दोनों में से कोई न्यूनाधिक नहीं जानपड़ा, तब हनुमान्जी ने सुग्रीव को एक माला पहिराय दी और वह उस माला से ऐसा शोभायमान दीखने लगा मानों मेघमाला से घिरा हुआ मलयाचल पर्वत है ३३ । ३४ तब रामचन्द्रजी ने सुग्रीव को चिह्नित देख कर धनुष् चढ़ा लिया और बालि पर लक्ष्य अर्थात् निशाना बाँधकर बाण छोड़

दिया। वह बाण बालि के हृदय में घुस गया और बालि उससे कंपित होकर रुधिर उगलने लगा। इसके पीछे बालि राम लक्ष्मण को देखकर और उनकी निन्दा करता हुआ पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा और मरगया और उस तेजस्वी को पृथ्वी पर पड़ाहुआ तारा ने भी देखा, इसके उपरान्त रामचन्द्रजी ने सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य दे दिया और सुग्रीव वहां तारा सहित आनन्दपूर्वक रहने लगा ३५। ३६ और चातुर्मास के कारण से रामचन्द्रजी ने भी सुग्रीवसहित माल्यवान् पर्वत पर वास किया ४० और रावण ने कामदेव से विकल होकर सीता को अशोक वन में नन्दनवन के तुल्य भवन में ठहरा दिया और वह तपस्विनी फल मूल का आहार और व्रत रखकर तापसीरूप से राम राम स्मरण करती हुई वहां रहने लगी ४१। ४२ रावण ने उसकी रक्षा के लिये अनेक राक्षसी नियत कर दीं उनमें से किसी के एक आंख किसी के दो आंख किसी के माथे में आंख किसीके बड़ी जीभ किसी के जीभ ही नहीं किसी के तीन स्तन किसी के एक पाँव और किसी के तीन जटा थीं और किसी किसी राक्षसी के बाल ऊँट के से थे ये राक्षसी खड्ग, शूल, फरसा, मुद्गर और आलात आदि अनेक शस्त्र लिये हुए विना निद्रा सीता की रक्षा करती थीं और रौद्ररूप से भयानक बोलियां बना बनाकर कहती थीं कि इसको फार डालो, खा लो और तिल के समान टुकड़े कर डालो क्योंकि यह हमारे पति का अपमान करके जीती बैठी है ४४। ४८ उस समय सीता ने पति के वियोग से दुःखी होकर और उन राक्षसियों के भयभीत वचनों को सुनकर कहा कि हे श्रेष्ठ राक्षसियो! मुझको शीघ्र ही खा लो विना उस पुण्डरीकाक्ष और नील कुञ्चितकेश रखनेवाले अपने पति के मैं जीना नहीं चाहती हूं ४६। ५० ताल में पड़ी हुई सर्पिणी के समान मैं भी जीवित के आनन्द से रहित होकर निराहार रहकर अपनी देह सुखा दूंगी ५१ मेरी यही सत्य प्रतिज्ञा है कि मैं रामचन्द्रजी के सिवाय दूसरे पुरुष से नहीं बोलूंगी तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो ५२ यह सुनकर वे गधे की सी बोली बोलनेवाली राक्षसियां रावण के पास गईं और उससे सीता के कहे हुए वाक्य कह सुनाये ५३ उनके चले जाने पर त्रिजटानाम प्रियवादिनी और धर्म को जाननेवाली राक्षसी ने सीता से कहा कि हे सखि! मैं तुझसे कुछ कहना चाहती हूं तू मुझ पर विश्वास कर और हे वामोरु! भय को छोड़कर मेरी बात सुन ५४। ५५ यहां अविन्ध्य नामक एक

बुद्धिमान् वृद्ध राक्षस है वह रामचन्द्रजी का हितान्वेषी है उसने यह कहा है कि तू सीता से जाकर कहदे कि तेरे पति रामचन्द्र लक्ष्मणजी-सहित कुशल हैं उन्होंने इन्द्रतुल्य पराक्रमी वानरों के राजा से मित्रता करली है और तेरे छुटाने का यत्न कर रहे हैं ५६।५८ तू इस लोकनिन्दित रावण से भय मत करे, पूर्वकाल में इसने रम्भानामी अपनी पुत्रवधू को स्पर्श किया था उस समय इसको नलकूबर ने शाप दिया था उस शाप के कारण से यह रावण किसी स्त्री के साथ बरबस कुकर्म नहीं कर सक्ता है ५९।६० तेरा पति सुग्रीवसे रक्षित होकर लक्ष्मण समेत शीघ्र ही यहां आवेगा और तुझे यहांसे छुटा ले जायगा ६१ इसके सिवाय मैंने बहुत से अनिष्टदर्शन स्वप्न भी देखे हैं उनसे भी यह प्रतीत होता है कि अब इस पौलस्त्यकुलघाती दुर्बुद्धि रावण का नाश होगा ६२ यह राक्षस भयानक, दुष्टात्मा और क्षुद्रकर्मा है और शील न होने के कारण से सबके भय का बढ़ानेवाला है ६३ सब देवताओं से भी यह ईर्ष्या रखता है सो यह काल का मारा हुआ है मैंने इसके नाश होनेवाले ये चिह्न स्वप्न में देखे हैं ६४ कि यह रावण तेल में डूबा हुआ और शिर मुड़ा हुआ और अंग में कीच लपेटे हुए गधों के रथ पर नाचता हुआ सा बैठा हुआ है ६५ और कुम्भकर्ण आदिक योधा शिर मुड़ाये हुए नंगी देह और लाल माला पहिरे हुए दक्षिण दिशा को जा रहे हैं ६६ और विभीषण श्वेत छत्र, श्वेत पगड़ी, श्वेत माला और श्वेत चन्दन धारण किये हुए श्वेत पर्वत पर चढ़ा हुआ है ६७ और उसके चार मन्त्री भी श्वेत चन्दन और श्वेत माला धारण किये हुए उसी श्वेत पर्वत पर चढ़े हुए हैं और हम लोगों को बड़े भय से छुटा रहे हैं ६८ और तेरे पति के छोड़े हुए अस्त्र से सब पृथ्वी व्याप्त हो रही है और उसका यश सब पृथ्वी में छा गया है ६९ और लक्ष्मण अस्त्रों के समूह पर चढ़ा हुआ मिठाई और खीर खा रहा है और सब दिशाओं को जलाना चाहता है ७० और तू रुधिर में भरी हुई और रोती हुई चारोंओर व्याघ्रों से रक्षित उत्तर दिशा को जा रही है ७१ सो हे सीते ! अब तू थोड़े ही काल में भाई-सहित अपने पति से मिलकर प्रसन्न होगी ७२ यह सुनकर मृगनयनी सीता को पति के मिलने की आशा हुई और फिर वे रौद्ररूपा राक्षसियाँ जो रावण के पास गई थीं आ गईं और उन्होंने सीता को त्रिजटा के पास बैठी हुई देखा ॥ ७३। ७४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥

दोसौ अस्सीवाँ अध्याय।

भार्या होने की प्रार्थना करते हुए रावण का सीता के कठिन उत्तर देने से अन्तर्धान होजाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे एक समय सीताजी दीन होकर अपने पति के वियोग में मैले वस्त्र पहिरे हुए शिला पर बैठी हुई राक्षसियों से चारों ओर घिरी हुई रो रही थीं उसी समय कामबाण से पीड़ित वह रावण जिसको देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व और किंपुरुष कोई नहीं जीत सकता था अशोकवाटिका में सीताजी के समीप गया उस समय वह दिव्यवस्त्र, दिव्यमणि, दिव्यकुण्डल, विचित्रमाला और सुन्दर मुकुट धारण किये हुए वसन्त की सी मूर्ति बना हुआ था और यद्यपि कल्पवृक्ष के समान भूषित था, परंतु श्मशान के चैत्यवृक्ष के समान भयंकर दीखता था १।५ और सीता के समीप गया हुआ ऐसा जान पड़ता था मानों शनैश्चर रोहिणी नक्षत्र के पास गया है ६ उससमय रावण ने अबला सीता से कहा कि तैंने अपने पति पर बड़ा अनुग्रह किया बस इतनी ही कृपा बहुत है अब तू मुझ पर कृपाकर और बहुत मोल के सुन्दर वस्त्र और गहने धारण करके मेरी भार्या होकर रह तुझको मैं अपनी सब स्त्रियों में उत्तम समझूंगा ७। ९ मेरे पास देवकन्या, गन्धर्व और दैत्यों की स्त्रियाँ और दानवों की कन्या भी हैं वे सब तेरी सेवा करेंगी १० और चौदह कोटि पिशाच मेरे आज्ञाकारी हैं और उनसे दुगने नरभक्षी राक्षस और उनसे तिगुने मेरे वचन को करनेवाले यक्ष मेरे पास हैं और कुछ यक्ष मेरे भाई कुवेर के पास हैं ११। १२ और गन्धर्व अप्सरा मेरे पास भी कुवेरजी के सदृश आते हैं और मैं विश्रवा ब्रह्मऋषि का पुत्र हूं और संसार में पांचवाँ लोकपाल गिना जाता हूं १३। १४ और मेरे पास सब भक्ष्य और भोज्य पदार्थ उसी प्रकार से हैं जैसे इन्द्र के पास हैं १५ यह समझकर तू मेरी भार्या होजा ऐसा करने से वनवास का सब दुःख तेरा जाता रहेगा मैं तुझको मन्दोदरी के समान समझता हूं १६ यह सुनकर वह पतिव्रता सीता रोने लगी और मुख फेरकर तिनके की ओट करके रावण से बोली कि हे राक्षसेश्वर! मुझ दुखिया और अभागी ने तेरे ये वाक्य कई बेर सुने अब तू अपना मन मेरी ओर से हटा ले इसी में तेरा कल्याण होगा १७। २० मैं पराई स्त्री दीनस्वरूप पतिव्रता और मानुषी हूं तुझसे मिलने के योग्य नहीं हूं २१ तू मुझे विवश करके धर्षणा से प्रीति चाहता है अरे पापी! अपने पिता की ओर देख जो वेदपाठी और प्रजा-

पति के समान है २२ तू धर्म को तो समझता ही नहीं है फिर अपने को लोकपाल के समान कैसे बताता है और अपने को कुबेरजी का भाई कहते हुए जो शिवजी के प्यारे मित्र हैं तुझे लज्जा नहीं आती है यह कहकर वह सूक्ष्म शरीर सीता शिर और मुख को ढककर पृथ्वी की ओर देखती हुई हिचकियाँ ले लेकर रोने लगी उस समय उसके कुच आदि अंग रोने से हिलने लगे और उसके शिर पर बँधी हुई लम्बी वेणी काली और चिकनी सर्पिणी के सदृश दीखने लगी उसके कहे हुए कठोर वचनों को सुनकर २३। २६ रावण बोला कि हे सीते! चाहे मुझको कामदेव कितना ही सतावे, परंतु मैं तुझ सुन्दरी से विना तेरी कामवृत्ति के नहीं मिलूंगा तू मेरा क्या कर सकती है जो अभीतक तू हमारे आहाररूपी मनुष्य रामचन्द्र को चाह रही है २७। २६ यह कहकर वह राक्षसाधिप वहीं अन्तर्धान होगया और अपनी इच्छा के अनुसार मनमानती दिशा को चला गया और सीता शोक से पीड़ित होकर उन्हीं राक्षसियों की रक्षा में त्रिजटा-सहित रहा की॥ ३०। ३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८०॥

दोसौ इक्यासीवाँ अध्याय।

सुग्रीवप्रेषित हनुमान्जी का सीता की खबर लाकर रामचन्द्रजी से सब वृत्तान्त कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! रामचन्द्रजी सुग्रीव की रक्षा में लक्ष्मणजी सहित माल्यवान् पर्वत पर वास करते रहे जब वर्षाऋतु व्यतीत हो गई और आकाश के निर्मल होने से चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र और तारागणों सहित प्रभायुक्त उदय हुआ, तब रामचन्द्रजी को पर्वत पर कुमुद, उत्पल और पद्मजाति के कमलों की सुन्दर गन्ध उड़ने और शीतल वायु के चलने से अकस्मात् सीता की याद आगई जो राक्षस के घर में रुकी हुई थी और उन्होंने प्रातःकाल बीर लक्ष्मण से कहा १। ४ कि हे लक्ष्मण! तुम किष्किन्धा में जाकर उस स्वार्थी, कृतघ्नी और मैथुनादिक ग्राम्यधर्मों में प्रमत्त कपीश्वर सुग्रीव को देखो ५ उस कुलकलङ्की के लिये मैंने तुम्हारे साथ किष्किन्धा में जाकर बालि को मारा और उसका राज्याभिषेक कराया जिसके कारण से अब उसकी आज्ञा में सब वानर और रीछ रहते हैं ऐसा उपकार करने पर भी जो वह नीच वानर मेरी अवस्था को नहीं देखता है तो मैं उसको कृतघ्नी समझता हूं और जानता हूं कि वह अपनी अल्पबुद्धि के कारण से यह नहीं जानता है कि

इन्होंने मेरा उपकार किया है मुझे भी अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करना चाहिए सो तुम यहां से जाकर उस सुग्रीव को देखो जो वह हमारे कार्य का कुछ उद्योग न करता हो और सुख पाकर सोता हो तो उसे भी उसी मार्ग में भेज दो जिस मार्ग से बालि गया है और जो वह हमारे कार्यसिद्धि के लिये यत्न करता हो तो हे काकुत्स्थ ! उसको शीघ्र यहां लिवा लाओ ६ । ११ यह सुन कर लक्ष्मणजी गुरु के वचन और हित में तत्पर होकर धनुष्बाण लेकर चल दिये और किष्किन्धा के द्वार पर पहुँचकर विना रोके हुए भीतर घुस गये सुग्रीव उनको क्रोधित देखकर उनके सम्मुख चला गया १२ । १३ और प्रसन्नता से विनीत होकर अपनी स्त्री-सहित उनको लिवा लाया और उनकी उचित पूजा की १४ तब लक्ष्मणजी ने निर्भय होकर रामचन्द्रजी ने जो कुछ कहा था कह सुनाया उसको सुग्रीव अपनी स्त्री और नौकरों-सहित सुनकर प्रसन्नता और नम्रता से हाथ जोड़कर नरोत्तम लक्ष्मण से बोला १५ । १६ कि हे लक्ष्मणजी ! मैं कृतघ्नी नहीं हूं न दयाहीन हूं और मेरी बुद्धि भी नष्ट नहीं हुई है मैंने सीता के ढूंढ़ने के लिये जो यत्न किया है उसको सुनो १७ मैंने चारों दिशाओं में वानर एक महीने में लौटने का काल नियत ठहराकर यह शिक्षा करके भेज दिये हैं कि तुमलोग इस सागररूपी वस्त्र रखनेवाली पृथ्वी पर वन, पर्वत, नगर, ग्राम आदि सब स्थानों में जाकर सीता का पता लेकर चले आवो सो अब उस महीने के व्यतीत होने में केवल पांच रात्रि रह गई हैं इन रात्रियों के पीछे तुम रामचन्द्रजी सहित बड़ी प्यारी बात सुनोगे १८ । २० यह सुनकर लक्ष्मणजी ने क्रोध छोड़कर सुग्रीव की प्रशंसा की और उसे माल्यवान् पर्वत पर रामचन्द्रजी के पास ले जाकर संपूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया २१ । २२ इसके पीछे महीना भर पूरा होने पर तीन दिशाओं से सब वानर लौटकर आ गये परन्तु जो वानर दक्षिण की ओर गये थे वे नहीं आये २३ तब सुग्रीव ने रामचन्द्रजी से उनके लौटने का हाल कहकर कहा कि महाराज ! तीन दिशाओं में तो रावण और सीता का पता नहीं है २४ तब रामचन्द्रजी ने दक्षिण दिशा को गये हुए वानरों से सीता की खबर पाने की आशा रखकर अपने प्राणों को स्वस्थ किया २५ तदनन्तर दो महीने पीछे कुछ वानरों ने सुग्रीव से यह आकर कहा २६ कि महाराज ! जिस मधुवन की बालि ने रक्षा किया था और आप भी

जिसकी रक्षा करते हैं उसके फलों को आज वायुपुत्र हनुमान् और अङ्गद आदि अनेक वानर जिनको आपने दक्षिण दिशा को भेजा था खा रहे हैं २७ । २८ यह सुनकर सुग्रीव ने समझा कि कार्य हो गया क्योंकि नौकर लोग ऐसा काम जभी करते हैं जब कार्य सिद्ध कर लाते हैं। ऐसा अनुमान करके उसने सब वृत्तान्त रामचन्द्रजी से कहा उन्होंने भी यही अनुमान किया कि ये वानर सीता को देखकर आये हैं २९ । ३० हे भरतवंशिन् ! इसके पीछे वे हनुमान् आदिक सब वानर सुग्रीव के पास उसी स्थान पर आये जहां रामचन्द्र और लक्ष्मणजी थे उस समय रामचन्द्र ने हनुमान् के मुख के वर्ण को देखकर निश्चय किया कि निस्संदेह ये सीता को देखकर आये हैं ३१ । ३२ इसके पीछे उन हनुमान् आदि वानरों ने वहां आकर राम लक्ष्मण और सुग्रीव को विधिवत् प्रणाम किया ३३ तब रामचन्द्रजी ने धनुष्बाण को लेकर वानरों से कहा कि मुझको अब प्रिय सँदेशा सुनाकर सजीव करो और तुम सब भी सिद्ध अर्थ हो जावो ३४ मैं शत्रु को मारकर और सीता को फिर लाकर अयोध्या में जाकर राज्य करूंगा ३५ नहीं तो विना ऐसा किये मैं जीना नहीं चाहता हूं यह सुनकर वायुपुत्र हनुमान्जी बोले कि महाराज ! आपको प्रिय सँदेशा मैं सुनाता हूं मैं सीता को देख आया हूं ३६ । ३७ हम सब यहां से वन और पर्वतों को ढूँढ़ते हुए दक्षिण दिशा को चले गये बहुत दूर जाने पर हमारे आने का नियत काल व्यतीत हो गया, परंतु हमको सीता का पता नहीं लगा। उपरान्त एक दिन हम सब थके हुए एक गुफा के पास जा निकले जिसमें अँधेरे के कारण से कुछ सुझाई नहीं देता था वह गुफा कई योजन लम्बी और कीड़े मकोड़ों से भरी थी और आदमी का वहां नाम न था हम सबलोग उस गुफा में घुस गये और बहुत दूर पर हमको सूर्य का प्रकाश और एक सुन्दर भवन मिला ३८ । ४० हे राघव ! वह भवन मयदैत्य का था और वहां प्रभावती नाम तापसी तापस्या कररही थी ४१ उसने हमलोगोंको नानाप्रकार के भोज्य दिये हमलोग उनको खाकर बलवान् होगये और वहां से उस तापसी के बताये हुए मार्ग से चलकर सह्य, मलय और दर्दुरनाम पर्वतों पर पहुँचे जो समुद्र के तट पर हैं ४२ । ४३ वहां मलयागिरि पर से हमलोगों ने खारी समुद्र देखा उसे देखकर हम सब व्याकुल और खिन्नचित्त होगये और सबने अपने जीवित की आशा छोड़ दी ४४ और सबके सब बैठकर उस सैकड़ों

योजन लम्बे समुद्र की चिन्ता करने लगे और दुःखी हुए ४५ इसके पीछे हम लोगों ने भोजन न करने का संकल्प कर लिया और वहां बैठकर कुछ कथा कहने लगे उसमें जटायु का भी संवाद आगया उसी समय हमलोगों ने एक पर्वत के तुल्य बड़ा भयानक और गरुड़जी के सदृश पक्षी देखा वह पक्षी हम सबको भक्षण करने के विचार से हमारे पास आया, परंतु जब उसने हमारे मुख से जटायु का नाम सुना तब वह बोला कि मेरे भाई जटायु की कथा कौन कह रहा है ४६। ४८ मैं जटायु से बड़ा हूं नाम मेरा संपाति है पूर्वसमय में हम दोनों भाई परस्पर ईर्ष्या करके सूर्यलोक को गये थे वह सूर्य का तेज न सहने के कारण से मार्ग ही से लौट आया परंतु मैं ऊपर को चला गया इससे मेरे पर जल गये और मैं इस पर्वत पर गिर पड़ा तबसे मैं यहीं रहता हूं मैंने अपने प्यारे भाई जटायु को बहुत दिनों से नहीं देखा है यह सुनकर हमलोगों ने उस से जटायु के मारे जाने का वृत्तान्त कह सुनाया और आपके दुःख का हाल भी संक्षेप से वर्णन कर दिया उस अप्रिय को सुन कर ४९। ५२ हे शत्रुसंघातिन्! संपाति व्याकुल हो गया और हमलोगों से बोला कि रामचन्द्र कौनहैं सीता कैसी हैं और जटायु किस प्रकार से मारा गया? मैं यह सब वृत्तान्त यथावत् सुना चाहता हूं तब हमलोगों ने आपके दुःख और वन में आने और अपने अनशन व्रत लेने का हाल विस्तारपूर्वक कहा उसको सुनकर उसने हम सबको उठाया और कहा कि तुमलोग इस व्रत को छोड़ दो ५३। ५५ मैं रावण को जानता हूंउसकी लङ्कापुरी मैंने त्रिकूट पर्वतकी कन्दरा में देखी है सीता भी वहीं होगी इसमें कोई बात विचार करने की नहीं है ५६ यह सुनकर हम सबलोग शीघ्र उठबैठे और समुद्रको नाँघनेका मन्त्र करनेलगे ५७ हे शत्रुसंतापदायिन्! जब किसी ने समुद्र नांघने की अपनी सामर्थ्य नहीं देखी तब मैं अपने पिता वायुमें प्रवेश होकर और जलराक्षसी को मारकर शतयोजन समुद्रको नाँघकर लङ्कामें चलागया और वहां मैंने रावणके महल में उन सीताजीको देखा५८।५९ जो जटा रखाये हुए लटी दुबली सी महादुःखी तप और व्रत का स्वभाव रखकर आपके दर्शनों की लालसा में बैठी हुई थी ६० मैंने अनेक निमित्तों से उसे पहिंचाना और जब मैंने उसे अकेला पाया तब मैं उसके पास चला गया और मैंने कहा कि हे सीते! मैं हनुमान्-नामी वायुपुत्र वानरहूं और रामचन्द्रजीका दूत हूं तेरे दर्शनों की इच्छा से आकाशमार्ग से आया हूं ६१। ६२ राम और

लक्ष्मण दोनों भाई कुशल हैं और सुग्रीव की रक्षा में हैं उन दोनों भाई और रामचन्द्रजी का सखा होने से सुग्रीव ने तेरी कुशल पूछी है ६३।६४ तेरा पति वानरों की सेना लेकर बहुत शीघ्र यहां आवेगा तू चिन्ता मत करे हे देवि! मेरा विश्वास कर मैं वानर हूं राक्षस नहीं हूं ६५ यह सुनकर सीता ने एक मुहूर्त ध्यान करके मुझसे कहा कि मैं तेरा हाल अविन्ध्यराक्षस से सुन चुकी हूं मैं जानती हूं कि तू हनुमान् है ६६ वह अविन्ध्यराक्षस वृद्धों का सम्मत है उसने तुझसे मन्त्रियों से युक्त सुग्रीव का भी हाल मुझसे कहा था ६७ यह कहकर सीताजी ने मुझसे कहा कि अब तू जा और मुझको यह मणि दी। इसीसे सीताजी अबतक जीती रहीं ६८ इसके पीछे सीताजी ने विश्वास के लिये मुझसे वह कथा कही, जिसमें आपने चित्रकूट पर्वत पर एक काग के सींक का बाण मारा था, इसके पीछे मैंने अपने आपको वहां पकड़वा दिया, तब मैं उस लङ्कापुरी को जलाकर यहां चला आया यह सुनकर रामचन्द्रजी ने प्रियवादी हनुमान्जी की बहुत प्रशंसा की ॥ ६९ । ७१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥

दोसौ बयासीवाँ अध्याय।

वानरी सेना समेत रामचन्द्रजी का चलना, सेतु बँधवाकर समुद्र के पार उतरना और वहीं विभीषण का आकर मिलना।

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! हनुमान्जी के उक्त वृत्तान्त कहने के उपरान्त सुग्रीव की आज्ञा से वहां बहुत से श्रेष्ठ वानर आ पहुँचे १ संख्या उनकी यह है बालिवानर का श्वसुर सुषेणनामी वानर अपने साथ सहस्र कोटि वानर लेकर रामचन्द्रजी के पास आया २ और गज और गवय नामी महापराक्रमी वानरेन्द्र शत शत कोटि वानर लेकर आये ३ हे महाराज! गवाक्षनामी गोलांगूल जाति का वानर साठि सहस्रकोटि वानरों की सेना लेकर आया ४ और गन्धमादनपर्वतनिवासी गन्धमादननामी वानर लाखों कोटि वानरों की सेना को इकट्ठा करके लाया ५ और पनसनामी बुद्धिमान् वानर ने सत्तावन कोटि वानर इकट्ठे किये ६ और श्रीमान् दधिमुखनामी वृद्ध और पराक्रमी वानर भी भयानक वानरों की बड़ी भारी सेना लेकर आया ७ और जाम्बवान्नामी रीछ शतसहस्रकोटि काले रीछों को जिनके ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्रनाम चिह्न था लेकर आया ८ इनके सिवाय और और भी वानरों के

राजा वानरों की बड़ी बड़ी सेना लेकर रामचन्द्रजी के कार्य के लिये वहां इकट्ठे हुए ९ उन वानरों के शरीर पर्वतों की शिखर के तुल्य थे और उनके दौड़ने और सिंह के समान गर्जने का बड़ा शब्द होता था १० उनमें बहुत से वानर पर्वत के समान, बहुत से भैंसे के सदृश, बहुत से शरद्ऋतु के बादल का सा वर्ण रखनेवाले और बहुत से रक्तमुख थे ११ और वे उछलते-कूदते और धूल उड़ाते हुए वहां आकर स्थित होगये १२ उस पूर्णसागर के सदृश वानरों की सेना ने सुग्रीव की आज्ञा से वास किया १३ इसके उपरान्त उत्तम मुहूर्त और शुभ तिथि नक्षत्र के आने पर रामचन्द्रजी वहां से सुग्रीव आदि सब वानरेन्द्रों के साथ सब सेना को लिये हुए दक्षिणदिशा को चल दिये १४ । १५ वायुपुत्र हनुमान्जी उस सेना के आगे आगे हो लिये और लक्ष्मणजी उस सेना के व्यूह के जयस्थान की रक्षा करते हुए चले इस प्रकार से वे दोनों रघुवंशी राम-लक्ष्मण वानररूपी मन्त्रियों-सहित इस प्रकार से चले मानों सूर्य और चन्द्रमा सब ग्रहों के साथ जा रहे हैं १६ । १७ उस सेना के सब वानर शाल, तालवृक्ष और शिलारूपी आयुध लिये हुए थे, उस समय वह सेना ऐसी शोभित दीखती थी जैसे सूर्य के उदय होने पर बड़ा भारी शालिभवन दर्शनीय दीखता है १८ उस सेना के रक्षक नल, नील, अंगद, किरात, मयन्द और द्विविदनामी वानर थे और वह सेना उन वानरों से रक्षित होकर मधुमास के सुन्दर फल मूलों को खाती, निर्मल जल को पीती, पर्वत और वनों में वास करती हुई, खारी समुद्र के पास जा पहुँची १९ । २१ और वहां वेलावन में बसी और बहुत लम्बे चौड़े स्थान में बसने से और ध्वजाओं से शोभित होने से वह सेना दूसरे समुद्र के सदृश दीखती थी २२ इसके पीछे रामचन्द्रजी ने समय के अनुसार सुग्रीव से कहा २३ कि आपलोगों ने समुद्र के पार जाने का क्या उपाय सोचा है । हमारी सेना तो बहुत है और सब सेना को समुद्र के पार ले जाना कठिन है २४ तब बहुत से मानी वानरों ने कहा कि हम लोग कूदकर समुद्र के पार जा सकते हैं, परंतु सब सेना का जाना कठिन है २५ बहुत से बोले कि नावों पर चढ़कर चले चलिये और किसी किसीने कहा कि प्लव के द्वारा भी सेना समुद्र के पार जा सकती है परंतु रामचन्द्रजी ने उन सबके वचनों को सुनकर उत्तर दिया कि इनमें से कोई उपाय ठीक नहीं है २६ इस शतयोजन चौड़े समुद्र के पार सब वानर इनमें से एक उपाय से भी नहीं जा सकते हैं २७ क्योंकि हमारे पास बहुत सी नावें

नहीं हैं और व्यापारियों का सा कर्म हम सरीखे पुरुष से हो नहीं सकता है और यह भी संदेह है कि हमारा शत्रु सेना के थोड़े थोड़े जाने से छिद्र पाकर सब सेना को मार डालें इससे नाव, प्लव और उडुप के द्वारा समुद्र के पार जाना ठीक नहीं है २८। २६ इससे मैं समुद्र का आराधन करके व्रत करूंगा और पृथ्वी पर सोऊंगा ऐसा करने से समुद्र मुझको अपने दर्शन देगा ३० तब मैं उससे राह देने को कहूंगा जो वह राह न देगा तो मैं अग्निरूपी अमोघ अस्त्रों से समुद्र को सुखा डालूंगा ३१ यह कहकर राम लक्ष्मण ने स्नान आचमन करके समुद्र का आराधन किया और रात्रि को कुश के आसन पर सो गये ३२ स्वप्न में नदीपति समुद्र ने रामचन्द्रजी को अपना दर्शन दिया और हे कौशल्या के पुत्र ! ऐसे पुकारकर मधुर वाणी से कहा ३३। ३४ कि कहिये मैं आपकी क्या सहायता करूं यह सुनकर रामचन्द्रजी बोले कि मैं इक्ष्वाकुवंशी हूं तुमसे मार्ग चाहता हूं जिसके द्वारा मैं लङ्का में सेनासहित जाकर पुलस्त्यकुलकलङ्की रावण को मारूं ३५। ३६ और जो आप मुझको मार्ग न देंगे तो मैं दिव्य अस्त्रों से तुम्हारा जल शुष्क कर दूंगा ३७ यह सुनकर समुद्र बहुत दुःखी हुआ और हाथ जोड़कर बोला कि ३८ महाराज ! मैं आपका विघ्न करना नहीं चाहता हूं परंतु जैसा मैं कहूं वैसा कीजिये जो मैं आपको अब मार्ग दे दूंगा तो कोई दूसरा धनुष्धारी भी मुझको मार्ग देने की आज्ञा देगा इससे आपकी सेना में जो नलनामी वानर है वह शिल्पविद्या में बड़ा निपुण है और विश्वकर्मा का पुत्र है उससे आप कह दीजिये कि वह सेतु बांधे जो कुछ पत्थर या तृण लकड़ी वह डाल देगा उस सबको मैं धारण किये रहूंगा आप उस सेतु पर होकर सेनासहित उतरे चले जाइयेगा यह कहकर समुद्र अन्तर्धान होगया और रामचन्द्रजी ने नल वानर को बुलाकर कहा ३९। ४२ कि तुम सेतु बांधो इस काम को तुम कर सकते हो यह सुनकर उसने उसी प्रकार से किया और रामचन्द्रजी की आज्ञा से दश योजन चौड़ा और शत योजन लम्बा सेतु बँधकर तैयार होगया वह सेतु नल के नाम से अद्यापि पृथ्वी पर विख्यात है ४३। ४४ उस सेतु से वानरों की सब सेना रामचन्द्रजी की आज्ञा से पार उतर गई और वहां रावण का विभीषण-नामी भाई अपने चारों मन्त्रियों सहित आ मिला। रामचन्द्रजी ने उसका बड़ा आदर किया ४५। ४६ परंतु सुग्रीव ने शङ्का की कि यह कोई छली दूत न हो किन्तु जब रामचन्द्रजी का

मन उसकी चेष्टा और शुश्रूषा से भर गया तब रामचन्द्रजी ने उसकी पूजा करके उसे लङ्केश बनाया ४७।४८ और उसको अपना मन्त्री बनाकर लक्ष्मणजी से उसकी सुहृदता करा दी इसके पीछे रामचन्द्रजी विभीषण की राय से एक महीने में उस सेतु से सेना-सहित उतरकर लङ्का में पहुँचे और वहां उन्होंने लङ्का के बड़े बड़े उद्यान अर्थात् बागों को उजड़वा दिया वहीं रावण के शुक और सारणनामी दो मन्त्री वानरों का रूप बनाये हुए फिर रहे थे विभीषण ने उनको पकड़ लिया पकड़े जाने पर उन राक्षसों ने अपना राक्षसीरूप धारणकर लिया और रामचन्द्रजी ने उनको सेना को दिखलाकर छुड़वा दिया ४९।५३ इसके उपरान्त रामचन्द्रजी ने वहां एक उपवन में वास किया और अङ्गदनामी वानर को अपना दूत बनाकर रावण के पास भेजा ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

दोसौ तिरासीवाँ अध्याय ।

रावण का दुर्ग रचना और रामचन्द्रजी का लङ्का पर चढ़ाई कर युद्ध करना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! रामचन्द्रजी ने सेना को उस वन में जिसमें अन्न, जल, फल और मूल बाहुल्यता से मिलते थे ठहरा दिया और चारों ओर से रक्षा करने को वानर नियत कर दिये और रावण ने भी शास्त्र की रीति से लङ्का में दुर्गरचना की । सातों खाइयों में जल छुड़वाकर गहरी करा दीं ये खाइयाँ स्वाभाविक दुराधर्ष और बड़ी दृढ़ बनी हुई थीं और मीन, मकर आदि जलजीवों से युक्त थीं उनके चारों ओर बड़ा दृढ़ प्राकार अर्थात् परकोटा खिंचा हुआ था और उसमें से आने जाने के द्वारों में बड़े दृढ़ कपाट लगे हुए थे जिनमें उनके खोलने और बंद करने के यन्त्र बने हुए थे रावण ने उनके चारों ओर मुशल, अलात, नाराच, तोमर, खड्ग, फरसा और शतघ्नी आदि शस्त्र और यन्त्र रखवा दिये और मद्य पीने के स्थान भी नियत कर दिये और नगर के सब द्वारों पर घोड़े हाथी और रथों सहित घूमनेवाले और स्थित रहनेवाले बहुत से योद्धा नियत कर दिये १ । ६ इसके पीछे अङ्गद लङ्का के द्वार पर पहुँचा और निर्भय होकर भीतर चला गया ७ उसके चारों ओर लाखों राक्षस जुड़ आये और वह उनके बीच में ऐसा दीखने लगा मानों श्यामघटा में सूर्य उदय हुआ है ८ वहां से वह उस रावण के पास गया जो मन्त्रियों सहित बैठा था और उससे रामचन्द्रजी का सँदेशा इस प्रकार से कहा ९ कि कोशलेश

रामचन्द्रजी ने तुमको यह कहला भेजा है कि जो राजा अनीति करता है और जिसका अन्तःकरण अशुद्ध होता है उसका देश और नगर नाश हो जाता है तू सीता को बल से हर लाया है इससे तुझ अकेलेही ने मेरा अपराध किया है परंतु तेरे अपराध के कारण से तेरे सब साथी भी जो अपराधी नहीं हैं मारे जायँगे १० । १२ और जो तैंने पूर्वकाल में वनवासी ऋषि, राजऋषि और रोती हुई स्त्रियां मारी हैं और देवताओं का अपमान किया है उस सब अनीति का फल अब तुझको मिलेगा मैं तुझको मन्त्रियोंसहित मारकर यमलोक में पहुँचाऊंगा इससे तू पुरुष होकर मेरे साथ युद्धकर और मुझ मनुष्य के धनुष् के पराक्रम को देख १३ । १५ अब तू जानकी को छोड़ने पर भी मेरे हाथ से नहीं बचेगा क्योंकि मैं तीक्ष्ण बाणों से इस संसार को राक्षसरहित किया चाहता हूं १६ इन परुषवचनों को सुनकर रावण क्रोध से मूर्च्छित हो गया और उसके संकेत से चार राक्षसों ने अङ्गद को चार जगह से इस प्रकार से पकड़ लिया जैसे चार पक्षी शार्दूल को पकड़ लें १७ । १८ तब अङ्गद उन राक्षसों को पकड़कर उछला और प्रासाद पर अर्थात् छत पर जा बैठा १९ उस समय वे राक्षस अङ्गद के उछलने से पृथ्वी पर टकराते हुए जा पड़े और उनके बड़ी चोट आई फिर अङ्गद वहाँ से लङ्का को नांघकर रामचन्द्रजी के पास आ गया और उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया रामचन्द्रजी ने उसकी प्रशंसा की और उसने विश्राम किया २० । २२ इसके पीछे रामचन्द्रजी ने वानरों की सब सेना ले जाकर लङ्का पर चढ़ाई की और वानर उसके परकोटे को जहां तहां से फोड़ने लगे उसी समय लक्ष्मणजी जाम्बवान् और विभीषण को साथ लेकर लङ्का के दक्षिण ओर के कठिन द्वार पर चले गये और उस द्वार को घेर लिया २३।२४ उस समय जिन वानरों ने लङ्का पर चढ़ाई की थी उनका वर्ण छोटी उँगली की मणि के समान श्वेतारुण था और संख्या उनकी दश अर्ब थी २५ और रीछ भी तीन कोटि थे वर्ण रीछों का धूंयें का सा था और बांहें लम्बी लम्बी छाती चौड़ी और जांघें मोटी मोटी थीं २६ उस समय वानरों के उछलने कूदने से ऐसी धूलि उड़ी कि सूर्य की प्रभा जाती रही और सूर्य न दीखने लगा २७ और लङ्का का प्राकार अर्थात् परकोटा उन साल और सिरस के पुष्पों का सा वर्ण रखनेवाले वानरों के चारों ओर से चढ़ जाने से वानररूप दीखने लगा उस आश्चर्य को देखकर सब राक्षस स्त्रियोंसहित

विस्मित हो गये २८। २६ तब वानरों ने मणिजटित खम्भों को तोड़ तोड़कर सब अट्टारिका गिरा दीं और परकोटे को भी तोड़ तोड़कर सब यन्त्र उठा उठा कर फेंक दिये ३० और शतघ्नियों को चक्र आदि सब अङ्गोंसहित उठा उठा कर लङ्का के बीच में डाल दिया ३१ तब जो राक्षस परकोटे पर नियत किये गये थे वे सब भयभीत होकर भाग गये ३२ इसके पीछे रावण की आज्ञा से सहस्रों विकृताकार राक्षस बाहर निकल आये ३३ और वे शस्त्रों की वर्षा कर वानरों को भगाके परकोटे पर स्थित होके पराक्रम से लड़ने लगे ३४ थोड़ी देर में उन्होंने सब वानरों को भगा दिया और उन भयानक दर्शनों से वह परकोटा माष की राशि के सदृश दीखने लगा ३५ उस समय बहुत से वानर शूल से घायल हो होकर गिर पड़े और बहुत से राक्षस भी स्तम्भ आदि से पीड़ित हो होकर मर गये ३६ फिर वानर और राक्षस एक दूसरे के बाल पकड़ पकड़कर नख और दांतों से युद्ध करने लगे ३७ और वे दोनों परस्पर लड़ते लड़ते चिल्लाते थे और गिर पड़ते थे परंतु एक दूसरे को छोड़ता न था ३८ तदनन्तर रामचन्द्रजी ने बाणों की वर्षा करके लङ्का पर बाणों का जाल रच दिया और उन बाणों से राक्षस मारे गये और लक्ष्मणजी ने भी लक्ष्य अर्थात् निशाना बांध बांधकर दुर्ग के ऊपर रक्षा करनेवाले राक्षसों को मार मारकर गिरा दिया ३६। ४० इसके पीछे सब वानर रामचन्द्रजी की आज्ञा से लौटकर अपने शिबिर अर्थात् सेना के ठहरने के स्थान को चले आये और सब जीत की आशा करने लगे ॥ ४१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥

दोसौ चौरासीवाँ अध्याय।

रामचन्द्र से रावण का, लक्ष्मण से इन्द्रजीत का और वानरों से राक्षसों का परस्पर युद्ध होना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जब वानर शिबिर को गये तब उनके साथ बहुत से राक्षस और पिशाच भी रावण की आज्ञा से चले गये १ उनमें से मुख्य मुख्यों के नाम ये हैं पर्वण १ पतन २ जम्भ ३ खर ४ क्रोधवश ५ हरि ६ प्ररुज ७ अरुज ८ और प्रघस ६। २ ये राक्षस अन्तर्द्धान होकर आये थे विभीषण उनको जान गया और उसने उनकी अन्तर्द्धान होने की शक्ति को नष्ट कर दिया ३ तब वे राक्षस वानरों को दिखाई देने लगे और वानरों ने उन्हें मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया ४ इसके पीछे क्षमाहीन रावण राक्षस और पिशाचों की

घोरसेना लेकर लङ्का के बाहर निकला और इनसे व्यूह अर्थात् शुक्रसम्बन्धी व्यूह रचकर उसने वानरों को घेर लिया तदनन्तर रामचन्द्रजी ने बार्हस्पत्य व्यूह अर्थात् बृहस्पतिसम्बन्धी व्यूह अपनी सेना में रचकर रावण का सामना किया ५।७ उस समय रावण रामचन्द्रजी से और इन्द्रजीत रावण का पुत्र लक्ष्मणजी से युद्ध करने लगा ८ और विरूपाक्ष राक्षस सुग्रीव से, तार राक्षस निखर्व वानर से, तुण्डराक्षस नल वानर से, पटुश राक्षस पनस वानर से और अन्य अन्य राक्षस अन्य अन्य वानरों से जिसने जिसको अपने तुल्य समझा था अपने अपने बल के अनुसार युद्ध करने लगे ९। १० तब उनका युद्ध ऐसा हुआ जैसा पहिले समय में देवता और दानवों का हुआ था जिसके देखने से डरपोकनों के भय से रोम खड़े हो जाते थे ११ रावण ने शक्ति, शूल और खड्ग आदि अस्त्रों की वर्षा करके रामचन्द्रजी को पीड़ित किया और रामचन्द्रजी ने अपने तीक्ष्ण बाणों से रावण को विदीर्ण कर दिया १२ इसी प्रकार से लक्ष्मण और इन्द्रजीत ने भी परस्पर मर्मभेदी बाण मार मारकर एक दूसरे के शरीर को घायल कर दिया १३ उसी समय विभीषण और प्रहस्त ने भी एक दूसरे पर खगपत्र बाणों की वर्षा की १४ निदान दोनों ओर से ऐसा भयंकर युद्ध हुआ कि त्रिलोकी के सब चर और अचर जीव पीड़ित हो गये ॥ १५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥

दोसौ पचासीवाँ अध्याय।

प्रहस्त और धूम्राक्ष का वध तथा कुम्भकर्ण का युद्धार्थ संग्राम में आना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे रणकर्कश प्रहस्त ने अकस्मात् गर्जकर विभीषण के एक गदा मारी १ परंतु वह महाबाहु विभीषण उस महा भयंकर वेगवाली गदा से कम्पित नहीं हुआ किन्तु हिमालय पर्वत के समान अचल खड़ा रहा २ और फिर उसने सौ घण्टे रखनेवाली महाशक्ति को लेकर अभिमन्त्रित किया और प्रहस्त के ऊपर छोड़ दिया ३ उस वज्रतुल्य शक्ति से उस राक्षस का शिर कट गया और वह वायु से उखाड़े हुए वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा ४ तब धूम्राक्षनामी राक्षस प्रहस्त को मरा हुआ देखकर बड़े वेग से दौड़कर वानरों के सम्मुख आया ५ और उसके साथ उसकी सेना भी श्यामघटा के समान उमड़ी हुई चली आई उसको देखकर वानर तितर-बितर हो गये ६ उस समय मारुतनन्दन कपीश हनुमान्‌जी उन वानरों की यह दशा देखकर

निकल आये ७ हे राजन्! उनको देखकर फिर सब वानर तुरन्त युद्ध के लिये इकट्ठे हो गये ८ और वानर और राक्षसों की सेना परस्पर झपट झपट और गर्ज गर्जकर युद्ध करने लगी ९ और चारों ओर से रुधिर की कीच हो गई। उस समय धूम्राक्ष राक्षसने अपने बाणों से वानरोंकी सेना को मारकर भगा दिया १० तब वैरिजेता वायुपुत्र हनुमान्‌जी ने उस राक्षसनायक को पकड़ लिया ११ और वे दोनों इस प्रकार से घोरयुद्ध करने लगे जैसे पहिले इन्द्र और प्रह्लाद का युद्ध हुआ था १२ वह राक्षस हनुमान्‌जी पर गदा और परिघ से प्रहार करता था और हनुमान्‌जी उसको गुद्दोंसहित वृक्ष से मारते थे १३ थोड़ी देर में वायुपुत्र ने क्रोधित होकर उस राक्षस को घोड़े, रथ और सारथीसहित मार डाला १४ तब वानर निर्भय होकर शत्रुसेना के सम्मुख जाकर राक्षसों को मारने लगे १५ वे राक्षस उनसे वध्यमान और भग्नसंकल्प होकर लङ्का की ओर भागे १६ और जो मरते मरते वहां जा पहुँचे उन्होंने अपने राजा रावण से सब वृत्तान्त कह सुनाया १७ रावण उन राक्षसों से बड़े धनुष्धारी प्रहस्त और धूम्राक्ष के सेनासहित मारे जाने का हाल सुनकर बड़ी लम्बी लम्बी श्वासें भरने लगा और अपने आसन से उठकर बोला कि यह समय कुम्भकर्ण के पराक्रम का आ गया है १८।१९ यह कहकर उसने बड़े शब्दायमान नाना प्रकार के बाजे बजवाकर उस निद्रालु कुम्भकर्ण को जगाया २० जब वह निद्रारहित होकर स्वस्थता से बैठ गया तब रावण ने भययुक्त होकर उससे कहा कि तू धन्य है जो तेरी ऐसी निद्रा है कि तू अभी तक हमारे दारुण भय को नहीं जानता है मैं रामचन्द्रजी की सीता स्त्री को हरकर ले आया था सो वह रामचन्द्र बड़ी भारी वानरों की सेना लेकर समुद्र में सेतु बांधकर और हम सबका अपमान करके सीता को लेने की इच्छा से यहां आयाहै और बड़ा नाश कर रहाहै प्रहस्त आदि हमारे सब शूरवीर स्वजन उसके हाथसे मारे गये हैं सो सिवाय तेरे उसको मारनेवाला दूसरा कोई नहीं है इससे तू अब कवच आदि धारण करके चल और रामचन्द्र आदि सब शत्रुओं को मार डाल दूषणके छोटे भाई वज्रवेग और प्रमाथी बड़ी भारी सेना लेकर तेरे साथ जायँगे और पीठकी ओर से तेरी रक्षा करेंगे। यह कहकर रावण ने उन दोनों दूषण के भाइयोंको सेना तैयार करनेकी आज्ञा दी और वे दोनों 'तथास्तु' कहकर और सेना सजाकर सेना के आगे कुम्भकर्ण को करके नगर के बाहर निकले ॥ २१।२९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥

दोसौ छियासीवाँ अध्याय ।

कुम्भकर्ण और दूषणबन्धुओं का वध ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! कुम्भकर्ण ने सेनासहित नगर से निकलकर अपने आगे वानरों की सेना खड़ी हुई देखी १ श्रीरामचन्द्रजी के दर्शनों की लालसा से वह उस सेना में चारों ओर देखने लगा और उसने हाथ में धनुष् लिये खड़े हुए लक्ष्मणजी को देखा २ इसी अवसर में वानरों ने उसे घेर लिया और वृक्ष, पत्थर, लात, घूंसा और नाना भयानक प्रहारों से उसे निर्भय होकर मारने का उद्योग किया तब कुम्भकर्ण हँस हँसकर उन वानरों को भक्षण करने लगा यह देखकर बलचण्ड, बलवज्र और तार आदि वानर भयभीत होकर चिल्लाने पुकारने लगे उन सेनाधिकारी और सेना के आर्तशब्दों को सुनकर सुग्रीव दौड़कर कुम्भकर्ण के सम्मुख गया ३ । ७ और उसके माथे पर एक शाल का पेड़ उखाड़कर मारा कुम्भकर्ण को उससे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हुई और उसने गर्जकर दोनों हाथों से अकस्मात् सुग्रीव को पकड़कर कांख में दबा लिया ८ । १० यह देखकर मित्र को प्रसन्न करनेवाले लक्ष्मणजी कुम्भकर्ण के सम्मुख गये ११ और वेग से उसके सुनहरी पर लगे हुए तीक्ष्ण बाण मारे १२ वे बाण कुम्भकर्ण के कवच को काटकर देही के पार हो गये और रुधिर में भरे हुए पृथ्वी में घुस गये १३ तब महाधनुर्धारी कुम्भकर्ण सुग्रीव को छोड़कर बड़ी शिला हाथ में लिये हुए लक्ष्मणजी की ओर दौड़ा १४ । १५ तब लक्ष्मणजी ने तीक्ष्णधार रखनेवाले क्षुराबाणों से कुम्भकर्ण के दोनों हाथ काट डाले तब उसके चारभुजा शिला लियेहुये हो गई लक्ष्मणजीने अपनी अस्त्र चलाने की शीघ्रता दिखलाकर क्षुराबाणों से उन भुजाओं को भी काटकर गिरा दिया १६ । १७ तब उस कुम्भकर्णका शरीर बड़ा लम्बा चौड़ा होगया और उसमें बहुतसे पांव, शिर और भुजा निकलआई लक्ष्मणजीने उस काले पर्वताकारशरीर को ब्रह्मास्त्र से टुकड़े२ करडाला १८ और वह महाबलशाली उस दिव्य अस्त्र से मरकर इस प्रकार से गिर पड़ा जैसे पर्वत का शिखर वज्र के प्रहारसे गिर पड़ता है १९ उस वृत्रासुर के तुल्य वेगवान् कुम्भकर्ण के मरने पर सब राक्षस भागने लगे २० उस समय दूषण के भाइयों ने उन भागते हुए राक्षसों को रोक और क्रोध से परिपूर्ण होकर दोनों जने लक्ष्मणजी के सम्मुख गये २१ तब हे कुन्तीनन्दन! लक्ष्मणजी ने उन दोनों को वज्रवेग के सदृश आते हुए देखकर गर्जकर

बाणों से रोक दिया और उनमें परस्पर तुमुल और लोमहर्षण युद्ध होने लगा २२ । २३ उन दोनों वीरों ने उनके ऊपर क्रोध करके बाणों की वर्षा की २४ और एक मुहूर्त्त तक उनमें बड़ा दारुण युद्ध हुआ किया २५ तदनन्तर वायुपुत्र हनुमान्‌जी ने एक पर्वत का शिखर मारकर वज्रवेग राक्षस को मार डाला २६ और महाबली नील वानर ने बड़ी भारी शिला से प्रमाथी को यमलोक में पहुँचा दिया २७ तदनन्तर राम और रावण की सेना परस्पर दौड़ दौड़कर बड़ा भयानक युद्ध करने लगी उसमें वानरों ने सैकड़ों राक्षसों को मार डाला और राक्षसों ने भी बहुत से वानर मार डाले परंतु राक्षस बहुत से मारे गये और वानर थोड़े ही से मारे गये ॥ २७ । २९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥

दोसौ सत्तासीवाँ अध्याय ।

मेघनाद के समर में नागपाश से बँधे हुए रामलक्ष्मण का पृथ्वी पर गिर पड़ना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! रावण ने कुम्भकर्ण के साथियोंसहित मारे जाने का वृत्तान्त सुनकर अपने वीरपुत्र इन्द्रजीत से कहा कि तू जाकर राम और सुग्रीव को लक्ष्मणसहित मार डाल । पहिले तैंने वज्रधारी सहस्राक्ष शचीपति इन्द्र को जीतकर संसार में मेरा यश दीप्त कर दिया था १ । ३ अब इन मेरे शत्रुओं को भी अन्तर्धान अथवा प्रकट होकर जैसे हो सके बरदान में पाये हुए बाणों से मार डाल ४ हे निष्पाप ! वे राम लक्ष्मण और सुग्रीव तेरे बाणों को स्पर्श करने की भी सामर्थ्य नहीं रखते हैं इससे तू उनको मारकर उस वैर का बदला ले जो प्रहस्त और कुम्भकर्ण नहीं ले सके ५ । ६ हे पुत्र ! जाओ और तीक्ष्णबाणों से शत्रु को सेनासहित मारकर मुझको उसी प्रकार से प्रसन्न करो जैसे पहिले इन्द्र को जीतकर मुझे आनन्द दिया था ७ हे राजन् ! यह सुनकर इन्द्रजीत बहुत अच्छा कहकर कवच धारण किये हुए रथ में बैठकर रणभूमि में चला गया ८ और उसने अपना नाम सुनाकर लक्ष्मणजी को युद्ध के लिये बुलाया ९ लक्ष्मणजी उसके आह्वान को सुनकर धनुष् की टंकोर से उसे इस प्रकार से डराते हुए मानो सिंह किसी छोटे मृग को भयभीत कर रहा है दौड़कर उसके सम्मुख गये १० और जय की ईर्ष्या से परस्पर दिव्य अस्त्रों से बड़ा तीव्र युद्ध करने लगे ११ परंतु जब महाबलशाली इन्द्रजीत बाणों से लक्ष्मणजी को न जीत सका तब उसने यत्न से तोमर चलाना प्रारम्भ

किया लक्ष्मणजी ने उन तोमरों को तीव्र बाणों से काट डाला १२।१३ और वे तोमर टुकड़े २ होकर पृथ्वी पर गिर पड़े इसी अवसर में बालिपुत्र अङ्गद एक वृक्ष को उखाड़कर इन्द्रजीत के सम्मुख गया और उस वृक्ष को उसने घुमाकर इन्द्रजीत के माथे पर मारा तब इन्द्रजीत ने निर्भयता से प्रास हाथ में लेकर चाहा कि अङ्गद की छाती पर मारूँ परंतु लक्ष्मणजी ने उस प्रास को काट डाला फिर इन्द्रजीत ने गदा लेकर उस वानरोत्तम अङ्गद के पार्श्व में मारी अङ्गद ने उसके प्रहार को कुछ न गिना और क्रोधित होकर उसने एक बड़े गुद्दे रखनेवाले वृक्ष को उखाड़कर इन्द्रजीत के मारा उससे इन्द्रजीत का रथ और रथ के घोड़े सारथी नष्ट हो गये उस समय इन्द्रजीत रथ से कूद पड़ा १४।१६ और माया से उसी स्थान पर अन्तर्धान होगया रामचन्द्रजी उसको अन्तर्धान हुआ देखकर वहां चले आये और अपनी सेना की चारों ओर से रक्षा करने लगे इसी अवसर में इन्द्रजीत गुप्त रहकर वर में पाये हुए बाणों से रामचन्द्र और लक्ष्मण को छेदने लगा और वे दोनों वीर उस मायावी और अन्तर्धान हुए राक्षस से बाणों से युद्ध करते रहे फिर इन्द्रजीत ने उसी अवस्था में रहकर सहस्रों बाण राम लक्ष्मण के मारे यह देखकर वानर बड़ी बड़ी शिला लेकर उस अन्तर्धान राक्षस को आकाश में ढूंढ़ने लगे और उस राक्षस ने उन वानर और दोनों वीर राम लक्ष्मण को बाणों से विदीर्ण कर दिया २०।२५ तब वे दोनों वीर उन बाणों से महापीड़ित होकर पृथ्वी पर इस प्रकार से गिर पड़े मानो सूर्य और चन्द्रमा आकाश से गिरे हैं॥ २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८७॥

दोसौ अट्ठासीवाँ अध्याय।

मेघनाद का वध सुनकर रावण का युद्ध करने को तैयार होना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इन्द्रजीत ने राम लक्ष्मण को पृथ्वी पर पड़ाहुआ देखकर वर में मिलेहुए बाणों से बांध लिया और वे दोनों वीर बाणों से बँधे हुए रणभूमि में ऐसे दीखने लगे मानो दो पक्षी पिंजरे में बंद हैं १।२ इसके पीछे सुग्रीव उन दोनों भाइयों को बाणों में बँधा हुआ और सहस्रों बाणों से चिताहुआ देखकर सुषेण, मैन्द, द्विविद, कुमुद, अङ्गद, हनुमान्, नल, नील और तार आदि वानरों सहित उनको चारों ओर से घेरकर खड़ा होगया ३।४ उस समय कृतकर्मा विभीषण ने वहां आकर प्रज्ञास्त्र से उन दोनों वीरों को

सचेत किया ५ और सुग्रीव ने विशल्यनाम औषधी अभिमन्त्रित करके उन दोनों को दी उससे वे दोनों महारथी शल्यहीन श्रम और तन्द्रारहित होकर क्षणभर में खड़े हो गये ६ । ७ तब हे पार्थ ! विभीषण ने इक्ष्वाकुनन्दन रामचन्द्रजी को ज्वरहीन देखकर हाथ जोड़कर कहा ८ कि महाराज ! कुबेरजी का भेजा हुआ एक गुह्यक श्वेतपर्वत से यह जल लेकर आया है कुबेरजी ने यह जल इस प्रयोजन से आप के पास भेजा है कि आप अथवा और कोई जिसको आप आज्ञा दें इस जल से अपनी आँखें धोने से सब अन्तर्धान हुए प्राणियों को देख सकता है यह सुनकर रामचन्द्रजीने कहा बहुत अच्छा वह जल लाओ, तब रामचन्द्र, लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील और अन्य अन्य बहुत से वानरों ने अपने अपने नेत्र उस जल से धो डाले धोते ही उन सबके नेत्र खुल से गये और वे सब अन्तर्धान प्राणियों को देखने लगे और जो कुछ विभीषण ने कहा था सब सच हुआ ९।१४ इसी अवसर में इन्द्रजीत अपने पिता से अपना सब कर्म कहकर फिर रणभूमि पर आया १५ लक्ष्मणजी उसे देखकर विभीषणकी सलाह के अनुसार फिर उससे युद्ध करनेके लिये उसके सम्मुख गये १६ विभीषणने कहा कि जब तक यह राक्षस आह्निक कर्म न करे तब तक ही मर सक्ता है । यह समझकर लक्ष्मणजी ने क्रोधित होकर उस राक्षस इन्द्रजीत के बाण मारे १७ फिर उन दोनों में परस्पर जीतने की इच्छा से ऐसा आश्चर्ययुक्त युद्ध हुआ, जैसा पहिले इन्द्र और प्रह्लाद का हुआ था १८ इन्द्रजीत ने लक्ष्मणजी के मर्मभेदी बाण मारे और लक्ष्मणजी ने अग्निसमान बाण मारकर इन्द्रजीत को विदीर्ण कर दिया १९ तब इन्द्रजीत ने उन बाणों के लगने से मूर्च्छित और क्रोधयुक्त होकर सर्प के समान आठ बाण लक्ष्मणजी के ऊपर छोड़े २० इसके पीछे लक्ष्मणजी ने तीन अग्निसदृश तीव्र बाण इन्द्रजीत के मारे । एक से उसकी वह भुजा काट दी जिसमें धनुष था, दूसरे से वह भुजा काटी जिसमें नाराच था और तीसरे से उसका शिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया २१ । २३ फिर महाबलशाली लक्ष्मणजी ने उसके धड़को भी टुकड़े टुकड़ेकरके उसके सारथीको भी मारकर गिरादिया २४ इसके पीछे घोड़े उसके रथ को लङ्का में ले गये । उसे रावण पुत्रहीन देखकर भय से व्याकुल हो गया और पुत्र के शोक में पीड़ित होकर सीता के मारने को उद्यत हुआ २५ । २६ और खङ्ग लेकर अशोक वन में जा पहुँचा, जहां

सीता रामचन्द्रजी के दर्शनों की लालसा से बैठी हुई थी २७ उस समय विन्ध्य राक्षस ने उसके क्रोध को अनेक बातों से शान्त किया और उससे कहा कि हे रावण! तुम ऐसे प्रतापी राजा को स्त्री पर शस्त्र उठाना उचित नहीं है, यह विचारी तुम्हारे यहां बन्धन में पड़ी हुई मरी हुई ही है २८। २६ जो इसको तुम मार डालोगे तो इसका मरना ठीक न होगा। हां, जो तुम इसके पति को मार डालोगे तो अवश्य यह भी मरी हुई सी हो जायगी ३० तुम बड़े बलवान् हो इन्द्र भी तुम्हारे समान नहीं है क्योंकि तुमने इन्द्रादिक सब देवताओं को युद्ध में कई बार भयभीत किया है ३१ इस प्रकार से विन्ध्य दैत्य के अनेक वाक्यों को सुनकर रावण का क्रोध शान्त हो गया और उसने विन्ध्य दैत्यका कहना अङ्गीकार किया ३२ तदनन्तर उस रावण ने अपना खड्ग उठा लिया और युद्ध में जाने की इच्छा से रथ तैयार करने की आज्ञादी ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥

दोसौ नवासीवाँ अध्याय।

रामचन्द्र और रावण का युद्ध होना, उसमें रावण का मारा जाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे प्यारे पुत्र इन्द्रजित् के मारे जाने पर रावण क्रोधित होकर रत्न जटित सुनहरे रथ में बैठकर नगर के बाहर निकला १ और अनेकायुधधारी भयकारी राक्षसों को साथ लिये हुए अनेक आयुधों करके वानरों से लड़ता हुआ रामचन्द्रजी के सम्मुख दौड़ा २ उस समय मैन्द, नील, नल, अङ्गद, हनुमान् और जाम्बवान् ने उस क्रोधित रावण को चारों ओर से रोका ३ और उसकी सेना को उसके सामने वृक्षों से मार मारकर विध्वंस कर दिया ४ तब राक्षसाधिप मायावी रावण ने सेना को मरी हुई देखकर माया करना आरम्भ किया ५ और उसके शरीर से सैकड़ों राक्षस हाथ में बाण और शक्ति लिये हुए निकलते हुए दिखाई देने लगे ६ रामचन्द्रजी ने उन सब राक्षसों को दिव्य अस्त्र से मार डाला तब रावण रामचन्द्र और लक्ष्मण का रूप धारण करके राम लक्ष्मण के सम्मुख दौड़ा और राक्षस भी उन मायावी राम लक्ष्मण की स्तुति करते हुए उनके साथ साथ दौड़े ७। ८ उस समय लक्ष्मणजी ने निर्भय होकर रामचन्द्रजी से कहा कि ये आपका सा स्वरूप धारण करनेवाले पापी राक्षस हैं, आप इनको मारिये। यह सुनकर रामचन्द्रजी उनको और दूसरे राक्षसों को मारने लगे १०।११ उसी समय इन्द्र का सारथी मातलि सूर्य के समान

प्रभावान् रथ को लेकर रामचन्द्रजी के पास आया १२ और कहने लगा कि महाराज! यह जैत्ररथ जिसमें हर जाति के घोड़े जुते हुए हैं इन्द्र का है। हे काकुत्स्थ! उसने इसी रथ पर बैठकर युद्ध में सैकड़ों दैत्य और दानवों को मारा है, आप भी इस रथ पर बैठकर रावण को वेग ही मारिये। यह सुनकर रामचन्द्रजी यह शङ्का करने लगे कि यह कोई राक्षस न हो तब विभीषण ने रामचन्द्रजी से कहा कि महाराज! यह दुरात्मा रावण की माया नहीं है १३। १६ यह इन्द्र का ही रथ है, आप शीघ्र इस पर सवार हूजिये। यह सुनकर रामचन्द्रजी (तथास्तु) कहकर उस रथ पर बैठ गये और रथ रावण के सम्मुख बढ़वाया। रामचन्द्र के इस प्रकार सम्मुख जाने पर बड़ा हाहाकार हुआ और स्वर्ग में सिंहनाद करने और पटह के बजने का शब्द होने लगा। इसके पीछे राम रावण का भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ और ऐसा युद्ध हुआ कि उसकी उपमा नहीं दी जासकती है। रावण ने रामचन्द्रजी के ऊपर एक महाघोर शूल छोड़ा १७। २० वह शूल इन्द्रवज्र के तुल्य और ब्रह्मदण्ड के समान था। रामचन्द्रजी ने उसको तीक्ष्ण बाणोंसे काटकर वेग ही गिरा दिया २१ उस दुष्कर कर्म को देखकर रावण भयभीत हो गया और क्रोधित होकर सहस्रों बाण और भुशुण्डी, शूल, मूशल, फरसा, शक्ति, शतघ्नी, क्षुरा आदि अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की वर्षा रामचन्द्रजी पर करने लगा। रावण की उस भयानक माया को देखकर सब वानर भयभीत होकर चारों दिशाओं को भाग चले, तब रामचन्द्रजी ने सुन्दर मुख और पत्रवाला बाण तर्कस से निकाला और उसे ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित करके रावण पर छोड़ दिया। उस बाण ने रावण को बाणवर्षा से ढक दिया, देवता उसको देखकर यह विचारकर प्रसन्न हुए कि अब रावण की बहुत थोड़ी आयु रह गई है। इसके पीछे रामचन्द्रजी ने रावण का नाश करने की इच्छा से ब्रह्मदण्ड के समान अप्रतिम तेज रखनेवाला बाण लेकर अभिमन्त्रित किया और कान तक खींचकर छोड़ दिया, छोड़ते ही रावण रथ, घोड़े और सारथी-सहित जलने लगा २२। ३० इस प्रकार से रावण को मरा हुआ देखकर सब देवता और गंधर्व बहुत प्रसन्न हुए ३१ और ब्रह्मास्त्र ने रावण के मांस आदि सब धातुओं को जलाकर ऐसा कर दिया कि उसकी भस्म भी शेष नहीं रही॥ ३२। ३३॥

इति श्रीभाषमहाभारते वनपर्वण्येकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८९॥

दोसौ नब्बेवाँ अध्याय।

विभीषण को राज्य दे, श्रीराम का अयोध्या में आ राज्य करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! वह रामचन्द्रजी उस देवशत्रु रावण को मारकर लक्ष्मण और सुहृद्जनोंसहित प्रसन्न हुए १ और देवता और ऋषियों ने रामचन्द्रजी को जय होने का आशीर्वाद दिया २ और गन्धर्वों ने फूलों की वर्षा की। इसके पीछे देवता और गन्धर्व रामचन्द्रजी को पूजकर चले गये और आकाश ऐसा दीखने लगा, मानो वहां कोई उत्सव है ३। ४ फिर रामचन्द्रजी ने विभीषण को लङ्का के राज्य का तिलक दिया ५ इसके पीछे अविन्ध्यनामी बड़ा बुद्धिमान् वृद्ध अमात्य सीताजी को विभीषणसहित आगे आगे करके रामचन्द्रजी के पास आया और बोला कि हे महात्मन्! इस सद्वृत्तदेवी जानकी को ग्रहण कीजिये ६। ७ यह सुनकर इक्ष्वाकुनन्दन रामचन्द्रजी रथ से उतर पड़े और उन्होंने उस रोती हुई सीता को देखा जो परम सुंदररूप को धारण किये हुए शोक से कर्शित, मल से लिप्त अङ्ग और जटा रखाये मलिन वस्त्र धारण किये हुए थी ८। ९ उसको देखकर रामचन्द्रजी ने दूसरे पुरुष से स्पर्श किये जाने की शङ्का करके सीताजी से कहा कि हे सीते! अब जहां तेरी इच्छा हो वहां तू जा, मैंने तुझे त्याग किया और जो कुछ मुझको करना था सो मैं करचुका। मैंने इस निमित्त से इस राक्षस को मारा है कि तू मुझसा पति कर राक्षस के घर में जरा अवस्था को प्राप्त न हो, मैं धर्म के निश्चय को जाननेवाला हूं। इससे मुझ सा पुरुष परहस्तगता स्त्री को एक मुहूर्त भी अङ्गीकार नहीं करसकता इससे तू चाहे सुवृत्त अथवा असुवृत्त कैसी ही हो परन्तु मेरे काम की इस प्रकार से नहीं है जैसे कुत्ते की खाई हुई हवि हवन के योग्य नहीं रहती है १०। १३ इस दारुण वचन को सुनकर सीता कटे हुए केले के समान पृथ्वी पर गिर पड़ी १४ और उसके मुख का वर्ण पलटकर इस प्रकार से मलिन हो गया जैसे मुख के भाप से दर्पण मलिन हो जाता है १५ और सब वानर और लक्ष्मणजी रामचन्द्रजी के उक्त वचनों को सुनकर निश्चेष्ट व निर्जीव से हो गये १६ उसी समय पद्मयोनि विशुद्ध आत्मा चतुर्मुख जगत् के रचयिता ब्रह्माजी विमान पर बैठे हुए वहां आये और उन्होंने रामचन्द्रजी को अपने दर्शन दिये १७ और इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण, कुबेर और सप्तऋषि भी अपने अपने विमानों पर चढ़े हुए वहां प्राप्त हुए और राजा दशरथ

भी दिव्य शरीर धारण किये हुए हंसयुक्त विमान में बैठकर आये। उस समय उन सब देवता और गंधर्वों से परिपूर्ण होने के कारण से आकाश की शोभा ऐसी हो गई जैसी शरदृऋतु में निर्मल तारागणों के उदय से हो जाती है १८। २० इसके पीछे उन सब देवताओं के बीच में कल्याणी यशस्विनी सीता ने उठकर विशाल वक्षस्थलवाले रामचन्द्रजी से कहा २१ कि हे राजपुत्र, महाराज! मैं आपको किसी प्रकार का दोष नहीं देती हूँ आप स्त्री और पुरुषों की गति को जानते हैं परंतु जो कुछ मैं कहती हूं उसको सुनिये २२ वायु देवता सदैव चलकर सब प्राणियों के भीतर घूमा करता है वह मुझे निर्जीव कर दे जो मैंने किसी प्रकार का पाप किया हो २३ अथवा अग्नि, जल, पृथ्वी और आकाश मुझको पञ्चत्व को प्राप्त करें जो मैं पापकर्म जानती होऊं २४ और जो मैंने आपके सिवाय किसी दूसरे पुरुष को स्वप्न में भी ध्यान न किया हो तो इन देवताओं के कहने पर विश्वास करके आप ही मेरे पति हूजियेगा २५ यह सुनकर आकाशवाणी हुई जिसको सुनकर सब वानर बहुत प्रसन्न हुए २६ प्रथम वायु देवता बोले कि हे राजन्, रामचन्द्र! मैं वायु हूं और सब स्थानों में मेरी गति सर्वकाल रहती है निश्चय सीता निष्पाप है, तुम उसके साथ मिलो २७ इसके पीछे अग्निदेव बोले कि हे राम! मैं सब प्राणियों के भीतर रहनेवाला हूं मैं जानता हूं कि सीता ने थोड़ा भी अपराध नहीं किया है २८ तदनन्तर वरुण देवता बोले कि हे रामचन्द्र! प्राणियों के शरीर में सब रस मुझसे ही उत्पन्न होते हैं मैं आप तुमसे कहता हूं कि तुम सीता को ग्रहण करो २९ तब ब्रह्माजी ने कहा कि हे काकुत्स्थ, सद्वृत्त, पुत्र! तू राजऋषि और साधु है तैंने जो सीता के त्याग करने का नियम किया है वह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। परंतु मेरी बात भी सुन ३० यह जो रावण तुम ने मारा है सब देवता, गन्धर्व, सर्प, यक्ष, दानव और महाऋषियों का शत्रु था और मेरी कृपा के कारण से उसको कोई मार नहीं सकता था। उस दुरात्मा ने अपने बध के लिये सीता हरी थी परंतु उसके हरे जाने के पहिले से मैंने सीता की रक्षा के लिये उसे नलकूबर से यह शाप दिलवा दिया था कि जो तू किसी दूसरी अकामा स्त्री से बरबस भोग करेगा तो तेरा मस्तक फटकर सौ टुकड़े हो जायगा ३१।३४ इससे हे महातेजस्विन्! तुम अपने संदेह को निवृत्तकरके सीता को ग्रहण करो तुमने देवताओं का बड़ा काम किया है ३५ इसके पीछे

दशरथने कहा कि हे पुत्र, हे पुरुषोत्तम! मैं तेरा पिता दशरथ हूं मैं तुझसे प्रसन्न हूं और तुझको आज्ञा देता हूं कि अब तू जाकर राज्य कर ३६ यह सुनकर रामचन्द्रजी बोले कि हे राजेन्द्र! जो आप मेरे पिता हैं तो मैं आपको दण्डवत् करता हूं आपकी आज्ञा से अब मैं अयोध्या में जाकर राज्य करूंगा ३७ मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह सुनकर दशरथ ने प्रसन्न होकर फिर उन रक्तान्तलोचन राम को अयोध्या जाने और राज्य करनेकी आज्ञा दी ३८ और कहा कि हे पुत्र! तुझको वनवास करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। इसके पीछे रामचन्द्र सब देवताओं को नमस्कार करके सीताजी से मिले और मिलते समय ऐसे दीखे मानो इन्द्र इन्द्राणी से मिल रहा है, तदनन्तर शत्रुहन्ता रामचन्द्र ने अविन्ध्य राक्षस को अभीष्ट वरदान और त्रिजटाराक्षसी को धन और सत्कार पाने का वरदान दिया। इसके पीछे ब्रह्माजी ने सब देवताओंसहित रामचन्द्रजी से कहा कि ३९। ४१ हे कौशल्यानन्दन! मैं तुझको क्या क्या वरदान दूं। रामचन्द्र बोले मैं तीन वरदान चाहता हूं, प्रथम तो धर्म में स्थित रहना, दूसरा शत्रु से न हारना और तीसरा राक्षसों से मारे हुए वानरों का जी जाना। यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा कि ऐसा ही होगा उसी क्षण हे महाराज! सब मरे हुए वानर जीकर उठ खड़े हुए। इसके उपरान्त सीताजी ने हनुमान्जी को यह वरदान दिया ४२। ४४ कि हे पुत्र! संसार में जब तक रामचन्द्रजी की कीर्ति रहेगी, तब तक हे हरिलोचन, हनुमन्! तू जीता रहेगा और मेरी कृपा से तेरे पास सब दिव्य भोग बने रहेंगे। इसके अनन्तर उन सबके देखते देखते इन्द्रादिक सब देवता अन्तर्धान हो गये और मातलि ने रामचन्द्र और सीताका मिलाप देखकर परम प्रसन्नता से कहा कि हे सत्यपराक्रमिन्! तुमने देवता, गंधर्व, यक्ष, मनुष्य, असुर और सर्पों का बड़ा भारी दुःख दूर किया ये सब लोग और त्रिलोकी के और सब जीव भी तुम्हारा यश उस समय तक गाया करेंगे जब तक पृथ्वी पर जीवमात्र स्थित हैं। यह कहकर सर्वशस्त्रधारियों में वरिष्ठ रामचन्द्रजी से आज्ञा लेकर मातलि सूर्यसमान प्रभावान् रथ में बैठकर स्वर्ग को चला गया। इसके पीछे रामचन्द्रजी लङ्का का राज्य विभीषण को देकर लक्ष्मण, सुग्रीव, सीता, विभीषण और अन्य मुख्य मुख्य वानरोंसहित पुष्पक विमान में सवार होकर समुद्र के पार आये और सब वानर, भालु उसी सेतु पर से उतर कर पार आये और उन सबोंने उस स्थान पर वास किया जहां पहिले रामचन्द्रजी

सोये थे ४५ । ५४ फिर रामचन्द्रजी ने सब वानरों को बुलाकर आदर सत्कार किया और सबको रत्न दे देकर बिदा किया । जब वे सब वानर और रीछ चले गये तब रामचन्द्रजी सुग्रीव, विभीषण, लक्ष्मण, सीता और हनुमान् आदि मुख्य वानरोंसहित पुष्पक विमान में बैठकर सीता को वन की शोभा दिखाते हुए किष्किन्धा में पहुँचे । वहां रामचन्द्रजी ने अङ्गद का यौवराज्य अभिषेक कराया और वहां से सब समाजसहित उसी पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्यापुरी के निकट आये । वहां उन्होंने विमान को ठहराकर वायुपुत्र हनुमान्जी को भरतजी के पास भेजा । हनुमान्जी वहां गये और भरतजी के हृद्गत भाव को देखकर लौट आये, तब रामचन्द्रजी सब समाजसहित नन्दिग्राम में गये और वहां उन्होंने भरतजी को फटे हुए चीर पहिरे हुए मलिन अङ्गसे अपनी दी हुई दोनों खड़ाउओं को आगे रखकर आसन पर बैठा हुआ देखा, तब रामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित पुष्पक विमान से उतरकर भरत और शत्रुघ्न से मिले और बहुत प्रसन्न हुए । इसके पीछे भरत शत्रुघ्न भी रामचन्द्रजी से मिल कर और सीताजी को देखकर बहुत प्रसन्न हुए । उसी समय भरतजी ने आनन्दपूर्वक बड़े सत्कार से सब राज्य ज्यों का त्यों रामचन्द्रजी के अर्पण कर दिया ५५ । ६५ इसके पीछे वामदेव और वशिष्ठऋषि ने शुभ मुहूर्त में रामचन्द्र का राज्याभिषेक कराया ६६ तदनन्तर रामचन्द्रजी ने पुलस्त्यवंशी विभीषण और कपिश्रेष्ठ सुग्रीव को अपने अपने साथियों सहित अपने अपने देश को जाने की आज्ञा दी ६७ और दोनों को बड़ी प्रीति से नाना प्रकार के पदार्थ देकर और करने के योग्य बात का उपदेश करके बड़ी कठिनता से बिदा किया ६८ और वह पुष्पक विमान कुबेरजी को दे दिया । इसके पीछे रामचन्द्र ने गोमतीनदी के किनारे तिगुने दक्षिणावाले दश अश्वमेध यज्ञ किये और उन यज्ञों में अन्न चाहनेवालों के लिये सदैव द्वार खुला रहा ॥ ६९ । ७० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥

दोसौ इक्यानबेवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर को समझाकर उसका शोच दूर करना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे महाबाहो, युधिष्ठिर ! पूर्वकाल में अपार तेजस्वी रामचन्द्रजी को उक्त उग्रव्यसन वनवास प्राप्त हुआ था १ इससे हे पुरुषोत्तम! तुम क्षत्रिय होकर किसी प्रकार का शोच मत करो, तुम तो बाहुबल के आश्रितमार्ग में

बर्तते हो जो प्रत्यक्ष फल का देनेवाला है २ तुमने थोड़ा सा भी पाप नहीं किया है तुम्हारा सा आचरण करना देवता और दानवों को भी कठिन है ३ देखो वज्रधारी इन्द्र ने मरुद्गणों की सहाँयता से वृत्रासुर, नमुचि, दैत्य और दीर्घजिह्वा राक्षसी को मारा था ४ सो सहायता रखनेवाले के पास सब धन और ऐश्वर्य तत्काल आ जाते हैं। जिसके भाई अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव से हों उसको क्या पदार्थ जीतना दुर्लभ है। ये ऐसे शूरवीर हैं कि वज्रधारी इन्द्र को भी मरुद्गणों सहित जीत सकते हैं। फिर हे परंतप! तुम न जाने क्यों विषाद करते हो ५।७ हे भरतसत्तम! तुम इन देवरूपी, महाधनुर्धारी वीरों की सहायता से रण में सब शत्रुओं को विजय करोगे ८ यही देख लो कि तुम्हारे महात्मा भाई बलोन्मत्त जयद्रथ से हरी हुई इस द्रौपदी को कैसा दुष्कर कर्म करके लाये हैं ९। १० सो हे राजन्! सहायक होना बड़ी बात है। देखो, बुद्धि से विचारो कि रामचन्द्रजी रीछ और वानरों की सहायता से जो अपनी जाति के न थे बड़े पराक्रमी रावण को मारकर हरी हुई सीता को लाये थे ११।१२ इससे हे कुरुश्रेष्ठ, भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! तुम भी शोच मत करो, तुम सरीखे महात्मा को शोच करना अनुचित है १३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! मार्कण्डेयजी की उक्त शिक्षा को सुनकर युधिष्ठिर शोचरहित होकर मार्कण्डेयजी से फिर कहने लगे ॥ १४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

दोसौ बानबे का अध्याय।

राजा अश्वपति का संतानार्थ यज्ञ, सावित्री उत्पत्ति तथा सावित्री का पति ढूँढने निकलना।

युधिष्ठिर बोले हे महामुनिनायक, मार्कण्डेयजी! मुझको अपना और इन भाइयों का और राज्य के हरे जाने का शोच नहीं है, परंतु द्रौपदी का शोच अवश्य है। देखिये इसने हम लोगों को जूए में दुरात्मा लोगों से क्लेशित होने पर तारा था और अब इस वन में जयद्रथ इसको बरबस हरकर ले गया यह कुछ अपनी इच्छा से नहीं गई थी। इससे मैं आपसे पूछता हूं कि आपने कोई और भी ऐसी पतिव्रत्य स्त्री देखी या सुनी है १। ३ यह सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! हम कुलीन स्त्रियों का माहात्म्य वर्णन करते हैं उसको सुनो और राजकन्या सावित्री के पातिव्रता धर्म पाने की कथा कहते हैं ४ मद्रदेश में अश्वपतिनामी एक राजा बड़ा धर्मात्मा, ब्रह्मण्य, महात्मा, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, यज्ञकर्त्ता, दानी, चतुर, सबका प्यारा, सबका हित करनेवाला और

क्षमावान् था। उसके कोई सन्तान न थी इससे वृद्धावस्था के आने पर उसको बड़ा सन्ताप रहने लगा ५।७ तब उस राजा ने सन्तान होने के लिये तीव्र नियम लिया और उस नियम में वह ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और नियत आहार करके रहने लगा ८ हे राजसत्तम! सावित्री देवी के मन्त्र की सहस्र आहुति अग्नि में देकर दिन के छठे भाग में भोजन करता था ९ राजा ने यही नियम अठारह वर्ष तक कर रक्खा उपरान्त सावित्री देवी उसके नियम से प्रसन्न हुई और उसने अग्निहोत्र से प्रकट होकर राजा को दर्शन दिया और कहा कि हे राजन्, मद्रराज, अश्वपतिजी! मैं तेरे शुद्ध ब्रह्मचर्य दम के नियम और सर्वात्मा भक्ति से प्रसन्न हूं जो कुछ तुझे इच्छा हो सो मुझसे मांग ले तुझे धर्म के विषय में प्रमाद करना उचित नहीं है १०। १३ यह सुनकर राजा अश्वपति बोला कि हे देवि! मैंने धर्म ही की इच्छा से सन्तान होने के लिये यह कर्म किया था। इससे मैं चाहता हूं कि मेरे बहुत से पुत्र उत्पन्न होवें १४ हे देवि! जो तू मुझ पर प्रसन्न है तो यही वरदान दे ब्राह्मणों ने मुझसे कहा है कि सन्तान परम धर्म है १५ सावित्री बोली कि हे राजन्! मैंने तेरे इस अभिप्राय को जानकर पहिले ही से भगवान् ब्रह्माजी से तेरे पुत्र होने के निमित्त कहा था १६ सो हे सौम्य! ब्रह्माजी की कृपा से रची हुई बड़ी तेजस्विनी कन्या तेरे शीघ्र ही उत्पन्न होगी १७ सो अब तू मुझसे और किसी बात की प्रार्थना मत करे यह बात मैंने तुझसे ब्रह्माजी की आज्ञा से कही है १८ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! यह सुनकर उस राजा ने 'तथास्तु' कहकर सावित्री का वचन अङ्गीकार किया और सावित्री के अन्तर्धान होने पर अपने नगर को चला आया और प्रजा का पालन करके राज्य करने लगा १९। २० हे भरतसत्तम! कुछ काल के व्यतीत होने पर उस नियतव्रत राजा की बड़ी पटरानी के गर्भ रह गया और वह गर्भ शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान दिन दिन बढ़ने लगा २१। २२ जब गर्भ का समय पूरा हो गया तब उस राजा के एक कमललोचनी कन्या उत्पन्न हुई। राजा ने उस कन्या की सब क्रिया प्रसन्नता से की और उसका नाम राजा और ब्राह्मणों ने इस कारण से सावित्री रक्खा कि सावित्री का हवन करने से सावित्री ही ने उसको वह कन्या दी थी २३। २४ उस कन्या का स्वरूप लक्ष्मी के सदृश था और वह थोड़े दिनों में बढ़कर युवावस्था को प्राप्त हुई २५ सब लोग उसे देखकर यह कहते थे कि यह देव-

कन्या है परंतु उस कमलपत्राक्षी के प्रज्वलित तेज को देखकर किसी मनुष्य ने अपना विवाह उससे करना न चाहा २६। २७ एक समय पर्व में उपासी रहकर उस कन्या ने शिर से स्नान करके पर्वत में जाकर अपने इष्टदेव का ध्यान किया और होम करके ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया २८ और इष्टदेव की दी हुई माला को लेकर अपने पिता के पास आई और पिता के चरणों में नमस्कार करके पिता को वह माला दे दी और हाथ जोड़कर पास बैठ गई २९। ३० राजा उस देवी का सा रूप रखनेवाली अपनी युवती कन्या को देखकर और यह जानकर कि उसको कोई मनुष्य ब्याहना अङ्गीकार नहीं करता है दुःखी हुआ ३१ राजा सावित्री से बोला कि हे पुत्रि! तेरे विवाह का समय आ गया है परंतु कोई मनुष्य मेरे पास तुझे विवाह की इच्छा से मांगने को नहीं आता है इससे तू आपही अपने समान पति ढूंढ़। जब तेरी इच्छा के अनुसार तुझको कोई मनुष्य मिल जाय तब मुझसे कहियो, मैं उसको कन्यादान कर दूंगा ३२। ३३ हमने ब्राह्मणों के मुख से कहे हुए धर्मशास्त्र में सुना है कि जो पिता अपनी कन्या का विवाह नहीं करता है और जो पुरुष अपनी स्त्री के पास ऋतुकाल के आने पर नहीं जाता है और पिता के मरने पर जो पुत्र अपनी माता की रक्षा नहीं करता है वह निन्दा के योग्य है ३४। ३५ इससे तू शीघ्र अपना पति ढूंढ़ जिससे देवता मेरी निन्दा न करें ३६ मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह कहकर राजा ने सावित्री के लिये वाहन सजाने की आज्ञा दी और कहा कि हे पुत्रि! तू बूढ़े मन्त्रियों को साथ लेकर चली जा ३७ यह सुनकर वह कन्या लज्जित सी होकर अपने पिता के चरणों में दण्डवत् करके वृद्ध मन्त्रियों को साथ लेकर सुनहरे रथ में बैठकर विना जाने मार्ग से चल दी और उस वन में पहुँची जहाँ राजऋषि तपस्या करते थे ३८। ३९ वहां वह मान के योग्य वृद्ध ऋषियों को दण्डवत् करके आगे चल दी और क्रमपूर्वक सब वनों में होती हुई और तीर्थों पर धनदान करती हुई वहां पहुँची जहां मुख्य ब्राह्मण रहते थे॥ ४०। ४१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९२॥

दोसौ तिरान्नबेवाँ अध्याय ।

सावित्री का सत्यवान् को अपना पति बरना तथा नारदजी का सत्यवान् को
अल्पायु बता विवाह का निषेध करना और सावित्री का न मानना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! एक दिन मद्रदेशाधिपति राजा अश्वपति कथाप्रसंग से सभा में नारदजी सहित बैठा हुआ था। उसी समय सावित्री भी तीर्थयात्रा करके और अनेक आश्रमों को देखकर वृद्ध मन्त्रियों सहित वहां आई और अपने पिता और नारदजी को बैठा हुआ देखकर उसने दोनों को दण्डवत् की १।२ उसको देखकर नारदजी ने राजा से पूछा। कि हे नृप! तेरी यह कन्या कहां गई थी और कहां से आई और तैंने अभी तक इसका विवाह क्यों नहीं किया है ४ यह सुनकर राजा अश्वपति बोला कि महाराज! मैंने इसको इसी निमित्त से भेजा था और इस प्रयोजन से यह गई थी अभी आई है, अब इससे सुनो कि इसने किसको पति बरा है ५ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! इसके पीछे वह कन्या पिता की प्रेरणा से बोली ६ कि शाल्वदेश में द्युमत्सेननामी एक बड़ा धर्मात्मा राजा था, वह कुछ काल पीछे अन्धा हो गया था ७ उसके अन्धे होने की अवस्था में उसका राज्य उसके पुत्रों के बालक होने के कारण उसके पूर्व वैरियों ने हर लिया ८ तब वह राजा अपने बालक पुत्र और स्त्रीसहित वन को चला गया और वहां महाव्रत धारण करके तपस्या करने लगा९ सो मैंने उसके सत्यवान्नामी पुत्र को जो उत्पन्न तो नगर में हुआ था, परंतु बड़ा वन में हुआ है, अपना पति रचा है, वही मेरे योग्य है १० यह सुनकर नारदजी बोले कि हे राजन्! बड़े दुःख की बात है, इस कन्या ने विना जाने बड़ा पाप किया जो उस गुणवान् सत्यवान् को अपना पति बरा है ११ उसके माता और पिता दोनों सत्यवादी हैं। इसी कारण से ब्राह्मणों ने उसके पुत्र का नाम सत्यवान् रक्खा है १२ और उसका नाम चित्राश्व भी है, यह नाम इस कारण से रक्खा गया था कि बालकपन में उसको अश्व अर्थात् घोड़े बड़े प्यारे लगते थे और वह मिट्टी के घोड़े बनवाता था और घोड़ों के चित्र भी लिखता था १३ तब राजा ने पूछा कि महाराज! आप जानते हैं कि वह राजपुत्र सत्यवान् तेजस्वी, बुद्धिमान्, क्षमावान्, शूरवीर और पितृवत्सल है या नहीं १४ नारदजी बोले, हां मैं जानता हूं। वह सूर्य के समान तेजस्वी, बृहस्पति के समान बुद्धिमान्, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी

और पृथ्वी के अनुरूप क्षमावान् है १५ तब राजा बोला, भला वह राजकुमार दाता, ब्रह्मण्य, स्वरूपवान्, उदार और प्रियदर्शन भी है १६ नारदजी बोले कि हां, वह दान देने में संकृति के पुत्र रन्तिदेव के तुल्य और सत्य में उशीनर के पुत्र राजा शिवि के समान और ब्रह्मण्य है। उदारता उसकी राजा ययाति के समान और स्वरूप अश्विनीकुमारों का सा है और वह चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन भी है १७।१८ इसके सिवाय वह तप का क्लेश सहनेवाला, मृदु, शूरवीर, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, सबका मित्र, धैर्यवान्, लज्जावान्, दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला, सीधा और मर्यादा से अचल भी है, ऐसा संक्षेप से शीलवृद्ध तपोवृद्ध लोग कहते हैं १९।२० तब अश्वपति ने पूछा कि महाराज! आपने उसके गुण तो सब कहे, परंतु यह तो कहिये कि उसमें कोई दोष भी है २१ नारदजी बोले कि हां, एक दोष बड़ा भारी है वह सब गुणों के ऊपर है और उसका मिटना बड़े यत्न से भी असंभव है २२ वह यह है कि आज से एक वर्ष पीछे वह मर जायगा २३ यह सुनकर राजा ने सावित्री से कहा कि हे पुत्रि! तू दूसरा मनुष्य देख, उसमें तो एक बड़ा दोष है जो उसके सब गुणों को तिरस्कार किये देता है। नारदजी कहते हैं कि वह एक ही वर्ष पीछे मर जायगा २४।२५ यह सुनकर सावित्री बोली कि वृक्ष एक ही बार गिरता है, पहाड़ भी एक ही बार टूटता है, कन्यादान भी एक ही बार होता है और दान भी एक वस्तु का एक ही बार होता है २६ इससे चाहे वह दीर्घायु हो अथवा अल्पायु और गुणवान् हो या गुणहीन, मैं उसको एक बार बर चुकी, अब दूसरे को क्योंकर बरूं २७ संसार में सब कामों का पहिले मन में विचार किया जाता है फिर मुख से कहा जाता है तब किया जाता है। इससे जो बात मैं मन से विचार चुकी, उससे अन्यथा नहीं कर सकती हूं २८ यह सुनकर नारदजी राजा से कहने लगे कि तेरी पुत्री की बुद्धि स्थिर है, वह इस धर्म से निवारण नहीं की जा सकती २९ और सत्यवान् के गुण भी असादृश्य हैं। इससे तेरी पुत्री का विवाह उसके साथ होना मेरी सलाह से अच्छा है ३० राजा बोला कि आप मेरे गुरु हैं, आपका वचन सत्य और सावित्री का वचन अचल है, इससे मैं भी ऐसा ही करूंगा ३१ तब नारदजी बोले कि अब मैं जाऊँगा, ईश्वर करे तेरी पुत्री सावित्री के विवाह में किसी प्रकार का विघ्न न हो ३२ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! यह कह कर नारदजी स्वर्ग को चले गये और राजा ने पुत्री के विवाह की सामग्री इकट्ठी की ॥३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९३ ॥

दोसौ चौरानबेवाँ अध्याय।

सावित्री का सत्यवान् के साथ विवाह होना और उसका सेवा से सबको प्रसन्न करना।

मार्कण्डेयजी बोले, हे राजा युधिष्ठिर! जब वह राजा उसी काज को विचारता हुआ कन्यादान के लिये विवाह की सामग्री इकट्ठा कर चुका। तब वृद्ध ब्राह्मण, ऋत्विज् और पुरोहित को बुलाकर कन्यासहित शुभ मुहूर्त में घर से चलकर उस पवित्र वन में पहुँचा, जहां द्युमत्सेन का आश्रम था और उस राजऋषि के पास ब्राह्मणों को साथ लेकर अकेला गया १। ३ वह लोचन-विहीन राजऋषि उस समय एक शाल वृक्ष के पास कुशासन पर बैठा हुआ था ४ राजा ने उसकी यथायोग्य पूजा करके सावधानी से अपने को निवेदन किया ५ तब उस धर्मज्ञ ने राजा अश्वपति को अर्घ्य और आसन देकर पूछा कि आपका आना कैसे हुआ है ६ तब अश्वपति ने अपने अभिप्राय और कर्तव्य को निवेदन करके प्रार्थना की कि हे धर्मज्ञ राजर्षे! यह मेरी सावित्रीनाम कन्या है, इसको आप अपनी पुत्रवधू करने के लिये स्वधर्म से अङ्गीकार कीजिये ७। ८ यह सुनकर द्युमत्सेन बोला कि हमलोग राज्यहीन, वनवासी और तपस्वी हैं, तुम्हारी कन्या वनवास के योग्य न होकर हमारे आश्रम में कैसे रहेगी और क्लेश सहेगी ९ अश्वपति बोला कि हे नृप! मेरी पुत्री और मैं दोनों उत्पत्ति और विनाशात्मक सुख और दुःख को जानते हैं। ऐसी अवस्था में आपको ऐसी बात कहने की आवश्यकता नहीं है, मैं आपके पास बड़े निश्चय से आया हूं १० आपको मुझ प्रेम से आनेवाले की आशा तोड़ना और उत्तर देना उचित नहीं है ११ आप मेरे योग्य और मैं आपके योग्य हूं इससे आप मेरी कन्या को अपने पुत्र सत्यवान् से विवाह करने के लिये ग्रहण कर लीजिये १२ यह सुनकर द्युमत्सेन बोला कि तुम्हारे साथ सम्बन्ध करने की मुझे पहिले ही से अभिलाषा थी, परंतु मैंने राज्यभ्रष्ट होने के कारण से उक्त उत्तर दिया था। अब मैं भी चाहता हूं कि मेरी वह अभिलाषा अभी पूरी हो १३। १४ यह कहकर उन दोनों राजाओं ने सब आश्रमवासी ब्राह्मणों को बुलाकर विधिपूर्वक विवाह करवाया १५ और राजा अश्वपति कन्या को दान-दहेज के साथ देकर प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चला गया १६ और सत्यवान् उस सर्वगुणसम्पन्न स्त्री को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और सावित्री भी अपने मन के अभीष्ट पति को पाकर सुखी हुई १७ जब सावित्री का पिता चला गया, तब उसने सब

आभरण उतार डाले और बल्कल और काषायवस्त्र धारण कर लिये और अपने सेवाशील और स्नेहयुक्त स्वभाव और सबके इष्ट सम्पादन से सबको प्रसन्न किया १८। १९ वह अपनी सासु को स्नान कराने और वस्त्र पहिराने से प्रसन्न रखती थी और श्वशुर को देवताओं के समान सत्कार-वचन के संयम से सानुकूल रखती थी और पति को प्यारी बोली बोलने से और चतुराई जितेन्द्रियता और एकान्त में सेवा करने से तृप्त रखती थी २० । २१ हे भरतवंशिन् ! इस प्रकार से उसी आश्रम में तप करते हुए उन सत्पुरुषों का कुछ काल व्यतीत हुआ २२ परंतु नारदजी का कहा हुआ वाक्य उस म्लायमान सावित्री के चित्त में खटकता रहता था ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥

दोसौ पंचानबेवाँ अध्याय ।

सावित्री का पति के मरने को जानकर व्रत करना और उसी अवस्था में पति के साथ वन को जाना ।

मार्कण्डेयजी बोले, हे राजा युधिष्ठिर! इसके पीछे बहुत दिनों में वह समय आया कि जिसमें सत्यवान् की मृत्यु निर्मित थी १ सावित्री एक एक दिन गिनती जाती थी और ज्यों ज्यों वह समय निकट आता जाता था, त्यों त्यों उसके हृदय में नारदजी का वाक्य सदैव खटकता था २ जब उसके मरने के चार दिन रह गये तब उस भामिनी ने तीन रात्रि के व्रत का संकल्प किया और दिनरात्रि अपने पति के पास बनी रही ३ उसके उस नियम को सुनकर उसका श्वशुर दुःखित होकर उसके पास गया और उसको सान्त्वन करके बोला ४ कि हे राजपुत्रि ! तैंने यह बड़ा तीव्र व्रत लिया है, तीन रात्रि दिन भोजन न करना बड़ा कठिन है ५ तब सावित्री बोली कि हे तात ! आप इसका सन्ताप न कीजिये, मैं इस व्रत को पूरा करूंगी, यह एक उद्योग है और कारण से किया जाता है ६ द्युमत्सेन बोला कि मैं तुझसे क्योंकर कहूं कि तू इस व्रत को पूरा कर, मेरी समझ में तो यह व्रत कठिन है। तू इसको त्याग दे ७ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर ! द्युमत्सेन उक्त प्रकार से कहकर चुप हो रहा और सावित्री ध्यान में बैठी हुई काष्ठरूप हो गई ८ और अपने पति की मृत्यु प्रातःकाल समझकर वह रात्रि उसकी बड़े कष्ट से व्यतीत हुई ९ प्रातःकाल उसने यह जानकर कि आज मेरे पति के मरने का दिन है, चार हाथ सूर्य चढ़े

तक उसने पूर्वाह्णिक क्रिया की और अग्नि को प्रज्वलित करके होम किया १० अपनी सास, श्वशुर और वृद्ध ब्राह्मणों को दण्डवत् करके वहीं बैठी रही ११ तब उन वनवासी तपस्वियों ने उसको सौभाग्य बना रहने का शुभ आशीर्वाद दिया १२ सावित्री ने ध्यानपरायण होकर उन आशीर्वादों को मन में अङ्गीकार करके कहा कि ऐसा ही होवे १३ और नारदजी के कहने के अनुसार वह उस काल और मुहूर्त की चिन्ता में महादुःखी हो गई १४ हे भरतसत्तम! इसके पीछे सास और श्वशुर ने उस एकान्त में बैठी हुई पुत्रवधू से प्रीतिपूर्वक कहा १५ कि तैंने उपदेश के अनुसार अपना व्रत पूरा किया, अब भोजन का समय आ गया है सो व्रत का पारणकर १६ सावित्री बोली कि सूर्यास्त होने पर मैं भोजन करूंगी। यही नियम और संकल्प मैंने किया था १७ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे सत्यवान् फरसा कांधे पर रखकर वन को चलने लगा १८ उसको देखकर सावित्री बोली कि आप अकेले वन को न जाइये, मैं भी आपके साथ चलूंगी। मैं आपको अकेला छोड़ना नहीं चाहती हूं १९ सत्यवान् बोला कि हे भामिनि! वन का मार्ग दुःखरूपी है और तुझे वन में चलने का अभ्यास नहीं है। इस पर भी तू व्रत के कारण से दुर्बल हो रही है। ऐसी अवस्था में तू वन में पैदल क्योंकर जा सकेगी २० सावित्री बोली कि मुझको उपवास का कुछ दुःख नहीं है। न मैं वन जाने में कोई परिश्रम जानती हूं। मेरा मन वन में आपके साथ चलने को चाहता है। इससे आपको मुझे निषेध करना उचित नहीं है २१ सत्यवान् बोला अच्छा, जो तेरा मन चलने को है तो मैं तुझे ले चलूंगा, परंतु तू माता-पिता की आज्ञा लेले जिससे मेरे ऊपर दोष न आवे २२ मार्कण्डेयजी बोले, यह सुनकर सावित्री अपनी सास और श्वशुर के पास गई और दण्डवत् करके उनसे बोली कि मेरा पति फल लेने की इच्छा से वन को जाता है २३ सो मैं उसके साथ वन में जाने के लिये आप दोनों से आज्ञा मांगती हूं, क्योंकि मैं पति के विरह को सह नहीं सकती हूं २४ जो वह और किसी काम को जाता तो उसको रोक भी दिया जाता, परंतु वह अग्निहोत्र के लिये लकड़ी और आपके लिये फल लेने जाता है इससे उसको वन जाने से रोकना उचित नहीं है २५ मुझे यहां आये कुछ कम एक वर्ष हो गया, परंतु मैं घर से बाहर नहीं गई अब मेरी इच्छा है कि मैं पुष्पितवन को देखूं २६ द्युमत्सेन बोला कि जब से तू हमारे घर में आई है तब से तैंने हमसे

अपनी कोई अभिलाषा नहीं कही इससे हम तुझे अपने पति के साथ वन को जाने की आज्ञा देते हैं २७। २८ यह सुनकर सावित्री हँसती हुई, परंतु हृदय में महादुःखी अपने पति के साथ हो ली २९ और विचित्र रमणीक और मयूरों के गणों से सेवित वन को देखती हुई चली गई ३० और सत्यवान् उसको मधुर वाणी से नदी और पुष्पित वृक्षों को दिखाता हुआ चला गया ३१ उस समय उसका हृदय दो प्रकार का होगया। एक तो पति के साथ में रहकर मधुरवाणी से पति से बात करती जाती थी और दूसरे नारदजी के वचन को याद करके पति के मरने के समय को निकट आया हुआ देखकर हृदय में अत्यन्त दुःखी होती जाती थी ॥ ३२। ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥

दोसौ छानबेवाँ अध्याय।

सत्यवान् का शिरपीड़ावश सावित्री की गोद में सो जाना, यमराज का उसके प्राण निकाल ले जाना और सावित्री का उनके पीछे जा, यम को प्रसन्नकर पाँच वरदान लेना।

मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! इसके पीछे भार्यासहायक बलवान् सत्यवान् ने फल तोड़ तोड़कर डलिया भर ली और लकड़ी काटने लगा १ उस समय लकड़ी काटते हुए उसके शरीर में पसीना हो आया और अङ्ग में हड़फूटन और शीश में पीड़ा होने लगी तब उसने अपनी प्रिया के पास जाकर कहा २ कि आज परिश्रम से मेरे शिर में दर्द हो आया है ३ और मेरे अङ्ग अङ्ग और हृदय में पीड़ा होती है, इससे हे सावित्रि! मेरा चित्त बहुत व्याकुल है ४ और शिर में ऐसा जान पड़ता है मानो कोई शूल छेद रहा है। अब मेरी सामर्थ्य खड़े रहने की नहीं है इससे मैं सोना चाहता हूं यह सुनकर सावित्री उसका शिर गोद में रखकर पृथ्वी पर बैठ गई और वह तपस्विनी नारदजी के कहे हुए वचन को स्मरण करके उस मुहूर्त क्षण दिन और समय का विचार करने लगी ५। ७ एक मुहूर्त के पीछे उसको एक पुरुष दिखाई दिया जो लाल कपड़े पहिरे हुए शरीरी शिरसे चिकुर बांधे लाल लाल आंखें निकाले हुए श्याम श्वेतवर्णवाले परम तेजस्वी हाथ में पाश लिये हुए भयदायक सत्यवान् की बग़ल में खड़ा हुआ सत्यवान् को देख रहा था। उसको देखकर सावित्री धीरे से अपने पति का शिर पृथ्वी पर रखकर उठ खड़ी हुई और बड़ी पीड़ा से कांपती हुई दोनों हाथ जोड़कर बोली ८। १० कि हे देवेश! मैं जानती हूं आप देवता हैं और आपका दिव्य

शरीर है, कृपा करके मुझको बतलाइये कि आप कौन हैं और क्या करना चाहते हैं ११ यमराज बोले कि हे सावित्रि! तू पतिव्रता और तपस्विनी है इससे तुझको बताता हूं कि मैं यमराज हूं १२ यह राजपुत्र तेरा पति सत्यवान् क्षीणआयु होगया है इससे मैं इसको बांधकर ले जाऊंगा। यही मैं करना चाहता हूं १३ सावित्री बोली कि हे भगवन्, महाराज! मैंने सुना है कि आपके दूत मनुष्यों के प्राणों को हरकर ले जाते हैं हे प्रभुजी! इस मेरे पतिके प्राण हरने के लिये आप स्वयं क्यों आये हैं १४ मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह सुनकर भगवान् धर्मराज ने सावित्री के प्रिय करने के लिये समग्र अपने करने का इष्ट कहने को यथार्थता से आरम्भ किया १५ धर्मराज बोले कि हे सावित्रि! यह राजपुत्र सत्यवान् धर्मवान्, गुणवान् और रूपवान् है। मेरे दूतों से ले जाने के योग्य न था इससे मैं स्वयं इसको लेने आया हूं १६ यह कहकर यमराज ने सत्यवान् के शरीर से एक अंगुष्ठमात्र शरीर बल से निकालकर पाश से बांध लिया और उसे लेकर दक्षिण की ओर चल दिये। उसके प्राण के निकलने पर सत्यवान् का स्थूल शरीर चेष्टाहीन श्वासरहित और बुरा दीखने लगा। उस समय वह बड़भागिनी पतिव्रता सावित्री दुःख से पीड़ित होकर यमराज ही के पीछे पीछे हो ली १७। १८थोड़ी दूर जाने पर यमराज ने उससे कहा कि हे सावित्रि! अब तू लौट जा इस अपने पति की और्ध्वदैहिक क्रिया कर। तू अपने पति से अनृण हुई, बस यहीं तक चलना बहुत है २० यह सुनकर सावित्री बोली कि महाराज! जहां मेरा पति जलाया जाय अथवा जहां वह स्वयं जायँ तहां ही मुझको भी जाना उचित है, यह सनातन धर्म है २१ तप, गुरुभक्ति, पति का स्नेह, व्रत और आपकी कृपा से मेरी गति रुक नहीं सकती है २२ तत्त्वदर्शी ज्ञानियों ने कहा है कि सप्तपद साथ जाना मित्रता का धर्म है, सो मैं उसी मित्रता को आगे करके आपसे कुछ कहती हूं, उसको आप सुनिये २३ जो आत्मज्ञानी लोग वन में रहते हैं और वह धर्म कर्म करते हैं। जिनमें कर्मफल का त्याग है, वे धर्म को विज्ञान के अर्थ बताते हैं। इससे सन्त लोग धर्म को प्रधान कहते हैं २४ सत्पुरुषों का माना हुआ एक ही धर्म ऐसा है जिससे परम सन्मार्ग प्राप्त हो सकता है। सन्त लोग उस धर्म को छोड़कर और दूसरे अथवा तीसरे धर्म की इच्छा नहीं करते हैं। इससे सन्तों ने धर्म को ही प्रधान कहा है २५ यह सुनकर यमराज ने कहा कि हे सावित्रि! मैं तेरी यह निर्दोष वाणी सुन-

कर बहुत प्रसन्न हुआ। सिवाय इस अपने पति के जीवित के और जो कुछ तुझे इच्छा हो सो मांग ले और चली जा २६ सावित्री बोली कि जो मेरा श्वशुर राज्य से भ्रष्ट होकर वन में रहता है और अन्धा है वह आपकी कृपा से नेत्र पाकर बलवान्, अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी हो जाय। यमराज बोले कि हे वरारोहे! अच्छा ऐसा ही होगा। यह तेरी इच्छा पूरी होगी, परंतु अब तू लौट जा तेरा शरीर लटा हुआ है, दूर जाने से तू थक जायगी २७। २८ सावित्री बोली कि हे सुरेश! पति के साथ में चलने से मैं कदापि न थकूंगी, मेरी गति भी वहीं होगी जहां मेरा पति होगा। उसको जहां आप ले जायँगे वहीं मैं भी जाऊंगी और जो कुछ मैं कहती हूं उसे भी सुनिये २९ मनुष्य सत्पुरुषों के एक बार के मिलाप से ही परम मित्रता को पाता है वह मिलाप निष्फल नहीं होता है। इससे सत्पुरुषों के बीच में रहना उचित है ३० यमराज बोले हे सावित्रि! तेरा कहना मनभावन ज्ञानी की बुद्धि को बढ़ानेवाला और हिताश्रय है, इससे इस सत्यवान् के जीवित को छोड़कर और जो इच्छा हो सो वर मांग ३१ सावित्री बोली कि मुझे दो वर दीजिये। एक तो मेरा श्वशुर जो कि बड़ा बुद्धिमान् है अपने गये हुए राज्य को पावे और दूसरे वह धर्म को न छोड़े ३२ यमराज बोले तेरे श्वशुर को शीघ्र ही राज्य मिल जायगा और धर्म को भी कभी न छोड़ेगा। अब तू मेरा कहना मान और लौट जा, क्यों नाहक को श्रम उठाती है ३३ सावित्री बोली कि प्रजा आपसे दण्ड पाकर शुद्ध हो जाती है और आप प्रजा को दण्ड देकर सुकर्म का फल भी देते हैं। इसी कारण से आपका नाम यमराज है। मेरी थोड़ी सी और भी प्रार्थना है उसको भी सुनिये ३४ मन, कर्म और वाणी से किसी प्राणी के साथ द्रोह न करना सब पर अनुग्रह करना और दान करना ये तीनों लक्षण सत्पुरुषों के सनातन धर्म कहे हैं ३५ इस बात को समझकर बहुधा संसार शक्तिहीन अर्थात् उक्त धर्म पर न चलनेवाले मनुष्यों से भरा है, परंतु सन्त लोग उन पर ही नहीं, किन्तु शत्रु भी मिल जाय तो उस पर भी दया करते हैं ३६ यमराज बोले, हे सावित्रि! तेरे ये वाक्य प्यासे की प्यास को बुझाने के लिये जलरूपी हैं। इससे सिवाय सत्यवान् के जीवित के और जो इच्छा हो सो वर मांग ३७ सावित्री बोली कि मेरे पिता के कोई पुत्र नहीं है। इससे मैं चाहती हूं कि उसके सौ औरस पुत्र कुल के बढ़ानेवाले होवें। यह तीसरा वर मांगती हूँ ३८

यमराज बोले, अच्छा तेरे पिता के बड़े तेजस्वी और कुल के बढ़ानेवाले सौ पुत्र उत्पन्न होंगे । अब तू वर पाकर लौट जा, बहुत दूर आ गई है ३९ सावित्री बोली कि पति के साथ रहकर मैं सब मार्गों को निकट ही समझती हूं परंतु मेरा मन दूर तक दौड़ता है । इस मार्ग में मुझको एक और बात याद आगई है, उसको भी आप सुनिये ४० आप बड़े प्रतापी हैं और विवस्वान् जगदात्मा सूर्य के पुत्र हैं । इसीसे ज्ञानीलोग आपको वैवस्वत नाम से विख्यात करते हैं और आपके धर्म को देखकर आपके शासन से सब प्रजा धर्म करती है, इससे आपका नाम धर्मराज भी है ४१ मनुष्य को जितना विश्वास सत्पुरुषों पर होता है, उतना अपनी आत्मा पर भी नहीं होता है । इससे मनुष्य विशेष करके सब मनोरथों के मिलने के लिये सत्पुरुषों की संगति करता है ४२ और सत्पुरुषों पर विश्वास करने का यह कारण है कि सत्पुरुष सब पर प्रीति करते हैं और प्रीति ही से विश्वास होता है ४३ यमराज बोले कि हे सावित्रि! इस समय तैंने ऐसी बात कही है कि यह बात दूसरे से सुनने में नहीं आई थी इससे मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूं, अपने पति के जीवित को छोड़ कर और जो वरदान चाहे सो मांग ले ४४ सावित्री बोली कि महाराज ! सत्यवान् से मेरे सौ पराक्रमी औरस पुत्र उत्पन्न होवें यह चौथा वरदान मुझको दीजिये ४५ यमराज बोले कि तेरे सौ पुत्र पराक्रमी और तुझको प्रसन्न करनेवाले उत्पन्न होंगे अब तू परिश्रम मत करे, लौट जा बहुत दूर चली आई है ४६ सावित्री बोली कि महाराज ! सन्तों की सदा की वृत्ति सनातन धर्म ही है वे सन्त न दुःखी होते हैं, न पीड़ा पाते हैं और उनका आपस का मिलाप भी निष्फल नहीं होता है और न उनको परस्पर किसीसे भय रहता है ४७ सन्तों ही के सत्य से सूर्य चलता है, सन्तों ही के तप से पृथ्वी स्थित है, भूत और भविष्य की गति भी सन्त ही हैं और सन्तों में रहकर सन्तों को पीड़ा नहीं होती है ४८ यह चलन सन्तों का सनातन से चला आया है । अच्छे पुरुष ही इस चलन को चलते हैं और दूसरे पुरुष की कामना को पूर्ण करने पर उपकार, प्रत्युपकार का कुछ ध्यान नहीं करते हैं ४९ सत्पुरुषों का प्रसाद निष्फल नहीं जाता है और न कभी ऐसा होता है कि सत्पुरुष अर्थ अर्थात् मनोकामना का पूरा करना और मान अर्थात् आदर-सत्कार करना भूल जाते हों । इस कारण इन तीनों बातों के होने से सत्पुरुष त्राता अर्थात् रक्षक गिने जाते

हैं ५० यमराज बोले कि हे पतिव्रते ! तू जैसे जैसे मेरे मन के अनुकूल धर्मयुक्त, गूढ़ अर्थ रखनेवाले वाक्य कहती है तैसे ही तैसे मेरे हृदय में तेरी ओर से प्रीति होती चली जाती है । इससे तू अब अप्रतिम वर मांग ले अर्थात् वह वर मांग ले जिससे अच्छा तू दूसरा वर न समझती हो ५१ सावित्री बोली कि मैं चाहती हूं कि मेरा पति सत्यवान् सजीव होजाय जिससे आपके वचन से मेरे सौ पुत्र दूसरे पति से धर्म के विपरीत न होवें, मैं विना पति के मृतक के समान हूँ और पति के विना सुख, स्वर्ग, लक्ष्मी और जीवन आदि कुछ नहीं चाहती हूँ ५२।५३ आपने मुझको सौ पुत्र होने का वरदान दिया है और पति मेरा हर लिया है इससे मैं चाहती हूँ कि मेरा पति जी जाय और आपका दिया हुआ वरदान सत्य होय ५४ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर ! तब यमराज ने प्रसन्न होकर पाश खोल डाली और सावित्री से कहा कि हे भद्रे, कुलनन्दिनि ! ले, मैं तेरे पति को छोड़े देता हूँ अब यह आरोग्य रहकर चार सौ वर्ष तक जीवेगा और सिद्धार्थ होकर तेरा कहना मानेगा और धर्मपूर्वक यज्ञ करके संसार में विख्यात होगा ५५ । ५७ और उससे तेरे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे और उन सबके भी पुत्र पौत्रादिक होंगे और वे तेरे नाम से सावित्र विख्यात होंगे और तेरे पिता के भी तेरी माता से सौ पुत्र होंगे ५८ । ५६ और तेरी माता का मालवी नाम होने से वे तेरे भाई मालव कहलावेंगे और पुत्र, पौत्रादि से युक्त क्षात्रधर्मी होकर देवताओं के समान होते हुए संसार में विख्यात होंगे ६० मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर ! प्रतापी धर्मराज सावित्री को उक्त प्रकार से वरदान देकर और उसे लौटाकर अपने स्थान को चले गये ६१ और सावित्री वहां से उस स्थान पर चली आई, जहां उसके पति का मृतक शरीर पड़ा हुआ था । वहां आकर पृथ्वी में भर्ता को देखकर पास जाकर वह अपने पति का शिर पहिले की भांति गोद में रखकर बैठ गई ६२ । ६३ उस समय वह चैतन्य हो गया और सावित्री की ओर इस प्रकार से प्रीतिपूर्वक देखकर मानो परदेश से बहुत दिनों में आया है, उससे कहने लगा ६४ कि बड़े दुःख की बात है कि मुझे सोते सोते बड़ा विलम्ब हो गया है तैंने जगाय क्यों न दिया, वह काला मनुष्य जिसने मुझे खींचा था, कहां है ६५ सावित्री बोली हां, प्राणपते ! आज आप मेरी गोद में बहुत देरतक सोते रहे, वह काला पुरुष प्रजा के दण्ड देनेवाले भगवान् यमराज थे । अब अपने स्थान को चले गये ६६ हे महाभाग, राजपुत्र ! यदि

आपकी थकावट उतर गई हो और निद्रा जाती रही हो, तो उठ बैठिये, देखिये कैसी अँधेरी रात्रि है ६७ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! यह सुनकर सत्यवान् उठ बैठा और वनमें चारों ओर देखकर बोला ६८ कि हे प्राणप्यारी ! मुझे स्मरण होता है कि मैं तेरे साथ फल लेने को आया था और यहां लकड़ी काटने के समय मेरे शिर में बड़ी उग्र पीड़ा होने लगी थी, मैं उस पीड़ा को न सह सका और तेरी गोद में सो गया, तेरी रक्षा के कारण से मुझे नींद आगई और उस निद्रा की अवस्था में मुझे बड़ा अन्धकार और एक तेजस्वी पुरुष दिखाई दिया; परंतु मैं यह नहीं कह सकता हूं कि वह स्वप्न था या सत्य ही कुछ था। हे सुमध्यमे ! जो तू उसको जानती हो तो कह ६९ । ७२ सावित्री बोली कि हे राजपुत्र ! अभी रात्रि है प्रातःकाल सब वृत्तान्त कहूँगी ७३ तुम्हारा कल्याण हो, अब आप उठिये और चलकर माता-पिता के दर्शन कीजिये सूर्य, अस्त हो गया और अँधेरी झुक आई है ७४ वन में निशाचर घूमने और क्रूर वाणी बोलने लगे, मृगों के दौड़ने से पत्ते खड़खड़ाने लगे और गीदड़ी दक्षिण और पश्चिम की ओर भयानक शब्द करने लगी हैं। इस समय यहां रहने से मेरा हृदय कांपता है ७५ । ७६ सत्यवान् बोला कि हे प्राणप्यारी ! इस समय बादलों के झुकने और रात्रि के अँधेरे से वन बड़ा भयानक हो रहा है, अब वन में तुझको राह जान न पड़ेगी और न तू चल सकेगी ७७ सावित्री बोली महाराज ! कहीं कहीं सूखे वृक्षों में लगी हुई अग्नि वायु के कारण से चमकती हुई, दिखाई दे रही है, मैं उसको लिये आती हूँ। लकड़ियाँ यहाँ हैं, मैं इस स्थान पर चारों ओर अग्नि जला दूंगी, आप संताप छोड़ दीजिये ७८ । ७९ हे निष्पाप ! आज की रात्रि यहीं बसिये, प्रातःकाल जब वन के मार्ग दीखने लगें, तब अपनी इच्छानुसार चलियेगा। मैं भी जानती हूँ कि अँधेरे के कारण वन में मार्ग सुझाई न देगा और इसके सिवाय मैं जानती हूँ कि आपको पीड़ा भी है जो आपकी इच्छा चलने की नहीं है ८० । ८१ सत्यवान् बोला कि मेरे शिर की पीड़ा जाती रही है और अङ्ग भी मेरे स्वस्थ हैं इससे मैं तेरी कृपा से माता-पिता को देखना चाहता हूँ ८२ ऐसा श्रम जैसा आज हुआ है, मुझको कभी नहीं हुआ था और संध्या होने के पीछे मेरी माता मुझको बाहर कभी नहीं जाने देती ८३ और दिन में जब कभी मैं दूर निकल जाता था, तब मेरी माता और मेरे पिता दोनों मेरी ओर से बड़ी चिन्ता करते थे और आश्रमवा-

सियों को साथ लेकर मुझको ढूंढ़ने निकल जाते थे ८४ सो देर से घर आने के कारण मेरे माता-पिता पहिले दुःखी होकर कई बार मेरी निन्दा कर चुके हैं ८५ इससे अब मुझको यह चिन्ता है कि न जानें मेरे घर न पहुँचने के कारण उनकी क्या गति हुई होगी, मैं जानता हूँ कि वे महादुःखी होंगे ८६ एकबार पहिले भी मुझको रात्रि हो गई थी तब भी उन दोनों वृद्धों ने मुझसे रोकर बड़ी प्रीति के साथ कहा था कि हे पुत्र! तेरे विना हम एक क्षणभर भी नहीं जी सकते हैं ८७। ८८ हम दोनों बूढ़े और अन्धों का वंश तेरे ही आश्रय है। इससे जबतक तू जीता है तभी तक हमको भी तू जीता समझ, तू ही हम दोनों की सन्तान है, तुझी से हमारी कीर्ति है, और तू ही हमको पिण्ड देनेवाला है, सो हे सावित्रि! उन दोनों वृद्धों की मैं लाठी हूं, हाय रात्रि में मुझको न देखकर उनकी क्या गति हुई होगी ८९। ९० मैं अपनी नींद की निन्दा करता हूँ, जिसके कारण मेरे माता-पिता और मुझको यह संशय प्राप्त हुआ। मैं भी विना माता-पिता के नहीं जीऊँगा ९१। ९२ इस समय मेरा अन्धा पिता व्याकुल होकर प्रत्येक आश्रमवासी से मेरा हाल पूछता होगा। सो हे सावित्रि! मुझे अपना शोच इतना नहीं है, जितना अपने पिता का है और अपने पति की आज्ञाकारी दुर्बल माता का शोच भी मुझे मारे डालता है। निश्चय मेरे माता-पिता दोनों मेरे कारण से महादुःखी होंगे, सो मैं भी उसी समय तक अपने प्राण रक्खूंगा, जबतक उन दोनों के प्राण रहेंगे, मुझे उनका पालन और प्रिय करना उचित है ९३। ९५ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! वह माता-पिता की भक्ति रखनेवाला सत्यवान् उक्त प्रकार से कहकर दोनों बाहुओं को उठाकर डीक मारकर रोने लगा। उस समय सावित्री अपने पति की ऐसी दशा देखकर उसके नेत्रों के आंसुओं को पोछकर कहने लगी कि जो कुछ मैंने तपस्या की है और दान दिया है और होम किया है उसके कारण मेरा पति और मेरी सास और श्वशुर आज की रात्रि सुखपूर्वक रहें, पहिले स्वतन्त्र अवस्था में मैंने कभी झूंठ नहीं बोला है ९६। ९९ मेरे उस सत्य से मेरे सास-श्वशुर जीते रहें। तब सत्यवान् बोला कि हे सावित्रि! मैं माता-पिता के दर्शन चाहता हूँ, इससे अब देर मत करे, जल्दी चल १०० हे वरारोहे! जो मेरा अप्रिय हो जायगा अर्थात् माता-पिता मर जायँगे तो मैं जीता नहीं रहूंगा, मैं अपनी शपथ करके कहता हूँ, तू भी जो मेरा जीवित और प्रिय

चाहती है तो शीघ्र आश्रम को चल १। २ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! यह सुनकर सावित्री ने उठकर अपने शिर के बाल बाँध लिये और सत्यवान् को दोनों हाथों से उठाकर खड़ा किया ३ तब सत्यवान् ने चारों ओर देखकर अपने शरीर की धूल झाड़ी और फल से भरी हुई डलिया की ओर देखने लगा ४ तब सावित्री ने कहा कि फलों को कल ले जायँगे, इस आपके फरसे को मैं लिये चलती हूँ ५ यह कहकर गजगामिनी वामोरू सावित्री ने फल से भरी हुई डलिया को वृक्ष की डाली पर लटका दिया और फरसा लेकर पति के पास चली आई और उसकी बाँह को अपने बाएँ कन्धे पर रखकर और अपने दाहिने हाथ से उसे पकड़ कर वहां से चल दी ६।७ उस समय सत्यवान् बोला कि चलने के अभ्यास से मैं सब मार्गों को जानता हूँ और वृक्षों के बीच में से जो चन्द्रमा का प्रकाश दीखता है, उससे भी मुझे मार्ग जान पड़ता है ८ सो हे सावित्रि! जिस मार्ग से हम दोनों फल तोड़ते हुए आये थे, उसी मार्ग से चली चल, विचार मत करे ९ यह आगे पलाशखण्ड दिखाई देता है, इसमें से दो मार्ग गये हैं, तू उत्तर के मार्ग से जल्दी जल्दी चल १० मैं सावधान बलवान् और माता-पिता के दर्शनों का इच्छावान् हूँ। इस प्रकार से सत्यवान् बातें करता हुआ अपने आश्रम के निकट आन पहुँचा ॥ ११ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९६ ॥

दोसौ सत्तानबेवाँ अध्याय।

सत्यवान् के न आने से व्याकुल हुए द्युमत्सेन को ऋषियों का समझाना फिर सत्यवान् का आ जाना और सावित्री का यमराज से वरदान पाने का हाल कहना।

मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! इसी अवसर में महाबलशाली द्युमत्सेन की आँखें खुल गईं और वह अपनी शुद्ध दृष्टि से सबको देखने लगा और पुत्र के न आने के कारण से महादुःखी होकर अपनी शैब्या रानी सहित आश्रम आश्रम में पुत्र को ढूंढ़ने लगा १। २ और उसी रात्रि में वे दोनों स्त्री-पुरुष नदी, वन, सरोवर और आश्रमों पर पुत्र को पूछते और ढूंढ़ते हुए भ्रमण करने लगे ३ जहां कहीं कोई शब्द उनको सुनाई देता, वहां ही वे दोनों ऊपर को मुख करके कहने लगते कि सत्यवान् ही सावित्री सहित आ रहा है ४ इस प्रकार से उन्मत्त के समान चारों ओर वन में दौड़ते फिरते थे और उनके अङ्ग कुशा और कांटों से लोहूलुहान हो गये ५ उस समय सब आश्रमवासी ब्राह्मण उनके पास गये और

उनको घेरकर और धैर्य देकर उनके आश्रम में लिवा लाये ६ पहिले उन दोनों को तपोधन वृद्ध ऋषियों ने अनेक राजाओं की चित्र विचित्र कथायें सुनाकर धैर्य दिया ७ परंतु पीछे वे दोनों उस पुत्र के बालचरित्रों को स्मरण करके महादुःखी हो गये और शोक से पीड़ित होकर हा पुत्र! कहां है हा पुत्रवधू! कहां है,ऐसा कह कहकर रोने लगे। उस समय सुवर्चा ऋषि ने कहा कि सत्यवान् की स्त्री तपस्विनी, जितेन्द्रिय और आचार से रहनेवाली है इससे सत्यवान् जीता है ८। १० तदनन्तर गौतमनामी ऋषि ने कहा कि मैंने वेदों को अङ्गोंसहित पढ़ा है और तपस्या भी बड़ी की है और ब्रह्मचर्य से रहा हूँ, गुरु और अग्नि को भी मैंने तृप्त किया है। इसके सिवाय मैंने सब व्रत और सब उपवास भी किये हैं, जिनमें केवल वायु ही भक्षण करके रहा हूं, इससे मैं दूसरे मनुष्य की सब चिकीर्षा को जान सकता हूँ। यह कहना सत्य है कि सत्यवान् अभी तक सजीव है ११। १३ तब गौतम के शिष्य ने कहा कि मेरे गुरु का कहना कदापि मिथ्या नहीं हो सकता है, सत्यवान् निश्चय जीता है १४ यह सुनकर सब ऋषियों ने कहा कि सत्यवान् की स्त्री सौभाग्य के लक्षणों से युक्त है, इससे सत्यवान् के जीवित में कुछ संदेह नहीं है १५ फिर भरद्वाज ऋषि ने कहा कि सावित्री तपस्विनी, जितेन्द्रिय और आचारयुक्त है, इससे सत्यवान् के जीवित में सन्देह नहीं है १६ तब दालभ्यऋषि ने कहा कि हे राजन्! तेरे दोनों नेत्र खुल गये हैं और सावित्री व्रत करके विना आहार किये हुए गई, इससे ऐसा जान पड़ता है कि सत्यवान् के जीवित को किसी प्रकार की बाधा नहीं है १७ आपस्तम्बऋषि ने कहा कि मृग और पक्षी सब शान्त दिशाओं में बोल रहे हैं और आपका धर्म राज्य पाने के योग्य है, इससे सत्यवान् के जीने में कुछ संदेह नहीं है १८ तब धौम्यऋषि बोले कि सत्यवान् सबका प्यारा आयुष्मान् और गुणवान् है, इससे वह अवश्य जीता है १९ मार्कण्डेयजी बोले, हे राजा युधिष्ठिर! द्युमत्सेन का चित्त ऋषियों के उक्त वाक्य को सुनकर स्थिर हुआ २० एक मुहूर्त के पीछे सावित्री अपने पति के साथ आश्रम में बड़ी प्रसन्नता से आ पहुँची २१ उस समय ब्राह्मणों ने कहा कि हे द्युमत्सेन! हम लोगों ने जो कहा था, सो हुआ। अब तुमको हम सब नेत्रवान् और पुत्र और पुत्रवधू से मिला हुआ देखकर आशीर्वाद देते हैं, तुम्हारी ईश्वर ने वृद्धि की। अब थोड़े ही दिनों में तुम्हारे ऐश्वर्य की वृद्धि भी हो जायगी २२। २४ इसके पीछे सब ब्राह्मण अग्नि जलाकर द्युमत्सेन के पास

बैठ गये और शैव्या, सावित्री और सत्यवान् एक ओर खड़े हो रहे और फिर उन सब से आज्ञा पाकर शोकरहित होकर बैठ गये २५ । २६ तदनन्तर सब वनवासियों ने जिनको एक आश्चर्य सा हो गया था, सत्यवान् से पूछा २७ कि हे सत्यवान् ! आज तुम वन से सिदौसी क्यों नहीं चले आये, इतनी रात्रि किस कारण से हो गई २८ हे राजपुत्र ! तुम्हारे माता-पिता और हम सबको बड़ा कष्ट हुआ, इसके कारण को यथावत् कहो २९ सत्यवान् बोला कि मैं पिता से आज्ञा पाकर सावित्रीसहित वन को गया था, वहां लकड़ी काटते में मेरे शिर में बड़ी उग्र पीड़ा होने लगी ३० उसके कारण से मैं वहां सो गया और इतना सोया कि पहिले इतना कभी नहीं सोया था, सो इस कारण से वन से रात्रि में आना हुआ । आप लोग किसी प्रकार का संताप न कीजिये, इसके सिवाय और कुछ कारण नहीं है ३१ । ३२ तब गौतम ऋषिने कहा कि तुम्हारे पिता की आँखें अकस्मात् खुल गईं, तुमको इसका कारण विदित नहीं है, सावित्री जानती होगी, वह कहेगी ३३ हे सावित्रि ! तू पर और अपरब्रह्म की जाननेवाली है, मैं तुझको सावित्री देवी के समान जानता हूँ तू अपने श्वशुर के नेत्र पाने के कारण को जानती है जो उसके कहने में कोई बात रहस्य की न हो तो कह, हम सब सुनना चाहते हैं ३४ । ३५ यह सुनकर सावित्री बोली आप सत्य कहते हैं, मुझे कारण विदित है और उसमें कोई छिपाने की बात नहीं है जो कुछ सत्य सत्य वृत्तान्त है, उसको सुनिये ३६ महात्मा नारदजीने मुझसे कहा था कि तेरे पति की मृत्यु फलाने दिन होगी सो वह दिन आज था । इसी कारण से मैंने पति को अकेला नहीं छोड़ा, वन में भी साथ गई, वहां जब शिर में पीड़ा होने से यह सो गया, तब यमराज आप वहां आये और इसको बांधकर दक्षिण दिशा को ले चले ३७ । ३८ तब मैंने उस समर्थ देवता की सत्यवचन से स्तुति की और उसने मुझको पांच वरदान दिये ३९ एक तो मेरे श्वशुर का नेत्रवान् होना, दूसरा राज्य पाना, तीसरा मेरे पिता के सौ पुत्र होना, चौथा मेरे सौ पुत्र होना और पांचवाँ मेरे पति की चारसौ वर्ष की आयु होना । हे ऋषियो ! मैंने व्रत भी अपने पति के जीवित के अर्थ ही किया था यही कारण दुःख सुखरूपी है इसके सिवाय और कोई बात नहीं है ४० । ४२ यह सुनकर सब ऋषि बोले कि हे सुन्दरि ! तू कुलीन, शीलवान् और व्रतों से पवित्र शरीरिणी है तैंने इस राजा के अन्धकाररूपी तालाब में डूबते हुए और

व्यसन से दबे हुए कुल का उद्धार अच्छे प्रकार से किया ४३ मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! इसके पीछे वे सब ऋषि सावित्री की प्रशंसा और पूजा करके राजा से पूछकर आनन्दपूर्वक अपने अपने आश्रमों को चले गये॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९७ ॥

दोसौ अट्ठानबेवाँ अध्याय।

राज्यप्राप्त द्युमत्सेन का वृत्तान्त सुन राजा युधिष्ठिर का शोकरहित होकर काम्यकवन में बसना।

मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! जब वह रात्रि व्यतीत हो गई और सूर्यमण्डल उदय हुआ, तब सब ऋषि संध्यावन्दन से निवृत्त होकर, द्युमत्सेन के पास आये और उससे सावित्री का माहात्म्य बार बार कह कह कर तृप्त नहीं हुए १।२ इसी अवसर में शाल्वदेश के प्रजालोग भी राजा द्युमत्सेन के पास आये और उन्होंने कहा कि महाराज! आपके मन्त्री ने आपके शत्रु को सहायक और भाई बान्धवोंसहित मार डाला है और उसकी सब सेना भी भाग गई है ३। ४ अब सब लोगों की यह सलाह है कि जो राजा पहिले हमारे देश में था, वही राज्य करे, चाहे वह अन्धा हो या नहीं ५ सो हे नरपाल! हम सबको उन लोगों ने आपके लेने के लिये भेजा है। आपकी सब चतुरङ्गिणी सेना और सवारियाँ यहां आई हैं ६ सो हे राजन्! आप शीघ्र चलिये और बाप दादों के स्थानों को बहुत दिनों पीछे देखिये, नगर में आपकी जय घोषित करा दी गई है ७ इसके पीछे वे सब लोग राजा को नेत्रवान् देखकर अचम्भे में आ गये और फूले हुए लोचनोंवाले होकर माथे से दण्डवत् करने लगे ८ तदनन्तर द्युमत्सेन उन आश्रमवासी वृद्ध ब्राह्मणों को दण्डवत् करके और उनसे पूजित होकर अपने नगर को चल दिया ९ और शैब्या, सावित्री और सत्यवान्सहित पालकी में सवार होकर सेना से आवृत अपने नगर में पहुँचा। पुरोहितों ने प्रीति से द्युमत्सेन का राज्याभिषेक और सत्यवान् का यौवराज्याभिषेक कराया १०।११ बहुत दिनों के पीछे सावित्री के बड़े शूरवीर और युद्ध में विमुख न होनेवाले सौ पुत्र उत्पन्नहुए १२ और उसके पिता अश्वपति के भी मद्रदेश में मालवी रानी से सौ पुत्र उत्पन्न हुए १३ इस प्रकार से सावित्री ने माता, पिता, सास, श्वशुर और अपना और अपने पति का कुल कष्ट से उद्धार किया १४ इसी प्रकार से हे युधिष्ठिर! यह कल्याणी द्रौपदी भी तुम सबको तारेगी १५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसप्रकार से समझाने पर राजा युधिष्ठिर

भाइयोंसहित शोक छोड़कर काम्यकवन में रहने लगा १६ जो कोई मनुष्य भक्तिपूर्वक सावित्री के इस उत्तम आख्यान को सुनेगा वह सुख पावेगा और उसकी सब मनोकामनाएँ पूरी होंगी और दुःख उसके निकट न जायगा॥ १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥

दोसौ निन्नानबेवाँ अध्याय।

इन्द्र का कर्ण के कुण्डल और कवच भिक्षा में मांगने का विचार करना, सूर्य का उसको जानकर कर्ण को समझाना और कर्ण का कुण्डल देने का आग्रह करना।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि हे ब्रह्मन्, महाराज! लोमशऋषि ने इन्द्र के पास से आकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर से जो यह कहा था कि इन्द्र ने कहला भेजा है कि तुझको जो बड़ा भारी भय है और जिसको तू किसी से नहीं कहता है उस भय को भी मैं अर्जुन के यहां से चले जाने पर दूर करूंगा। सो हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ! कर्ण की ओर से वह क्या भय था, जिसको धर्मात्मा युधिष्ठिर ने किसी से नहीं कहा था १।३ वैशंपायनजी बोले कि हे राजाधिराज! उस कथा को सुनिये मैं वर्णन करता हूं। जब पाण्डवों को वन में बसते हुए, बारह वर्ष बीत गये और तेरहवाँ वर्ष लगा, तब इन्द्र ने पाण्डवों का हित करने के लिये कर्ण से भिक्षा मांगने का विचार किया ४।५ हे महाराज! सूर्य देवता महेन्द्र के इस अभिप्राय को जान गये कि इन्द्र कर्ण के कवच और कुण्डल हरने को जाना चाहता है और उन्होंने पुत्रस्नेह से कर्ण के पास जाकर जो सत्यवादी और बड़ा ब्रह्मण्य था और रात्रि को बड़े मोल के बिछौनों पर सो रहा था, वेदपाठी ब्राह्मण के रूप से स्वप्न में प्रीतिपूर्वक कहा ६।९ कि हे पुत्र! हे सत्यधारियों में श्रेष्ठ! हे महाबाहो, कर्ण! मैं प्रीति से तेरे हित के लिये कुछ कहना चाहता हूं, उसको तू सुन १० इन्द्र पाण्डवों के हित के लिये ब्राह्मण का रूप धरकर, तेरे पास कवच और कुण्डल हरने के लिये आवेगा ११ उसको तथा सब जगत् को तेरा यह नियम विदित है कि कोई ब्राह्मण अथवा सत्पुरुष तुझसे आकर जो कुछ धन आदि पदार्थ मांगता है, उसको तुम तत्काल वही दे देते हो, किसी को नाहीं नहीं करते हो, इससे इन्द्र भी ब्राह्मणरूप से आकर तुमसे कवच और कुण्डल मांगेगा १२।१४ सो तुम उसको अनेक बातों से समझा देना; परंतु दोनों कुण्डल मत देना, तुम्हारा कल्याण होगा १५ उससे हे तात! तुम अनेक कारण कहकर यह कहना कि स्त्री, रत्न, गौ और अन्य जो जो धन

हमारे पास है, सब ले लीजिये, परंतु कुण्डल न लीजिये । कुण्डलों के लिये जैसे बने उससे नाहीं ही कर देना, नहीं तो तेरी आयुक्षय हो जायगी और तू मृत्यु के वश में हो जायगा । ये कुण्डल कवच तेरी देह के साथ उत्पन्न हुए हैं और दोनों अमृत से उत्पन्न हैं। जब तक ये तेरे पास रहेंगे, तब तक तुझको कोई शत्रु युद्ध में मार नहीं सकता है, इससे जो तुझको अपना जीवन प्यारा है, तो हे कर्ण ! इन कवच और कुण्डलों की रक्षा अच्छी तरह से करियो और किसी को न दीजियो १९ । २० यह सुनकर कर्ण बोला कि हे भगवन् ! आप ब्राह्मण का वेष बनाये हुए कौन हैं जो मुझको ऐसा हितोपदेश करते हैं २१ सूर्य बोले कि हे तात ! मैं सहस्र किरणों का स्वामी सूर्य हूं, तुझको अपना दर्शन देता हूँ, तू मेरे उपदेश के अनुसार करियो । इसमें तेरा परम कल्याण होगा २२ कर्ण बोला कि जिसके उपदेशकर्त्ता और हित चाहनेवाले आप हैं, उसका कल्याण होने में क्या संदेह है; परंतु मेरी यह प्रार्थना है २३ कि जो आप मुझ पर स्नेह करते हैं, तो हे विभावसो ! मुझको इस व्रत के करने से निषेध न कीजिये २४ संसार में मेरी यह कीर्ति हो रही है कि मैं ब्राह्मणों के लिये प्राण भी दे सकता हूँ २५ इससे हे सुरोत्तम ! जो स्वर्ग का राजा इन्द्र ब्राह्मणरूप से आकर मुझसे भिक्षा मांगेगा, तो मैं दोनों कुण्डल और कवच उसको दे दूंगा । ऐसा करने से संसार में मेरी कीर्ति सदैव बनी रहेगी २६ । २७ मुझसे मनुष्य का अपयश के साथ जीना अच्छा नहीं है इससे यश पाकर मरना ही उत्तम है २८ इस कारण हे देव ! जो इन्द्र मुझसे पाण्डवों के हित के लिये कवच और कुण्डल मांगने आवेगा, तो मैं उससे नाहीं नहीं करूंगा, क्योंकि ऐसा कर्म करने से मेरी कीर्ति और इन्द्र की अकीर्ति होगी २९ । ३० हे भानुमन् ! मैं कीर्ति को जीवन से भी अधिक समझता हूं, क्योंकि कीर्तिमान् पुरुष स्वर्गवासी होता है और नष्ट कीर्ति मनुष्य का नाश हो जाता है ३१ संसार में कीर्ति माता के समान मनुष्य को जीता रखती है और अकीर्तिमान् मनुष्य जीता हुआ भी मरे हुए के तुल्य है ३२ देखिये, ब्रह्माजी ने स्वयं यह श्लोक कहा है जिससे यह प्रतीत होता है कि कीर्ति ही मनुष्य की आयु है ॥ ३३ ॥

दो० शुद्ध सुयश यहि लोक में, करत आयु अवदात ।
होत परायण पुरुष को, परलोकहु में तात ॥ ३४ ॥

इससे मैं इस शरीर के साथ उत्पन्न होनेवाले कुण्डलों को देकर सनातन

रहनेवाली कीर्ति पाऊंगा और इस प्रकार से ब्राह्मणों को दान देकर संग्राम में अपना कठिन कर्म दिखलाकर, शरीर होमकर और शत्रुओं को मारकर बड़ा सुयश प्राप्त करूंगा ३५। ३६ और रण के समय जीवित रखने की इच्छा रखनेवाले भयभीत बालक, वृद्ध और ब्राह्मणों को निर्भय करके इस लोक में यश और परलोक में स्वर्गवास पाऊंगा। मेरा यही व्रत है, मुझको अपने जीवन से कीर्ति का होना अधिक प्रिय है ३७। ३८ मैं कपटरूपी इन्द्र को यह उत्तम भिक्षा देकर लोक में परम गति पाऊंगा॥ ३९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनशताधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९९॥

तीनसौवाँ अध्याय।

सूर्य का कर्ण से अनेक बातें कहकर यह उपदेश करना कि तू इन्द्र को कवच-कुण्डल मत दीजियो।

कर्ण के उत्तर को सुनकर सूर्य देवता ने कहा कि तू अपना और अपने सुहृद्, माता, पिता और पुत्रों का अहित मत करे १ हे प्राणधारियों में श्रेष्ठ! यशकी प्राप्ति और स्वर्ग की अचल कीर्त्ति प्राणियों को देह को रक्षित रखने पर चाहना उचित है २ परंतु तू प्राणों से विरोध मानकर अपनी सनातनी कीर्ति चाहता है तो वह कीर्त्ति निस्संदेह तेरे प्राणों को लेकर जावेगी ३ हे पुरुषसत्तम! पिता, माता, पुत्र और भाई बान्धवों को जीते हुए पुत्रसे सुख मिलता है ४ हे महातेजस्विन्! राजा लोग भी पौरुष ही से अपना यश बढ़ाते हैं परंतु जीते हुए मनुष्य की ही कीर्त्ति होना उत्तम है ५ मरने पर भस्मीभूत प्राणी का कीर्त्ति से क्या प्रयोजन रहता है। मृतक मनुष्य कीर्त्ति को नहीं जानता है और जीता हुआ कीर्त्ति को भले प्रकार से भोगता है ६ मरे हुए का यश ऐसा है जैसे आयु हीन पुरुष की माला। तू मेरा भक्त है इससे मैंने तुझको यह हितोपदेश किया है ७ क्योंकि भक्तों का हित करना इस कारण से मुझे उचित है कि मेरा भक्त मुझको बड़ी प्रीतिसे ध्यान करता है और उससे मुझेभी प्रीति हो जाती है। इस कारण को जानकर हे महाभुज! तू मेरा कहना मान और उसको शङ्का छोड़ करके कर क्योंकि दैव का रचा हुआ कुछ और ही है तू उस देवगुह्य बात को जान नहीं सकता है। हां, समय के आने पर अपने आप जान जायगा ८।१० अब मैं तुझसे दुबारा कहता हूं कि हे राधेय! तू इन्द्र को कुण्डल मत दीजियो इन कुण्डलों से तेरी शोभा ऐसी हो रही है मानो विशाखा नक्षत्र में चन्द्रमा उदय हुआ है ११।१२ जीते हुए पुरुष ही की कीर्त्ति होना उत्तम है। इससे हे तात! तू इन्द्र

को कुण्डल मांगने पर उत्तर ही दे दीजो १३ और हे निष्पाप! अनेक प्रकार के हेतु दिखाकर ऐसी बातें कहियो जिनसे देवराज कुण्डल न ले सके १४ हे कर्ण! मधुरवाणी से ऐसे ऐसे बनावट के वचन कहियो जिससे वह तुझसे कुण्डल न मांगे १५ क्योंकि हे नरोत्तम! तू अर्जुन से ईर्ष्या रखता है और उस शूरवीर से तेरा युद्ध अवश्य होगा १६ इसलिये जो तू कुण्डलोंसमेत बना रहेगा तो तुझे अर्जुन इन्द्र को भी अपना सहायक बनाकर लावे तो भी जीत नहीं सकता है १७ इससे जो तेरी इच्छा अर्जुन को जीतने की है तो तू इन्द्र को कुण्डल मत दीजियो ॥ १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥

तीनसौ एकवाँ अध्याय।

कर्ण का सूर्य से कहना कि मैं इन्द्र को भिक्षा मांगनेपर अपने प्राण भी दे सकता हूं, तब सूर्य का कहना कि इन्द्र को कवच-कुण्डल दो, तो उससे शक्ति ले लेना।

सूर्य के उक्त वचनों को सुनकर कर्ण ने कहा कि हे भगवन्! निःसंदेह मैं आपका भक्त हूं, हे गोपते! जैसा आप जानते हैं और मैं किसी पदार्थ को अदेय नहीं जानता हूं, हे भास्कर! आप मेरे इष्टदेव हैं आपके समान मुझको स्त्री, पुत्र, आत्मा और सुहृद् प्यारे नहीं हैं और आपने भी कृपा करके मेरे हित की बात यही समझकर कही है कि कर्ण के समान मेरा दूसरा भक्त नहीं है परंतु आप यह समझिये कि महात्मा लोग अपने इष्ट भक्तों की इष्ट प्रीति करते हैं। इससे मैं आपको शिर से बारम्बार नमस्कार करके याचना करता हूं और कहता हूं कि आप मेरे ऊपर क्षमा कीजिये १। ५ मुझको जितना डर झूठ का है उतना मृत्यु का भी नहीं है और सत्पुरुष ब्राह्मणों के निमित्त दान करने में मुझको अपने जीवित का भी विचार नहीं है और जो आपने अर्जुन के विषय में कहा सो आप अपने मानसी दुःख को दूर कीजिये मैं युद्ध में अर्जुन को जीतूंगा ६। ८ क्योंकि हे देव! आप मेरे अस्त्रविद्या के बल को भी जानते हैं जो अस्त्रविद्या मैंने महात्मा द्रोणाचार्य और जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी से पाई है ६ हे सुरोत्तम! मेरा यह व्रत है कि जो इन्द्र आकर मुझसे भिक्षा मांगेगा तो मैं उसको अपने प्राण भी देने में निषेध न करूंगा १० यह सुनकर सूर्य बोले कि हे कर्ण! इन कुण्डलों से तुझे कोई जीव मार नहीं सकता है इससे इन्द्र तुझे अर्जुन के हाथ से रण में मरवाने के लिये तेरे दोनों कुण्डल हरना चाहता है सो

यदि तुम उसको कुण्डल दो भी तो इस नियम से देना कि आप मुझको अमोघ शक्ति दीजिये और मैं आपको कुण्डल और कवच दे दूंगा। इस अमोघ शक्ति को प्रार्थना करके अवश्य ले लेना ऐसा करने से तुम उस इन्द्र की दी हुई शक्ति से शत्रुओं का मारोगे ११। १६ वह शक्ति ऐसी है कि सहस्रों शत्रुओं को मारकर फिर हाथ में आ जाती है १७ वैशम्पायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! यह कहकर सूर्य देवता अकस्मात् अन्तर्द्धान होगये। दूसरे दिन कर्ण ने जप करने के पीछे स्वप्न का सब वृत्तान्त सूर्य देवता से कहा १८। १६ सूर्य उसको सुनकर मुसकराकर बोले कि हां यह बात ऐसी ही है २० इसके पीछे कर्ण शक्ति लेने की इच्छा से इन्द्र की बाट देखने लगा॥ २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०१॥

तीनसौ दोवाँ अध्याय।

राजा कुन्तिभोज के पास एक ब्राह्मण का आना, राजा का पृथा को उसकी सेवा में नियुक्त करना।

उक्त कथा को सुनकर जनमेजय ने वैशम्पायनजी से पूछा कि महाराज! वह कौन सी गुप्त बात थी जो सूर्य ने कर्ण से नहीं कही और कर्ण के पास जो कुण्डल और कवच थे वे कैसे थे और कहां से आये थे कृपा करके इस सब वृत्तान्त को विस्तारसहित कहिये १। २ वैशम्पायनजी बोले बहुत अच्छा, मैं कहता हूं सुनिये ३ अगले समय में एक समय राजा कुन्तिभोज के पास एक महातेजस्वी ब्राह्मण जो दाढ़ी, मूछ और जटा रखाये व दण्ड धारण किये हुए निर्दोष, अंग दर्शनीय, पिङ्गलवर्ण, मधुरभाषी, वेदपाठी और तपस्वी था आया और उस महातपस्वी ब्राह्मण ने राजा कुन्तिभोज से कहा कि हे परसन्तापरहित! मैं तेरे घर में कुछ काल भिक्षा भोजन पाकर इस नियम से रहना चाहता हूं कि तू या तेरे अनुगामी मेरा अप्रिय न करें ४। ७ मैं जहां मेरी इच्छा होगी तहां जाऊंगा और जब चाहे तब आऊंगा, हे राजन्! शय्या पर अथवा आसन पर बैठते उठते मेरा कोई मनुष्य अपराध न करने पावे ८ यह सुनकर राजा कुन्तिभोजने कहा कि ऐसा ही किया जायगा, हे महाप्राज्ञ! मेरी पृथानाम कन्या जो बड़ी शीलव्रता, सावधान और साध्वी है वह विना अपमान किए हुए आपके पास रहेगी और आपकी सेवा करेगी। आप उसके शील और व्रत से प्रसन्न होंगे ९। ११ यह कहकर राजा ने उस वेदपाठी ब्राह्मण की विधिवत् पूजा की

और अपनी कमललोचनी पृथा नाम कन्या से कहा १२ कि हे पृथे ! यह महाभाग ब्राह्मण मेरे घर में वास करना चाहता है, मैंने तेरे ऊपर विश्वास करके इससे वास करने की प्रतिज्ञा कर दी है। इससे तू इसको जो जो पदार्थ यह मांगे विना विचार किए दे दीजो और मेरी प्रतिज्ञा को सत्य कीजियो। ब्राह्मण परम तेज-रूप है और ब्राह्मण ही की सेवा परम तप है। सूर्य देवता भी आकाश में ब्राह्मणों के नमस्कारों से विराजमान हैं १३। १६ देख, मान-योग्य ब्राह्मणों का अपमान करने से वातापी और तालजंघ नामी असुर ब्रह्मदण्ड से मारे गये १७ इससे हे पुत्रि ! तू इस परम तेजस्वी ऋषि के पास रहकर इसका आराधन कर १८ मैं तेरे चित्त की एकाग्रता को तेरे बालापन से जानता हूं। तू माता, पिता, ब्राह्मण, गुरु और नौकर, चाकर सब का यथायोग्य आदर सत्कार करती है। तेरे आचरण से तेरा कोई सेवक अथवा महल के भीतर और बाहर के मनुष्य अप्रसन्न नहीं हैं १६। २१ मैंने तुझको बाला और अपनी पुत्री समझकर क्रोधी ब्राह्मण की सेवा करने के योग्य समझा है २२ तू वृष्णिकुल में उत्पन्न शूर की प्यारी पुत्री है। जब तू बालक थी तब तेरे पिता ने तुझे मुझको प्रीतिपूर्वक दिया था २३ वसुदेव की तू बहिन है, मैं तुझको अपनी सब पुत्रियों से अधिक प्रिय जानता हूं। तेरे पिता शूर ने मुझ से यह प्रतिज्ञा की थी कि मेरे जो सन्तान पहिले पहिल होगी वह मैं तुमको दूंगा। इस कारण तू मेरी पुत्री है २४ तू ह्रद से ह्रद में आई है अर्थात् जैसे कुल में तू उत्पन्न हुई थी, वैसे ही कुल में बड़ी हुई है। खोटे कुल में उत्पन्न होनेवाली स्त्रियां हठ से बालकपन से ही दुष्टता करती हैं, परंतु तू राजा के कुल में उत्पन्न हुई है। रूप भी तेरा अद्भुत है और सब गुण भी तुझमें हैं २५। २७ सो जो तू इस वर दाता ब्राह्मण का आराधन दर्प, दम्भ और मान छोड़कर करेगी, तो तेरा कल्याण होगा नहीं, तो अपमान से कुपित होकर यह ब्राह्मण मेरे कुल को भस्म कर डालेगा ॥ २८ । २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥

तीनसौ तीन का अध्याय ।

पृथा का ब्राह्मण की सेवा अङ्गीकार कर, अपनी सेवा से ब्राह्मण को प्रसन्न करना ।

उक्त वचनों को सुनकर पृथा बोली कि हे राजेन्द्र ! मैं आपकी प्रतिज्ञा के अनुसार नियमपूर्वक इस ब्राह्मण के पास रहकर इसकी सेवा करूंगी, यह मैं मिथ्या नहीं कहती हूं १ मेरा तो स्वभाव ही ब्राह्मणों की पूजा करने का

है, इस पर भी आपका प्रिय करना मेरा धर्म है। इससे मैं अपने परम कल्याण के लिए इसकी सेवा बड़ी सावधानी से करूंगी। सायंकाल, प्रातःकाल, रात्रि अथवा अर्द्धरात्रि जब यह आवेगा, तभी मैं इसकी सेवा में स्थित रहूंगी और इसे क्रोधित न होने दूंगी। हे राजेन्द्र! आपके उपदेश के अनुसार आपका हित करूंगी २। ४ आप मेरे ऊपर विश्वास कीजिये, मैं सत्य कहती हूं कि जबतक यह आपके यहां रहेगा तबतक मैं इसका अप्रिय न होने दूंगी ५ हे निष्पाप! आप अपने मन के संदेह को दूर कीजिये, मैं वही काम करूंगी जिसमें आपका हित और इस ब्राह्मण का प्रिय होगा ६ हे महीपते! ब्राह्मण पूजा पाने से तार सकता और अपमान से मार सकता है ७ मैं इस बात को अच्छी तरह जानती हूं। इससे मैं इसे अपनी सेवा से तृप्त करूंगी, मेरे कारण से आपको इस ब्राह्मण की ओर से कोई व्यथा न होने पावेगी ८ ब्राह्मणों का अपराध करने से ब्राह्मण राजाओं का अकल्याण करने में प्रवृत्त हो जाते हैं, जैसे पहिले सुकन्या के कारण से च्यवनऋषि राजा का अपकार करने लगे थे ९ सो मैं आपके उपदेश के अनुसार बड़े यत्न से रहकर इस ब्राह्मण की सेवा करूंगी १० यह सुनकर राजा ने पृथा का बहुत प्यार करके फिर उपदेश किया ११ कि हे कल्याणि! तुझे शंकारहित होकर अपने, मेरे और कुल के हित के लिये ये ये बातें करना उचित हैं १२ यह कहकर महायशस्वी राजा कुन्तिभोज पृथा को उस ब्राह्मण के पास ले गया और उससे कहा कि महाराज! मेरी यह पुत्री आपकी सेवा करेगी, यह अभी बालक है इससे यदि कोई अपराध बन पड़े, तो आप उसको हृदय में न राखियेगा १३। १४ महाभाग ब्राह्मण लोग वृद्ध, बालक और तपस्वियों पर हमेशा अपराध करने पर भी क्रोध नहीं करते हैं १५ हे द्विजोत्तम! ब्राह्मणों को तो बड़ा अपराध भी क्षमा करके यथाशक्ति और उत्साह में दी हुई पूजा को ग्रहण करना उचित है १६ यह सुनकर उस ब्राह्मण ने कहा ऐसा ही होगा। तब राजा ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण को चन्द्रमा की किरणों के समान दीप्त स्थान में ठहरा दिया १७ और वहीं अग्निहोत्रशाला बनवा कर उसमें बहुत सुन्दर आसन बिछवा दिया और आहार आदि के लिये सब सामग्री वहीं रखवा दीं १८ इसके पीछे वह राजपुत्री पृथा बड़े यत्नसे आलस्य और मान को छोड़कर उस ब्राह्मण की सेवा करने लगी १९ और उसने उस पूजने-योग्य ब्राह्मण को देवता के समान पूजकर तृप्त किया॥ २०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०३॥

तीनसौ चार का अध्याय ।

दुर्वासा का पृथा की सेवा से प्रसन्न होकर उसे देवताओं को बुलाने का मन्त्र देना ।

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पृथा कठिन व्रत रखकर शुद्ध मन से उस संशितव्रत ब्राह्मण की सेवा करने लगी। हे राजेन्द्र! कभी वह ब्राह्मण प्रातःकाल आने का नियम करके चला जाता और फिर कभी रात्रि को और कभी सायंकाल को आता था, परंतु पृथा जिस समय वह आता था उसी समय सुन्दर भोजन और आसन और शय्या आदि देकर उसकी सदैव सेवा करती थी १ । ३ इस प्रकार से वह सेवा में अपनी भक्ति दिन दिन बढ़ाती गई और यहांतक अपना शील स्वभाव कर लिया कि उस ब्राह्मण के धिक्कार देने अथवा अप्रिय बोलने या अपवाद करने पर भी कभी उसके मन के विपरीत काम नहीं करती थी ४ । ५ कभी वह ब्राह्मण जिस समय पर आने को कह जाता उसी समय आ जाता था, कभी आता ही न था और कभी आकर यह कहता था कि मुझको ऐसा अन्न बनाकर भोजन करा जो दुर्लभ हो ६ परंतु पृथा बड़ी सावधानी से उसी समय पर वैसा ही पदार्थ बनाकर उसके सामने शिष्य, बहिन और पुत्र की भांति परोस देती थी ७ हे राजेन्द्र! इस प्रकार से उस अनिन्दिता कन्या ने उस दुर्वासा ब्राह्मण को तृप्त किया और वह भी उसके शील, स्वभाव, व्रत और चित्त की एकाग्रता से प्रसन्न हुआ और उसने अपनी समाधि के बीतने पर पृथा का कल्याणकारी यत्न किया ८ । ९ हे भरतसत्तम! कभी कभी राजा कुन्तिभोज प्रातःकाल अथवा सायंकाल को पृथा से पूछता कि हे पुत्रि! यह ब्राह्मण तेरी सेवा से प्रसन्न है या नहीं और जब वह यशस्विनी यह उत्तर देती कि हां बहुत प्रसन्न है, तब वह महामनस्वी बड़ा हर्षित होता था १० । ११ इसके पीछे जब इसी प्रकार से सेवा करते हुए एक वर्ष होगया और उसने कोई अपराध नहीं किया, तब उस जप करनेवालों में श्रेष्ठ ब्राह्मण ने पृथा से प्रसन्न होकर कहा कि हे भद्रे! मैं तेरी सेवा से बड़ा प्रसन्न हुआ। अब तू जो इच्छा हो, सो वरदान मुझसे मांग, मैं तुझको वह वरदान भी दूंगा जो इस लोक में मनुष्यों को मिलना कठिन है और जिस वरदान के कारण से तू सब सीमन्तिनी स्त्रियों में श्रेष्ठ गिनी जाय १२ । १४ तब कुन्ती बोली कि आपका और मेरे पिता का मुझ पर प्रसन्न होना ही मेरे लिये सब कुछ है, सब वरदान इसी में मुझको मिल गये १५ यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि जो तू मुझसे कोई वरदान नहीं

चाहती है, तो मैं तुझको देवताओं को बुलाने का एक मन्त्र देता हूं उसको तू लेले १६ इस मन्त्रसे तू जिस देवता को बुलावेगी वही तेरे पास चला आवेगा और जो तू कहेगी सोई करेगा १७ और चाहे तू निष्काम होकर बुलाइयो, चाहे सकाम होकर। जिसको तू बुलावेगी वह नौकर की भांति नम्रीभूत होकर तेरे वश में रहेगा १८ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! यह सुनकर पृथा उसको शाप के भय से दूसरी बार कुछ उत्तर न दे सकी, तब उस ब्राह्मण ने उसको मन्त्र दिया और मन्त्र देकर राजा कुन्तिभोज से कहा कि मैं तेरे घर में तेरी कन्या से तृप्त होकर बड़े सुख से रहा; यह कहकर दुर्वासा वहीं अन्तर्धान होगये। उनको अन्तर्धान हुआ देखकर राजा कुन्तिभोज ने बड़ा आश्चर्य किया और पृथा की पूजा की॥ १९। २३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०४॥

तीनसौ पांचवाँ अध्याय।

कुन्ती का सूर्य को मन्त्र से बुलाना, सूर्य की संगम करने की इच्छा देख, कुन्ती का निषेध करना।

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! दुर्वासा ऋषि के चले जाने पर किसी कारणान्तर में वह पृथा विचार करने लगी कि ऋषि ने मुझको यह कैसा मन्त्रों का समूह बतलाया है, इसमें क्या बल होगा परंतु थोड़े ही दिनों में मैं इस मन्त्रसमूह के बल को देखूंगी २ इसके पीछे पृथा रजोवती होगई और अपनेको कन्याभाव में रजस्वला देखकर बहुत लज्जित हुई १। ३ इसके पीछे वह स्नान करके महलके ऊपर परम शय्यापर बैठ गई। उस समय उसने सूर्यमण्डल को उदय होते हुए देखा ४ और उसको देखते देखते उसकी तृप्ति न हुई, तब उसकी दिव्यदृष्टि होगई और उसने सूर्य के परम मनोहर स्वरूप को कवच और कुण्डल धारण किये हुए देखा ५। ६ हे नराधिप! जब मन्त्रों के विषय में उसका कौतूहल हुआ, उस समय उस भामिनी पृथा ने मन्त्र की परीक्षा करने के लिये उस सूर्यदेव का आवाहन किया ७ और आचमन करके मन्त्र पढ़ा। मन्त्र पढ़ते ही सूर्य देवता योग से अपने दो स्वरूप करके एक से आकाश में प्रकाश करते रहे और दूसरे से वहां तुरन्त आगये। उस समय सूर्य का वर्ण लाल था, भुजाएँ विशाल थीं, ग्रीवा शङ्ख के समान थी तथा दिशाएँ उनके तेज से प्रज्वलित दीखती थीं और मन्दमन्द मुसकराते हुए मुकुट आदि भूषण धारण किये हुए थे। उन्होंने मधुर वाणी में कुन्ती से कहा ८। १० कि हे रानी! मैं मन्त्रके बल से तेरे आधीन हूं जो तू

कहे वही करूं ११ कुन्ती बोली कि महाराज! मैंने आपको केवल कौतूहल से मन्त्र का पराक्रम देखने के लिये बुलाया था, मुझपर प्रसन्न हूजिये और जहां से आप आये हैं, वहीं चले जाइये १२ सूर्य बोले कि हे सुमध्यमे! मैं चला तो जाऊंगा परंतु देवता को बुलाकर विना वरदान लिये विसर्जन करना न्यायविपरीत है १३ इससे हे सुभगे! जो तेरे मन में यह अभिलाषा है कि सूर्य से मेरे एक पुत्र कवच-कुण्डल धारण किये हुए अप्रतिम महापराक्रमी होय, उसको पूरा करने के लिये तू मुझको अपने शरीर का दानकर। तेरे एक पुत्र तेरी इच्छा के अनुसार उत्पन्न होगा १४। १५ हे भद्रे! मैं भी तेरे साथ संगम करके चला जाऊँगा और जो तू ऐसा नहीं करेगी, तो मैं क्रोधित होकर तुझको और तेरे पिता को और दुर्वासाऋषि को शाप दूंगा जिससे वे निःसंदेह भस्म हो जायँगे १६। १७ क्योंकि तेरा अज्ञानी पिता तेरी अनीति को नहीं जानता है और उस दुर्वासा ने तेरे शील को विना जाने तुझे मन्त्र दे दिया, वे दोनों बड़े दण्ड पाने के योग्य हैं देख, इन्द्रादिक देवता स्वर्ग में मुझे तेरे वशीभूत देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं, मैं तुझे दिव्यदृष्टि देता हूँ उससे तू इन देवगणों को देख १८। २० वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! इसके पीछे राजपुत्री कुन्ती ने सब देवताओं को विमानों में बैठे हुए, जो सूर्य के समान प्रभावान्, महान् और स्वरूपवान् थे २१ उनको देखकर कुन्ती ने भयभीत और लज्जित होकर कहा कि महाराज! आप भी अपने विमान में जा बैठिये। मैंने कन्याभाव से यह दुःखदायी अपराध किया है २२ माता, पिता और और जो बड़े बूढ़े हैं, वे ही कन्या के शरीर का दान कर सकते हैं मैं कदापि धर्म का लोप न करूँगी। हे विभो! मैंने आपका आवाहन केवल मन्त्र के बल को जानने के लिये अज्ञानता से किया था। आप मुझे बाला जानकर मेरा अपराध क्षमा कीजिये २३। २४ सूर्य बोले कि हे वराङ्गने! मैं तुझे बाला जानकर तुझको उपदेश करता हूँ, तू मेरी शिक्षा को मान और मेरे साथ संगम कर, तेरे एक पुत्र मेरे समान होगा और तू संसार में श्रेष्ठ गिनी जायगी। मुझे विना संगम किये चला जाना उचित नहीं है। क्योंकि लोक में मेरी हँसी होगी और देवता मेरी निन्दा करेंगे ॥ २५। २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥

तीनसौ छठवाँ अध्याय।

सूर्य का कुन्ती को कुण्डल या कवच सहित बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होने
और पुत्र के होने के पीछे फिर कन्या हो जाने का वरदान
देकर कुन्ती के साथ संगम करना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! इसके पीछे उस मनस्विनी कुन्ती ने बहुत से मधुर वचन कहे, परन्तु वह सूर्य को समझा न सकी। हे राजन्! जब बाला कुन्ती सूर्यजी को निरादर करने के लिये न समर्थ हुई, तब शाप के भय से बहुत देर तक कुछ उत्तर न देकर ध्यान-सा करती रही और विचारने लगी कि अब क्या ऐसा उपाय किया जाय जिससे सूर्य मेरे कारण से अनपराधी मेरे पिता और ब्राह्मण को शाप न दें, जिन्होंने पाप को विनष्ट कर दिया है। उन सूर्यादि और दुर्वासा आदिकों को बड़े मोह से बाल्यावस्थावाले साधु को विनाश नहीं कराना चाहिये। सो मैं आज बहुत डरी हुई हाथ में दृढ़ता से पकड़कर अपना प्रदानरूपी अशुभ कार्य अपने आप कैसे कर लूं १। ५ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! इसके पीछे कुन्ती सूर्य और बान्धवों के शाप से भयभीत, मोहित और चिंतायुक्त होकर लज्जा से विह्वल हो गई और मन्द मन्द मुसकराती हुई सूर्य से बोली ६। ७ कि हे देव, महाराज! मेरे माता और पिता तथा भाई बन्धु सब सजीव हैं, उनके जीते हुए होने से मैं विधि का लोप कैसे करूं ८ ऐसा करने में मेरे कारण से इस कुल की कीर्ति संसार में नष्ट हो जायगी ९ इससे मैं बान्धवों की ओर से विवाह किये हुए विना दूसरे प्रकार से आपके साथ संगम क्योंकर करूं और जो आप इसको धर्म समझते हैं, तो मुझको ऐसा वरदान दीजिये कि मैं आपको अपना प्रदान करने के पीछे फिर ज्यों की त्यों सती हो जाऊं, आप सब देहधारियों के आयु, कीर्ति, यश और धर्म के देनेवाले और साक्षी हैं १०। ११ सूर्य बोले हे सुन्दरि! तेरे पिता, माता और गुरु तेरे स्वामी नहीं हो सकते हैं। किन्तु तू स्वतन्त्र है, क्योंकि कन्या अपनी सब कामनाओं को, कमधातु से सम्बन्ध रखने के कारण करती है १२। १३ इससे हे भाविनि! मेरे साथ संगम करने में कोई अधर्म नहीं है और मैं भी लोक का भला करनेवाला होकर काम के वश से अधर्म क्योंकर कर सकता हूँ १४ हे सुन्दरि! ऐसा कहा है कि संसार में सब स्त्रियां और पुरुष अनावृत हैं अर्थात् किसी की रोक किसी के साथ नहीं है, क्योंकि

यह संसार का स्वभाव है और विवाह व नियम आदि दूसरी बातें करना सब विकाररूप हैं १५ तू मेरे साथ संगम करने के पीछे फिर कन्या की कन्या ही हो जायगी और तेरे महाबाहु और बड़ा यशस्वी पुत्र होगा १६ तब कुन्ती ने कहा कि हे अन्धकारविनाशिन् ! बहुत अच्छा, परंतु आपसे जो पुत्र मेरे उत्पन्न हो, वह महाबाहु, शूरवीर और कुण्डल तथा कवचधारी हो १७ सूर्य बोले, हे भद्रे ! तेरा पुत्र महाभुजशाली, कुण्डली तथा दिव्य वर्मधारी ऐसा ही होगा और उसके कुण्डल तथा कवच ये दोनों अभेद्य और अमृतमय अर्थात् शरीर के साथ उत्पन्न होंगे १८ कुन्ती बोली कि जो आपसे उत्पन्न मेरे पुत्र के कवच और कुण्डल अमृतमय होयँ, तो आप मेरे साथ संगम कीजिये, परंतु वह पुत्र आपके तुल्य पराक्रमी, रूपवान्, बुद्धिमान्, बलवान्, तेजस्वी और धर्मात्मा होवे १९।२० सूर्य बोले कि हे वरारोहे ! मेरी अदिति माता ने मुझे दो कुण्डल दिये थे, मैं उन दोनों कुण्डलों को और इस कवच को तेरे पुत्र को दूँगा २१ कुन्ती बोली कि हे गोपते ! यह बात बहुत श्रेष्ठ है, मैं आपके साथ संगम, ऐसा ही पुत्र जैसा आप कहते हैं, उत्पन्न होने के नियम से करूँगी २२ वैशंपायनजी बोले यह सुनकर राहुविरोधी योगात्मा सूर्य ने (तथास्तु) कहकर कुन्ती के साथ संगम किया और वह कन्या देवी सूर्य के तेज से विह्वल और अचेत होकर शय्या पर गिर पड़ी २३ । २४ तब सूर्य ने कुन्ती से कहा कि हे सुश्रोणि ! अब मैं जाता हूँ, तेरे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा और उसके उत्पन्न होने के पीछे फिर तू कन्या ही हो जायगी २५ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर कुन्ती ने लज्जित होकर सूर्य से कहा कि ऐसा ही होय २६ तदनन्तर सूर्य के समझाने पर कुन्ती टूटी हुई लता की भांति उस श्रेष्ठ शय्या पर गिर पड़ी । इस प्रकार से सूर्य ने तेज से उसे मोहित करके योग से उसके गर्भ में वास किया अर्थात् मनुष्यों के सदृश मैथुन नहीं किया और उसको दूषण नहीं लगाया । इसके पीछे सूर्य के चले जाने पर कुन्ती सचेत हो गई ॥ २७ । २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०६ ॥

तीनसौ सातवाँ अध्याय ।

कुन्ती के पुत्र उत्पन्न होना और कुन्ती का उसको एक मञ्जूषा में रखकर बड़ा विलाप करके अश्वनदी में बहा देना ।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे माघशुक्ला प्रतिपदा को

कुन्ती के चन्द्रमा के सदृश पुत्र उत्पन्न हुआ १ वह सुश्रोणी बाला कुन्ती उस गर्भ को बान्धवों के भय से छिपाये हुए धारण किये रही और उसका हाल किसी मनुष्य ने नहीं जाना और सिवाय कन्यापुर में प्राप्त, रक्षा करने में चतुर धात्री के, किसी स्त्री को भी उसका वृत्तान्त विदित नहीं हुआ २ । ३ जब गर्भ का समय पूरा हो गया, तब उसी देवता की प्रसन्नता से उसके देवतुल्य पुत्र कुण्डल कवच धारण किये हुए उत्पन्न हुआ । आंखें उसकी सिंह की सी और कन्धे वृषभ के समान थे और वह अपने पिता के समान स्वरूपवान् था ४ । ५ कुन्ती उसको देखकर रोने लगी और धात्री से सलाह करके उसने उस बालक को एक मञ्जूषा में, जो चारों ओर से मोम से लिपी हुई और सचिक्कण थी और ढकना रखती थी, बिछौना बिछवाकर बैठा दिया और ढकने से बन्द करके उसे अश्वनामी नदी में छोड़ दिया ६ । ७ छोड़ते समय कुन्ती ने पुत्रस्नेह से विलाप किया और यह कहा कि हे पुत्र ! जलचर, भूचर, खेचर और स्वर्गवासी सब तेरा कल्याण करें ८ । १० मार्ग में तू कल्याणपूर्वक जाय, तेरे शत्रु न होयँ और मार्ग में कोई शत्रु मिले भी, तो वह तेरे साथ द्रोह न करे ११ जल का ईश्वर वरुण, तेरी रक्षा जल में करे । वायु देवता, जो कि सर्वगामी होकर आकाशस्थायी बना रहता है, आकाश में तेरी रक्षा करे १२ और तपनेवालों में श्रेष्ठ तेरा पिता सूर्य सब स्थानों में तेरी रक्षा करे, जिसने दिव्य विधि से तुझे मुझको दिया है १३ और बारहों सूर्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, साध्यगण, विश्वेदेवा, महाइन्द्र, मरुद्गण, दिशाओं के ईश्वर और सब देवता तेरी रक्षा सम और विषम स्थानों में करें । मैं कवच के कारण तू जहां रहेगा वहीं तुझको पहिचान लूंगी १४ । १५ हे पुत्र ! तेरा तेजस्वी पिता सूर्य धन्य है, जो तुझको नदी में पड़ा हुआ अपनी आंखों से देख रहा है १६ और वह स्त्री धन्य होगी जो तुझको दूध पिलावेगी और तुझको अपना पुत्र कल्पना करेगी १७ आज उस स्त्री ने कौन सा स्वप्न देखा होगा, जो तुझसे सूर्य-तुल्य तेजस्वी, दिव्य कुण्डल कवच धारण करनेवाले और कमललोचन, सुन्दर ललाट और मनोहर केशान्त रखनेवाले बालक को पुत्र बनावेगी १८ । १९ वे स्त्रियां धन्य होंगी, जो तुझको घोटुओं से चलते हुए और धूलि में भरे हुए अङ्ग से तोतली बातें करते हुए देखेंगी २० और वे भी धन्य होंगी जो केशरीसिंह के तुल्य तेरे युवास्वरूप को देखेंगी २१ इस प्रकार से कुन्ती ने बहुत

विलाप करके मञ्जूषा को अश्वनदी के जल में छोड़ दिया २२ और अर्द्ध-रात्रि को यह काम करके पुत्र-शोक से रोती हुई पिता के ज्ञात हो जाने के भय से शीघ्र राजभवन में चली आई २३। २४ वह मञ्जूषा बहती हुई अश्वनदी से चर्मण्वती नदी में पहुँची, चर्मण्वती से यमुना में गई और यमुना से गङ्गा में पहुँची। गङ्गा में बहती बहती तरङ्गों से चम्पापुरी के किनारे जा निकली जहाँ सूत रहता था २५। २६ मार्ग में उस देवता से उत्पन्न बालक की रक्षा उस कुण्डल समेत दिव्य कवच ने की जो अमृत से उत्पन्न हुआ था॥ २७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०७॥

तीनसौ आठवाँ अध्याय।

धृतराष्ट्र के सूत अधिरथ का स्त्री-सहित गङ्गा-स्नान को जाना, वहां उनको वह मञ्जूषा मिलनी, उसमें से कर्ण को निकालकर पुत्र-भाव से पालना और कर्ण का बड़ा होकर अस्त्र-विद्या सीखना और महादानी होना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसी समय पर धृतराष्ट्र का सखा सूत अधिरथ अपनी स्त्रीसहित गङ्गास्नान को गया था १ उसकी स्त्री का नाम राधा था। वह ऐसी स्वरूपवती थी कि अपने समान दूसरी स्त्री न रखती थी। उसके कोई पुत्र नहीं था २ उसने सन्तान होने के लिये अनेक यत्न किये थे। दैव इच्छा से जिस समय वे गंगास्नान करने को गये, उसी समय वह मञ्जूषा बहती हुई, गंगा की तरङ्गों से उसके पास आ निकली। उसने उसे पकड़ कर जल से बाहर निकाला और अपने पति अधिरथ के समीप ले गई ३। ५ जब वह मञ्जूषा अर्थात् पिटारीदार संदूक़ खोला गया, तब उसमें उन्होंने वह सूर्यतुल्य अति सुन्दर बालक कवच और कुण्डल धारण किये हुए देखा ६। ७ अधिरथ ने आश्चर्य करके बड़ी प्रसन्नता से उस बालक को गोद में उठा लिया और अपनी स्त्री से कहा ८ कि हे भामिनि! मैं जब से उत्पन्न हुआ हूँ, तब से मैंने ऐसा अद्भुत बालक आज ही देखा है, मेरी समझ में यह कोई देवकुमार है ९ देवताओं ने मुझ अपुत्र को यह पुत्र दिया है। यह कहकर उस सूत ने वह पुत्र राधा को दे दिया १० राधा ने उस अत्यन्त सुन्दर देवकुमार को विधिपूर्वक गोद में ले लिया ११ और उसको पालकर बड़ा किया। उसके पीछे उस सूत के और भी औरस पुत्र उत्पन्न हुए १२ ब्राह्मणों ने उस सुनहरी कवच और

कुण्डल धारण करनेवाले बालक का नाम वसुषेण रक्खा १३ इस प्रकार से वह अमितपराक्रमी कर्ण सूत-पुत्र कहलाया और वसुषेण तथा वृषनाम से प्रसिद्ध हुआ १४ उस सूत के जो अङ्गनामी देश थे, उनमें वह बड़ा हुआ और पृथा को भी उसका हाल दूत के द्वारा विदित हो गया १५ जब वह बड़ा हो गया, तब अधिरथ ने उसे हस्तिनापुर में भेज दिया १६ और वहां वह बाण और अस्त्र-विद्या सीखने के लिये द्रोणाचार्य के पास रहने लगा और वहीं उसकी मित्रता दुर्योधन से हो गई १७ उसने धनुर्विद्या आदि चारों विद्याएँ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और परशुरामजी से सीखीं और अस्त्र-विद्या को पाकर संसार में बड़ा धनुर्धारी विख्यात हो गया १८ और दुर्योधन से मिलाप रखने के कारण पाण्डवों का सदा अप्रिय चेता करता था और अर्जुन से युद्ध करना सदैव चाहता था १९ वह वीर अर्जुन से सदैव ईर्ष्या रखता था और अर्जुन उससे ईर्ष्या रखता था २० सो हे जनमेजय! सूर्य की गुप्त बात यही थी, जिसके कारण, कर्ण कुन्ती से उत्पन्न होकर सूत-कुल में गिना गया २१ और युधिष्ठिर को यही गुप्त दुःख था कि कर्ण कवच और कुण्डल धारण करने के कारण अवध्य है २२ हे राजेन्द्र! वह कर्ण जब मध्याह्न के समय जल में खड़ा होकर हाथ जोड़े हुए सूर्य की स्तुति करता था, उस समय ब्राह्मण लोग उसके पास धन मांगने को आजाते थे, और जो कुछ वे मांगते थे सोई कर्ण उनको दे देता था २३। २४ इन्द्र भी ब्राह्मण का रूप धारण करके उसके पास गया और उससे कहा कि मुझको भीख दे। उसे देखकर राधा-नन्दन कर्ण ने कहा कि आप बहुत अच्छे आये ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥

तीनसौ नवाँ अध्याय।

कर्ण का इन्द्र को कुण्डल-कवच दे अमोघशक्ति लेना और पाण्डवों का द्वैतवन को जाना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! कर्ण ने कपटवेषधारी विप्ररूप से आये हुए इन्द्र को देखकर उक्त प्रकार से कहा कि आप का आना बहुत अच्छा हुआ, परन्तु उसके मन के भावको न जानकर उससेकहा कि कहिये आपको क्या दूं। आप सोने की माला पहिरे हुए बहुत सी स्त्रियां चाहते हैं, या ऐसे ग्राम चाहते हैं, जिनमें बहुत सी गायें रहती हों १। २ यह सुनकर वह ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र बोला कि मुझको इन दोनों में से कुछ नहीं चाहिये।

इनको जो कोई चाहता हो उसे दीजिये ३ हे निष्पाप ! मैं तो तुम्हारे शरीर के साथ उत्पन्न होनेवाले कवच और कुण्डलों को चाहता हूं। जो तुम सत्यव्रत हो, तो इनको अपने शरीर से उखाड़कर दे डालो ४ हे परंतप ! यही शीघ्रता से तुम्हारा दिया हुआ दान मैं चाहता हूं, इसी को संसार में सब लाभों से श्रेष्ठ लाभ जानता हूं ५ कर्ण बोला कि हे विप्र ! गृह, भूमि, स्त्री, क्षेत्र और जो कुछ चाहिये सो आप ले लीजिये, परंतु ये कवच कुण्डल मैं नहीं दे सकता हूं ६ वैशंपायनजी बोले, हे भरतसत्तम, जनमेजय ! कर्ण ने उस ब्राह्मण से बहुत सी बातें कहीं और उत्तमप्रकार से उसकी स्तुति करके अनेक प्रार्थनाएँ कीं, परन्तु उस ब्राह्मण ने कवच और कुण्डल के सिवाय दूसरी वस्तु लेना स्वीकार नहीं किया। तब कर्ण ने हँसकर उससे कहा कि ७। ८ हे ब्राह्मण ! ये, मेरे कवच और कुण्डल अमृतमय हैं और मेरे शरीर के साथ उत्पन्न हुए हैं। जब तक ये मेरे शरीर में हैं, तब तक मुझको कोई मार नहीं सकता है इससे मैं इनको नहीं दे सकता हूं १० हे विप्रवर्य ! इसके बदले में आप मुझसे पृथ्वी लीजिये और निष्कण्टक राज्य करिये ११ जो इनको मैं आपको दे दूंगा, तो मैं युद्ध में शत्रुओं का वध्य हो जाऊंगा १२ वैशंपायनजी बोले कि हे जनमेजय ! इस पर भी जब इन्द्र ने दूसरा पदार्थ लेना अङ्गीकार न किया, तब कर्ण ने हँसकर फिर कहा १३ कि हे देवदेवेश ! आपके आने का हाल मुझको पहिले से विदित है कि आप इन्द्र हैं और देवताओं के ईश्वर तथा जीवों के धारणकरनेवाले हैं। आपसे मुझे वर मिलना उचित है और मुझे आपको विना नियम के वर देना योग्य नहीं है, क्योंकि जो मैं आपको कुण्डल और कवच दे दूंगा, तो मैं वध्य हो जाऊंगा और आपकी हँसी होगी १४। १६ इससे आप नियम के साथ मुझसे कवच और कुण्डल ले लीजिये, विना नियम के मैं आपको नहीं दे सकता हूं १७ यह सुनकर इन्द्र बोला कि मेरे आने का हाल सूर्य को विदित था, उसी ने तुझसे कहा होगा १८ अच्छा, अब जो तेरी इच्छा हो, सो तू कवच और कुण्डलों के बदले में मुझसे मांग ले, मैं वज्र के सिवाय जो तू मांगेगा सोई दूंगा १९ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर हर्षित होते हुए कर्ण ने इन्द्र से कहा कि कवच और कुण्डलों के बदले में आप मुझको अपनी अमोघशक्ति दे दीजिये, जो सेना में शत्रुओं के समूहों को मारनेवाली है २०। २१ यह सुनकर इन्द्र ने एक मुहूर्त तक विचार

करके यह कहा २२ कि हे कर्ण ! तू मुझको अपने शरीर के साथ उत्पन्न हुए कवच और कुण्डलों को दे दे और मुझसे वह शक्ति ले ले, परंतु वह मेरे हाथ से छोड़ी हुई सैकड़ों शत्रुओं को मारकर फिर मेरे ही हाथ में आ जाती है, और तेरे हाथ से छोड़े जाने पर वह एक गर्जते हुए महापराक्रमी तेरे शत्रु को मारकर फिर तेरे पास न जायगी, मेरे पास ही चली आवेगी २३ । २५ कर्ण ने कहा कि मैं युद्ध में एक ही शत्रु को जिससे मुझे भय होगा, मारना चाहता हूं २६ इन्द्र ने कहा कि निःसंदेह तू इस शक्ति से बड़े बली एक शत्रु को मार सकेगा। परंतु जिसको तू मारना चाहताहै, वह उन महात्मा श्रीकृष्णजी से रक्षित है, जिनको वेद के ज्ञाता, अचिन्त्य, अपराजित, वाराह और नारायण कहते हैं २७ । २८ कर्णने कहा कि बहुत अच्छा, वह शक्ति एक ही शत्रु को मारकर मेरे पास न रहे, परंतु मुझको अमोघशक्ति दीजिए । जिससे कैसा ही प्रतापी शत्रुहो, बच न सके २९ और दूसरा यह वरदान भी दीजिये कि अङ्गों को काटकर कवच और कुण्डल देने से मेरा शरीर कुरूप न हो जाय ३० इन्द्र बोला कि हे कर्ण ! जो तू झूठ बोलना नहीं चाहताहै, तो तेरा स्वरूप किसी अवस्था में कुरूप न होगा और न शरीर में व्रण होंगे किन्तु तुम्हारा शरीर तुम्हारे पिता के समान फिर सुन्दर और तेजयुक्त हो जायगा ३१ । ३२ एक बात और भी कहता हूं कि जो तू इस शक्ति को अपने पास शस्त्रों के होते हुए विना संशय पाये छोड़ेगा, तो यह तेरे ही ऊपर गिरेगी ३३ कर्ण बोला कि हे शक्र! मैं आपके कहने के अनुसार ही करूंगा और उस समय इसको छोड़ूंगा जब मुझको परम संशय होगा ३४ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे कर्ण ने वह प्रज्वलित शक्ति इन्द्र से ले ली और पैना शस्त्र लेकर अपने अङ्ग से कवच और कुण्डल काटना प्रारम्भ किया ! काटते समय मन में कुछ भी विकार न लाया, सब देवता, मनुष्य और दानव उसको शरीर काटते हुए देखकर सिंहनाद करने लगे ३५ । ३६ और उसको अङ्ग कटने पर भी मन्द-मन्द मुसकराते हुए देखकर देवताओं ने दुन्दुभी बजाई और फूलों की वर्षा की ३७ तदनन्तर कर्णने कुण्डल और कवच शरीर से काटकर गीले ही इन्द्र को दे दिये और उसी समय से उसका नाम कर्ण हो गया ३८ इस प्रकार से इन्द्र ने हँस हँसकर कर्ण को ठगा और पाण्डवों का कार्य सिद्ध करके आप स्वर्ग को चला गया ३९ धृतराष्ट्र के पुत्र उस वृत्तान्त को सुनकर बड़े

दुःखी और गर्वहीन हुए और पाण्डवों को बड़ा हर्ष हुआ ४० यह सुनकर जनमेजय बोला कि हे वैशंपायनजी! पाण्डव उस समय पर कहां थे, जो उन्होंने यह वृत्तान्त सुना और उन्होंने बारहवाँ वर्ष बीतने पर क्या किया ४१ वैशम्पायनजी बोले कि पाण्डव मार्कण्डेयजी से देवऋषियों के चरित्र की अनेक कथाएँ सुनकर द्रौपदी को लाने और जयद्रथ को भगाने के पीछे सब समाज और साथियों-सहित काम्यकवन से चलकर द्वैतवन में जा बसे थे ॥४२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥

तीनसौ दशवाँ अध्याय।

मृग के सींग में अरणी काष्ठ का उलझकर चला जाना और पाण्डवों का उस मृग के मारने को जाना।

उक्त कथा को सुनकर जनमेजय बोले कि हे वैशंपायनजी! पाण्डवों ने स्त्री के हरे जाने के क्लेश को पाकर फिर क्या किया १ वैशंपायनजी बोले कि पाण्डव भार्याहरण के क्लेश को पाकर काम्यकवन से उस द्वैतवन को चले आये जिसमें चित्रविचित्र वृक्ष और बड़े स्वादिष्ठ फल थे। उसी द्वैतवन में भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव समेत कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर; ये सब पाण्डव व्रत रखकर फलाहारी तथा मितभोजी होकर अपनी भार्या कृष्णा-सहित रहने लगे २। ४ और वहां बसते हुए उन धर्मात्मा और परम तपस्वियों ने ब्राह्मणों के लिये पराक्रम का काम करने में बड़ा भारी क्लेश पाया जो आगे उनको सुखदायी हुआ ५। ६ उस क्लेश पाने का वृत्तान्त इस प्रकार से है कि वहां के तपस्वी ब्राह्मणों का अरणी-काष्ठ का दण्ड एक वृक्षपर टँगा हुआ था। एक दिन एक मृग उस वृक्ष से अपने सींगों को घिसने लगा, घिसने में वह दण्ड उस मृग के सींगों में उलझ गया और वह मृग उसको लिये हुए छलांग मारकर दूर चला गया ७। ८ यह देखकर वह ब्राह्मण अग्निहोत्र करने की इच्छा से शीघ्र दौड़कर युधिष्ठिर के पास आया, जो भाइयों सहित बैठे हुए थे और उनसे बोला १०। ११ कि हे महाराज! हमारा अरणी-काष्ठ का दण्ड वृक्ष पर टँगा हुआ था। एक मृग उस वृक्ष से अपना शिर रगड़ने लगा। रगड़ते में वह दण्ड उस मृग के सींग में उलझ गया और वह मृग उसको लिये हुए छलांग मारता हुआ दूर निकल गया १२। १३ सो हे राजन्! आप उसका खोज लगाकर हमारा वह दण्ड ला दीजिए जिससे अग्निहोत्र का लोप न होवे १४

यह सुनकर युधिष्ठिर दुःखी होकर भाइयों सहित धनुष् चढ़ाकर व कवच पहनकर शीघ्र चल दिया १५। १६ और पांचों भाई ब्राह्मण का काम करने के लिये कर्णि, नालीक और नाराच नामी बाणों को छोड़ते हुए उस मृग के पीछे दौड़े १७ और आश्रम के आस-पास उसे ढूंढ़ने लगे, परंतु उस मृग का पता नहीं मिला १८ तब वे थककर और दुःखी होकर इस गहन वन में भूंखे-प्यासे एक शीतल छायावाले वृक्ष के नीचे बैठ गये। उस समय नकुल ने क्रोधित होकर युधिष्ठिर से कहा १९ । २० कि हे राजन्! इस वंश में न तो कभी धर्म का लोप हुआ, न आलस्य से धर्म और अर्थ का नाश हुआ, और जब कभी किसी प्राणी का कैसा ही काम हुआ, तब कामवाले को उत्तर भी कभी नहीं दिया गया अर्थात् उसका काम कर ही दिया, फिर क्या कारण है कि हमको आज संशय प्राप्त हुआ है ॥ २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥

तीनसौ ग्यारहवाँ अध्याय।

पाण्डवों का भूंख-प्यास के मारे एक पेड़ के नीचे बैठ जाना, वहां से चारों छोटे भाइयों का बारी बारी से पानी लेने जाना व उनका पानी पीकर मर जाना, फिर युधिष्ठिर का वहां जाना।

युधिष्ठिर बोले कि भाई! आपत्तिकाल में न मर्यादा रहती है, न निमित्त-फल मिलता है, धर्म ही पाप और पुण्य-कर्मों के फल को यथायोग्य देता है १ भीमसेन बोला कि हमारे संशय पाने का कारण यह है कि प्रतिकामी सभा में द्रौपदी को दासी की भांति खींचकर लाया और वह मेरे हाथ से मारा नहीं गया २ अर्जुन बोला कि कर्ण ने हमसे हाड़ों को भेदन करनेवाले तीक्ष्ण वचन कहे थे और हमने उन वचनों को सहा, इस कारण से हमको संशय प्राप्त हुआ है ३ सहदेव बोला कि जिस समय शकुनि ने आपको जूए में अधर्म से जीता था, उस समय मैंने उसको मार नहीं डाला, इस कारण से हमने यह संशय पाया है ४ वैशंपायनजी बोले, हे राजा, जनमेजय! इसके पीछे युधिष्ठिर ने नकुल से कहा कि तुम वृक्ष पर चढ़कर चारों ओर को देखो कि कहीं आस-पास जल ऐसे स्थान पर है, जहां वृक्ष भी हो। तुम्हारे ये सब भाई प्यासे हैं ५। ६ यह सुनकर नकुल 'तथास्तु' कहकर वृक्ष पर चढ़ गया और चारों ओर को देखकर जेठे भाई से बोला ७ कि महाराज! उस स्थान पर बहुत से वृक्ष लगे हुए हैं, सारसों का शब्द वहां हो रहाहै, मैं जानता हूँ कि वहां निःसं-

देह जल होगा ८ यह सुनकर सत्य धारणावाले, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरजी बोले कि अच्छा, वहां चलें जाओ और तर्कसों में जल भरकर ले आओ। यह सुनकर नकुल शीघ्र चल दिया और वहां जा पहुंचा ९। १० और वहां सारसों से युक्त निर्मल जलको देखकर उसने पीने की इच्छा की कि इतने में एक यक्ष से कही हुई यह आकाशवाणी हुई ११ कि हे तात! साहस मत करे, पहिले मेरे प्रश्नों का उत्तर दे, फिर जलपान कीजियो और ले जाइयो १२ नकुल ने प्यास के मारे उस आकाशवाणी को न माना और जल पीलिया, पीते ही वह अचेत होकर गिर पड़ा १३ जब बहुत देर होगई और वह न आया, तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने वीर भाई शत्रुहन्ता सहदेव से कहा, भाई तू जाकर नकुल को लिवा ला और पानी भी लेता आ, उसको गये बहुत देर हो गई १४। १५ यह सुनकर सहदेव उसी ओर गया और उस जल के किनारे अपने भाई नकुल को निर्जीव पड़ा हुआ देखकर व्याकुल होगया, परंतु उसको भी ऐसी प्यास लग रही थी कि यह भी जल पीने को जल की ओर दौड़ा, और ज्योंही उसने जल पीना चाहा, त्योंही यक्ष ने फिर कहा कि हे तात! साहस मतकरे, मेरे जब प्रश्नों का उत्तर दे दे, तब इच्छानुसार जल-पान कर जल को लेजा १६। १८ सहदेव ने भी उस बात को न सुना और प्यास के मारे जल पी लिया, जल पीते ही वह भी मृतक के समान होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा १९ जब सहदेव भी देर तक न लौटा, तब युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि हे बीभत्सो, शत्रुमर्दन! तेरे दोनों छोटे भाइयों को गये हुए देर हुई तू जाकर उन दोनों को लिवा ला, और जल भी लेता आ, हे तात! तू हम दुःखियों का उपाश्रय है २०। २१ यह सुनकर श्वेतवाहन अर्जुन धनुष बाण और खड्ग लेकर उस सरोवर पर गया और वहां दोनों भाइयों को सोते हुए के समान पृथ्वी पर मरे हुए पड़े देखकर उसने धनुष् हाथ में ले लिया और वन में चारों ओर देखने लगा, परंतु उसको कोई प्राणी देख न पड़ा, तब वह सव्यसाची प्यास के कारण से जल की ओर दौड़ा २२। २५ उस समय फिर आकाशवाणी हुई कि क्यों जल की ओर वृथा दौड़ता है, तू इस जल को बल से नहीं पी सकताहै। हां, जो तू मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे देगा, तो निश्चय जल पीवेगा और ले भी जायगा २६। २७ यह सुनकर अर्जुन बोला कि प्रकट होकर हमको जल पीने से निषेध कर। जब बाणों से तेरा शरीर खण्ड खण्ड कर दिया जायगा, तब तू इस प्रकार

से न बोल सकेगा २८ यह कहकर अर्जुन ने शब्दवेधी अस्त्रानुमन्त्रित बाणों की वर्षा चारों दिशाओं में की २९ यद्यपि प्यास से बड़ा दुःखी था परंतु उसने नालीक, नाराच और कर्णिनामी अमोघ बाणों से आकाश को छा दिया ३० उस समय यक्ष ने कहा कि हे अर्जुन! इस यत्न से तुझको कुछ लाभ न होगा, जो जल पीना है, तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दे, नहीं तो विना उत्तर दिये जो तू पानी पियेगा, तो पीतेही मर जायगा ३१ अर्जुन ने इस बात का कुछ ध्यान न किया और सरोवर पर जाकर जल-पान किया, उसके पीते ही वह भी मृतक होकर गिर पड़ा ३२ इसके पीछे युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि भाई नकुल, सहदेव और अर्जुन को गये हुए बड़ी देर हुई, तुम जाकर उनको लिवा लाओ और जल भी ले आओ। यह सुनकर भीमसेन भी वहीं जा पहुँचा, जहां वे तीनों पुरुषोत्तम मरे हुए पड़े थे। उनको देखकर भीमसेन महादुःखी हुआ और चिन्ता करने लगा कि यह कर्म यक्ष, राक्षसों का है, मुझको भी उनसे युद्ध करना पड़ेगा। इससे पहिले जल पीलूँ, फिर देखा जायगा। यह विचार कर वह प्यास का मारा जल की ओर दौड़ा ३३। ३८ उस समय उस यक्ष ने फिर कहा कि हे तात! देख साहस मत करे, मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर जल पी, और यथेच्छ ले जा ३९ उसको सुनकर भीमसेन ने कुछ उत्तर न दिया और वह भी जल पीकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ४० जब भीमसेन भी देर तक न लौटा, तब कुन्ती-नन्दन युधिष्ठिर बड़ी चिन्ता करता हुआ, म्लान-चित्त होकर उस वन में घुसा, जो मनुष्यों से रहित और मृग वाराह आदि वनजीवों से सेवित भ्रमर आदि पक्षियों से शब्दित और नाना प्रकार के वृक्ष और चित्र विचित्र लताओं से सुशोभित था। वहां जाकर उसने उस मनोहर सरोवर को देखा, जो ऐसा था। मानो विश्वकर्मा ने आपही उसको बनाया है ४१। ४४ और कमलनियों के जाल और सिन्धुवार, सुवेतस, केतक, करवीर और पीपल आदि वृक्षों से युक्त था। युधिष्ठिर श्रम से पीड़ित होकर उस सरोवर के किनारे पर गया और उसको देखकर चकित होगया॥ ४५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३११॥

तीनसौ बारहवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का विलाप करना और यक्ष से उसका प्रश्नोत्तर होना और पाण्डवों का सजीव होना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! इसके पीछे युधिष्ठिर ने उस

सरोवर के किनारे पर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव उन अपने चारों भाइयों को निर्जीव पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखा जो कि इन्द्र का सा गौरव रखते थे और पृथ्वी पर पड़े हुए ऐसे दीखते थे मानो प्रलयकाल आने पर लोकपाल देवता स्वर्ग से गिर पड़े हैं १ । २ उनको देखकर महाबाहु धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़ी गरम-गरम श्वासें लेकर चिन्ता में मग्न होकर रोने और महाविलाप करने लगे, हाय भीमसेन ! तैंने तो यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं युद्ध में दुर्योधन की जांघ गदा से तोड़ूंगा, अब वह प्रतिज्ञा तेरे गिर जाने पर व्यर्थ हो गई ३ । ५ यह क्या कारण है जो तुम लोगों की की हुई प्रतिज्ञा झूंठ हुई। लोगों ने भी तुम लोगों के विषय में झूठी झूठी बातें ही कहीं। हे अर्जुन ! तेरे उत्पन्न होने के समय देवताओं ने माता से यह कहा था कि हे कुन्ती ! तेरा यह पुत्र इन्द्र के तुल्य होगा और पारियात्र पर्वत पर भी सब लोगों ने यही कहा था कि अर्जुन इस नष्ट हुई लक्ष्मी को फिर लावेगा, रण में इसको कोई न जीत सकेगा और यह सबको युद्ध में जीतेगा ६ । ९ सो तू ऐसा महाबली होकर शत्रु के वश में कैसे आ गया जो मेरी सब आशाओं को नष्ट करके इस प्रकार पृथ्वी पर सो रहा है १० हम लोग तो तेरे ही आश्रय से ये सब दुःख सह रहे थे, हाय ये दोनों भीमसेन और अर्जुन सब अस्त्रों से अवध्य और महावीर थे, शत्रु के वश में कैसे प्राप्त हुए ११ । १२ मेरा हृदय लोहे का है जो इन नकुल और सहदेव को पृथ्वी पर मरे हुए पड़ा देख फटता नहीं है १३ हे पुरुषोत्तमो ! तुम शास्त्रज्ञ और देशकाल के जाननेवाले होकर तपस्वी और क्रियावान् भी हो, तुम अपने योग्य कर्म विना किये व विना घायल हुए क्यों सो रहे हो और धनुषों को डालकर पृथ्वी पर अचेत पड़े हुए हो १४ । १५ इस प्रकार से युधिष्ठिर अपने भाइयों को सजीव पर्वत के समान सुखपूर्वक नींद से सोते हुए देखकर महादुःखी हुआ और उसका शरीर पसीनों से चुचुआने लगा १६ इसके पीछे युधिष्ठिर ने बहुत सा विलाप करके व्याकुल और शोकरूपी सागर में डूब कर विचार किया कि यह होनहार तो इसी प्रकार से थी परंतु यह तो देखना चाहिये कि ये मारे क्योंकर गये । इनके शरीर में शस्त्र लगने का कोई चिह्न नहीं है और न यहां किसी जीव के पैरों के चिह्न हैं, यह बात क्या है ! मैं जानता हूं कि यह काम किसी बड़े प्राणी का है १७ । २१ लाओ जल पी लें और एकाग्र होकर विचार करें कदाचित् हमारे विना जाने दुर्योधन ने कुटिल

बुद्धि शकुनि से यह काम कराया हो। उस अशुद्ध अन्तःकरण और पापी का कुछ विश्वास नहीं है और जो उस दुरात्मा ने गुप्त मनुष्य भेजकर इसमें विष घुलवा दिया हो तो भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि ये मेरे भाई यद्यपि प्राणरहित हो गये हैं परंतु इनकी चेष्टा ज्यों की त्यों है २२। २६ काल आने पर यमराज के सिवाय इन पुरुषोत्तमों से दूसरा जीव सम्मुख होकर युद्ध नहीं कर सकता है २७ यह निश्चय करके युधिष्ठिर उस जल में घुस गया और जल को मँझाने लगा। उस समय आकाशवाणी हुई कि हे राजपुत्र! मैं शैवलनाम मत्स्यभक्षी बगला हूँ मैंने ही ये तेरे चारों भाई मारे हैं जो तू मेरे प्रश्नों का उत्तर न देगा तो तू भी इसी प्रकार से मर जायगा २८। २६ इससे तू साहस छोड़कर पहिले मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दे फिर इच्छापूर्वक जल पीजियो और ले जाइयो ३० यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि आप वसुदेवता हैं या रुद्र हैं अथवा मरुद्‌गणों के प्रधान देवता हैं। ऐसा बड़ा काम पक्षी से होना असंभव है जो आपने हिमालय, पारियात्र, विन्ध्याचल और मलयागिरिनामी चारों पहाड़ों के समान मेरे ये प्रतापी चारों भाई मार डाले हैं ३१। ३२ जिनको युद्ध में देवता गन्धर्व और राक्षस भी सह नहीं सकते हैं। आपने यह बड़ा ही भारी काम किया है मैं नहीं जानता हूं कि आपका ऐसा करने से क्या प्रयोजन है और आप क्या चाहते हैं। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है, शिर मेरा घूमने लगा है, चित्त उद्धिग्न हो रहा है और मैं बड़ा भयभीत हो रहा हूं, कृपा करके आप कहिये कि आप कौन हैं ३३। ३५ यह सुनकर वह बोला कि मैं जलचारी पक्षी नहीं हूं किन्तु यक्ष हूं, ये तुम्हारे महाबलशाली भाई मेरे ही हाथ से मारे गये हैं ३६ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर इस प्रकार से उस यक्ष के अकल्याणरूप और कठोर वचनों को सुनकर उसके पास गया वह यक्ष वृक्ष के ऊपर मेघ की गर्जना के समान गम्भीरवाणी बोलता हुआ बैठा था और पर्वताकार ताल वृक्ष के समान ऊंचा शरीर धारण किए हुए अग्नि और सूर्य के तुल्य तेजस्वी था ३७। ३६ उस समय यक्ष ने कहा कि हे राजन्! तेरे इन भाइयों ने वारंवार रोंके जाने पर इस सरोवर का पानी बल से पी लिया, इस कारण से मैंने इनको मार डाला है ४० जीवित चाहनेवाले मनुष्य को यहां जल पीना उचित्त नहीं है तुम भी साहस मत करो। मेरा नियम है कि जो कोई मेरे प्रश्नों का उत्तर दे देगा वही जल पान कर सकेगा और जल ले

जा सकेगा ४१ । ४२ युधिष्ठिर बोले कि हे यक्ष ! तेरा यह नियम ठीक नहीं है । सन्त लोग ऐसी बातों की कभी प्रशंसा नहीं करते है परंतु तुम अपने प्रश्नों को कहो मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उनका उत्तर दूंगा ४३ । ४४ यक्ष बोला कि बताओ सूर्य को कौन उदय करता है और सूर्य के सहचर अर्थात् साथ चलनेवाले कौन हैं कौन सूर्य को अस्त करता है और सूर्य किस पर स्थित है ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिर–सूर्य का उदय करनेवाला ब्रह्म है देवता उसके सहचर हैं उसके अस्त होने का कारण धर्म है और स्थिति उसकी सत्य से है ॥ ४६ ॥

यक्ष–मनुष्य श्रोत्रिय और महत् कैसे होता है और वह क्या पदार्थ है जो पुरुष को द्वितीय होता है अर्थात् जो कार्याकार्य में हारकर करना पड़ता है और मनुष्य बुद्धिमान् कैसे होता है ॥ ४७ ॥

युधिष्ठिर–मनुष्य श्रुति के पढ़ने से श्रोत्रिय और तप के करने से महान् हो जाता है, द्वितीय होने का पदार्थ धैर्य है और वृद्धों की सेवा करने से मनुष्य बुद्धिमान् हो जाता है ॥ ४८ ॥

यक्ष–ब्राह्मणों में देवभाव क्या है और वह धर्म कौन सा है जो सत्पुरुषों के समान है और ब्राह्मणों में मनुष्यभाव क्या है और वह कौन सा चलन है जिससे ब्राह्मण असत्पुरुषों के तुल्य हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

युधिष्ठिर–वेद का पाठ करना अथवा जप करना ब्राह्मणों का देवभाव है और तपस्वी होना सत्पुरुषों के समान धर्म है और मरना मनुष्यभाव है और ब्राह्मणों में दूषण होना असत्पुरुषों का सा धर्म है ॥ ५० ॥

यक्ष–क्षत्रियों में क्या देवभाव है और किस धर्म के करने से क्षत्रिय सत्पुरुष गिना जाता है और क्षत्रियों में मनुष्यभाव क्या है और किस चलन से क्षत्रिय असत्पुरुषों के से धर्म करनेवाले समझे जाते हैं ॥ ५१ ॥

युधिष्ठिर–क्षत्रियों का बाणविद्या और अस्त्रविद्या जानना देवभाव है और यज्ञ करना सत्पुरुषों का सा धर्म है और भय करना मनुष्यभाव है और दुःखी मनुष्य के दुःख को दूर न करना असत्पुरुषों का सा चलन है ॥ ५२ ॥

यक्ष–यज्ञसम्बन्धी एक साममन्त्र कौन सा है और इसी प्रकार से यजुर्वेद का यज्ञसम्बन्धी मन्त्र कौन है और वह कौन सी एक ऋचा है जो यज्ञ को स्वीकार करती है और यज्ञ उल्लंघन किसको नहीं करता ॥ ५३ ॥

युधिष्ठिर–यज्ञ से सम्बन्ध रखनेवाला साममन्त्र प्राण है और यजुर्वेद का यज्ञसम्बन्धी मन्त्र मन है और एक मुख्य ऋचा यज्ञ को स्वीकार करती है और यज्ञ उस ऋचा को उल्लंघन नहीं करता है॥ ५४॥

यक्ष–तृप्त करनेवालों में कौन श्रेष्ठ है और पितरों को क्या वस्तु दान देना अच्छा है और प्रतिष्ठा चाहनेवालों को क्या वस्तु श्रेष्ठ है और वंश चाहनेवालों के लिये क्या उत्तम है॥ ५५॥

युधिष्ठिर–तृप्त करनेवालों में जलवर्षा श्रेष्ठ है और बीजदान अर्थात् क्षेत्र और बाग़ आदि का लगाना पितरों को अच्छा है और प्रतिष्ठा चाहनेवालों को गौ रखना और वंश चाहनेवालों के पुत्र होना उत्तम है॥ ५६॥

यक्ष–संसार में ऐसा पुरुष कौन है जो अच्छे अच्छे भोग भोगता है और सबका प्यारा होकर बड़े आदर के साथ संसार में रहता है परंतु वह जीता हुआ मरे हुए के समान है॥ ५७॥

युधिष्ठिर–जो पुरुष देवता, अतिथि, भृत्य और पितरों को विना दिये खा लेता है वह जीता हुआ भी मृतकतुल्य है॥ ५८॥

यक्ष–पृथ्वी से भारी आकाश से ऊंचा वायु से जल्दी चलनेवाला और घास से अधिक होनेवाला क्या पदार्थ है॥ ५९॥

युधिष्ठिर–पृथ्वी से अधिक भारी माता है, पिता का दर्जा आकाश से भी ऊंचा है, मन वायु से भी शीघ्र चलता है और चिन्ता घास से भी अधिक होनेवाली है॥ ६०॥

यक्ष–सोते में पलक कौन नहीं मारता है और उत्पन्न होने पर चलता कौन नहीं है, हृदय किसके नहीं है और वेग से कौन बढ़ जाता है॥ ६१॥

युधिष्ठिर–मछली सोते में पलक नहीं मारती है और अण्डा उत्पन्न होने पर चलता नहीं है, पत्थर के हृदय नहीं है और नदी वेग से बढ़ जाती है॥ ६२॥

यक्ष–परदेशी, गृहस्थी, रोगी और मरनेवाले इन चारों के मित्र कौन कौन से हैं॥ ६३॥

युधिष्ठिर–परदेशी का मित्र जनसमूह, गृहस्थी का मित्र स्त्री, रोगी का मित्र वैद्य और मरनेवाले का मित्र दान है॥ ६४॥

यक्ष–हे राजेन्द्र! सबका अतिथि कौन है और सनातनधर्म क्या है और अमृत क्या है और यह सब जगत् क्या है॥ ६५॥

युधिष्ठिर–अग्नि सबका अतिथि है और गौओं का दूध अमृत है और जिस धर्म से मोक्ष मिलती है वह सनातनधर्म है और सब जगत् वायु है क्योंकि विना वायु के जगत की स्थिति नहीं हो सकती है ॥ ६६ ॥

यक्ष–वह कौन है जो अकेला फिरता है और फिर फिर उत्पन्न कौन होता है और हिम की क्या औषध है और द्रव्य रखने का बड़ा पात्र क्या है ॥ ६७ ॥

युधिष्ठिर–सूर्य अकेला फिरता है और चन्द्रमा फिर फिर प्रकाश करता है और प्रभाहीन हो जाता है और हिम की औषध अग्नि है और द्रव्य के रखने का बड़ा पात्र पृथ्वी है ॥ ६८ ॥

यक्ष–धर्मरूपी एकपद क्या है और एकपद का यश क्या है और स्वर्ग का देनेवाला एकपद कौन सा है और एकपद का सुख कौन सा है ॥ ६९ ॥

युधिष्ठिर–चतुराई धर्मरूपी एकपद है और दान एकपद का यश है और स्वर्ग का देनेवाला एकपद सत्य है और शील का होना एकपद सुख है॥७०॥

यक्ष–मनुष्य की आत्मा और दैव से रचा हुआ मित्र कौन कौन है और कौन मनुष्य को जीविका देता है और अन्त में मनुष्य को सुख देनेवाला क्या है ॥ ७१ ॥

युधिष्ठिर–पुत्र मनुष्य की आत्मा, स्त्री दैव का रचा हुआ मित्र है, इन्द्र जलवर्षा करके जीविका देता है और दान अन्त समय में सुखदायी होता है ॥ ७२ ॥

यक्ष–धन के दान देनेवालों में क्या बात होना उत्तम होती है और कौन सा धन उत्तम है और मिलना किस वस्तु का अच्छा है और सुख कौन सा श्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर–दानी मनुष्य में चतुराई होना श्रेष्ठ है और सब धनों में विद्यारूपी धन उत्तम है और आरोग्यता का मिलना सब लाभों में अच्छा है और संतोष की बराबर सुख नहीं है ॥ ७४ ॥

यक्ष–संसार में श्रेष्ठ धर्म क्या है और कौन सा धर्म सदा फल देनेवाला है और वह क्या पदार्थ है जिसको वश में कर लेनेसे मनुष्य शोच नहीं करता है और मिलाप किसके साथ किया हुआ जीर्ण नहीं होता है ॥ ७५ ॥

युधिष्ठिर–सब प्राणियों को अभय देना अर्थात् संन्यासधर्म सर्वोत्तम है और त्रयीधर्म अर्थात् तीन मात्रा रखनेवाले प्रणव से सम्बन्ध रखनेवाला धर्म

सदा फलदायक है और मन को वश में करने से मनुष्य शोच नहीं करता है और सज्जनों का मिलना कभी जीर्ण नहीं होता है ॥ ७६ ॥

यक्ष-किस पदार्थ को छोड़ देने से मनुष्य सबका प्यारा हो जाता है और क्या शोचने से मनुष्य धनवान् हो जाता है और किस वस्तु को छोड़ देने से मनुष्य शोच नहीं करता है और मनुष्य को क्या त्याग देने से सुख मिलता है ॥ ७७ ॥

युधिष्ठिर-मान छोड़ देने से मनुष्य सबका प्यारा हो जाता है और काम के त्यागने से धनवान् हो जाता है और क्रोध छोड़कर शोच नहीं करता है और लोभ को त्याग देने से सुखी हो जाता है ॥ ७८ ॥

यक्ष-ब्राह्मणों को किसलिये धन दिया जाता है और नट और नाचनेवालों को धन देने में क्या लाभ है और भृत्यों को धन देने में क्या प्रयोजन है और राजाओं को धन किस कारण से दिया जाता है ॥ ७६ ॥

युधिष्ठिर-ब्राह्मणों को धन देने से धर्म होता है और नट और नाचनेवालों को देने से यश होता है और भृत्यों को धन देने से पालन होता है और राजाओं को धन भय के कारण से दिया जाता है ॥ ८० ॥

यक्ष-संसार किस वस्तु से ढका हुआ है और उसमें प्रकाश क्यों नहीं होता है और मित्रों का त्याग क्यों किया जाता है और स्वर्ग क्यों नहीं मिलता है ॥ ८१ ॥

युधिष्ठिर-संसार अज्ञान से ढका हुआ है और उसी अज्ञानरूपी अँधेरे के कारण से उसमें प्रकाश नहीं होने पाता है और लोभ के कारण से मित्रों का त्याग किया जाता है और अपगुणों के कारण से स्वर्ग नहीं मिलता है ॥ ८२ ॥

यक्ष-किस किस वस्तु के न होने से मनुष्य और देश निर्जीव के समान है और श्राद्ध और यज्ञ किस किस पदार्थ की हीनता से मृतवत् हैं ॥ ८३ ॥

युधिष्ठिर-धनहीन मनुष्य और राजा हीन देश निर्जीव के तुल्य है और विना वेदपाठी ब्राह्मण के श्राद्ध और विना दक्षिणा के यज्ञ मृतक के समान है ॥ ८४ ॥

यक्ष-दिशा, जल, अन्न और विष कौन कौन हैं और श्रद्धाकाल क्या है ॥ ८५ ॥

युधिष्ठिर-सन्त लोग दिशा हैं, आकाश जल है, इन्द्रियां अन्न हैं और काम विष है और ब्रह्मज्ञानी जिस समय आ जाय वही समय श्रद्धा से देने का काल है ॥ ८६ ॥

यक्ष-तप का क्या लक्षण है और दम, क्षमा और लज्जा क्या है ॥ ८७ ॥

युधिष्ठिर–अपने धर्म पर चलना तप है और मन को जीतना दम है और सुख और दुःख आदि द्वन्द्वों को सहना क्षमा है और अकार्य से हट जाना लज्जा है ॥ ८८ ॥

यक्ष–हे राजन्! ज्ञान, शम, दया और आर्जव किसको कहते हैं ॥ ८९ ॥

युधिष्ठिर–तत्त्व अर्थ के जानने को ज्ञान, चित्त की शान्ति को शम, सबका सुख चाहने के स्वभाव को दया और चित्त की समता को आर्जव कहते हैं ॥ ९० ॥

यक्ष–मनुष्य का वह कौन सा शत्रु है जो दुःख से जय हो सकता है और शरीर में वह कौन सा रोग है जिसका अन्त नहीं है और साधु पुरुष किसको और असाधु किसको कहते हैं ॥ ९१ ॥

युधिष्ठिर–क्रोध बड़े दुःख से जय होनेवाला शत्रु है, लोभ शरीर का अनन्त रोग है और जो मनुष्य प्राणियों का हितकारी है वह साधु है और जिसके दया नहीं है वह असाधु है ॥ ९२ ॥

यक्ष–हे राजन्! मोह, मान, आलस्य और शोक क्या हैं ॥ ९३ ॥

युधिष्ठिर–धर्म के करने में मूढ़ता करना मोह है और शरीर का अभिमान करना मान है और धर्म का न करना आलस्य है और अज्ञान का नाम शोक है ॥ ९४ ॥

यक्ष–ऋषिलोग स्थिरता, धैर्य, श्रेष्ठ स्नान, दान किसको कहते हैं ॥ ९५ ॥

युधिष्ठिर–अपने धर्म की दृढ़ता को स्थिरता, इन्द्रियों के निग्रह को धैर्य, मन के मैल धोने को श्रेष्ठ स्नान और प्राणियों की रक्षा को उत्तम दान कहते हैं ॥ ९६ ॥

यक्ष–पण्डित, नास्तिक और मूर्ख किस मनुष्य को कहते हैं और काम और मत्सर क्या है ॥ ९७ ॥

युधिष्ठिर–धर्मज्ञ का नाम पण्डित और मूर्ख का नाम नास्तिक है और वासनारूपी संसार के हेतु को काम और हृदय के ताप को मत्सर कहते हैं ॥ ९८ ॥

यक्ष–अहंकार किसको कहते हैं और दम्भ क्या है और परमदेव कौन है और पैशुन्य किसको कहते हैं ॥ ९९ ॥

युधिष्ठिर–महाअज्ञान का नाम अहंकार है और पाखण्ड से धर्म को बढ़ाना दम्भ * है और दान के फल का नाम दैव है और दूसरे को दोष लगाना पैशुन्यता है ॥ १०० ॥

---

* लोकवञ्चनाय विहितकर्मानुष्ठानं दम्भः ॥

यक्ष-धर्म, अर्थ और काम ये तीनों आपस में विरोध रखते हैं इन तीनों का एक स्थान पर मिलाप होना भी संभव है ॥ १०१ ॥

युधिष्ठिर-जब धर्म और भार्या ये दोनों मनुष्य के वश में हो जाते हैं तब धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का एक स्थान पर संगम हो जाता है ॥१०२॥

यक्ष-हे भरतसत्तम! अक्षय नरक किसको प्राप्त होता है इस प्रश्न को पूछते हुए मुझसे शीघ्र कहिये ॥ १०३ ॥

युधिष्ठिर-जो मनुष्य विना मांगनेवाले किसी ब्राह्मण को धन देने के लिये बुलावे और फिर कह दे कि मैं कुछ नहीं दूँगा तो वह मनुष्य अक्षय नरक में वास करता है १०४ और जो मनुष्य वेद, धर्म, शास्त्र, ब्राह्मण और देवता और पितरसम्बन्धी कर्मों में झूठ बोलते हैं वे भी अक्षय नरक में वास करते हैं १०५ और जो मनुष्य धनवान् होकर लोभ के कारण से न धनदान करता है न भोगता है किन्तु यह कहता है कि मेरे पास कुछ नहीं है वह भी अक्षय नरक में वास करता है ॥ १०६ ॥

यक्ष—कुल वृत्त अर्थात् गुरु आदि की सेवा और वेदपाठ और वेदार्थ को जानना इन तीनों में से किससे मनुष्य को ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है ॥ १०७ ॥

युधिष्ठिर-हे यक्ष, तात! इनमें से किसी से भी ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हो सकता है केवल सुवृत्त से ही ब्राह्मणत्व मिलता है १०८ उस वृत्त का रक्षा करना ब्राह्मण का परमधर्म है जो ब्राह्मण वृत्तयुक्त अर्थात् आचार करनेवाला है वह क्षीण कभी नहीं होता है और जो वृत्त से रहित होता है वह नष्ट हो जाता है १०९ जो मनुष्य क्रियावान् है वही पण्डित है और बाक़ी जितने शास्त्र के पढ़ने, पढ़ाने और विचारनेवाले हैं वे सब व्यसनी और मूर्ख हैं ११० जो मनुष्य चारों वेद जानता है परंतु उसकी वृत्ति दुष्ट है तो वह शूद्र से भी नीच है। इससे ब्राह्मण वही है जो अग्निहोत्री और जितेन्द्रिय है ॥ १११ ॥

यक्ष-मीठा बोलनेवाला, विचारकर काम करनेवाला, बहुत से मित्र रखनेवाला और धर्म में प्रीति रखनेवाला मनुष्य क्या क्या पाता है ॥ ११२ ॥

युधिष्ठिर-मीठा बोलनेवाला सबका प्यारा हो जाता है, विचारकर काम करनेवाले की अधिक जीत रहती है, जिसके बहुत से मित्र हैं वह सुखपूर्वक बसता है और धर्म में रत रहनेवाले की शुभ गति होती है ॥ ११३ ॥

यक्ष–संसार में आनन्द कौन करता है और आश्चर्य क्या है और ठीक मार्ग कौन सा है और वार्त्ता किसको कहते हैं ॥ ११४ ॥

युधिष्ठिर–हे वारिचर, यक्ष! जो मनुष्य अपने घर में पांचवें अथवा छठे दिन शाक बनाकर खाता है और ऋणी व परदेशी नहीं है वह इस संसार में सुखी रहता है ११५ और मनुष्य दिन रात मरते हुए चले जाते हैं तिस पर भी जो शेष रहते हैं वे अपने को संसार में अचल समझते हैं इससे अधिक क्या आश्चर्य है ११६ और तर्क का निर्णय नहीं है श्रुतियां आपस में विरुद्ध हैं और एक मुनि भी नहीं है जिसके वचन का प्रमाण किया जाय और धर्म का तत्त्व गुहा में रक्खा हुआ है, इससे जिस मार्ग से महान् पुरुष गये हैं वही मार्ग ठीक है ११७ और जो महाकाल मोहरूपी कढ़ाई में महीना और ऋतुरूप करछी से सूर्यरूपी अग्नि के द्वारा दिन और रात्रिरूपी ईंधन को जलाकर सब प्राणियों को पचाता रहता है उसी का नाम वार्त्ता है ॥ ११८ ॥

यक्ष–हे परंतप! तुमने हमारे सब प्रश्नों का उत्तर ठीक ठीक दिया अब यह बताओ कि वह पुरुष कौन सा है जिसका रूप मनुष्य का सा है और सब धन रखता है ॥ ११९ ॥

युधिष्ठिर–जिस मनुष्य के पुण्यकर्मों का शब्द पृथ्वी और आकाश में छाया रहता है और जो प्रिय अप्रिय सुख दुःख और भूत भविष्य, सबको एक सा जानता है वही नररूपी पुरुष है और वही सब धनों का रखनेवाला है ॥ १२०।१२१ ॥

यक्ष–हे राजन्! तुमने पुरुष भी बता दिया और धन रखनेवाले का लक्षण भी कह दिया इससे अब तुम जिस एक अपने भाई को कहो वही जी उठे ॥ १२२ ॥

युधिष्ठिर–हे यक्ष! मेरा नकुलनामी भाई जी जावे जिसके नेत्र लाल लाल हैं और बड़ी भुजायें हैं व जिसकी छाती चौड़ी है और जो शाल के वृक्ष के समान लम्बा है ॥ १२३ ॥

यक्ष–हे युधिष्ठिर! तुझे तो भीमसेन बड़ा प्यारा है और अर्जुन तुम्हारा परायण है फिर कहो तुम सौतेले भाई नकुल का जीना क्यों चाहते हो १२४ यह भीमसेन दश सहस्र हाथी का बल रखता है और तुमको परम प्रिय है और यह अर्जुन बड़ा धनुषधारी है जिसकी भुजा के बल पर तुम सब पाण्डव आश्रित थे इन दोनों को छोड़कर तुम सौतेले भाई नकुल का जीना किस कारण से चाहते हो ॥ १२५।१२७॥

युधिष्ठिर—नकुल का जीवित चाहने का कारण यह है कि मैं प्रथम धर्म को छोड़ना नहीं चाहता हूं क्योंकि मुझको मनुष्य धर्मशील जानते हैं और धर्म की रक्षा करने से धर्म धर्मात्मा की रक्षा करता है और धर्म को त्यागने से धर्म अधर्मी को मार डालना है दूसरे मैं समता चाहता हूं और समता को सत्य से भी अधिक समझता हूं मेरे पिता के कुन्ती और माद्री दो स्त्रियां थीं मैं उन दोनों में कुछ भेद नहीं समझता हूं दोनों को समता जानता हूं इससे मेरी इच्छा है नकुल सजीव हो जाय जिससे मेरी दोनों माता पुत्रवान् रहें ॥ १२८।१३२ ॥

यक्ष—हे भरतसत्तम ! तुम समता को अर्थ और काम से भी श्रेष्ठ जानते हो इससे तुम्हारे सब भाई जी जावें ॥१३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥

तीनसौ तेरहवाँ अध्याय।

यक्ष का युधिष्ठिर को अपना परिचय बता, तीन वरदान दे अन्तर्धान हो जाना।

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे उस यक्ष के कहने से सब पाण्डव क्षणमात्र में सजीव होकर उठ खड़े हुए और उनकी भूख और प्यास सब दूर हो गई १ उस समय युधिष्ठिर ने उस यक्ष से पूछा कि आप अपराजित और इस सरोवर पर एक पांव से स्थित हो मुझे ठीक ठीक बतलाइये कि आप कौन हैं मैं आपको यक्ष नहीं समझता हूं २ आप या तो अष्टवसुओं में से कोई हैं या आप ग्यारहों रुद्रों में से एक रुद्र हैं अथवा देवेश वज्रधारी इन्द्र हैं ३ ये मेरे भाई अकेले लाखों योद्धाओं से लड़नेवाले हैं। मैं ऐसा कोई योद्धा नहीं देखता हूं जो इनको अकेले गिरा सके ४ इसके सिवाय अब ये सजीव होकर ऐसे जान पड़ते हैं, मानो सोते से जगे हैं और सुखी हैं। इससे मैं पूछता हूं कि आप हमारे सुहृद् हैं या पिता हैं ५ यक्ष बोला कि हां हे तात, तीक्ष्ण पराक्रम, भरतसत्तम ! मैं तेरा पिता हूं तुझे देखने को आया था ६ यश, सत्य, दम अर्थात् इन्द्रियों को जीतना, शौच अर्थात् शरीर को बाहर तो जल आदि से धोना और भीतर काम क्रोध आदि से रहित होकर निर्मल चित्त करना और आर्जव अर्थात् सीधापन और ह्री अर्थात् उस चित्तवृत्ति का होना जो अकार्य न होने दे और अचापल्य अर्थात् मन की स्थिरता दान, तप और ब्रह्मचर्य ये सब मेरे शरीर के अङ्ग हैं ७ और अहिंसा, समता, शान्ति, तप, शौच और अमत्सर ये मेरे द्वार हैं तुम मेरे सदैव प्यारे हो ८ प्रारब्ध से तुम्हारी

प्रीति पांच में अर्थात् आत्मदर्शन आदि में है और प्रारब्ध ही से तुमने षट्पदी को जीत लिया है, जो दो दो करके शरीर की तीनों अवस्थाओं में प्राप्त होती है अर्थात् बाल्यावस्था में भूख, प्यास और तरुण अवस्था में शोक, मोह और वृद्ध अवस्था में जरा और मृत्यु प्राप्त होती है इन छहों को तुमने जीत लिया है ९ हे राजा युधिष्ठिर ! तेरा कल्याण हो मैं धर्मराज हूं तुझे देखने के लिये यहां आया था । अब मैं तेरी समताको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ जो इच्छा हो सो वरदान मुझसे मांग ले मैं तुझको वही वर दूंगा मेरे भक्तों की कभी दुर्गति नहीं होती है १० । ११ युधिष्ठिर बोला कि महाराज !इस वन में जो ऋषि रहता है उसका अरणीकाष्ठ का दण्ड एक मृग लेकर चला गया है, मैं चाहता हूं कि उसकी अग्नि लोप न हो । यही वरदान मुझको दीजिये १२ यमराज बोले कि हे सर्वकर्मसमर्थ, युधिष्ठिर ! तेरी परीक्षा के लिये मैंने ही मृगरूप धरकर उस ऋषि का अरणीकाष्ठ का दण्ड हरा था १३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह कहकर यमराजने वह अरणी दण्ड देने के नियम करके कहा कि और दूसरा वरदान मांगो १४ युधिष्ठिर बोला कि बहुत अच्छा दूसरा वरदान यह दीजिये कि हमको अब वन में रहते हुए बारह वर्ष व्यतीत होगये हैं। अब तेरहवां वर्ष है सो इस वर्ष में हमलोगों को कोई पहिचान न सके १५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर यमराज ने कहा कि जो तुम अपने इसी रूप से फिरा करोगे तो भी तुमको कोई न जान सकेगा । परंतु यह अच्छा है कि तुम लोग विराट्नगर में जाकर इस तेरहवीं वर्ष को व्यतीत करो मेरी कृपा से तुम जैसा जैसा अपना स्वरूप चाहोगे वैसा ही वैसा हो जायगा और तुमको विराट्नगर में कोई न जान सकेगा १६ । १९ लो यह अरणी दण्ड उस ब्राह्मण को दे दो मैंने तुम्हारी परीक्षा करने के लिये इसे हरा था २० और जो कुछ और इच्छा हो सो वर मांग लो मुझे तुमको वर देते हुए तृप्ति नहीं होती है २१ तुम मेरे पुत्र और विदुर मेरे अंश से उत्पन्न है । तीसरा वरदान भी मुझसे ऐसा मांगो जो अप्रतिम हो २२ युधिष्ठिर बोला मेरा अहोभाग्य है जो मुझको आप ऐसे देवदेवेश साक्षात् धर्मराज के दर्शन मिले आप मेरे पिता हैं इससे जो वरदान आप मुझको देंगे उसको मैं प्रसन्नता से लूंगा २३ मुझको यह वरदान दीजिये कि मैं मोह, क्रोध और लोभ को सदा जीते रहूं और मेरा मन दान, सत्य और तप में सदैव लगा रहे २४ धर्मराज बोले कि

हे पाण्डव ! तुम स्वभाव ही से ये गुण रखते हो और साक्षात् धर्म की मूर्त्ति हो परंतु मैं भी वरदान देता हूं कि ऐसा ही होगा २५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह कहकर लोकभावन, भगवान् धर्मराज अन्तर्धान हो गये और पाण्डव वहां से इकट्ठे होकर अपने आश्रमको आये और वह अरणीदण्ड उन्होंने तपस्वी ब्राह्मण को दे दिया २६। २७ इस भीमसेन आदि के सजीव होने और पिता पुत्र के समागम के चरित्र को जो कोई पढ़ेगा वह बड़ा जितेन्द्रिय, ऐश्वर्यवान् और पुत्र पौत्रवान् होगा और उसकी आयु सौ वर्ष की हो जायगी २८ और उसका चित्त अधर्म, सुहृद्भेद, परधनहरण, परस्त्रीगमन और कार्पण्य आदि नीच कर्मों में नहीं लगेगा ॥ २९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥

तीनसौ चौदहवाँ अध्याय।

पाण्डवों का सब साथी ब्राह्मणों को बिदा कर गुप्त वास करने के लिये विचार करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे पाण्डवों ने जो बड़े बुद्धिमान् महात्मा और व्रतीथे, तेरहवेंवर्षमें धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार गुप्तवास करने की इच्छा से अपने साथ के वनवासी तपस्वी ब्राह्मणों से कहा १। २ कि महाराज ! आप लोग सब जानते हैं कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने हमारा राज्य कैसे छल से हरा था और हमारे साथ कैसी कैसी अनीति की ४ उनके कारण से हमने यह दुःखरूपी बारह वर्ष का वनवास पूरा किया। अब हमको तेरहवें वर्ष में अज्ञात होकर रहना है ५ इससे अब आप लोग हमको अज्ञात वास करने की आज्ञा दीजिये जो हमारे दुष्टबुद्धि कर्ण, दुर्योधन और शकुनी आदि वैरियों को हमारे रहने का हाल दूतों के द्वारा विदित हो जायगा तो वे विषम भावों से वैरकर्म करेंगे और हमारे स्वजन और पुरवासियों को दुःख देंगे ६। ७ इससे हमारी यह कामना है कि हम लोग इस तेरहवें वर्ष को पूरा करके ब्राह्मणोंसहित फिर अपने देश में अपने राज्य पर स्थित होवें ८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह कहकर राजा युधिष्ठिर दुःख और शोक से पीड़ित हो गया और आंखों में आंसू भरकर मूर्च्छित हो गया ९ उस समय सब ब्राह्मणों ने उसको भाइयोंसहित समझाया और फिर धौम्यऋषि ने कहा १० कि हे युधिष्ठिर ! तुम विद्वान्, जितेन्द्रिय सत्यवादी और दान्त हो तुम सरीखे लोग आपदा पड़ने पर भी मोह नहीं करते हैं ११ देखो देवताओं ने भी शत्रुओं के कारण से बड़ी

बड़ी आपदा भुगतीं और छिपे छिपे फिरे १२ इन्द्र ने निषेधदेश में गिरिप्रस्थ आश्रम में छिपकर अपने शत्रुओं के निग्रह करने का यत्न किया था १३ इसी प्रकार से विष्णु भगवान् ने भी अश्वशिर को पाकर अदिति माता के पास दैत्यों के दो गर्भ नाश करने के लिये बहुत दिनोंतक छिपकर वास किया था १४ और जिस प्रकार से विष्णुने अपनेको वामनरूपमें गुप्त करके राजा बलिका राज्य हरा था वह भी तुमने सुना है १५ और अग्नि ने जैसे जल में गुप्त रहकर देवताओं का काम किया था वह कथा भी तुमने सुनी है १६ और जिस प्रकार से हरि ने इन्द्रके वज्र में गुप्त प्रवेश करके इन्द्र का काम करने को शत्रुओं का निग्रह किया था वह वृत्तान्त भी तुम जानते हो १७ और और्व ऋषियों ने उर में गुप्त रहकर देवताओं में जो काम किया था वह भी तुमसे छिपा नहीं है १८ इसी प्रकार से सूर्यदेव ने भी पृथ्वी पर गुप्त रहकर सब प्रकार से सब शत्रु भस्मकर डाले १९ और विष्णु भगवान् ने राजा दशरथ के घर में गुप्त रहकर रावण को युद्ध में मारा २० इसी प्रकार से और और महात्माओं ने भी छिप छिपकर अपने शत्रु मारे हैं। तुम भी इसीप्रकार से अपने शत्रुओं को जीतसकते हो २१ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर युधिष्ठिर तृप्त होगया, परंतु अपनी बुद्धि से अपने धर्म से नहीं हटा अर्थात् उसने छलसे शत्रुओं को जीतना अङ्गीकार नहीं किया २२ उस समय भीमसेन ने यह कहकर युधिष्ठिर को प्रसन्न किया २३ कि महाराज! इस गाण्डीव धनुषधारी ने आपकी अपेक्षा और धर्म के पीछे चलनेवाली बुद्धि को देखकर कुछ साहस नहीं किया था २४ और इन नकुल और सहदेव को जो उन शत्रुओं को नाश करने में समर्थ थे मैं सदैव रोके रहा २५ सो आप जिस धर्म की हम लोगों को शिक्षा कीजियेगा वही धर्म हम लोग करेंगे और उसी रीति से शत्रुओं को शीघ्र जीतेंगे २६ इसके पीछे सब ब्राह्मण पाण्डवों को आशीर्वाद देकर और उनसे आज्ञा लेकर अपने घरों को चले गये और फिर आकर देखने का नियम कर गये २७। २८ और पाण्डव भी धौम्य पुरोहित के साथ द्रौपदी सहित वहां से चल दिये २९ और एक कोस पर जाकर रात्रि को बस रहे प्रातःकाल होते ही उन्होंने निमित्त के साथ गुप्त वास करना विचारा और पांचों भाई जो शास्त्री और मंत्र के जाननेवाले और संधि विग्रह के कालको जाननेवाले थे सलाह करने को एक स्थानपर बैठ गये ३०। ३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३१४॥

तीनसौ पन्द्रहवाँ अध्याय ।

वनपर्व की कथा सुनने और कहने का माहात्म्य ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इस वनपर्व की कथा को सुनने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं और निर्धन को धन और पुत्ररहित को पुत्र और पौत्र मिलते हैं १ और स्त्री अथवा पुरुष कोई हो जो कोई पवित्रता और सावधानी से सुनता है उसकी सब मनोकामना निस्सन्देह पूरी होती हैं २ इस वनपर्व की कथा को सुनकर ब्राह्मण को वस्त्र, गौ, सुवर्ण रत्न देना और खीर आदि से भोजन कराना उचित है ब्राह्मणों के तृप्त होने से पांचों पाण्डव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सब देवता, मुनि, देवी और सब पितर तृप्त हो जाते हैं। इससे कथा कहनेवाले को यथाशक्ति वस्त्र, अन्न, सुवर्ण और भूषण देना चाहिये ३ । ५ विशेष करके कथा कहनेवाले को कपिला गौ अवश्य देय जिसकी दोहनी कांसे की हो, खुर रुपहरी और सींग सुनहरी हों और कुछ भूषण भी होना अवश्य है, और पांडवों को तृप्त करने के लिये ब्राह्मणों को अन्नदान करे ६ जो कोई इस वनपर्व की कथा को सुनेगा उसकी मनोकामना पूरी होंगी और अन्त समय में उसको स्वर्गवास मिलेगा ॥ ७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥

दो० वसुशतद्विगुणित त्रिशतयुत, संवत ब्यालिस जान ।
श्रावण शुक्ला पूर्णिमा, भौमवार सुवखान ॥
सो० श्रीयुत नवलकिशोर, भार्गववंशी मुकुटमणि ।
सुयश जासु नहिं थोर, भासित है दिनमणिसदृश ॥
पाय सु आज्ञा तासु, कुञ्जलाल पण्डित भिषज ।
धाम आगरा जासु, वनपर्वहि भाषा कियो ॥

वनपर्व समाप्तम् ।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी ।
आगत क्रमांक 0270
दिनांक 2615

महाभारत भाषा-वार्तिक

महाभारत ही आर्यों का सच्चा इतिहास है और इसी के पढ़ने से हिंदुओं में धर्मभाव, सत्पुरुषार्थ और समय के अनुसार कार्य करने की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। जब वेदव्यासजी ने महाभारत लिखने की इच्छा से गणेशजी से कहा कि तुम हमारे लेखक बनो। गणेशजी ने उत्तर दिया कि हम आपकी आज्ञा मानने के लिये तैयार हैं; पर लेखनी न रुकनी चाहिए। व्यासजी ने कहा, अच्छी बात है। हमारी भी एक शर्त है—जो कुछ लिखना, उसका अर्थ समझकर ही लिखना। गणेशजी ने इस शर्त को स्वीकार किया। वेदव्यासजी ने बोलना प्रारम्भ किया और गणेशजी ने लिखना। जब वेदव्यासजी को कुछ सोचने की आवश्यकता होती, तब वे बीच-बीच में कूट-श्लोक बोल देते, जिससे गणेशजी को अर्थ समझकर लिखने में कुछ देर हो जाती। इस कारण व्यासजी को आगे का इतिहास सोचने का समय मिल जाता। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार इस महाभारत में ८, ८०० श्लोक हैं, जिनके विषय में स्वयं वेदव्यासजी ने कहा है कि ८, ८०० श्लोकों का सत्य अर्थ मैं जानता हूँ, श्रीशुकदेवजी जानते हैं और इसमें संदेह है कि संजय जानते हैं, या नहीं। इस प्रकार एक लाख श्लोकों की भारत-संहिता का निर्माण करके वेदव्यासजी ने जगत् में विख्यात किया। इसमें वेदव्यासजी ने भूत, भविष्यत् और वर्तमान, इन तीनों कालों के लक्षण, मृत्यु, भय और रोगों की निवृत्ति के उपाय, अनेक प्रकार के धर्मों तथा आश्रमों के लक्षण, चारों वर्णों के कर्तव्यों का विधान, तप और ब्रह्मचर्य की क्रियाएँ; ऋक्, यजु और सामवेद का संक्षेपतः व्याख्यान, कुरु-वंश का विस्तार, गांधारी की धर्मशीलता, विदुर की प्रज्ञा, कुंती का धैर्य, श्रीकृष्ण का माहात्म्य इत्यादि कथाओं का विशद रूप से वर्णन किया है। यदि इस प्राचीन भारतवर्ष के पाँच हज़ार वर्ष पहले का सच्चा इतिहास जानना हो; यदि बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामह के पवित्र चरित्र को पढ़कर ब्रह्मचर्य-रक्षा का महत्त्व देखना हो; यदि भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी के उपदेशों से आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाना हो; तो प्रत्येक पढ़े-लिखे हिन्दी-प्रेमियों को यह "महाभारत भाषा-वार्तिक" मँगाकर अवश्य पढ़ना और लाभ उठाना चाहिए। पृष्ठ—संख्या ५१५४; मूल्य केवल २५) और प्रत्येक पर्व क्रमशः पृथक्-पृथक् भी मिलते हैं—

आदि-पर्व	पृ० ३७८	मू० २।)	शल्य और गदा-पर्व	पृ० २०४	मू० १।)
सभा-पर्व	पृ० १३८	मू० ।।।=)	सौप्तिक और स्त्री-पर्व	पृ० १०४	मू० ।।=)
वन-पर्व	पृ० ६२०	मू० ३।)	अनुशासन-पर्व	पृ० ५६२	मू० २।)
विराट-पर्व	पृ० १२८	मू० ।।।)	अश्वमेध-पर्व	पृ० १९८	मू० १।)
उद्योग-पर्व	पृ० ५०६	मू० २।।)	शांति-पर्व	पृ० ८८६	मू० ४।)
भीष्म-पर्व	पृ० ३२४	मू० १।।।)	आश्रमवास-पर्व मुशल-पर्व महाप्रस्थान-पर्व और स्वर्गारोहण-पर्व	पृ० ११६	मू० ।।।)
द्रोण-पर्व	पृ० ६१०	मू० २।।।)			
कर्ण-पर्व	पृ० ६२८	मू० १।।)			

मिलने का पता—मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो)

हज़रतगंज, लखनऊ.

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक......१०..................
दिनांक...........................